सर्वांगीण श्रेष्ठ मासिक
चतुर्थ वर्ष : षष्ठ अंक : बयालीसवीं किरण
जनवरी, १९५९

नया साल मुबारक

संपादक :
नीलरतन खेतान
चन्द्रकुमार अग्रवाल

सम्पादक व्यवस्थापक
पृथ्वीनाथ शास्त्री,
एम० ए०

प्रधान कार्यालय
१७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता-७
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय
१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दिल्ली
फोन : ४४२४८

वार्षिक मूल्य ८) द्विवार्षिक १५)
एक प्रति ७५ नये पैसे

इस अंक में समर्पित

।। सुप्रभात कार्यालय एवं मुद्रक मण्डल लि०, १७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता-७ [illegible]

BARLEY

रूपसी मीना कुमारी,
कमाल अमरोही के
टेक्नीकलर चित्र
'पाकीज़ा' में

सेवा कर रहे हैं...
गृह एवं
उद्योग
के लिये
प्रभात
उत्पादन
प्रभात प्रेशर कुकिंग स्टोवों से गृहिणी का काम हल्का हो जाता है और प्रभात गैस लैंटर्न उन घरों को जगमगा देते हैं जहां बिजली सुलभ नहीं होती। प्रभात ब्लो लैम्प्स समान रूप से छोटे या बड़े वर्कशॉप के लिये अति आवश्यक हैं, वास्तव में ये शब्द "प्रभात उत्पादन" समानतः घर एवं उद्योग में विशेषता-सूचक शब्द बन चुके हैं।
"भारत का सर्वप्रथम... तौभी सर्वोत्तम!"
Prabhat
प्रभात (स्टोव व लैम्प्स) प्राइवेट लिमिटेड

दि नेशनल स्क्रू एण्ड वायर प्रोडक्ट्स लि०

५१, स्टीफेन हाउस
४, डलहौसी स्क्वायर कलकत्ता-१

टेलीग्राम : नेदाक्र, कलकत्ता

फोन : २२-४३११-१८

उत्पादन

ठोस तथा मजबूत ताम्बे और एस० सी० एस० आर० के कण्डक्टर, गलवनाइज किये हुए तार, नरम स्पात, ताम्बे की कील, पीतल की शोर्टें, बोल्ट नट, स्टेसेट, ट्रांसमिशन लाइन आदि के विशिष्ट निर्माता
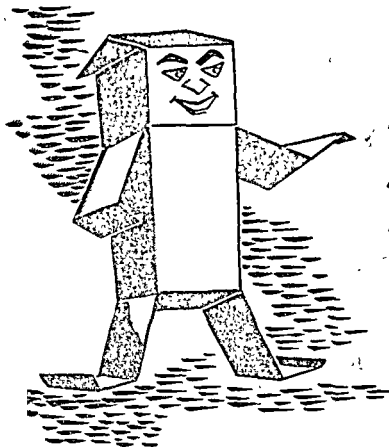
सुखी परिवार योजना का अंग है।

कुशलतापूर्वक घर का काम काज करने में परिवार की भलाई और राष्ट्र की प्रगति निहित है।

- बरबादी रोकिये—खास तौर पर खाद्य पदार्थों की।
- घर के पास एक छोटा सा बगीचा लगा लीजिए इससे किफायत होगी।
- आवश्यकता होने पर ही खरीदारी कीजिए।
- फुरसत के समय सिलाई या बुनाई कीजिए।
- नियोजित परिवार सुख का आधार है।
- योग्य नागरिक बनने के लिए आप के बच्चों को प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
- अधिकाधिक बचत कीजिए और उसे भारत सरकार की अल्प बचत योजनाओं में लगाइए।

योजना की सिद्धि आप की समृद्धि

शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है

'अनागता की आँखें'

वीरेन्द्रकुमार जैन की नवीनतम कविताओं का संग्रह

कविताएँ, जो अनागत के क्षितिज पर खुल रहे मानवीय प्रगति के अपूर्व नवीन प्रकाश पंथों का संदेश वहन करती-सी लगती हैं :

'देख लेना, कल आदमी बदल देगा
भौतिक को आत्मिक में, अचेतन को चेतन में,
क्योंकि कल मनुज को सत्ता का भेद मिल जायगा।'

संग्रह खुलता है, **'कवि-यात्रिक : अमर जीवन की खोज में'** शीर्षक ५० पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका के साथ, जिसमें अपने आत्म-विकास की यात्रा को केन्द्र में रख कर कवि ने पिछले ५० वर्षों की विश्व-काव्य की प्रगति पर सर्वथा मौलिक और नवीन प्रकाश डाला है। मानव के लिए इसमें अक्षुण्ण आशा का अमृत संदेश है। सत्ता के स्वरूप और जीवन-मूल्यों पर यह नितान्त स्वानुभूत चिन्तन, हिन्दी में अपने ढंग की अपूर्व चीज होगी।

बापू की पुण्य-स्मृति पर

तुम केवल गांधी थे
दर्शन के चिन्तन को
केवल अमिट अनाकृति
संवेदन-हीन
स्नेह, करुणा, सर्वोदय के पुजारी
तुमने हर दर्शन को
सदियों से सोये हुये राष्ट्र को
सामाजिक चेतना, स्वतन्त्रता
और उसकी मर्यादा दी
जीवन के हर पल क्षण को भर दिया
सब के दुःख को मन से स्वीकार किया
इसी करुणा, स्नेह, निष्ठा से
प्रार्थना-सभा में
रक्त-रंजित मृत्यु को हँसते से
तुमने समर्पित किया, जीवन को
उस अभागी शाम को इतिहास रोया
और इसने कर दिया घोषित तुम्हें
'बुद्ध' का अवतार
जब कि तुम यह चाहते थे, सदा ही
'सभी के बापू रहो'
मन से वाणी से कर्म से,
मानव रहो
किन्तु क्या तुम जानते हो
इस लम्बे काल में
अब तुम्हारे नाम से
एक वाद भी प्रचलित किया है
इन अवसरवादियों ने
बहुत से मन्दिर बनायें हैं
और तुम्हारी राख माथे से लगाये
यह अन्धे लोग, अनुयायी तुम्हारे
शक्ति, हिंसा और वैभव के पुजारी
भूलकर तुमको, तुम्हारी आत्मा को

मार्ग को
आज मानव से तुम्हें अवतार की संज्ञा दे
कर रहे हैं मूर्ति की पूजा, तुम्हारी जय
जब कि तुमने कहा था :
'जीवन-पर्यन्त व्यक्ति को मत पूजो
जो उसका आचरण है
जो उसका मार्ग है, वही वन्दनीय है'
यही सब देख कर, यही सब सोचकर
मैं तुम्हारी मूर्ति के सम्मुख
कभी झुक नहीं पाता हूँ।

—जगदीश चन्द्र

द' गाल और फ्रांसीय पाँचवाँ प्रजातंत्र

राजनीति का एक विद्यार्थी

बर्लिन के सम्बन्ध में रूसी धमकियों और चीनी कम्यूनों के रूप में सारे देशवासियों को एक अमिक-सैनिक कैंप बना देने की पृष्ठभूमि में फ्रांस के पाँचवें प्रजातन्त्र की स्थापना तथा नए संविधान की स्वीकृति और जनरल द' गाल के राष्ट्रपति निश्चित होने से एक प्रकार के फ्रेंच अधिनायक-तन्त्र की स्थापना शायद १९५९ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। १७८९ के बाद से अब तक यह फ्रांस का ११ वाँ संविधान है और १८४८ की क्रांति के बाद पाँचवा प्रजातन्त्र। फ्रांस में हर प्रजातंत्र की स्थापना के पीछे एक 'राष्ट्रीय संकट' रहा है और उसके टालने के लिए जनता ने 'एक महान् नेता' का आह्वान किया है। १९१७ में क्लीमेंस्यू ने और १९२६ में पोईंकेरे ने इन जिम्मेदारियों को वहन किया, किन्तु इसके लिए उन्हें पार्लमेंटरी प्रणाली को दफनाने की आवश्यकता नहीं हुई। सारे ऊपरी दिखावों से तो जनरल द' गाल ने भी पार्लमेंटरी प्रणाली और चुनावों की ओट में ही सारी राजनीतिक कार्यवाही की है; पर यथार्थ में यह उनकी व्यक्तिगत विजय है, जिसने पार्लमेंट का कोई अर्थ नहीं रहने दिया है। अब जो पार्लमेंट चुनी गई है, उसका बहुत बड़ा बहुमत उनके हर कार्य और क़दम के समर्थन करने के सिवा और कुछ करेगा, ऐसी संभावना नहीं है। जो लोग चुनाव के इस औपचारिक दिखावे या जनरल द' गाल के जर्मन-विरोधी स्वतन्त्र फ्रांसीसी संघर्ष का अगुआ होने की दुहाई देकर उन्हें किसी भी अधिनायकतंत्री से कम कूतते हैं, वे शायद वही ग़लती कर रहे हैं, जो कि फ्रांस के भूतपूर्व प्रधान मंत्री ल्यू ब्लूम ने मार्शल पेतॉं को 'फ्रांसीसी सेना नायकों में सबसे अधिक मानववादी' कहकर की थी।

फ्रांस की राजनैतिक परम्परा

क्रान्ति-पूर्व का फ्रांस केवल एकता के सूत्र में ही आबद्ध न था, बल्कि सम्पदा और विलास में यूरोप में अपना सानी नहीं रखता था। उन दिनों ब्रिटेन और जर्मनी में ये कहावतें मशहूर थीं कि 'जवान होकर स्वर्ग में रहना' है या 'कुबेर की तरह धनाढ्य होना' है, तो फ्रांस की राजधानी में जाकर रहना चाहिए। पर इसी सम्पदा और विलासिता के कारण फ्रांस की राजधानी १७८९ से १९४० तक चार बार विदेशी सेनाओं द्वारा

फ्रांस की नैसर्गिक दुर्बलता

पर ऐसी स्थिति क्यों रही, फ्रांसीसी राष्ट्र में यह नासूर आखिर क्यों बना रहा, इसे जानने के लिए हमें आधुनिक फ्रांस के इतिहास पर एक सरसरी निगाह डालनी होगी। पॉल वेलेरी के कथनानुसार १५ वीं शताब्दी से ही पश्चिमी यूरोप एशिया का अन्तरीप रहा है। यहाँ के प्रमुख राष्ट्रों के जहाज अफ्रीका और एशिया की व्यापारिक यात्रा ही नहीं करते थे, बल्कि वहाँ से कीमती लूट से लदकर लौटते थे। फ्रांस ने (और जर्मनी ने भी) जहाँ इससे अपने साम्राज्यवाद के बड़े-बड़े प्रतीक और महल खड़े किए, ब्रिटेन ने इसकी सहायता से उस औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया, जिसने आगे चल कर उसे पश्चिमी यूरोप का सबसे बड़ा राष्ट्र बना दिया। कुछ ही समय बाद जर्मनी भी उससे आगे बढ़ गया। पर फ्रांस अपनी कुछ नैसर्गिक दुर्बलताओं के कारण औद्योगिक क्रान्ति की इस दौड़ में आगे नहीं बढ़ सका। इनमें सर्व-प्रमुख थी कोयले की कमी। तेल और पन-बिजली के स्रोतों के विकास की ओर भी उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। इसीलिए उसे अपनी मशीनों के अधिकांश पुर्जों के लिए विदेशों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। उसका उत्तरी पड़ोसी स्पेन तो ब्रिटेन द्वारा दी गई समुद्री शिकस्त से विवश होकर चुप बैठ गया; पर पूर्वी पड़ोसी जर्मनी इस प्रतियोगिता में काफी आगे बढ़ा। उसकी इस उन्नति, शक्तिमत्ता और लोह-कोयले की बहुतायत ने फ्रांस को ही नहीं, ब्रिटेन को भी सशंक किया और वह चुपके चुपके फ्रांस को आलसस-लोरेन तथा रूह्र की घाटियों पर अधिकार जमाने के लिए उकसाने लगा। प्रथम महायुद्ध का यह एक बहुत बड़ा हेतु था और वर्साई की संधि में जर्मनी के रूह्र-घाटी और आलसस-लोरेन को फ्रांस को दिलवाकर ब्रिटेन ने न केवल फ्रांस-जर्मनी में दुश्मनी ही, बल्कि दूसरे महायुद्ध का भी बीजारोपण किया। इस कूटनैतिक चाल द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने जहाँ अपने दोनों प्रतियोगियों—फ्रांस और जर्मनी को दुश्मन बनाकर अपना मार्ग निष्कंटक कर लिया, वहाँ फ्रांस को सदा अपने पर निर्भर और अपना छुटभैय्या भी बना दिया।

पर इस नैसर्गिक दुर्बलता के बावजूद साम्राज्यवादी लूट ने फ्रांस की अर्थनीति को एक प्रकार का स्थायित्व दे दिया था, जिससे सम्पन्न हुए किसान और मजदूर संतुष्ट थे। किन्तु पहले महायुद्ध में विजयी होने पर भी फ्रांस को जन और धन का जितना अधिक नुकसान हुआ था, उसने उसकी राष्ट्रीय अर्थनीति को लड़खड़ा दिया। फलस्वरूप फ्रांक का अवमूल्यीकरण हुआ और बहुत बड़ी संख्या में फ्रांसीसियों को अल्जीरिया, मोरक्को, तूनिसिया आदि में जाकर बसना पड़ा। इस समय फ्रांस की जन-संख्या इटली से भी कम हो गई थी। लड़ाई जीत कर भी वह 'महान् राष्ट्र' नहीं रह गया था। आपसी झगड़े और भेद-भाव अब और भी बढ़ गए।

एशियाई और अफ्रीकी साम्राज्य (उपनिवेश) के धागे खिसकने लगे। चीन में हुई क्रांति और भारत से ब्रिटेन के हटने का प्रभाव यह हुआ कि फ्रांस को, मन न होते हुए भी, अपने दक्षिण-पूर्वी एशियाई उपनिवेशों और पांडीचेरी, चन्दननगर से हटने को मजबूर होना पड़ा। इसके बाद जब मिस्र ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का जुआ उतार फेंका और अरब राज्यों में राष्ट्रीयवाद की नई लहर दौड़ी, तब फ्रांस को मजबूर होकर सीरिया, लेबनान, मोरक्को आदि में आततायीपन के स्थान पर स्वतंत्रता देने का क़दम उठाना पड़ा। पर जब अल्जीरिया (जिसे फ्रांस ने १८३७ में जबरदस्ती दबा लिया था) में भी आजादी के लिए उग्र आन्दोलन छिड़ा, तब फ्रांस के राजनेता बगलें झांकने लगे, जिसके दो कारण थे। एक तो यह कि अल्जीरिया में १० लाख फ्रांसीसी बस गए हैं, (—मुसलमान वहाँ ८० लाख हैं—) जिन्होंने खेती और उद्योग-धंधों में वहाँ करोड़ों फांक लगा रखे हैं। दूसरे फ्रांस के अधिकांश उद्योग-धंधों में प्रमुख स्थान अल्जीरियन श्रमिकों का है। इन्हीं दो कारणों से अल्जीरिया की स्वतंत्रता में फ्रांस अपनी पूरी नहीं, तो आंशिक आर्थिक मृत्यु देख रहा है! पर अल्जीरियाई युद्ध को दबाने का खर्च फ्रांस के लिए काफी महँगा पड़ रहा है। फ्रांस के दक्षिणपंथी सैनिक सत्तावादी तो येन केन प्रकारेण अल्जीरिया को फ्रांसीसी साम्राज्य का पुंछल्ला या अन्तर्भुक्त अंग बनाये रखने की जिद कर ही रहे हैं, पर उसके तथाकथित वामपक्षी और उग्र राजनैतिक दल भी पूरे गुर्दे-गले से उसे स्वतंत्र किये जाने का समर्थन नहीं कर पा रहे हैं। इसी गुत्थी को न सुलझा सकने के कारण पिछले चंद महीनों में ही फ्रांस के आधे से ज्यादा मंत्रि-मंडलों का पतन हुआ और इससे राजनैतिक अदलाबदल के रूप में एक ऐसे 'राष्ट्रीय संकट' का जन्म हुआ, जिसने सारी जनता और तथाकथित राजनैतिक दलों को 'एक महान् राष्ट्रीय नेता' के रूप में जनरल द'गाल की ओर देखने को मजबूर किया। नए चुनावों में द' गाल के दल को ७७'५० से लेकर ८७'०४ प्रतिशत तक मत मिले हैं और किसी प्रतिद्वन्द्वी के अभाव में वे लगभग इतने ही बहुमत से राष्ट्रपति भी चुने गए हैं। मंत्रिमंडल उनके ही अधीन रहेगा।

आज के फ्रांस की जिस स्थिति में द' गाल का उदय हुआ है, उसकी तुलना एकमात्र नेपोलियन के उदय के समय की स्थिति से की जा सकती है। फर्क केवल इतना है कि जहाँ नेपोलियन का उदय फ्रांस की पार्लमेंटरी प्रणाली की मृत्यु का कारण बना, वहाँ द' गाल का उदय उस प्रणाली की विफलता का परिणाम है। इसलिए द' गाल की लोकप्रियता भले ही नेपोलियन जितनी न हो, पर उसकी राजनीतिक स्थिति अधिक सुरक्षित है। इसे और सुरक्षित बनाने के लिए द' गाल ने नया विधान बनाकर न केवल चुनी हुई पार्लमेंट के रूप को ही कायम रखा है, बल्कि सुस्तेल-विदाल्त गुट के प्रभाव को कम किया और अपने समर्थक सेनाधिकारियों द्वारा निर्मित 'जन-सुरक्षा-परिषद्' को भंग कर अल्जीरिया में सुल्की शासन को बदस्तूर जारी रखा है। यद्यपि नए चुनावों में उग्र वामपक्षी

पण्डितराज जगन्नाथ की अन्योक्तियाँ
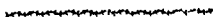
रंगनाथ राकेश

पण्डितराज जगन्नाथ ने मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ के दरबार में चापलूसी नहीं की, 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' कहकर सिर्फ अपनी कलम ही बतायी थी! अन्य राजे-महाराजे शायद ही उनकी नाज-बरदारी या दर-गिरानी का सर्वे संमान पाते: ([illegible]) बात मामूली नहीं है। पण्डित राज दाक्षिणात्य तैलङ्ग ब्राह्मण वंश के थे। इनके पिता पेरुभट्ट अप्रतिम विद्वान थे। दक्षिण से जयपुर दरबार और इसके बाद दिल्ली, शाहजहाँ के पास, ये अपने गुणों के कारण ही सम्मान्य हुए। 'वैयाकरण सिद्धान्त-कौमुदी' के प्रणेता भट्टोजि दीक्षित और प्रसिद्ध आलंकारिक अप्पय दीक्षित इनके समसामयिक थे। 'मनोरमाकुच मर्दन, (भट्टोजि के ग्रन्थ पर खण्डन) तथा 'चित्र-मीमांसा-खण्डन' (अप्पय दीक्षित के ग्रन्थ पर खण्डन) दोनों ग्रन्थ पण्डितराज की नैयायिक प्रतिभा के प्रमाण हैं। किन्तु 'भामिनी-विलास' में इनकी अन्योक्तियाँ पढ़कर तो यही कहना पड़ता है कि:

शायरी का वस्फ़ हो ऐसा कि, जिसके तसव्वुर का हुदूद ही नहीं।

उदाहरणार्थ, सर्वप्रथम, पंडितराज की राजहंस के प्रति एक अन्योक्ति देखिए:

> पुरा सरसि-मानसे विकच सारसालि-स्खलत्
> पराग सुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः।
> स पल्वल-जलेऽधुना मिलदनेक-भेकाकुले
> मराल-कुल-नायकः कथय रे कथं वर्तताम्?

—'यह कीचड़ से भरी हुई गड़ही, मेंढकों की उछल-कूद और टर्राहट! यहाँ वह राजहंस कैसे रह पायेगा, जो कुछ दिन पहले मानस-सरोवर में खिले कमलों के पराग-सुवासित जल में रहा हो।' नीच वाचालों की 'तू-तू मैं-मैं', उनकी गंदी आपसी स्वार्थान्ध

रर्राइट के बीच कोई शरीफ इंसान कब तक टिक पायेगा भला !

हंसों ने कवि-हृदय को सभी जगह उद्वेलित किया है। अंग्रेजी के कुछ कवियों की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ हैं :—

"Swans Sing before they die ;
It were no bad thing.,— —Coleridge

There is a double beauty
Whenever a Swan Swims on a lake.
With her double there on !, —Thomas Hood

'The Swan on Still St. Marry's lake
Float double, Swan and Shadow !, —Wordsworth

कॉलरिज में रोमांटिक आशावाद है, तो टॉमस हुड और वर्ड्सवर्थ में छायावादी सौन्दर्यबोध। परन्तु पण्डितराज की अन्योक्ति में हैं तीव्र ध्वनि, कटु सत्य की अनुभूति, और व्यंग ! इसी विषय पर बंगला की एक लोकोक्ति भी गजब की है :—

राजहाँसेर पा देखे बकेर नेढा-मेडा।
तोर पा जेमन - तेमन, आमार पा ढेंडा ॥

बंगला डींग हाँक रहा है—'अबे तेरे पाँव तो टेढे-मेढ़े हैं, देख तो जरा मेरे पाँव कैसे लम्बे लम्बे हैं।' सभी जानते हैं कि राजहंस की तरह बंगला एक डग भी नहीं रख सकता है और बगुले की तरह कुछ आदमी हैं जो अपने दुर्गुण को ही गुण समझ बैठते हैं। "नंगा नाचे चौड़े में है कोई हम-सा होय।"

राजहंस पर तो पंडितराज शायद मुग्ध ही थे। एक जगह कहते है :—

"नीर-क्षीर-विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥"

—'हंस, यदि 'दूध का दूध और पानी का पानी' करने में तू भी अलसायेगा तो यह बता कि इस दुनियाँ में अपने कुल धर्म का पालन कौन करेगा।' जानकार जब जानकारी जाहिर नहीं करते या गलत बातों को बर्दाश्त करते हैं, प्रतिकार नहीं करते—तब यह अन्योक्ति कितनी उद्बोधिका हुई होगी।

राजहंस को कर्तव्य-बोध का ज्ञान कराते हुए कविवर ने अन्यत्र कहा है :—

दव-दहन-जटाल ज्वालजालाहतानाम्,
परिगलित-लतानां म्लायतां भूरुहाणाम्।
अयि-जलधर-शैल श्रेणि शृङ्गेषु तोयम्,
वितरसि बहु कोऽयम् श्रीमदस्तावकीनः?

'बादल, यह है तुम्हारा धन का गर्व! अपने अधिकांश जल को तो तुम पहाड़ों की चोटियों पर व्यर्थ ही उड़ेल देते हो और दावाग्नि की कठिन ज्वालाओं से झुलसे-जले हुए, जिनकी लताएँ मुरझाकर भी गिर गयी हैं, समाप्त-से हो चले हैं, उनको भिगाते भी नहीं। कुपात्रों को झूठी शान में आकर साधन-युक्त संपत्तिशाली लोग जो दान दे देते हैं और परोपकारी, सद्गृहस्थ सुपात्र होने पर भी कुछ नहीं पाता, इसी पर यह कितना तीखा व्यंग है।

जरीफ सहारनपुरी, ने भी कुछ ऐसा ही कहा है :—

'कौन इस तर्ज़-जफ़ाये आसमाँ की दाद दे!
बाग़ सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया!'

और 'साकिब' का एक शेर भी मजेदार है :

'भरे हुओं को भरा करते हैं करमवाले,
जहाँ है गड्ढा, घटा भी वहीं बरसती है।'

चन्दन पर पण्डितराज की एक अन्योक्ति है :

आपद्गतः खलु महाशय-चक्रवर्ती विस्तारयत्यकृतपूर्वमुदार-भावम्।
कालागुरुर्दहनमध्यगतः समन्तात् लोकोत्तरं परिमलं प्रकटीकरोति॥

'अच्छे आदमियों में जो सबसे बड़ा होता है—वह मुसीबतों में पड़ने पर और भी बड़प्पन से पेश आता है। जैसे चन्दन दहकती आग में पड़ने पर भी एक खास किस्म की

निराली ख़ुशबू तो देता ही है।' दुर्जन और सज्जन की पहचान तो उनके 'दुरतिक्रम स्वभाव' से ही तो होती है न ? कितना उपयुक्त उद्बोधन है।

कुटज के प्रति एक मार्मिक अन्योक्ति देखिए :—

समुपागतवति दैवात् अवहेलां कुटज मधुकरे मा गाः।
मकरन्द-तुन्दिलानाम् अरविन्दानामयं महामान्यः॥

—ओ कुटज (केतकी), संयोगवशात् यदि भ्रमर तुम्हारे पास आ जाये तो उसकी अवहेलना मत करो, वह (भ्रमर) मकरन्द-भरे कमलों द्वारा पूजित है।' रमण व्यक्ति यदि कभी साधारण या निर्दिष्ट पथ से अतिरिक्त रास्ते पर चला जाय तो उसका अपमान न होने देने के लिए ही शायद यह अन्योक्ति कुछ कम-समझवालों से कही गयी है।

वनराज सिंह पर भी पंडितराज की एक अनूठी अन्योक्ति है '—

दिगन्ते श्रूयन्ते मद-मलिन-गण्डाः करटिनः
करिण्यः कारुण्यास्पदमसमशीलाः खलु मृगाः।
इदानीं लोकेऽस्मिन्ननुपमशिखानां पुनरयं
नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपतिः ?

—मदस्राव से मलिन कपोलोंवाले हाथी दूर भाग गये, हथिनियाँ स्त्रीत्व के कारण करुणास्पद हैं। सीधे सादे-हरिण बेचारों की तो कोई गिनती ही नहीं। अब इस संसार में अपने अनुपम प्रखर नखों के शौर्य को बेचारा वनराज 'सिंह' कहाँ प्रकट करे ?' तात्पर्य यह है कि किसी भी योग्य प्रतियोगी के अभाव में बुद्धि-वैभव और शौर्य का प्रयोग या प्रकाश सम्भव नहीं हो पाता।

कोकिल को लेकर तो पंडितराज अन्योक्तियाँ कहते कभी नहीं अघाते :—

एकस्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल, न कलं कदाचिदपि कुर्याः।
साजात्य-शङ्कयामी न त्वां निघ्नन्ति निर्दयाः काकाः।

—हे कोकिल, तू इस गहन वन में अकेला है, भूलकर भी कहीं कलरव न करदेना। कौवे यदि यह जान लेंगे कि तुम कौवा नहीं कोकिल हो, (सजातीय नहीं विजातीय हो) तो फिर शायद ही तुझे जिन्दा रहने दें।' वस्तुतः दुर्जन-समुदाय में सज्जन का चुपचाप रहना ही ठीक है। मूर्खों में विद्वान् को लक्कू बनाकर भगाने की कहानी कौन नहीं जानता ? कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में कोकिल-विषयक काक-भ्रम के बारे में कहा है :—

कुछ दिनों में सन्तोष करने की सलाह किस मधुरता से इस अन्योक्ति में मिलती है :

तावत्कोकिल, विरसान्यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन् ।
यावन्मिलदलिमालः कोऽपि रसालः समुल्लसति ।

—हे कोकिल, तब तक दूसरे वन में रहकर इन रस-हीन दिनों को किसी तरह काट दे, जब तक कि भ्रमर-पंक्ति गुंजित किसी आम्रवृक्ष के बौर नहीं फूट पड़ते।'

इस अन्योक्ति-प्रसंग का परिसमापन मैं अब एक छोटे से सुभाषित से समाप्त करता हूँ :

विद्वां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥

—विद्वान् सहसा कुछ नहीं कह डालते ('मुखमस्तीति वक्तव्यम्', के अनुसार जो मुँह में आया वही नहीं कह देते, सोच समझकर बोलते हैं।) और यदि कहते हैं तो फिर कहे को वापस नहीं करते—द्विरद के दाँतों के समान।' मशहूर है कि हाथी के दाँत एक बार टूटने या गिरने पर फिर नहीं उगते और उगना शुरू होने पर किसी तरह भी रुकते नहीं, यद्यपि निकलते काफी उम्र में हैं। शायद इसीलिए एक कहावत भी चल पड़ी है : अच्छा तो आपके भी दाँत निकल आये हैं! यानी अब क्या, अब तो सयाने हो गये। ●

एक बरस

एक दिन
अंगुलियाँ गिन
रात मैंने
बिता दी थी।

एक रात
लम्बी कर
चादर को
किया प्रात,

एक माह
बिना अर्थ
बिना साध्य
था निबाह

बीत गया इसतरह
बिना ईर्ष्या
बिना तरस
एक बरस।

शिवनारायण उपाध्याय

जीवन और शायद इसका भी प्राग्वर्ती (pre-ce-llular) तथा प्रति मानवीय (post-human) जीवन विद्यमान हों। इसके अतिरिक्त इनमें पदार्थ (matter) के ऐसे रूप भी विद्यमान हो जिनको चेतन (living) कहा जा सकता है किन्तु जो हमारे वर्तमान अनुभव से परे हैं।

नये ज्ञान ने रसायनशास्त्रियों को इस लायक कर दिया है कि वह कुछ निश्चयात्मकता से यह कह सकते हैं कि रसायनों का विकास सजीव कोष-पर्यन्त [जीव-कोषमय-सहित] एक तरह से ज्ञेय और अनिवार्य रूप में ही घटा है।

वैज्ञानिक प्रमाण भी यही निर्देश करते हैं कि जीवन-स्थिति—पौधे और पशुओं को शामिल करते हुए—समस्त ब्रह्माण्डमें सम्भव है। यह हो सकता है कि ये विभिन्न-ग्रह-वर्ती पौधे या पशु-जीव आकृति या संघटन में भूतनाधिवासी पशु-पौधे जैसे न हों। किन्तु ये समानधर्मा या समानगुण हो सकते हैं। इस धारणा का यह अर्थ हुआ कि जीवन विश्व भर में ब्रह्माण्डजन्य एक मुख्य प्रभाव है; किसी क्षुद्र ग्रह पर संयोग या दुर्घटना का परिणाम नहीं।

डा० कालविन ने यह घोषणा की है कि विचारवान् प्राणी विश्व भर में शरीरों (bodies) के परिवेश को शायद भूतलस्थ मानव की अपेक्षा उससे कहीं अधिक मात्रा में, बदल रहे होंगे।—'सन्डे स्टैन्डर्ड' से

१९४२ की क्रान्ति की एक याद

दीवारों के भीतर और बाहर

गणेशप्रसाद सराफ

दिवाली, १९४२।

भयानक काली रात। और घोर हवा-घोर निस्तब्धता। हजारीबाग जेल के चारों ओर, मीलों तक फैले विशाल जंगल में, शेरों की गर्जे, जेल की चहारदिवारी की मनहूसियत। एक टिटहरी की टें, टें।

धर, धर, धर धम। एक काली आकृति दिखी, जेल की चहार दिवारी के पीछे और भी चार आकृतियाँ। एक और भी— लम्बी, पतली। बिजली चमकी। कौन? जयप्रकाश नारायण? और वे पाँच? सूरजनारायण, शालिग्राम, रामानन्द, गुलाली और योगेन्द्र शुक्ल।

एक फुसफुसाया, 'गठरी?'

दूसरा बोला, 'कपड़े, जूते, खानेकी चीजें, रुपये पैसे सब उसी में तो थे।'

तोमर ने अफसोस जाहिर किया-रस्सी छूट कर उस पार ही गिर पड़ी।

'जाने दो समय नहीं है। बढ़े चलो— बढ़े चलो।' पतली लम्बी देह से धीमी आवाज आयी।

पेट के बल रेंगकर, छाती के बल चल कर, यह पंच-काफला उस घोर जंगल में घुस पड़ा। अचानक एक जंगली शेर गर्जा। किन्तु बिहार के शेर योगेन्द्र शुक्ल की ललकार पर जंगली शेर ने अपना रास्ता लिया, और इसी तरह अनेक अनजाने खतरों से मोर्चा लेते हुए बिना आबोदाना यह टुकड़ी दो दिन तक जंगल में अविराम घूमती ही चली गयी।

पाँचों के पेट की ज्वाला धधकी, पाँवों ने जवाब दे दिया। कंकड़, पत्थर, कुशों और काँटों पर चलते-चलते पैरों के तलुए छिल गये, लाल हुए, खून उतरा, फफोले निकले, फूटे, लाल-लाल चमड़ी दिखी और फिर लाल-लाल रक्त बहा। पर विश्राम किसे कहते हैं। 'चरैवेति।' आगे बढ़ो।' देश की आजादी की लड़ाई में आराम हराम है—यही विश्वास था उनका एकमात्र संबल।

जयप्रकाश के 'साईटिका पेन' और रामानन्द के गठिया का दर्द भी जाग उठे। फिर

भी कुशलता दोनों चलते रहे और बेदाग अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच ही गये।

योगेन्द्र शुक्ल ने छाती ऊँची कर कहा, 'कहीं आदमी भी पिंजरे में रखा जा सकता है ?'

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा की सुबह !

टन, टन, टन ! टनटन ! !

पगली घंटी से गूँज उठी सारी जेल। चौंक उठे—सब कैदी, वार्डर नम्बरदार, पहरेदार सभी के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। संगीनें तन गयीं। शोर मचा : 'कहाँ गये, कहाँ गये, जयप्रकाश, योगेन्द्र और उनके साथी ?' 'नहीं नहीं जयप्रकाश जैसे व्यक्ति जेल के भगोड़े नहीं कहलायेंगे,' जेलर बड़बड़ाया, 'अवश्य ही उसे छिपाकर रखा गया है। उसे खोजो, वार्ड में देखो, बिस्तरों में देखो, ऊपर-नीचे खोजो। जेल की दिवारों को हिला डालो। किन्तु उसे मेरे सामने लाओ।' जेलर बौखला गया था, पागल हो उठा था। जेल का चप्पा-चप्पा खोजा गया। सभी आनेवाली विपत्ति की आशंका से काँप रहे थे और जेलर चहल-कदमी करता बड़बड़ा रहा था।

एकाएक वह चिल्लाया : 'लाओ एक-एक कैदी को मेरे कमरे में।' जेलर की आवाज दिवारों से टकरायी और सारे अहाते में फैल गयी। फिर उसके कमरे से आवाजें निकलीं—'सटाक्, सटाक्, सटाक्।'

'कहाँ है जयप्रकाश, बताओ ? नहीं तो सब मसल दिये जाओगे।'

और उस दिन नौकरशाही ने पुनः एक बार यह समझा कि प्रजातंत्र-प्रेमियों के सामने आततायी अत्याचारियों को भी सिर झुकाना पड़ता है। भगोड़े कैदियों का सुराग भी सुराग न मिल सका।

१९४२ की क्रान्ति में शिथिलता आ चुकी थी। यह सत्य है कि एक पखवारे

क्रान्ति

'यह समझना गलत है कि क्रांति एक ... को देखिये—आप पायेंगे कि क्रान्ति कोई ... प्रक्रिया है। क्रान्ति के विकास के सिद्धान्तों ... क्रान्ति की लहर नीचे की ओर जाती मगर ... विजय प्राप्त करेगी।'

'अगस्त क्रान्ति के पहले दौर में दो त्रुटि... था, जो जनता की उमड़ी हुई ताकतों को ... थी कि जहाँ जन-क्रान्ति ने विदेश भी ... देने का कोई कार्यक्रम क्रान्तिकारियों के पास ... के साथ निर्माण की महती शक्ति भी ... जीवित नहीं रह सकती। अगर उसे ... नाश किया है, उसके बदले तुरन्त दूसरी ... हुई कि हमने थानों पर कचहरियों पर ... करने के बाद हम अपने २ घरों में जाकर सो ... गलतियां हो चुकीं। अब क्या हो ? अब ... करता है ? सिकन्दर जब हार गया तब उसने ...

अब काम यह है कि अपनी बिखरी शक्ति ... अनुशासित किया जाय। साथ ही, हमें ... काम सिर्फ दुश्मनों पर छापा मारना ही ... है। इन किसानों और मजदूरों से हमें नये ...

हिन्दुस्तान के अधिकांश भागों में डेढ़
वर्षों से क्रान्ति अंग्रेजी राज्य एकदम
ठप्प हो गया था। ताश के घर की तरह ढहता
ता था। महात्मा गांधी के 'करो या मरो'

है

पर हावी नहीं। क्रान्ति के इतिहासों
नहीं है। क्रान्ति एक दौर है, सामाजिक
ते हैं तो भाटे भी आते हैं। काम हमारी
न्तु यह तुरंत उभर उठेगी, जिनके पर

थीं—एक तो, कोई नूतन संगठन नहीं
विजय-पथ पर बढ़ाये! दूसरी त्रुटि यह
विजय को टिकाऊ बनाने, उसे पूर्ण रूप
क्रान्ति का कार्य सिर्फ संहार नहीं है, क्रान्ति
क्रान्ति सिर्फ संहार ही करती है, वह
है तो जिस सरकार को सत्ता का उलटने
न करे। अगस्त क्रान्ति में बड़ी भूल यह
स्टेशनों पर कब्जा किया, किन्तु कब्जा
ने मैदान फतह कर लिया है। खैर!
ने मैदान हारना या जीतना है तो वह क्या
था! और भी कितने ही उदाहरण हैं।
किया जाय, शिक्षित, व्यूहबद्ध और
शहरों में काम करना चाहिये क्योंकि हमारा
पूरी जनता को विद्रोह-पथ पर ले चलना
रहेंगे। हमें अंग्रेजी सरकार की हिन्दुस्तानी

मंत्र ने जादू का काम किया। रेलवे लाइनें
उखाड़ी गयीं, तार काटे गये। पुल टूटे
और पुलिस थानों पर तिरंगे लहराये।
कचहरियों में भी आजाद हुकूमत क़ायम
करने की चेष्टाएं हुईं।

किन्तु कोई निश्चित कार्य-क्रम जनता
के सामने नहीं था। बड़े-बड़े सभी नेता
सींखचों के अन्दर थे। जनता ने जिस
सरकार को उखाड़ा वही पुनः क़ायम हो
गयी और फिर चला उसका दमन-चक्र
चारों ओर त्राहि त्राहि मच गयी गांव के
गांव जला दिये गये। बागी के जान-माल
कहीं को पनाह न थी। साथ ही साथ
क्रूरता से निरपराध निहत्थी भारतीय
जनता को आवाज़ को दनदनाती गोलियों
से दबाया गया। बेटों के खून और
माताओं के आंसुओं को एक किया और
फिर भी 'आह' न लेने दी।

आजादी की लाश अंग्रेजी राज में
छब-टूब रही थी। केवल यही एक आशा
थी कि सुभाष बाबू आजाद हिन्द फौज लेकर
आ रहे हैं। सेगोन से रेडियो द्वारा बराबर
आश्वासन मिल रहा था कि अब आये, यह
आये। रात में लोग तारों को देखते और
उसकी रोशनी को नेताजी सुभाष के हवाई
जहाज की रोशनी समझने की कोशिश
करते। किन्तु आशा के यह तारे टिमटिमाये
और डूब गये।

जयप्रकाश जेल से भाग निकले। इस
समाचार से जनता में नया जोश आया।
क्रान्ति की चिनगारी पुनः भभक उठी।
जनता ने समझा, जयप्रकाश 'जय' नहीं तो
'प्रकाश' लेकर अवश्य आ रहा है। अब हम
विजयी होकर रहेंगे। करेंगे या मरेंगे।

अगस्त क्रान्ति में दूसरा दौर आया।
जयप्रकाशनारायण ने दिल्ली में फर्मा...

संचालक मंडल की गुप्त बैठक बुलायी। निश्चय हुआ कि कर्मियों के शिक्षित दस्ते तैयार कर उन्हें सभी साधनों से लैस किया जाय तथा आगामी कार्यक्रम का उनके द्वारा ही प्रचार हो। संगठन का नाम हुआ आजाद दल। कार्य-संचालन का भार पड़ा सारंकिया के रोगी जयप्रकाश पर और उसने दिल्ली से आगे बढ़कर राजपूताने रेगिस्तान पार किया। फिर गुजरात की सीमा लांघकर अहमदाबाद और बम्बई, मद्रास-कलकत्ता और फिर नेपाल की यात्रा की।

नेपाल में ही प्रधान केन्द्र बना जिसका सीधा सम्पर्क रहा कलकत्ते से, जहाँ पर गुप्त-संगठन का देश-व्यापी जाल बुना गया। हर जगह काम करने के 'सैल' और सम्वाद-सम्वहन के 'कोड' बने।

नेपाल में पहाड़ के उस पार बकरों का टार। फूंस की एक झोपड़ी। कच्चा चुँआ। जयप्रकाश का वास-स्थल। दुनियाँ से सम्पर्क स्थापित करने के लिये रिसीवर्स और के ट्रान्समिटर्स की व्यवस्था। तीन मास तक लगातार संघर्ष करते रहने से कर्मियों के चेहरों पर रूखापन जिस्म पर घावों के निशान, वे निशान जो बाहर से न दीखें और भीतर ही भीतर शरीर को खाते जांय। किन्तु उनका ध्यान उस ओर नहीं था। वे तो दिन रात आजादी कैसे मिले, क्रान्ति कैसे जिन्दा रहे, इसी चिन्ता में पागल थे। इनमें बूढ़े नौजवान, स्त्रियाँ, प्रौढ़, गांधीवादी, समाजवादी सभी थे। जयप्रकाश की मौजूदगी से सभी के चेहरों पर एक उल्लास आ गया। जयप्रकाश को गुप्त

अपीलें निकलीं—विद्यार्थियों किसानों, जनता एवं पुलिस सिपाहियों के नाम। इन अपीलों में जोश था, जान थी। बुझती क्रान्ति-भावना पुनः धधकी और सच्चे कार्यकर्ताओं में हलचल मची। नेपाल की

फौज की आँखें खोलनी है, उसमें क्रान्ति क बदलने की कोशिश करनी है। लेकिन तै शब्दों में—'हिट-एंड-रन मुठभेड़' 'सरहदी कार यह सब चलते रहने चाहिए।

'जनता में पूरा विश्वास और अपने हमारे पैर मजबूती से अड़े रहें, हमारे हृदय न आने पावे। देखिये वह हिन्दुस्तान की ' हमारी आशंका और कलह, कार्यहीनत अन्धकार में न ढकेल दिये जावें। सावधान

जयप्रकाश नारायण ने उन अमेरिकी जापानी हमले के वक्त यहाँ इकट्ठे थे। उस जयप्रकाश कलिफोर्निया, इयोवा, विस्कांसि अमेरिकी फौज में उन विश्वविद्यालय के

'मैं एक ऐसे युद्धबंदी की हैसियत से अपने जन्मजात अधिकार का उपयोग कि उद्देश्य से कि मैं अपने देश को आजाद क अंग्रेजी साम्राज्यशाही सरकार ने मुझे ' भीषण अपराधी हूँ। आप में से य कैम्प से भाग आना कर्तव्य समझेगा आ उसका आदर करेंगे। 'हीरो' कहलाये ज

.....

तराइयों में जैसे जीवन-ज्योति आ रह थी। बिहार के सभी क्रान्तिकारियों क मुँह नेपाल की ओर था। वहाँ पर पहल शिविर खोला गया, जहाँ ३५ सैनिक शिक्षित किये जाने लगे—जिले-जिले में जाकर

संगठन एवं प्रचार करने के लिये। डा० लोहिया और श्यामनन्दन बाबा भी पहुँचे।

नौकरशाही के कान खड़े हुए। नेपाल महाराज का आदेश हुआ : कैदी अंग्रेजी सरकार के हवाले किये जाँय।

गयी है। सरकारी नौकरी के दिमाग को भी मतलब लड़ाई बंद कर देना नहीं है—मैनिक सफाई 'गश्त लगाना' और 'निशाना लगाना'

पूरी आस्था रखते हुए हम आगे बढ़ते चले। जोश-ओज हो और हमारी नजरों में धुँधलापन सूरज आसमान पर चमकने लगा है। कहीं स्वाधीनता के बादल [illegible] न [illegible]। हम पुन-

मैनिक [illegible] सारी चिट्ठी लिखी जो समय की याद दिलायी गयी थी, जब [illegible] में पढ़ते थे। हो सकता है, शायद इस [illegible] उनमें खास तौर पर यह निवेदन किया था [illegible] रहा हूँ, जिसने दुश्मन की कैद से भागकर [illegible] हाल ही हजारीबाग जेल से भागा हूँ—इस [illegible] माग ले सकूँ। हमारे दुश्मन इस [illegible] लिये इनाम घोषित किया है, मानो मैं कोई [illegible] डाकू बना तो वह मौका मिलते ही दुश्मन के [illegible] देशवासी निस्सन्देह 'हीरो' मानकर [illegible] में नहीं रखता, लेकिन मैं अपने को भीषण

...

एक दिन अचानक जयप्रकाश घेर लिये गये। उनके साथ डाक्टर लोहिया और उनके दो साथी भी। रास्ते में श्यामानन्द बाबा भी दो साथियों के साथ पकड़ लिये गये और दूसरे दिन ही नौकरशाही के हाथों सौंप दिये गये।

●

हनुमान् नगर कचहरी के बाहर संगीन-धारी संतरी के जूतों की खटखटाहट भरा रात्रि की निस्तब्धता को भेद देती थी। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था—अचानक एक गोली भाई रूम के पास के गेट पोस्ट में आ लगी। संतरी सजग हुआ। उसने भी गोली से जवाब दिया। किन्तु यह क्या! गोलियों की बौछार होने लगी। कुहराम मचा। संतरी की रायफल छीन ली गयी ले। हो क्या जयप्रकाश का दल। हाँ, शिविर के ३५ शिक्षार्थियों को लेकर शक्ति ने सूरजनारायण के नेतृत्व में धावा बोला था।

सलाखों के अन्दर के वीर पुनः बाहर आ गये और यह काफला तेजी से किसी तरह छिपता वेश बदलता कई दलों में बँटता आगे बढ़ता रहा। जयप्रकाश सुभाष बाबू के सम्पर्क में आना चाहते थे। उन्हें काम करना था, सोचा नेपाल के जंगलों में न सही, बर्मा के जंगलों में ही चलें। किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। चारों तरफ जयप्रकाश की खोज जारी थी।

नौकरशाही, शहर के चौरस्तों, गाँवों की गलियों, खेतों की पगडंडियों पर गिद्ध-दृष्टि गड़ाये थी। खुफिया पुलिस ने देश-भर में जाल बिछा रखा था।

१८ सितम्बर १९४३ की एक रात दिल्ली से लाहौर जानेवाली गाड़ी। फर्स्ट क्लास में एक हिन्दुस्तानी साहब 'स्टेंड-

संचालक मंडल की गुप्त बैठक बुलायी। निश्चय हुआ कि कर्मियों के शिक्षित दस्ते तैयार कर उन्हें सभी साधनों से लैस किया जाय तथा आगामी कार्यक्रम का उनके द्वारा ही प्रचार हो। संगठन का नाम हुआ आजाद दल। कार्य-संचालन का भार पड़ा साइटिका के रोगी जयप्रकाश पर और उसने दिल्ली से आगे बढ़कर राजपूताना रेगिस्तान पार किया। फिर गुजरात की सीमा लांघकर अहमदाबाद और बम्बई, मद्रास-कलकत्ता और फिर नेपाल की यात्रा की।

नेपाल में ही प्रधान केन्द्र बना जिसका सीधा सम्पर्क रहा कलकत्ते से, जहाँ पर गुप्त-संगठन का देश-व्यापी जाल बुना गया। हर जगह काम करने के 'सैल' और सम्वाद-सम्वहन के 'कोड' बने।

नेपाल में पहाड़ के उस पार बकरों का टापू। फूंस की एक झोपड़ी। कच्चा कुँआ। जयप्रकाश का वास-स्थल। दुनियाँ से सम्पर्क स्थापित करने के लिये रिसीवर्स और के ट्रान्समिटर्स की व्यवस्था। तीन मास तक लगातार संघर्ष करते रहने से कर्मियों के चेहरों पर रूखा जिस्म पर घावों के निशान, वे निशान जो बाहर से न दीखें और भीतर ही भीतर शरीर को खाते जाँय। किन्तु उनका ध्यान उस ओर नहीं था। वे तो दिन रात आजादी कैसे मिले, क्रान्ति कैसे जिन्दा रहे, इसी चिन्ता में व्याकुल थे। इनमें बूढ़े नौजवान, स्त्रियाँ, प्रौढ़, गांधीवादी, समाजवादी सभी थे। जयप्रकाश की मौजूदगी से सभी के चेहरों पर एक उल्लास आ गया। जयप्रकाश की गुप्त

अपीलें निकलीं—विद्यार्थियों किसानों, जनता एवं पुलिस सिपाहियों के नाम। इन अपीलों में जोश था, जान थी। इनसे क्रान्ति-भावना पुनः उमड़ी और सच्चे कार्यकर्त्ताओं में हलचल मची। नेपाल की

फौज की आँख खोलनी है, उसमें क्रान्ति की बदलने की कोशिश करनी है। लेकिन जैसा शब्दों में—'छिट-पुट मुठभेड़' 'सरहदी कार' यह सब चलते रहने चाहिए।

'जनता में पूरा विश्वास और अपने हमारे पैर मजबूती से खड़े रहें, हमारे हृदय न आने पावें। देखिये वह हिन्दुस्तान की हमारी आशंका और कलह, कार्यहीनता अंधकार में न ढकेल दिये जावें। सावधान

जयप्रकाश नारायण ने उन अमेरिकी जापानी हमले के वक्त यहाँ इकट्ठे थे। उस जयप्रकाश कलिफोर्निया, इयोवा, विस्कां अमेरीकी फौज में उन विश्वविद्यालय के

'मैं एक ऐसे युद्धबंदी की हैसियत से अपने जन्मजात अधिकार का उपभोग उद्देश्य से कि मैं अपने देश को आजाद अंगरेजी साम्राज्यशाही सरकार ने मुझे भीषण अपराधी हूँ। आप में से यदि कैम्प से भाग आना कर्तव्य समझेगा आप उसका आदर करेंगे। 'हीरो' कहलाये जा

तराइयों से जैसे जीवन-ज्योति आ रही थी। बिहार के सभी क्रान्तिकारियों का मुँह नेपाल की ओर था। वहाँ पर पहला शिविर खोला गया, जहाँ ३५ सैनिक शिक्षित किये जाने लगे—जिले-जिले में जाकर

संगठन एवं प्रचार करने के लिये। डा० लोहिया और श्यामनन्दन बाबा भी पहुँचे।

नौकरशाही के कान खड़े हुए। नेपाल महाराजा को आदेश हुआ: कैदी बंदियों को सरकार के हवाले किये और।

जाती है। सरकारी नौकरों के दिमाग को भी [illegible] लड़ाई बंद कर देना नहीं है—मैं [illegible] दाताई 'गश लगाना' और '[illegible]'

पूरी आस्था रखते हुए हम आगे बढ़ते चले। जोश-खरोश हो और हमारा नारा है धुँआधार सूरज आसमान पर चमकने लगा है। कहीं [illegible] के बादल [illegible]। हम पुन:

[illegible] 'मैनिफ' [illegible] नाम अपनी चिट्ठी लिखी जो समय को याद दिलाती गयी थी, जब हाथों में पड़ते थे। हो सकता है, शायद इस [illegible] उनसे खास तौर पर यह निवेदन किया था: [illegible] रहा है, जिसने दुश्मन की कैद से भागकर हाल ही हजारों बाग जेल से भागा है—इस [illegible] आनन्द भाग ले सकूँ। हमारे दुश्मन इस लिये इनाम घोषित किया है, भागों में कोई बंदी बना तो वह मौका मिलते ही दुश्मन के [illegible] देश वासी जिम्मेदार 'हीरो' मानकर [illegible] में नहीं रखना, लेकिन मैं अपने को भीषण [illegible]

एक दिन अचानक जयप्रकाश घेर लिये गये। उनके साथ डाक्टर लोहिया और उनके दो साथी भी। रास्ते में श्यामानन्द बाबा भी दो साथियों के साथ पकड़ लिये गये और दूसरे दिन ही नौकरशाही के हाथों सौंप दिये गये।

●

हनुमान् नगर कचहरी के बाहर मशीनगन-धारी संतरी के जूतों की मचमचाहट मध्य रात्रि की निस्तब्धता को भेद देती थी। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था—अचानक एक गोली गार्ड रूम के पास के गेट पोस्ट में आ लगी। संतरी सजग हुआ। उसने भी गोली से जवाब दिया। किन्तु यह क्या? गोलियों की बौछार होने लगी। कुहराम मचा। संतरी की राइफल छीन ली सूरज ने। तो क्या जयप्रकाश का दल! हाँ, शिविर के ३५ विद्यार्थियों को लेकर रात्रि में सूरजनारायण के नेतृत्व में धावा बोला था।

सीखचों के अन्दर के बीर पुनः बाहर आ गये और यह काफला तेजी से किसी तरह छिपता वेश बदलता कई दलों में बँटता आगे बढ़ता रहा। जयप्रकाश सुमार बाबू के सम्पर्क में आना चाहते थे। उन्हें काम करना था, सोचा नेपाल के जंगलों में न सही, बर्मा के जंगलों में ही चलो। किन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। चारों तरफ जयप्रकाश की खोज जारी थी।

नौकरशाही, शहर के चौरस्तों, गाँवों की गलियों, खेतों की पगडंडियों पर गिद्ध-दृष्टि गड़ाये थी। खुफिया पुलिस ने देश-भर में जाल बिछा रखा था।

१८ सितम्बर १९४३ को एक रात दिल्ली से लाहौर जानेवाली गाड़ी। फर्स्ट क्लास में एक हिन्दुस्तानी साहब 'सूटेड-

हिन्दी के एक वयोवृद्ध साहित्यकार

जनवरी, १९६९ में वयोवृद्ध साहित्यिक **श्री वृन्दावनलाल वर्मा,** जिनको आगरा विश्वविद्यालय ने अभी कुछ दिन हुए डी॰ लिट् की उपाधि से सम्मानित किया है, अपनी आयु के सत्तर वर्ष पूरे कर रहे हैं। हम उनका अभिनन्दन करते हैं और उनकी परिचय प्रशस्ति के लिए लिखे **श्री सियारामशरणप्रसाद** के एक विस्तृत लेख का सारांश यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

वर्माजी के साहित्य में राष्ट्रियता और स्वदेश-प्रेम जैसे सांस्कारिक तत्त्व ही प्रधान हैं। मार्सडन तथा अन्य अंग्रेज एवं विदेशी लेखकों द्वारा भारत का अपमान, यहाँ की वीरता और गौरव पर व्यङ्ग देख उनका मन तिलमिला उठा था। अपने पूर्वजों और समाज से वीरात्माओं के प्रति जो यश और शौर्य-गान सुना था, किंवदंतियों ने उनके हृदय पर जो कोमल प्रभाव डाला था, उसके विपरीत विदेशी लेखकों की पुस्तकों ने गहरी प्रतिक्रिया उत्पन्न की। फलतः उनके उपन्यासों में सच्ची घटनाओं और कथाओं के द्वारा सत्य ही दृढ़तापूर्वक समाज के सम्मुख उपस्थित हुआ है। वर्माजी ने बुन्देलखण्ड की लोक-कथाओं, किंवदंतियों और इतिहास की बड़ी गहराई और ईमानदारी से छान-बीन की है। वहाँ की जीवित आत्मा का दर्शन उनके कई उपन्यासों में बिलकुल स्पष्ट लक्षित होता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के प्रति वर्माजी की गहरी आस्था का मूल कारण यही कि वे भारतीय समाज के सत्य-ज्ञान निमित्त उन तथ्यों को नहीं भूलते, जिनसे निराधार उत्पन्न की गई विदेशी इतिहास लेखकों की भ्रामकता पाठकों के सम्मुख प्रकट हो जाय

उपर्युक्त तत्त्वों और प्रेरणा-स्रोतों के कारण वर्माजी सर्वप्रथम जीवनी साहित्य पर दत्तचित्त हुए। परन्तु फिर समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ने की भावना से उपन्यास, कहानी, नाटक आदि का माध्यम अपनाया। स्कॉट की पुस्तकों ने भी इसी दिशा की ओर संकेत किया था, जैसा कि

उर्दू का वह युगान्तकारी कहानीकार

देवेन्द्र इस्सर

'यहाँ वह है, जिसके सीने में अफसाना-निगारी के सारे रहस्य और मर्म दफन हैं। वह अब भी मनों मिट्टी के नीचे सोच रहा है कि वह बड़ा अफसाना-निगार है या खुदा।'

मन्टो की इच्छा थी कि उसकी अपनी कब्र पर यही लिखा हो। यह अहंकार नहीं था कि वह अपने को खुदा से भी बड़ा कहानीकार समझता था। बल्कि यह आत्मविश्वास की वह मंजिल है जहाँ सर्जन की व्यथा को अपनी शिराओं में महसूस करनेवाला कोई स्रष्टा ही पहुच सकता है।

उसका साहित्यिक जीवन 'ला मिजराब' और गोर्की की उन कहानियों के अनुवाद से शुरू हुआ जो मनुष्य के दुखी जीवन की गाथा थीं। 'आतिशपारे' में संगृहीत मन्टो की मौलिक कहानियों से भी यही पता चलता है कि उसने शुरू से ही आदमजाद के दुखदर्द में निजी दुखदर्द महसूस किया। आदमी पर आदमी द्वारा होने वाले अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध उसकी विद्रोही आत्मा चीत्कार कर उठी। मन्टो ने यह वेदना और विद्रोह किसी राजनीतिज्ञ या दार्शनिक की हैसियत से नहीं महसूस किये। यह तो एक संवेदनशील लेखक की प्रतिक्रिया थी, जिसकी अभिव्यक्ति का माध्यम था—उसकी कहानियाँ। रूढ़िग्रस्त जर्जर समाज से उसका विद्रोह कोई सैद्धान्तिक परिणाम नहीं था। उसमें इतना धैर्य ही नहीं था कि वह अन्याय और अत्याचार को सहे। इसीलिये वह कहानियों द्वारा चिल्लाया और सदियों से सोयी आत्माओं को झकझोरने के लिए उर्दू साहित्य में 'आतंककारी' बन उठा।

मन्टो के कमरे में उसके कठोर पिता का फोटो और भगतसिंह, जॉन क्राफर्ड और मारलिन वेतरिख के चित्र टंगे रहते थे और मन्टो अपने मित्र और गुरु समाजवादी लेखक बारी के साथ वॉल्तेयर, रूसो, मार्क्स, लेनिन, ट्रॉट्स्की, स्तालिन और गोर्की के बारे में तर्क-वितर्क किया करता था। क्रांति और विद्रोह की भावना मन्टो की अशान्त आत्मा के लिये अनिवार्य थी। उसने स्पष्ट कहा कि 'हमारे खलीफा-

प्रसिद्ध कहानीकार कृष्णचन्द्र ने भी मन्टो के बारे में क्या खूब कहा है :—

'मन्टो उर्दू साहित्य का अद्वितीय शंकर है जिसने जिन्दगी के जहर (कालकूट विष) को घोलकर पिया है और फिर उसके जायके का, उसके रंग का खुलासा बयान किया है। लोग बिदकते हैं, मगर उसके अनुभव की सत्यता और उसके ज्ञान की सच्चाई से इनकार नहीं कर सकते। जहर खाने से अगर शंकर का गला नीला हो गया था तो मन्टो ने भी अपना स्वास्थ्य गंवा लिया है। उसकी जिन्दगी इंजेक्शनों की मुहताज होके रह गई है। वह जहर मन्टो ही पी सकता है और कोई दूसरा होता तो उसका दिमाग ही चला जाता। मगर मन्टो के दिमाग ने जहर को भी हजम कर लिया है।' उन दरवेशों की तरह, जो पहले गांजे से शुरू करते हैं और आखिर में संखिया खाने हैं और सांपों से अपनी जबान डसवाने लगते हैं। मन्टो के साहित्य की तेजी, तुन्दी और उसकी जुबान की नश्तरजनी इस सत्य को व्यक्त करती है कि मन्टो की योग-साधना अन्तिम मन्जिल पर पहुंच चुकी है।'

कहानी-कला पर मन्टो का पूरा अधिकार था। यथार्थ, सहजता, घटनाओं का क्रमबद्ध होना, शब्दों का प्रयोग, उसके नये अर्थ, अछूती उपमायें, गद्य का सौंदर्य और कुशल चरित्र चित्रण मन्टो की कला के गुण हैं। इसकी कहानियों का प्रारम्भ पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और अन्त उसे आश्चर्य में डाल देता है।

मन्टो ने जीवन का लम्बा सफ़र तै किया। अमृतसर की गलियों में आवारगी, फिल्मी दुनिया में कहानियाँ और अभिनय, ऑल इंडिया रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन, क्षय-रोग, न्यायालयों के चक्कर, भूख, पागल-खाना और अन्त में अधिक मदिरा पान से मृत्यु! सच पूछिए तो मन्टो की सारी जिन्दगी एक प्रयोगशाला थी जिसमें मन्टो ने स्वयं अपने हाथों अपनी क़लम के नश्तर से अपने दिल, अपनी आत्मा और अपने शरीर पर प्रयोग किये और इनसे जो 'ट्रैजिक' निष्कर्ष निकले, उन्हें कहानियों का रूप दे दिया।

हम अगर हसन अस्करी के शब्दों में कहें तो :—'मन्टो उर्दू का सब से बड़ा कहानीकार है और इसे योरप के श्रेष्ठ कहानीकारों की तुलना में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि मन्टो मोपासां के बराबर नहीं पहुँच सका तो इसमें उतना दोष मन्टो का नहीं था जितना उर्दू की कि उस साहित्यिक परम्परा का, जिसमें कि वह पैदा हुआ था।'

'समर्थ करता है और असमर्थ उपदेश देता है।'

—बर्नर्ड शा

दरबारी

श्री रमापद चौधरी

जुलाई ५७ के कहानी विशेषांक में श्री चौधुरी की एक अनूदित कहानी अनुवादक की गलती से उनकी जानकारी के बिना ही छपी थी, जिसके लिए हम दुखी हैं। अब इस प्रसिद्ध कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर हम उनकी रजामन्दी से सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं।

लासरा के स्टेशन-मास्टर रजनी बाबू की शिकायतों का अन्त न था। वे मन ही मन बड़बड़ाते रहते और कोई भी श्रोता मिलते ही सारा का सारा मलाल निकाल लेते! 'हाय रे नसीब! दिन-रात हरी बत्ती ही दिखानी पड़ती है। जब देखो तब सिगनल झुका ही रहता है। ठहरनेवाली सिर्फ गाड़ियाँ हैं—अप और डाउन।'

लासरा में उस समय दो चार यात्री उतरते, दो-चार यात्री टिकट खरीदते। सो भी तीसरे दर्जे के। स्टेशन से डेढ़ मील के फासले पर थी हरिजन-बस्ती। यात्री तो दूर की बात, छपे टिकट भी नहीं बिकते थे उस समय।

एक दिन सेकेण्ड क्लास से उतरे एक पागल साहब।

पागल मालूम होते हों या नहीं उनके प्रथम दर्शन से ही हृदय कंपित हो कैसी तरह टोपी पहन, काले कोट के बटन लगाते लगाते हाजिर हो गये रजनी ...क तो यूरोपियन साहब उस पर रेल का कोई उच्च पदाधिकारी है या नहीं ...ही जाने!

रजनी बाबू के सलाम करते ही साहब ने अधरों की दरार में सिगरेट पकड़, ...ढंग से अस्पष्ट शब्दों में कहा, 'स्टेशन मास्टर टुम? क्या नाम?'

रजनी बाबू के नाम बताने के साथ ही साथ साहब बोल उठा: टुम हामारा होगा—फ्रेण्ड, हाम आउर टुम फ्रेण्ड।

'यस् सर, सर्टेनली सर, वेरी लकी सर।' विनय से पिघल आत्मविभोर हाथों को मलते-मलते रजनी बाबू ने उत्तर दिया।

और साहब ने अपनी ओर संकेत कर कहा था, हाम मैक्डास्कि हाय, माइ जोनायन मैक्डास्कि। ये जागा देखने आया हाम, इधार रहने मांगटा। मेक ए नाईस लिटिल होम फॉर मी। बहुत ब्यु—ब्यु—बिऊटिफुल प्लेस हाय! करेगा, आबाद करेगा।

प्रसिद्ध कहानीकार कृष्णचन्द्र ने भी मन्टो के बारे में क्या खूब कहा है :—

'मन्टो उर्दू साहित्य का अद्वितीय शंकर है जिसने जिन्दगी के जहर (कालकूट विष) को घोलकर पिया है और फिर उसके जायके का, उसके रंग का खुलासा बयान किया है। लोग बिदकते हैं, मगर उसके अनुभव की सत्यता और उसके ज्ञान की सच्चाई से इनकार नहीं कर सकते। जहर खाने से अगर शंकर का गला नीला हो गया था तो मन्टो ने भी अपना स्वास्थ्य गंवा लिया है। उसकी जिन्दगी इंजेक्शनों की मुहताज होके रह गई है। वह जहर मन्टो ही पी सकता है और कोई दूसरा होता तो उसका दिमाग़ हो चला जाता। मगर मन्टो के दिमाग ने जहर को भी हजम कर लिया है।' उन दरवेशों की तरह, जो पहले गांजे से शुरू करते हैं और आखिर में संखिया खाने हैं और सांपों से अपनी जबान डसवाने लगते हैं। मन्टो के साहित्य की तेजी, तुन्दी और उसकी जुबान की नश्तरजनी इस सत्य को व्यक्त करती है कि मन्टो की योग-साधना अन्तिम मन्जिल पर पहुंच चुकी है।'

कहानी-कला पर मन्टो का पूरा अधिकार था। यथार्थ, सहजता, घटनाओं का क्रमबद्ध होना, शब्दों का प्रयोग, उसके नये अर्थ, अछूती उपमायें, गद्य का सौंदर्य और कुशल चरित्र चित्रण मन्टो की कला के गुण हैं। इसको कहानियों का प्रारम्भ पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और अन्त उसे आश्चर्य में डाल देता है।

मन्टो ने जीवन का लम्बा सफ़र तै किया। अमृतसर की गलियों में आवारागी, फिल्मी दुनिया में कहानियाँ और अभिनय, ऑल इंडिया रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन, क्षय-रोग, न्यायालयों के चक्कर, भूख, पागल-खाना और अन्त में अधिक मदिरा पान से मृत्यु! सच पूछिए तो मन्टो की सारी जिन्दगी एक प्रयोगशाला थी जिसमें मन्टो ने स्वयं अपने हाथों अपनी क़लम के नश्तर से अपने दिल, अपनी आत्मा और अपने शरीर पर प्रयोग किये और इससे जो 'ट्रैजिक' निष्कर्ष निकले उन्हें कहानियों का रूप दे दिया।

हम अगर हसन असकरी के शब्दों में कहें तो :—'मन्टो उर्दू का सब से बड़ा कहानीकार है और इसे योरप के श्रेष्ठ कहानीकारों की तुलना में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि मन्टो मोपासां के बराबर नहीं पहुँच सका तो इसमें उतना दोष मन्टो का नहीं था जितना उर्दू की कि उस साहित्यिक परम्परा का, जिसमें कि वह पैदा हुआ था।'

● ● ●

'समर्थ करता है और असमर्थ उपदेश देता है।'

—बर्नर्ड शा

श्री रमापद चौधरी

'सुप्रभात' ४७ के कहानी विशेषांक में श्री चौधुरी की एक अनूदित कहानी अनुवादक की गलती से उनकी जानकारी के बिना ही छपी थी, जिसके लिए हम दुःखी हैं। अब इस प्रसिद्ध कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर हम उनकी (सम्मति) से सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं।

लालटा के स्टेशन-मास्टर रजनी बाबू की शिकायतों का अन्त न था। वे मन ही मन बड़बड़ाते रहते और कोई भी श्रोता मिलते ही सारा का सारा गुबार निकाल देते! 'हाय रे नसीब! दिन-रात हरी बत्ती ही दिखानी पड़ती है। जब देखो तब सिगनल झुका ही रहता है। ठहरनेवाली सिर्फ गाड़ियाँ हैं—अप और डाउन।'

लालटा में उस समय दो चार यात्री उतरते, दो-चार यात्री टिकट खरीदते। सो भी तीसरे दर्जे के। स्टेशन से डेढ़ मील के फासले पर थी हरिजन-बस्ती। यात्री तो दूर की बात, दूसरे टिकट भी नहीं बिकते थे उस समय।

एक दिन सेकण्ड क्लास से उतरे एक पागल साहब।

पागल मालूम होते हों या नहीं उनके प्रथम दर्शन से ही हृदय कंपित हो उठा। किसी तरह टोपी पहन, काले कोट के बटन लगाते लगाते हाजिर हो गये रजनी बाबू। एक तो यूरोपियन साहब उस पर रेल का कोई उच्च पदाधिकारी है या नहीं, कौन ही जाने!

रजनी बाबू के सलाम करते ही साहब ने अधरों की दरार में सिगरेट पकड़, साहबी ढंग से अस्पष्ट शब्दों में कहा, 'स्टेशन मास्टर तुम? क्या नाम?'

रजनी बाबू के नाम बताने के साथ ही साथ साहब बोल उठा: तुम हामारा होस्ट होगा—फ्रेण्ड, हाम आउर तुम फ्रेण्ड।

'यस् सर, सर्टेनली सर, वेरी लकी सर।' विनय से विगलित आत्मविभोर हो हाथों को मलते-मलते रजनी बाबू ने उत्तर दिया।

और साहब ने अपनी ओर संकेत कर कहा था, हाम मैक्डानल्ड हाय, आइ ऐम जोनाथन मैक्डानल्ड। ये जागा देखने आया हाम, इधार रहने मांगटा। वान्ट टु मेक ए नार्मल लिविंग होम फॉर मी। बहुत सु—सु—बिउटिफुल प्लेस हाय! फार्मिंग—करेगा, आबाद करेगा।

प्रसिद्ध कहानीकार कृष्णचन्द्र ने भी मन्टो के बारे में क्या खूब कहा है :—

'मन्टो उर्दू साहित्य का कतिपय शंकर है जिसने जिन्दगी के जहर (कालकूट विष) को घोलकर पिया है और फिर उसके जायके का, उसके रंग का खुलासा बयान किया है। लोग बिदकते हैं, मगर उसके अनुभव की सत्यता और उसके ज्ञान की सच्चाई से इनकार नहीं कर सकते। जहर खाने से अगर शंकर का गला नीला हो गया था तो मन्टो ने भी अपना स्वास्थ्य गंवा लिया है। उसकी जिन्दगी इंजक्शनों की मुहताज होके रह गई है। वह जहर मन्टो ही पी सकता है और कोई दूसरा होता तो उसका दिमाग ही चला जाता। मगर मन्टो के दिमाग ने जहर को भी हजम कर लिया है।' उन दरवेशों की तरह, जो पहले गांजे से शुरू करते हैं और आखिर में संखिया खाते हैं और सांपों से अपनी जबान डसवाने लगते हैं। मन्टो के साहित्य की तेजी, तुन्दी और उसकी जुबान की नश्तरजनी इस सत्य को व्यक्त करती है कि मन्टो की योग-साधना अन्तिम मन्जिल पर पहुंच चुकी है।'

कहानी-कला पर मन्टो का पूरा अधिकार था। यथार्थ, सहजता, घटनाओं का क्रमबद्ध होना, शब्दों का प्रयोग, उसके नये अर्थ, अछूती उपमायें, गद्य का सौंदर्य और कुशल चरित्र चित्रण मन्टो की कला के गुण हैं। इसकी कहानियों का प्रारम्भ पाठक को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और अन्त उसे आश्चर्य में डाल देता है।

मन्टो ने जीवन का लम्बा सफर तै किया। अमृतसर की गलियों में आवारगी, फिल्मी दुनिया में कहानियाँ और अभिनय, ऑल इंडिया रेडियो, पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन, क्षय-रोग, न्यायालयों के कटघर, भूख, पागल-खाना और अन्त में अधिक मदिरा पान से मृत्यु। सच पूछिए तो मन्टो की सारी जिन्दगी एक प्रयोगशाला थी जिसमें मन्टो ने स्वयं अपने हाथों अपनी क़लम के नश्तर से अपने दिल, अपनी आत्मा और अपने शरीर पर प्रयोग किये और इससे जो 'ट्रैजिक' निष्कर्ष निकले उन्हें कहानियों का रूप दे दिया।

हम अगर हसन असकरी के शब्दों में कहें तो :—'मन्टो उर्दू का सब से बड़ा कहानीकार है और इसे योरप के श्रेष्ठ कहानीकारों की तुलना में प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि मन्टो मोपासां के बराबर नहीं पहुँच सका तो इसमें उतना दोष मन्टो का नहीं था जितना उर्दू की कि उस साहित्यिक परम्परा का, जिसमें कि यह पैदा हुआ था।'

● ● ●

'समर्थ करता है और असमर्थ उपदेश देता है।'

—बर्नर्ड शा

दरबारी

श्री रमापद चौधरी

जुलाई '५७ के कहानी विशेषांक में श्री चौधुरी की एक अनूदित कहानी अनुवादक की गलती से उनकी जानकारी के बिना ही छपी थी जिसके लिए हम दुःखी हैं। अब इस प्रसिद्ध कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर हम उनकी रजामन्दी से सहर्ष प्रकाशित कर रहे हैं।

लानरा के स्टेशन-मास्टर रजनी बाबू की शिकायतों का अन्त न था। वे मन ही मन बड़बड़ाते रहते और कोई भी मौका मिलते ही सारा का सारा मलाल निकाल देते! 'हाय रे नसीब! दिन-रात हरी बत्ती ही दिखानी पड़ती है। जब देखो तब सिगनल झुका ही रहता है। ठहरनेवाली सिर्फ गाड़ियाँ हैं—अप और डाउन।'

लानरा में उस समय दो चार यात्री उतरते, दो-चार यात्री टिकट खरीदते। सो भी तीसरे दर्जे के। स्टेशन से डेढ़ मील के फासले पर थी हरिजन-बस्ती। यात्री तो दूर की बात, छपे टिकट भी नहीं बिकते थे उस समय।

एक दिन सैकेण्ड क्लास से उतरे एक पागल साहब।

पागल मालूम होते हों या नहीं उनके प्रथम दर्शन से ही हृदय कंपित हो उठा। किसी तरह टोपी पहन, काले कोट के बटन लगाते लगाते हाजिर हो गये रजनी बाबू। एक तो यूरोपियन साहब उस पर रेल का कोई उच्च पदाधिकारी है या नहीं, कौन ही जाने!

रजनी बाबू के सलाम करते ही साहब ने अधरों की दरार में सिगरेट पकड़, साहबी ढंग से अस्पष्ट शब्दों में कहा, 'स्टेशन मास्टर टुम? केया नाम?'

रजनी बाबू के नाम बताने के साथ ही साथ साहब बोल उठा: टुम हामारा होस्ट होगा—फ्रेंड, हाम आउर टुम फ्रेंड।

'यस् सर, सर्टेनली सर, वेरी लकी सर।' विनय से पिघल आत्मविभोर हो हाथों को मलते-मलते रजनी बाबू ने उत्तर दिया।

और साहब ने अपनी ओर संकेत कर कहा था, हाम मैकडानिक हाय, आइ ऐम जोनाथन मैकडानिक। ये जागा देखने आया हाम, इधार रहने मांगटा। वान्ट टु मेक ए नाईस लिटिल होम फॉर मी। बहुत बु—बु—बिऊटिफुल प्लेस हाय! फार्मिंग—करेगा, आबाद करेगा।

रजनी बाबू तब तक निर्भय हो उठे, बोले, 'वेरी गुड सर, वेरी गुड सीनरी, वण्डरफुल साइट सर।

पागल साहब की बातें सुन वे मन ही मन हँसे—दो दिन धीरज धरो मियाँ, आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।

टेरिटि बाजार के बारमन से ले बर्दवान रोड की मिसेस कार्क पर्यन्त सबों ने राय जाहिर की थी—सिली आइडिया। अतएव फिर रजनी बाबू ही क्यों न हँसें!

परन्तु पागल साहब ने सचमुच एक पहाड़ से सटकर कुछ बीघे जमीन खरीदी। एक सुन्दर बंगला बना डाला। रांची से आये राजमिस्त्रियों को कुछ कट्ठे जमीन देनी चाही जोनाथन साहेब ने, पर इस निर्जनता में स्वेच्छा से द्वीपान्तर भोग करना कौन चाहता है! वे जैसे आये थे वैसे ही लौट गये। रह गये केवल जोनाथन मैकडामिक और रजनी बाबू।

स्टेशन घर में बैठ टेलिग्राफ से विरक्त हो बीच में 'टेरे टोक्का टेरे टोक्का' करना और किशनलाल से बातें करना यही काम था रजनी बाबू का। उस दिन भी इसी तरह बातें हो रही थीं, जोनाथन को लेकर। ऐसे समय मैकडामिक स्वयं ही आ उपस्थित हुआ। सारा शरीर भीग गया था, लाल ललाट पर लटक रहा था मैकेट की मोति टेढ़े बालों का एक गुच्छा। कीचड़ से गंदे हो गये थे पांव।

मैकडामिक को देख रजनी बाबू को होश हुआ, बाहर रिम-झिम पानी बरस रहा है। पहाड़ी स्थान पर जब वर्षा आती है तब लगता है कि आसमान-भेद पर बाद आ गई हो, और उसके बाद ही प्रचण्ड धूप। घर से निकलने पर सोचा रजनी बाबू ने, बीच रास्ते में ही शायद बारिश आरम्भ हो गयी हो।

जैसे बैठे थे वैसे ही रजनी बाबू बोले—यह क्या हुआ साहब? बरसाती लेकर नहीं निकले?

'दिस इज रेन बाथ। पानी में अस्नान किया।' पीली दन्तावलि की एक पंक्ति निकाल हँसे साहेब। इसके बाद एक टूल खींच बैठ गये।

रजनी बाबू ने कहा, 'बैठो साहब बैठो, बरसात रुक जाने दो—चाय पिला दूँगा आज आपको।'

—टी?—
एक आँख मा
इशारे से व
'पियेगा आ
अच्छा!
दिन महुवा
शराब पी ली
नशा लग गय
—नहीं न
रजनीबाबू?' व

में भूल हो गयी थी रजनी बाबू की। एक दिन सचमुच शोनिया से शादी कर बैठा जोनाथन। सो भी एकबारगी मुण्डाओं की आवश्यक रीति से।

शादी की रात बस्ती की सारी माटी भीग गयी महुवा की शराब से। तीन दिन तक शराब में चूर हो पड़े रहे बस्ती के जवान। केवल जवान क्या लड़कियाँ भी, जो केशों में पलाश गूँथ, सर पर कलशी रख, उनके साथ नाचीं थीं, नशे में चूर हो पड़ी रहीं।

देश-विदेश जहाँ जितने बन्धु-बान्धव आत्मीय स्वजन थे, जोनाथन ने सबको पत्र लिखा: 'एकाएक शादी कर बैठा हूँ। मिसेज मैकक्लास्कि से अगर मिलना चाहते हो तो लौटती ट्रेन से अविलम्ब लापरा चले आओ।'

चिट्ठियाँ तो अनेक छोड़ी गयी थीं—पर आने वालों में ये केवल दो पत्त ही थे। रांची के छोटे गिर्जाघर के रेवरेण्ड ब्राउन, आजानु लम्बा काला अंगरखा पहन, रेक्सिन की दफ्तीं चढ़ी पुरानी बायबेल हाथ में लिये, पूरे लेन्स का चश्मा चढ़ा एक दूसरे डिब्बे से उतरीं थीं अर्द्ध-वृद्धा मेम मिसेस कैसल, अठारह वर्ष की पतोरा व हाफ पैन्ट पहने दो छोटे बच्चों को लिये। दोनो पत्त ही इधर-उधर देख, विरक्त हो, आगे की ओर अग्रसर हुए।

'मि० मैकक्लास्कि का मकान कहाँ होगा, क्या बता सकते हैं?' परन्तु बाद में दोनो ही जान गये वे दोनों ही नवागत हैं। अतएव स्टेशन मास्टर की ओर गये बिना गत्यन्तर न था।

रजनी बाबू को सामने पा वृद्धा मिसेस कैसेल ने कहा, 'मिस्टर मैकक्लास्कि ने हम-लोगों के लिये गाड़ी भेजी होगी अवश्य?'

रजनी बाबू ने कहा, 'नहीं, गाड़ी तो नहीं भेजी।'

'देन? हाउ फार इज इट''''''टू माइल्स?' दबा क्रोध एवम् विस्मय प्रगट किया रेवरेण्ड ब्राउन ने। मिसेस कैसल ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा: 'आदमी भेज दीजिये, गाड़ी लेकर आवे। 'कार' न न भेजने से एक कदम भी पैदल नहीं आ सकूँगी।'

रजनी बाबू ने समर्थन किया उनका, और किशनलाल को खबर देने को ऑर्डर दिया। घन्टे भर स्टेशन-घर में बैठकर ही

प्लॅटफॉर्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अनुसन्धानी दृष्टि से देखते हुए गाड़ी से उतरे थे। तथा

इस ! लिविंग, बोथ ऑफ देम् !''''''कम इन्, लेट अस हैव टी !'

कहकर अग्रसर हुआ वह। रजनी बाबू ने देखा, फ्लोरा और दोनों बच्चे बरामदे में तितली पकड़ने का प्रयत्न करते हँस-हँस कर लोट-पोट हुए जा रहे हैं।

बाहर के बरान्दे में बैठ पागल साहब ने मुस्करा कर सचमुच एक विलायती शराब की बोतल दिखाई।

'तीन बोतल पिया, टु ऑफ देम्।' कहकर ही ढकना खोल दिया, और एक तीव्र दुर्गन्ध ने रजनी बाबू की घ्राणेन्द्रिय का स्पर्श कर उन्हें अवगत करा दिया, सड़ी हुई महुआ को ही विलायती कहकर चला दिया है साहब ने !

मुण्डा बस्ती का सर्दार मागडा त्यौहार का आमन्त्रण देने आ गया—साहबों का दल भी जावेगा शायद त्यौहार देखने !

इस लिये संन्ध्या समय मुण्डा के एक छोकड़े ने आकर सूचना दी ! 'पागल साहब ने सलाम दिया है, चाय का न्यौता है उनके घर पर।' 'रजनी बाबू उद्विग्न हो उठे' 'कहीं कोई आफत न पैदा कर बैठे।' और उसी डर से जाऊँ या न जाऊँ सोचते हुए भी अन्त में जाना ही पड़ा उन्हें।

आस-पास की सभी बस्तियों से मुण्डाओं के दल आ-आकर एकत्र हुए थे मागडा के मैदान में। दलों के हाथों में अलग-अलग एक विचित्र चिन्हित पताका। रजनी बाबू को याद आया, एक बार दो-दलों का चिन्ह एकसा हो जाने के कारण, क्या खूना-खूनी न हुई थी। वह बात समझा दी रजनी बाबू ने रेवरेंड ब्राउन को।

उनकी गलत अंग्रेजी एवम् हास्यकर उच्चारण सुन, मुँह फेर कर हँसती रही फ्लोरा।

मैदान के एक कोने में था महादेव का स्थान। वहाँ से अजस्र नील-लता एक लड़की का तरुना भक्तिपूर्वक सर पर रख ले आये भक्तगण। शोनिया ने हाथ वक्ष से लगा, जमीन पर मस्तक टेक प्रणाम किया। कहा उसने : फारती, अर्थात् पार्वती। मैदान के मध्य से महादेव के अ-स्थान तक एकाएक मस्तक नतकर बैठ गयी भक्त-मंडली। और रमयेन गोसाईं धरती को न छूकर भक्तों के कन्धों पर पैर रखते हुए महादेव के अस्थान तक जा पहुँचे।

यह देख रेवरेंड ब्राउन कह उठे : 'हॉरिबल् !'

मिसेस कैसर्ल बोलीं : इनह्यूमन !

फ्लोरा ने कहा, 'हाऊ स्पोर्टिंग !'

आँखे गोल-गोलकर कहा बच्चों ने : 'इण्डियन सर्कस् !' परन्तु इसके बाद भी चलेस्ति होने का दृश्य बाकी था, रेवेरण्ड ब्राउन यह नहीं जानते थे।

काँधना समाप्त हो फूल-कूदना आरम्भ होते तक रात हो आई। काफी जगह लेकर लकड़ी-कोयले की आग जलाई गयी, भक्तों ने चारों ओर बैठ खूब डारा हवा कर उसे खूब तेज कर डाला।

अब गोसाईं ने आगे बढ़कर मन्त्रपाठ किया। फिर सद्य-स्नात भक्त भीगे कपड़े पहने कतार बाँधे खड़े हो गये धधकते कोयलों के पास। और फिर एक के बाद एक

माईड्यूरी के डाक-बंगले पर सीपी व लकड़ी के काम की चीजें बेचने वाले की बंगले के बैरे के साथ मित्रता, ताकि वह बंगले में रहनेवालों को सामान बेच सके।

जारिया में अमीर के महल के दरवाजे पर जी-हुजूरों की भीड़।

काटसीना की मस्जिद के सामने एक सुसज्जित अफ्रीकी की मांग—'मेरा चित्र उतारना चाहते हो, तो पैसे लाओ। वरना चित्र नहीं उतारने दूँगा।'

कानो में जनरल-मर्चेंट्स की एक दूकान के ऊपर भारतीयों के घर—पंजाबी, सिंधी, व गुजराती भाइयों द्वारा भारतीय आतिथ्य-सत्कार।

न्यूयार्क की चौतीसवीं सड़क पर एक सात फुट लम्बा हबशी, जो एक ऊँची कुर्सी और पालिश का सामान उठाकर रोज सुबह आता है और रोज शामको चला जाता है।

शिकागो के होटल शर्मन की छत पर पार्टी, जिसमें एक सज्जन दूसरे सज्जन से कह रहे हैं—'यह पार्टी होटल में रहनेवालों के लिए नहीं है। आप यह कैसे समझे कि हर एक व्यक्ति, जो इस होटल में ठहरा है, हमने आमंत्रित किया है।'

वाशिंगटन में जेफर्सन मेमोरियल के अंदर बुत के चारों ओर गोल दीवार पर खुदे कुछ शब्द : 'हम इन सत्यों को स्वयं-सिद्ध मानते हैं : कि मनुष्य जन्म से न छोटा है न बड़ा—और जीवन, स्वतंत्रता और आनन्द का अनुकरण उसके ऐसे अधिकार हैं जिन्हें कोई नहीं छीन सकता।'

बफलो शहर, जिसके होटल के कमरे से मेरे कुछ कपड़े गायब हुए और मेरे जाने के दिन फिर वापस लौट आए।

नियागारा फाल्स में ग्यारह वर्ष का गोरा बालक जो बूट-पालिश के लिए, आने-जानेवालों को बुलाता था, और जिसने मेहनत के साथ मेरे जूतों पर लगा कीचड़ छुड़ाया।

लंदन की सड़क पर अधेड़ उम्र महिला कोट पहिने और हाथ में बेग उठाए हुए जिसने मुझे बुलाकर डांटा : 'मैं उसे घू क्यों रहा हूँ ?'

ग्लासगो—जहां के लोग अंग्रेज हो से इनकार करते हैं, क्योंकि वे स्काटलैं निवासी हैं, और इसका उन्हें गर्व है।

एम्स्टर्डम शहर, जो नहरों के आसपा बसा है और जहां फूलों का बाजार स बहार रहता है—जिसके एक बूढ़े निवा ने अपनी चाय पास पड़े मेज-पर रख और मेरे साथ चल पड़ा ताकि मैं भटक जाऊँ और निश्चित स्थान पर आसा से पहुँच जाऊँ।

उत्रेख्त की बस पर एक सज्ज जिन्होंने मुस्करा कर कहा—'आप भारत आए हैं ? पिछले वर्ष मैं भारत गया था-आपके लोग बहुत ही भले हैं, मैं उन कृपा को कभी नहीं भूल सकता।'

दि हेग के भीड़ से खचाखच पोस् आफिस में एक युवती, जिसने मे आवश्यकताओं को डच भाषा में व्यक्त क मेरा धर्मसंकट दूर किया।

फ्रैंकफर्ट में मेन-नदी का किनारा जहां बूढ़े व जवान, युवक व युवतियां

बालक व बालिकाएं घूमते दिखाई देते हैं और पानी पर तैरती दो अलग अलग नावों पर बैठे दो बालक आपस में झगड़ रहे हैं।

मैं मन की झील के किनारे घास पर लेटे लड़के व लड़कियां, जो कागज में लिपटी चीजें खाते हैं, और पैर हवा में उठाकर घास पर लेटते हैं—क्योंकि इसकी हिदायत दी गई है—जिससे घास खराब न हो।

हैम्बर्ग का व्यापारी बंदरगाह, जहां आलीशान दूकान के पास मैंने एक बूढ़ी स्त्री को देखा, जो एक बालक से फल छीनकर खा रही थी—लिप्सा के साथ, भूख की क्रूर भावना के साथ, बच्चों जैसे शौक के साथ।

बर्लिन में टैक्सी ड्राइवर, जिसने टैक्सी के मीटर को दो बार बंदकर मुझे लूटा।

मास्को में इकेना होटल की एक बूढ़ी महिला जिसे खाना खाने के बाद मैंने पैसे देने से इनकार किया, क्योंकि मेरे पास रूसी पैसे नहीं थे, पर जिसने धैर्य के साथ रूसी भाषा में मेरे साथ संभाषण जारी रखा।

अनेक नगर, मगर एक जीवन।
अनेक देश, एक इंसान।

❂

५ अप्रैल सन् १९५७ की सुबह।

मैं अपने परिवार के साथ कार में बैठा बम्बई के हवाई अड्डे सांताक्रूज की ओर जा रहा था। मेरी पत्नी व मेरी अढ़ाई वर्ष की बच्ची मेरे साथ थीं। मेरी मा व मेरे पिताजी भी मेरे साथ थे। मगर मैं उनके साथ नहीं था—मैं जा रहा था—दूर, बहुत दूर, संसार के छोरों पर मेरा मस्तिष्क अभी से मंडरा रहा था।

मैं बातें कर रहा था। कभी बच्ची से, कभी पिताजी से, कभी मा से, कभी पत्नी से!

'चिट्ठी जरूर लिखना!'

'अपने पहुँच की तार देना। खर्च अवश्य होगा, मगर हमें सांत्वना रहेगी।'

'तुमने टिकट व पासपोर्ट निकाल लिया है ना?'

'अब तुम चले जाओगे! —छः महीने के लिए।'

बड़ों की संजीदगी का बच्ची पर भी प्रभाव दिखाई दे रहा था। वह चुप थी, रोज की तरह उसकी जबान नहीं चल रही थी।

सांताक्रूज के हवाई अड्डे पर अधिक भीड़ नहीं थी। हम समय से काफी पहले पहुँच गए थे। सामान तुलवाकर हमने अधिकारियों के हवाले किया और चाय पीने रेस्तराँ में जा बैठे।

मेरे भाई व भावजें भी आ पहुँचीं। भाइयों ने गरमजोशी से हाथ मिलाया, भाभियों ने नमस्ते के बाद चुहल की, दो-चार बातें कीं। चाय में मेरा मन नहीं था, मगर सभ्यता के नाते मैं चुपचाप चाय पी रहा था।

हवाई अड्डे पर भीड़ बढ़ती गयी।

आखिर बुलावा आया, और एक टिकट दिखाई,

हैल्थ-सर्टिफिकेट दिखाया। कस्टमवालों ने मेरा सामान तुलवाया, मुझसे फॉर्म भरवाए, मेरा कैमरा वापस लाने के लिए रसीद भरकर मुझे दी—और जब यह सब समाप्त हुआ, तो मैं कटघरे के दूसरी ओर से अपने परिवार को देख रहा था।

अब मैं उनसे हाथ नहीं मिला सकता था। मेरे व उनके बारजों के बीच पाँच फुट की जमीन थी।

मगर बचपन यह दूरी नहीं मानता—मेरी बच्ची मेरे पास आने के लिए ललकने लगी। छोटे भाई की गोद से उछलने लगी। मैंने हाथ बढ़ाकर उसके नन्हे हाथों को अपने हाथ में ले लिया। बच्ची रो पड़ी। छोटे भाई ने कुछ देर उसे पुचकारा और फिर नीचे उतार दिया।

बचपन दूरी नहीं मानता, प्रतिबन्ध नहीं मानता। बच्ची कटघरे पारकर मेरे पास आ गई। मेरी गोद में चढ़ गई।

मेरा अन्तर प्रसन्न हुआ। मगर लोक-लज्जा के वश, कस्टम के आदेशों के अनुसार, यह गलत था। मैंने बच्ची को कटघरे के बीच खड़ा कर दिया। काफी कठिनाई से, लालच देकर बच्ची को मां व भाइयों ने बुलाया।

लाउड स्पीकर पर आवाज आई—'एयर इण्डिया इंटरनेशनल अदन के रास्ते नैरोबी के लिए रवाना होनेवाले जहाज के प्रस्थान की घोषणा करता है।'

लोग हवाई जहाज की ओर बढ़ने लगे, मैंने सब को हाथ जोड़ दिए—माता-पिता को जिनके चेहरों पर दुख और प्रसन्नता के मिले-जुले भाव थे; भाइयों-भाभियों को जो मेरी यात्रा के उत्साह से भरपूर थे, मेरी पत्नी को, जो मनौती मानती आई थी कि मैं जल्दर लाऊँ मगर अब उदास थी। अबोध दोनों बच्चों को मैंने हाथ हिलाकर दिलासा दिया और भीड़ के पीछे चल पड़ा। सब से आगेवाले स्त्री-पुरुष सीढ़ियों के ऊपर पहुँच चुके थे और खुले दरवाजे के अन्दर प्रविष्ट हो रहे थे।

सीढ़ियों के ऊपर, दरवाजे के पास एक सुन्दर युवती ने मुस्कुराकर कहा—'स्वागत आपकी सीट आगे दाहिनी ओर है—नम्बर पन्द्रह।'

सीट पर बैठ कर मैंने बाहर देखने की कोशिश की। मगर वहाँ से बाईं ओर की खिड़की दूर थी, इसलिए बहुत प्रयत्न के बाद अपने परिवार की एक झलक-मात्र मुझे देखने को मिली, और बस।

हवाई जहाज का दरवाजा बंद हुआ और लाउड स्पीकर से एक स्त्री-कंठ चारों ओर गूँज उठा—'एयर इंडिया इंटरनेशनल अदन के रास्ते नैरोबी जानेवाले जहाज पर आपका स्वागत करता है। आपके चालक श्री अ—हैं और आपकी होस्टैस कुमारी ब—और कुमारी स—हैं। हम पन्द्रह हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ेंगे और हमारी गति साढ़े तीन सौ मील प्रति घंटा होगी। बम्बई से अदन तक ६॥ घंटे की यात्रा होगी। अब आप सिगरेट बंद कर दें और कमर-पेटी बांध लें। धन्यवाद।'

सामने, चालक के प्रकोष्ठ के दरवाजे के ऊपर लाल अक्षरों में कुछ शब्द उभर

आए—'सिगरेट पीना मना है। कमर-पेटी बाँधिए।'

और फिर एक घर्राहट आरंभ हुई। धीरे धीरे बढ़कर यह घर्राहट चारों ओर फैल गई। एक युवती ने आकर लौंग, मीठी गोलियाँ, इलाचियाँ व रुई की छोटी छोटी पुड़ियों की एक ट्रे मेरे आगे कर दी। मैंने एक गोली और एक रुई की पुड़िया उठा ली। रुई निकालकर कानों में खोंस ली और गोली मुँह में रख ली।

हवाई जहाज एकाएक चलने लगा। मैंने घूमकर अपने परिवार को देखने का एक अंतिम प्रयत्न किया। पिताजी रूमाल हिला रहे थे, मामियाँ, माताजी व मेरी पत्नी चुपचाप देख रही थीं, बच्ची मेरे छोटे भाई की गोद में उन्मुक्त आँखों से देख रही थी—और भाई हाथ हिला रहे थे।

अब सपाट जमीन थी, पेड़ थे, कुछ मकान थे जिनके पास से जहाज गुजर रहा था। जहाज की चाल तेज हुई और हम दूर निकल गए। एक स्थान पर एक लोहे की छड़ जमीन में गड़ी थी; उसके ऊपर एक लकड़ी के चक्कर के चारों ओर कपड़ा झूल रहा था। हवा के बहने का रुख इसी को देखकर किया जाता है। जिस ओर हवा बहती हो, उससे विपरीत दिशा में हवाई जहाज को दौड़ाते हैं। इस स्थान पर पहुंचकर हमारा जहाज मुड़ा और हवाई जहाज की घर्राहट एक बार फिर बढ़ी। हवाई अड्डे की चौड़ी सड़क—जो 'रनवे' कहलाती है—हमारे नीचे से तेजी के साथ सरकने लगी और तब एकाएक हमारा जहाज हवा में उठ गया। हमारे पैरों के नीचे जहाज की जमीन रह गई—मिट्टी की जमीन से हम उठ गए।

जहाज की खिड़की से मैंने देखा, खिलौनों की भाँति दिखाई देने वाले मकान और जमीन की हरी, पीली टुकड़ियाँ, और समुद्र का नीला पानी—सब हमारे नीचे है और हम ऊपर उठते जा रहे हैं, और ऊपर उठते जा रहे हैं।

जहाज का कम्पन हमारे शरीर का कम्पन बन गया। हमारा जहाज ऊपर चढ़ता गया—यहाँ तक कि दूध की भाँति सफेद रुई के धुने हुए गालों की तरह अनियमित, बादलों के टुकड़े हमारे नीचे तैर रहे थे और गहरा नीला आकाश हमारे चारों ओर फैला था।

मैंने अपनी सीट के ऊपर बटन घुमाकर हवा के छेद को अपनी दिशा में किया। ठंडी हवा मेरे चेहरे और गर्दन को चूमने लगी। बटन दबाकर प्रकाश को मैंने अपनी पुस्तक पर केंद्रित किया, कमर पेटी को खोल दिया, और पढ़ने में लीन हो गया।

साढ़े आठ बजे होस्टेस ने मेरे आगे सीट पर एक छोटी सी पटरी लगा दी और नाश्ते का ट्रे लाकर उस पर रख दिया। हरएक चीज पारदर्शी कागज में लिपटी हुई—डबल रोटी, सेब, कांटा व छुरी। छोटी छोटी कागज की बंद डिब्बियों में मक्खन, जाम; नमक और काली मिर्च। सब्जी व मछली की एक गर्म प्लेट—और गर्म काफी का एक प्याला। पेट भर खाकर 'एअर इंडिया इंटरनैशनल' के नाम

छपे बड़े कागजी रूमाल से मैंने मुँह पोंछा और फिर पढ़ने में लीन हो गया। खिड़की के बाहर कोई ऐसी चीज नहीं थी जिसे मैं दिलचस्पी से देख सकूँ। वही सफेद बादलों के टुकड़े थे, वही नीला आकाश था, वही निर्मल धूप थी।

हवा में वही जहाज के पंखों का कम्पन और इंजन की थर्राहट थी।

दोपहर के एक बजे खाना आया और खाने के बाद पूरी तरह सुस्ताने भी न पाए थे कि रेडियो पर आवाज आई, हम अदन पहुँच गए हैं, पेटियां बांध ली जाएं।

जहाज नीचे आया, और एक हल्के से धक्के के साथ हम फिर धरती पर वापस लौट आए—बम्बई से २,२०० मील की दूरी तय करके अदन के हवाई अड्डे पर।

ऊपर बादलों के पास हवा ठंडी थी, मौसम सुहाना था। नीचे अदन के पथरीली चट्टानों से घिरे हवाई अड्डे पर एप्रिल की भुलसा देनेवाली गर्मी महसूस हुई।

वीसा, स्वास्थ्य-सर्टिफिकेट, सामान का निरीक्षण—एक एक करके सभी बाधाएँ पार हुईं। यहाँ मुझे रात बितानी है। एअर इंडिया इंटरनेशनल ने ही होटल का प्रबन्ध किया है।

हवाई अड्डे का रेस्तरां यात्रियों से भरा था। दो मेजों पर बुर्केवाली स्त्रियाँ थीं, काले मंगोलियन नाक-नक्श के तहमद वाले, आदमी, जिनकी लाल फुंदनेवाली टोपियां गर्मी में असह्य मालूम होती थीं। तहमद के ऊपर भी कार्बा चमड़े की पेटी कसी थी। अंग्रेजों की मेजों को छोड़कर बाकी सभी मेजोंपर कोका-कोला की बोतलें और चाय की प्यालियाँ थीं।

बैठे-बैठे मेरा जी उकता गया। मक्खियों की भिनभिनाहट और गर्मी की चिपचिपाहट। मन लगता भी कैसे? उठकर एक परिचित सज्जन से बातचीत की।

'आप कहाँ जा रहे हैं?'

'मैं हज करने जा रहा हूँ। 'आज रा[illegible] भर यहीं रहना पड़ेगा—कल सुबह [illegible] के लिए जहाज मिलेगा।'

और फिर हम देर तक बातें करते रहे[illegible] वह कोल्हापुर जिले के निवासी हैं, उनक[illegible] जमींदारी है। मां, चचा, भाई-बहन, स[illegible] कोल्हापुर के पास एक गांव में रहते हैं, म[illegible] खुद दक्षिणी अफ्रीका में निवास करते हैं पन्द्रह वर्ष से वहीं रह रहे हैं। मां से मिल कर आ रहे हैं, हज करने के बाद जोह[illegible] सबर्ग का रास्ता पकड़ेंगे।

एक वर्दीवाले ने आकर हमारा ध्या[illegible] आकृष्ट किया। 'चलिए, गाड़ी तैयार है।'

भुलसती धूप में स्टेशन वैगन का दर[illegible] वाजा खोलकर हम अन्दर बैठ गए। ह[illegible] दोनों के सिवा दो यात्री और थे।

कुछ देर में हम अदन के बंदरगाह [illegible] पास से गुजरे। छोटी-मोटी नावें, इक्के दुक्के जहाज, सीसे की तरह ठोस दिखा[illegible] देनेवाला समुद्र का पानी—और बाकी सभी जगह असीम चट्टानें और रेत, इन सबके बाद एक और रेतीला खुला मैदान, जिसमें पेड़ हैं, बेलें हैं, खुले, अलग-अलग सफेदी से पुते, साफ मकान हैं।

कृपया शेष पृष्ठ १२६ पर देखिए

एक कविता के लिये

सुभाष मुखोपाध्याय

एक कविता लिखी जायगी। उसके लिये
अग्नि की नीली शिखा के समान आकाश
क्रोध से गरजता है, समुद्र में अपने डैनों को झाड़ता है
भीषण तूफान, मेघ की धूमिल जटा
खुल-खुल पड़ती है व्रज नाद से
अरण्य ध्वनित है, वृक्षों की जड़-जड़ में
गिरने का भय समा गया है
विद्युत् मुड़कर देखता है
उस प्रकाश में सारी भूमि के
नील दर्पण में अपना मुँह देखता है
भस्म लोचन।
एक कविता लिखी जाती है उसके लिये
एक कविता लिखी जायगी। उसके लिये
दीवार-दीवार पर चिपका देते हैं कोई
किसी एक अनागत दिवस का पतवा,
मृत्यु-भय को फाँसी पर लटका कर
जुलूस आगे बढ़ता है
आकाश और वायु मुखरित होती है गान से
उसके गर्जन में
नव दर्पण में अंकित है
नयी पृथिवी, अखण्ड सुख, सीमाहीन प्यार।
एक कविता लिखी जाती है उसके लिये।

अनुवाद : गोपालचन्द्र दास

इस प्रकार यह बहाना भी 'आऊट-डेट' हो गया है। कई अच्छे फ़िल्म आये और चले गये; और मैं तरसती ही रहती हूँ। वास्तव में सुधी, यह कुल्हाड़ी तो कमला दीदी ने स्वयं अपने पैरों पर मारी है। मैंने कई बार दीदी से कहा, 'देखो तुम्हारा यह फौजी आनन्द बड़ी असावधानी से पत्र लिखता है, कहीं ऐसा न हो कि भंडा फूट जाए? दीदी, उसे कहो, कुछ तो ख्याल करे, भला कहीं एक दिन में दो पत्र भी लिखे जाते हैं।'

परन्तु वह मेरी बात पर केवल मुस्कुराती है—और बस!

इसमें सन्देह नहीं कि आनन्द बहुत अच्छा है परन्तु वह पत्र बड़े बेढंगे ढंग से लिखता था। पूरे पत्र में न कोई प्यारा-सा गुदगुदा देनेवाला वाक्य होता है, और न कोई प्यार-भरी भावना ही। एक बार उसने लिखा था, 'देखो कमला—मुझे साहित्य से दूर का लगाव भी नहीं है, इसलिए कविता नहीं कर सकता। तुम मेरे पत्रों को एक फौजी के पत्र समझ कर ही पढ़ना।' और दीदी की दृष्टि में यह कितनी ऊंची बात उसने कही थी!

जिन दिनों दीदी और आनन्द की बात चली थी, तुम भी तो यहीं थीं—फिर तुम ऐसी गईं कि किसी की खबर भी नहीं ली और महीने गुजर गए। किन्तु, सुधी, तू तो अपनी मुहब्बत के सहरा में खोई हुई है, तुझे दूसरों की खबर लेने का अवकाश ही कहाँ है। यूँ यह सब बातें लिखने को अब मन नहीं चाहता। दीदी के ब्याह की बात भी पक्की हो गई—ब्याह—यह ब्याह भी विचित्र वस्तु है, सुधी। आजकल के समझदार लड़के-लड़कियाँ शादी के इस भारी पर्दे को बुद्धि की बजाए-अपने गुनाहों पर डाल लेते हैं और नादान…चलो जाने दो, तुम नाराज हो जाओगी।

तो शिमला से लौटने के पश्चात् दीदी को आनन्द के लम्बे-लम्बे पत्र आने लगे कि उनके अभाव में वह अपने में इतनी कमी महसूस करता है जैसे खाली राईफ़ल हो। और दीदी उत्तर में लिखती कि जब से वह आनन्द से बिछुड़ी हैं, उनके जीवन में दिन ही दिन रह गए हैं, रातें आँखों की नींद के समान न जाने कहाँ खो गई हैं। और सचमुच दीदी का यही हाल था, सुधी—हमारी रातें ही हमारा सब कुछ होती हैं, नींदें ही सब कुछ होती हैं, जिनमें सुन्दर सपनों की रचना होती है—और जब रातें ही न रहें, तो……

मैंने दीदी को कई बार रोका कि पत्र व्यवहार का झंझट ऐसा मत रखो कि यदि किसी दिन कोई पत्र किसी के हाथ लग गया तो मेरी भी कमबख्ती आ जाए। परन्तु उनके सिर पर तो प्रेम का भूत सवार था। दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए तड़प रहे थे—और एक दिन आनन्द छुट्टी लेकर यहाँ आ पहुँचा। मैंने सोचा अब इन दोनों को कुछ शान्ति मिलेगी, आनन्द को वह वस्तु प्राप्त हो जाएगी; जिसके अभाव ने उसे अपंग बना दिया है और दीदी की रातें वापिस आ जाएँगी। सम्भव है, रात के बाद फिर रात आए—और उनके जीवन में

सूर्योदय ही न हो।

कालेज के दो पीरियड छोड़ हम दोनों बुर्जीमहल में पहुँच जाते, जहाँ दीदी की प्रतीक्षा में आनन्द दिन में तारे गिन रहा होता। फिर वह दोनों किसी दिन ऐसे कुँज की खोज में खो जाते, जहाँ केवल वही दो समा पाएँ। मैं बहुत बोर होती।

यह चोरी-चोरी की मुलाकातें, यह आँख-मिचौनी, यह प्रेम-लीला एक महीने तक होती रही। मैं ने दीदी से कह रखा था कि आनन्द को इतनी लिफ्ट न दो कि स्वयं लिफ्ट बन जाए।

एक महीने के बाद आनन्द चला गया।

फिर पत्र व्यवहार का क्रम आरम्भ हुआ। खुशी हुई कि दोनों ओर मुहब्बत की आँच और भी बढ़ गई थी।

आनन्द ने लिखा था, 'अब मैं खाली राईफल नहीं बल्कि भरा हुआ पिस्तौल हूँ।'

दीदी ने पहली बार तो शायद वैसे ही लिख दिया था कि, रातें और नींदें कहीं खो गई हैं, लेकिन अब सचमुच उनकी रातें कहीं गुम हो गई थीं, वह आँखें फाड़े अन्धेरे में न जाने किस प्रकाश को खोजती रहतीं।

और एक दिन गजब हो गया।

आनन्द का एक पत्र मा के हाथ लगा।

उनके निकट यह बात आश्चर्यपूर्ण थी कि एक क्वाँरी लड़की के नाम एक अजनबी के प्रणय-पत्र आएँ।

किन्तु मा ने पत्र खोलने की गलती करने के बाद एक बुद्धिमानी का कार्य अवश्य किया। इस बात की अधिक चर्चा करने और शोर मचाने की बजाय उन्होंने डाकिये के आने के समय बैठक में बैठना प्रारम्भ कर दिया। डाक आती—और मा बड़ी होशियारी से आनन्द के पत्र को अपने पानदान में रख लेतीं।

दीदी ने एक दिन बड़े उदास स्वर में मुझ से कहा, 'ऊषी, आनन्द मुझे भूल गया क्या ?'

मुझे बड़ा दुःख हुआ, यह कहानी 'क्लाईमेक्स' तक पहुँचने से पहले ही कैसे समाप्त हो गई ? मैंने तो इस प्रेम का एक बड़ा नाटकीय उपसंहार सोचा था।

मैंने अपने दिल के साथ दीदी को भी तसल्ली दी। मा की इस कार्यवाही से एक दिलचस्प बात यह पैदा हुई कि इधर तो दीदी ने मुझ से कहा कि आनन्द उसे भूल गया है और इधर आनन्द ने अपने पत्रों का उत्तर न पाकर यही सोच लिया।

मुझे इस बात का आश्चर्य था कि यह प्रेम-लीला एकाएक कैसे समाप्त हो गई। जब जरा होश ठिकाने आये तो मालूम हुआ कि मा बीच में आ गई हैं। दीदी से जब मैंने इस सम्बन्ध में बात की तो मय्या के विचार ने उन्हें परेशान कर दिया। वह बार-बार मुझ से कहतीं 'हाय ऊषी, अब क्या होगा ?'

'ऊषी, मय्या को मालूम हो गया तो ?'

'ऊषी, मा मेरे बारे में क्या सोचती है ?'

मा इस विषय में क्या सोच रही थीं उसका हमें कुछ पता न चला।

फिर एक दिन बन्द कमरे से मय्या के चीखने-चिल्लाने की आवाज आई, मैंने

डरते-डरते उनकी बातों को सुना। मा ने उन्हें बतला दिया था। वह क्रोध के मारे पागल हो रहे थे और मा उन्हें समझा रही थीं।

एक पत्र आनन्द को लिखवाया कि ईश्वर के लिए यह पत्र-व्यवहार कुछ देर के लिए उठा रखो, घर की बड़ी-बूढ़ी तक को पता चल गया है। आनन्द ने तुरन्त उत्तर दिया, 'गोली मारो उस बुढ़िया को और नया पता दो।'

रमेश भय्या से जब वह पत्र पढ़ा तो उनका रक्त उबल उठा और वह सचमुच आनन्द को गोली मारने के लिये तैयार हो गये किन्तु मा ने फिर समझाया और भय्या ने आनन्द को गोली मारने की बजाय दीदी को निबह करने की ठान ली। और उनकी छुट्टी है कलेक्टर प्यारेलाल का लड़का मनोहर—अब देखो यह छुट्टी कब चलती है। और दीदी, उनका प्रेम शिमले के रातों के समान ठण्डा, भयानक और मौन है। आनन्द के विषय में सुना है कि वह भरा पिस्तौल लेकर यहीं घूम रहा है। दीदी का ख्याल है कि यदि वह एक बार आनन्द से मिल लें तो सब बातें ठीक हो सकती हैं।

किन्तु मेरी अच्छी सूशी, यह प्यार मेरी समझ में नहीं आ सका।

दीदी कुछ दिन उदास ही नहीं रहीं, वरन् उनका जीवन जड़-सा हो गया। लेकिन अब, वह प्रातः मुँह धोने के पश्चात् थोड़ा-सा मेक-अप भी करती हैं और पहले जैसा वही बनारसी तिल भी लगाती हैं।

मनोविज्ञान की यह छात्रा अपना निरूपण क्यों नहीं करती—यही मेरी समझ में अभीतक नहीं आया। शेष तुम्हारा पत्र मिलने पर।

तुम्हारी, ऊषी

प्रिय ऊषी

मैं अभी कुछ देर पहले चारों ओर से अन्धकार में घिरी हुई थी कि अचानक तुम्हारा विचार मोर के तारे की भाँति इस अन्धकार में से उभर आया—और मैं तुम्हें लिखने बैठ गई। अपने चारों ओर फैले संसार पर इस समय जब दृष्टि डालती हूँ तो तुम्हारे अतिरिक्त मुझे कोई हमदर्द, कोई साथी, कोई अपना नहीं दिखता—और तुम—तुम मुझसे कोसों दूर हो। अब किस प्रकार तुम मेरी पीड़ा की टीस को अनुभव कर सकती हो, किस प्रकार मुझे नसीहत कर सकती हो, और ऊषी, किस प्रकार तुम मेरे इस दुःख को, मेरे इस दर्द को, कम कर सकती हो—यह सब जानते हुये भी, मैं तुम्हें वह घाव दिखाना चाहती हूँ जो तुम्हारी मा और भाई ने मेरे हृदय पर लगाया है—वह घाव—वह नासूर—जो टिस रहा है। जिसमें धीरे-धीरे और प्रतिक्षण पीड़ा बढ़ती जाती है—काश तुम मेरी अवस्था जान पातीं!

ब्याह के दिन से अब तक मैं जिस मानसिक उद्विग्नता में ग्रस्त हूँ, उसके विषय में तुम्हें कुछ बतलाना नहीं चाहती हूँ। मेरी छाती में जो घुटन पैदा हो गई है, सम्भव है सब कुछ बक देने से वह कुछ कम हो जाय नहीं तो मुझे ऐसा महसूस होता है

जैसे किसी ने मुझे धुएं से भरी कोठरी में बन्द कर दिया है। दम घुटने लगता है, आँखों में आँसू आ जाते हैं, सांस रुकने लगती है लेकिन प्राण नहीं निकलते। कुछ ऐसी ही हालत मेरी हो गई है।

रूपी, तू तो मेरी बहन है, हमजोली है—हमारा बचपना और जवानी साथ-साथ बीते हैं। मेरे स्वभाव से तो तू परिचित ही है, जो बात मैं सह सकती हूँ उसे ज़बान पर नहीं लाती, जो दुःख मैं सह सकती हूँ, उस पर कभी शोर नहीं मचाती। मा और भय्या ने जिस प्रकार मेरे प्यार का गला घोटा, तू जानती है, किन्तु मैं वह भी सह गई। मैंने किसी से शिकायत नहीं ी। मैंने आनन्द को भी समझाया कि ह पागलों की तरह भरा हुआ पिस्तौल कर न घूमा करे और लौट जाय। यह ब मैं कर सकती थी जो मैंने न किया।

चूँकि जब मा और भय्या ने मेरे सामने ऽने टेककर परिवार की इज़्ज़त बचा लेने के ऽए कहा था, अपनी इच्छाओं को तो मैंने सी समय विष दे दिया था—मैंने जबर-ऽस्ती यह सोचने का प्रयत्न किया कि यह ।म-प्यार कुछ नहीं, केवल सेक्स-अनुभूति की ।तिक्रिया है। मैं किसी भी व्यक्ति से प्यार र सकती हूँ, मैंने आनन्द के प्यार में भी गर्ज़' और 'स्वार्थ' का पक्ष ढूँढ लिया—ौर अपना सब कुछ उस व्यक्ति को सौंप ऽने का निश्चय कर लिया, जिसे तुम सबने ेरे लिये जीवन-साथी चुना था।

रूपी, मनोहर से मेरा ब्याह मेरे जीवन की सब से भयङ्कर ट्रेजिडी है। लेकिन अब क्या करूँ? काश……।

रूपी, तुमने एक बार मनोहर को तेज़ धारवाला छुरा कहा था—किन्तु वह तो टीन की ज़ङ्ग-लगी छुरी है, इस छुरी से तो गहरा घाव भी नहीं लग सकता—यह बड़ा भयानक प्रतिशोध है जो तुम लोगों ने मुझ से लिया है—बड़ा कठोर—बड़ा दर्दीला—।

मगर अब इस पछतावे को लेकर क्या क्या हो सकता है?

मुझे रातों से जितना प्यार रहा है, मेरे जीवन से वे उतनी ही दूर—और दूर—होती चली जा रही हैं। वे रातें बड़ी भरपूर होती थीं और ये रातें—ये रातें मेरे पति के भावना-हीन और शून्य हृदय के समान बिल्कुल खाली और बिल्कुल ख़ामोश हैं। उन रातों में, मैं नींद की इच्छा इसलिए करती थी कि आनन्द को सपनों ही में देख लूँ और ये रातें केवल इसलिए जागकर गुज़ारना चाहती हूँ कि बड़े भयानक सपने—बड़े दुःख जनक दृश्य—सामने आते रहते हैं।

न जाने तुम्हें क्या लिखना चाहती हूँ—और न जाने क्या लिख रही हूँ मेरे दिलो-दिमाग में एक हल-चल—एक तूफ़ान—बिफर रहा है—मैं क्या करूँ—कुछ समझ में नहीं आता—शायद मैं मर जाऊँ—शायद मैं जीवित रह सकूँ—क्या होगा—तुम बताओ—क्या होगा?

तुम्हारी, कमला दीदी

(कृपया शेष पृष्ठ ८१ पर देखिए)

अपूर्णता

केन्द्र तो है, किन्तु जाने क्यों
परिधियाँ ये अधूरी ही रहीं।

वास्ता कोई कब यहाँ
पूरा हुआ?
रास्ता ही हर बटोही का—
यहाँ टेरा हुआ,
कौन जाने किश्तियाँ कितनी यहाँ
कौन ही मँझधार में बेबस बहीं?

हर सुबह ने शाम बन—
धोखा दिया,
या भरा पर रक्त ने—
जादू किया,
राग-विराग की ये अजब कड़ियाँ यहाँ
क्या पता, किसने बराबर से गुहीं!

गोजती कुछ पूछती—
रहती धरा,
भटकता हर कण यहाँ पर—
अनमना,
खोजते ही खोजते हैरान सब—
कौन पर मंजिल कि मिलती ही नहीं!

रमा सिंह

साँझ, एक खाली पृष्ठ

साँझ रोज़ आती थी
एक ख़ाली पृष्ठ ले
कहती थी :
लिख दो कुछ,
लिख दो कुछ!
मैंने हर बार टाल दिया,
कभी कुछ नहीं लिखा!
आज दिन ढहराया है,
मेरी दीवार पर नाचनेवा
मुट्ठी भर परछाइयाँ
एक काली पट्टी
बन रह गयी हैं
उभड़ती है एक उजली-
छोटी सी कविता।
लगता है लिख दूँ
सांझ के ख़ाली पृष्ठ पर
पर, सांझ बादलों के पी
टूट गयी होगी
वह ख़ाली पृष्ठ
धुल गया होगा।

अशोक वाजपेयी

बाजरे के खेत की नाज़ुक टहनियाँ
दृश्य : कन्धों पर उठाये बोझ, चलते बैल
कुश निराती साँवरी की पाँत
औ' कनक चम्पाकली की घास
नरकुलों का सिर झुका कर
ताल-जल में ताकना
हर किरन कुन्दन धुली का
मेघिमा से झाँकना
क्या तुझे यह जिन्दगी, ये रूप
कुछ नज़र आते नहीं !
शैल-शृंगों से छलकते-नाचते निर्झर
क्या तझे भाते नहीं ?
आ, घुटन की खोह से बाहर निकल
झील के थिर नील पर कुमकुम झरा
देख,
कितनी रसमयी है, रूपवसना
किस क़दर है रत्नगर्भा यह धरा ।

अनन्त

लहरों की ठोकरें,
खा खाकर—
ढहते हैं,
गिरते हैं,
बलुआ कगार ।

र भी इस
रायी नदिया को
पने आलिंगन से
डते नहीं है
डूबते किनारे ।

हरिकृष्ण मिश्र

मनुहार

हजार पंखुरियाँ
हजार दल का
तिरता कमल हूँ
बहुत हलका हूँ
यह मत समझो,
जल मे हूँ जल का हूँ
नेह से तोड़ो
तुम्हारे आँचल का हूँ ।

इकबाल बहा

बाद स्टेशन पर उतरा, यहाँ आया, शायद कोई दैवीशक्ति ही मुझे जबरदस्ती खींचकर यहाँ ले आई है। शायद यह मेरे उपन्यास की प्रेत आत्मा है, जो मुझे पुकार लायी है!

मैं बैठा ही था कि एक वृद्धा ने हाँफते हुए बैठक में घुसकर कहा, 'तुम आ गये?'

'जी!'

'तुमने इतने दिन कहाँ लगाये?'

मुझे मौन देखकर वह कहने लगी, 'सब कुछ तुम्हारा ही तो था, बेटा, नलिनी से लेकर इस घर की हरेक चीज · क्या तुम समझते थे कि मैं सदा जीवित रहूँगी?'

हे भगवान्! यह कैसा स्वर है इनका! मुझसे कब का परिचय है? इस जन्म का तो कदापि नहीं हो सकता!

'बेटा, तुम बड़े निठुर हो, नलिनी कब से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।'

उसी समय नलिनी ने कमरे में घुसकर कहा, 'मां, यह तुम क्या कह रही हो? भला मैं किस की प्रतीक्षा करती थी।'

मां हँस दीं।—यह नहीं कहा कि झूठ क्यों बोलती हो!

और आप ही क्या, शायद ही कोई मेरी इस बात का यक़ीन करेगा कि उसी रात नलिनी की मां चल बसीं। बस मुझसे वही एक प्रश्न पूछा था, 'बेटा, तुम्हारा अभी विवाह तो हुआ नहीं·· मेरी नलिनी··? चलो, अच्छा ही हुआ···कौन जानता है भगवान् कब किस रूप में कहाँ किसे भेज देते हैं।'

नलिनी रोने लगी। मेरी ओर उसके व्यवहार में था—वही आत्मसमर्पण, वही एकाग्र विश्वास, जो उपन्यास की नायिका नलिनी में मेरे उपन्यास में वर्णित थे!

शव-संस्कार में रात बीत गयी। निर्जन स्थान होने के कारण ज्यादा लोग नहीं आये। जो आये वे भी अधिक परिचित या सहानुभूति पूर्ण नहीं लगे! किसी ने भी मुझ से कुछ नहीं पूछा! कुछ दिन बीतने पर सोचा कि कोई रिश्तेदार आयेगा ही और मेरे दो-चार दिन कट गये उसी मकान में—एक पढ़ी-लिखी अपरिचित-सी अनूढ़ा वयस्का कन्या का एक मात्र अभिभावक बन गया था मैं! मेरे आतिथ्य सत्कार में भी कोई कमी नहीं आयी!

नलिनी अपने कमरे में रहती और मैं बाहर की उसी बैठक में। इन दिनों मुझे अपने गन्तव्य स्थान पहुँचने की मानो इच्छा ही नहीं रही। किसी से मेरा कोई घर गिरस्ती का सम्बन्ध है, यह भी मुझे अब याद नहीं आया। यहाँ आने से पहले के जीवन में मैं क्या करता था, यह भी मानो भूल ही गया!

आपको फिर हँसी आ रही है। Incredible अच्छा, लीजिए, मैं अपनी डायरी के पृष्ठ इन दिनों लिखता था, उद्धृत करता हूँ: "दो महीने बीत गये हैं। नलिनी से खूब बातचीत होती है। कोई झिझक भी नहीं रही है, प्रेम बढ़ रहा है। कुछ अस्वाभाविक-सा है, यह भी महसूस नहीं होता अब! मेरा विगत जीवन क्या है? और नलिनी का ध्यान नहीं जाता है,

बातचीत होने पर भी वह इस ओर संकेत ही नहीं करती है।"

●

"मैं पृथ्वी के एक छोर से उसके परम आह्वान का समादर कर मूर्तिमान् परमेश्वर के सामने अचानक आ पहुँचा हूँ। यही मानो सारी मिथ्या निरर्थक चीजों के उपरान्त एक अनपेक्षित सत्य घटना हुई है।"

●

"देखते-देखते छः महीने बीत गये। प्रेम संबन्ध कहाँ का कहाँ जा पहुँचा। यह देख-
र मैं अब आश्चर्य करता हूँ इस बीच में
न अपने किसी मित्र का, किसी सम्बन्धी
ो, चिट्ठी नहीं लिखी। शायद उनकी ओर
े भी कोई खोज-खबर ली गयी या नहीं, पूछ-ताछ और जांच-पड़ताल की गई या नहीं, मालूम नहीं। शायद वे सोचते हैं कि मैं जीवित नहीं हूँ या अपना सब कुछ त्यागकर संन्यासी हो गया हूँ।"

●

"नलिनी के समर्पण की हद मेरे उपन्यास की नलिनी से भी बढ़ बढ़ गयी है। उस समर्पण की भाषा मौन है, स्वर मीठा है जो स्नेह से—उसके असीम स्नेह से—ही सदा झंकृत होता रहता है।"

●

"आजकल उसके जगाने से मेरा प्रातःकाल होता है। वह चाय का प्याला लेकर सामने खड़ी रहती है या आँचल में जुही के फूल होते हैं जो मेरे तकिये के पास बिखरा देती है। उसके बाद दिन भर अनेक चित्र-विचित्र बातें करते हुए समय बीत जाता है। संसार में हम दो ही हैं ऐसा बराबर भास होता है, मैं उसका जन्म-जन्मान्तर का अतिथि हूँ, उसे भी यह ज्ञान हो गया है। और इस जन्म में भी मैं उसका फिर अतिथि बन कर आ पहुँचा हूँ, यही आजकल वह प्रतिक्षण अनुभव कर रही है। उसने हृदय में तुलसी का बिरवा लगाया है जो फल-फूल रहा है।"

●

"किन्तु दिन-प्रतिदिन मैं क्यों शरम से गड़ता जाता हूँ। आजकल अन्दर से कोई क्यों बार बार मुझसे नित्य छीः छीः कह उठता है कल दुपहर में ही सोकर उठा तो कोई कहने लगा। छीः तुम अपना सारा काम-धाम छोड़कर किस गोरखधन्धे में पड़ गये हो? सारी बातें भूठ कहकर तुम छल-पाखण्ड के किस स्तूप पर खड़े होगये हो! यह तुम्हारा कैसा अविचार है?"

●

"आज मैं दिनभर अनमना रहा। किसी चीज में भी चित्त नहीं लगा। पिछली रात्रि मैंने स्वप्न देखा था कि मेरी पत्नी बीमार है, बार बार ध्यान आया, मालूम नहीं वह कैसी है।"

●

"आज आश्चर्य से देखा कि नलिनी उदासीन है। उसका चित्त भी स्थिर नहीं है।"

●

दिन इसी प्रकार बीतते गये। किसी दिन भी चिन्ताओंने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। एक दिन मैं घर से निकलकर सच-मुच

को तुरन्त मुक्त कर दो। अब मुझसे यह बन्धन नहीं सहा जाता। बहुत फाँस रहा है।

—तुम्हारी, अंजना।"

मैं कुछ क्षणों के लिये स्तब्ध खड़ा रहा। इसके बाद जल्दी-जल्दी मैंने अपनी सारी चीजों को समेटा। नौकर से ताँगा मँगवाया और उस घर से सदा के लिये विदा होते समय मैं झूठे आँसुओं में अपनी लेखनी को डुबोकर एक बार यह भी नहीं लिख पा सका कि मैंने तुम्हारा इतने दिनों जो आतिथ्य लिया, इसके लिये मैं सचमुच अत्यन्त आभारी हूँ।

पछतावा का शेषांश : पृष्ठ ७१ से आगे

मिस्टर रमेश सोनी,

मुझे यह पत्र लिखते समय बड़ी ग्लानि हो रही है—काश आप ने हमारे परिवार के स्तर को सही समझा होना और अपने आपको हमारे हम-पल्ला समझने की भूल न की होती।

इस सम्बन्ध में सविस्तार बात-चीत मैं आप से मिलने पर ही करूँगा लेकिन यह शुभ-समाचार आप को सुना दूँ कि आपने अपनी जिस बहन का हाथ मेरे हाथ में दिया था वह अपने किसी पुराने चाहने वाले के साथ भाग गई है। काश हमें यह ज्ञात होता कि आप की पारिवारिक परम्पराएँ ऐसी ही रही हैं। भवदीय, मनोहरलाल।
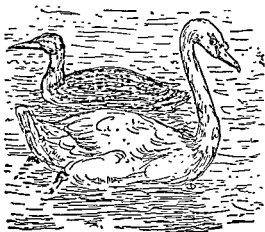
कि तुषार-युग का प्रथम हिमप्रवाह रुकने पर जोड़ के समतल अंचल से यह हाथी भी अन्यान्य वन्य प्राणियों के साथ काश्मीर की विस्तीर्ण झील की श्यामल वन-भूमि की ओर गया था। तब पीर-पंजाल इतना ऊँचा नहीं था और उत्तर भारत के समतल अंचल और कश्मीर में अनेक स्तनपायी जीव-जन्तुओं का आना जाना था। बेशक, खानाबदोश शिकारी आदि-मानव भी इन प्राणी-दलों के पीछे रहता था। इस लुप्त प्राचीन उत्तर-भारतीय हाथी की जाति का ही और एक हाथी एलिफस नोमाडिकास का जीवाश्म नर्मदा घाटी के होशंगाबाद में मिला, जो आजकल कलकत्ता म्यूजियम में सुरक्षित है। प्रागैतिहासिक तुषार-द्रावन-युग में नर्मदा घाटी भी अनेक बनैले जानवरों और आदि-मानवों की लीला-भूमि थी। हिमालय के शिवालिक अंचल में भी तुषार-युगीन जानवरों के जीवाश्म मिले हैं। सिन्धु-गंगा की घाटियाँ आज प्रायः वनशून्य हैं, परन्तु किसी वक्त ये भी

होशंगाबाद की नर्मदा घाटी में पाषाण युग के नान अस्त्र-शस्त्र व जीवाश्मों का एक इलाका।

पाषाण युग के आदि मानव का निवास स्थान, सोहान उपत्यका।

तृणभोजी और मांसाशी प्राणियों की चारण- और आखेट-भूमि थीं, जहाँ न केवल वन्य प्राणियों के ही बल्कि उद्भिदों के भी अनेक जीवाश्म मिले हैं। गुलमर्ग के लारादुरा अंचल में तुषार-युगीन लता-पत्रों और ग्रावेरवा के नीचे ही पर्तबँधी कीचड़ के तरह-तरह के गुल्मों की छापें हैं। यह इलाका भी तब करेवा झील के अन्तर्गत था और आज की तरह इतना ऊँचा नहीं बसा था। तुषार युग के द्वितीय सुदीर्घ हिम-प्रवाह के समय हिमालय के साथ कश्मीर घाटी और करेवा झील तथा पीर-पंजाल बने थे। शायद तुषार-युग के परवर्ती युग में करेवा झील ही झेलम की घाटी में परिणत हो गई थी। 'राजतरंगिणी' में कहा भी है, कि एक कश्यप योद्धा ने अपनी तलवार से इस झील को रायिहत कर उसका पानी बहा दिया था। खानाबदोश, शिकारी, उन्मुक्त वन-प्रान्तर और घाटियों का निवासी आदि-मानव अपने चारों ओर की परिस्थितियों शत्रुओं और शिकार की मौजूदगी जानता था।

मयूरभंज में प्राप्त कुछ और पाषाणी हथियार।

काम-लायक अच्छे प्रस्तर-खण्ड को छील-कर छिले टुकड़ों से, जिन्हें 'फ्लेक' कहते हैं, चॉपर, छुरी, सुई, आदि चीजें बनती थीं। घर-गिरस्ती के काम शिकार की छोटी-मोटी चीजें भी इसी तरह बनती थीं। दक्षिण भारत में ये छोटी-मोटी चीजें बहुत कम—पर कुठार बसूले काफी—मिले हैं। किन्तु उत्तर भारतमें 'पेब्ल टूल्स' कम और 'फ्लेक टूल्स' काफी मिले हैं। उत्तर भारत की इस प्रस्तर-खण्ड और छिले टुकड़ों की संस्कृति के साथ चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के प्रस्तर-युग की अन्य संस्कृतियां भी निस्संदेह काफी मेल खाती हैं।

पाषाणयुगीन भारत में प्रधानतया आदि-संस्कृतिकी दो धारायें थीं। पहली है कुठार-प्रधान संस्कृति (हैण्ड-एक्स कलचर), जिसका केन्द्र था दक्षिण में। और दूसरी है बिल्लौरी तथा छिले-प्रस्तरखण्ड-निर्मित अस्त्र-शस्त्रों की संस्कृति (पेब्लएण्ड फ्लेककलचर), जिसका केन्द्र था प्राचीन उत्तर भारत में या आज के दोनों पंजाबों की घाटियों में। पाषाण युग की यह द्वितीय संस्कृति सर्व-प्रथम आविष्कृत हुई रावलपिण्डी के पास ही सोहान् घाटी में। अतः इसका नाम पड़ा सोहान् संस्कृति। प्रथम संस्कृति का केन्द्र था प्राचीन दक्षिण भारत या आज के मद्रास अंचल में, इसलिये इसका नाम हुआ मद्रासीय संस्कृति। ये दोनों सांस्कृतिक धारायें तुषार-युग या प्लिस्टोसीन युग के मध्य-भाग में मध्य भारत में, विशेषतः नर्मदा अंचल में, आकर मिल गयीं थीं। इन दोनों संस्कृतियों का संमिश्रण—गुजरात के साबरमती अंचल में भी दीख पड़ता है। तुषार-प्लावन-युग की परिवर्तन-शील परिस्थितियों में आदि-मानवों को हिमपात और प्लावन के कारण कभी उत्तर से दक्षिण तो कभी दक्षिण से उत्तर तो जाना ही पड़ता था। फलतः उनकी संस्कृतियों का तरह-तरह से संमिश्रण हुआ। आदि मानव व उसके समसामयिक जीव-जन्तुओं का यह सुदूर-विस्तृत अभियान और आदि-मानवों का विभिन्न-देशीय संस्कृति-संक्रमण तुषार-युग के अन्यतम वैशिष्ट्य भी बने रहे।

तुषार-युग के जीव-जन्तुओं का अभि-यान योरोप व अफ्रिका में भी फैला था। तब योरोप अफ्रिका से स्थल-सेतु द्वारा जुड़ा था। अतः तुषार-युग के योरोप में अफ्रिका के जीव जन्तु जैसे हाथी, गैंडा, जल-हस्ती

बन्दर-पूर, पालित पशु, चीता, सिंह आदि के जीवाश्म मिले हैं। इनमें बहुत से जीव-जन्तुओं की किस्मों का तो आज नामो-निशान भी नहीं रहा। इधर पूर्व व दक्षिण-पूर्व एशिया में भी उत्तर भारत व चीन से लेकर बर्मा, जावा और मलयपर्यन्त स्तन्य-पायी प्राच्य जीव-जन्तुओं का आना-जाना जारी था अतः उत्तर भारतमें शिवालिक और मध्य भारत में नर्मदा-घाटी वाले अनेक स्तन्य-पायी जीव-जन्तुओं के जीवाश्म भी बर्मा और जावा तक मिले हैं। पूर्व-पाषाण-युग के अस्त्र-शस्त्रों के फैलाव द्वारा भी यह स्पष्ट ही है कि, एशिया में भी आदि-मानव का अभियान सुदूरवर्ती था। पाषाण-युगकी भारतीय की संस्कृति के साथ, एक ओर, जैसे पूर्व व दक्षिण पूर्व एशिया की संस्कृति का योग-सूत्र था, वैसे ही, दूसरी ओर, पाश्चात्य देशों के साथ भी उसके योग सूत्र का एक प्रमाण है—आदि मानव के पाषाणी कुल्हाड़े वसूलों की प्राप्ति। दक्षिणी भारत की तरह मध्य-पूर्व अफ्रिका में तथा पश्चिमी योरोप में इसी संस्कृति की अनेक मिसालें मिली हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि इस संस्कृतिकी आदि-भूमि है अफ्रिका। आज के भारत और पाकिस्तान में यद्यपि तुषार-युग या पूर्व-पाषाण-युगकी आदि-मानव-संस्कृति के अनेक उदाहरण मिले हैं, पर आज भी आदि-मानव का कोई भी जीवाश्म यहाँ अभी तक नहीं मिल सका। इस लिये इन सब संस्कृतियों के निर्माताओं की आकृति या काया आदि कैसी थीं, हमें कुछ नहीं मालूम परन्तु अनेक विद्वानों की धारणा है कि, मध्य-एशिया व भारत पहला ही मानव- विवर्तन का अन्यतम केन्द्र है।

मद्रासीय संस्कृति की कुछ पत्थर की चीजें।

प्लिस्टोसीन या तुषार-युग के पूर्व-युग में, अर्थात मायोसिन व प्लायोसिन युग के उत्तर भारतीय शिवालिक अंचल में, वन-मानुष (एप्) की कई हड्डियाँ तथा धड़ों का अस्तित्व देखा गया था; इन दोनों की बनावट कुछ अंशों मे मनुष्यों जैसी ही है। परन्तु परवर्ती तुषार-युगमें किसी भी

ते हैं।

र कारीगर-संस्कृति की सहायता से र युग का मानव आत्म निर्भर हुआ से प्राणियों की तरह हत-बुद्धि और र होकर मिट नहीं। कारीगरी मता प्रकृति-सिद्ध नहीं, यह तो मानव पान्त स्वोपार्जित निजी विशेषता है। ा में यह ज्ञान संचित होने पर ही परि- और समुन्नत हुआ। कारीगरी की यह ही मानव को प्रथम व आदि- , उसका प्रथम व प्रधान आविष्कार इसलिये वह अन्य प्राणियों से श विशिष्ट प्राणी—'मानव'—है, र में अपने को स्थायी व सार्थक कर पाया है। यह सच है कि की प्राकृतिक ताण्डव-लीला में व को जंगली और खानाबदोश ताना पड़ी और खाद्य-संग्रह के वन्य प्राणियों की तरह ही अनु- मी होना पड़ा। किन्तु यह भी य है कि उस युग में खेती, पशु-पालन और गृह निर्माण के लिये मानव को सुयोग-सुविधा नहीं मिले थे। इस सुदीर्घ तुषारयुग में मानव की सांस्कृतिक प्रगति भी इसीलिए बहुत ही 'मन्थरा' बनी रही।

हिम-युगीन अन्तिम हिम-प्रवाह रुकने के बाद फिर आबोहवा बदली और क्रमशः मौजूदा स्थिति आयी। विद्वानों की धारणा है कि वर्तमान युग चौथा हिम-विरति-युग है और सुदूर भविष्य में फिर कभी शायद एक हिम-युग की अवतारणा हो सकती है। तुषार युग की तरह यदि फिर प्रचण्ड हिम-प्रवाह शुरू हुआ और चिर-स्थायी रहा, तो जीव जगत में उसका परिणाम भयंकर होगा। पर यह दुर्घटना जल्दी ही घटने की कोई सम्भावना नहीं। यद्यपि कई विद्वान् भविष्यवाणी कर चुके हैं कि, सौ वर्ष में ही एक और तुषार-युग की सूचना मिल सकती है और पृथ्वी का उत्तर अचल क्रमशः एक तुषारास्तीर्ण मरु-भूमि में परिणत हो सकता है। ● अनु : दत्तात्रेय

आदिवासियों के प्रधान का एक शिरस्त्राण

गोजर की परियाँ

अमृता प्रीतम

तब मैं काँगड़ा वैली के एक गाँव में ठहर ी। एक दिन गाँव के एक बुज़ुर्ग आदमी से पूछा : 'और को क में कहीं कुछ देखने लायक हो तो बताएं। ऐसा कोई हो हो जिसके बारे में कोई पुरानी कहानी मशहूर है।'

'पुरानी कहानी ?—यहाँ पास ही में जर मौजूद है, वहाँ और तो देखने लायक कुछ नहीं सिर्फ ू कच्चे घर हैं, और एक बावड़ी है जहाँ लोग जाकर मुरादें माँगते हैं।'

'गोजर ?—यह नाम कैसे पड़ा ?'

'असल में इसका नाम था—'अगोचर।'

'अगोचर ! —कितना अर्थपूर्ण नाम है।'

'हाँ जी'! यह गाँव सघन जंगल से घिरा है। इसके दोनों ओर ऊँची चढ़ाई है। कहते हैं, मुसलमानों के हमलों के वक्त यहाँ कुछ राजे-महराजे आ बसे थे। कहिए, आ छुपे थे! बूढ़े लोग कहते हैं कि यहाँ पाँचों-पांडव भी रहे थे।'

'घने जंगल की वजह से छुप आसान होगा।'

'हाँ जी, कहते हैं असल में य इन्द्र देवता का स्थान था। य आधी रात को इन्द्र की परियाँ नाचा करती थीं, और इ बावली से पानी पीती थीं!'

'पहा ो स्थानों पर पानी की बहुत कद्र होती है। न मिले मीलों तक पानी नहीं मिलता। जहाँ कहीं अच्छा पानी मि जाए, वह बड़ा कीमती स्थान बन जाता है।'

'यही बात है जी! यहाँ छुपने वाली को अच्छा पा मिला। ठौर बहुत था वर्षों वे लोग रहे पर शत्रुओं को उनक सुराग न मिला। इसीलिए इसे वे—'अगोचर' कहते थे। ब बिगड़कर 'गोचर' बन गया। अब हर रोज़ तो नहीं, पर पूनम व रात में इन्द्र की परियाँ अब भी इस बावली से पानी पीने आत हैं, और फिर साथवाले जंगल में नृत्य भी करती हैं।'

'इन्द्र की परियाँ तो शायद ही दिखाई दें, पर बावली तो जरूर दिखाई देगी। आज ही मैं गोजर गाँव जाऊँगी।'

उस बुजुर्ग से रास्ता पूछकर मैं उसी दिन गोजर जा पहुँची। बाँस के सघन वृक्षों को चीरती एक पगडण्डी थी। सचमुच रास्ता बड़ा प्यारा था। बाहर से पगडण्डी या गोजर का कोई निशान नहीं मिलता था।

बावली भी मिल गई। उस की ओट में मकई के खेत थे। रास्ता बहुत ही ऊँचा-नीचा। थोड़े से घर थे, जिनके इर्द गिर्द गायें-भैंस बंधी थीं, पग-डण्डी साफ़ सुथरी नहीं थी।

बावली की ओट में खड़े होकर मैंने देखा—लोगों ने उसकी पत्थर की दीवार पर कई जगह सिन्दूर लगा रखा था। बावली में पानी बहुत थोड़ा और गन्दा था। मैं देखती रही, पर पानी से हाथ न लगा पायी। पानी में छोटे-छोटे मेंढक भी खेल रहे थे।

तभी वहाँ पर एक औरत आयी। *साथ में तीन छोटे-छोटे बच्चे थे। एक गोदी* में, एक अँगुली पकड़े, और एक लड़की पीछे-पीछे। औरत की उम्र तीस बरस की होगी, और बड़ी लड़की छः बरस की। दूसरे बच्चे छोटे थे ही। सब के सफ़ेद रंगों पर मैल की तहें जमी थीं, और इतनी दूर से भी उनके कपड़ों की बदबू आ रही थी। उसकी अपनी कमर, और उसकी लड़की की कमर को एक-एक मोटी-सी रस्सी बँधी थी, जिन्हें खोले हुए जाने कितने दिन बीत गए थे और जिनके नीचे पहने हुए चोली शायद महीनों से नहीं धुले थे। रस्सियों जैसे ही रूखे-भूरे बाल, उनके मुँह पर लटके थे। औरत ने पहले अपने बच्चों के; और फिर अपने कपड़े उतारने शुरू कर दिए—और बावली के मैले पानी में बच्चों को नहलाकर वह स्वयं भी नहाने लगी। साथवाले कच्चे घरों से दो औरतें अपने मटके ले आईं, और उसी पानी में से मटके और कसोरे भर ले गईं। फिर एक पहाड़ी अपनी गायें ले आया; और उसी बावली से उन्हें पानी पिलाने लगा। बावली का पानी छूने के लिए मेरा जो थोड़ा-सा मन हुआ था अब वह भी न रहा।

'यह पानी इन्द्र की परियों को ही मुबारक हो, पीना तो दूर रहा, मुझ से तो यह हाथों से छुआ भी नहीं जाएगा।' मैं लौटनेवाली थी कि एक सुन्दर जोड़ा दिखाई पड़ा। मैं खड़ी रही। आनेवालों में एक तो बहुत ही सुन्दर और बड़ी-बड़ी कानी आँखों-वाला नौजवान था, और दूसरी हँस-मुख प्यारी-सी लड़की थी। दोनों शहरी थे। *नौजवान क्रीम रंग का गर्म सूट पहने था,* गले में उसी के साथ मेल खाती सुनहली धारी की नेकटाई थी। लड़की के शरीर पर लाल सिल्क की साड़ी थी और उस पर *काला गर्म* कोट। ऊँची नीची पगडण्डी से उतरते हुए दोनों ने एक-दूसरे के हाथ का सहारा लिये हँसते-खेलते वे बावली के पास आ खड़े हुए। युवती ने बावली के मटमैले पानी में से अंजली भरी, पहले तो अपनी दोनों आँखों से

अपने कमरे में गए. मेरे हाथ का लिखा हुआ कागज पढ़कर मुझे आवाज दी । मैं इनके कमरे में गई, और मेरे हाथ में अपना पेन देखकर कहने लगे, 'इस कागज पर से 'बंगलौर' काटकर 'दिल्ली' लिख दो। इसी अपने शहर का नाम।' मैंने बहुत पूछा कि आखिर क्यों? पर यह यही कहते गये। मैंने बंगलौर काट कर 'दिल्ली' लिख दिया फिर पूछा तो यह जवाब मिला :

'मैं बंगलौर नहीं जा रहा। सुबह इस्तीफा लिखकर साथ ले गया था और अपने अफसर की मेज पर रखकर कहा कि या मेरी बदली न करो और या यह इस्तीफा मन्जूर कर लो। उन्होंने मेरा इस्तीफा मंजूर नहीं किया, और मेरी बदली का आर्डर वापस ले लिया।'

'पाली ने बड़ी दिलेरी दिखाई पर किस आशा से?' मैंने पूछा।

'यही तो मैं भी सोचती थी, दीदी, मेरे अपने सामने ही आशा का कूल किनारा न था, मैं इन्हें क्या तसल्ली दे सकती थी। पर उस वक्त मुझे यही लगा कि मेरा जो खोने लगा था, वह बच गया है। उसी सप्ताह मेरे पिता जी ने सभी बच्चों को काँगड़ा ले चलने की इच्छा जाहिर की। मा भी साथ थी। हम जब वहाँ काँगड़ा आए, और इस बावली पर भी आए। मैंने इस बावली की कहानी सुन रखी थी। न जाने क्यों एकाएक मुझे यकीन हो उठा और इसका पानी आँखों को लगा कर मुराद माँगी कि, बस मुझे पाली मिल जाय। रास्ता कोई नहीं था। मेरी मा अपने वादे पर अटल थीं। मैं तन-मन से डोल गई थी। तब इस बावली ने ही शरण दी।

'जब हम काँगड़ा से लौटकर दिल्ली आए तो मा ने मेरी रस्में पूरी करने के लिए चीजें मँगाना शुरू कर दिया। घर में गरी, बदाम और छुहारों का ढेर लग गया। मा उन्हें टोकरों में सजा रहीं थीं; तब मुझे लगा कि—बावली ने मुझे वरदान की जगह शाप दे दिया है। मैं भी कैसी बावली हूँ जो इस दन्तकथा पर विश्वास कर बैठी।

'फिर?' मैंने बड़े उतावलेपन से पूछा।

'एक दिन क्या देखती हूँ कि जिस छोटे कमरे में सूखे फलों की टोकरियाँ पड़ी थीं, पाली उसी कमरे में हैं। मैं भी चुपचाप पहुँचकर पीछे खड़ी हो गई। पाली ने सब टोकरियाँ देखीं-भालीं और फिर एक छुहारा लेकर खाने लगे। मुझे इनकी एक बात का काफी पहले पता था कि यह और सब सूखे फल खा लेते हैं, पर छुहारा कभी मुँह से नहीं लगाते। जब पूछो तो कहते थे: 'छुहारा जिन्दगी में पहली बार तब खाया जाता है, जब किसी के साथ अपनी जिन्दगी की बदली करनी हो—अपनी सगाई के समय। उतनी देर आदमी को मुँह सुच्चा रखना चाहिए।' मैं हक्की-बक्की रह गई और इनका हाथ पकड़ लिया। यह भी मुझे देख कर हैरान हो गए।

मैंने इनसे पूछा: 'तुमने यह क्या किया? छुहारा क्यों खा लिया है?' उस मौके पहली बार इन्होंने मुझे अपने की बात बताई।

प्रगतिवाद : एक विश्लेषण

हंसराज 'रहबर'

हाली
नीती

पाँच छः साल हुए प्रगतिशील लेखक संघ का विघटन हो चुका है। जो इस संगठन के विरोधी रहे हैं, वे इस विघटन का निष्कर्ष यह निकालते हैं कि प्रग आंदोलन, साहित्यिक आंदोलन न होकर एक राजनैतिक आंदोलन था। इसका उ साहित्य और कला का विकास न था बल्कि साहित्य के चोले में एक [illegible] और एक विशेष राजनैतिक दल की नीतियों का प्रचार करना था। यह बात चिरस्थ नहीं हो सकती थी। अतः यह आंदोलन अपनी मौत आप मर गया।

बात यहीं खत्म नहीं हो जाती, प्रगतिशील आंदोलन को राजनैतिक आंदो कहने के बाद उनका दूसरा प्रहार मार्क्सवादी जी[illegible]-दर्शन और कम्यूनिस्ट पार्टी पर ह है और वे इस सगठन की असफलता को क[illegible]निस्ट पार्टी की नीतियों और मार्क्सव जीवन-दर्शन की असाहित्यिकता और असफलता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

हाल ही में श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपनी पुस्तक 'काव्य की भूमिका' प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का अन्तर बताते हुए लिखा है : 'जिस बात का मेरी समझ विशेष महत्त्व है, वह यह है कि, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दो भिन्न आंदोलन प्रगतिवाद का खास जोर कवियों के सामाजिक विचार पर था। उसे इस बात की प्र कोई चिन्ता नहीं थी कि ये विचार शुद्ध कविता की शैली में व्यक्त हो रहे हैं, या ग काव्य की रीति से। किन्तु इस बात की उसे चिंता थी, और बहुत अधिक थी, कि कवि

साहित्य में राजनीति के दलविशेष की पताका उठाये चल रहे हैं या नहीं। इसीलिए मेरा मत है कि प्रगतिवाद साहित्यिक आंदोलन नहीं था।'

चूँकि प्रगतिशील आंदोलन में कुछ कवि और लेखक कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य और हमदर्द थे, इसलिए कवि दिनकर का यह मत बना कि 'प्रगतिवाद साहित्यिक आंदोलन नहीं था।' उर्दू के एक बुजुर्ग और पुराने लेखक श्री रशीद अहमद सदीक़ी ने यही बात तीन चार साल पहले यों कही थी: 'प्रगतिवादी कविता अथवा साहित्य का उद्देश्य समाज सुधार अथवा साहित्यिक न था, राजनैतिक और समाजवादी था। उसकी उम्र बीस-पचीस साल से अधिक नहीं है। राजनैतिक और समाजवादी दृष्टि से उसमें चाहे जितनी उन्नति हुई हो, सुधार और साहित्य की दृष्टि से उसे सफलता नहीं मिली...,

ऐसे वक्तव्यों को सही सिद्ध करने के लिए जो युक्तियाँ और प्रमाण जुटाये जाते हैं, वे निश्चित रूप से निराधार और भ्रामक हैं। उनकी छान-बीन करने से इन साहित्यिक महानुभावों का असाहित्यिक और और राजनैतिक रूप हमारे सामने आ जाता है और इस बारे में तनिक भी भ्रम नहीं रह जाता कि वे कम्यूनिस्ट पार्टी के मुक़ाबले में किसी दूसरे विशेष राजनैतिक दल की पताका लहरा रहे हैं और मार्क्सवाद के बजाय अध्यात्म रहस्यवाद अथवा व्यक्तिवाद का दर्शन प्रस्तुत कर रहे हैं।

मैं यहाँ इन महानुभावों की युक्तियों, प्रमाणों और विचारों से बहस नहीं करूँगा, यही देखूँगा कि क्या प्रगतिशील आंदोलन वाकई साहित्यिक आंदोलन नहीं था? किसी भी युग में किसी भी साहित्यिक आंदोलन अथवा कवि या लेखक का राजनैतिक और सामाजिक समस्यों से अलग रह कर विशुद्ध रूप से विशुद्ध साहित्य की रचना करना सम्भव है?

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् १९३६ में हुई। उस समय जो 'घोषणा-पत्र' प्रकाशित हुआ था, उसमें लिखा है कि 'हमारे संघ का उद्देश्य यह है कि साहित्य और ललित कलाओं को रूढ़िवादियों के घातक प्रभाव से मुक्त कराया जाय और उनको जनता के सुख-दुख और संघर्ष का माध्यम बनाकर उस उज्ज्वल भविष्य का मार्ग दिखाया जाय, जिसके लिए मानवता इस युग में प्रयत्नशील है।'

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् १९३६ में हुई लेकिन प्रगतिशील साहित्यिक विचारधारा का जन्म या आरम्भ उस समय से नहीं होता। जब से इस समाज का वर्ग विभाजन हुआ है, तभी से साहित्य और संस्कृति में प्रगतिशील और प्रतिक्रियावाद की दो भिन्न और विरोधी विचारधाराएँ साथ-साथ चलती रही हैं। प्रगतिशील विचारधारा वह थी जो मनुष्य के सामाजिक और राजनैतिक विकास में योग देती थी, उसके चिन्तन को ऐतिहासिक और नैसर्गिक दिशा में अग्रसर और क्रियाशील बनाती थी। इसके विपरीत

मनुष्य अपराधी होंगे, जिनके पास जरूरत से ज्यादा सुख-भोग की सामग्रियाँ हैं। हम भी उन्हें दंड देंगे, हम भी उनसे कड़ी मिहनत लेंगे। जेल से निकलते ही उसने इस सामाजिक क्रांति की घोषणा कर दी ! गुप्त सभाएँ बनने लगीं शस्त्र जमा किये जाने लगे !......'

सन् ३०-३२ के सत्याग्रह आन्दोलन की असफलता के बाद देश की यही स्थिति थी। रमेश ही नहीं बहुत से नौजवानों की आतंकवादी विचारधारा समाजवाद और मार्क्सवाद में परिणत हो गई थी और उन्होंने जेलों से निकल कर किसानों-मजदूरों का संगठन शुरू कर दिया था और अपनी विचारधाराको क्रियान्वित करनेके लिए काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी में भर्ती हो रहे थे। इस आन्दोलन द्वारा नई और निम्नवर्ग की मेहनतकश जनता हमारी राजनीति में खिंच कर आई थी, वह स्वराज और रामराज्य से संतुष्ट नहीं थी। वर्गचेतना उभर आई थी। यह मेहनतकश जनता जानना चाहती थी कि क्या स्वाधीनता के बाद स्वराज्य और रामराज्य में भी धनियों का आधिपत्य होगा ? क्या उस समय भी इसी प्रकार भाग्यवाद और बिना फल की इच्छा के निष्काम भावना से कार्य करते रहने की लोरियाँ सुनाकर हमारी मेहनत का शोषण होता रहेगा ? क्या यह विषमता यों ही बनी रहेगी ? पाप-पुण्य, न्याय-अन्याय और सत्य-असत्य के धार्मिक मूल्यों में विवादकों और नौजवानों का विश्वास नहीं जमता था। खुद प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवादमें से आदर्शवाद की पँखुड़ियाँ रहीं थीं और आदर्शवाद ने उनके यथार्थ की जो सीमाएं निर्धारित कर दी थीं, वे टूट रही थीं। उन्होंने अपनी 'कफन' कहानी में धार्मिक मान्यताओं पर जो बहुत कड़ा प्रहार किया है वह इस पंख के झड़ने का बहुत बड़ा प्रमाण है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में कहा था :

'बंधुत्व और समता, सभ्यता तथा प्रेम सामाजिक जीवन के आरम्भ से ही, आदर्शवादियों के सुनहले स्वप्न रहे हैं। धर्म-प्रवर्तकों ने धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक बंधनों से इस स्वप्न को सचाई बनाने का सतत किन्तु निष्फल यत्न किया है। महात्मा बुद्ध, हजरत ईसा, हजरत मुहम्मद आदि सभी पैगम्बरों और धर्म-प्रवर्तकों ने नीति की नींव पर इस समता की नींव खड़ी करनी

चाही ; पर किसी को सफलता न मिली और छोटे-बड़े का भेद जिस निष्ठुर रूप में आज प्रकट हो रहा है, शायद कभी न हुआ हो।

'आजमाये को आज़माना मूर्खता है' इस कहावत के अनुसार यदि हम अब भी धर्म और नीति का दामन पकड़ कर समानता के ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचना चाहें, तो विफलता ही मिलेगी।' इसके विपरीत इन परिस्थितियों में, वह मश्विरा देते हैं, कि हमें एक ऐसे नए संगठन को सर्वांगपूर्ण बनाना है, जहाँ समानता केवल नैतिक बंधनों पर आश्रित न रहकर अधिक ठोस रूप प्राप्त कर ले। हमारे साहित्य में उसी आदर्श को सामने रखना है।'

विषमता मिटाने और समानता लाने के इस आदर्श को सम्मुख रखकर जीवन की ई व्याख्या करना, नैतिकता के नए मानदंड निर्धारित करना और उन्हें स्वीकार कराने ; लिए जनसाधारण में मानसिक परिवर्तन लाना यथार्थवादी साहित्य का काम था। और स साहित्य ने प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन और संगठन के रूप में यह जिम्मेदारी रण की थी।

विषमता को समाप्त करने का धार्मिक ढंग उपदेश और सुधार है, जिसे हमारे युग गांधीजी ने 'सत्याग्रह' और 'हृदय परिवर्तन' के सिद्धान्त द्वारा राजनैतिक रूप दिया। ह वर्ग-संघर्ष का नहीं वर्गों के समष्टी-करण का मार्ग है और विनोबा जी के भूदान का ी यही मार्ग है।

विषमता मिटाने का बौद्धिक और वैज्ञानिक ढंग मार्क्स ने बताया है। यह मजदूर र्ग के नेतृत्व में मेहनतकश जनता के संगठन अर्थात वर्ग-संघर्ष का मार्ग है। शोषित और शासित जनता संगठित होकर शोषक और शासक वर्ग से सत्ता छीनेगी, व्यक्तिगत म्पत्ति और शोषण के साधनों का राष्ट्रियकरण कर विषमता को सदा के लिए समाप्त रेगी। इसके द्वारा धीरे-धीरे राज्य (state)का—जो शोषकवर्ग के हाथ में शोषित जनता ो दबाये रखने का हथियार है, समाज का कोढ़ है—विलय होगा। यह युग-परिवर्तन की क लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया है।

अब तक विश्व राजनीति और साहित्य पर मार्क्सवाद का जो प्रभाव पड़ चुका था, ह हम सब को विदित है। इस स्थिति में हमारे साहित्य और राजनीति पर भी इस वेचारधारा का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। अगर देखा जाय तो हमारी राजनैति और मारे साहित्य में गांधीवाद और मार्क्सवाद में तीव्र संघर्ष ही से शुरू होता है।

अतएव प्रगतिशील लेखक संघ में मार्क्सवाद, समाजवादी और साम्यवादी लेखक

भी शामिल थे। इस युग में जहाँ धर्म और धार्मिक मान्यताओं पर कडु प्रहार हुए वहाँ गांधीवाद के खिलाफ भी बहुत कुछ लिखा गया। लेकिन जो कुछ लिखा गया वह सब मार्क्सवादी और वैज्ञानिक नहीं था और प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा जो स्वीकृत हुआ था उसमें मार्क्सवादी सिद्धान्तों को आंदोलन का आधार या विश्वास नहीं माना गया था। सज्जाद जहीर ने अपनी पुस्तक 'रोशनाई' में इस घोषणा-पत्र का उल्लेख करते हुए लिखा है :—'इस घोषणा पत्र का सारांश दो शब्दों में स्वाधीनता प्रेम और जनतंत्रवाद है, मानव जीवन के विकास और उन्नयन से लगाव है। इस कम से कम शर्त को मानना उसके लिए जरूरी है। दूसरे शब्दों में, एक लेखक स्वाधीनता और लोकतंत्र का विरोधी और प्रगतिशील एक साथ नहीं हो सकता। लेकिन अगर वह स्वाधीनता प्रेमी और जनतंत्रवादी है तो उसके उसे अधिकार है कि चाहे वह हिंदू मत या इस्लाम की धार्मिक मान्यताओं को अपनाये, चाहे अफलातूनी दर्शन को सही माने, चाहे सूफीवाद और भक्ति को, चाहे मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को, चाहे गौतम बुद्ध के निर्वाण के दर्शन को या महात्मा गांधी के अहिंसावाद को। उसे अधिकार है कि अपने साहित्यिक कृतियों द्वारा वह इनमें से किसी भी या इनके अलावा किसी और जीवन-दर्शन अथवा विश्वास का प्रचार और प्रसार करे।'

यह एक प्रकार के स्वाधीनता-संग्राम का साहित्यिक संयुक्त मोर्चा था, जिस कांग्रेस ही की तरह हर विचार के लोग शामिल थे। प्रेमचन्द इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। वह तो मार्क्सवादी या समाजवादी नहीं थे किन्तु अपनी साहित्यिक निष्ठा, जन-सम्पर्क और अनुभव द्वारा इस परिणाम पर पहुँचे थे कि धर्म अथवा हृदय परिवर्तन द्वारा यह विषमता खत्म नहीं होगी, हमें इसके लिए धार्मिक मान्यताओं और विश्वासों से आगे बढ़ना है। लेकिन कैसे और किस दिशा में, यह खुद उन्हें मालूम नहीं था। मजदूर वर्ग की ऐतिहासिक क्रान्तिकारी भूमिका को उन्होंने समझा और जाना नहीं था; इसलिए उनके लिए मजदूर वर्ग के नेतृत्व को स्वीकार करने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। उन्होंने अपने नाम विश्वास को व्यक्त करने के लिए 'कफन' के रघू और माधव का निर्माण किया। निस्संदेह उन्हें ऐसा बनाने के लिए शोषण और धर्म पर निर्धारित यह समाज जिम्मेदार हैं। लेकिन वह विशुद्ध रूप से अराजकतावादी हैं। उनके जीवन का कोई आदर्श या लक्ष्य नहीं है।

अब इसी 'कफन' कहानी को साहित्य का आदर्श और परम्परा मानकर नए लेखकों ने धार्मिक मान्यताओं, और हर तरह की नैतिकता और आचार पर प्रहार करते

शुरू किये। आवारा, बदमाश, चोर, जेब-कतरों और रंडियों के दलाल से सहानुभूति जताकर समाज-विद्रोह का परिचय दिया जाने लगा। लेकिन यह विद्रोह हड़कम्प मात्र था। अज्ञेय ने 'त्रिशंकु' में ठीक यही शब्द इस्तेमाल किया है क्योंकि इसकी कोई दिशा नहीं थी। इस हड़कम्प का परिणाम अनाचार और अराजकता ही हो सकता था। इस प्रकार का अनाचार और अराजकता आंद्रे जीद, जेम्स ज्वॉयस, समरसट मॉम और इलियट आदि ने पाश्चात्य साहित्य में बहुत फैलायें हैं। हमारे ये नौजवान लेखक प्रायः इन्हीं लेखकों से प्रभावित थे अतः वे अराजकतावादी और व्यक्तिवादी थे।

संक्षेप में यह रूढ़िग्रस्त समाज को मिटाने का सिद्धान्त है क्योंकि फ्रायडवाद यही कि समाज ने अपनी सभ्यता और नैतिकता के बन्धन लादकर व्यक्ति से उसकी स्वाधीनता छीन ली है। यह बात उसके अवचेतन में निहित है। इसलिए व्यक्ति समाज के विरुद्ध विद्रोह करता है और बर्बरता और अराजकता के उस युग में जाना चाहता है, जिसमें वह पूर्णरूप से स्वाधीन और स्वतंत्र था, जिसमें सिर्फ शक्ति और सामर्थ्य ही हर बात के निर्णायक थे।

अब जिस प्रकार जल-प्रवाह दो किनारों से सीमित होकर ही नदी बनता है इसी प्रकार जिम्मेदारी से सीमित होकर ही स्वच्छंदता 'स्वाधीनता' बनती है। बिना सामाजिक जिम्मेदारी के स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं, इसी प्रकार बिना केन्द्रीय शक्ति और नियंत्रण के लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं। अतएव अराजकता और व्यक्तिवाद समाज-विरोधी दर्शन है, इसीलिए यह स्वाधीनता और लोक-तंत्र-विरोधी भी है क्योंकि समाज से बाहर स्वाधीनता और लोकतंत्र का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

मार्क्सवाद समाज को मिटाना नहीं चाहता, समाज और सभ्यता का विकास चाहता है। इस वर्ग-विभाजन और शोषण पर निर्धारित समाज को वर्ग-हीन और शोषण-रहित बनाना चाहता है। कार्ल मार्क्स का कहना है कि जिस ऐतिहासिक प्रक्रिया से समाज अब तब तक बदलता आया है और पुराने समाज के गर्भ से नए समाज का जन्म होता आया है, उसी ऐतिहासिक प्रक्रिया के अनुसार पूँजीवादी समाज से श्रमजीवी समाज का जन्म होगा। प्रगतिशील लेखक संघ में जो नौजवान लेखक मार्क्सवाद को मानते थे, उनमें से भी बहुत ही कम इस समाज-गति-शास्त्र की ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझते थे। मुख्यतः वे भी पाश्चात्य साहित्य से ही प्रभावित थे। वास्तव में वे व्यक्तिवादी ही थे। मार्क्स का कहना है कि अपराध के लिए व्यक्ति नहीं, समाज जिम्मेदार है। जिन सामाजिक और भौतिक परिस्थितियों में आवारा, बदमाश, चोर और जेब-कतरे बनते हैं, उन परिस्थियों को बदल दो तो आवारा, चोर और जेब-कतरे भी नहीं रहेंगे। इस बात को लेकर इन तथाकथित मार्क्सवादियों ने भी गुंडों, बदमाशों, आवारा और चोरों से सहानुभूति दर्शाना शुरू किया और जाने-अनजाने अराजकता और अनाचार को

प्रोत्साहित किया। साहित्य की तथा इस नई प्रवृत्ति को मानवतावाद का नाम दिया गया; सच तो यह है कि मानवतावाद का निहायत भोंडा और विकृत रूप यही था।

यों इन नौजवान मध्यवर्गीय लेखकों ने व्यक्ति की स्वाधीनता के नाम पर कितनी विकृतियों और विकारों को समाज और साहित्य पर आरोपित किया। अपने अल्पज्ञता और अल्प-अनुभव के कारण युग के तकाजा को न समझते हुए साहित्य के एक ऐतिहासिक मोड़ को गलत दिशा दी, सिर्फ़ सामाजिक परम्पराओं और धार्मिक मान्यताओं को ही नहीं तोड़ा बल्कि सुप्रतिष्ठित साहित्यिक परम्पराओं और मान्यताओं को भी तोड़ा, जिससे साहित्यिक रूप-विधान और शिल्प में एक अराजकता को प्रोत्साहन दिया और इसी साहित्यिक अराजकता का नाम प्रयोगवाद है।

शुरू में प्रगतिशील प्रयोगवादी और प्रयोगवादी प्रगतिशील थे। उस समय राजनीति में सामाजिक, मानसिक और राजनैतिक पराधीनता से मुक्ति पाने की बातें बड़े ज़ोर-शोर से हो रही थीं। इनके दिशा-हीन विद्रोह अर्थात हड़कम्प ने भी राजनीति का रूप धारण किया। इनके इस हड़कम्प से घबराकर पुराने और अनुभवी लेखक आदोलन से दूर हटते गये और दूर हटनेवाले प्रतिक्रियावादी और रूढ़िवादी कहलाते रहे। मैदान इनके हाथ रहा। इन विद्रोही नौजवानों ने न सिर्फ साहित्यिक संगठन को बल्कि राजनीति को भी ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त करने का साधन बनाया। राजनीति में समाज के प्रगति-शास्त्र को समझनेवाले लोग कम थे, इसलिए राजनीति से भी साहित्य के थोथे जोश और हड़कम्प को जाने-अनजाने बल मिलता रहा।

लेकिन युद्ध काल में और उसके बाद, जब दमन-चक्र चला तब राजनैतिक दबाव बना तो दूध पीनेवाले मजनूँ इस आंदोलन से अलग होने लगे। ये अलग होनेवाले व्यक्ति ही प्रयोगवादी कहलाये और ये ही वे लोग हैं जो अब विशुद्ध साहित्य और विशुद्ध साहित्यिक मान्यताओं की बात करते हैं, हालाँकि उनकी अपनी *कोई साहित्यिक* मान्यताएँ नहीं हैं क्योंकि व्यक्तिवाद और अराजकता की कोई मान्यताएँ नहीं होतीं।

ऐसे ही लोग 'घर का भेदी लंका ढाये' के अनुसार प्रगतिशीलता के कट्टर विरोधी बने। ये ही प्रगतिशील आंदोलन को राजनैतिक आदोलन और कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रचार करने लगे। इनके ऐसे प्रचार के *प्रभाव* से दूसरे लोग भी प्रगतिशील साहित्य, अथवा प्रगतिवाद को मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर आधारित बताने लगे। प्राय. ऐसा बताने वालों को भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता, और अगर होता है तो वे जानबूझ कर उन्हें तोड़ते-मरोड़ते हैं और इस साहित्य को किसी विशेष दल का राजनैतिक प्रचार वाणी कहकर बदनाम करने की पूरी कोशिश करते हैं।

इन आरोपों द्वारा वे किस सामाजिक व्यवस्था अथवा किस जीवन-दर्शन की सेवा

कर रहे हैं, ये इनके व्यवहार और आचरण से ही विदित है। मुझे सिर्फ यही कहना है कि इस युग में हमारे साहित्य पर मार्क्सवाद का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जो साहित्यकार इस आंदोलन से बाहर थे, मार्क्सवादी विचारधारा ने उनको भी प्रभावित किया है। अगर 'दिनकर' अपने वर्तमान साहित्यिक चिन्तन का विश्लेषण करें तो देखेंगे कि उनके इस चिन्तन के निर्माण में मार्क्सवाद का काफी हाथ है। उनका 'कुरुक्षेत्र' काव्य इसी प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन की देन है, जिसे वह आज राजनैतिक आंदोलन कहते हैं।

अगर प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन और संगठन खत्म हुआ तो इस कारण नहीं कि उसकी बुनियाद मार्क्सवाद पर थी अथवा प्रगतिशील लेखक एक विशेष राजनैतिक दल की पताका लहराते थे। तब कम्यूनिस्ट पार्टी का भी विघटन हो जाता। वास्तव में इस विघटन का कारण यह है कि उसमें हड़कम्प मचानेवाले समाज विरोधी तत्त्व ही अधिक थे, जो साहित्य को कुछ गलत दिशाएँ ही दे सके और अंतर्विरोध और असंगतियाँ ही बढ़ाते रहे। जब किसी आंदोलन और संगठन में असंगतियाँ इस कद्र बढ़ जाती हैं कि उनका समाधान और सुधार सम्भव नहीं रह जाता तब उसका अन्त और विघटन अनिवार्य हो जाता है।

हम अगर वाकई अपने साहित्य का नैसर्गिक विकास चाहते हैं तो इस दिग्भ्रम को दूर करना ही पड़ेगा। इस भूल को समझने और सुधारने में मार्क्सवाद से बहुत मदद मिल सकती है। डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में प्रगतिशील साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है :

'प्रगतिवादी साहित्य मार्क्स के प्रचारित तत्त्व-दर्शन पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार (१) संसार स्वरूप भौतिक है, वह किसी चेतन सर्वसमर्थ सत्ता का विवर्त या परिणाम नहीं है। (२) उसकी प्रत्येक अवस्था की व्याख्या की जा सकती है। कुछ भी अज्ञेय या अचिंत्य नहीं है, कुछ भी रहस्य या उलझनदार नहीं है। इस मत को माननेवाला साहित्यिक रहस्यवाद में विश्वास नहीं कर सकता, प्रकृति या ईश्वर के निष्ठुर परिहास की बात नहीं सोच सकता। (३) इस मत में समाज निरन्तर विकासशील संस्था है। आर्थिक विधानों के परिवर्तनों के साथ साथ समाज में भी परिवर्तन होता है। इस मत को स्वीकार करनेवाला साहित्यिक समाज की रूढ़ियों को सनातन से आया हुआ, शासक या ईश्वर निर्भ्रान्त आज्ञाओं पर बना हुआ और उच्च-नीच मर्यादा को अपरिवर्तनीय सनातन विधान नहीं मान सकता। इस प्रकार प्रगति-

प्रोत्साहित किया। साहित्य की तथा इस नई प्रवृत्ति को मानवतावाद का नाम दिया गया; सच तो यह है कि मानवतावाद का निहायत भोंडा और विकृत रूप यही था।

यों इन नौजवान मध्यवर्गीय लेखकों ने व्यक्ति की स्वाधीनता के नाम पर अपनी विकृतियों और विकारों को समाज और साहित्य पर आरोपित किया। अपने अल्पज्ञता और अल्प-अनुभव के कारण युग के तकाजा को न समझते हुए साहित्य के एक ऐतिहासिक मोड़ को गलत दिशा दी, सिर्फ सामाजिक परम्पराओं और धार्मिक मान्यताओं को ही नहीं तोड़ा बल्कि सुप्रतिष्ठित साहित्यिक परम्पराओं और मान्यताओं को भी तोड़ा, जिससे साहित्यिक रूप-विधान और शिल्प में एक अराजकता को प्रोत्साहन मिला और इसी साहित्यिक अराजकता का नाम प्रयोगवाद है।

शुरू में प्रगतिशील प्रयोगवादी और प्रयोगवादी प्रगतिशील थे। उस समय राजनीति में सामाजिक, मानसिक और राजनैतिक पराधीनता से मुक्ति पाने की बातें भी जोर-शोर से हो रही थीं। इनके दिशा-हीन विद्रोह अर्थात हड़कम्प ने भी राजनीति का रूप धारण किया। इनके इस हड़कम्प से घबराकर पुराने और अनुभवी लेखक आंदोलन से दूर हटते गये और दूर हटनेवाले प्रतिक्रियावादी और रूढ़िवादी कहलाते रहे। मैदान इनके हाथ रहा। इन विद्रोही नौजवानों ने न सिर्फ साहित्यिक संगठन को बल्कि राजनीति को भी ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त करने का साधन बनाया। राजनीति समाज के प्रगति शास्त्र को समझनेवाले लोग कम थे, इसलिए राजनीति से भी साहित्य के थोथे जोश और हड़कम्प को जाने-अनजाने बल मिलता रहा।

लेकिन युद्ध काल में और उसके बाद, जब दमन-चक्र चला तब राजनैतिक दल बना तो दूध पीनेवाले मजनूँ इस आंदोलन से अलग होने लगे। ये अलग होनेवाले व्यक्ति ही प्रयोगवादी कहलाये और ये ही वे लोग हैं जो अब विशुद्ध साहित्य और विशुद्ध साहित्यिक मान्यताओं की बात करते हैं, हालाँकि उनकी अपनी कोई साहित्यिक मान्यताएँ नहीं हैं क्योंकि व्यक्तिवाद और अराजकता की कोई मान्यताएँ नहीं होतीं।

ऐसे ही लोग 'घर का भेदी लंका ढाये' के अनुसार प्रगतिशीलता के कट्टर विरोधी बने। ये ही प्रगतिशील आंदोलन को राजनैतिक आंदोलन और कम्यूनिस्ट पार्टी का प्रचार करने लगे। इनके ऐसे प्रचार के प्रभाव से दूसरे लोग भी प्रगतिशील साहित्य, अथवा प्रगतिवाद को मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर आधारित बताने लगे। प्रायः ऐसा बताने वालों को भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं होता, और अगर होता है तो वे जानबूझ कर उन्हें तोड़ते-मरोड़ते हैं और इस साहित्य को किसी विशेष दल का राजनैतिक प्रचार वाणी कहकर बदनाम करने की पूरी कोशिश करते हैं।

इन आरोपों द्वारा वे किस सामाजिक व्यवस्था अथवा किस जीवन-दर्शन की सेवा

कर रहे हैं, वे उनके व्यवहार और आचरण से ही विदित है। मुझे सिर्फ यही कहना है कि इस युग में हमारे साहित्य पर मार्क्सवाद का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। जो साहित्य-कार इस आंदोलन से बाहर थे, मार्क्सवादी विचारधारा ने उनको भी प्रभावित किया है। अगर 'दिनकर' अपने वर्तमान साहित्यिक चिन्तन का विश्लेषण करें तो देखेंगे कि उनके इस चिन्तन के निर्माण में मार्क्सवाद का काफी हाथ है। उनका 'कुरुक्षेत्र' काव्य इसी प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन की देन है, जिसे वह मात्र राजनैतिक आंदोलन कहते हैं।

अगर प्रगतिशील साहित्यिक आंदोलन और संगठन खत्म हुआ तो इस कारण नहीं उसकी बुनियाद मार्क्सवाद पर थी अथवा प्रगतिशील लेखक एक विशेष राजनैतिक न की पताका लहराते थे। तब कम्यूनिस्ट पार्टी का भी विघटन हो जाता। वास्तव में इस विघटन का कारण यह है कि उसमें हुड़दंग मचानेवाले समाज विरोधी तत्व ही अधिक थे, जो साहित्य को कुछ गलत दिशाएँ ही दे सके और पंथविरोध और असंगतियाँ बढ़ाते रहे। जब किसी आंदोलन और संगठन में असंगतियाँ इस कदर बढ़ जाती हैं कि उनका समाधान और सुधार सम्भव नहीं रह जाता तब उसका अन्त और विघटन अनिवार्य हो जाता है।

हम अगर वाकई अपने साहित्य का नैसर्गिक विकास चाहते हैं तो इस विघटन को दूर करना ही पड़ेगा। इस भूल को समझने और सुधारने में मार्क्सवाद से बहुत मदद मिल सकती है। डॉक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में प्रगतिशील साहित्य की परिभाषा करते हुए लिखा है :

'प्रगतिवादी साहित्य मार्क्स के प्रचारित तत्त्व-दर्शन पर आधारित है। इस विचारधारा के अनुसार (१) संसार स्वरूप भौतिक है, वह किसी चेतन सर्वसमर्थ सत्ता का विवर्त या परिणाम नहीं है। (२) उसकी प्रत्येक अवस्था की व्याख्या की जा सकती है। कुछ भी अज्ञेय या अचिंत्य नहीं है, कुछ भी रहस्य या उलझनदार नहीं है। इस मत को माननेवाला साहित्यिक रहस्यवाद में विश्वास नहीं कर सकता, प्रकृति या ईश्वर के निष्ठुर परिहास की बात नहीं सोच सकता। (३) इस मत में समाज निरन्तर विकासशील संस्था है। आर्थिक विधानों के परिवर्तनों के साथ साथ समाज में भी परिवर्तन होता है। इस मत को स्वीकार करनेवाला साहित्यिक समाज की रूढ़ियों को सनातन से आया हुआ, शासक या ईश्वर निर्भ्रान्त आज्ञाओं पर बना हुआ और उच्च-नीच मर्यादा को अपरिवर्तनीय सनातन विधान नहीं मान सकता। इस प्रकार प्रगति-

भारतीय संविधान पर एक दृष्टि

हेमचन्द्र जैन

लोक-तंत्र शासन-व्यवस्था के विकास परिणाम है और इतिहास से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित है। मानव की अनुभूति-अभिव्यक्ति के विकास, परिष्कार, परिवर्तन के साथ साथ शासन-तंत्र में विकासात्मक तथा कभी कभी गुणात्मक परिवर्तन देशगत परिस्थितियों एवं वस्तुगत तथ्यों के अनुसार-अनुरूप होते रहे हैं। ऐतिहासिक शासन-व्यवस्था का आकलन करने पर स्पष्ट होता है कि कभी शासन तंत्र रचनात्मक आधार पर अधिक स्थिर रहा और कभी वैचारिकता की ओर। उपयुक्त शासन-तंत्र-प्राप्ति के लिये सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग कर मानव दोषमुक्त शासन-प्रणाली कभी न प्राप्त कर सका। कहने का तात्पर्य यह है कि शासन-प्रणाली के कार्यान्वय एवं विकास की गति मानव-विकास के स्तर के साथ साथ चलने में सदा ही असमर्थ रही है।

वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य भी जगत् या प्रकृति के विकास की परम्परा का ही साधन है, स्वयं साध्य नहीं। मानव में एक सीमित अवधि-विशेष के अनन्तर भावना और विचारणा के क्षेत्र में अन्तर-परिवर्तन होते रहते हैं। अतः उसी के द्वारा प्रतिपादित शासन-तंत्र उसी के जीवन में 'अप-टु-डेट' न होकर 'आउट ऑफ डेट' हो जाता है।

आज के अंतराष्ट्रिय जगत् में जितने प्रकार की भी शासन-पद्धतियाँ हैं वे अंशतः या पूर्णतः सफल नहीं कही जा सकती हैं,—इस प्रकार का दोषारोपण एकपक्षीय व अचल-वर्गीय है। वास्तव में जो सचेतन नागरिक हैं वे ही व्यवहारिक जीवन में शासन-प्रणाली को प्रस्तुत करते हैं। अतः शासन-पद्धतियाँ अवगुणयुक्त नहीं है वरन् उनके द्वारा जो दोष सन्मुख उपस्थित होते हैं वे हो मानव की कमियों-अभावों का प्रतिफलन करते हैं। इसलिये प्रत्येक देश-विशेष की शासन-प्रणाली उस देश के निवासियों की राजनैतिक क्षमताओं, सीमाओं, कमियों, मान्यताओं और योग्यताओं आदि का प्रतिबिम्ब होती हैं। शासन-पद्धति मानव के लिये है न कि मानव शासन-प्रणाली के लिए। शासन-तंत्र मानव की सर्वतोमुखी उन्नति के विकास-क्रम का एक सबल साधन है—साध्य नहीं। साध्य तो एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें स्वतंत्रता-समानता-सुरक्षा

का आधार—'एक सबके लिये और सब एक के लिये'—यह भावना हो, और जिसका लक्ष्य हो सर्व-जन-हित या सबका अभ्युदय।

यह सदा ही आलोच्य विषय रहा है कि भारतीय संविधान का निर्माण जनता के प्रतिनिधियों द्वारा नहीं हुआ है, वह तो अधिकांशतः विदेशी शासन पद्धतियों का अनुकारी प्रतिरूपमात्र है। वह भारतीय परम्परा एवं नवीन भारतीय परिस्थितियों के समन्वय से नहीं बल्कि विदेशी विचारों की पृष्ठभूमि और आधार पर बना है। कुछ विद्वानों का कथन है कि यदि भारतीय संविधान का ढांचा नागरिकों द्वारा उद्भूत भावनाओं के आधार पर खड़ा किया जाता तो वह अपने क्षेत्र में विश्व की एक मौलिक देन होता। पर भारतीय संविधान एक ऐसा लिखित, अपेक्षाकृत सरलतया परिवर्त्य, विधान-प्रलेख है जिसका यदि ढांचा है अमेरीकी संविधान तो चमड़ा है ब्रिटेन का संविधान और साध्य है रूस के संविधान से उधार लिया गया साम्यवाद। संक्षेप में, भारतीय संविधान का शासन (साधन-पक्ष) पूंजीवादी और साध्य (अर्थ-पक्ष) साम्यवादी व्यवस्था पर आधारित है अर्थात् भारत पूंजीवादी साधनों या आधार पर साम्यवादी प्रासाद या साध्य खड़ा करना चाहता है। अतः यह अनमेल मिश्रण का प्रयोग सस्ती खिचड़ी के समान है। इसके अतिरिक्त भारतीय संविधान बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता—क्योंकि उसका निर्माण एक ऐसी भारत में हुआ जो हमारी गुलामी का अवशेष थी। हम बाह्य दृष्टि से अवश्य स्वतंत्र हो गये परन्तु भावना की दृष्टि से आज भी गुलाम हैं—इनके अलावा और भी अनेक ऐसे ही आलोचनाएं भारतीय संविधान को लेकर की जाती हैं।

जब भारतीय संविधान सभा का निर्माण हुआ था तब देश सक्रान्तिकाल से गुजर रहा था तथा अप्रत्याशित विभाजन के कारण देश की एकता और स्वतंत्रता को स्थायित्व देने का प्रश्न था। अतः जन. द्वारा निर्वाचित राज्यों के प्रतिनिधि देशी रियासतों के प्रतिनिधि नामजद, उनके द्वारा ही संविधान-सभा का [illegible] हुआ। समय और धन का बचाने के लिये पुनः चुनाव [illegible] आवश्यक नहीं थी। संविधान सभा में बड़े राष्ट्रीय राजनैतिक दल बहुमत था और कांग्रेस पर जनता की [illegible] निष्ठा थी। अतः पर्यवेक्षण-पद्धति विमुख हो आम चुनाव कार्यान्वित [illegible] के हित को राजनैतिक दलदल में [illegible] अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ा।

वर्तमान संविधान को एक वर्ग-वि[illegible] हितों का संरक्षक कहना भी तथ्यसंगत है। संविधान सभा ने भारतीय परम्परा ध्यान में रखकर अनेक देशों की पद्धतियों के प्रयोगों पर बहुत काफी वा[illegible] विवाद के उपरान्त विदेशी [illegible] अभिज्ञता से लाभ उठाकर ही लगभग ३ (२ वर्ष ११ माह २८ दिन) में भारत [illegible] लिये एक आदर्श शासन-पद्धति प्रतिपा[illegible] की थी जो विवेचन-पद्धति के [illegible] मौलिक एवं प्रतिभा और विद्वत्ता के

का फल है। अतः सच तो यह है कि भारतीय संविधान में अनुकरण प्रवृत्ति के बजाय अनुभव का लाभ ही अधिक है।

विद्वान् आलोचक भारतीय संविधान को लोकतंत्रात्मक कहते हैं। यह एकात्मक होते हुए भी संघात्मक और संघात्मक होते हुए भी एकात्मक है। भारतीय राज्यसंघ में [कश]मीर ही एक ऐसा राज्य है जो अमेरिका-[ि]य के राज्यों के समान है। अमेरिका संघ [क]ा तो निर्माण ही राज्यों के द्वारा हुआ है [अ]र्थात् विकेन्द्रीकरण से केन्द्रीकरण हुआ [है]। अमेरिका के समस्त राज्यों ने केन्द्र को [स]ार्वभौमिक हित, जैसे, विदेशी व्यापार, [र]ाष्ट्रिय सुरक्षा समाचार-सवाद-संवहन [आ]दि विषयों से संबंधित अधिकार दे दिये [है]ं, जिससे राष्ट्रिय हित में सामान्य अधि-कार बाधक न हों। यही स्थिति भारतीय संविधान में कश्मीर की है। किन्तु केन्द्री-[क]रण के कारण कुछ व्यक्ति भारत की [संस]दीय पद्धति को असफल घोषित करते हैं [औ]र इस प्रयोग को भारतीय जीवन और लोक-नीति के विरुद्ध प्रतिपादित करते हैं।

कुछ आलोचक संविधान में उल्लिखित नागरिक-मूल-अधिकारों और शासन की आचार-संहिता (संविधान के नीति-निर्देशक तत्त्व) को आधार बनाकर यह व्यावहारिक आलोचना करते हैं कि भारत में एकात्मक संविधान की शासन-पद्धति-वाले देशों के समान नौकरशाही और लाल-फीताशाही की वृद्धि हो रही है तथा इस प्रकार का विकास नागरिक भावों के उद्भव-विकास में बाधक है। वास्तव में, भारतीय संविधान का साध्य ही ये नीति-निर्देशक तत्त्व हैं—नागरिक सरकार या शासन द्वारा नीति-निर्देशक तत्त्वों के कार्यान्वय की मांग नहीं कर सकता परन्तु उत्तरदायी शासन-प्रणाली के कारण समष्टि के हित के लिये व्यष्टि के हित को कुर्बान कर शासन इन्हें लागू तो करता ही है। कभी कभी मूल अधिकार 'नीति-निर्देशक-तत्व' में बाधा डालते हैं और शासन को मजबूर होकर उन पर अंकुश लगाना पड़ता है। दूसरा पक्ष यह है कि, जनमत की जागरू-कता व सचेतनता-पर भी मूल अधिकारों का संरक्षण और नीति निर्देशक तत्त्वों का कार्यान्वय निर्भर करता है। ये दोनों एक दूसरे के विपरीत न होकर पूरक हैं— दिशाएँ भिन्न हैं, परन्तु केन्द्र एक ही बिन्दु पर आकर मिलते हैं।

भारतीय संविधान के इस व्यावहारिक कार्यान्वय को देखकर राजनीति-वेत्ताओं का यह मत है कि लोक-तंत्रात्मक शासन भारत में बहुमत या जनसंख्या के बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता—चूँकि भारत में दलों की भरमार है एवं एक स्वस्थ विरोधी दल का अभाव है। भारतीय संसद में कांग्रेस दल को चुनाव में पड़े कुल मतों का एक तिहाई से कुछ अधिक ही भाग मिला है और शेष मत अन्य दलों को। बहुमत की सरकार तो तभी हो सकती है, जब कि सरकार में जनसंख्या के प्रतिनिधि-त्त्व का बहुमत हो। इसलिये बहुमत की सरकार बनाने के लिये विरोधी दलों के प्रतिनिधियों को भी सरकार में

चाहिये। किन्तु ये राजनीति-वेत्ता यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार की सरकार का पक्ष सैद्धान्तिक दृष्टि से तर्कसंगत हो सकता है, किन्तु व्यवहार में—प्रशासनीय कौशल, स्थायित्व और राष्ट्रिय हित तथा एकता की दृष्टि से—बाधक है। फ्रांस में स्थापित वर्तमान पाँचवीं रिपब्लिक इसी मत की पुष्टि करती है। शायद इसीलिये बहुत से लोगों का यही विश्वास है कि 'वही सरकार उत्तम है जो कम से कम शासन करती है', एवं 'सरकार के प्रकारों के लिये मूर्खों को वाद-विवाद करने दो, जो कुछ उत्तम प्रशासित होता है उत्तम शासन-व्यवस्था वही है।'

कुछ लोग स्वतंत्र न्यायपालिका को लेकर भी भारतीय संविधान की आलोचना करते हैं। उनका कथन है कि भारतीय न्याय महँगा है तथा न्याय प्राप्त करने में समय बहुत लगता है जिससे 'कानून का राज्य' स्थापित नहीं हो सकता। न्यायाधीश न्याय देते समय तटस्थ नहीं रह सकता तथा उसका सम्बन्ध उसके व्यक्तित्व से अविच्छिन्न रूप से सम्बन्धित है जिससे कभी कभी 'न्याय यथा होकर' अपराधी को निरपराधी और अपराधी को निरपराधी घोषित कर देता है। न्याय-प्रणाली तथ्यों प्रमाणों और तर्क जाल पर अधिक आधारित है—भावना हृदय से बहुत दूर हो गई है। शासन के तीनों अंगों में अधिकारों के विभाजन की सूक्ष्म-रेखा 'सन्तुलन और शक्ति' के आधार पर नहीं खींची जा सकती, तथा कार्यपालिका के प्रधान द्वारा न्यायाधीशों का चुनाव होने के कारण न्यायाधीश एक सीमा तक निष्पक्ष
स्वतंत्र नहीं हो सकता—अतः न्यायाधी
का प्रत्यक्ष रूप से चुनाव होना चाहि
परन्तु यदि प्रत्यक्ष रूप से भारत में न्या
प्रणाली का संगठन हो तो, भारत में, अ
निष्पक्ष और विचारशील व्यक्ति प्र
दलगत राजनीति से दूर रहते हैं, उन्हें
और कानून के नाजानकर लोग निर्वा
होकर न्याय-विभाग में आयेंगे और न
भी दलगत आधार पर होने लगेगा। पु
न्यायाधीश पुनः चुनाव में जीतने के ि
गैरकानूनी साधनों का प्रयोग को
जिससे न्याय-प्रणाली में भी भ्रष्टा
बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त भार
परिस्थितियाँ भी वह अवसर नहीं दे
इस प्रकार के चुनाव कहाँ तक उचि
जबकि भारतीय नागरिकों में सत्ताको
इस सीमा तक बढ़ गई है कि वे अ
वादिता को आधार मानकर पद-
लिये किसी भी सिद्धान्त और
छोड़ देते हैं? भारतीय स्थानीय
में किस प्रकार संकुचित और स्वार्थी
कोण के व्यक्ति जा घुसे हैं और स्वशा
नगरपालिकाओं, निगमों और पंचाय
को, जो कि नागरिक ज्ञान और राजनी
शिक्षा की प्रारंभिक पाठशालाएँ हैं,
बना रहे हैं, यह भी किसी से छिपा नहीं

भारतीय संविधान में अभी तक जि
संशोधन हुए हैं वे इसीकी पुष्टि करते हैं
सरकार नागरिकों को विकास की अ
सुविधाएं और अवसर देना चाहती है
स्वशासित राज्यों के मार्ग में जो बाधाएं

केन्द्रीय सरकार हटाने की कोशिश
है और उनके नागरिकों के व्यक्तित्व
विकास का रास्ता साफ करती है।
। भाषावार राज्य-रचना के बाद
ान की सरकारी भाषा-संबंधी धारा
लागू करने या संशोधित करने की माँग
ाय कुछ निज अपने राजनैतिक स्वार्थों
ारए राष्ट्रिय हित को भूलकर कर रहे
फिर भी संसद के मन को परिवर्तित
में वे आज इसीलिए असमर्थ हैं कि
ाय सरकार सभी राज्यों का हित
ी है। कारण, देश की स्वतंत्र एकता
प्रतापण बनाने के लिये प्रत्येक भारतीय
सदैव तत्पर रहना चाहिये एवं जो
हित के विरुद्ध संविधान के प्रति प्रत्यक्ष
से अहिंसात्मक तथा परोक्ष रूप से
ात्मक ज्वाला उत्पन्न करते हैं उसका
: उसी रूप में देना चाहिये। स्वतंत्रता
मतलब स्वच्छन्दता और उच्छृंखलता
है। स्वतंत्र नागरिकों को अधिकारों
ने कर्तव्यों के प्रति और 'पर' के
के लिये 'स्व' को बलिदान रहने के
ा सदा तत्पर रहना चाहिये।
भारतीय संविधान भारतवासियों के
ष्टि मन की अचेतन आशाओं का प्रतीक
। आज भारत के प्रति विश्व की बढ़ती
कर्षणशीलता का यही मूल है। विश्व
लोकतंत्री संविधानों के कार्यान्वियवाले
राष्ट्रों में मूलगत परिस्थियों का अन्तर है।
अमेरिका-ब्रिटेन आदि लोकतंत्री देशों में
आर्थिक क्रान्ति के पश्चात् राजनैतिक-क्रांति
हुई अतः वहां की शासन-व्यवस्था आर्थिक
दर्शन पर आधारित न होकर राजनैतिक
दर्शन-प्रधान है। परन्तु रूस में राजनैतिक
क्रांति के बाद भी आर्थिक पुनर्निर्माण प्रारंभ
हुआ। अतः शासनतंत्र रूप का आर्थिक-
दर्शन पर आधारित है—निर्मित है। वास्तव
में, आर्थिक वैभव के सुदृढ़ आधार पर ही
राजनीतिक वैभव का आभेय खड़ा किया जा
सकता है। किन्तु प्रत्येक देश का संविधान
अपनी अपनी परिस्थितियों को लेकर
निर्मित किया जाता है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता
और राजनैतिक अधिकार बिना आर्थिक
वैभव या विकास भी निरर्थक है। यह ठीक
है कि जनता में राजनैतिक सत्ता का
स्थायित्व राजनैतिक अधिकारों पर उतना
अधिक निर्भर नहीं करता जितना कि
आर्थिक विकास पर। पर भारत में आर्थिक
विकास के पहले राजनैतिक विकास हुआ
है अतः भारतीय संविधान में आर्थिक और
राजनैतिक दर्शन का समन्वय कर भारत ने
विश्व के सम्मुख एक नवीन प्रयोग उपस्थित
किया है। इसमें सफलता और असफलता
किस अंश तक होगी, यह अभी भविष्य के
गर्भ में है। बहुत-कुछ नेताओं पर और
हम नागरिकों निर्भर है। *

I may lose many things, including my temper, but I do not
se my nerve."
—J. L. Nehru

मेरी बिटिया भारती
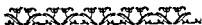
विष्णुकान्त शास्त्री

लेखक कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। व्यक्तिगत होते हुए भी इसके निबन्ध में शास्त्रीजी ने जो कुछ बातें लिखी हैं वे कितने ही बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षालय रूप संयुक्त परिवारों के दिशा निर्देश कर सकती हैं। शैशव से ही व्यक्तित्व के विकास और निर्माण में मा बाप क्या कर सकते हैं, इसका एक आंशिक विवेचन इस लेख में है। इसी विषय पर हम अनुभवी मा-बापों से और भी कुछ लेख सहर्ष आमंत्रित करते हैं।

एक युग था जब हिन्दू-समाज में कमसिन मा-बाप अपने बच्चों को प्यार करते लजाते थे। उन दिनों छोटे-छोटे बच्चों की देख-रेख, उनको प्यार-दुलार करने का हक था दादा-दादी या घर के दूसरे बड़ों का। विशेषतः बाप अगर अपने बच्चों को प्यार दुलार करने की 'धृष्टता' करता वह सबके उपहास एवं निन्दा का पात्र बनता। माँ को दूध पिलाने के समय फिर भी अपने बच्चों को दुलारने का मौक़ा अक्सर मिल जाता था, किन्तु उस निश्चित परिधि को लांघने पर उसकी भी वही गति होती थी।

मैं कह सकता हूँ कि यदि मैं उस युग में पैदा होता तो उपहास, लांछन, व्यङ्गोक्तियों की पर्याप्त मात्रा मेरे पल्ले भी पड़ती। गुरुजन हमारे बच्चों के लालन-पालन में हमलोगों से कहीं अधिक कुशल एवं अनुभवी हैं, यह दावा मान लेने पर भी यह बात नहीं कटती कि पिता होने के कारण अपने बच्चों के साथ खेलने और खेल-खेल में ही आदतानुसार उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व और चरित्र-गढ़ने का, आधुनिक युग की नयी खोजों के सहारे मनोवैज्ञानिक रूप में उनका विकास करने का कर्तव्य और अधिकार मेरा भी है और उनका प्रयोग करने में शर्म आने का कोई कारण नहीं है।

मैं इस विचारधारा का अनुयायी शायद न होता किन्तु भारती का पिता होनेके बाद तो यह अनिवार्य हो गया। भारती—मेरी बिटिया—मेरे बालरूप का नवीन संस्करण मेरे युवा हृदय का इन्द्रधनुषी स्वप्न, मेरे प्रौढ़-सुलभ वात्सल्य का आलम्बन—केवल पाँच बरस की छोटी सी नट-खट, बातों में पुरखिन, व्यवहार में पटु, किन्तु देखने में भोली-भाली बालिका है। आप यदि किसी दिन मेरे घर आयें और दरवाजे के सामने ही खेलती हुई एक प्यारी-सी लड़की देखें—जिसका रंग चम्पाकली की तरह, सुन्दर

गोल मुख, बड़ी-बड़ी आँखें, पतले अधरों पर सदा खेलनेवाली हँसी, कुछ चौड़ा माथा वं जरासी मोटी नाक—(ये पिछले दो अंग ो उसे मेरी तरह प्राप्त हुए हैं! और सब ो मां-जैसे मिले हैं, अतः जन्मू-काश्मीरी ौन्दर्य के अनुरूप ही हैं।)—तो समझ ीजियेगा कि वही भारती है।

उसे आपके साथ दोस्ती कर लेने में ायद ही देर लगे। वह अनायास ही आपको चाचा जी' बनाकर पहले आपके स्नेह की अधिकारिणी बनेगी, फिर आपको दो-तीन ीत-सुनाकर तुरन्त अपनी यह माँग पेश कर ागी, कि 'एक कहानी सुनाइये।'

शायद आप यह सोचते हों कि छोटे बच्चों को कहानी सुनाना बहुत आसान है : किन्तु मैं भारती से सीख पाया हूँ कि वह बहुत मुश्किल है। छोटे बच्चों को जो कहानियाँ घरों में प्रायः सुनायी जाती हैं, वे देवी-देवताओं की, या राजा-रानी की या पशुओं, भूत और परियों की होती हैं। वे सब तो उसे कण्ठस्थ हैं। हमारी नानी मा इस विषय में जीवन्त विश्वकोष ही हैं और उनसे वह बहुत बार ये कथा-कहानियाँ सुन चुकी है। अब यदि किसी दिन कोई उसे ये सब सुनाता है तो अक्सर भारती उसे टोकती है कि यहाँ यह बात छूट ही गयी, वहाँ वह बात गलत है। उसे कथा-कहानी सुनाते समय कोई 'शॉर्ट कट' नहीं किया जा सकता। वैसे अब पौराणिक और राजा-रानी की कहानियाँ उसे जरा

सदा-प्रसन्न भारती का एक आलोक-चित्र

कम अच्छी लगती हैं, उनका एक ही तरह का आरंभ और प्रायः एक ही तरह का शेष उसे उबा देता है। पशुपक्षियों की कहानियाँ सुनते समय उसकी जिज्ञासु-वृत्ति इतनी प्रबल हो उठती है कि वक्ता घबरा उठता है। किन्तु यह याद रखिए कि बिना कहानी सुने वह आपको छोड़नेवाली नहीं।

यदि मुझमें और उसकी मा में कभी कोई विवाद शुरू होता है तो फैसला करने के लिए वह सब समय तैयार रहती है। एक बार उसकी मा ने एक कहानी के लेखक के बारे में मेरे साथ दस रुपयों की बाजी लगायी। उनका कहना था कि उसके लेखक प्रेमचन्द हैं। मुझे अच्छी तरह मालूम था, कि उसके लेखक प्रेमचन्द नहीं हैं, किन्तु वे मेरी बात मानने के लिए तैयार नहीं थीं। स्त्रियाँ बड़ी जल्दी शर्त बदने के लिए तैयार हो जाती हैं, अतः मैं शर्त लगाने के लिए उन्हें उत्तेजित करने लगा। फल मुझे ज्ञात ही था, उन्हें दस रुपये गँवाने पड़े। भारती ने यह बात जानते ही गुरु-गंभीर मुख बनाकर जिस तरह मुझे 'डाँटा', उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। भारती की युक्ति यह थी कि मैं तो दिन रात पढ़ता रहता हूँ अतः इस क्षेत्र में मा के साथ बाजी लगाकर मैंने अन्याय किया है और मुझे पूरे रुपये तुरन्त लौटा देने चाहिए। मा के प्रति उसका पक्षपात मैंने कई बार देखा है। स्वाभाविक भी है। छोटे बच्चों की ममता मा के प्रति, जो दिन-रात उनका काम और लाड़-प्यार करती रहती है, न हो कर क्या पिता के प्रति होगी, जो केवल अवकाश के समय उन्हें जरा-सा प्यार कर लेते हैं और कभी कभी टॉफी, लेमनचूस, या खिलौने लाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं।

भारती गत वर्ष की मई से खूब मन लगा कर पढ़ना-लिखना सीख रही है। अपनी मा से से यह शिकायत मुझे अ... ही सुननी पड़ती है कि 'जिस तरह ... पढ़कर तुम खुद किसी काम के नहीं र... उसी तरह उसे भी चौपट कर दोगे। तुम मर्द, तुम्हारा काम तो किसी तरह चल ग... किन्तु उसका तो नहीं चलेगा, औरत-... दूसरे के घर जाकर भी क्या यह सब ... किताब खोल कर बैठी रहेगी। और ... तो वह पाँच बरस की भी नहीं हुई, ... अभी से ही वह दिन भर गिनती गि... या कॉपी-स्लेट पर लिखती रहेगी तो उ... माथा जरूर खराब हो जायेगा।' परन्तु भ... स्वयं ही अपनी कॉपी, किताब, पे... रबर लेकर जब मेरे पास आकर ... लिए बैठ जाती है तब आनन्द से मैं ... फूल उठती है। अक्षरों में मात्राओं ... और संयुक्ताक्षर लिखना वह सीख ... है। सुने हुए को लिख सकना सचमुच बड़ी शक्ति है, इसका प्रत्यक्ष परिचय भारती के व्यवहार द्वारा हुआ। आग... वह जो कुछ सुनती है उसीको लिखने चेष्टा करती है, कॉपी पेन्सिल ... पर मौखिक रूप से ही सुने ... वर्तनी (spelling) करती ... कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, ... लिखकर और उसे ... वाहवाही न पाती हो।

से आरंभिक चित्रकारी भी सीख रही है, वे उसको सबसे ज्यादा प्यार करती हैं। भारती भी उनको मा और 'तायाजी' को बाबूजी कह कर पुकारती है। जब कोई उससे उसके माता-पिता के नाम पूछता है तो उन्हीं लोगों के नाम बताती है। हम दोनों की बात उठने पर वह विस्तारपूर्वक समझा देती है कि 'हमलोग तो वसुदेव-देवकी हैं, नन्द-यशोदा तो तायाजी और ताई ही हैं।' उनका दावा ही उसके लिए मुख्य है, हमलोग तो 'सेकेण्ड ग्रेड' मां-बाप हैं।

भारती बुद्धि की बड़ी तेज है। एक बार जम्मू में वह मेरे साथ घूमने जा रही थी। एक चीना-बादाम (मूंगफली)वाले से मैंने बिना छिले चीना-बादाम लिये। भारती बोली, 'ये चीना-बादाम एकदम रद्दी हैं, इन्हें मत लो, छिले हुए चीना-बादाम अच्छे होते हैं।' चीना-बादामवाला बोला, 'वह ! सारा जम्मू ये चीना-बादाम खाता और तुम्हारे कहने से ही ये रद्दी हो ।' भारती ने तुरन्त उसे डाँटा, 'बिलकुल झूठ, जम्मू का मुँह कहाँ है कि वह चीना-बादाम खायेगा, जम्मू तो कोई आदमी नहीं है, वह तो एक शहर है।' चीना-बादाम-वाला इस युक्ति के आगे क्या बोलता ! इसी उम्र में भारती को अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना का पार्थक्य समझाना भी संभव नहीं था। अंततः हम लोगों को उसी की बात मान लेनी पड़ी।

एकबार भारती अपनी 'यशोदा-मैया' के कमरे में खिड़की के पास खड़ी होकर बाहर की ओर देख रही थी। उन्होंने कहा, 'भारती, इधर आओ तुम कितनी काली हो गयीं, जरा मुह-हाथ धोकर रानी बिटिया बनो, फिर खेलना।' भारती आकाश की ओर देख कर बोली, 'हाँ, मैं तो बादल की तरह काली हूँ और तुम सूरज की तरह गोरी हो।' वे तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गयीं, बोलीं, 'बाप की तरह बेटी भी अभी से कविता करने लगी !'

अभी उस दिन एक रिश्तेदार हम लोगों के घर आये थे। भारती ने इन्हें कहानी सुनाने के लिए धर पकड़ा। कहानी शुरू हुई, वे कहानी शेष करने की जितनी प्रचेष्टा करने लगे भारती 'उसके बाद' 'उसके बाद' की उतनी ही गोलियाँ दागने लगी। अन्त में वे ही हार मानकर बोले, 'उसके बाद हमारा सिर हुआ।' किन्तु उसके भी बाद क्या हुआ, भारती की यह जिज्ञासा बनी ही रही। तब वे उसकी कापी में तोता, मैना, बिल्ली आदि की तस्वीरें खींचने लगे, जिससे भारती बहुत आनन्दित हुई और 'उसके बाद' की माला जपना भूल गयी। किन्तु उसके बाद जो हुआ, वह और भी मजेदार था। जब वे जाने के लिए उठे त बभारती उनका रास्ता रोककर खड़ी हो गयी, कहने लगी, कि 'आपको नहीं जाने देंगे, आप यहीं रहिये, खाने, पीने, रहने किसी भी बात की आपको कोई तकलीफ नहीं होगी।' बड़ी मुश्किल से रोज आने का वचन देने पर उन्हें रिहाई मिली।

स्कूल का समय छोड़कर सबेरे सात बजे से लेकर रात के नौ बजे तक किसी भी कमरे में आप भारती का कण्ठ-स्वर सुन

"आपका क्या विचार है।"

"कोहरा, मृगमरीचिका, स्वप्न भंग।"

मिस रंजना ने धुएं का छल्ला उड़ाते हुए कहा, "आपने तो एक 'मॉडर्न स्टोरी' का शीर्षक-सा पढ़ दिया। पर मैं कुछ भी नहीं समझी।"

"शिक्षा की ऊँची सीढ़ियाँ, जिस जीवन-साथी की रूपरेखाओं को आपके मन में जन्म देती है उस रूपरेखा को जो पुरुष ...ढ़ सकता है उसकी पत्नी की रूपरेखा ...ससे ऊँची होती है। और दोनों ही ...ग्य जीवन-साथी की खोज में भटकते ...ते हैं। पुरुष काफी भटकने के बाद भी ...ौट सकता है। पर जब आप वापस ...ौटना सोचती हैं तब वह पाता है कि आप ...ाफी आगे बढ़ आई हैं। और आप उस ...ंजिल तक भी नहीं पहुँच सकती जो कभी ...ाप ऊँचे चढ़ते समय ठुकरा आई थीं। ...ौर इस प्रकार भी आप चिर-कुमारी रह ...कती हैं।"

"भ्रान्तमन में भी बहुत सी बातों से ...स्वर करती हूँ तथा आपको भी उसका पूरा अधिकार है।"

"प्रेम?" वड़ी देर तक वह हँसता रहा। 'प्रेम कुछ नहीं होता। आप लोगों को एक आवरण चाहिए वह प्रेम भी हो सकता है, ...रिवार के पालने का भार भी हो सकता है, कला से प्रेम भी हो सकता है या ऐसी ही कोई और ओट। सम्भव है जिस 'विश्व' से आपका प्रेम-सम्बन्ध जोड़ा जाता है उससे आप जीवन में आप कभी मिलीं ही न हों और उसकी मृत्यु से आपने फायदा ही उठाया हो। आज की हर कुमारी के साथ ऐसी एक न एक प्रेम कहानी जुड़ी होती है, जिसकी जन्म दात्री वह स्वयं होती है।"

"पर ऐसा करने की आवश्यकता?"

"रोमियो-जूलियट, हीर-रांझा, लैला-मजनूँ, शीरीं-फरिहाद, द विहसर्स इनको समाज में कैसी दृष्टि से देखा जाता है।"

मिस रंजना हँसी, बोली, "जब प्रश्न आपका है तो उत्तर भी आप ही दीजिये, जिससे समय का दुरुपयोग और भी कम हो।"

"हमारा समाज अविवाहितों को संशय की दृष्टि से देखता है। उनका छोटी से छोटी बात पर भी टीका-टिप्पणी करता है। जब कि इन असफल प्रेमी-प्रेमिकाओं को आदर तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देता है।"

"तो...!" हारे शब्दों में रंजना बोली।

"इस कारण हर चालाक लड़की, अपने लिए कोई न कोई ऐसा ही आवरण ढूँढ लेती है। वह असफल प्रेम भी हो सकता है। परिवार को पालने का भार भी या कला से प्रेम भी हो सकता है, ताकि वह समाज की टीका-टिप्पणी से बच सके।"

"तुम पागल हो।" कह मिस रंजना उठ आई। उसके मस्तिष्क में वही वाक्य घूम रहे थे, "जिस 'विश्व' कुमार से आपका प्रेम सम्बन्ध जोड़ा जाता है सम्भव है उससे आप जीवन में कभी मिली ही न हों। और उसकी मृत्यु से आपने फायदा उठाया हो। आज की हर कुमारी के साथ ऐसी एक न एक प्रेम कहानी जुड़ी होती है। जिसकी जन्मदात्री वह स्वयं होती है।" ●

मेट्रिक प्रणाली

सरलता
व
एकरूपता
के लिए

चाहे आप खरीदार हों या विक्रेता आपको यह पता चल जाएगा कि नाप-तौल की मेट्रिक प्रणाली से हिसाब-किताब बड़ा सरल हो जाता है ।

समस्त देश के लिए नाप-तौल की एक प्रणाली हो जाने से केवल व्यापार वृद्धि में सहायता ही नहीं अपितु इससे राष्ट्रीय-एकीकरण में सहयोग भी मिलेगा ।

व्यापारिक बाट निम्नलिखित हैं :—

ढलवाँ लोहे के बाट			पीतल / काँसे के बाट					
			केवल सोना चाँदी के लिए		सोना चाँदी और अन्य वस्तुओं के लिए			
किलोग्राम		ग्राम	किलोग्राम		किलोग्राम	ग्राम		
५०	५	५००	२०	५	१	५००	५०	५
२०	२	२००	१०	२		२००	२०	२
१०	१	१००				१००	१०	१

१ किलोग्राम = १,००० ग्राम = ८६ तोले

१ अक्तूबर, १९५८ से मेट्रिक बाटों का प्रयोग कुछ चुने हुए क्षेत्रों में कानूनी हो गया है ।

यह परिवर्तन धीरे धीरे अन्य क्षेत्रों में भी लाया जाएगा ।

भारत सरकार द्वारा प्रसारित

'अनेक देश : एक इंसान' का शेषांश

यह अंग्रेजों की बस्ती है जिसे खोरमक्सर कहते हैं। यहां अंग्रेजों के सिवा कोई और मकान नहीं बना सकता।

दस मिनट की यात्रा के बाद एक र बस्ती, माला, आई। एक पहाड़ी के चल में सड़कों व मकानों की तरतीब। र इसके बाद, एक छोटे से दर्रे के बीच हम काली पहाड़ियों से घिरे एक प्रदेश में च गए। यही अदन का असली शहर —प्रकृति की गोद में सुरक्षित मानवों आवास-स्थान। मिट्टी के घर, ईंटों के ान, सीमेंट और लोहे के भवन। अदन इस भाग को क्रेटर कहते हैं—यहां के ार का केंद्र यही स्थान है।

मेट्रोपोल होटल में मुझे पहली मंजिल र ही कमरा मिला। इसमें बिस्तर कपड़ों । अलमारी, छोटी-सी मेज और दो सियां थे। अन्दर से दरवाजा बन्द का साधन मैंने बहुत देर तक ढूंढ़ा, गर न मिला। किन्तु थकान ने हर पर वजय पाई। पंखा खोला, कपड़े उतारे, मैं ट गया और तीन घंटे तक बेसुध रहा।

उठा तो सैर के लिए निकल पड़ा।

क्रेटर की सड़कें सीधी और समानान्तर —कुछ आड़ी, कुछ तिरछी। जब होटल ा स्थान मस्तिष्क में गड़ गया, तब मैं ाजार की ओर चला।

भारत के किसी भी कस्बे के बाजार की ांति अदन का बाजार है। सड़क के दोनों ओर छोटी, बड़ी, ऊंची, नीली दुकानें हैं जिनमें सभी किस्म के सामान मिलते हैं। दूकानों के सामने पटरी के कोनों पर फेरी-वाले बैठे हैं। शर्बत बेचनेवालों के डोल और बाल्टियां हैं जिन पर रखी लकड़ी की तख्तियों पर शीशे के गिलासों में लाल-हरा-पीला शर्बत झलकियां मार रहा है। बनियानों, तौलियों, रुमालों और मोजों के अम्बार हैं, जिन पर फेज टोपियों का पहरा है। होटलों में गर्म-गर्म नान और छाछ और हर एक आदमी, जो तमाशबीन नहीं है, शोर कर रहा है—क्योंकि शोर ही का दूसरा नाम तो बाजार है, कुशल खरीद-फरोख्त है।

भारत के कस्बों में इतनी मोटरें नहीं दिखाई देतीं, जितनी यहां। इधर उधर, बाजार में, गली में, सभी जगह कारें ही कारें दिखाई देती हैं। फोर्ड, और आस्टिन, फीयट और स्टैंडर्ड—सभी चमचमाती हुई नई कारें हैं। शायद यहां की कारें पुरानी होने से पहले ही कहीं और पहुँच जाती हैं!

बाजार की चहल-पहल देखने के बाद मैं इधर-उधर की अन्य सड़कों पर गया। एक स्थान पर एक भारतीय बैंक का भवन बन रहा था। एक अन्य भारतीय बैंक की नई इमारत आस पास की पुरानी इमारतों के बीच शोभा दे रही थी। घूमते-घूमते मैं कुछ ऐसी सड़कों पर पहुँच गया जहां केवल भारतीय रहते हैं। यहां एक मन्दिर है, गुजराती व पारसी डॉक्टरों के दवाखाने हैं, व्यापारियों की पेढ़ियां हैं। गुजराती

'अनेक देश : एक इंसान' का शेषांश

ह अंग्रेजों की बस्ती है जिसे स्टोरमक्सर कहते हैं। यहां अंग्रेजों के सिवा कोई और म नहीं बना सकता।

दस मिनट की यात्रा के बाद एक र बस्ती, माला, आई। एक पहाड़ी के चल में सड़कों व मकानों की तरतीब। र इसके बाद, एक छोटे से दर्रे के बीच हम काली पहाड़ियों से घिर एक प्रदेश में च गए। यही अदन का असली शहर —प्रकृति की गोद में सुरक्षित मानवों आवास-स्थान। मिट्टी के घर, ईंटों के कान, सीमेंट और लोहे के भवन। अदन इस भाग को क्रेटर कहते हैं—यहाँ के ाजार का केंद्र यही स्थान है।

मेट्रोपोल होटल में मुझे पहली मंजिल हो कमरा मिला। इसमें बिस्तर कपड़ों अलमारी, छोटी-सी मेज और दो सियां थे। अन्दर से दरवाजा बन्द रने का साधन मैंने बहुत देर तक ढूंढा, गर न मिला। किन्तु थकान ने दर पर पाई। पंखा खोला, कपड़े उतारे, मैं ट गया और तीन घंटे तक बेसुध रहा।

उठा तो सैर के लिए निकल पड़ा। क्रेटर की सड़कें सीधी और समानान्तर —कुछ आड़ी, कुछ तिरछी। जब होटल का स्थान मस्तिष्क में गड़ गया, तब मैं ाजार की ओर चला।

मारत के किसी भी कस्बे के बाजार की तरह अदन का बाजार है। सड़क के दोनों ओर छोटी, बड़ी, ऊँची, नीची दूकानें हैं जिनमें सभी किस्म के सामान मिलते हैं। दूकानों के सामने पटरी के कोनों पर फेरी-वाले बैठे हैं। शर्बत बेचनेवालों के खोल और बाल्टियां हैं जिन पर रखी लकड़ी की तख्तियों पर शीशे के गिलासों में लाल-हरा-पीला शर्बत झलकियां मार रहा है। *बनियानों, तौलियों, रुमालों और मौजों के* अम्बार हैं, जिन पर फेज टोपियों का पहरा है। होटलों में गर्म-गर्म नान और दाज और हर एक आदमी, जो तमाशबीन नहीं है, शोरकर रहा है—क्योंकि शोर ही का दूसरा नाम तो बाजार है, कुशल खरीद-फरोख्त है।

भारत के कस्बों में इतनी मोटरें नहीं दिखाई देतीं, जितनी यहाँ। इधर उधर, बाजार में, गली में, सभी जगह कारें ही कारें दिखाई देती हैं। फोर्ड, और आस्टिन, फीयट और स्टैंडर्ड—सभी चमचमाती हुई नई कारें हैं। शायद यहां की कारें पुरानी होने से पहले ही कहीं और पहुँच जाती हैं।

बाजार की चहल-पहल देखने के बाद मैं इधर-उधर की अन्य सड़कों पर गया। एक स्थान पर एक भारतीय बैंक का भवन बन रहा था। एक अन्य भारतीय बैंक की नई इमारत आस पास की पुरानी इमारतों के बीच शोभा दे रही थी। घूमते-घूमते मैं कुछ ऐसी सड़कों पर पहुँच गया जहाँ केवल भारतीय रहते हैं। यहाँ एक मन्दिर है, गुजराती व पारसी डॉक्टरों के दवाखाने हैं, व्यापारियों की पेढ़ियां हैं। गुजराती

स्त्रियों व बच्चों को देखकर मुझे लगा जैसे मैं बहुत देर विदेश में रहा हूँ। भारत का जाना-पहचाना जीवन मुझे अनजाने जीवन के मुकाबले में अधिक रुचिकर व आश्वस्त प्रतीत हो रहा था।

दूसरे दिन सुबह आरियाना एयर लाइंस के छोटे से जहाज पर चढ़कर हम सात बजते-बजते अदन से निकल पड़े। जहाज छोटा था, इसलिए काफी नीचे उड़ रहा था अन्यथा मैं बहुत से सुन्दर दृश्य देखने से वंचित रह जाता।

अब रेगिस्तान हमारे नीचे था, असीम रेत और यत्र तत्र छोटे-छोटे हरे पौदे। अचानक रेत के बीच एक-दो हरे भरे खेत दिखाई दिए, मगर रेत का फिर भी आधिपत्य रहा—चारों दिशाओं में रेत ही रेत।

लाल चट्टानों के परे लाल सागर का किनारा। रेतीले पाट पर पानी का ज्वार भाटा—हरे और नीले पानी के कणों का पीलापन। गहरे पानी का जहर-मोहरा जैसा हरा रंग और आकाश के नीले से भी अधिक नीला रंग—जिसमें लाली भी और पीलापन भी। दूध से धुला नील, आँखों को चकाचौंध करनेवाला नील, ऐसा नीला रंग मैंने पहले कभी नहीं देखा था—और शायद कभी न देखूं!

सागर समाप्त होने के बाद हम फिर रेगिस्तान पर उड़ने लगे और शीघ्र ही उत्तरी अफ्रीका के अस्मरा में उतरे।

यहाँ से चले, तो बस, पहाड़ों का सिलसिला। ऊँची-नीची पथरीली चट्टानों की पहाड़ियों को पारकर एकाएक एक घाटी आई—बिलकुल सपाट जमीन। य
एरिट्रिया के अस्मारा नगर का हवाई अ
था। एक ओर एक लम्बा बारक-नुमा
जिसके एक कमरे में जाने की
आज्ञा हुई। कमरों के आगे पतले हरे
पेड़ों की एक पंक्ति थी और उसके सामने
घास की एक टुकड़ी, जिसके बीचोंबीच
लकड़ी की एक लम्बी छड़ के ऊपर रंग
झण्डा लहरा रहा था। हब्शी कारिन्दे
कुली आ-जा रहे थे। अंग्रेज, इट
भारतीय गुजरातियों के झुंड यहाँ-वहाँ
बातें कर रहे थे और हवा ठंडी थी।
सिलसिले में गर्मी। मैं अकेला
चहल-कदमी कर रहा था। कैमरा
कभी हब्शियों की अजीबो-गरीब
देखता, तो कभी उनके ऊँचे-लम्बे
शरीरों को।

अब फिर हम रेगिस्तान पर से
लगे। यहाँ की रेत गीली-सी दिखाई
थी, जैसे अभी अभी कोई बरखा की
बरसती हुई गुजरी हो। सारी रेत नीले-
रंग की थी और अलग-अलग परतों
लकीरें यहाँ से वहाँ तक चली गई
कहीं कोई घर नहीं, कहीं कोई वृक्ष
कहीं कोई सड़क नहीं। बस, पारावार-
रेत का मैदान ही मैदान।

आखिर जब हम फिर नीचे उतरे,
तस्नई के हवाई अड्डे पर मालूम हुआ,
नगर एरिट्रिया की सीमा पर बसा है;
से निकलते ही सूडान शुरू हो जाएगा।

जहाज से निकलकर हम नीचे
बेहद गर्म लू से मुंह झुलस गया और

क से आँखें चुधिया गई। जहाज के पंखों नीचे साए में खड़े इधर-उधर देखने लगे। ३ गज की दूरी पर एक पेड़ के नीचे एक रकार खड़ी थी। उसके पास चार-पाँच ग़ी बैठे सुस्ता रहे थे। मेरे पास ही ारा अंग्रेज चालक व दो अमरीकन यात्री एक अमरीकन महिला से बार-बार पूछ ये कि उसे किसी चीज की जरूरत तो ीं है। और वह महिला मुस्कराकर कह ा था कि नहीं, सब ठीक है।

यहाँ से खार्तूम तक के रास्ते में रेगि- ान भी आया और पहाड़ भी। जगह- ाह मिट्टी के मकानों की बस्तियाँ—मिट्टी ही दीवारों से घिरी दाव पड़ीं।

दोपहर के अढ़ाई बजे के लगभग हमारे ाज ने एक बहुत बड़े नगर पर दो चक्कर टे और फिर नीचे उतर आया। हवाई ाज के इंजन की घरघराहट कम हुई और उसने एक धक्के के साथ खार्तूम के विशाल वाई अड्डे को छुआ। जहाज कंक्रीट के ढे 'रनवे' पर आगे बढ़ता गया, और र एक ऊँची भव्य इमारत के सामने ाकर खड़ा हो गया। बम्बई के बाद यह ला हवाई अड्डा था, जो आज की भ्यता के युग का वैसा ही प्रतीक था।

यह पक्का, आधुनिक ढंग का भवन ाफी ऊँचा था। एक ओर एक बुर्ज-सा जिस पर कुछ यंत्र व रोशनियाँ, और उसके पास छत के चारों ओर लोहे का ंगला, जहाँ खड़े दर्शक जहाजों का आना- ाना देखते हैं।

वीसा इत्यादि देखे जाने के बाद मैं कस्टम के अफसरों से कह रहा था, कि मेरा सामान यहीं पड़ा रहे, मैं रात के जहाज से फोर्ट लामी जा रहा हूँ, कि इतने में भार- तीय दूतावास के एक सज्जन से मुलाकात हुई। वे अपना डाक का थैला लेने आये थे। वे तो सफेद कमीज व सफेद पतलून पहने स्वस्थ व सुन्दर लग रहे थे और मैं चाकलेटी रंग के समर सूट में बहुत गर्म व बेआराम महसूस कर रहा था।

मैंने उन्हें अपना परिचय दिया, और पूछा, 'शिक्षा मंत्रालय की एक महिला मिस रहमान यहाँ रहती है, उनका पता आप जानते हैं?'

'जी हाँ, वह यूनेस्को की सलाहकार हैं। मैं आपको उनके यहाँ पहुँचा दूँगा।'

'धन्यवाद।'

डाक का थैला लेकर उन्होंने मुझे अपनी कार में बिठाया और हम भारतीय दूतावास की ओर चल दिये। दोपहर की कड़कती धूप। सड़क के दोनों ओर बंगले, अंग्रेजी-राज्य की देन। हर बंगले के आस- पास झाड़ियाँ और वृक्षों और लताओं का एक झुरमुट। बाकी जगह रेतीली और वीरान। सड़क और कोठियों की हद तक की जमीन रेगिस्तान की भाँति रेतीली व बंजर। सड़क पर कहीं कोई विरले ही आदमी दिखाई दे जाता था, वरना चारों ओर सन्नाटा।

कुछ देर के लिए हम भारतीय दूता- वास में रुके। डाक का थैला वह सज्जन फिर कार में आ बैठे, अ कुछ मिनट के बाद हमारी गाड़ी एक बं

पर आ पहुँची। मैंने उतरकर घन्टी बजाई और दरवाजा थपथपाया और दरवाजा खुलने, से पहले ही मैंने अपने हितैषी सज्जन को धन्यवाद देकर विदा किया।

मिस रहमान मुझे देखकर कुछ देर के लिए हैरान रह गई। बोली, 'अरे कुलभूषण तुम यहाँ? कोई चिट्ठी न पत्री, बस चले आये। इत्तला दे देते, तो कुछ दोस्तों के साथ प्रोग्राम बन जाता। अब इतनी दोपहर क्या होगा? बैठो, बैठो, खड़े क्यों हो। तुम्हारा सामान कहाँ है?'

मैंने बैठते हुए कहा, 'बस, हाथ का ही सामान यहाँ लाया हूँ। बाकी सब तो एअर-पोर्ट पर ही छोड़ आया हूँ। मैंने सोचा, आपको पहले सूचना न दूँ, यही बेहतर है। मिले तो अच्छा, न मिले तो किस्मत।

'खाना वगैरह कुछ खाया या नहीं? हमारा तो आजकल रमजान चल रहा है।'

'मैं खाकर आया हूँ, हवाई जहाज ही में।'

कुछ देर बाद एक गिलास ठंडा शर्बत आया और खार्तूम की गर्मी में वह बहुत ही अच्छा लगा। बैठक के रंगीन पर्दे, फर्नीचर, किताबों के केस, सजावट के सामान, दीवा पर चित्र, सभी करीने से रखे थे। मि रहमान की सज्जाकला चारों ओर करो विराजमान थी। गोल मेज पर रखी ... व पत्र भी सुरुचि-पूर्ण थे। छत का पूरी गति से चल रहा था, गर्मी क नामो-निशान नहीं।

पाँच बजे के लगभग दो सुहानी दि

खार्तूम के दो नैनिहाल

अफसर अपनी गाड़ी में आ पहुँचे। मिस रहमान बोलीं, 'यह हैं श्री०...क···, और आप हैं श्री०···ख···' दोनों सज्जन दक्षिण भारतीयों की भाँति पक्के रंग के थे, मगर नाक-नक्श चौड़े थे, कद ऊँचा और शरीर भारी-भरकम। ऊँचाई लगभग छः फुट, पहनाव सफेद कमीज व पतलून पहने हुए थे।

गाड़ी में सरकारी ड्राइवर मौजूद था। हम सब बैठे और गाड़ी चल दी। सिविल लाइन्स के बंगले पीछे छोड़कर हम खार्तूम शहर में से गुज़रे। दीवारों से घिरे मिट्टी व ईंटों के घर हमारे दोनों ओर थे। पंजाब के गाँवों में जिस तरह हवेलियों के लाल-पीले-हरे रंगे हुए दरवाजे होते हैं, उन्हीं की भाँति यहाँ के मकानों की चार-दीवारियों में भी दरवाजे लगे थे। सिर पर सफेद पगड़ी और घुटनों तक के लम्बे, सफ़ेद चोगे पहने हबशी पुरुष सड़कों पर आ-जा रहे थे। काले नंग-धड़ंग बच्चे धूल में बैठे थे, या दो-चार मिलकर ऊधम मचा रहे थे। यहाँ-वहाँ घड़े उठाए हुए बूढ़ी स्त्रियाँ भी दिखाई दे जाती थीं।

एक बहुत खुले चौराहे पर हमारी गाड़ी घूमी और एक गेट में से गुज़र गई। अन्दर का सहन कम से कम हजार फुट चौड़ा व हजार फुट लम्बा होगा। सहन के परे एक भव्य इमारत खड़ी थी। मिस
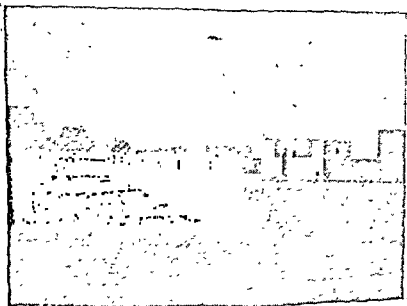
खार्तूम के सीधे-सादे किन्तु जनता के लिए उपयोगी नये मकान

गिस्तान सैंकड़ों मील दूर मालूम होता। यहाँ पानी है—समुद्र जैसा चौड़ा नदी का पाट है, जो कभी नहीं सूखता और अपने चारों तरफ हमेशा बहारें लुटाता रहता है।

पुल पारकर हमारी कार फिर एक र शहर में घुसी। चौड़ी, धूल-भरी, कच्ची सड़क पर कार के पहिए धूल का बादल उड़ाए बढ़े जा रहे थे। यहाँ गधे काफी थे। कभी कभी लारियाँ भी सामान लादे इधर से गुजर जातीं, और मोटर-कार यहाँ जादू की चटाई जैसी लगी जिसे कोई हैरानी, ईर्ष्या और खुशी से देखता रह जाता है!

चारदीवारी से घिरे ईंटों के एक मकान के सामने ऊँची-नीची कच्ची सड़क पर खड़ी रुकी। मैं और मेरे साथी नीचे उतरे। दरवाजा खुलवाकर हम सब अन्दर गए। आँगन में एक ओर एक स्त्री कपड़े धो रही थी, दूसरी ओर दो पुरुष बैठे कंघ रहे थे। दाईं ओर के कमरे में घुसे, तो देखा, सारे कमरे में एक दरी-चटाई है, जिसके एक कोने में एक बूढ़ा हबशी बैठा था। उसके साथ ही एक बारह वर्ष का बालक भी था।

कमरे के इस ओर, प्रवेश-द्वार के पास एक पुराना सोफा और कुछ कुर्सियाँ पड़ी थीं। इन्हीं पर हम बैठ गए और फिर बूढ़े हबशी को लाकर हमारे मित्र श्री 'क' ने परिचय कराया। हमारा हाथ अपनी हथेली में लेकर, कमर से झुककर बूढ़े ने हमें अभिवादन जताया।

कुमारी रहमान अंदर हरम में चली गईं और हमें एक विशेष शर्बत पीने के लिए दिया गया। कड़वा व मीठा, गहरे बनफशई-रंग का यह शर्बत स्वाद भी था और बदजायका भी। एक गिलास पीकर दूसरा पीने को मन नहीं हुआ।

तभी हमारे मेजबान श्री 'क' एक नन्हीं बच्ची को उठाए अंदर आए। सफेद कपड़े में लिपटी पाँच महीने की बच्ची के मुँह पर पाउडर की सफेदी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वही हबशियों के चौड़े नाक-नक्श थे। मगर मैंने कहा, 'बहुत सुंदर बच्ची है। बधाई!'

श्री 'क' खिल उठे। बोले, 'इसकी मा भी इतनी ही खूबसूरत है।' और यह कहते-कहते उनकी आँखों में स्नेह-सिक्त उल्लास की एक चमक आ गई!

कुमारी रहमान के घर की ओर लौटते वक्त तय हुआ कि शाम का खाना मैं श्री 'ख' के घर पर खाऊँगा। रमजान के दिनों में शाम का खाना एक विशेष महत्त्व रखता है, इसलिए मैंने यह आमंत्रण मान लिया।

मगर कुमारी रहमान के रसोइए को जब कहा गया, कि शाम का खाना हम बाहर खाएंगे, तो वह चुप न रह सका। देर तक वह कुछ बोलता रहा। कुमारी रहमान भी तेज होती गईं, मगर रसोइया चुप न हुआ। अपने लम्बे सफेद चोगे में खड़ा, अपनी दाढ़ी को हिलाता हुआ, अपने सामने एक हाथ को दूसरी हथेली में थामे वह काफी देर तक बहस करता रहा।

बाद में कुमारीजी ने बताया 'अब देखिए इन साहब को। मैंने कहा भी कि बाहर

खाना खाने के लिए मेरा मन नहीं था, मगर इनकार करना मुश्किल था। लेकिन आप साहब मानते ही नहीं। कहे जा रहे हैं, कि खाना यहाँ तैयार है। मेहमान हमारे हैं, हमारे यहाँ ही खाना खाएंगे। हमारे मेहमान होकर बाहर खाना कैसे खा सकते हैं?'

'फिर फैसला क्या हुआ?' मैंने पूछा।

'फैसला क्या होना है। जनाब नाराज़ होकर कह गये हैं कि यह उनकी तौहीन है। उन्हीं का मेहमान और खाना खिलाएं दूसरे लोग।'

'मेहमान-नवाजी हो तो ऐसी!'

'जी हाँ, आपको मजाक सूझ रहा है। यहाँ बहस करते नाक में दम हो गया। अब आप शाम को चले जाएंगे और कल सारा दिन इनका मुँह फूला रहेगा।' और आप ही आप कुमारी जी मुस्करा दीं। 'यहां के लोगों की सादगी तो बस, देखते ही बनती है। मेरे आराम का कितना खयाल रखते हैं।'

दो घंटे बाद हम अपने मेज़बान के घर पहुँच गए। दीवारों से घिरा पक्का मकान था। दरवाजे के अन्दर खुला आँगन, दो सीढ़ियाँ चढ़कर ऊँचा बरामदा, जहां अंग्रेजी ढंग से मेज पर खाना लगा था।

नान-रोटी और सालन और सलाद से मैंने अपनी प्लेटें भरीं और सूब जी भरकर खाया। मेरे मेज़बान रोज़ा तोड़ चुके थे, फिर भी कुछ हद तक मेरा साथ दिया।

कुमारीजी हमेशा की तरह अन्दर हरम में जा चुकी थीं। कार के ड्राइवर को बुलाकर उसे भी मेज पर परोसा गया, ताकि वह भी रोज़ा तोड़ दे। उसे मेरे साथ रहना था, जब तक कि [illegible] अपने जहाज़ पर न पहुँच जाऊँ। मालिक [illegible] नौकर का इकट्ठे बैठकर खाना यहाँ शिष्टाचार में शामिल है, यह [illegible] मालूम हुआ।

खाना खाकर हम आँगन में रखी आराम कुर्सियों पर आ बैठे। आसमान की [illegible] में कालिमा बढ़ती गयी और हमलोगों तारों की तेज चमक, राजनीति, [illegible] पिछड़े हुए देशों की आर्थिक उन्नति, [illegible] सभी विषयों पर बातचीत चलती रही। गर्मी के शांत होने से वातावरण [illegible] मधुर हो गया था। रेगिस्तान के [illegible] बहुत ज्यादा गर्म तो शामें भी उतनी ही ठंडी और मनोहर होती हैं—इस तथ्य का मेरा पहला अनुभव यही था।

गर्म काफी का एक प्याला पी [illegible] अपनी टांगों को काफी आराम देकर उठ बैठा। इतने में कुमारीजी भी आ गई और हमने अपने मेज़बान सधन्यवाद आज्ञा मांगी।

मैंने अभी तक आज शाम के जहाज पर जाने की सूचना जहाज-कम्पनी में नहीं दी थी। मगर मिस रहमान ने अपने भ्रमण-अनुभवी होने के नाते मेरी बात अनसुनी कर गाड़ी प्लातूम के व्यवसाय-केंद्र की ओर मुड़वाई। कुछ ही देर में हम बंगलों यहां के भवन बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता की भांति सीमेंट, लोहे और

स्थिर के थे—अंग्रेजी अमरीकी यूरोपीय नवनों की भांति आधुनिक। चौड़ी सड़क के दोनों ओर बिजलियां जगमगा रही थीं, और यहां वहां मोटरें खड़ी थीं या दौड़ रही थीं।

के० एल० एम० डच एअरलाइन्स के दफ्तर में जाकर काउंटर पर जब मैंने अपना टिकट दिखाया, तब बड़ी तत्परता से एक अंग्रेज लड़की ने फोन किया और फिर कुछ लिखकर टिकट मुझे लौटा दिया। बोली, 'नौ बजे तक आप हवाई अड्डे पर पहुँच जाएं। सीट बुक हो गई है।'

अगर मैं इस समय यहां न आता, तो शायद रात के जहाज से फोर्ट लामी के रवाना न हो लिए सकता। आगे के लिए मुझे शिक्षा मिल गई।

घर लौटकर सामान लिया और सीधा हवाई अड्डे पर पहुँचा। निश्चित समय पर जहाज चला तो हवाई अड्डे की बड़ी बड़ी बत्तियाँ घूम रही थीं और रेगिस्तान की रात सर्द होती जा रही थी। हवाई जहाज की होस्टेस ने आकर मुझे एक कम्बल ओढ़ा दिया जो ऊपर, सामान के रैक पर पड़ा था और एक तकिया मेरे सिर के नीचे रख दिया। थका-मांदा, मैं जहाज चलते ही सो गया।

रात भर मैं सोता रहा। कभी-कभी जहाज की घरघराहट में मेरी आँखें खुलतीं, तो सारे जहाज में अंधेरा नजर आता। सभी पुरुष, स्त्रियां व बच्चे (जिनमें से अधिकतर यूरोपियन थे) सोए पड़े थे। जहाज के बाहर भी अंधेरा ही अंधेरा था। शीशे की खिड़की से बाहर देखने पर जहाज के पंखों पर हरी-नीली बत्तियाँ जगमगाती नजर आती थीं—अथवा कभी-कभी नीचे पृथ्वी पर बत्तियों का विरला समूह किसी नगर की सूचना देता था। इनके अलावा सब ओर शांति थी—जहाज की घरघराहट, अंधेरे में उसकी फ्रेंच ईक्वेटोरियल अफ्रीका की ओर गति और सोए हुए यात्रियों की कुनमुनाहट यही मेरा संसार था। इधर उधर नजरें घुमाकर मैं फिर ऊंघ जाता।

एकाएक बिजलियाँ जल उठीं और लाउड स्पीकर पर स्त्री-कंठ की कोमल आवाज आई। मेरी समझ में कुछ भी न आया। कुछ देर बाद मालूम हुआ, यह एअर-फ्रांस का जहाज है, इसलिए इसमें सभी सूचनाएँ फ्रेंच में ही दी जाती हैं।

सभी लोग आँखें मलते हुए घड़ी देख रहे थे। साढ़े पाँच बज रहे थे। कैप्टेन-केबिन के बाहर, दरवाजे के ऊपर बत्तियों से प्रकाशमान एक सूचना उभड़ी। मैंने सीट के दोनों ओर लगी पेटी कमर के गिर्द बांध ली। हमारा जहाज फ्रांसीसी नगर फोर्ट लामी-दु-चाड के अड्डे पर उतरनेवाला था।

अभी रात ही थी, मगर अंतरिक्ष में हल्का-सा प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहा था। हवाई जहाज अपनी ऊँचाई छोड़ रहा था, और प्रत्येक बार जब वह नीचे गिरता-सा उतरता मेरा दिल ऊपर उठ जाता, मेरी सांस रुक जाती, और फिर—जहाज का गिरना-उतरना रुक जाता मैं चैन की सांस लेता। अन्त में जहाज ने रनवे को ही छू ही लिया, होस्टेस ने अल्विदा कहा और हम उतर पड़े।

दूसरी किश्त : चाड नदी के किनारे

नूतन साहित्य

दूध गाछ : (उपन्यास) लेखक : देवेन्द्र सत्यार्थी : प्रकाशक : राजकमल प्रा० लि० दिल्ली।

'रथ के पहिये', 'कठपुतली' और 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास के बाद दूध-गाछ श्री० देवेन्द्र सत्यार्थी का चौथा उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास का आधारभूत भाव भारतीय संगीत है—जिसके आज दो स्पष्ट विकसित रूप हैं—एक शास्त्रीय संगीत, दूसरा फिल्मी जगत् का संगीत। परन्तु इन दोनों के बीच में जो महान् संगीत पक्ष भावना-रूप है, जिसकी प्रकृति 'बहुजन हिताय' है, उसके प्रति एक आस्थावान दृष्टिकोण प्रस्तुत उपन्यास का एक सुन्दर प्रयत्न है। कला और कलाकार को उपन्यासकार ने एक बहुत ऊँचे स्तर से ग्रहण किया है—मा के स्वर से इसकी व्याख्या में उपन्यासकार ने प्रारम्भ में ही उद्घोषित किया है : 'शिशु हो, चाहे कलाकृति, दोनों को ही प्यार-दुलार चाहिये। कलाकार को मा बनना ही पड़ता है।' 'दूध-गाछ' की कथा-भूमि केरल और बम्बई के बीच में है एक छोर पर बम्बई, फिल्मी संगीत का क्षेत्र, दूसरी छोर पर केरल,, लोकगीत, [illegible] श्यामला धरती, किंवदंतियों और लोक कथाओं का देश, 'बहुजनहिताय' संगीत [illegible] रसमय क्षेत्र। उपन्यास-का शीर्षक '[illegible] गाछ' है—यह भी संथाली भाषा से [illegible] गया है। 'संथाली भाषा में 'तोआ' दू[illegible] कहते हैं और 'गाछ' के लिये 'दारे' [illegible] चलता है। 'तोआ दारे' का संथाली ही दूध-गाछ की मूल प्रेरणा है'—इस को उपन्यासकार ने स्वयं स्वीकार किया।

दूध-गाछ में कथा गौण है [illegible] अस्फुट चित्र ही मुख्य हैं—ऐसे चित्र लोकगीत, लोकनृत्य, लोक-जीवन [illegible] ऐसे भी चित्र हैं, जो अनेक कवियों, [illegible] विदेश के लेखकों, संगीतकारों तथा [illegible] निकों से लिये गये हैं। यही कारण है [illegible] उपन्यास का प्रायः एक चौथाई भाग [illegible] के लम्बे-लम्बे उद्धरणों से पूरित [illegible] भिखारी बालकों के गीत (पृष्ठ २३) लेकर बौद्ध सूक्तियों (१२३) तथा विदेश के महापुरुषों के कथनों तक (२१९) [illegible] प्रस्तुत [illegible] में मिलते [illegible]।

[illegible]

नकर लिखा है—फलतः इसमें वह सब जो शास्त्रीय ढंग से गद्य-महाकाव्य (!) अपेक्षित है—यह महाकाव्य है या नहीं, इसका उत्तर साधारण उपन्यास का पाठक नहीं दे सकता। यह उपन्यास का आनन्द ता है अथवा नहीं, इसका उत्तर कोई भी प्रबुद्ध पाठक दे सकता है, कि यह अपने न धर्म से कुछ दूर जा पड़ा है।

डॉक्टर : (मनोवैज्ञानिक नाटक) लेखक : विष्णु प्रभाकर : प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली।

'डॉक्टर' तीन अंकों का सामाजिक नाटक है। भूमिका और विज्ञप्ति में लेखक ने कहा है कि यह नाटक रंगमंच पर खेला जा सके, इस बात का पूरा ध्यान रखकर लिखा गया है। इस नाटक का भावक्षेत्र है, भावना और कर्तव्य का संघर्ष जिनकी आधारशिला हैं, डॉक्टर अनीला, एक महत्वपूर्ण 'नर्सिंग होम' की डॉक्टर, जो कभी सतीशचन्द्र शर्मा की धर्मपत्नी थीं, और तब जिनका नाम था मधुलक्ष्मी। मधुलक्ष्मी को शर्माजी ने तब इसलिये छोड़ दिया था, कि वह शर्माजी के एकाएक अफसर हो जाने के बाद उनके योग्य नहीं रह गयी थी! कम पढ़ी-लिखी थी, सोसायटी में घूम-फिर नहीं सकती थी, उठ-बैठ नहीं सकती थी, खा-पी नहीं सकती थी!

संयोग से शर्माजी की दूसरी पत्नी मरीजा के रूप में इसी डॉक्टर अनीला के नर्सिंग होम में पधारती हैं, और उसके जीवन-मरण का प्रश्न सामने है। डाक्टर मरीजा को बचाये अथवा मार दे? आखिर डॉक्टर अनीला, क्या पति-परित्यक्ता नहीं है और विशेषकर उसी की धर्मपत्नी, जिसकी दूसरी पत्नी का वह आपरेशन करने जा रही हैं। आखिर वह नारी है, नारी क्या नहीं कर सकती, फिर वह नारी जिसके संग इतना अधम अन्याय हुआ है। 'नाटक का अंत आदर्शवादी ढंग का है, जिस सबका रहस्योद्घाटन होता है। पत्नीजी का 'आपरेशन' सफल होता है।

मुख्यतः इस नाटक की परीक्षा रंगमंच पर ही हो सकती है। इस नाटक का रंग-विधान इतना यथार्थ नहीं है कि इसकी परीक्षा करना कुछ कठिन है। नाटक में संकेत और लाक्षणिकता का कितना मुख्य स्थान है, और व्याख्याकृति में किस प्रकार रंगमंच की सरल और सहज प्रतिष्ठा होती है, इसका व्यावहारिक ज्ञान जिस दिन हिन्दी-नाटककारों को होगा वह दिन वास्तव में हिन्दी-रंगमंच के लिये महान् होगा। प्रस्तुत नाटक के विषय में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह नाटक पढ़ने के लिये सफल हो सकता है, अपने मूल धर्म के प्रति नहीं। इसका प्रधान कारण रंगमंच की सहज दृष्टि का अभाव है—लेखक की रचनाशक्ति का अभाव नहीं।

—डा० लक्ष्मीनारायण लाल

क्षितिज (कहानियाँ) लेखक : गिरीश अस्थाना : प्रकाशक : आदर्श प्रकाशन, कलकत्ता

उर्दू से हिन्दी में आनेवाले कहानी

प्रायः अपने साथ चुस्त, प्रवाहपूर्ण, सरल और सीधी भाषा साथ लेकर आते हैं और यह विशेषता इस कहानियों के लेखक गिरीश अस्थाना की भाषा की भी है। जहाँ अस्थानाजी ने जबर्दस्ती हिन्दी शब्दों को भरने की कोशिश की है वहाँ भाषा बेहद कृत्रिम हो उठी है।

इनकी कहानियों का मैं मासिक 'हंस' के दिनों से पाठक रहा हूँ और इन दिनों जब कहानियों से कथा-तत्त्व के गायब होने की शिकायत पाठकों और आलोचकों को होती रही है तब उनकी कहानियाँ अपने कथा-तत्त्व के बलपर ही पाठकों की प्रशंसा पाती रही हैं। उनकी 'दूरबीन' और 'जाल' जैसी शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट कहानियों में भी उनके कथा-तत्त्व की सार्थक सशक्तता देखी जा सकती है। शायद अपने इसी आग्रह के कारण उन्होंने 'दुखती रगें' को 'रिपोर्ताज-स्केच' लिखा है, लेकिन कहानीपने की विशृंखलता के बावजूद उसे आधुनिकतम प्रभाववादी कहानी के अत्यन्त ही सफल उदाहरण के रूप में रक्खा जा सकता है। भाषा की रवानगी के साथ कहानी की रोचकता उनकी कहानियों की दूसरी विशेषता है।

इन की कहानियों की तीसरी खासबात है, उनकी देश काल की विविधता। अधिकांश की पृष्ठभूमि प्रायः दूसरे महायुद्ध का उत्तरार्ध या उसके बाद की स्थिति है। इसलिये बंगाल का अकाल, (गिद्ध) साम्प्रदायिक दंगे, (धर्म के नाम पर) सरकारी दफ्तर (अलग-अलग रास्ते) साधारण दूकानें (साइड बिजनेस, किराना) और घरेलू नौकरों (गुण्डू) की तो उन्होंने कहानियाँ लिखी ही हैं हम उनकी कहानियों के साथ फौजी पृष्ठभूमि में अरब देशों, पानी के जहाजों में वापस लौटती टुकड़ियों के बीच में भी घूमते हैं—सुदूर पहाड़ी प्रदेशों के बर्फीले तूफानों से भी दो-चार होते हैं (हाड़मांस के देवता)। देश और काल की विविध अवस्थाओं से गुजरने में ही इन्हें मानव-चरित्र के अनेक पहलुओं को देखने परखने की सूक्ष्म-दृष्टि दी है—साथ ही उनके पास वह सहज मानवीय-संवेदना दी है, जो प्रायः रूढ़ प्रतिक्रियावाद के लिये तीखे व्यंगों और नये ओजस्वी उदात्तों के लिये सहानुभूति प्रोत्साहन के रूप में दिखाई देती है। शायद कुछ को उनके नायक 'हाड़मास' में ही "देवता' जैसे लगें। लेकिन जब उस देवता को हम पत्थर के देवता के मुकाबिले या पुरानी घुटती-सिसकती रूढ़ि को नई बेटी के अपने अधिकारों की रक्षा के संघर्ष के साथ देखेंगे तो उनकी स्वस्थ दृष्टिकोण की तारीफ़ किये बिना शायद ही रहें।

एक शिकायत उनकी कहानियों से शायद पाठक को हो। उसे 'विस्तार' तो मिले, लेकिन 'गहराई' न मिल पाये। आज की कहानी की प्रभाव-तीव्रता का एक बहुत बड़ा रहस्य यह भी है कि वह अधिक से अधिक सिमटकर एक बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है और वह बिन्दु लेखक का लक्ष्य होता है—जो शुरू से अन्त तक कहानी को इधर-उधर भटकने नहीं देता।

काल' सिमटकर 'क्षण' में आ जाता है और 'देश' सिमट कर 'व्यक्ति' में—और इ व्यक्ति के जीवन का एक क्षण (या क्षण-समूह) सारे देश और काल के विराट प्रवाह की एक कड़ी होती है। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को गहराई से समझना सारे देश-काल को गहराई से समझना होता है। सारे चावलों की स्थिति का पता लगाने के लिये एक चावल की जाँच काफी है। हाँ, यह ज़रूर ध्यान रखना होगा कि वह चावल 'अकेला' न हो, क्योंकि अकेला ; चावल तो चावल, चना भी कुछ नहीं कर सकता।

गिरीशजी की कहानियों की ताजगी, विविधता और स्वस्थ दृष्टिकोण की प्रशंसा की जानी चाहिये।

बबूलकी छाँव : (कहानियाँ) : लेखक : शानी : प्रकाशक : नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद।

शानी की कहानियों की सबसे पहली और प्रमुख बात, जो पाठक को बाँध लेती है—वह है सूक्ष्म निरीक्षण, सचेत, सतर्क और विशद। यह सूक्ष्म-निरीक्षण बाह्य-स्थितियों के चित्रण परिस्थिति को सजीव रूप और परिवेश में स्थापन, हाव-भाव मुद्राओं और मानवीय कार्य-कलाप और मन-पट पर उभरती-मिटती लहरों का हो सकता है। शानी की यह निरीक्षण शक्ति निश्चय ही अपेक्षाकृत बाहरी चित्रणों में अधिक खुल-कर आई है लेकिन सब मिलाकर उसके निरीक्षण पर आश्चर्य होता है। एक के बाद एक ऐसे अनायास भाव से लेखक ये ज़िन्दा तस्वीरें देता चलता है कि पढ़नेवाला दिलचस्प फ़िल्म में बँधा बैठा रहे।

और चूँकि उसने अपनी इन कहानियों का क्षेत्र मध्यप्रदेश के पहाड़ी पिछड़े हुए इलाके और नारी पुरुष के रोमानी क्षणों को ही चुना है इसलिये उसके ये सूक्ष्म निरी-क्षण एक गज़ब सा काव्यात्मक दर्दीला वातावरण बनाये रखते हैं। स्पष्ट ही वह कविता, भाषा की ऊपरी सतह की, या लेखक के इम्प्रेशनिस्टिक उद्गारों की नहीं होती, वह विषय-वस्तु और वातावरण के अधिक से अधिक सूक्ष्म रेशों को पकड़ पाने के प्रयत्न की होती है। इसलिये ऐसा नहीं लगता कि पात्रों और स्थिति से कटकर कविता का अचानक बाढ़ आ गई हो। उसने भाषा का सचेत प्रयोग किया है।

लेकिन मुझे शानी से दो शिकायतें हैं। उसकी कहानियों में यों परिवेश की विवि-धता है—अलग अलग लोगों और अलग-अलग व्यक्तियों को लेकर उन्होंने कहानियाँ लिखी हैं—फिर भी लगता है भावना के स्तर पर उनकी कहानियाँ शरत से आगे नहीं है। अधिकाश की विषय-वस्तु असफल प्रेम के बीते उच्छ्वास है। वह प्रेम कहीं शेफाली के रूप में अकेले आफ़ताब के आस-पास मँडराकर दम तोड़ देता है तो कहीं आयशा और अफ़ज़ल के रूप में घुटता रहता है। (यही घुटन 'अज्ञेय' की कहानी रोज (बाद में, गैंग्रीन) में कैसी साकार है) और वही नीली के रूप में अस्पताल में छटपटाकर गायब हो जाता है। फिर भी उनकी अनुभूतियों में सचमुच ताजगी है—दृष्टि में सहानुभूति है और वे बबूल के

काँटों की छाँव में भी धड़कनें खोजते और सुनते हैं। उनका भावुक हृदय अभी टी० बी०, घुटन, पराजय ही देख पाया है—यह उनकी सीमा भी हो सकती है।

दूसरी शिकायत है अभिव्यक्ति से। वे गति और विस्तार दोनों की उलझी सजीवता को पकड़ने के प्रयत्न में प्रायः अभिव्यक्ति को कमजोर बना देते हैं—और उनके वाक्य अनावश्यक रूप से लम्बे हो जाते हैं। कहीं-कहीं तो तस्वीर को समझने के लिए दो-दो बार पढ़ना पड़ता है। फिर भी उनकी सजीवता से इनकार नहीं किया जा सकता। 'सालिया ने मीविहैंयट फयड के पैसों में घी लाने की इच्छा प्रकट की तो वाहिद के भीतर जैसे किसी ने हाथ डालकर खंगाल दिया हो।' 'पहाड़ी नदीके किनारे काली चट्टानें, जिनके सीने सफा हैं, धुले हैं और जिन पर दरख्तों के सुर्ख पत्तों की नाजुक रेखाएँ खामोश पड़ी हैं।' या 'दियासलाई की तीली ने जितनी रोशनी उछाली, उस मुठ्ठी भर प्रकाश में जहीरा का चेहरा केवल पल भर के लिये चमका और बुझ गया'—जैसे बोलते चित्र मानी शानी के पास कदम-कदम पर मिलेंगे।

संग्रह की दो कहानियाँ, 'जली रस्सी' और 'पहाड़ और ढलान' गुले आकाश में उड़ने को पर तोलते पक्षी की फड़कन का आश्वासन देती हैं। निश्चय ही शानी के पास गहरी दृष्टि और समर्थ प्रतिमा है और उससे ईर्ष्या होती है।

—राजेन्द्र यादव

मनोविश्लेषण : मूल ; सिगमण्ड फ्रायड ; अंग्रेजी से हिन्दी अनुवाद: देवेन्द्रकुमार वेदालंकार : प्रकाशक: राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

जितनी कसरत से हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव की आलोचना की जाती है, उतनी कसरत से उस अभाव को दूर करने की कोशिश नहीं। इसका सबसे बड़ा प्रधान कारण है—व्यावसायिक। ऐसी पुस्तकें के पाठक यानी खरीददार कौन हैं। ऐसी पुस्तकें केवल ज्ञान ही दे सकती हैं और इस ज्ञान के लिए पढ़नेवाले खरीददार एक तो बहुत कम है। अभी जो हैं, वे अंग्रेजी के भी ज्ञाता हैं, और अंग्रेजी में इन पुस्तकों को प्रायः पढ़ चुके होते हैं। इसी तरह कॉलेज या यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर। दूसरा पाठक विद्यार्थिवर्ग है, जिसको इच्छा या अनिच्छा से नीरस विषयों को भी पढ़ना ही पड़ता है। इसके लिये यह आवश्यक कि संबंधित-पुस्तक यूनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में स्वीकृत कर ली जाँय, जिसके लिए अक्सर प्रकाशक को कम सिरदर्द नहीं उठाना पड़ता।

एक और बात है, अनुवाद की पाठ्य प्राप्त करने के लिए उस पुस्तक को काफी मूल भाषा में काफी लोकप्रियता और लोकप्रियता प्राप्त होनी चाहिए। इसी बीच उसे विज्ञान विशेष में प्रगति तो होती नहीं। फल यह होता है कि उस पुस्तक का मौलिक (pioneering) महत्त्व तो रहता है, किन्तु उससे अद्यतम (up-to-date) प्रगति का

-रिचय नहीं मिलता। फिर अनुवाद की ानी भाषागत कुछ कठिनाइयाँ भी होती । ये सब मिल-मिल कर अनुवादक को ो हतोत्साह कर देते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक मूल जर्मनी के अंग्रेजी नुवाद से अनूदित है, अतः इसमें बहुत से पारिभाषिक या प्राविधिक Technical) शब्दों के अनुवादों में फलता नहीं मिली है। उदाहरणार्थ न्टल डिस्टर्बेन्स' का अनुवाद 'मनोविक्षोभ' ीं 'उपद्रव' दिया है; 'कम्प्लैक्स' के ाए आजकल 'कुण्ठा' शब्द का अधिक च्छा प्रयोग होता है। 'इण्टरफीअरन्स' लिए 'बाधन' की जगह दखलन्दाजी, तक्षेप या अन्तःक्षेप शब्द अधिक प्रयुक्त ते हैं। अनुवाद में भाषागत अनुकरण के ारण अनुवाद की भाषा कहीं-कहीं और ी अधिक अस्पष्ट है। जिसने यह किताब ंग्रेजी में न पढ़ी होगी वही शायद इस नुवाद को खरीदकर रखेगा। हिन्दी अनुवाद में हिन्दी की प्रवृत्तियों का ध्यान खना भी आवश्यक है, केवल अस्पष्ट ाषान्तर ही ठीक नहीं। मूल पुस्तक भाषण क रूप में है, अतः कहने के ढंग और लिखने क ढंग में जो मौलिक अन्तर है, वह अनुवाद में और भी कठिन और कभी व्यर्थ ी कभी अधिक उलझानेवाला है। फलतियों क मनोवैज्ञानिक, उदाहरणों के सम्बन्ध में ही बात लागू होती है, उनकी जगह हिन्दी के उदाहरण दिए जा सकते थे।

मन्मथनाथ गुप्त ने भी अपनी सेक्स संबंधी पुस्तक में प्रायः ऐसा ही किया है।

यद्यपि प्राविधिक शब्दों का, जहाँ सबसे वे पहले प्रयुक्त हुए हैं, अंग्रेजी अनुवाद दिया है, फिर भी पुस्तकान्त में 'शब्दकोष' (Glossory) के तौर पर उनका उल्लेख रहता, तो उपयोगिता बढ़ जाती, क्योंकि ये अनूदित शब्द प्रायः नये हैं और पाठक के संस्कारों से मेल नहीं बिठा पाते।

कुल मिलाकर प्रयत्न अच्छा है, इस दिशा में श्री-गणेश है और आशा है कि इसका भविष्य उज्ज्वल होगा।

राजस्थानी लोकगीत : संपादिका : रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत : प्रकाशक : राजस्थानी परिषद, जयपुर।

डॉ० दशरथ ओझा की प्रस्तावना, तथा संपादिका की ४६ पृष्ठ की परिचयात्मक भूमिका के साथ ६० राजस्थानी लोक गीतों का यह संग्रह राजस्थान की लोक, संस्कृति का बहुत अच्छा परिचय देता है। गीतों के चयन में संपादिका ने पर्याप्त सतर्कता इस बात की रक्खी है कि राजस्थान के समग्र-जन-जीवन का प्रतिनिधित्व हो जाए। यों राजस्थान की मूल-प्रकृति रजोगुणी-शौर्यमयी रही है। स्वाभाविक ही है कि इसमें वीर रस प्रधान गीतों की प्रमुखता हो। संपादिकाजी भी एक राजपूत महिला हैं।

फिर भी उदात्त मानवीय गुणों का परिचय देनेवाले गीतों का इसमें अभाव नहीं मिलता।

पुस्तक पठनीय है, इसमें संशय नहीं।

—सन्हैयालाल ओझा

जिन्हें तंदुरुस्ती प्यारी हैं वे सदा
लाइफ़बॉय से नहाते हैं
खेल कूद हो या काम काज हम गंदगी से बच नहीं सकते। और गंदगी में बीमारी के कीटाणु होते हैं जिन से तंदुरुस्ती को खतरा रहता है। लाइफ़बॉय साबुन गंदगी के इन कीटाणुओं को धो डालता है और आप की तंदुरुस्ती की रक्षा करता है।
हर रोज लाइफबॉय साबुन से नहाइये और अपनी तंदुरुस्ती की रक्षा कीजिये यह आपको ताज़गी देता है।
LIFEBUOY
SOAP

में जिनकी कृतियाँ हैं

अजित पुष्कल
अनवर आगेवान
अबुलकलाम आजाद
अलर्क
आग्नेय
ओंकार दुबे
इन्दुकान्त शुक्ल
कमल जोशी
कमलेश्वरी सक्सेना
कुलभूषण
केशवदेव मालवीय
कृष्णाचार्य
न्द्रकिरण सौनरिक्सा
जवाहरलाल नेहरू
देवेन्द्र सत्यार्थी
नोरा वर्क
प्रभाकर द्विवेदी
कुमारिल स्वामी
फ्रांक फेल्डमॅन
बोरिस पास्तेर्नाक
मालती परूलकर
मोहन मिश्र
रतनलाल जोशी
रमेश कुन्तल मेघ
राजगोपालाचारी
डा० राजेन्द्रप्रसाद
राकेश
विल ड्यूरंट
सॉमरसेट मॉम
शिवनन्दन कपूर
श्रीलाल शुक्ल
श्रीप्रसाद

चतुर्थ वर्ष
सप्तम अंक
नेतालीसवीं किरण
फरवरी, १६५६
गणतन्त्र-दिवस अंक

संचालक :

नीलरतन खेतान
चन्द्रकुमार अग्रवाल

इस अंक में समर्पित

कहानी-कुसुम

सम्पादक व्यवस्थापक

पृथ्वीनाथ शास्त्री,
एम० ए०

प्रधान कार्यालय

१७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता-७
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय

१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दिल्ली
फोन : ४४२४८

वार्षिक मूल्य ८) द्विवार्षिक १५)
एक प्रति ७५ नये पैसे

काव्य प्रसून

आवरण-चित्र : टेसू के फूल (पलाश पुष्प)
शिल्पी : इन्द्र दूगड़,

भारतीय गणतंत्र दिवस आपके

सुखमय हो

सेवा कर रहे हैं...
गृह एवं
उद्योग
के लिये
प्रभात
उत्पादन
प्रभात प्रेसर कुकिंग स्टोवों से गृहिणी
का काम हल्का हो जाता है और
प्रभात गैस लैटर्नेस उन घरों को जगमगा
देते है जहां बिजली सुलभ नहीं होती।
प्रभात ब्लो लैम्प्स समान रुप से छोटे या बड़े
वर्कशॉप के लिये अति आवश्यक है, वास्तव
में ये शब्द "प्रभात उत्पादन" समानत.
घर एव उद्योग में विशेषता-सूचक
शब्द बन चुके है।
"भारत का सर्वप्रथम...
तौभी सर्वोत्तम!"

प्यारी हैं वे सदा
लाइफ़बॉय
से नहाते हैं।
LIFEBUOY
SOAP

बड़ी तथा छोटी रेलवे लाइनों के लिए स्टील प्लेट तथा पॉट,
बी० एस० एस० नम्बर ७८ (१६३८) के स्पेशल तथा
पाइप, नाले एवं बरसाती पानी निकलने वाले पाइप आदि सब
तरह की लोहे की ढली वस्तुओं के निर्माता व फिटर।
टाटानगर फाउण्ड्री कं० लि०
कारखाना-१
टाटानगर
जिला-सिंहभूमि, बिहार
फोन. जमशेदपुर-२७२.
हेड आफिस
स्टीफेन हाउस
४ डलहौजी स्क्वायर
कलकत्ता-१
फोन: २३-४३११ (८ लाइनें).
कारखाना-२
बेलूर
हवड़ा
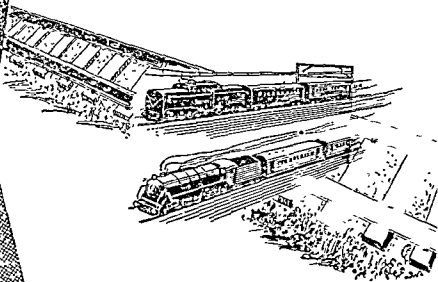
विनम्र निवेदन

★ सहयोगी लेखकों और कलाकारों से प्रार्थना है कि व अपनी रचनाएं कृतियाँ यदि प्रकाशनार्थ भेजना चाहें तो महीने की १५ तारीख तक भेजें।

★ रचना या कृति के साथ डाक टिकट न भेजें, क्योंकि अब हम अस्वीकृत रचनाएं वापस नहीं कर पाते और रचनाओं की स्वीकृति रचना मिलने के पन्द्रह दिन बाद भेज देते हैं।

★ सुप्रभात में सभी विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, अतः केवल साहित्यिक विषयों पर ही रचनाएँ न भेजें।

★ रचनाएँ साफ-साफ प्राय: टाईप की हुई और कागज के एक ही तरफ स्याही से लिखी या छपी होना चाहिए और दोनों ओर हाशिए रहने चाहिए।

★ १५ दिन तक कोई भी सूचना न मिलने पर रचना अस्वीकृत समझें।

—सम्पादक

हिन्द राष्ट्र की वाणी हिन्दी

सहज रसीली मधुर मनोहर, निर्मल है गंगा के जल-सी
भारत की जन सत्ता के हित अमृत-भरी स्वर्ण की कलसी
बिखरे हुए प्रान्त प्राणों की, एक राष्ट्र की अनुपम माला
सुषमा-भरे देश कानन में जीवन सरसाती कोयल-सी
कोई सुन ले सुना रही है कविता पूर्ण कहानी हिन्दी

ब्रजभाषा की सखी सहोदर अवधी की है सुघड़ सहेली
गुजराती, बँगला, पंजाबी इनसे भी हिलमिल कर खेली
प्राकृत से पाया है जीवन, देवों की वाणी से वाणी
नहीं किसी से वैर, वस्तु जो मन को भाई, वह ही ले ली
महाराष्ट्र ने हृदय बिछाया, जब उसने पहचानी

इस देवी पर फूल चढाने 'वरदायी' से 'कबिरा' आये
'वाल्मीकि' 'तुलसी' हो आये 'ऊधो' 'सूरदास' कहलाये
प्रेमलोक से उतरी 'मीरा' काबुल से 'रसखान' पधारे
'नानक' ने उपदेश सुनाया 'रहिमन' के तन-मन लहराये
'भारतेन्दु' का उदय हुआ तो सब को लगी सुहानी हिन्दी

(१९४७ में) भारत की (चिरवाञ्छित) स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से हमने जिस ढंग से अपना काम-काज चलाया है उसकी लोगों ने सराहना की है। इस भावना के कई कारण हो सकते हैं। हमारी प्राचीन संस्कृति और देश की आर्थिक तथा उद्योग-सम्बन्धी समस्याओं को सुलझाने के हमारे सफल प्रयत्न भी उनमें हो सकते हैं। किन्तु इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं कि विदेशों में भारत के प्रति सद्‌भावना का सबसे बड़ा कारण हमारी परराष्ट्र नीति है। बहुतेरे राष्ट्र हमारे देश को शान्ति का स्तम्भ मानते हैं। वे समझते हैं कि भारत ऐसा राष्ट्र है जो सब देशों की प्रगति और स्वाधीनता चाहता है, जो विभिन्न प्रशासनों और विचार-धाराओं को मान्यता देता है और इसके साथ ही जिसका यह विश्वास भी है कि यदि पारस्परिक सद्‌भावना और सहिष्णुता से काम लिया जाय तो ये सब विभिन्न विचार-धाराएं साथ-साथ जीवित रह सकती हैं। जिस बात से विदेशी मित्रों की हमारे प्रति सद्‌भावना को और भी समर्थन मिला है वह यह है कि हम अपनी सभी समस्याओं को लोकतन्त्रात्मक विधियों द्वारा सुलझाने का यत्न कर रहे हैं।

हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि सोच विचार में और अपने दैनिक व्यवहार में हम ऐसा कोई काम न करें जो हमारी सहिष्णुता और सह-अस्तित्व की नीति के अनुरूप न हो। किसी भी राष्ट्र की विचार-धारा तथा नीतियों को प्रायः उस राष्ट्र के नागरिकों के व्यवहार से ही आंका जाता है।

अब मैं घरेलू मामलों की बात करूँगा। यह सभी जानते हैं और अच्छी तरह समझते हैं कि योजनाबद्ध आर्थिक व्यवस्था द्वारा जनसाधारण पर काफी दबाव पड़ता है। इस मामले में राष्ट्र और कुटुम्ब में अधिक अन्तर नहीं। उज्जवल भविष्य और अधिक सुखी जीवन के लिए दोनों ही को बलिदान करने पड़ते हैं और कुछ कष्ट सहने होते हैं। हो सकता है जीवन थोड़ा बहुत अस्त-व्यस्त हो जाय और लोगों को कुछ सुविधाओं से वंचित रहना पड़े, किन्तु इन सब कष्टों को हँसी-खुशी झेलने में उन्हें राष्ट्र के अन्तिम ध्येय की प्राप्ति के विचार से सहायता मिलती है। इसलिए यदि आयोजन के कारण हमारे देश के लोगों को कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, तो यह आशा की जानी है कि राष्ट्र के दीर्घकाली हित में और भविष्य को सुन्दर तथा उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से इन कठिनाइयों का हिम्मत से मुकाबला किया जायगा।

...न्द्र प्रसाद के सन्देश का सारांश

...ान की भावना और अपने ही प्रयत्नों से भविष्य में अधिक प्राप्त करने के ...न में इच्छा से त्याग करना—यह गुण बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह समझना गलत ...यम तथा त्याग की आवश्यकता हमें अतीत में ही थी और स्वाधीन राष्ट्र को ... के लिए बलिदान की भावना की जरूरत नहीं। मैं समझता हूँ कि उस समय ..., जब हम स्वाधीनता संग्राम में व्यस्त थे, आज त्याग की भावना की कहीं ... है। अपने सभी देशवासियों से मेरा निवेदन है, चाहे वे भाई और ...ों में रहते हों अथवा शहरों में, कि वे स्थिति पर विचार करें और अपने आपसे ... कि क्या अपने सुनहरे स्वप्नों के अनुरूप भारत के निर्माण में उन्होंने कोई ... किया है।

... समस्या सभी के लिए, विशेष कर हमारे लिए, एक आधारभूत प्रश्न है। ...न में अपने देश की सदियों पुरानी परम्परा, अपने लोगों की कार्य-क्षमता, ...र समझदारी को देखते हुए यह हमारे लिए लज्जा और अपमान की बात है कि ... के लिए दूसरे देशों का मुंह ताकें और अन्न के आयात पर सैकड़ों करोड़ रुपये ...। प्रत्येक किसान को यह समझना चाहिए कि अधिक अनाज पैदा करके और ...पीढ़ उत्पादन बढ़ाकर वह एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय सेवा ही नहीं करेगा बल्कि ... भी उन्नत करेगा। इस प्रकार वह राष्ट्रीय हित और निजी हित दोनों को ...। जहां एक बार इस बात का आभास हुआ, सुधरे हुए तरीकों और भरपूर ... प्रणाली द्वारा उत्पादन को दोगुना करने में, इस कठिन समस्या को हल करने ... के लिए रोटी का प्रश्न सुलझा देने में हमें बहुत कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

...नो और भाइयो, मेरा आपसे यह अनुरोध है कि आप इस सुअवसर का स्वागत ...ो मिला है और उस जिम्मेदारी को समझें जो इस समय आप पर आती है। ...राष्ट्र के निर्माण का शुभ कार्य विधि ने आपको सौंपा है। नवीन भारत के ... निर्माता हैं। इस दायित्व को निभाने और सदियों की गुलामी से आजाद हुए ... नवनिर्माण के लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए क्या कोई भी बलिदान ऐसा है जिसे ... कहा जा सके।

विज्ञान की प्रगति : साम्यवाद की स्थापना

●

जवाहरलाल नेहरू

●

उक्त विषयों पर नेहरू जी के हाल ही के भाषणों का सारांश

●

हम आज अपने चारों ओर की मिहनत और तकलीफों को नये युग के जन्म की प्रसव-वेदना समझें या पुराने युग की मृत्यु-यन्त्रणा जैसा कहें ? मैं नहीं जानता, किन्तु आशावादी होने की वजह से मेरी यही उम्मीद है कि यह नये युग की प्रसव-वेदना ही है। विज्ञान (सायन्स) और प्रविधि (टेकनिक) ने गत २०० सौ साल में संसार को पहले से और भी अच्छा ही बनाया है और आज इस प्रगति का क्रम ज्यादा जोर ही पकड़ रहा है। किन्तु यूनानी देवता जनुस की तरह विज्ञान के भी दो चेहरे हैं, स्रष्टा और संहारक। हम अपने देश में विज्ञान के सर्जनशील रूप के उपासक हैं। हमें दूसरों से होड़ या बाजी नहीं लगाते, हम तो सब का सहयोग चाहते हैं।

आज आदमी चाँद, मंगल और शुकतारे पर पहुँचने की तैयारियों में मशगूल है पहुँच। वह अनन्त आकाश को भी जीतना चाहता है लेकिन अपने आवास-स्थल की घरनाओं को भूल रहा है, यहाँ का प्रबन्ध नहीं कर पा रहा। विज्ञान के महापण्डितों और पुजारियों को यह महसूस करना चाहिए कि हर वैज्ञानिक काम और आविष्कार का नतीजा सामाजिक भी होता है और विज्ञान में भी नैतिक समस्याएँ सदा उलझी रहती हैं। सत्य की खोज में भले-बुरे दोनों को समभाव से लेना पड़ता है, लेकिन फिर भी हम अपने मौलिक पहलुओं (aspects) और मान्यताओं (values) को नजर-अन्दाज नहीं कर देते। किसी भी काम को करने के बहुत से तरीके होते हैं। और हमें इसी पीढ़ी के रहते अपना चुनाव करना है, ठीक रास्ते के रहते गलत रास्ते नहीं जाना है।

अभूतपूर्व, बहुत बड़ी-बड़ी सफलाएँ मिलने पर भी वैज्ञानिकों को इतना उद्धत नहीं होना है कि वे सब को चुनौती दें और फिर खुद ही अभिभूत हो उठें। उन्हें इतिहास का यह सबक कभी नहीं भूलना चाहिये कि उद्धत और उद्दण्ड को नीचा देखना पड़ता है।

आज संसार में बाहरी तौर से, भौतिक रूप में, उखड़े हुए लोगों की, शरणार्थियों की भीड़ तो सर्वत्र लगी ही है लेकिन उनसे भी ज्यादा खतरनाक हालत उन व्यक्ति समुदाय या राष्ट्रों की है जो आपस में और अन्दरूनी तौर पर अपने आन्तरिक मंदर्यों से परेशान हैं। लगता है कि, संसार ने विज्ञान और उसकी खोजों के साथ कदम नहीं मिलाये। शायद भविष्य में यह सम्भव हो सकेगा।

।८ विज्ञान ने कुछ समस्याएँ खड़ी की हैं तो उसे ही उनका समाधान भी करना उसके लिये स्वर्ग से देवता नहीं आ जायेंगे। विज्ञान को सिर्फ खगोल और न-सम्बन्धी निरीक्षणों और सवालों को सोचने या रॉबट या बड़े-बड़े स्वचालित स्वचालित यान्त्रिक दिमागों को बनाने में ही लगे रहकर आदमी और उसकी नदों को नहीं भूलना चाहिए, खास तौर से उन बातों या चीजों को, जो उसकी में बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। विज्ञान को मानव के हृदय, मन और आत्मा या (Spirit) पर ध्यान देना ही पड़ेगा।

बड़ा ताज्जुब होता है कि कुछ लोग समाजवाद (सोशलिज्म) स्थापना की दिशा को दुहरे अर्थवाले शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं या इसको रोकना चाहते हैं। व्यवस्था में सुधार या नियोजन की बात चलते ही उसे 'अत्याचार या व्यक्ति-का अपहरण बताने लगते हैं। इन में वे लोग भी हैं जो कुछ समाचार-पत्रों के और साम्यवाद के खिलाफ जोर शोर से प्रचार करते हैं—खास तौर से, यह कि नागपुर कांग्रेस में हमने इस प्रतिज्ञा को फिर दुहराया है। यह निश्चय मानिए भी बड़ी योजनाएँ पूरी करना और भूमि-व्यवस्था में सुधार और सहकारिता से कराना हमारा दृढ़ उद्देश्य है।

पंचवर्षीय योजनाओं को परिपूर्ण न करने को कहना ऐसा है जैसे कोई मंझधार में को कहकर बह जानेकी सलाह दे। कुछ पढ़े-लिखे लोग भी शायद अभी यह नहीं हैं और पंचवर्षीय योजनाओं तथा राष्ट्रिय नियोजन विधि को ग़लत बताते हैं। यह समझ में आ सकता है कि कुछ लोगों की राय अलहदा हो सकती है लेकिन समाजवाद की ओर आगे बढ़ने से रोकने की कोशिश तो बिलकुल अजीब बात है। कमियों और कठिनाइयों के ठीक-ठीक मूल्यांकन के लिए दिलो-दिमाग में एक सन्तुलन जरूरी है, जो हमारे बहुत से कटु आलोचकों में नहीं है।

हमारा यह निश्चित लक्ष्य है कि उद्योग-धन्धों और खेती-बारी में सहकारिता को जाय। हम अब ऐसी कोई भी बात उठा नहीं रखेंगे जिससे कि व्यक्तिगत री को रोका जा सके और हजारों लोगों का नुकसान होना खतम जाय।

जी और राष्ट्रायत्त उद्योगों के क्षेत्र अलग अलग है। मौलिक वस्तु-निर्माण और बड़े राष्ट्रायत्त ही रहेंगे किन्तु फिर भी निजी उद्योगों के लिये बहुत बड़ा क्षेत्र रहेगा। हम निजी उद्योगोंको उनके अपने खास क्षेत्रों में हर तरह की मदद भी देंगे। भारत की हर तरह उन्नति हो रही है और वह धीरे-धीरे प्रगति की ओर बढ़ता। हमें और भी बड़ी योजनाएँ बनानी हैं एवं इनको पूर्ण करने में और भी बलिदान करने पड़ें, उनके लिए बखुशी तैयार रहना है क्योंकि इसके असम्भव है। *

सत्ता-परिवर्तन किस लिए ?

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

क्रांति के बिना परखे हुए और अयथार्थ नारों पर अमल करनेमात्र से ही कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता। शासक दल ने इस सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा की है कि हमारे देश में जो अच्छाई है और जिसकी जड़ें इस देश की भूमि में गहरी पैठ चुकी हैं, उसकी रक्षा की जाय। मौजूदा स्थिति को गड़बड़ाने या इसमें परिवर्तन लाने के लिए कटिबद्ध होने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि हमारे यहाँ क्या है और क्या अच्छा है, जिसकी सुरक्षा जरूरी है। पर दुर्भाग्यवश शासक दल तो एकमात्र अपने नारों की गुलाम होकर ही काम करती रही है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि वह भूल पर भूल करती जा रही है।

वर्तमान शासन की देन

सारा संसार जानता है कि भारत में वर्तमान सरकार अच्छा शासन स्थापित नहीं कर सकी है और न सारी भूखी-नंगी जनता के कल्याण और सुख की ही व्यवस्था कर सकी है। सच तो यह है कि इसने अत्यधिक असुविधा की ही सृष्टि की है। किसी भी देश के लिए समाजवाद तभी कल्य साबित हो सकता है, जब कि सिद्धान्त को अपना कर चले कि जो है और जिसकी जड़ें देश की भूमि में चली गई हैं, उसे सुरक्षित रखा जाय

इसलिए हमें भारत में एक ऐसे की जरूरत है, जो जन-कल्याण सार्वजनिक विकास के लक्ष्य पर आगे बढ़ते हुए भी इस बात को रखे कि हमारे पास क्या-कुछ है और लिए क्या अच्छा है। पर आज तो वटीपन, प्रवंचना और विदेशिय प्रभावित करने की ऐसी होड़-सी कि अच्छे शासन या उपयुक्त आ नीतियों की ओर ध्यान देने की पु किसको है? इस स्थिति में समाजव नारे का स्वाभाविक परिणाम हुआ है का केन्द्रीकरण, जिससे बहुत बड़ा नु हुआ है।

धन के पर्यायवाची अव

केन्द्रीकरण की सबसे बड़ी बुराई हुई है सरकार के हाथों में जीवन-की

न का चक्र जाना। इसकी का भंडाफोड़ यद्यपि एक घटना ही थी, पर उससे लाभ है। साधारणतया बीमा-व्यवसाय द ऐसा कि कई दशाब्दियों तक बड़ी-से-बड़ी अव्यवस्था भी छिपी ती है। नया व्यवसाय अपनी सब को दिखाने की क्षमता रखता है। द व्यवसाय केन्द्रीभूत न होकर कई गों के हाथों में हो, तो धोखाधड़ी धली का पता लगाना तथा उसे सीमाओं में रखना आसान है। सवा कम्पनियों में होनेवाली प्रतियो- भी कार्यदक्षता को क़ायम रखने रादयों को सीमा में रखने में सहायक ती है।

मि और सहकारी खेती

रकार की भूमि-नीतियों का परिणाम आ है कि भ्रांतियाँ बढ़ी हैं तथा खेती सानों की दिलचस्पी और प्रेरणा कम । किसी समय भारत में भूमि का त्व बड़ा आकर्षक और ठोस समझा था। पर आज ऐसी बात नहीं है। उभी जानते हैं कि आज सरकार की नीतियों, असामयिक घोषणाओं और की मिल्कियत तथा जुताई-बुआई कुलाटोंसे जन-साधारण में अविश्वास, । और दिलचस्पी की कमी की ही हुई है, जिसके परिणाम-स्वरूप शहरों कान बनने के स्थानों को छोड़ कर सब की भूमि का मूल्य गिरा है। शहरों की जमीनों के मूल्यों में जो वृद्धि हुई है, वह भी इस बात की परिचायक है कि रोजी के लिए ग्रामीण लोग शहरों में काफी आ रहे हैं।

और अब भूमि-सुधार का नया नारा दिया गया है सहकारी खेती के रूप में! क्या कहीं भी भूमि पर सहकारी खेती हुई है—सिवा उन कम्युनिस्ट देशों के, जहाँ खानगी मल्कियत और वैयक्तिक स्वतंत्रता को दफना कर बलात्श्रम (बेगार) की नीति को अपनाया गया है। सैद्धान्तिक रूप से सहकारी खेती और सरकार द्वारा सारे अनाज की खरीद चाहे सम्भव हो, पर व्यवहार में तो यह केवल जोर-जबरदस्ती से ही संभव हो सकता है, क्योंकि जान-बूझकर तो शायद ही कोई किसान इसके लिए उत्साह रखता हो या वेतन-भोगी दास होना स्वीकार करे। अतः मुझे तो लगता है कि सहकारी-खेती का प्रयोग हमारे देश में एक नुकसानदेह विफलता ही साबित होगा, क्योंकि यह किसी विचार या अनुभव का परिणाम न होकर एक उस दूसरी भूल और दुराग्रह का ही पर्याय है, जिसमें भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में न बाँटकर उसके विभाजन की सुव्यवस्था किए बिना ही उसके अधिकतम स्वामित्व की सीमा निर्धारित करना है। जो लोग आज गला फाड़-फाड़कर सहकारी या पंचायत द्वारा खेती किए जाने की बात कह रहे हैं, उन्हें मद्रास में खेती के लिए पंचायतों को सौंपी गई छोटे-छोटे जंगलों की भूमि के इतिहास को आँखें खोलकर

सत्ता-परिवर्तन किस लिए ?

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

क्रांति के बिना परखे हुए और अयथार्थ नारों पर अमल करनेमात्र से ही कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हो सकता। शासक दल ने इस सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा की है कि हमारे देश में जो अच्छाई है और जिसकी जड़ें इस देश की भूमि में गहरी पैठ चुकी हैं, उसकी रक्षा की जाय। मौजूदा स्थिति को गड़बड़ाने या इसमें परिवर्तन लाने के लिए कटिबद्ध होने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि हमारे यहाँ क्या है और क्या अच्छा है, जिसकी सुरक्षा जरूरी है। पर दुर्भाग्यवश शासक दल तो एकमात्र अपने नारों की गुलाम होकर ही काम करती रही है, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि वह भूल पर भूल करती जा रही है।

वर्तमान शासन की देन

सारा संसार जानता है कि भारत में वर्तमान सरकार अच्छा शासन स्थापित नहीं कर सकी है और न सारी भूखी-नंगी जनता के कल्याण और सुख की ही व्यवस्था कर सकी है। सच तो यह है कि इसने अत्यधिक असुविधा की ही सृष्टि की है। किसी भी देश के लिए समाजवाद तभी कल्याणक साबित हो सकता है, जब कि वह सिद्धान्त को अपना कर चले कि जो अ है और जिसकी जड़ें देश की भूमि में ग चली गई हैं, उसे सुरक्षित रखा जाय।

इसलिए हमें भारत में एक ऐसे द की जरूरत है, जो जन-कल्याण सार्वजनिक विकास के लक्ष्य पर क्रम आगे बढ़ते हुए भी इस बात को ध्या रखे कि हमारे पास क्या-कुछ है और ह लिए क्या अच्छा है। पर आज तो दि बटीपन, प्रवंचना और विदेशियों प्रभावित करने की ऐसी होड़-सी लगी कि अच्छे शासन या उपयुक्त आर्थ नीतियों की ओर ध्यान देने की फुर्स किसको है? इस स्थिति में समाजवाद नारे का स्वाभाविक परिणाम हुआ है का केन्द्रीकरण, जिससे बहुत बड़ा नुक हुआ है।

धन के पर्यायवाची अवगु

केन्द्रीकरण की सबसे बड़ी बुराई हुई है सरकार के हाथों में जीवन-बीमा

धन का चल' जाना। इसकी ... का भंडाफोड़ यद्यपि एक घटना ही थी, पर उससे लाभ हुआ है। साधारणतया बीमा-व्यवसाय कुछ ऐसा कि कई दशाब्दियों तक बड़ी-से-बड़ी अव्यवस्था भी छिपी सकती है। नया व्यवसाय अपनी सब की छिपाने की क्षमता रखता है। यह व्यवसाय केन्द्रीभूत न होकर कई ...ों के हाथों में हो, तो धोखाधड़ी धाँधली का पता लगाना तथा उसे सीमाओं में रखना आसान है। सिवा कम्पनियों में होनेवाली प्रतियो- भी कार्यदक्षता को क़ायम रखने ... बुराइयों को सीमा में रखने में सहायक होती है।

भूमि और सहकारी खेती

सरकार की भूमि-नीतियों का परिणाम हुआ है कि भ्रांतियाँ बढ़ी हैं तथा खेती किसानों की दिलचस्पी और प्रेरणा कम ... है। किसी समय भारत में भूमि का ... आकर्षक और ठोस समझा था। पर आज ऐसी बात नहीं है। सभी जानते हैं कि आज सरकार की भूमि-नीतियों, असामयिक घोषणाओं और ... की मिल्कियत तथा जुताई-बुआई संबंधी कुलाटोंसे जन-साधारण में अविश्वास, भ्रांति और दिलचस्पी की कमी की ही सृष्टि हुई है, जिसके परिणाम-स्वरूप शहरों में मकान बनने के स्थानों को छोड़ कर सब प्रकार की भूमि का मूल्य गिरा है। शहरों की जमीनों के मूल्यों में जो वृद्धि हुई है, वह भी इस बात की परिचायक है कि रोजी के लिए ग्रामीण लोग शहरों में काफी आ रहे हैं।

और अब भूमि-सुधार का नया नारा दिया गया है सहकारी खेती के रूप में! क्या कहीं भी भूमि पर सहकारी खेती हुई है—सिवा उन कम्युनिस्ट देशों के, जहाँ खानगी मल्कियत और वैयक्तिक स्वतंत्रता को दफ़ना कर बलात्श्रम (बेगार) की नीति को अपनाया गया है। सैद्धान्तिक रूप से सहकारी खेती और सरकार द्वारा सारे अनाज की खरीद चाहे सम्भव हो, पर व्यवहार में तो यह केवल जोर-जबरदस्ती से ही संभव हो सकता है, क्योंकि जान-बूझकर तो शायद ही कोई किसान इसके लिए उत्साह रखता हो या वेतन-भोगी दास होना स्वीकार करे। अत: मुझे तो लगता है कि सहकारी-खेती का प्रयोग हमारे देश में एक नुकसानदेह विफलता ही साबित होगा, क्योंकि यह किसी विचार या अनुभव का परिणाम न होकर एक उस दूसरी भूल और दुराग्रह का ही पर्याय है, जिसमें भूमि को छोटे-छोटे टुकड़ों में न बाँटकर उसके विभाजन की सुव्यवस्था किए बिना ही उसके अधिकतम स्वामित्व की सीमा निर्धारित करना है। जो लोग आज गला फाड़-फाड़कर सहकारी या पंचायत द्वारा खेती किए जाने की बात कह रहे हैं, उन्हें मद्रास में खेती के लिए पंचायतों को सौंपी गई छोटे-छोटे जंगलों की भूमि के इतिहास को आँखें खोलकर

अच्छी तरह पढ़ देखना चाहिए।

समाज-कल्याण की विडंबना

आज तो स्थिति यह है कि शासक दल के जो कुछ भी भला-बुरा मन में आता है, वही क़ानून बन जाता है ! अधिकांश जनता तो बड़ी निरीह है। फिर जो थोड़े-बहुत लोग शासन की मनमानी का विरोध करने वाले हैं, उन्हें भी अपने कार-बार चलाने के लिए सरकारी कृपा पर निर्भर करना पड़ता है। इसीलिए आज की राजनीति का बहाव बिना किसी विरोध-अवरोध के अपनी ही मति-गति से चला जा रहा है।

समाज-कल्याण और ग़रीबों तथा पिछड़े हुए लोगों का उत्थान आज कोई विवादास्पद विषय नहीं है। और इन्हें केवल अपने दल का नारा बनाना कोई अक्लमंदी नहीं है। प्रश्न तो यह है कि आज समाज-कल्याण के कार्य-क्रम का आधार यह होना चाहिए कि हमारे यहाँ जो कुछ अच्छाई है और जिसकी जड़ें जन-जीवन में गहरी पैठ गई हैं, उसकी रक्षा की जाय या केवल दुराग्रह की भावना से ही चला जाय ?

एक टाँग का जनतंत्र !

बिना प्रभावपूर्ण विरोधी-दल के एक टाँग का यह लँगड़ा जनतंत्र अच्छा नहीं है और न इसमें और दमनकारी अधिनायक तंत्र में मूलतः कोई भेद ही है। अधिनायक तंत्री कम्युनिज्म में सबसे बड़ी ख़राबी व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का लोप। उसकी चरि परिणति होती है एक सर्वशक्तिमान राज दल और तन-मन से दास बनाये व्यक्ति के रूप में। यदि बिना कम्युनिज्म के भी वही परिणति हो तो वह भी कम बुरी नहीं है। फिर चाहे यह दीवानी हिंसा से हो और किसी प्रकार या शांतिपूर्ण कार्यों से यदि शासन व्यक्ति की सत्ता को मिटा दे है, तो इसके बुरे परिणाम भी वही हैं जिन्हें कि हम कम्युनिस्ट अधिनायकतंत्र दुष्परिणाम बताकर बुरा कहते हैं।

कांग्रेस ने जिन समाजवादी लक्ष्यों की घोषणा की है, उन तक शासन-व्यवस्था के केन्द्रीकरण के बिना ही उन व्यक्तियों के सहयोग से भी पहुँचा जा सकता है, जिन्हें कि इनमें दिली दिलचस्पी है। अगर इस भावना को समाजवाद के अभिप्रेतार्थ के प्रतिकूल माना जाता है, तो वह समाजवाद इसलिए बुरा और हानिकर है कि उसकी व्यवस्था में समाज का अन्तिम यथार्थ रूप—व्यक्ति—धीरे-धीरे एक पालित दास व भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी मात्र रह जायगा।

—'हिंदुस्तान टाइम्स' से साभार

(भारतीय जन-जीवन की प्रगति उन्नति की ओर है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु साथ ही कुछ ऐसी बातें भी हो रही हैं, विशेषतः संरक्षित और सर्वत्र समृद्ध निहित स्वार्थों की ओर से, जो सचमुच आलोच्य हैं। ज्ञानवृद्ध, अनुभवी राजनीतिज्ञ राजाजी के विचार यहां इसी सन्दर्भ में उद्धृत हुए हैं, किसी के पक्ष-विपक्ष में प्रचार-प्रसार हमारा ध्येय नहीं है। —सम्पादक)

इतिहास-निकष पर जिन्ना और पाकिस्तान

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जो 'महान्' व्यक्ति माने जाते हैं, उनमें कायदे-जिन्ना भी एक हैं। पर उनका कार्य-काल अभी-अभी बीता है और उनकी यह विशाल पदवी भी इतनी ताजी है कि जल्दी ही यह निर्णय नहीं हो सकता कि यथार्थ में के व्यक्तित्व, कार्यों और देन का इतिहास में क्या स्थान होगा। इसके दो और भी हैं: पहला यह कि कायदे-आजम के कार्यकलाप के पूरे तथ्य अभी सामने नहीं ये हैं। दूसरे, उनके पाकिस्तानी भक्तों, साम्राज्यवादी प्रशंसकों और भारतीय स्वाधीनता समर्थकों के मत आपस में इतने भिन्न और विरोधी हैं कि उनके आधार पर कोई तुलित निर्णय करना सम्भव नहीं। इस दृष्टि से हिन्दुओं और मुसलमानों के सिवा पूज्य क्तियों का मत कुछ निष्पक्ष, विचार्य और विवेच्य हो सकता है।

खुराफ़ाती बहुरूपियापन !

हाल ही में ब्रिटेन के भूतपूर्व मन्त्री अर्ल ऍटली ने ब्रिटिश टेलिविजन द्वारा प्रसारित एक कार्य-क्रम में जो कहा उसका साराश यह है: 'मैं मि० जिन्ना को १९२७ से जानता हूँ। पर मैंने उन्हें कभी पसन्द नहीं किया। मेरा ख्याल है कि वे कोई खरे व्यक्ति नहीं थे और पक्के मुसलमान होने का अभिनय भर करते थे। पहले-पहल जब मैंने उन्हें जाना, वे कांग्रेस के पिछलग्गू थे—एक अच्छे मुसलमान नहीं। वे पश्चिम के रंग में रंगे एकदम साहबी ढंग से रहनेवाले थे और उनकी दुराकांक्षा का कोई अन्त न था। उन्होंने एक पारसी-परिवार में विवाह किया था (उनकी इकलौती लड़की ने भी एक पारसी से ही विवाह किया था।)।'

यह तो हुई कायदे-आजम के व्यक्तित्व की बात, जिसे एटली शायद पसन्द नहीं करते थे। पर उनकी महत्वाकांक्षा के एक नमूने के रूप में भी ऍटली ने यही कहा है: 'मि० जिन्ना ने उस समय के महान् व्यक्ति सर सिकन्दर हयात खाँ द्वारा संचालित यूनियनिस्ट-दल की उस सरकार को तोड़ने की कोशिश की, जिसमें हिन्दू-सिख और मुसलमान मिलकर बड़ी खूबी से काम कर रहे थे।' इस ओर पाकिस्तान की स्थापना के लिए किए गए आन्दोलन

के सम्बन्ध में आपने बड़े मार्के की बात कही : 'वह आन्दोलन मुस्लिम कल्याण की भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि करोड़ों पर शासन करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा (दुराकांक्षा ?) की पूर्ति के लिए था। इसीलिए उन्होंने मुसलमानों के हिन्दू-द्वेष को भड़काकर इस आंदोलन को अधिकाधिक घृणा और कटुतापूर्ण बनाया।'

पाकिस्तानी प्रतिक्रिया

सीधे-सादे शब्दों में ऍटली द्वारा व्यक्त इस आंशिक सहज सत्य ने भी जैसे पाकिस्तान में एक बवंडर-सा ला दिया और वहाँ के पत्रों, नेताओं, और ख़ास तौर से कायदे आज़म की बहन ने, (जो पहले कलकत्ते के एक दन्दानसाज के यहाँ सहायिका में रह चुकी हैं!) 'इसे झूठा, मिथ्या लांछन, दिमागी बीमारी, ऍटली द्वारा कुत्सा-प्रचार' आदि न जाने क्या-क्या कहा! मौजूदा पाक-सरकार ने तो ब्रिटिश सरकार के पास एक लम्बी-चौड़ी शिकायत भी भेजी है, जिसमें इस अप्रीतिकर उद्घाटन से दोनों सरकारों के मैत्री सम्बन्धों में फ़र्क़ आने के ख़तरे की ओर संकेत किया है। अच्छा तो यह होता कि यह बताने की तक़लीफ़ गवारा की जाती कि अर्ल ऍटली ने जो अपना व्यक्तिगत मत प्रकट किया है, उसमें कौन-सी बात ग़लत है? स्वयं ऍटली ने इस अप्रिय प्रतिक्रिया पर खेद प्रकट करते हुए सफ़ाई दी है कि उनका उद्देश्य कायदे-आज़म या पाकिस्तान के ख़िलाफ़ कोई जाती हमला करना कदापि नहीं था।

ऍटली की नीयत में शक करने या अपना व्यक्तिगत मत प्रकट करने के लिए उन्हें बुरा-भला कहने से पहले हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि वे ब्रिटेन के एक श्रेष्ठ, अनुभवी, ज़िम्मेदार और संयत एवं संतुलित नेता हैं। मि० जिन्ना से उनका कभी कोई मन-मुटाव या द्वेष-भाव हो, ऐसा कारण या मौक़ा ही उपस्थित नहीं हुआ। फिर जिस पाकिस्तान की स्थापना के लिए जिन्ना 'अमर' और 'महान्' कहे जा रहे हैं, उसका निर्माण बहुत कुछ ऍटली की सहमति से ही हुआ था, कारण वे ही १९४७ में भारत-विभाजन के समय ब्रिटेन की मज़दूर-दलीय सरकार के प्रधान मन्त्री थे।

ऐतिहासिक सत्य

कायदे-आज़म द्वारा हिन्दुओं के प्रति घृणा और द्वेष के आधार पर परिचालित पाकिस्तानी आन्दोलन के पीछे असली बल ऍटली के उन साम्राज्यवादी पूर्वजों का था, जो हिन्दू-मुस्लिम फूट के आधार पर भारत में अपना साम्राज्य चिरस्थायी करने पर आमादा थे। १८५७ के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम में हिन्दू-मुसलमानों की एकता और दिल्ली के निर्बल मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह को इस एकता का प्रतीक मानकर देश को अंग्रेज़ी साम्राज्यवादियों के फैलते हुए फौलादी पंजे से मुक्त करने की एक व्यापक चेष्टा इसका सबूत है। अवध के नवाबों की रक्षार्थ लड़नेवालों में हिन्दू ज्यादा थे। फाँसी ...

प्रमुख सलाहकार और सेनाध्यक्ष मुसलमान थे। किन्तु इस संग्राम की विफलता के
• जब भारत का शासन ब्रिटिश व्यापारियों के हाथों से निकलकर ब्रिटिश कूट-नीतिज्ञों
हाथों में आया तो मलिका विक्टोरिया की प्रजावत्सलता और समान न्याय की दुहाई
ओट में नियमानुसार हिन्दू-मुस्लिम एकता को भंग करने का कार्यक्रम चालू किया
या। पहले शासन ने एक ओर तो हिन्दुओं का संरक्षक और उद्धारक बनकर उन्हें
से फोड़ा, उन्हें तरजीह देकर और मुसलमानों की अवहेलना कर उनमें अपने
ति स्वामिभक्ति या मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा की। दूसरी ओर अल्पसंख्यक मुसल-
को 'उपेक्षित' कहकर उनके अधिकारों की वकालत की। और इस तरह चालाकी से
आपको उनका एकमात्र सरपरस्त घोषित किया। शिक्षा और सरकारी नौकरियों
हिन्दुओं की अपेक्षा उनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अलीगढ़ में मुस्लिम
वविद्यालय की स्थापना हुई और फौजी तथा मुल्की नौकरियों में मुसलमानों के लिए
विशिष्ट अनुपात तय हुआ। सर सय्यद अहमद इस कार्यवाही के अगुआ बने।

अँगरेजी शिक्षा और शोषण की व्यापक वृद्धि के साथ जब भारत में स्वाधीनता के आन्दोलन ने जोर पकड़ा, तब यह 'साम्राज्यवादी षड्यंत्र' भी बढ़ गया। जब तक कि स्वाधीनता-संग्राम नेताओं ने इस खतरेको ताड़ा और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी प्राणपण चेष्टा की तथा वहावी और खिलाफत आन्दोलनों में शिरकत की, तब तक इसका जहर मुस्लिम जनता में काफी गहरे और व्यापक रूप से पहुंच चुका था। जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे करवाए जाने लगे—और मुसलमानों को यह विश्वास दिला दिया गया कि अँगरेजों के बिना बहुसंख्यक हिन्दू तो उन्हें कच्चा ही चबा जायँगे! चूँकि हिन्दुस्तान से बाहर मुसलमानों को कोई वतन नहीं था, इसलिए सर सय्यद अहमद खाँ (और बाद में सर फज़ले हुसेन, सर उमर हयात खाँ आदि) ने स्वतन्त्र रूप से मुसलमानों के आजाद होने का सपना देखा। इस सपने को स्थूल सत्य का आकार-प्रकार दिया सर मोहम्मद इक़बाल ने—पंजाब, सिंध, कश्मीर आदि मुस्लिम प्रधान अंचलों को मिलाकर इस्लामी शरियत के आधार पर पाकिस्तान बनाने का नारा देकर। और इस बीज को बाक़ायदा हिन्दू-द्वेष और घृणा का जल तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की सहायता-समर्थन का खाद देकर एक विशाल विष-वृक्ष कर देने का श्रेय है कायदे-आजम को। अगर बकौल एटली के क़ायदे-आजम ने मुस्लिम हित से प्रेरित होकर ही पाकिस्तान की माँग नहीं की थी तो एटली के पूर्वजों को भी यह आकांक्षा बिलकुल न थी। अगर क़ायदे आजम की दुराकांक्षा थी करोड़ों मुसलमानों पर स्वयं शासन करने की, तो अर्ल एटली और उनके पूर्वजों की दुराकांक्षा भी मुसलमानों को फोड़कर करोड़ों भारतीयों को सदा अपना गुलाम बनाए रखने की ही थी। इतिहास के इस कटु सत्य को कोई लाख तर्क-वितर्क करने पर भी झुठला तो नहीं सकता!

के सम्बन्ध में आपने बड़े मार्के की बात कही : 'वह आन्दोलन मुस्लिम कल्याण की भावना से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि करोड़ों पर शासन करने की अपनी महत्त्वाकांक्षा (दुराकांक्षा ?) की पूर्ति के लिए था। इसीलिए उन्होंने मुसलमानों के हिन्दू-द्वेष से भड़काकर इस आंदोलन को अधिकाधिक घृणा और कटुतापूर्ण बनाया।'

पाकिस्तानी प्रतिक्रिया

सीधे-सादे शब्दों में ऐटली द्वारा व्यक्त इस आंशिक सहज सत्य ने भी जैसे पाकिस्तान में एक बवंडर-सा ला दिया और वहाँ के पत्रों, नेताओं, और खास तौर से कायदे आजम की बहन ने, (जो पहले कलकत्ते के एक दन्दानसाज के यहाँ सहायिका रह चुकी हैं!) 'इसे झूठा, मिथ्या लांछन, दिमागी बीमारी, ऐटली द्वारा कुत्सा-प्रचार' आदि न जाने क्या-क्या कहा! मौजूदा पाक-सरकार ने तो ब्रिटिश सरकार के पास एक लम्बी-चौड़ी शिकायत भी भेजी है, जिसमें इस अप्रीतिकर उद्घाटन से दोनों सरकारों के मैत्री सम्बन्धों में फर्क आने के खतरे की ओर संकेत किया है। अच्छा तो यह होता कि यह बताने की तक़लीफ गवारा की जाती कि अर्ल ऐटली ने जो अपना व्यक्तिगत मत प्रकट किया है, उसमें कौन-सी बात ग़लत है? स्वयं ऐटली ने इस अप्रिय प्रतिक्रिया पर खेद प्रकट करते हुए सफाई दी है कि उनका उद्देश्य कायदे-आजम या पाकिस्तान के खिलाफ कोई जाती हमला करना कदापि नहीं था।

ऐटली की नीयत में शक करने या अपना व्यक्तिगत मत प्रकट करने के लिए उन्हें बुरा-भला कहने से पहले हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि वे ब्रिटेन के एक वयोवृद्ध, अनुभवी, जिम्मेदार और संयत एवं संतुलित नेता हैं। मि० जिन्ना से उनका कभी कोई मन-मुटाव या द्वेष-भाव हो, ऐसा कारण या मौका ही उपस्थित नहीं हुआ। फिर जिस पाकिस्तान की स्थापना के लिए जिन्ना 'अमर' और 'महान्' कहे जा रहे हैं, उसका निर्माण बहुत कुछ ऐटली की सहमति से ही हुआ था, कारण वे ही १९४७ में भारत-विभाजन के समय ब्रिटेन की मजदूर-दलीय सरकार के प्रधान मन्त्री थे।

ऐतिहासिक सत्य

कायदे-आजम द्वारा हिन्दुओं के प्रति घृणा और द्वेष के आधार पर परिचालित पाकिस्तानी आन्दोलन के पीछे असली बल ऐटली के उन साम्राज्यवादी पूर्वजों का था जो हिन्दू-मुस्लिम फूट के आधार पर भारत में अपना साम्राज्य चिरस्थायी करने पर आमादा थे। १८५७ के प्रथम स्वाधीनता-संग्राम में हिन्दू-मुसलमानों की एकता और दिल्ली के निर्बल मुगल सम्राट् बहादुरशाह को इस एकता का प्रतीक मानकर देश को अंग्रेज साम्राज्यवादियों के फैलते हुए फौलादी पंजे से मुक्त करने की एक व्यापक चेष्टा इसका सबूत है। अवध के नवाबों की रक्षार्थ लड़नेवालों में हिन्दू ज्यादा थे। झाँसी की रानी

प्रमुख सलाहकार और सेनाध्यक्ष मुसलमान थे। किन्तु इस संग्राम की विफलता के बाद जब भारत का शासन ब्रिटिश व्यापारियों के हाथों से निकलकर ब्रिटिश कूट-नीतिज्ञों के हाथों में आया तो मलिका विक्टोरिया की प्रजावत्सलता और समान न्याय की दुहाई की ओट में नियमानुसार हिन्दू-मुस्लिम एकता को भंग करने का कार्यक्रम चालू किया गया। पहले शासन ने एक ओर तो हिन्दुओं का संरक्षक और उद्धारक बनकर उन्हें मुसलमानों से फोड़ा, उन्हें तरजीह देकर और मुसलमानों की अवहेलना कर उनमें अपने प्रति स्वामिभक्ति या मुसलमानों के प्रति घृणा पैदा की। दूसरी ओर अल्पसंख्यक मुसलमानों को 'उपेक्षित' कहकर उनके अधिकारों की वकालत की। और इस तरह चालाकी से अपने आपको उनका एकमात्र सर-परस्त घोषित किया। शिक्षा और सरकारी नौकरियों में हिन्दुओं की अपेक्षा उनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अलीगढ़ में मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और फौजी तथा मुल्की नौकरियों में मुसलमानों के लिए विशिष्ट अनुपात तय हुआ। सर सय्यद अहमद इस कार्यवाही के अगुआ बने।

अँगरेजी शिक्षा और शोषण की व्यापक वृद्धि के साथ जब भारत में स्वाधीनता के आन्दोलन ने जोर पकड़ा, तब यह 'साम्राज्यवादी षड्यंत्र' भी बढ़ गया। जब तक कि स्वाधीनता-संग्राम नेताओं ने इस खतरेको ताड़ा और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी प्राणपण चेष्टा की तथा वहाबी और खिलाफत आन्दोलनों में शिरकत की, तब तक इसका जहर मुस्लिम जनता में काफ़ी गहरे और व्यापक रूप से पहुँच चुका था। जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे करवाए जाने लगे—और मुसलमानों को यह विश्वास दिला दिया गया कि अँगरेजों के बिना बहुसंख्यक हिन्दू तो उन्हें कच्चा ही चबा जायँगे। चूँकि हिन्दुस्तान से बाहर मुसलमानों को कोई वतन नहीं था, इसलिए सर सय्यद अहमद खाँ (और बाद में सर फ़ज़ले हुसेन, सर उमर हयात खाँ आदि) ने स्वतन्त्र रूप से मुसलमानों के आज़ाद होने का सपना देखा। इस सपने को स्थूल सत्य का आकार-प्रकार दिया सर मोहम्मद इक़बाल ने—पंजाब, सिंध, कश्मीर आदि मुस्लिम प्रधान अंचलों को मिलाकर इस्लामी शरियत के आधार पर पाकिस्तान बनाने का नारा देकर। और इस बीज को बाक़ायदा हिन्दू-द्वेष और घृणा का जल तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की सहायता-समर्थन का खाद देकर एक विशाल विष-वृक्ष कर देने का श्रेय है कायदे-आज़म को। अगर बकौल एँटली के क़ायदे-आज़म ने मुस्लिम हित से प्रेरित होकर ही पाकिस्तान की माँग नहीं की थी तो एँटली के पूर्वजों की भी यह आकांक्षा बिलकुल न थी। अगर क़ायदे आज़म की दुराकांक्षा थी करोड़ों मुसलमानों पर स्वयं शासन करने की, तो अर्ल एँटली और उनके पूर्वजों की दुराकांक्षा भी मुसलमानों को फोड़कर करोड़ों भारतीयों को सदा अपना गुलाम बनाए रखने की ही थी। इतिहास के इस कटु सत्य को कोई लाख तर्क-वितर्क करने पर भी झुठला तो नहीं सकता।

एक अन्ताराष्ट्रिय षड्यन्त्र

श्री एँटली के अनुसार कायदे-आजम खरे और सच्चे मुसलमान शायद नहीं थे। पर क्या एँटली और उनके वे पूर्वज खरे और सच्चे ईसाई माने जा सकते हैं, जिन्होंने अपने साम्राज्यवादी संकीर्ण स्वार्थ के लिए न जाने कितने खरे और सच्चे मुसलमानों को डिगाया? उन्हें घृणा, द्वेष और हत्या का पुजारी बनाया? 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का नारा देनेवाले सच्चे और खरे कौमी शायर इकबाल से किसने 'डरते नहीं मुसलमान हैं दुनिया में किसी से' जैसे पाकिस्तानी गाने गवाये? किसने १९२७ से जिन्ना को नापसन्द करते हुए भी उनकी दुराकांक्षा की आग में अंतिम आहुति पाकिस्तान के रूप में दी? हजारों बेक़सूर हिन्दु-मुसलमानों को बे-घर-बार और बे-आबरू किसने कराया?

अगर आप जरा और बारीकी से गौर करें, तो देखेंगे कि पाकिस्तान बनाने में अँगरेजों का उद्देश्य केवल भारत का अंग-भंग करके उसे हमेशा के लिए दुर्बल बनाने और पाकिस्तान के रूप मे उसके सिर पर हमेशा अपनी तलवार लटकाए रखना ही नहीं था। इससे कहीं अधिक खतरनाक व्यापक अन्ताराष्ट्रिय षड्यन्त्र थे—देशद्रोही मुसलमानों द्वारा माँगे गये पाकिस्तान को सदा अपना और अपने मित्र राष्ट्रों पर निर्भर बनाकर दूसरे महायुद्ध में विनष्ट ब्रिटिश साम्राज्य और सम्मान की आंशिक क्षतिपूर्ति और अन्ताराष्ट्रिय चौधरायत को बरकरार रखने की अन्तिम चेष्टा। पिछले ११ वर्ष का पाकिस्तानी राजनैतिक, अर्थनैतिक, सामाजिक और भौतिक जीवन तथा उसके साथ होनेवाले ब्रिटेन अमरीका के स्वार्थ-संरक्षण इसके जीते-जागते सबूत हैं। आज के पाकिस्तान को कल के कुमिनतांगी चीन की तरह एक स्वतंत्र आधुनिक राष्ट्र के रूप में लाखों पौंड और करोड़ों डालरों की मदद देकर कबतक खड़ा रखा जा सकता है? अगर आज उसका पृथक और स्वतंत्र अस्तित्व है, तो वह एकमात्र ब्रिटेन और अमरीका के संरक्षण में ही है। चाहे घरेलू काम चलाने के लिए और 'आजाद राष्ट्र' नाम के लिए उसका शासन फौजी हो या मुल्की—भूगोल और राजनीति का एक साधारण विद्यार्थी भी हजारों मीलों के फासले पर स्थित पाकिस्तान के दो अंगों को देखकर हँसे बिना नहीं रहेगा। जैसे पूरे शरीर से कटकर कोई भी अंग-विशेष अपना उपयोग और महत्त्व खो देता है, वैसे ही पूरे भारत से कटकर पाकिस्तान के दोनों टुकड़े निर्जीव-से हो गए हैं। कुदरतन दोनों की ही अहमियत घट गयी है। सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से भी यह वरदान से अधिक अभिशाप ही सिद्ध हुआ है। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान, बंगाली गैर-बंगाली मुसलमान, बंगला उर्दू, सिंधी-पंजाबी-सीमान्ती मुसलमानों का शत्रु-भाव, जन हितकारी तत्वके अभाव पेटुओं द्वारा गरीब और अन्य देशवासियों का निर्मम शोषण, दलबंदियाँ और षड्यंत्र शासन और विधान के नाम पर रद्दी कागजों के चन्द टुकड़ों का लिखा और फाड़ा जाना

पंजाब केशरी लाला लाजपत राय, जो 'दुखी भारत' लिखते वक्त उसके विभाजन की बात शायद स्वप्न में भी न सोच सके हों !

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, जो अखण्ड भारत के स्वप्न-द्रष्टा ही नहीं, सच्चे सेवक और सफल निर्माता भी होते !

इस अभिशाप के कुछ प्रत्यक्ष परिणाम हैं। हिन्दू-द्वेष और घृणा के आधार पर टिका मुस्लिम-लीगी विष-वृक्ष पाकिस्तान बनने और क़ायदे-आज़म के मरने के कुछ महीने बाद ही ढह गया और आज वहाँ खड़े आम ऐसा फौजी शासन है, जिसमें न कोई जनसम्मत विधान है, न विधान-सभा, न पत्रों और बोलने की स्वतंत्रता और न मन चाहे ज़िंदा रहने की आज़ादी ! अवकाश ग्रहण कर जनरल मिर्ज़ा विलायत में पता नहीं क्या कर रहे हैं; पर महमूदाबाद में मुस्लिम-लीगी 'राजा साहब' ज़रूर गुप्त रूप से अपने आकाओं के द्वार खटखटा रहे हैं, ताकि मुसलमानों को पाकिस्तान के रूपमें जिस जन्नत के सब्ज़ बाग दिखाए गए हैं, वह दुनिया का सबसे बड़ा दोज़ख बनने से जैसे बचे वैसा कुछ करा लें !

काश, क़ायदे आज़म को सम-सामयिक इतिहास की कसौटी पर कसनेवाले एटली खुद अपने गिरेबानमें भी मुँह डालकर देखें ! शायद वह दिन दूर नहीं, जब कि एटली और उनके पूर्वजों द्वारा प्रसारित घृणा और द्वेष के आधार पर रचे इस ज़मीन के दोज़ख की आग और धुँआ उस साम्राज्य को भी भुलसायें, जो कभी समुद्र की लहरों पर भी राज करता था और जिसकी हदिश में कभी सूर्यास्त नहीं होता था। मानवीय इतिहास यही कहता है कि अपने-अपने किये की सज़ा अबेर-सवेर, आगे-पीछे सभी को भुगतनी पड़ती है। समय किसी को क्षमा नहीं करता। —राजनीति का एक [illegible]

आजादी और देश-विभाजन

मौलाना अब्दुलकलाम आजाद की सद्य-प्रकाशित आत्म-कथा के प्रथम भाग की 'भारत विभाजन की मेरी कहानी' में यह कहा गया है कि यदि अर्ल एटली और लॉर्ड माउन्टबैटन उनकी और लार्ड वैवेल की इस बात को मान गये होते कि भारत-विभाजन के प्रश्न को दो-एक साल के लिए स्थगित कर दिया जाय तो शायद विभाजन की भीषण गलती कभी नहीं होती। मौलाना आजाद के अनुसार यदि नेहरूजी और सरदार पटेल भी अगर कुछ खास गलतियाँ न करते तो शायद विभाजन न होता! खासतौर से गान्धी जी अगर 'भारत विभाजन मेरी लाश पर ही हो सकता है' की प्रतिज्ञा रखते तो विभाजन कभी नहीं होता। गान्धी जी ने उनसे यह कहा भी था कि अगर कैबिनेट मिशन की योजना के अन्तर्गत जिन्ना साहब को ही सरकार बना लेने दिया जाय तो ठीक रहेगा, लेकिन यह नेहरू जी और सरदार पटेल को मंजूर न था। मौलाना साहब के मत से १९४६ की मिली-जुली केन्द्रीय सरकार में वित्त मन्त्री का पद लियाकत अली खाँ साहब को देने की भूल इसीलिये हुई कि सरदार पटेल गृहमन्त्री का पद उन्हें देने के पक्ष में न थे। इसी तरह नेहरू जी द्वारा १९३१ में मुस्लिम लीग के दो नेताओं को संयुक्त प्रान्त की सरकार में भाग लेने से रोकना और १९४६ में कांग्रेस का राष्ट्रपति बनने के बाद १० जुलाई को बम्बई प्रेस कॉन्फ्रेन्स में यह कहना कि, कांग्रेस कैबिनेट मिशन की योजना को (जिसे कांग्रेस और लीग मान चुके थे) परिवर्तित करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है, ऐसे दो काम थे जिनकी वजह से लीग और जिन्ना साहब नाराज और सशंक हो उठे और विभाजन पर अड़े रहे। अन्त तक, मौलाना साहब का मत यही रहा कि भारत-विभाजन से फायदा सिर्फ अंग्रेजों को ही होना है, हिन्दु-मुसलमानों के हित तो नष्ट ही होंगे। *

(वास्तव में भारत-विभाजन और पाकिस्तान बनने या न बनने के भले-बुरे का साक्षी तो इतिहास ही होगा और आनेवाली पीढ़ियाँ ही यह निर्णय कर सकती हैं कि क्या ठीक या गलत हुआ, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि आज भी यदि भारत और पाकिस्तान के समझदार लोग, कम से कम सुरक्षा और पर-राष्ट्र-संबन्ध में एक 'कॉन्फेडेरेशन' बनाकर काम करें तो दोनों राष्ट्रों की सर्वतंत्र-स्वतन्त्रता के बावजूद दोनों को बेहद फायदे होंगे। आर्थिक समस्याएँ भी काफी सुलझ जायेंगी, कारण सुरक्षा और पर-राष्ट्र सम्बन्धों के खर्चे बचेंगे और वे नव-निर्माण में लग सकेंगे।

एक दूसरा सबसे बड़ा और जल्दी लाभ यह होगा कि अमेरिका, रूस और ब्रिटेन आदि राष्ट्रों के गुट भारत और पाकिस्तान को अपनी कूटनीति के चक्कर में न डाल सकेंगे। और न अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए दोनों में से किसी को भी अपनी 'बेस' बना सकेंगे। कश्मीर, नहर का पानी और सरहद ठीक करने के पेचीदा सवाल फिर आसानी से सुलझ जायेंगे, यह सुनिश्चित है। क्या पाकिस्तानी फौजी शासन इसे पसन्द करेगा? —सं०)

हमारे समाज का अभिशाप

् ् के लिये हत्या !

यद्यपि कई राज्यों में दहेज लेना-देना निषिद्ध हो गया है, पर रूप में उसका लेन-देन खुले- होता है और पत्रों में छपनेवाले कई में दहेज की रकम तक का उल्लेख ो रहता है। इसीलिए जो लोग दहेज ने की स्थिति में नहीं हैं उनकी लड़कियों के न तो विवाह ही नहीं होते या अगर झूठे ेवादों और नाम-मात्र के दहेज के विवाह हो जाते हैं, तो विवाह के बाद ें उन्हें परेशान होना पड़ता है। हाल ही में कलकत्ते में २-३ ऐसे फैसले हुए हैं, जिसमें दहेज न लाने या कम लाने या विवाह के बाद भी कुछ-न-कुछ न लाते रहने के कारण लड़की के पति, सास और अन्य सम्बन्धियों ने उसे परेशान करके आत्म-हत्या के लिए मजबूर किया और एक में तो उसकी हत्या तक कर डाली गई !

विवाह की विडंबना !

हमारी सामाजिक बुराइयों का एक मूल कारण है हमारी विवाह-संस्था का असामयिक और दोष पूर्ण होना। हाल ही में प्रयाग के हाईकोर्ट ने एक युवक और युवती के विवाह को इसलिए रद्द किया है कि वे दोनों सगोत्र हैं और केवल विवाह करने के लिए दोनों ने इस्लाम धर्म ग्रहण किया !

प्रायः इस प्रकार के विवाह प्राचीन काल में होते रहे हैं। अब यदि ऐसे विवाह रक्त-विवाह से अच्छे नहीं हैं, तो आज के युवक-युवतियों को इसके कारण समझाना चाहिए। दोनों में पारस्परिक प्रेम के दृढ़ हो जाने पर सिर्फ क़ानून के डण्डे से उन्हें अलग करना कहाँ तक ठीक है ?

ज़बरदस्ती वैवाहिक सम्बन्ध !

दिल्ली और जगाधरी की अदालतों में हाल ही में दायर किए गए दो मुक़दमों मे हुए लड़कियों के बयानों से यह पता चला है कि उनके अपहरण के बाद विवाह की रस्म-अदाई को पूर्ण रूप देने के लिए जबर्दस्ती वैवाहिक सम्बन्ध भी किए गए !

प्रथम तो बिना लड़की की इच्छा के हुआ कोई भी विवाह विवाह ही नहीं है। दूसरे, सामाजिक या शारीरिक अत्याचार बहुत बड़ा नैतिक पाप भी है। इसका शिकार होनेवाली कोई भी लड़की क्या सचमुच तन-मन से ऐसे नर-पिशाच को अपना पति मान सकती है ?

लड़कियों से छेड़-छाड़ !

अब जब कि शिक्षा के लिए और शिक्षा पाकर काम-काज के लिए शहरों और कस्बों की अधिकांश लड़कियाँ और स्त्रियाँ घरों से बाहर आने-जाने लगी हैं, उनके साथ प्रायः सभी स्थानों में छेड़-छाड़ की शिकायतें सुनने में आती हैं। स्कूल और दफ्तर जानेवाली या बाहर हाट- बाजार में सौदा खरीदने जानेवाली स्त्रियों के प्रति छेड़-छाड़ की घटनाएँ इतनी बढ़ रही

हैं कि दिल्ली-जैसे शहर में इसे रोकने के लिए विशेष पुलिस तैनात करनी पड़ी है। हालही में हरद्वार, कनखल, ज्वालापुर आदि में स्कूल जाने-आनेवाली लड़कियों की छेड़-छाड़ की इतनी घटनाएँ होने की खबरें मिली हैं कि हर कन्या-पाठशाला के बाहर और उनको जानेवाले रास्तों पर पुलिस तैनात करनी पड़ी है।

पत्नी की क्रूरता !

पतियों की क्रूरता का शिकार होकर *गुजारे और तलाक के लिए अदालत का* दरवाजा खटखटाने वाली पत्नियों के क़िस्से तो बहुत सुने गए हैं, पर हाल ही में कलकत्ते की एक अदालत में एक डाक्टर पति ने पत्नी की "क्रूरता" की शिकायत करते हुए उससे अलहदगी की फरियाद की। पति का बयान था: उसकी पत्नी अक्सर उसके चेंबर में आकर उसे बुरा-भला कहती है और उसके चरित्र पर सन्देह करती है। पत्नी का बयान था: उसका कोई ४-५ साल पहले विवाह हुआ था और तीन बच्चे भी हैं। पति का एक नर्स और एक अन्य लड़की से अनुचित संबंध है, अतः ये कई-कई दिन घर नहीं आते हैं और न घर-खर्च के लिए ही कुछ देते हैं। विचारपति ने पति को एकदम गैरज़िम्मेदार और स्त्री-बच्चों के भरण पोषण के कर्तव्य-पालन में अत्यन्त अधम बताते हुए उसकी प्रार्थना नामंजूर कर दी। मूल विचारणीय प्रश्न यही है कि इस तरह के व्यसन से गृहस्थी और समाज को बचाया कैसे जाय।

ब्राह्मण-शूद्र संघर्ष !

कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट ने *रामायण का पाठ* करने के सिलसिले में चार ब्राह्मणों द्वारा एक शूद्र पर कि गए आक्रमण के लिए ब्राह्मणों को दंडि किया है। यह घटना इस बात की परिचायक है कि मुँह से कहने के लि या संविधान की दृष्टि में चाहे ह लोग बराबर हों, उन्हें समानाधिकार हो पर व्यावहारिक रूप में ब्राह्मणवाद क अभिशाप—जो जीर्ण ज्वर की तरह हमा नसों में बस गया है—अभी तक दूर न हुआ है। 'हरि को भजे सो हरि का हो' का प्रचलन कैसे हो!

'यथा राजा तथा प्रजा' !

हाल ही में राजस्थान विश्ववि लय के दीक्षान्त भाषण में उपराष्ट्र डॉ० राधाकृष्णन ने कहा कि राष्ट्र ए समाज की सेवा के लिए हमें आत्म-त्यागी व्यक्ति चाहिए। बात तो ठीक है, पर ऐसे लोग आयें कैसे और कहाँ से! इसके समाधान-स्वरूप कलकत्ता विश्वविद्याल के दीक्षांत-भाषण में स्वर्गीय बी० एन० चंदावरकर ने कहा था: "बड़ों में हु चारित्रिक ह्रास ने ही नई पीढ़ी को इस विषय की बातों की खिल्ली उड़ाने को प्रेरि किया है!" यदि हमारे शीर्षस्थानीय नेता श्रेष्ठ और त्यागमय जीवन का उदाहरण जनता के सामने रखें तो निश्चय ही उनमें इसके प्रति जीवित आस्था पैदा होगी। •

जर्मनी के गेटे

प्रतिभा और व्यक्तित्व के विकास की एक कहानी

—— कृष्णाचार्य ——

मात्र पाँच वर्ष का एक जर्मन बालक सन् १७५३ में फ्रांकफर्ट नगर में अपने घर की खिड़की पर खड़ा प्याले, प्लेट आदि सड़क पर फेंक कर उनके टूटने की आवाज का रस ले रहा था। पड़ौसी बच्चे ताली बजा-बजाकर इस नाटक का आनन्द ले रहे थे। जब घर के तीन चौथाई बर्तन साफ हो चुके तब नौकर को गृह-स्वामी के सुपुत्र की इस बाल-लीला का पता लगा और बड़ी कठिनाई से उसने यह तमाशा बन्द किया।

यही बालक छैः वर्ष की उम्र में लिस्बन के 'ऐतिहासिक भूकंप' से ऐसा विचलित हुआ कि उसने ईश्वर के अस्तित्व को ही घपले में डाल दिया। यही चपल बालक आठ वर्ष की उम्र में ही जर्मन, फ्रैंच, इताली लैटिन और यूनानी-भाषायें सीखने लगा। उसकी आँखें सामने पड़नेवाली प्रत्येक चीज को देखतीं, हर आवाज उसकी कर्णेन्द्रिय को सार्थक करती और हाथ हर काम के लिये मचलते। जूते, टोकरी बनाने के काम से लेकर चित्र-कला और जादू की वैज्ञानिकता का सत्य खोजने में भी यह सर्वतोमुखी प्रगति-शीला प्रतिभा कभी न रुकी। सोलहवीं साल में लाइपजिग कॉलिज् में प्रवेश पाकर यह जिज्ञासु युवक पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त जो कुछ भी पाता, पढ़ डालता। अन्त में अत्यधिक बीयर-पान और रूसो के सिद्धान्त 'प्रकृति की ओर लौट चलो' के चक्कर में पड़ा तो बीमार हो घर लौट आया।

पिता ने पुनः (१७७० में) अपने इस 'निरे लड़के' को कानूनदाँ बनने स्ट्रासबर्ग भेज दिया। यहाँ उसका संपर्क वास्तविक जन-जीवन से हुआ। इसी जगह उसने अपने समय के प्रसिद्ध विचारक हर्डर से सीखा कि 'काव्य की चरम उपलब्धि राष्ट्रिय विकास की झलक देने में है, परिश्रम से अर्जित मात्र शैली-कौशल में नहीं।' निःसन्देह भविष्य में उसने हर्डर के सिद्धान्तों को ऐसे काव्य की हर ऊँचाई तक पहुँचाया भी। सन् १७७३ में इस युवक लेखक का पहला नाटक 'गेशोत्स फ्रान बर्लिशिंगन' प्रकाशित हुआ, इसकी चर्चा भी साहित्य-जगत् में हुई। किन्तु वास्तव में उस की धाक का श्रीगणेश तो सन् १७७४ में प्रकाशित लघु-उपन्यास 'युवा वर्दर का शोक' से हुआ। केवल जर्मनी में ही नहीं, सारे योरोप में यह उपन्यास नवयुकों ने पढ़ा और कईयों ने तो आत्मघात ही कर लिया।

लेखक में भी आत्महत्या की प्रेरणा जागी थी। किन्तु उसके अन्तर का कलाकार भीतर से उमड़ा और उसने हत्या के मनोगत भावों को ही लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी। इस पुस्तक का सौन्दर्य घटना या कथावस्तु में नहीं, मात्र लिखने की शैली में है। कार्लाइल के शब्दों में—"बंधन में पड़ा मन अधकार से लड़ता है और एक ऊँचा, दुखपूर्ण और असंतोष की आग हर युवक को आत्मघात के लिये विवश करती है, यह शाश्वत सत्य केवल गेटे ही अपनी कला से प्रकट कर सका।" सॉमरसेट मॉम की राय में, 'इस उपन्यास की आश्चर्यजनक सफलता के कारण यह थे कि उस युग की 'रोमान्टिक मूड', एक युवक के तीव्र प्रेम का दुखद अन्त, वेदनामयी तीव्र अनुभूति को सशक्त अभिव्यक्ति उस समय के योरोप के युवकों को अभिभूत किये बिना नहीं रह सके। गेटे को ऐसी सफलता फिर कभी नहीं मिली।'

अस्सी से भी ज्यादा उम्र में भी गेटे का प्रथम और अंतिम लक्ष्य अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व का विकास ही था। वह अब छब्बीस वर्ष का भी नहीं था कि उसे वाइमर का ड्यूक फ्रांकफर्ट से अपने साथ ले गया। वाइमर के दरबार में साधारण पदों से उठते उठते ३०वर्ष के उम्र में वह प्रायः दीवान ही बन गया। सारे संस्कृति-सम्बन्धी कार्य उसी के आधीन थे। उसके दुश्मनों की भी कमी नहीं रही। अपने एक पत्र में गेटे ने लिखा है : कुछ लोग मुझे 'प्रिंस का नौकर' कहकर उपेक्षा करते हैं...मैं इन बातों में कोई सार नहीं पाता...यदि मैं नौकर हूँ तो ऐसे व्यक्ति का, जो प्रत्येक अच्छे गुण का दास है।'

गेटे की प्रतिभा को बहुत से जर्मनवासी शायद इसलिए न समझ सके कि उसका स्वभाव यूनानी संस्कृति के अधिक अनुरूप था। उसमें कुछ ऐसी तटस्थता थी जो हर किसी की आलोचना से विचलित नहीं हुई। सम-सामयिक फ्रांस की राज्यक्रांति से भी वह न हिला। उसने क्रांति को इतिहास की पृष्ठभूमि पर 'सामान्य घटना' ही कहा! उसके मत में—'क्रांति शासन की गलती से होती है, जनता की गलती से

नहीं।' प्रसिद्ध सौन्दर्य-शास्त्र-वेत्ता चे ने भी गेटे की इस विशेषता को लक्ष्य रते हुए लिखा है कि राजनैतिक प्रकृति के नेन द्वितीय श्रेणी के कवि शिलर को धिक महत्त्व देते थे, गेटे की कविता को हीं। इसी बात को फ्रेंच आलोचक ब्यूवे ने कहा है कि 'ईसाइयत और व्यक्ति-पूजा Hero-worship) को छोड़ गेटे सब कुछ सकता था।'

इताली-प्रवास ने गेटे के जीवन को मीर और स्थायी मोड़ दिया। उसकी अनेक ूरी श्रेष्ठ काव्य-कृतियाँ पूरी हो गईं। १७९६ से गेटे फाउस्ट (अपनी सर्वाधिक सिद्ध रचना, जिसके दोनों भाग लगभग वर्ष में पूरे हुए) के पुनःसंगठन लगा। 'एलेक्टिव एफिनिटीज' उपन्यास, ग-विज्ञान पर प्रसिद्ध प्रबंध, 'विल्हेम मीस्टर यात्राएँ' नामक उपन्यास तथा 'दीवान' नाम से फारसी ढंग की अद्भुत कविताओं की माला गूँथी। 'मेरा काव्य और सत्य' Poetry and truth of my life नाम से आत्म-चरित भी इसी प्रौढ़ावस्था में लिखा गया। 'यूरोपीय साहित्य का इतिहास' के लेखक श्री कोहेन की राय में, 'ये सब पुस्तकें उस व्यक्तित्व की याद दिलाती हैं जो ऐसे-वैसे व्यक्तित्व से एकदम भिन्न है ..उसके पत्र, उसके वैज्ञानिक निबंध और अंतिम चार बड़ी कृतियों में उस व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं जो संपूर्ण रूप से पुष्ट था जिसके चारों ओर जिज्ञासा का वातावरण था और जिसमें ऐसी पैनी दृष्टि थी जो दाते, शेक्सपियर और सर्वेन्टीज जैसी प्रतिमाओं में दीख पड़ती है।' बयासी वर्ष की अवस्था में गेटे ने कुवियर और सेंट हिलारे के बीच प्राणिशास्त्र पर हुए दार्शनिक विवाद पर वैज्ञानिक रिव्यू लिखा। उसने फाउस्ट का दूसरा भाग मरने से कुछ मास पहले ही पूरा किया था।

गेटे की प्रतिभा सम्पादन-क्षेत्र में भी मानी जाती थी। उसकी कला-पत्रिका Kunst and Alterthum सन् १८२८ तक छपती रही। इस पत्रिका में योरोपीय साहित्य और संस्कृति की गतिविधि पर प्रामाणिक रिव्यू निकलते थे।

१८२५ में वाइमर के ड्यूक, गेटे के स्वामी और अंतरंग मित्र, कार्ल अगस्ट के शासन की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई। कुछ ही सप्ताह बाद सात नवंबर को 'सुबह जब गेटे ने अपने शयनकक्ष की किवाड़ें खोलीं तब उसके बगीचे में संगीत की स्वर लहरी गूँज उठी। उसकी दृष्टि सबसे पहले सामने सुसज्जित उपहारों पर पड़ी। साढ़े आठ बजे नगर की गाड़ियों की चाल में सरगर्मी आई—नगर और दरबार के सब प्रमुख नागरिक कवि के घर की ओर चले जा रहे थे। कवि के कक्ष में संगीतज्ञों का एक दल, चौदह महिला-मित्रों के साथ उपस्थित हुआ और इस दल ने प्रो० राइमर के गीत को एवरवीन की धुन में गाया। नौ बजे तक पूरा घर और बगीचा जन-समुदाय से भर गया, यहाँतक कि कवि अपने पुत्र और अन्य सहायकों के सहारे चोर दरवाजे से सब दर्शकों के सामने पहुँचाए गए। संगीत की स्वर-लहरी के लीन होते होते कवि ने अपने मित्रों के

प्रति उत्साहपूर्ण हस्त-मुद्रा और गद्‌गद् कंठ से कृतज्ञता प्रकट की। बैरन वान फ्रिट्स ने ड्यूक के हस्ताक्षरों से सम्पन्न चिट्ठी और एक सुवर्ण-पदक भेंट किया, जिसके एक ओर कार्ल अगस्ट और लुइसे की प्रतिकृतियाँ और दूसरी ओर पत्र-पुष्पों से लदा कवि का मस्तक अंकित था। फिर जेन, वाइमर, एरनच तथा अन्य स्थानों से प्राप्त अभिनन्दन पत्र भेंट किए गए, कई प्रतिनिधि-मंडलों ने भी भेंट की।

यदि कोई आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिये कुछ करना चाहता है तो उसे अपना भला-बुरा सब कुछ स्वीकार (Confession) करना होगा। हममें से प्रत्येक को आगे आनेवाले समाज के लिये अपनी महत्वाकांक्षा और अपनी राय स्पष्ट करनी ही चाहिये। हममें क्या अच्छा है, क्या काम लायक है—यह निर्णय आगे के लोग करेंगे। —गेटे

थोड़ी ही देर में, ठीक दस के उपरान्त, कार्ल आगस्ट और लुइसे ने स्वयं आकर कवि को साधुवाद से अभिहित किया! कवि इनके साथ अकेले में एक घंटा तक रहे। इस बीच, राज्य के मंत्रीगण, न्यायालय और दरबार के उच्च अधिकारी, वाइमर की मंभ्रांत महिलाएँ ऊपर के कक्ष में एकत्रित हुए। फिर सब चुने हुए नागरिक, दरबारी और घनिष्ठ मित्र दो-दो की कतार में उस कमरे में गए जहाँ ड्यूक और गेटे की प्रतिमाएँ रक्खी थीं।

गेटे का बस्ट प्रसिद्ध कलाकार रौ[illegible] बनाया था। इस बड़े कमरे में प्रवेश कर[illegible] बाजे मधुर ध्वनि से फिर बजने लगे।

दिन के दो बजे लगभग दो सौ [illegible] हुए लोग दावत में सम्मिलित हुए। [illegible] को शाही थियेटर में 'आईफीगेनिया' ([illegible] कृत नाट्यों-गीत) का अभिनय [illegible] थोड़ी देर में डाक्टर ने कवि को [illegible] करने के लिये हटा दिया। रात्रि-[illegible] गेटे के घर के सामने शाही कलाकार[illegible] उपर्युक्त गीत-नाट्य की ध्वनियाँ प्रभाव[illegible] ढंग से प्रदर्शित कीं। केवल कवि के [illegible] ही नहीं, उसके समूचे मुहल्ले में दि[illegible] मनाई गई! लाइपजिग और फ्रांकफर्ट [illegible] यह उत्सव अपने-अपने ढंग से म[illegible] गया। बाद में सर वाल्टर स्कॉट ने बधाई का पत्र भेजा था। सन् १८२७ [illegible] अगस्त को कार्ल आगस्ट बवेरिया के [illegible] के साथ गेटे को 'आर्डर आफ द [illegible] क्रॉस' का सम्मान देने आया था। गेटे को यह सम्मान दिया जाने लग[illegible] उसने अपने ग्रांड ड्यूक की ओर [illegible] कहा—'यदि मेरे परम माननीय [illegible] आज्ञा दें!' इस व्यवहार पर ड्यूक प्रे[illegible] उलाहने में चिल्ला पड़ा—'अरे ओ[illegible] आदमी, बेवकूफी न करो। यश-[illegible] ऐसा पूर्ण आवर्तन विरले साहित्यका[illegible] ही मिलता है।'

प्रतिमा की सार्वदेशिकता, प्र[illegible] सान्निध्य की तन्मयता, सत्य की खो[illegible] प्रति लगन, वैज्ञानिक खोजों में स्वतन्त्र[illegible] का उपयोग—इन सब प्रकारों में गेटे [illegible]

तेनिधि साहित्यकार था। किन्तु उसमें युग का उन्मादकारी जोश, अस्थिर ति, क्रांतिकारी भावनाएँ न थीं। उस युग प्रतिभा स्वतः विस्फोटकारी अग्नि की रट के समान चमक उठती थी। किन्तु टे की प्रतिभा के दर्शन उसके गम्भीर वर्षों के चिंतन में मुखरित होते थे। ९ चिंतन भी शास्त्रीय नहीं, चारों फैले जीवन के अनुभव की चट्टानों टकराकर साहित्य के माध्यम से प्रकट था। गेटे के कलात्मक जीवन और कृतियों का महत्त्व समझना आसान ९ है। आरंभ में जर्मनी के मनीषी भी की सार्वभौमिक मेधा को न सके। कविता में 'जर्मन गुण' गाने ही अधिक सम्मानित हुए, गेटे के वैज्ञानिक कामों का उपहास हुआ और र्मी तो उसे माना ही गया। किन्तु समय की पर्तों ने इस अद्भुत कलाकार के गुणों को अंधकार में लुप्त करने के स्थान पर अधिकाधिक चमकाया। एक शब्द में, जर्मनी के सम्मान को जगाने में, साहित्य और विज्ञान को समान स्तर की प्रतिमा-शिला पर रखने में और आधुनिक मानव को सच्चे अर्थों में समझने में गेटे जैसा विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और साहित्यकार नहीं हुआ। इतना ही नहीं, आज के मानव को जैसा संदेश गेटे दे गया है वैसा संदेश भी अन्यत्र दुर्लभ है।

गेटे की दार्शनिकता

गेटे ने 'विचारों पर विचार' करने की गलती नहीं की। हर्डर के संपर्क में आकर वह ऐसा दार्शनिक बना कि कोई भी एक सिद्धान्त या मत उसकी विचार-धारा को एकांगी न बना सका। मनुष्य के मान-वीय विकास की पकड़ भी उसे हर्डर से ही मिली। उसने कांट को कभी पसन्द नहीं किया—क्योंकि कांट की राय में मनुष्य की प्रकृति 'मूलरूप में दुष्ट' है। वृद्धावस्था तक गेटे ने यही कहा कि, "प्रकृति सदैव सत्य है, सदैव गंभीर है, सदैव अगम्य है।

वास्तविक मनुष्य बनने की चेष्टा निरंतर करते रहना सबसे महत्त्व की बात है। चाहे कोई आध्यात्मिक जीवन ही क्यों न बिताए, उसे भी अपनी प्रकृति को क्रियाशील मानव के रूप में ढालना नहीं भूलना चाहिये!

मैं यह कि, मुझे अपने अस्तित्व का ऊँचे से ऊँचा पिरामिड बनना है एक, क्षण के लिये भी कभी नहीं भूल पाता।—**गेटे**

यह हमेशा सन्मार्गगामी है, गलतियाँ और अपराध मनुष्य करता है, प्रकृति नहीं। प्रकृति को अयोग्यों से नफरत है, प्रकृति उन्हीं का साथ देती हैं जो लगन के पक्के हैं, निष्कपट हैं और योग्य हैं।'

दार्शनिकों के अतिवाद और कोरे विचारों के सम्बन्ध में गेटे का मत है: 'भद्र पुरुष और आलसी औरतों के लिये सबसे अच्छा काम है अमर जिन्दगी पर विचार करना।'

गेटे की नैतिकता इस तथ्य में भी

जीवन को उत्तम से उत्तम बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये। नीत्शे ने नहीं, गेटे ने ही इस सत्य की खोज की थी कि 'सबसे बड़ी नैतिक समस्या मनुष्य को श्रेष्ठ मनुष्य बना देना है, और यह कि मनुष्य अपने अस्तित्व को पहचाने।'

गेटे की मानवीय विचार-परम्परा का सार है: 'अपने प्रति और दूसरों के प्रति निष्ठावान् बनो। ईश्वर मुझे अधिक से अधिक सादा प्रकृति का आदमी बनाए, ताकि मैं हर बात में उदार बन सकूँ— चाहे वह चीज धन हो, अन्य वैभव हो, जीवन या मृत्यु हो।'

शाब्दिक चमत्कार में गेटे को कोई विश्वास न था। उसने पाठकों को सदैव यही चेतावनी दी है कि 'शब्दों के द्वारा विचार मत करो, सूक्ष्म मात्रों को लेकर भी नहीं। सीधे वस्तु को सामने रखकर या मानस में कोई वास्तविक बिम्ब रखकर आगे बढ़ो!'

गेटे अपने चारों ओर फैले विश्व को रसबोध की दृष्टि से नहीं वैज्ञानिक आंख से देखता था। उसने मानवीय शरीर के ढांचे को, वनस्पतियों की बनावट को, और रंग-विज्ञान तक को समझना चाहा। इसके प्रयोगात्मक अध्ययन किये, वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखे। संस्कृत साहित्य के उत्तम ग्रन्थों को पढ़ा और परखा।

गेटे का जीवन-दर्शन यही था कि 'जियो, प्रयत्न करते रहो, शान्ति मृत्यु है। यदि एक हाथ में ईश्वर हो और दूसरे में खोज की शाश्वत अभिलाषा तो दूसरे हाथ के आदर्श को अपने जीवन में उतारो।'

गेटे की आत्म-शोधन की प्रक्रिया ने उसे आपको और जर्मन जाति को बहुत ऊंचा उठाया। उसकी सब साहित्यिक कृतियां गंभीर स्वानुभूति और वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ दृष्टि के उदाहरण हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति की ऐसी ज्ञान-गरिमा और रागात्मक वृत्ति का ऐसा संतुलित प्रयोग, भावुकता और निरीक्षण-शक्ति की ऐसी सगाई मात्र गेटे को छोड़ मुझे तो और कहीं नहीं मिली। •

If one word of blooms of early
and fruits of riper years
Of excitement and enchantment,
I should tell
Of fulfilment and content of
Heaven & earth
Then will I but say Shakuntala
and have said all.
—GOETHE

What more pleasant
could man wish!
Shakuntala, Nala, these
must one kiss!
And Meghduta, the
Cloud messenger,
Who would not send him
a soul sister!
—GOETHE

मैंने जीवन जाना यह तो कैसे कहूँ, पर यह कहूँगा ही कि उसे पहचाना बहुत कुछ। क्योंकि जो राह जीवन ने दी वह मन की न होते भी चला हूँ और लगातार जूझा हूँ कि उसे मैं राह स्वयं दूँ।

इन राहोंके सौ सौ तनाव और हजार-हज़ार उलझनें झेलते जहाँ अब पहुँच पाया वहाँ, और जो हो, या जो न हो, मगर साँझ से पहले का पका हुआ उजाला और थका हुआ वेग ज़रूर है कि अपनी पीड़ाएँ परख सकूँ और उनकी आँखों औरों की व्यथा समझ सकूँ।

जीवन की राह कितना हम चलते हैं और कहाँ तक चला पाते हैं। इसे थाहने की कोशिश करते ही बार-बार लगा है कि हम जैसे सभी अपना भ्रूण हैं। अर्थात् , हम जो होना चाहते थे, हो सकते थे, हो न पाये। उपनिषद् की पुकार थी कि जीवन सृजन के लिये है : और यह हम हैं कि जी रहे हैं पर जीवन में सृजनशीलता नहीं है!

. लें और प्रकट होने का अवसर दें। जिस मात्रा में यह हो सकेगा उसी हमें सन्तोष और आनन्द मिलते हैं।

यह सन्तोष और आनन्द हमें भी मिलें इसके लिए हमें चाहिए कि सच्चे न और समूची आत्मा से अपनी सृजनशीलता में आस्था रखें। और यह ५ या हमारी भावनाओं की दीवारों तक ही सीमित नहीं, आचरण में भी .। सुनने में यह अजीब-सा, या कठिन, लगेगा; व्यवहार में वैसा नहीं।

आखिर चित्रकार क्या करता है! रंग, कूची और पटिया लेकर बैठ है, फिर भीतर घुमड़ते भावों के साथ ज्योंही तन्मय होता है कि उसकी शीलता उन्हें पटिया पर रंग-रेखाओं में उतार चलती है। यथा समय - पूरा होता है और उसे देखकर चित्रकार सुखी होता है, हम चमत्कृत ते हैं। ठीक ऐसा ही अपनी-अपनी भूमिका में हमें भी करना है।

हमारी सृजनशीलता प्रकट होगी, जीवन को हम स्वयं राह देंगे, पर यह ी जब भीतर घुमड़ते भाव के साथ तन्मय होकर हम बैठें! और यह नरा सरल है। क्योंकि कौन है जिसके मन में उमंगे हिलोरें नहीं लेतीं कि यह करें या वह कर सकते! एक बार सब उमंगों को परखें, हरेक के लिए धन-सुविधा भी देखें, और यह भी कि कौन-कौन सबके हित की हैं। जो नों दृष्टियों से मुखर और दृढ़ मिलें उसे ही शक्ति दे चलें, उसी पर सृजन-लता केन्द्रित होने दें। फिर चित्रकार की उपलब्धि आप की भी होगी।

यह न समझें कि आप की शक्ति और सृजनशीलता का यह विषय अनिवार्य रूप से महान् ही होगा। महान् वह हो सकता है: आज भी, और आगे चलकर भी। पर वह बहुत साधारण भी हो सकता है। जैसा जो होगा, आप की स्थिति के अनुसार होगा। पर कोई एक वह है, यह ध्रुव सत्य है; और उसे ही स्वीकार कर चलने में आपका सुख है, आपकी सिद्धि है। हाँ, मैं निष्ठा और विश्वास के साथ कह रहा हूँ कि एकमात्र यही राह है जिस पर चलते ऐसा नहीं लगे कि 'हम चले नहीं, जीवन द्वारा चलाये गये!' और जब साँझ से पहले का पका उजाला आये तब यह भी मान सकें कि 'हम भ्रूण थे पर रहे नहीं!' आखिर हम जो हैं वही क्यों बने रहें? * * *

श्री गगनेन्द्रनाथ ठाकुर की एक विशिष्ट कृति

वसु ने किया है उस अभी तक कोई नहीं कर सका। उनकी कृ को देख-देखकर आने पीढ़ियाँ उनको ऐसे ही याद करेंगी जैसे कि अजन्ता के कलाकारों को हम याद करते हैं।

बिना समझे-बूझे योरोपीय कला के अन्धानुकरण की गं नक़लची प्रवृत्ति में मुझे 'आधुनिकता' नहीं दिखाई देती, वह है मात्र एक प्रतिबिम्ब जैसी है। यह दावा कि, आज की समस्याओं और प्रवृत्तियों की अभि व्यक्ति केवल आधुनिक कला ही कर सकती है, मुझे ग़लत लगता है, क्योंकि मेरी राय में क्यूबिज्म, नियोइम्प्रे शनिज्म और सुररि लिज्म के समर्थकों और उपासकों ने जो विकास किया है वह भारतीय जन-जीवन से बहुत दूर जा पड़ा है। उनकी कला-कृतियां न केवल दुरूह हैं, बल्कि स्वयं उनके लिये सर-दर्द भी बन गयी हैं।

आज़ादी के बाद आशा तो यही थी कि भारतीय चित्रकारिता बहुत आगे बढ़ जायेगी, लेकिन पिछले बारह वर्षों की प्रदर्शिनियों ने इसको, अधिकांश में, एक

श्री यामिनी राय

आचार्य नन्दलाल वसु

ही सिद्ध किया है।

कला की चेतना और उसकी प्रगति-के लिए नये प्रयोग और नये क्रम हैं, किन्तु केवल "नयेपन" के लिये ही नहीं। बंगाल की ठाकुर-त्रयी, यामिनी राय, आचार्य नन्दलाल वसु, अमृता शेरगिल, रामकिंकर, विनोद मुखर्जी आदि के कला प्रयोग इसी तथ्य के प्रमाण हैं।

अमृता शेरगिल का एक प्रसिद्ध चित्र

अमृता शेरगिल की एक अन्य कृति

कला और संस्कृति में देशीयता सार्वभौमता ही होनी चाहिए, सुनने में बहुत अच्छी लगती है व्यवहार्य नहीं है और न आदर्श

विश्राम
शिल्पी :
कुमारिल स्वामी

मधुपुरी या म
की एक छवि
शिल्पी :
कुमारिल स्वा

रन्धनम्
शिल्पी :
[illegible] स्वामी
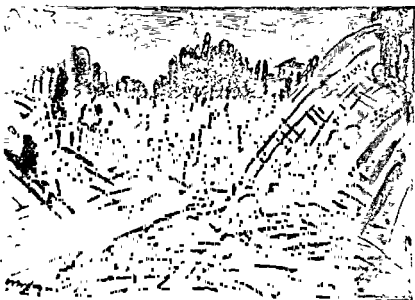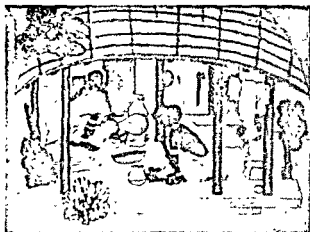
श्री रामकिंकर के एक चित्र की छवि

अपने हिन्दी साहित्य का इतिहास की दृष्टि से बडा ही बोधगम्य है । स्कूलों में टाइम टेबुल बना कर ... को समझा दिया जाता है कि ... में हिन्दी, दूसरे में रियाजी उर्फ ...त, तीसरे में भूगोल, फिर इंटरवल ...र बाद के घंटों में अंग्रेजी या संस्कृत ... जायगी वैसे ही हिन्दी साहित्य विशद इतिहास में भी युग-विभाजन ... गया है । पहले वीर-गाथा-युग चला । ... घंटे में सन्त-युग अथवा भक्ति युग, ...रे में रीतिकालीन युग । फिर इन्टरवल । आधुनिक युग । अब इससे कोई बहस ... कि वीर-गाथा-युग में वीरों की ...नी शृंगार-वर्णन से भरी-पूरी हैं ... वीरता का प्रदर्शन कामिनी-लाभ के ...गिर्द चक्कर काटता है, या रीति युग में ... ब्रह्म और माया का पचडा बखानते हैं, ... रामचन्द्रिका लिखते हैं । जब युग ... बात पक्की हो गई तो इन बाधाओं को ... ही पड़ेगा । यह तो वैसे ही हुआ ... किसी दिन भूगोल के मास्टर साहब ने पाठ न तैयार होने पर लड़कों में अन्त्याक्षरी करा दी । पर घंटा तो भूगोल का ही रहा । रत्नाकर चाहे 'प्रथम समागम को बदलो चुकाये देत' की बात करें चाहे 'गजेन्द्र-मोक्ष' का स्तोत्र लिखें, पर वे आधुनिक युग के घंटे ही में आये और गये इंटरवल के बाद ।

अब इधर कुछ आलोचक युग-विभाजन के मामले में कच्चे पड़ने लगे हैं । सच बात तो यह है कि आचार्य शुक्ल जी के बाद ऐसे आलोचक रहे ही कहाँ, जो युग पर युग निकाल सकते । फिर भी छुट-पुट भारतेन्दु-युग या द्विवेदी-युग की बात सुनने में आया करती है । इधर सुधीन्द्र वर्मा ने युग के विषय में आगे की सब शंकाओं का समाधान कर दिया है । प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विजय' एक *विराट उपन्यास है । इसका चौथा* संस्करण गंगा-पुस्तक-माला से (१९५७ में) प्रकाशित हुआ है । उसी की महत्वपूर्ण भूमिका में सुधीन्द्र वर्मा लिखते हैं :—

"जिस प्रकार श्रीवृंदावनलालजी वर्मा जैसे महान् कलाकार को सबसे पहले उनके

महान् उपन्यास 'गढ़ कुंढार' के प्रकाशन के साथ ही साथ गंगा पुस्तकमाला के यशस्वी संपादक श्रीदुलारेलाल जी ने हिन्दी के सर वाल्टर स्कॉट के रूप में ला खड़ा किया था, उसी प्रकार श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव को भी उनकी प्रथम कृति 'विदा' के साथ ही उन्होंने हिन्दी के 'जेन आस्टिन' के रूप में प्रस्तुत किया था। नवीन हिन्दी लेखकों की जो महती सेना श्रीदुलारेलालजी तथा गंगा पुस्तकमाला ने गत १९२० से खड़ी की, *श्री प्रतापनारायण उसके अन्यतम* सैनिकों में गिने जाते हैं। तब से आज तक उनका वह स्थान सुरक्षित चला आ रहा है। वास्तव में आधुनिक हिन्दी के भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा दुलारे युग में से अंतिम युग—दुलारे युग—की महती विभूतियों में उनकी गणना की जाती है।

श्री दुलारेलाल जी द्वारा आविष्कृत महान् लेखकों के कारण ही १९२० से १९४५ तक का युग हिन्दी का अप्रतिम प्रतिभाशाली युग बन गया था। 'माधुरी' और 'सुधा' उन दिनों लेखकों की खोज करती थीं। दुलारेलाल भी उनका साहित्यिक संस्कार करते थे, और गंगा पुस्तकमाला उन्हें हिन्दी जगत् से परिचित करातीं थी। सैकड़ों लेखक हिन्दी की इस महती संस्था के कारण ही लड़खड़ाते पावों में स्थिरता पाकर आज गर्वीले कलाकारों की श्रेणी में जा बैठे हैं। बहुतेरे कृतघ्न अभिमानी श्री दुलारेलालजी की सेवाओं को भूलकर अपने को स्वयं-भू भले ही मानने लगे हों किन्तु यह निर्विवाद है कि आज के हिन्दी-साहित्य के निर्माण में दुलारे-युग के पिछले २५ वर्ष कठोर आधार-शिला का कार्य सदा करते रहेंगे। हिन्दी लेखकों की अकृतज्ञता पर्याप्त अनुताप का कारण बन चुकी है। हिन्दी साहित्य इतिहास के उस ध्रुव सत्य पर उनकी यह कालिमा भी परदा न डाल सकेगी।"

तो भारतेन्दु-युग और द्विवेदी युग के बाद हिन्दी में एक दुलारे-युग भी पहली बड़ी लड़ाई के बाद १९२० में आया और दूसरी बड़ी लड़ाई के बाद १९४५ में २५ वर्ष की उमर में उठ गया। इस युग के बाद हिन्दी में कौन सा युग आया, स्वयं सुधीन्द्र वर्मा ने यह भूमिका लिखते समय में लिखी, यह बात साफ-साफ नहीं बताई गई। पर इतिहास के विद्यार्थियों को यह बात जान लेनी चाहिये।

आचार्य द्विवेदी जी का देहान्त १९ में हुआ। जाहिर है कि उसके बहुत पहले ही उनका तबादला दुलारे-युग में हो गया था। १९२० के पहले 'सरस्वती' का सम्पादन करते हुये उन्हें कुछ ही लेखक मिल पाये थे वे मैथिलीशरण गुप्त की प्रतिभा का परिचय भर ही दे सके थे। उनकी प्रतिभा का विकास दुलारे युग में हुआ! तो क्या द्विवेदी-युग केवल प्रोपेगंडा है? उसमें तथ्य कुछ भी नहीं है! तो भारतेन्दु-युग द्विवेदी-युग से भी अधिक निस्सार है! भारतेन्दु जी ने अनेक पत्रिकायें भी निकालीं पर उनमें चित्रशाला की तस्वीरें नहीं छपीं। उन्होंने कोई बढ़िया प्रेस भी नहीं खोला और पुरस्कार पाने के बजाय पुर

की सूची में ही अपना नाम
। उन्होंने साहित्यकारों की सेना
तैयार की। साहित्यकारों को न तो
उन्होंने अपना कृतघ्न बनाया, न
, में उन्हें अकृतज्ञ समझा। अतः जिस
से हमें हिन्दी में दुलारे-युग के
- का सबक़ दिया गया है उसी से
मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु युग कभी
ही नहीं और उसका भी होना केवल
न्हा की बात है! इससे यह निष्कर्ष
कला कि रीति युग के बाद हिन्दी
हित्य में इन्टरवल हो गया। उसके बाद
- देर तक घंटा ही नहीं बजा। (शायद
सम अच्छा हो जाने से क्रिकेट मैच की
त सोच ली गई!) फिर थोड़ी देर बाद
जोर का घंटा बजा। साहित्यकार लोग
विद्यार्थी भागकर दर्जे में आये। तब
० पता लगा कि वे दुलारे युग में बैठे हैं।
प्रेमचन्द्र, प्रसाद, हरिऔध, आचार्य
मचन्द्र शुक्ल और श्यामसुन्दर दास के
। एक भारी दुर्घटना हुई। उनकी प्रतिभा
विशेष चमत्कार दुलारे युग में ही प्रकट
ये और अब उन सबका देहान्त हो
नि पर यह बात खुली है। उन बेचारे
हित्यिक दिग्गजों को अपने देहावसान के
' मालूम तक न हो सका कि वे किस
ग के साहित्यकार हैं। पन्त, निराला,
यन, महादेवी आदि को तो सौभाग्यवशात्
मालूम हो गया है कि वे दुलारे युग की
न हैं। यही क्या कम है! सच पूछा जाय
ो निराला या वृन्दावनलाल वर्मा दुलारे-
की सेना के सेनानी हैं। ऐसे ही बहुत

से साहित्यकार दुलारे-युग के प्रवर्तक ने
आविष्कृत किये थे जो अपने गर्वीलेपन और
अकृतज्ञता के कारण सेना छोड़कर भाग
निकले हैं। इनका बाक़ायदे कोर्ट मार्शल
होना चाहिये। दुलारे युग का सबसे बड़ा
चमत्कार निराला का मानसिक सन्तुलन
है। इस चमत्कार को देखते हुये भी हमें
उन सब साहित्यकारों को साहित्य क्षेत्र से
बाहर निकाल देना चाहिये जो दुलारे-युग
की सेना को छोड़कर जंगल की ओर
भाग खड़े हुए हैं।

यह तो हुई दुलारे युग महान् समृद्धियों
की बात। अब यह जान लिया जाय कि
१९४५ के बाद दुलारे युग कैसे ध्वस्त हो
गया। साथ ही यह भी समझ लिया जाय
कि मेरा यह लेख और सुधीन्द्र वर्मा की
भूमिका किस युग की देन हैं। वास्तव में
हर एक समझदार लेखक को यह जानना
चाहिए कि वह किस युग में लिख रहा है।
यदि उसे युग-बोध न हुआ तो वह लिखेगा
ही क्या? उसके साथ भी प्रेमचन्द और
प्रसादवाली दुर्घटना हो सकती है जो मरते
दम तक न समझ पाये कि दुलारे युग ही
में उनका प्राणान्त हुआ। साथ ही प्रत्येक
साहित्यकार को जानने के साथ ही अपनी
कृतज्ञता दिखाने के लिये चिल्लाना भी
चाहिये कि वह किस युग का साहित्यकार
है। यह बात युग प्रवर्तक की शान्ति के
लिये और विद्यार्थियों के बोध-लाभ के
लिए परम हितकर सिद्ध होगी।

दुलारे-युग तो हिन्दी की बढ़ती हुई
प्रगति के कारण मारा गया। बिहारीलाल

महान् उपन्यास 'गढ़ कुंडार' के प्रकाशन के साथ ही साथ गंगा पुस्तकमाला के यशस्वी संपादक श्रीदुलारेलाल जी ने हिन्दी के सर वाल्टर स्कॉट के रूप में ला खड़ा किया था, उसी प्रकार श्रीयुत प्रतापनारायण श्रीवास्तव को भी उनकी प्रथम कृति 'विदा' के साथ ही उन्होंने हिन्दी के 'जेन आस्टिन' के रूप में प्रस्तुत किया था। नवीन हिन्दी लेखकों की जो महती सेना श्रीदुलारेलालजी तथा गंगा पुस्तकमाला ने गत १९२० से खड़ी की, श्री प्रतापनारायण उसके अन्यतम सैनिकों में गिने जाते हैं। तब से आज तक उनका वह स्थान सुरक्षित चला आ रहा है। वास्तव में आधुनिक हिन्दी के भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा दुलारे युग में से अंतिम युग—दुलारे युग—की महती विभूतियों में उनकी गणना की जाती है।

श्री दुलारेलाल जी द्वारा आविष्कृत महान् लेखकों के कारण ही १९२० से १९४५ तक का युग हिन्दी का अप्रतिम प्रतिभाशाली युग बन गया था। 'माधुरी' और 'सुधा' उन दिनों लेखकों की खोज करती थीं। दुलारेलाल जी उनका साहित्यिक संस्कार करते थे, और गंगा पुस्तकमाला उन्हें हिन्दी जगत् से परिचित कराती थी! सैकड़ों लेखक हिन्दी की इस महती संस्था के कारण ही लड़खड़ाते पावों में स्थिरता पाकर आज सर्वश्रेष्ठ कलाकारों की श्रेणी में आ बैठे हैं। बहुतेरे अहंकार अभिमानी श्री दुलारेलालजी की सेवाओं को भुलकर अपने को स्वयं-भू मंत्र ही मानने लगे हों किन्तु यह निर्विवाद है कि आज के हिन्दी-साहित्य के निर्माण में दुलारे-युग के पिछले २५ वर्ष कठोर प्रस्त शिला का कार्य सदा करते रहेंगे। हिन्दी लेखकों की अकृतज्ञता पर्याप्त अनुताप का कारण बन चुकी है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के उस ध्रुव सत्य पर उनकी कृत कालिमा भी परदा न डाल सकेगी।"

तो भारतेन्दु-युग और द्विवेदी यु बाद हिन्दी में एक दुलारे-युग भी प बड़ी लड़ाई के बाद १९२० में क और दूसरी बड़ी लड़ाई के बाद १९ में २५ वर्ष की उमर में उठ गया। युग के बाद हिन्दी में कौन सा युग स्वयं सुधीन्द्र वर्मा ने यह भूमिका लि में लिखी, यह बात साफ-साफ नहीं गई। पर इतिहास के विद्यार्थियों को बात जान लेनी चाहिये।

आचार्य द्विवेदी जी का देहान्त १९ में हुआ। जाहिर है कि उसके पहले ही उनका तबादला दुलारे-युग गया था। १९२० के पहले 'सरस्वती' सम्पादन करते हुये उन्हें युद्ध ही पाये थे वे मैथिलीशरण गुप्त की परिचय भर ही दे सके थे। गुप्त प्रतिमा का विकास दुलारे युग में हुआ! तो क्या द्विवेदी-युग केवल हैं? उसमें तथ्य कुछ भी नहीं है। तो भारतेन्दु-युग द्विवेदी-युग से भी निस्सार है? भारतेन्दु जी ने पत्र पत्रिकायें भी निकालीं पर उनमें चित्रशाला की तस्वीरें नहीं उन्होंने कोई बढ़िया प्रेस भी नहीं और पुरस्कार पाने के बजाय पु

ओं की सूची में ही अपना नाम
। उन्होंने साहित्यकारों की सेना तैयार की। साहित्यकारों को न तो
उन्होंने अपना कृतज्ञ बनाया, न
उन्हें अकृतज्ञ समझा। अतः जिस
से हमें हिन्दी में दुलारे-युग के
का सबक़ दिया गया है उसी से मानना पड़ेगा कि भारतेन्दु युग कभी ही नहीं और उसका भी होना केवल
की बात है! इसमे यह निष्कर्ष
। कि रीति युग के बाद हिन्दी
में इन्टरवल हो गया। उसके बाद
देर तक घंटा ही नहीं बजा। (शायद
अच्छा हो जाने से क्रिकेट मैच की
सोच ली गई!) फिर थोड़ी देर बाद
ज़ोर का घंटा बजा। साहित्यकार लोग
विद्यार्थी भागकर दर्जे में आये। तब
पता लगा कि वे दुलारे युग मे बैठे हैं।
प्रेमचन्द्र, प्रसाद, हरिऔध, आचार्य
चन्द्र शुक्ल और श्यामसुन्दर दास के
एक भारी दुर्घटना हुई। उनकी प्रतिभा
विशेष चमत्कार दुलारे युग में ही प्रकट
थे और अब उन सबका देहान्त हो
ने पर यह बात खुली है। उन बेचारे
ियिक दिग्गजों को अपने देहावसान के
तक न हो सका कि वे किस
के साहित्यकार हैं। पन्त, निराला,
महादेवी आदि को तो सौभाग्यवशात् मालूम हो गया है कि वे दुलारे युग की है। यही क्या कम है! सच पूछा जाय
निराला या वृन्दावनलाल वर्मा दुलारे-
की सेना के सेनानी हैं। ऐसे ही बहुत से साहित्यकार दुलारे-युग के प्रवर्तक ने अविष्कृत किये थे जो अपने गर्वीलेपन और अकृतज्ञता के कारण सेना छोड़कर भाग निकले हैं। इनका बाक़ायदे कोर्ट मार्शल होना चाहिये। दुलारे युग का सबसे बड़ा चमत्कार निराला का मानसिक सन्तुलन है। इस चमत्कार को देखते हुये भी हमें उन सब साहित्यकारों को साहित्य क्षेत्र से बाहर निकाल देना चाहिये जो दुलारे-युग की सेना को छोड़कर जंगल की ओर भाग खड़े हुए हैं।

यह तो हुई दुलारे युग महान् समृद्धियों की बात। अब यह जान लिया जाय कि १९४५ के बाद दुलारे युग कैसे ध्वस्त हो गया। साथ ही यह भी समझ लिया जाय कि मेरा यह लेख और सुधीन्द्र वर्मा की भूमिका किस युग की देन हैं। वास्तव में हर एक समझदार लेखक को यह जानना चाहिए कि वह किस युग में लिख रहा है। यदि उसे युग-बोध न हुआ तो वह लिखेगा ही क्या? उसके साथ भी प्रेमचन्द और प्रसादवाली दुर्घटना हो सकती है जो मरते दम तक न समझ पाये कि दुलारे युग ही में उनका प्राणान्त हुआ। साथ ही प्रत्येक साहित्यकार को जानने के साथ ही अपनी कृतज्ञता दिखाने के लिये चिल्लाना भी चाहिये कि वह किस युग का साहित्यकार है। यह बात युग प्रवर्तक की शान्ति के लिये और विद्यार्थियों के बोध-लाभ के लिए परम हितकर सिद्ध होगी।

दुलारे-युग तो हिन्दी की बढ़ती हुई प्रगति के कारण मारा गया। बिहारीलाल

ने सात सौ दोहे लिखे थे फिर भी वे कोई युग प्रवर्तक नहीं बन सकता। अतः इसी से फिर सिद्ध होता है कि यदि दुलारेलाल एक युग चला ले गये तो 'वह उनके प्रकाशक होने के बूते पर ही हो सका होगा अर्थात गंगा पुस्तकमाला के संचालक होने के नाते वे दुलारे-युग के प्रवर्तक मान गये।' यही बात जरा अधिक अध्यापकी भाषा में सुधीन्द्र वर्मा ने भी सुझाई है। यदि दुलारे-युग १९४५ में परम तत्व को प्राप्त हुआ तो उसका कारण था सरस्वती-प्रेस युग, भारती-भंडार युग किताब-महल युग, साहित्य-सदन युग आदि का उस युग के ऊपर आ बैठना। अब एक युग के लिये अकेला दूसरा युग ही भारी पड़ता है। (जैसे द्विवेदी-युग के लिये दुलारे-युग) और जब अनेक युग एक साथ मैदान में उतर पड़ें तो एक अकेला सेना के सहारे दुलारे-युग कहाँ तक टिक पाता। अतः वह चल बसा।

किन्तु दुलारे युग की अवतारणा आगे के युग-विभाजन के लिये बड़ी सहायक सिद्ध होगी। इसी में इस युग की सार्थकता है। प्रकाशकों के नाम पर युग चलाने का परिणाम यह हुआ है कि आगे मुद्रकों के नाम पर भी युग चल सकते हैं। ईमानदारी की बात तो यह है कि युग मुद्रकों के ही नाम पर चलने चाहिये। वे न हों तो प्रकाशक कहाँ तक साहित्य का प्रकाशन करेंगे। यह तो मुद्रक जब से आये तभी से प्रकाशक से भी हम परिचित हुये। अतः मार्गदर्शक रेट और टाइप का निरीक्षण कर हमें यह निश्चय करना पड़ेगा कि [illegible] मुद्रक के नाम युग की उपाधि लगाई जा[illegible] ये युग क्षेत्रीय स्तर—रीजनल लेवेल—[illegible] भी बन सकते हैं। इससे कई युग एक [illegible] पनपेंगे और वाजपेयी-मुद्रणालय युग[illegible] को यूरेका-प्रिन्टिंग-वर्क्स-युगवाले [illegible] और अभिमानी न बना सकेंगे। [illegible] युग तीन चार वर्ष तक मुद्रक की [illegible] और सांस्कृतिक स्थिति के विचार [illegible] क़ायम रक्खा जा सकता है।

इधर जब से हमारे पड़ोसी मगेन्‌ ने [illegible] युगों की चर्चा सुनी है उनका भी [illegible] कि वे अलग से एक युग खोलेंगे। वे [illegible] के कम्पोजिटर हैं। उनका कहना है [illegible] उन्हीं के द्वारा साहित्यकार [illegible] प्रकाशन के माध्यम से आगे बढ़ते हैं। मुद्रक और प्रकाशक तो होते ही [illegible] पर छपाई का असली काम तो मगेन्‌ [illegible] करते हैं। उन्हें कई साहित्यकारों [illegible] याद हैं, जिनकी पुस्तकें मुद्रण की [illegible] उन्होंने कम्पोज की थीं। वे उन सा[illegible] कारों को मगेन्‌-युग की देन समझते हैं।

मैं मगेन्‌ के तर्क से सर्वथा सहमत [illegible] सुधीन्द्र वर्मा ने दुलारे-युग में कुछ [illegible] भले ही लिखा हो पर उनकी भूमिका [illegible] मगेन्‌-युग की है। प्रत्येक साहित्यकार [illegible] इसी प्रकार अपने अपने युग का [illegible] कर लेना चाहिये। तभी 'साहित्य [illegible] का दर्पण है' आदि आदि सिद्धान्तों को अपनी कृतियों में उतार सकेगा और [illegible] उन्नत पर अकेला होने के कलंक से [illegible] जायगा। ●

आस्था

—— प्रभाकर द्विवेदी

अर्धनिद्रा में ही बहुत देर तक पड़ा रहा। फिर उठा। अँधेरा घिर आया था। सिर भारी, गला जल रहा था। पेट में बड़ा कूड़ा मालूम हुआ। जाड़े के दिनों में शाम के समय देर तक सोना भी कैसा बना देता है मन को। उदासी में डूबा रहा।

घर के बाहर आया निकलकर। धीरे-धीरे टहलता हुआ पास के छोटे पुल पर चला गया। नीचे से एक नदी बहती है। साथ में ही एक किनारे रेलवे लाइन है। सूरज डूब चुका था। बादलों का रंग गहरी स्याही में डूब गया। कुछ देर उचाट मन खड़ा रहा रेलिंग पकड़े।
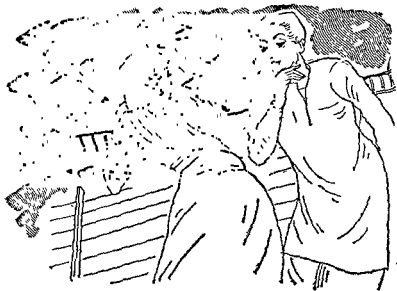
फिर दूसरी ओर नीचे को उतर गया। पास में ही छोटा-सा रेलवे स्टेशन, घनी झाड़ियों को पार कर उसी पर चला गया। एक किनारे की एकान्त बेंच पर बैठा रहा।

मन जाने किस झुंझलाहट में भीगा था। जाने कैसी उलझन-सी मालूम पड़ती थी। एक पैर ऊपर किया, उसी के घुटने पर सिर टिका दिया। पैर को दोनों हाथों से बाँधा। वैसे ही बैठा रहा। मरा मरा मन। रोने की इच्छा हो आई पर रुलाई न आयी।

स्टेशन के इस निर्जन एकांत प्रदेश में फूट पड़ने की इच्छा होती है, पर जैसे कण्ठ किसी अदृश्य शक्ति से अवरुद्ध हो। सिसकने के लिए कहता है पर सिसक नहीं पाता। किसी व्यक्ति का सामीप्य नहीं चाहिए। किसी की गोदी में मुँह छिपा फफक-फफक रोने की कामना नहीं है। बस एकांत में आँसू निकाल देना चाहता है वह।

घुटन से मरा बैठा रहा धीरेन। फिर लौट कर घर चला आया।

शाम को उठने पर रेखाजी ने कपड़े बदल लिए थे। लाल पाड़ की सादी धोती पहने थीं।

खाने की इच्छा नहीं थी, फिर भी खाया। रेखाजी शाल लेकर बोलीं, "चलते हो ज़रा बाहर?"

टहलते-टहलते मरा [illegible] लाइन की ओर चले गए। बगल में स्टेशन है। किनारे तार लगे हैं [illegible] सीधा [illegible]। उसी को पकड़ खड़े हो गये। दूर से रेल आ रही [illegible] हल्की-सी झकझक करती आवाज़ [illegible] पहचाना। अचानक इञ्जिन ने सीटी दी [illegible] रात की सर्द हवा में वह तीखी सीटी [illegible] गई। बोलीं, 'इस एकांत वेला को [illegible] सीटी दिल हिला देती है।"

'चुप खड़ा रहा। कहीं दूर से एक [illegible] के भूँकने की आवाज आ रही थी। [illegible] के बँगलों की खिड़कियों से रोशनी [illegible] आने के प्रयास में, कुहरे में विलीन [illegible] जा रही थी।'

बोलीं, "आज कुछ बुखार मालूम [illegible] था देखूँ, कल कैसी रहती है त[illegible] घूम तो रही हूँ सर्दी में।"

तार पर टिकी खड़ी थीं। दृष्टि [illegible] बँगले की छाया में बनी लताओं [illegible] थी। अचानक धीरेन को क्या सूझा [illegible] बिना सोचे समझे ऊपर का तार [illegible] लगा। रहस्य-भरी दृष्टि से रेखाजी ने [illegible] तो वह झेंप गया।

रेल चली आ रही थी। इञ्जिन की [illegible] की रोशनी से पटरियाँ चमक रहीं [illegible] दो चमकती हुई रेखाएँ। यह चमक [illegible] साथ-साथ आगे बढ़ रही थी। [illegible] कि जैसे पटरियाँ ही भागती आ रही [illegible] सामने की ओर। रेखाजी ने शाल से [illegible] लपेट लिए। पहले सीधा पल्ला लिए [illegible] चेहरे को घेर रखा था। इंजिन की रो[illegible] चेहरे पर पड़ रही थी। शाल के फ्रेम में [illegible] अण्डाकार चेहरा और उसमें से चमकती [illegible] आँखें एक तीर सा मार गईं धीरेन [illegible] ऊपर। बोलीं, 'ये चमकती पटरियाँ

लगता है, धीरेनजी ?'

'कि इन पर गलाकर टिका लेट जायँ। जिन आये और धड़धड़ाता हुआ ऊपर से जाय।'

'हाय! आपको भी ऐसा ही लगता ? सच !'

सह-अनुभूति से उसके चेहरे पर आगए ... को धीरेन ने भली प्रकार लक्ष्य । बोला, 'लगता है कभी-कभी हाँ।'

"एक बार मैंने इनसे कह दिया तो ये ... लगे। बोले, 'स्टूपिड टॉक ! मुझे बुरा । कि मेरी बात में क्या बेवकूफी थी। जैसा महसूस किया कह दिया।"

ट्रेन चली गई धड़धड़ाती हुई। रोशनी बैठे अनेक परिवार—अनेक लोग। लौटी की ओर। बोलीं, "दे ठिएगा छिन भर, ।"

चुप रहा। वे चलती गईं। सामने सड़क से एक मोटर बड़ी तेजी से आ रही थी। चूँ करती हुई वह तेजी में मोड़ पर घूमी और क्षण भर के लिए सारा मैदान प्रकाशित हो उठा। मोटर की सामने की रोशनी बहुत बड़े परल पर फैली हुई, बड़ी तेजी से एकदम मैदान की स्याही को पीते हुए घूम गई। और उस क्षण के लघुत्तम समय में जीजी और धीरेन ने देखा मैदान के किनारे वाले मकान की दीवाल से सटकर एक स्त्री और पुरुष आलिंगनबद्ध खड़े थे। रोशनी में वे हटने को हुए कि तभी शरमदार रोशनी स्वयं हट चुकी थी।

दोनों ने ही देखा यह कौतुक। पर दोनों ही चुप रहे। कोई टिप्पणी नहीं। कोई चर्चा नहीं। और शायद लज्जा से मौन हुए दोनों घर की ओर लौटे।

अचानक कहीं से एक कुत्ता आ गया। लगा भूँकने जोर-जोर से। धीरेन ने डाँटा तो वह और भूँकने लगा। आगे बढ़ आया। पहले रेखाजी हिम्मत से आगे बढ़ रही थीं। अब ठिठक गईं। कुत्ता लपका। रेखाजी डर गईं। कुत्ते ने कहा, 'हाँउ ?' और उनके मुँह से निकला, 'अरे !'

धीरेन ने पैर से चप्पल निकाली कि कुत्ते को मारूँ और उसी क्षण उस आसन्न विपत्ति से बचने के लिए रेखाजी ने एकदम से उसे पकड़ लिया। एक हाथ में चप्पल लिए रह गया, दूसरे से जीजी को बाँध लिया। वे सिमट आईं। कुत्ता चप्पल देख पीछे हटा और फिर सब कुछ साधारण गति में हो गया। केवल क्षण मात्र के लिये वह कुछ हो गया कि धीरेन की धुकधुकी बढ़ गई और वह संकोच के अतल सागर में डूब घर की ओर चला। साथ साथ रेखाजी भी। दोनों चुप।

घर के पास पहुँच, ठिठक, सामने के मैदान की ओर देखती बोलीं "यहाँ पर एक बड़ा पेड़ था। शुरू-शुरू में आये थे तो बड़ा अच्छा लगता था। यहाँ घर के दरवाजे पर खड़ी हो रात में उसकी काली-काली छाया देखा करती थी। चाँदनी रात में बड़ा भव्य लगता था। एक दिन वह काट डाला गया। सूना हो गया सामने का पूरा मैदान। शाम के समय तक कटकर खतम हुआ। रात में

यहाँ आकर खड़ी हुई तो जाने कैसा-कैसा लगा। उस रात मुझसे खाना ही नहीं खाया गया। ये बहुत कहते रहे कि क्या बात है। और जब मैंने इन्हें बताया तो इन्होंने मेरी बड़ी हँसी उड़ाई। बहुत देर मजाक उड़ाते रहे। मुझे बड़ा बुरा लगा।"

धीरेन उनका चेहरा ताकता खड़ा रहा —खड़ा रहा।

फिर घर में घुमीं। बोली, "आओ।"

अपने कमरे के सामने ठिठकीं। बोलती गईं, "जाने क्या सम्बन्ध है..." फिर कमरे में चली गईं। धीरेन बाहर ही खड़ा रहा। पीछे घूम, देखकर बोली, "आओ न!... जाने क्या सम्बन्ध है जो इस सामने के मैदान की रिक्तता और हृदय की रिक्तता में है। जाने क्या है वह ..."

रेखाजी मसहरी खिसका चारपाई पर बैठीं। सामने की मचिया की ओर दिखा कहा, 'बैठो।'

धीरेन बैठ गया। उन्होंने चप्पल निकाल दी और भीतर मसहरी में खिसक गईं। शाल उतार धीरन पर फेंक दी। स्वयं चारपाई पर गुनगुनी चिकनी रजाई में लिपट बैठ लीं। नीली-नीली हल्की रोशनी थी। मसहरी में उनकी आकृति छाया-रूप हो रही थी। रजाई से घिरे चेहरे और मसहरी के मन्द स्निग्ध ध्यान में जैसे कुछ विशेष अंतर न रह गया हो। जैसे उन सब में रेखाजी खोती जा रही हों—लगभग खो चुकी हों।

कहने लगीं, "कभी कभी मन अनजाने ही बीमार हो उठता है। जाने क्यों उब जाता है। इच्छा होती है कि यह सब छोड़ कर कहीं भाग जाऊँ। किसी [illegible] मन नहीं लगता। थिर नहीं पाता, [illegible] अब उचट जाता है। बिलकुल ही [illegible] पाती क्या है यह सब।..."

चुप बैठ सुनता रहा।

रेखाजी ने जम्हाई ली। फि[illegible] हाथ चेहरे पर फिराए और बाजों [illegible] खोल लेट गईं।

पाँचेक मिनट बैठा रहा। [illegible] रेखाजी सो गईं। बोला, "सो गईं [illegible]

"हूँ?...नहीं तो।..." आवाज [illegible] ऊँघ में बोल रही हैं। पर वह उठ न [illegible] बैठा रहा चुपचाप। दस मिनट [illegible] पूछा उसने। जब कोई उत्तर न [illegible] उठ गया। जाने क्यों रेखाजी पर [illegible] गया। हुंह, मुझे जगा कर स्वयं [illegible] आखिर तो मुँहबोली जीजी हैं [illegible] नहीं।

उनकी बत्ती बुझा कर, अंदाज [illegible] कमरे में आया। सो रहा।

सवेरे चार बजे के लगभग कि[illegible] जगा दिया। आँख खोली तो बिजली जल रही थी। जीजी [illegible] थीं। बोलीं, "धीरेनजी, जरा उठो

उठ बैठा! क्या बात हो गई [illegible] मलने लगा।

"आओ जरा इस कमरे में बैठो बड़े ज़ोर का डर लग रहा है। [illegible] देखा है अभी।"

उठ कर साथ-साथ आया।

पर बैठ गया। जीजी चारपाई पर बैठ गईं। धीरेन की नींद अभी अच्छी तरह गई नहीं थी। जीजी बैठे-बैठे ही मसहरी बलटने लगीं। उसकी झालरों को उठा-उठा ऊपर की ओर फेंकने लगीं। अचानक उनके छितरे बाल धीरेन के मुख पर आ गिरे। क्षण मात्र के लिए वे जरा झुकी थीं। हाथों को ऊपर फेंकने की चेष्टा में सिर झिटक उठा था। और उतनी ही देरी के लिए उनके बालों के निकले हिम्से उसके चेहरे पर आ छाए। जाने कैसा स्पर्श था उनका। वह बिलकुल काँपकर हट गया। सारी नींद भाग गई। उस क्षण मात्र स्पर्श से जैसे शिरा-शिरा काँप उठी हो।

वे दूसरी ओर की मसहरी उठाने उधर जा बैठीं। अब भी बाल वैसे ही छितरे थे रीढ़ पर। अचानक धीरेन की इच्छा हो आई कि उन बालों को हाथों में बटोर कर वह उन्हें खूब सूँघे। उनको हाथों पर मले और उनसे अपना चेहरा ढंके। उस क्षण-मात्र के स्पर्श की स्मृति जैसे उसे भुला-भुला ले गई। ठगमारा, लोम से घिरा बैठा रहा।

जीजी बोलीं, "ऐसा सपना! बाप रे, बड़ा डरावना था। आज तक कभी न देखा होगा। जैसे सभी डरावने लोग उसी सपने में भर आए हों। अभी तक डर के मारे कँपकँपी छूट रही है, धीरेन!"

"क्या किसी जंगल में जा पड़ी थी?"

"नहीं। लेकिन हाँ, जगल ही था। उन्हें दिन निकलने पर टेलिग्राम दे आना होगा। 'आ जाएँ।' बड़ा भयावना जंगल था। कभी ऐसा सपना देखा है?"

धीरेन किंचित मुस्कराया वह तो जैसे परेशान हो उठी। बोली, "क्यों क्या बात है? मुस्कराए क्यों?"

चुप रहा मिनट भर। फिर जैसे अत्यंत धृष्टता से कह गया "आपके कहने से यह नहीं लगता कि आप जैसे सचमुच ही इसी तरह का सपना देख रही हों।"

हतप्रभ हो गईं। फिर साहस बटोर कर बोलीं, "घबराई हुई लगती हूँ या नहीं?"

"सो तो है। पर डरावने सपने वाली बात नहीं बैठ पा रही है।"

मिनट भर चुप रहीं। फिर बोलीं, "हर सपना हर किसी को बताया नहीं जा सकता। उसी संकोच में पड़कर बात दबा गई थी। कह गई कि डरावना सपना देखा है। पर सपना देखा है और अभी तक उसकी उदासी से परेशान हूँ।"

चुप रहा धीरेन तो तनिक समय की चुप्पी के बाद फिर बोलने लगीं, "सुदूर बचपन का कोई मित्र हो और अब उसकी स्मृति ही शेष हो। और अचानक ही वह सपने में आ जाय। लगे कि जैसे फिर वही जीवन आ गया। वही लोग। वही बचपन का मित्र। और सभी सपना खतम हो जाय तो जागने पर मन को कैसा लगेगा? कभी नहीं देखा क्या ऐसा सपना?...अभी तक उसी की शक्ल नाच रही है आँखों के आगे। उसी के कारण तो जागने पर अकेली बैठी न रह पाई यहाँ। सुबह उसकी चिट्ठियाँ दिखाऊँगी अब और कुछ तो रह नहीं गया है उस बेचारे का, मेरे पास।

हाय, उसे मैंने बड़ा कष्ट दिया।..."

बैठे-बैठे लेट गईं। रजाई खींच ली। रजाई के साथ बिस्तर भी कुछ खिंच आया तो धीरेन ने उठकर बिस्तर ठीक कर दिया। फिर जाने क्या सूझा कि मचिया खींच कर वहीं पायताने की ओर बैठ गया।

"देखा कि वही घर के पास वाला मैदान है। उसी में खड़ा होकर वह पतंग उड़ा रहा है। मैं कोठे पर खड़ी हूँ। लड़ाई चल रही है। अचानक जाने कैसे वह कोठे पर आ जाता है। या मैं ही मैदान में पहुच जाती हूँ। वह डोर मुझे थमा देता है। कहता है कि मैं जा रहा हूँ। फिर वह चला जाता है। पतंग इतनी जोर से उड़ती है कि उसी के साथ मैं भी उड़ी जा रही हूँ। जाने कहाँ कैसी घाटी के ऊपर से उड़ती जा रही हूँ और वह नीचे खड़ा है। अभी तक उसके लहराते बाल आँखों के आगे फिर रहे हैं। तभी नींद खुल गई धीरेन। मन कहता है कि अभी मिर्जापुर चली जाऊँ। ऐसी आकुलता आ समाई है... ऐसी..."

कण्ठ जैसे अवरुद्ध हो आया हो। चुप रह गईं रज्जोजी!

जाने कब आँख लग गई। पुकारा धीरेन ने, "जीजी!"

कोई उत्तर नहीं। रजाई के बाहर [illegible] पैर निकला था। साफ चिकना चरण दि[illegible] रहा था। जाने कितनी निकटता और [illegible] से बह गया वह। वही चरण जिस पर [illegible] बनारस में माथा झुका देने की लालसा [illegible] आई थी। वहाँ विवाह की शुभ रस्मों [illegible] उन पर आलता लगा था। अब वे ही [illegible] छरहरी अँगुलियाँ आलताहीन होकर जैसे उतनी ही सुन्दर लग रही हैं।

धीरे से पाटी पर माथा टेक दि[illegible] संकोचवश उस चरण से लगा कर माथा [illegible] रख सका। ऐसे ही रखे रहा। एक [illegible] किक, अशरीरी श्रद्धा की अलसता [illegible] प्राणों में भर गई। जैसे किसी [illegible] डालों के नीचे गर्मी के दिनों में आँख [illegible] बैठे हों। जैसे चमेली के घने कुंज में [illegible] कर शाम के समय बजने चने के [illegible] सुना जाय।

सवेरे की खुमारी थी—आँख लग

एक साँझ : एक सपना

हिमांशु जोशी

इडा सवेरे जल्दी जागी। समय से पहले। झटपट तैयार हो गिरजाघर जाने के लिये आंगन तक पहुँची ही थी कि सहसा कुछ याद आया। बच्चों के साथ वह फिर घर की ओर लौट आई।

बैठक की दीवार पर लगे एक चित्र को धीरे से उतारा। बच्चों ने एक-एक कर इस पर फूल चढ़ाये। अन्त में इडा की बारी आई। उसके हाथ में एक बड़ी-सी माला थी—वर्ष भर से सींची अपनी फुलवारी के सबसे अच्छे चुने फूलों की। पहले अपलक उस काले-फ्रेम से घिरी आकृति को देखती रही। देर तक न जाने क्या-क्या सोचती, देखती गई—फूलों से कितना मोह था! और उस पर सफेद गुलाब···! हल्के से ओंठ फड़के। फिर पलकें फूलों की ओर मुड़ीं तो देखा—सब से अधिक सफेद गुलाब के ही फूल महक रहे हैं। धीरे से वह हार उसने चित्र की ओर बढ़ा दिया।

ज्यों ही वह झुकी, हृदय का रुका ज्वार आँखों की राह बाहर उमड़ आया। वेदना से ओंठ काँपने लगे। पलकें मुँद गयीं। उस चित्र को सीने से लगाकर देर तक नन्ही बालिका की तरह फफक-फफक कर रोती रही।

बहुत देर बाद आंखें जब ऊपर उठीं तो देखा—नन्हे बच्चे-रुलाई भरी आँखों से देखते हुए स्तब्ध खड़े हैं। अपनी नादानी पर उसे सहज ही पश्चाताप हुआ। जल्दी

सम्हल कर वह उठ खड़ी हुई। हँसने का अभिनय करती हुई, न चाहते हुए भी न जानें क्या-क्या सुनती-सुनाती, बालकों का जी बहलाती गिरजाघर की ओर चली गई।

सभी ने मिलकर प्रार्थना की। यद्यपि हर रविवार को वे नियमित रूप से गिरजाघर जाया करते, लेकिन आज की प्रार्थना सबसे लम्बी थी।

आज घर-बाहर साफ-सुथरा बना था। पकवान भी बच्चों की रुचि के अनुसार और दिनों से अधिक थे। बच्चे रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए मम्मी के हर काम में जी-जान से योग दे रहे थे।

इसी तरह दिन बीत गया। शाम को जब तीनों बालकों को पड़ौस के बच्चों के साथ खेलने के लिए भेज दिया तब इडा अकेली रह गई। बिलकुल अकेली।

उन ऊँची-ऊँची हिम-मण्डित पहाड़ियों से ढलता सूरज, पतझड़ की साँझ का वह सूनापन, धीरे-धीरे चारों ओर से घिरते अँधियारे से उसके हृदय की वेदना और भी भारी होती चली जा रही थी।

वह निरुद्देश्य काफी देर तक आँगन में, बरामदे में घूमती रही। अनेकों लहरें, अनेकों ज्वार हृदय में रह-रह कर उमड़ते रहे। भूली हुई धुँधली-सी आज न जानें कितनी बीती यादें धुल-धुलकर सामने आती जा रही थीं।

उसे लगा जैसे वह तीन बच्चों की मा नहीं, एक नन्हीं रूपसी बालिका हो—घर-बाहर दिन-रात चहकने वाली। कोई साधारण-सी नहीं, खूब ऐश्वर्य-सम्पन्न मा-बाप की लाड़िली। कैसे शैशव के सुनहरे दिन बीतते गए और किस ठाट-बाट से एक दिन उसकी शादी हुई! वैसे तो विवाह हर व्यक्ति के जीवन की एक सबसे बड़ी घटना है, लेकिन, उसके लिए तो और भी महत्त्व का दिन था वह। काउण्ट सियानो का जीवन में आना कितनी बड़ी घटना थी! 'सियानो' नाम लेते ही वह खिल उठी। एक भोली-भाली आकृति, निरी निश्छल आँखें उसके आगे घूमने लगीं।

उन पथराई आँखों से उसने देखा—आराम कुर्सीपर बैठ-हारे, थके सियानो को परराष्ट्र-मंत्री बनने पर भी कोई प्रसन्नता भाव नहीं झलकते थे। देर तक देखती गई उनके माथे पर बिखरे बालों को पतल अंगुलियों से सहलाती रही।

पलकें धीरे-से ऊपर उठाते हुए कि भाव-भंगिमा से देखते रहे। भारी आवा से बोले: 'यह अधिक न चल पायेगा इडा। लगता है सौदा मंहगा है. ।'

इडा जिज्ञासा से देखती रही।

'जानती हो कितना घाटे का है?'

उस दिन कुछ भी समझ में न आया यही तो सोचती थी कि राह जिन्दगी मिल गई।

घटनाएँ सालों तक तरह-तरह घटती रहीं। पर जब एक बार काउ बहुत दिनों तक मंत्रालय न गए तो शं और अधिक बढ़ आई। तरह-तरह समझाया तब झुँझलाकर बोले: 'यह विरोध का प्रश्न नहीं, सवाल है तानाशा

विरोध का। मुझे यह पद मिला, तो यह मतलब तो नहीं कि हर बात 'हाँ' में 'हाँ' मिलाऊँ। अपनी अन्त-... को धोखा दूँ। देशवासियों का ...घोटूँ। मैं तानाशाह का मंत्री नहीं ... अभागी जनता का मंत्री हूँ.. तुम इन ... की बेटी हो, यही सब से बड़ा सौभाग्य और दुर्भाग्य है...।'

—महासमर के दिन। सारा यूरोप ...कर जल रहा था। जाड़े की ऋतु। सियानो उस कँपा देनेवाले शीत में भी ...-पसीना। खाना-पीना, सोना सब हराम। कभी रोम, कभी नेपल्स-मीलान भटकते। आन्तरिक झगड़े एक ओर तो दूसरी ओर सिसली तक ब्रिटिश-अमेरिकन सेनाओं का कब्जा।

सियानो जब बहुत अधिक परेशान होते तो कभी मानसिक-सन्तुलन खोकर बड़बड़ाते।—'यह सब तानाशाह की करतूतें हैं। देश तबाह हो गया। यही कुछ दिनों तक और चलता रहा तो सारा इताली एक दिन केवल श्मशान-वीरान-खंडहरों का देश रह जायेगा। इतालियनों को युद्ध न चाहकर भी लड़ना पड़ता है। इडा, यह कैसा दुर्भाग्य है···?"

वैरोना के बन्दी के दर्द-भरे पत्र छिप-छिप कर आते रहते। इडा यातनाओं का वर्णन पढ़ कर बावली-सी हो उठी।

अन्त में, वह एक दिन अपने तानाशाह पिता मुसोलिनी के पाँवों पर गिरकर गिड़गिड़ायी: "यह तुम्हारी लाड़ली बेटी के भाग्य का फैसला है। जिसे तुमने प्यार से पाला-पोसा, उसी का आशियाँ वीरान होते देख तुम्हारा दिल नहीं पसजीता?···बेटी को विधवा और उसके बच्चों को दर-दर के भिखारी बनाओगे?...। पापा···कुछ तो रहम करो...।"

तानाशाह ने रूखी आवाज से इतना ही कहा: "एक ही चीज मिल सकती है, इडा। काउण्ट सियानो या तीनों बच्चे...यदि मैं यहाँ सियानो को छोड़ दूँ तो तुम क्या जानती नहीं कि तुम्हारे बच्चे हिटलर के पंजे से जिन्दा नहीं निकल सकेंगे···? इताली में हिटलर के नात्सीवाद की राह में रुकावट है तो केवल सियानो। और अपने विरोधियों को उसने कभी क्षमा नहीं किया।"

वह सीधे बर्लिन पहुँची और फ्यूहरर से मिली। लेकिन, उसने स्पष्ट शब्दों में सुना: "मुसोलिनी के आन्तरिक घरेलू मामलों से फ्यूहरर का कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ तक सियानो के बच्चों का प्रश्न है वे नात्सियों के संरक्षण में हैं। उन्हें जीवित मुक्त नहीं किया जायेगा। और तो अब इडा के लिए भी जर्मन-सीमा से बाहर पाँव रखना सम्भव नहीं ··"

इडा को अन्त में हार कर आमरण अनशन की घोषणा करनी पड़ी और तंग आकर नात्सियों ने एक दिन उसे जर्मनी से बाहर निकाल दिया।

काउन्ट सियानो और वे मासूम बच्चे अपने अन्तिम-दिन गिन रहे थे। इडा रह-रह कर काँप उठती। आसरा कहीं भी न दीखा तो स्विट्जरलैंड चली गयी। कुछ महत्त्वपूर्ण

कागजात थे उसके पास। उनका ही सहारा लिया। नात्सियों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, कि यदि निश्चित तिथि के अन्दर बच्चे न मिले तो सारा मण्डाफोड़ कर देगी। भूतपूर्व परराष्ट्र मंत्री की पत्नी होने के नाते जितनी भी जर्मन-इताली आदि देशों की गुप्तसंधियों के सम्बन्ध में रहस्य-पूर्ण पत्र थे, वे सब इडा के काबू में थे। वह मित्र-पक्षीय देशों को सौंप देने की धमकी दे रही थी। इसी मतलब से एक पत्र इडा ने विन्स्टन चर्चिल के नाम भी भेजा।

नात्सियों के कान खुले। स्वप्न में भी यह न सोचा था। समय से पहले ही बच्चे वापस आ गए। लेकिन, काउन्ट सियानो का जीवन तब भी अरक्षित था।

बच्चों को वहीं छोड़ इडा ने रोम की राह ली, तानाशाह से फिर प्रार्थना की :—

'बच्चों को छुड़ा लिया है। सियानो को अब आप छोड़ दें।'

लेकिन, बेटी की सहायता करने में भी इताली का तानाशाह असमर्थ था!

"विद्रोही सियानो को कैसे छोड़ा जा सकता है?"

"विद्रोही किसे मानते हो?"

"षड्यंत्रकारी सियानो को...।"

"षड्यंत्रकारी सियानो नहीं, आप हैं। आपने हिटलर को इताली बेच दी है। निरपराधों की गोदें सूनी कर दी हैं। लाखों घर वीरान कर दिये हैं। कुटिलाओं के फन्दे में फँसकर आपने जीवन भर मेरी साध्वी मा को सताया। और अब उसकी बेटी से भी कोई बदला ले रहे हैं। पर यह न भूलिए कि अनीति की राह लम्बी नहीं होती। सियानो न रहेंगे, लेकिन एक दिन आप भी न रहेंगे...।"

इडा अन्त में निराश हो चली आई। इस मुलाकात की केवल एक प्रतिक्रिया हुई कि सियानो की यातनायें कम हो गईं। व्यायाम और पढ़ने की सहूलियत मिली। अन्त में प्राण-दण्ड भी रद्द हो गया। इडा अमुक स्थान पर आकार सियानो से मिलने को तैयार रहे, यह सूचना भी मिली एक दिन।

इडा बेहद खुश थी। 'मौत के मुँह से लौट आने के बाद हम एक नई दुनिया बसायेंगे...।' और न जाने क्या-क्या सपने सजाती गाड़ी में बढ़ी चली जा रही थी वह। रास्ते में गाड़ी खराब हो गई। पर वह उस अन्धेरी रात में भी गिरती-पड़ती चलती रही और किसी तरह इडा सूचना में निर्दिष्ट स्थान तक पहुँची।

देर तक इधर-उधर भटकती रही, लेकिन कोई भी नहीं मिला। चारों ओर सुनसान घोर अन्धेरा। बहुत देर तक ढूढ़ने-टटोलने के बाद मिला—खून से लथपथ, गोलियों से बिंधा एक शव। काउन्ट सियानो का शव।

इडा जैसे एक दुःस्वप्न से जाग उठी। खेल से वापस लौटे बच्चे उसकी फ्रॉक पकड़ कर खींच रहे थे। उसकी आँखों में आँसू देख वे सहमे हुए मृगछौने की जैसी आँखों से कभी उसकी ओर देखते तो कभी उस तस्वीर को, जिस पर इडा की निगाह टिकीं थीं।

कामना

• मालती परुलकर •

अपने विवाह के एक हफ्ते पहले उर्मिला ने अपने मन का सब से बड़ा एवं बुनियादी भेद जाना कि वरसों से अनजाने ही वह शंखु को प्यार कर रही थी। वह स्वयं नहीं जानती थी...शायद जानती भी नहीं यदि उस दिन धोखे से शंखु मन की बात न कह बैठता।
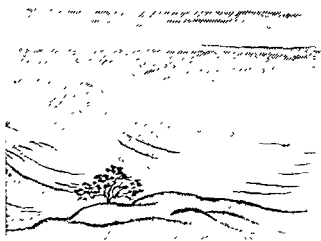
क्यों नहीं शंखु ने अपना प्यार पहले ही व्यक्त किया? वह बराबर उसके पडोस में रहती है, बोलती-बैठती है। यह भूल कैसे हुई? कैसे वह अपने हृदय को पहचान नहीं पाई? कैसे वह जान न पाई कि उसके जीवन में आज तक, जो प्राण से मन तक आत्म-तृप्ति थी उसका कारण शंखु का अनायास सामीप्य है?

बरसाती मौसम को छोड़कर पिछले तीन सालों से अक्सर यही होता था, कि वह अपने आँगन के ऊँचे कगारे से शंखु को नर्मदा की धारा से बाहर आते देखती थी तो, गगरा उठाकर चिल्लाते हुए कहती 'मा! सुन

रही हो ?...मैं घाट पर जा रही हूँ !'

रास्ते भर तो कगारे के नीचेवाले वटवृक्ष की छाँह में या विस्तीर्ण बालू के प्रशांत तट पर शंभु की भेंट होती थी। तीन साल हो चले थे, किन्तु जवाब सवाल प्रायः एक से होते थे।

वह पूछती थी, "स्नान हो गया ?"

बिना रुके केशों को पीछे सँवारते हुए वह कहता "हाँ ! अभी तो आ रहा हूं।"

हफ्ते में एकाध बार उर्मिला को चिढ़ाने या कभी तो सच ही वह कहता, 'सुनो उर्मिला !' स्नान करना चाहो तो गहरी धारा म मत जाओ ! अभी मैंने उस ओर बड़ा भारी कछुआ देखा..."

"सच शंभु, तो मैं वहाँ कभी नहीं जाऊँगी ! तुमने क्यों वहाँ नहानेका साहस किया ? तुम किसी की नहीं सुनोगे ?"

वह जैसे-जैसे गागर भरकर किनारे पर आकर खड़ी हो जाती, देखने की चेष्टा करती थी कि शंभु ने जो कछुआ देखा, वह कहाँ है ? किन्तु यदि दिखाई न पड़ता तो घर आकर स्नान करने के बाद भी क्रोध शेष रहता। वह शंभु से लड़ने जाती, कहती, "मैं सब जानती हूँ ! पानी से डरती हूँ, सो मेरी कमजोरी का फायदा उठाते हो ! मां, चाचा तो क्या शंभु, तुम भी, बस मुझको अभी छोटी बच्ची ही समझते हो। जब चाहे, जो कह दिया। देखना अब कभी विश्वास नहीं करूँगी तुम पर ?"

"अच्छा, मान लिया कि मैं झूठा हूँ। पर हम लोग तुम्हें बच्ची समझते हैं तो गलती करते हैं क्या ?"

उर्मिला अजीब मुँह बनाकर चढ़ जाती। उस पर 'बचपन' का आरोप शंभु हमेशा करता रहता।

मृगशिर नक्षत्र ढल जाता, आषाढ़ की आहट पाकर आसमान में, पेड़ पहाड़ों पर बादल छाने लगते थे तो उर्मिला आनंद से न समाती थी। वह अपने आँगन में चिल्लाती थी, 'मा, देखो न। शंभु भी जरा बाहर तो आओ...देखो कैसे जल्दी जल्दी बादल छा रहे हैं ! कैसी हवा चल रही है। यह मिट्टी की महक मुझको बड़ी प्यारी लगती है। बहुत अच्छा लग रहा है। ऐसे वक्त मोर नाचते होंगे...'

और चाचा, मा, शंभु सभी, उसकी इन बातों को सुनकर कहते थे, "बच्ची है !...... हाँ ! पर शंभु उतनी ही तन्मयता से उन बादल को देखता था और उन झूमने- वाले पेड़ पौधों को भी !

महीनों से अबाध रूप से ही यह क्रम जारी था ! किन्तु आज शंभु ने उर्मिला को घाट पर जाते वक्त रोककर कहा, "सुनो उर्मिल, आज के नवें दिन क्या होने वाला है ? बताओ !"

उर्मिला जान गई कि शंभु, उसके विवाह को लेकर उसे चिढ़ाने की धुन में है। उसने बिना ऊपर देखे कहा, "क्या होगा जी ? मैं नहीं जानती !"

..."तो अपने विवाह की बात भी भूल गई हो ?..."

उर्मिला सचमुच ही झेंप गई। शंभु

कहा, "पगली, तुझे छेड़ने के लिए थोड़े ही पुकारा है! मुझे तुम्हें उपदेश देना है। उपदेश देने का मैं अधिकारी हूँ—तू मुझसे ग्यारह वर्ष छोटी जो है।"

उर्मिला ने गागर नीचे रख दी। वट-वृक्ष की छाया में सुस्तानेवाले मेमनों को सहलाते हुए उसने कहा, "वहाँ धूप में मत खड़े रहिये! छाँह में आकर......हाँ, अब कहिये। क्या उपदेश देना है?"

शंभु बैठ गया। बोला, "हर बात को तुम 'लाइटली' लेती हो उर्मिल...।"

"नहीं लूँगी! देखिये मैं कितनी गम्भीर बनकर बैठी हूँ!...अब कहिये जल्द! वर्ना गागर का पानी न मिलेगा, तो दूसरे पानी से चाची की देव-पूजा न होगी। मेरे नाम का महापाठ वहाँ पढ़ा जायेगा...जानते हैं! जल्द कहिए!"

"जल्दी में कहने-सुनने लायक बात नहीं है। ध्यान से सुनना होगा, विचार करना होगा! समझीं।"

"समझी! उपदेश देंगे। वैसा ही जैसा कि कण्व ने शकुंतला को दिया, जो हर हितैषी विदा होनेवाली लड़की को परम्परा से देता आया है...यही न? मैंने उसे सुन लिया है मां से। उसके अतिरिक्त कुछ हो बताइये...।"

"उसके सिवाय, कुछ कहना है! फुरसत में कहूँगा! अभी जाओ, वर्ना चाची का काम रुका रहेगा।"

"नहीं! मैं सुनकर जाऊँगी! क्या उपदेश है, जिसे देने के पहले आपने चेहरे को ऐसा गम्भीर बना लिया है। सुनूँ तो!"

शंभु मन्द मुस्काया। बोला, "...अच्छा सुनो! कहना यह था उर्मिल, कि तुम बहुत सरल हो, बहुत ज्यादा सात्विक हो। ऐसी सात्विकता से जिन्दगी निभ नहीं सकती। अब तक निभ गयी, अब निभना मुश्किल है। यदि तुम्हें अपना वैवाहिक जीवन सुखी करना है तो राजसी बनने की चेष्टा करो। अपने आदर्शों पर ज़िद न किया करो! अपने मन की हास्यरसमयी सात्विक अनुभूति को—इस प्रोज्वल आभा को तुम्हारे पति शायद पहचान नहीं पायेंगे! यदि सच ही ऐसा हुआ, तो इस विराट दुनिया में तुम एकाकी रह जाओगी।—सर्वथा एकाकी।..."

उर्मिला को शंभु के भीतर की इस कशमकश का ज्ञान नहीं था। वह दिल-खोलकर हँस पड़ी। गागर उठाती हुए बोली, "हाय रे! मुझे लगा, न जाने आप कौन-सा अलभ्य उपदेश देनेवाले हैं!"

शंभु मौन रहा, किन्तु इस वक्त उसके कंठ में जो आर्त हलचल हुई वह उर्मिला की नजर से बची नहीं। उसने सहमकर कहा,..."देखिए शंभु भाई, मेरे सामने ऐसा कोई खास उद्देश्य है ही कहाँ, जो उसकी जिद में पड़कर मेरे दुखी होने की शंका आपके मन में आई और यह तो बताइये, कि क्या सात्विकता कभी किसी को एकाकी कर सकती है? क्या आप एकाकी हैं?"

सामने नर्मदा के प्रवाह पर सुनहली धूप चमक रही थी। शंभु की नजर में, ऐसी ही आर्द्र झलक थी! वह दृढ़ता से

बोला, "मैं एकाकी नहीं हूँ। ...इसलिए कि मैं पुरुष हूँ।—इसलिए कि मैंने प्यार किया है। मैंने बचपन से ही किसी को चाहा है, उर्मिला। अंतिम श्वास तक चाहता रहूँगा। बस, इसलिए मैं एकाकी नहीं हूँ। पर तुम तो स्त्री हो। तुम अकेली नहीं रह सकती.. युगों को पल बनानेवाला गहरा प्यार तुम्हारे साथ नहीं है। तुमने तो किसी को भी नहीं चाहा, फिर कैसे रह सकोगी?"

शंभु का भाव, वह अब भी न समझ सकी। उसने दूसरा ही धागा पकड़ लिया था। बोली, "ओहो! लगता है, शंभु भाई कि आपको अमिता मामी की याद आ गई। सच है न? यह कहिए कि आप इतना चाहते हैं उन्हें, तो उनके कहने से ही बिना विरोध किए, बिना उन्हें समझाये क्यों तलाक़ दे दिया? मतभेद दोनों के बीच कुछ होगा ही तो वह तो समझौते से हट सकता था। आखिर वह स्त्री है और कोई भी नारी शासन नहीं करना चाहती। वह तो प्रेम के अधिकार से शासित होना चाहती है। यदि उस पर शासन नहीं हुआ तो वह सच्ची सार्थकता नहीं पाती! क्यों नहीं अमिता मामी पर आपने अपना अधिकार चलाया? ."

शंभु को लगा कि उर्मिला बातें बड़ी-बड़ी करती है, पर वह न तो अनुभव प्रेम को जानती है, न इस संसार को। सालों तक उसके निकट रहने पर भी वह बहुत दूर रही है। वह बोला: "तुम्हारा ख्याल है, उर्मिला, मैंने अमिता को प्यार नहीं किया। प्यार करने की ईमानदार कोशिश भी नहीं की।..."

"कौन थी वह? मुझसे कह दो, मैं किसी से न कहूँगी। मा से भी नहीं।"

शंभु हँसते हुए बोला, "समय निकल गया है। अब कहकर क्या करूँ? पहले कहता—शायद पहले तुम जानना चाहती तो...कोई तुम्हें मुझसे छीन नहीं सकता था! .."

शंभु के अंतर का यह भेद-दर्शन उर्मिला के लिए सर्वथा अनपेक्षित था। स-संभ्रम वह उठ खड़ी हुई। वह जान नहीं पाई कि इस अभिव्यक्ति को कैसे ग्रहण किया जाय, क्या कहा जाय! निर्ह अनजाने इतना ही कह उठी, "शंभु भाई, यह आपने क्या कहा!—अब कहा, जब समय निकल गया।"

शंभु शांत चित्त से आकाश में तैरते सफ़ेद बादल के टुकड़े की ओर देख रहा था। उर्मिला ने गागर उठाई, कुछ कहना चाहा, पर सूझा नहीं—मुख मोड़कर वह घाट की ओर बढ़ी।

धूप कुछ तेज हुई थी। मरभूमों की बाड़ी में शादी के गाने ढोलक पर स्त्रियाँ गा रही थीं। दूर चट्टानों पर कपड़े पटकने, धोने की आवाज, पूरे वातावरण में प्रतिध्वनित हो रही थी। उर्मिला को वे गाने, वह आवाज बड़े खराब लगे। वह आगे बढ़ रही थी; पर कानों में, अधरों पर शंभु के शब्द लहरा रहे थे।

उर्मिला के सम्मुख, सारी घटनाएँ कोलाहल करने लगीं...। वह समझ गई

शंखु का कहना ठीक था ! वह बचपन से उसे चाहता है, उसे प्यार करता है...

नादानी में वह कुछ नहीं समझी।

माघ में उर्मिला को पँधरावा लगा, यह घटना है बैशाख की ! छोटी चाची लोटे में पानी डालने वह हमेशा के , पीपल की छाँह से आच्छादित को पारकर उनके घर गई, तो रसोईघर में मा से बातें करते हुए बैठा था।

उर्मिला को देखकर वह बोला, "यह तो है ! ओहो ! मैं तो पहचान भी पाया। कितनी बड़ी दिखने लगी है।" उर्मिला में अल्हड़ कौमार्य अभी बाकी । वह खुले दिल से हँस पड़ी। चाची भून रही थी—पतले चावल को 'पेज' जाता है। पेज तैयार थी। पूजा में ा लोटा भेजा हुआ नहीं था ! मला ने कहा, "छोटी चाची, आप से अपना काम कीजिये, मैं लोटा माँग लूँगी।"

शंखु की मा ज्यों-ज्यों उर्मिला के रूप-गुणों से परिचित होती त्यों-त्यों न जाने क्या मन ही मन सोचती रहती। दोनों की जाति में—महाराष्ट्रियन होने पर भी—भेद है। पर आशा करतीं कि किसी न किसी दिन जाति का यह आग्रह गौण हो जायेगा, और उर्मिला को, अपने लाडले पुत्र की बहू देख सकेंगी।

उर्मिला की पीठ थी, पर उसे निहारते वक्त उनकी आँखों में ऐसा ही कौतुक—ऐसे ही कुछ सपने झलक रहे थे।

पानी रखकर उर्मिला जाने लगी तो वे बोलीं, "बिना खिलाये तुम्हें जाने नहीं दूँगी, बेटी। आ बैठ यहाँ। आज तेरा मुँह मीठा करना चाहिए, बिलकुल घर की बहू जैसा काम किया है। शंखु, सुन रे, मुझको ऐसी ही बहू लाना, कहीं की 'मदमन' न ले···!'

चाची के शब्दों का असर उर्मिला पर बड़ा विचित्र हुआ ! न जाने क्यों संकोच और क्रोध से उसके कान लाल हो गये। चाची पुकारती रही, पर चिढ़ के आवेग में उर्मिला दौड़ती हुई घर आ गई।

मा को देखने भर की देर थी। गागर नीचे रख कर, दोनों घुटनों में सिर छिपाकर वह फफक-फफक कर रोने लगी। और रोने-रोते ही, उसने चाची की बात दोहराई और कहा, 'मा ! कल से मैं हरगिज वहाँ नहीं जाऊँगी। उनका बेटा पानी ले आयेगा। मैं क्या उनकी नौकर हूँ ? या कठपुतली हूँ, कि जो चाहे वही कह लें. !

मा जान गई कि उर्मिला को बुरी लगे ऐसी कोई बात शंखु की मा ने नहीं कही। वे बोलीं, 'चाची ने मजाक किया होगा। उसमें रोने चिढ़ने की क्या जरूरत है ?"

तेजी से उर्मिला बोली, "हाँ, हाँ मजाक था ! ऐसा मजाक भी होता है ? मैं कल से कहीं नहीं जाऊँगी।"

मा बोली, "मजाक नहीं तो क्या था ? क्या तुम्हें बहू बनाने का सपना भी वे देख सकती हैं ? उनकी जाति अलग है, अपनी अलग ! प्रतिष्ठा में भी तो कोई समता नहीं।

का तनिक भी अनुभव न करता।

अमिता का मानसिक स्तर बड़ा हो ए था ! वह शंकु के निर्मोहीपन से, -सौजन्य से प्रभावित और आकर्षित थी ! परन्तु उसकी प्रेरणाओं से तादात्म्य सके ऐसी अनुभूति उसमें क़तई नहीं थी ! इस जगह में छोटी-सी सोसायटी जो अभाव था वह उसे काटने लगा।

अधिक चिढ़ उसे शंकु की संतोषी वृत्ति पर थी। वह कहती थी कि वे लोग किसी बड़े शहर में स्टूडियो खोलें ताकि द्रव्यार्जन और प्रतिष्ठा बढ़ जाय। शंकु जवाब देता था, 'अमिता, विवाह के पहले ही बार-बार मैंने तुम्हें कह दिया था कि शहरों से मुझे नफ़रत है। प्रतिष्ठा और रुपयों का प्रलोभन मुझको शहरों में नहीं खींच सकेगा। कला का प्रचार क्या इस छोटी-सी जगह में रहकर नहीं हो सकता ? मैं यहाँ रहकर बेकार तो हूँ नहीं। पर्याप्त ऑर्डर्स भी मिलते हैं, और हमें क्या चाहिये ? मैं अपना यह नगर छोड़कर कहीं जाना पसन्द नहीं करता—!'

अमिता पूछती थी, 'आखिर यह ताओ शंकु, कि तुम मुझ पर प्यार करते या अपने इस निसर्गवाले फैड पर ?'

निर्विकार चेहरे से शंकु पूछता था, 'तुम्हीं ताओ अमिता, कि तुम मुझ से प्यार तो हो या शहरों से,—वहाँ मिलनेवाली झलमलाती खोखली प्रतिष्ठा से ? मेता, मैं शहर जाऊँगा तो मेरा कला-र मर जायेगा ! इस धूप से, इस छाँह से, र के इस मौसम से मेरे हृदय में जो आता है—वह लुट जायेगा ! मुझे बार बार मत सताओ ! मैं अपनी जन्मभूमि छोड़कर, यह नर्मदा—पीपल की यह विस्तीर्ण छाँह, और छोटा-सा अपना घर छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। क्यों तुमने विवाह के पहले मेरी शर्त मान ली थी ?"

पति-पत्नी के बीच का यह संघर्ष किसी को मालूम नहीं था ! शंखु के पिता की मृत्यु के एक माह बाद अमिता मायके चली गई। पँधरावा के बाद शंखु भी कलकत्ता गया। वह लौटकर आया···माह, दो माह, बाद साल बीतने आया, अमिता आई नहीं तब लोगों ने अन्दाज लगाया कि दोनों में कुछ बिगड़ गया है ! धीरे-धीरे तलाक़ की चर्चा फैल गई। किन्तु शंखु के ललाट पर कभी किसी ने पश्चाताप या असंतोष की रेखा नहीं देखी।

पितृ-मातृ-विहीन शंखु के प्रति पड़ौस के परिवार की वत्सलता अब विशेष-रूप से दिखने लगी ! अक्सर उर्मिला की चाची या मा उसे खाना खाने रोक लेती थी ! किसी ऐसे ही वक्त सुबह उनके यहाँ गया तो देखा उर्मिला की मा के साथ बहस चल रही थी। उसे आते देखकर उर्मिला बोली, 'तुम ठहरो मा, शंखु भाई निर्णय करेंगे ! —मा इसलिए अफसोस करती हैं कि यहाँ आकर पहले जैसा रहन-सहन नहीं रहा। नागपुर जैसा अफसर लोगों का यहाँ आना-जाना नहीं है। घर का ठाठ देहाती है।..

मा ने तेजी से कहा, 'सुनो शंखु, इसकी बातें ! मुझे तो दुख है ही। मैंने, इसकी भी आँखें कई बार लाल देखी हैं !

वहाँ नागपुर या बम्बई में रहती, कॉलेज जाती तो क्यों रोना आता? दिन कैसे निकलता है, और कहाँ डूबता है यह भी पता न चलता।"

उर्मिला ने कहा, "शहर की सुख सुविधाओं से वंचित हूँ इसलिए रोती हूँ, यह तुमसे किसने कहा?"

पल भर रुककर फिर उर्मिला ने अपने मत का समर्थन करने के लिए कहा, "चिकने फर्शवाले नागपुर के हमारे बंगले में सौन्दर्य है तो क्या इस काली मिट्टी से लिपी हुई जमीन में इस बाँस, लकड़ी के इस देहाती घर में नहीं है? सोफा सेट के कुशन्स सुन्दर हैं, तो क्या सन से बुनी चारपाई कम सुन्दर है? वहाँ मन जरूर रमता था; पर यहाँ भी रमता है। भिनसारे चक्की पीसती हूँ—तो मुझे लगता है कि उसकी आवाज का मेरे हृदय की गम्भीरता से निकट का नाता है। यों सुबह-दुपहर-शाम नन्हीं-नन्हीं रंग-बिरंगी चिड़ियाँ आँगन में दाने चुगने आतीं हैं और हलकी-सी आहट पाकर क्षितिज के पार—नर्मदा के उस ओर उड़ जाती हैं, तो मेरा मन आनन्द से भर उठता है। शंखु भाई ऐसी बातें मैं कहती हूँ, तो मा को लगता है जैसे मैं किसी उपन्यास का मुखाग्र पढ़ रही हूँ। उसे अतिरंगित लगती है ये बातें। अच्छा, तुम कहो, क्या मैं झूठ कहती हूँ? क्या मैं बढ़ा-चढ़ाकर कह रही हूँ? क्या यह आवश्यक है कि हरेक को शहर की सुविधा का आकर्षण हो?"

उर्मिला के हृदय में बहनेवाली रसात्मक धारा इतनी स्पष्टता से शंखु ने कभी देखी नहीं थी। परन्तु अब उसे प्र... बार साक्षात्कार हुआ। बचपन से वह उ... प्यार करता है, इसका कारण भी ... समझा। उर्मिला के और उसके प्राणों ... बहनेवाली एक लय थी—और इसी ... दर्शी सूक्ष्म भाव-प्रवाह के आकर्षण ने ... बरसों पहले उर्मिला के प्यार में सम... होने के लिए बाध्य-सा किया था। उसे ... अपार परिपूर्णता का, एक गहरी सार्थ... का पहली बार अनुभव हुआ, वह हँस प...

उर्मिला की मा उर्मिला के नाटकी... भाषण को सुन रही थी, और अब ... की सम्मति के लिए प्रतीक्षा कर रही थी...

शंखु ने मजाक से कहा, 'चाची, यह ... बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करती है को... की तरह मेरी समझ में भी कुछ कम ... है। इसकी जन्मकुण्डली देखनी पड़े... कहीं हमारे गुरुदेव ने फिर तो अवतार ... लिया?...'

इस दिन के बाद शंखु को उर्मि... बातें करने में कभी संकोच महसूस ... हुआ। बल्कि वह उसके सम्पर्क ... सम्मान के लिए अधिकाधिक अवसर ... लगा! मन को यह भी समझता रह... उसे उर्मिला को पाने की इच्छा नहीं ... चाहिये।

शरद-पूनम के दिन आँगने में बैठे ... शंखु के हाथों में दूध का कटोरा ... उर्मिला ने पूछा, "किस विचार में डूबे ... चार-छः बार पुकारा, ध्यान ही नहीं ...

शंखु मुस्कराया! उसने दूध का ...

लेते हुए कुछ न कहा।

दूसरी चारपाई पर उर्मिला बैठ गई। बोली, "क्या मुझे बताने लायक बात नहीं! क्या सोच रहे थे?"

शंखु ने कहा, "तुमसे छिपाकर कोई बात नहीं रखनी चाहिये। रखता हूँ, तो विधाता मुझको बराबर दण्ड देता है—दे भी रहा है।' खैर!—छोड़ो उन बातों को!"

"कैसा दंड?"

"ऐसा दंड उर्मिला, जिसकी तुम्हे कल्पना नहीं है...।"

"अच्छा तो फिर बताओ कि क्या सोच रहे थे?"

शंखु ने उसकी ओर गौर से देखा। चाँदनी में नहाती हुई उर्मिला की कमनीय आकृति का सौन्दर्य गोया वह वहन नहीं कर सकता! उसने आँखें हटा ली। बोला, ".... सोच रहा था कि दूधिया चाँदनी को अंकित करने की शक्ति चित्रकारी में है, या काव्य में है, पर मूर्त्तिकला में इसकी गुँजाइश नहीं दिखती! किन्तु तुम्हें देखकर अचानक समस्या हल हो गई।"

"मुझे देखकर?"

"हाँ! तुम आई, मालूम नहीं कैसे उसी वक्त प्रेरणा मिली। —मूर्त्तिकला का विषय मूर्ति तक सीमित है। यदि किसी के चेहरे पर, स्वस्थ हृदय की सौम्य चाँदनी झिलमिलाती है, यदि आसमान के चाँदनी की सोज्वल मुग्ध मधुरता रहती है, तो मूर्त्ति में भी चाँदनी अंकित हो सकती है, सागर की गम्भीरता घहरा सकती है। ठीक तो कह रहा हूँ न? कहो उर्मिल।"

शंखु का नूतन तर्क उर्मिला के भावुक विश्वासों को सही सही भाया! आनन्दमंर स्वर में उसने कहा, 'बिलकुल ठीक कहते हो, शंखु भाई। बिलकुल ठीक! मेरी बात मानो, कल से अपने स्टूडियो में बड़ा आइना रख दो! आइने में देखकर अपनी मूर्त्ति बनाया करो! क्योंकि ये सब बातें सही-सही तुम्हारे चेहरे पर अंकित है. अच्छा, जल्दी से दूध पीकर कटोरा दो।'

वह भीतर चली गई। शंखु ने गहरी साँस ली। कब उर्मिला उसे जानेगी? और जताकर भी क्या होगा? क्या वह समझ सकेगी?

कभी न कभी उर्मिला का विवाह होनेवाला है, यह शंखु जानता था, पर जब उसने यह वार्ता सुनी तो बहुत कोशिश करने पर भी वह अपने आवेग को न रोक सका! अनाथ बालक-सा रो पड़ा वह।

उर्मिला के पति का परिचय उसने चाची से पाया था। पर उसके व्यक्तित्व का पता कैसे चले? शंखु को अमिता की याद हुई! शांतिनिकेतन के नीरव कुँजों में उसके कन्धों पर लाड़-प्यार से मस्तक घसीट कर उसने उसकी बातें दोहराई थी। जिसने शर्तें स्वीकारी थी वही अमिता! सत्य जीवन में अपने सपनों के, आश्वासनों के, विश्वासों के सहारे टिक न सकी! और यदि अमिता के स्त्री-हृदय में यह दुराव आ सकता है, तो बम्बई के वातावरण में पला-पनपा, डिग्री प्राप्त, मेकेनिकल लाइन का युवक कैसे

उर्मिला को जान सकेगा ? वह कैसे मानेगा किनीलेगगनको और पर्वतों को देखे बिना, पवन को पिये बिना जीवन अधूरा है ?

शंखु को लगा कि उर्मिला को उसके जीवन में आनेवाली इस बेतुकी लहर की कल्पना नहीं है। वह उसी भोलेपन से पति से समय-असमय पर बहस करेगी, और नाराजी की हलकी-सी झलक पाकर मन मारकर बैठी रहेगी। छोटी-छोटी असंगतियाँ कितनी बड़ी खाई निर्माण कर सकती हैं यह वह भली-भाँति जानता था... और ऐसी खाई में उर्मिला फिसल पड़े, यह कल्पना भी उसके लिए विकराल थी।

वह उसे सजग करना चाहता था··· पाँच ही मिनट के पहले उपदेश करते वक्त, धोखे से उसके हृदय का सत्य प्रगट हो गया था।

शंखु से बिना बोले उर्मिला बढ़ी तो सही, पर आज गोया उसके मन के भेद खुल गये थे ! शंखु को वह पहले भी नहीं भूली थी, और अब भूलना संभव भी नहीं था। एक प्रलयातीत भावाकुल बाढ़ में वह डूबने लगी ! सामने नदी पार के खेत, गांव के मन्दिर में घड़ियालों का नाद—सब ज्यों का त्यों था।

गागर भरकर वह मुड़ी। शंखु के पद-चिन्ह जो बालू में अंकित थे, उन्हें वह आसानी से पहचान गई ! अनजाने ही उसके पाँव उन पदचिन्हों पर पड़ने लगे—गोया वह शंखु के जीवन में नई दृष्टि लेकर प्रवेश कर रही थी।

कुछ दूरी पर, वटवृक्ष की छा[illegible] आते ही वह रुक गई ! सामने वृक्ष [illegible] रहा था ! शंखु की शर्ट के सोप के [illegible] हुए थे; ठीक वहीं जहाँ उसके पद[illegible] अंकित हुए थे।

न जाने क्यों, उसने उस जगह [illegible] समेट कर अपने आँचल में बाँध ली ! [illegible] बाहरी ओट पर रख कर उसने आवा[illegible]

"मा, मैं पड़ौस में जा र[illegible] पानी उठा लो !"

आराम कुर्सी पर आँखें मूँदक[illegible] लेटा हुआ था ! वह द्वार पर ही [illegible] गई !—फिर—बढ़ी—।

कुर्सी के हत्थे को पकड़ कर नीचे [illegible] हुए उसने धीमे से पुकारा : "शंखु भा[illegible]

शंखु सँभल कर बैठ गया ! [illegible] सपना नहीं था—सचमुच ही उर्मिला [illegible] समीप बैठी थी !

उसने पूछा, "उर्मिल, अरे [illegible] क्यों ? मुझसे लड़ने-झगड़ने आई है [illegible]

एक विचित्र विवशता लेकर उ[illegible] गर्दन हिलाई ! रेत से भरे आँचल को [illegible] पर फैलाकर उसने कहा, "एक बार [illegible] रेत पर पाँव रख दो···देर न करो।

"यह क्या कर रही हो ? कहो मे[illegible]

उसकी ज़िद देखकर शंखु ने रेत [illegible] रखे, पूछा, "यह तुझे क्या ह[illegible] उर्मिल ? मेरे पैरों को क्यों चूम[illegible] पागल हो गई है क्या ?"

आँचल समेटते हुए नीची [illegible] उर्मिला ने कहा, "तुमने बचपन से [illegible]

भी दिया उसका प्रतीक है यह! तुम्हारे आदेशानुसार मैं बहुत जल्द राजसी ही बनने की चेष्टा करूँगी! तुम्हारे प्यार को वही वहन कर सकता है, जो सात्त्विक है, पारदर्शी है...मैं इस रेत को नर्मदा में बहा दूँगी! इससे पावन कौन-सा वह स्थान होगा, जिसे मैं अपना हृदय-सर्वस्व सौंप दूं!"

उर्मिला के मस्तक पर शंभु के आँसू फिसले और अरे शंभु के चरणों पर उर्मिला के!

दोनों कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे फिर उर्मिला वहाँ से उठ कर चली गई!

खिड़की से नर्मदा की धारा दिख रही थी। वैशाख की साँय साँय हवा। रेतीले नदी-किनारों के बीच खरबूजे।

उर्मिला ने वह रेत प्रवाह में कब छोड़ी, शंभु नहीं जानता, पर इतना जरूर जानता कि उस स्थान के एक-एक कण में उर्मिला की आदर-ममता का उसे साक्षात्कार होगा। और उसके हृदय में विश्वास है कि जब तक नर्मदा उसके निकट है, तब तक उर्मिला को उससे कोई दूर नहीं कर सकता! वह परिपूर्ण है—और युग-युगों तक ऐसा ही परिपूर्ण बना रहेगा! *

मा की पत्नी से क्या रिश्ता!

एक व्यक्ति और उसकी 'मा की पत्नी' में क्या सम्बन्ध हो सकता है: क्या आप बता सकेंगे?

कुछ दिन हुए उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द ने यही प्रश्न प्रयाग विश्व विद्यालय में कानून के छात्रों से पूछा था!

पौराणिक काल की एक कथा है कि जब देव-दानवों द्वारा समुद्र-मन्थन के बाद दोनों में अमृत-कुम्भ को लेकर झगड़ा होने लगा तब भगवान् विष्णु ने मोहिनी-रूप धारण कर असुरों को बहका दिया। कुछ लोग इस कथा को भस्मासुर की कथा से भी जोड़ते हैं। दक्षिण में इस कथा को और भी आगे बढ़ाया गया। मोहिनी का विवाह शंकर से हुआ और एक पुत्र, पष्ट, उत्पन्न हुआ। पष्ट के सामने यही समस्या आई कि लक्ष्मी जी से उसका क्या सम्बन्ध है। समाधान यही था कि वे उसकी 'मा की पत्नी' हैं!

आधुनिक काल में इस कल्पना को असंगत नहीं माना जा सकता। कारण, मानवीय लिंग परिवर्तन के कई उदाहरण अभी तक सामने आ चुके हैं! *

नौ-निहाल गिरस्ती

मूल : नोरा वर्क   अनु : राजेन्द्रनाथ मिश्र

★

जब कालू का पिता, पहाड़ी पर कुछ खेत, हल, बैल और चार छोटे भाई-ब
विरासत में छोड़कर चल बसा तब कालू करीब १६ साल का था।

बड़ा लड़का होने के कारण स्वर्गीय आत्मा को स्वर्ग पहुँचाने की व्यवस्था उ
को करनी पड़ी और उसीने घर के प्राणियों को भी सम्हाला।

पाँच बच्चों और एक बैल का निर्वाह खेती और जंगल से बीनी-बटोरी चीजों
सहारे होता था। कालू अपने छोटे भाई-बहनों को प्यार करता था इसलिए, व
बचपन में ही जवान हो गया। समझदार, घर का बड़ा-बूढ़ा!

उसने तय किया कि वह गेहूँ, जौ, राई, सरसों, आलू और शलजम उपजाएगा
बैल तो जंगल से मिले चारे-भूसे पर भी पल सकता है। लड़कियां घास काटेंगी
लकड़ी-कण्डे बीनेंगी और पानी ले आएंगी, कटाई, मड़ाई, कुटाई, पिसाई औ
रोटी-टहल कर लेंगी। लड़के बैल चराने और जुताई में मदद देंगे। जब चार पै
हाथ आएंगे, तब बाजार जाऊंगा। घी, चावल, नोन, मिर्च मसाला ले आऊंगा
हम अच्छी तरह रहेंगे। महाजन से कर्ज तो उस वक्त तक नहीं लूंगा जब तक ब
भूखों न मरने लगें। महाजन का थोड़ा बहुत कुछ बाकी रहा तो फसल कटने-बि
ही चुका दूंगा।

कालू हिमालय की तराई के एक मामूली किसान परिवार का लड़का था
उसकी मां किसी बुखार की शिकार हो कब की मर चुकी थीं। उसका बदन, खाने-पी
की कमी, कड़ी मेहनत और मलेरिया की वजह से शायद छोटा रह गया था। फि
भी बदन छोटा-छरहरा पसीने की बूंदें आ जाने पर अक्सर बड़ा सुन्दर दिखता था
उसकी काली बड़ी आंखों में, जब वह भाई-बहनों की ओर देखकर कुछ सोचता ह
मन के विचारों को, जो झलक पड़ती थी, उसका भय न करना मुमकिन नहीं था।

कालू और उसका छोटा-सा परिवार काम करने लगा। कुछ दिनों तक उन्हें को

दिक्कत नहीं हुई। कभी कभी जब कालू गांव जाता तो महाजन की दूकान के सामने से, जहाँ वह रोज काम में आने वाली चीजें व अनाज बेचता था, गुजरता। महाजन उसको और बड़े ध्यान से देखता था क्योंकि अब वही तो घर का मुखिया था। शायद उसे कर्ज की जरूरत औरों की अपेक्षा और भी अधिक पड़े। एक दिन उसने कालू को रोक कर कह ही डाला: 'कुछ रुपए तो नहीं चाहिए?' और वह यह भी कहना न भूला, 'मैं चालू ब्याज पर उधार देता हूँ।'

'नहीं'–कालू ने—कहा।

'इसमें कोई हर्ज नहीं। मेरे पास सब लोग आते हैं।'

'मेरे पास अभी कुछ है,' कालू ने कहा।

महाजन ने उसे ध्यानपूर्वक देखा, और फिर बोल पड़ा, 'मैं तुम्हारी मदद के लिए हरदम तैयार हूँ। कर्ज लेना सबके लिए, सब जगह, मामूली बात है। सारा गाँव लेता है मुझसे।'

कालू कुछ न बोला और न उसने मुड़ कर ही देखा। उसे काफी काम करना था।

सारा पहाड़ सीढ़ियों जैसे छज्जेदार खेतों से घिरा था, वहाँ मजदूर काम करते रहते थे। जमीन ढालू थी। कहीं-कहीं पर खेत मुश्किल से ६ या ७ हाथ चौड़े और

२० या २१ हाथ ऊँची दीवार पर टिके थे, जिनका एक एक पत्थर इन मजदूरों ने ढोया था। खेतों के एक ओर दीवार और दूसरी ओर खड्ड थे।

कालू और उसके भाई बहन खेत पर ऊपरी किनारे वाले पत्थर के घरौंदे में रहते थे। यह कानी पत्थर की चादर-से पटा था। यहाँ से मालिक अपने खेतों की रखवाली लुटेरों से कर सकता था। चिड़ियाँ और बन्दर तो खेतों में सदा आते ही थे पर झाड़ चुहिया भी अपना बिल छोड़कर पगडण्डी के रास्ते, दूरी की परवाह न करते हुए, आ जाती और आलू शलजम चौपट कर जाती। एक लंगर जंगली सुअर ने भी नाक में दम कर रक्खा था, और तो और हिरन भी, जहाँ तक उनकी पहुँच हो पाती धावा मारते और फसलों को नुकसान पहुँचाते।

कालू का बैल इतना क़ीमती था कि उसे घर के भीतर ही रात में बाँधना पड़ता था। क्या पता कोई भूखा चीता उसे कब तोड़ जाए? जलाने के लिए, वे लोग उपले पाथ कर सुखाते। खाद की गन्ध उनके जीवन में यों रम गई थी जैसे मैना की आवाज या जंगल में लकड़ी काटती हुई कुल्हाड़ी की खटखट या जोतते समय खेत में हल का फल कंकड़ों से टकरा कर खनखन् कर जाए अथवा लाखों बड़ी-बड़ी बूंदों की घहराती हुई ध्वनि जो दूर पत्तियों पर पड़ते समय होती है और बरसात का सन्देशा देती है।

वे बहुत ग़रीब न थे। महीने में एक गोश्त के अलावा मिर्च-मसाला, तेज़ [illegible] चलता था। चावल-चटनी बड़ी-बड़ी [illegible] रोटी तो दोनों जून बनती थीं। घर [illegible] था, सब तरह का सुभीता था। बहुत [illegible] पीतल के लोटे थे जिनमें उन लोगों ने [illegible] व सोंठ वगैरह रख छोड़े थे। ये उन्हें [illegible] पिता के मरने से पहले बदन गरम रखने [illegible] लिए हथेलियों और तालुओं में मले [illegible] सोने को दो चारपाइयाँ, सर ढकने के लि[illegible] कम्बल थे। झरने से पानी लाने के लि[illegible] दो मिट्टी के घड़े थे। उनके घर में [illegible] की चिमनीवाली लैम्प भी थी इसलिए [illegible] घर में धुँवे की गन्ध दूसरी [illegible] के साथ नहीं मिल पाती थी। [illegible] लड़कियों के हाथों में काँच की चूड़ियाँ [illegible] घर में कोई पाहुना आता तो उसे [illegible] पहाड़ी बड़े बकरा की खाल पर [illegible] कर चावल और मटर का झोल [illegible] जाता, और दूध-गुड़ से बनी चाय पिलाई जाती।

कालू अपना बैल हल में जोत[illegible] जुताई करता, बीज बोता, दीवार की [illegible] फूट की साज-सँवार रखता। उसने [illegible] लड़कियों को बराबर काम बाँटा। उन्हें [illegible] मेहनत के लिए उत्साहित किया। [illegible] उसकी पहली हरी पत्ती धरती मा[illegible] भूरे कलेजे को फाड़कर जल्दी निकल [illegible] कालू ने पिता की सहायता करते हुए [illegible] हरी पत्तियाँ सालों पहले भी देखी [illegible] जब से उसने होश सम्हाला तभी से [illegible] पत्तियाँ और फसलें देखता आया है पर पत्ती स्वयं उसकी कड़ी मेहनत और [illegible]

से उगी थी।

बाद में बहुत-सी पत्तियाँ उगीं। धरती हरी-भरी हो गई। जब वह मा-धरती-की गोद में लेटकर देखता तो पता चलता कि फसल बड़ी जोरदार होगी।

अब रखवाली का मौका आया। कालू ने मिट्टी के तेल का एक अच्छा कनस्टर काटकर दो टुनटुने बनाए। जब फसल खुदाई के लायक हुई तो पाँचों में से कोई एक रातों जागकर उसकी रखवाली करने लगा।

बढ़ती फसल देख कालू फूला न समाया क्योंकि वह भरपेट भोजन का सन्देशा था। सर पर अंगोछा बांधकर, ताकि पसीना आँखों मे न जाने पाए, वह काम में, कमर कसकर शान से जुट गया। हर सुबह उसके पट्ठे काम के लिए चुस्त होते शाम को थककर सुस्त हो जाते और दूसरे दिन सुबह फिर चुस्त। यही चुस्ती और मस्ती का सिलसिला काम करनेवालों को सुखी और संतुष्ट रखता है।

वे कुछ दिन तक डटकर खाते रहे। कभी-कभी शाम को कालू फुर्सत के साथ चौखट पर पालथी मार कर बैठता और डूबते हुए सूरज को देखता रहता जो पेड़ों के पीछे धारीदार बाघ की तरह छिप जाता।

और एक दिन, कुसमय में, पूर्वी पहाड़ी पर एक बादल दिखाई दिया। वह बढ़ता गया, उसने आकाश को घेर लिया सूरज को छिपा दिया।

'बरसात ?' दूसरे भाई ने प्रश्नसूचक स्वर में कहा और फिर आश्चर्य के साथ मुँह फेर लिया और हाथ यथास्थान आ गया।

उधर देखते हुए कालू ने कहा—'मुझे यह बेवक्त की बदली पसन्द नहीं है।'

उसने इस बादल को ध्यान से देखने के लिए काम रोक दिया। वह बढ़ता, फैलता, छाता आगे बढ़ता आ रहा था। उसकी अनुभवी आँखों ने जान लिया कि यह एक तो नहीं अनेक टुकड़ों से बना है। बरसात का बादल तो ऐसा नहीं होता फिर वह सन्, सन्, स्न्, सन्, की आवाज सुनने लगा।

उसने अपनी कुदाली एक तरफ फेंक दी और अपने परिवार से चिल्ला कर बोला—'अरे यह टिड्डियों का बादल है। सब जैसा का तैसा छोड़ लकड़ी लाओ, कपड़े लाओ और इस तरह आग सुलगाओ कि सारा धुआं अपने खेतों पर छा जाए। दौड़ो ! दौड़ो !!'

किन्तु कुछ करने से पहले ही टिड्डी दल आ पहुँचा। पहली टिड्डी उसके पैर के पास बैठी, उसने पख सिकोड़े, फुदकी पर कालू ने उसे नगे पैर की एड़ी से किचकिचा कर कुचल डाला। किन्तु वहाँ तो झुण्ड आ बैठा था। टिड्डियों की बरसात शुरू हो गई।

उन्होंने दौड़-भागकर आग जलाई। वह लकड़ी जो लड़कियाँ अपने कन्धों पर लादकर दो मील दूर जंगल से लाई थीं और जो कम-से-कम आठ दिन चलती एकदम आग में झोंक दीं गई। बरसात में जलाने

के लिए इकट्ठे किए हुए उपले भी आग में होम हो गए। उनके हाथ जो भी लगा, चाहे वह गीला हो, हरा हो या काम का हो किसी की परवाह न करते हुए उसे आग में झोंका गया। किन्तु हवा का रुख आज उनकी तरफ न था। धुआँ जो फसल पर छाना चाहिए था वह इधर-उधर फैल गया, उनकी आँखों में घुस गया और कुछ आसमान की तरफ उड़ गया।

वे झपटकर टीन, लोटा, थाली, डण्डा लाठी—जो भी हाथ आया उसीको लेकर खेतों की ओर भागे। शोर मचाया, थाली बजाई, टीन पीटे पर उनके चारों ओर टिड्डी-दल छा गया और सारी फसल चाट गया।

बरबादी का बादल पूरब से पच्छिम की तरफ बढ़ रहा था। टिड्डियों के दल का ऊपरी हिस्सा अपनी मंजिल तक नहीं पहुँचा था किन्तु नीचे वाला हिस्सा जमीन पर आ चुका था और कालू उससे दब गया था। सारे इलाके में टिड्डियाँ फैल चुकी थीं और कालू उनके चाटने की आवाज सुन रहा था। वह मशीन की 'टिक टिक' की तरह थी। हर पौधे-पत्ती पर टिड्डियों का दल बस गया था और वे अपने चमकदार पंख समेटे बड़ी लगन से उस फसल को—जो आने वाले पूरे साल का भोजन बननेवाली थी—साफ किए जा रही थीं।

थोड़ी देर बाद वे ढीली पड़ गईं, क्योंकि बरबादी के लिए अब कुछ बचा ही न था। सब चौपट हो चुका था।

कालू ने अपने खेत पर नजर दौड़ाई। कहीं कुछ न था सिर्फ डण्ठल अपना सिर हिला रहे थे और उनके नीचे भूरी पत्तियाँ मातम उदास पड़ी थीं। उसने अपने कन्धे और गर्दन को टटोला फिर अपनी झोंपड़ी में यह देखने चला गया कि उसमें खाने-पीने को क्या है!

पूर्व परिचित झोंपड़ी अँधेरी थी। उसमें से पसीने और पशुओं जैसी गन्ध आ रही थी। वे उसमें रहते जो थे। उसमें दिन में भी ठण्ढक और अंधकार रहता था। उसकी कड़ियाँ बरसों के धुंए से रंगी-रची हुई थीं। कच्चा फर्श पैरों से कुचल-कुचलाकर संगमरमर की तरह चिकना और कठोर हो गया था। ठण्ढ से कालू काँप गया क्योंकि वह बिलकुल भीगा हुआ था।

उसने अनाज और आटे के बोरे टटोल कर देखे। सामने नदी के मीठे पानी से भरे हुए घड़े रक्खे थे। कम से कम खाने-पीने को तो कुछ है। उसने एक बार अकाल देखा था। सारे गाँववाले पेड़ों की छाल, जड़ों, घास के बीज, बेर और मकोई के ऊपर पलते थे। बेर भी वे जिनमें गुठली और खट्टापन ही था। मर्द-औरतों की हड्डियाँ निकल आई थीं बच्चों के पेट ही पेट दिखते थे। बैलों के ढाँचे बन गए थे: कूल्हे और कुछ हड्डियाँ बची थीं। उसने धोती की फेंट कसी। अब उसे पेट छोटा करना ही होगा। सबको भूखा रहना होगा। बीज के लिए भी तो अनाज जुगाना पड़ेगा।

. उस रात सबने टिड्डियाँ खाईं । कालू कहा, "जितना खा सकते हो खाओ । ऱ अब मरपेट खाना महीनों बाद ।द मिलेगा । इसलिए ढेर सारी टिड्डियाँ ॱ ।र उबाली गयीं । थोड़ा मात तथा ॱ रोटियाँ साथ खाने मर को बनी थीं । बड़ी मजेदार अपने ही किस्म की- ॱ आ रही थी । सबने डटकर खाया । उन्होंने, दूसरे दिन के लिए, जितनी टिड्डियाँ पकड़ सके उतनी घड़े में मरकर ॱ लीं । चिड़ियों के खाने के बाद बची टिड्डियों को कालू ने खेत में ही खाद बढ़ाने ॱ नीयत से जोत डाला । उसने फिर ॱबोया । नया बीज फैलाकर उसने ॱ की देवी मैया पर चावल और गेंदे के फूल चढ़ाए । उसने परिवार की मोजन-मात्रा कम कर दी । यद्यपि यह कहते हुए ॱ आँखों में आंसू मर आए और वह ॱसे आँखें न मिला सका ।

शुरू शुरू में सब भूखे रहे क्यों कि उन्हें इतना कम खाने की आदत नहीं थी । वे सपने में मी ताजी रोटियों का ढेर, उबलता ॱ मात, नमक हरी मिर्च मसाला ॱ ।र दूध-दही-शक्कर तथा उनसे बनने-वाली मिठाई देखते थे किन्तु आंख खुलती तो सवेरे-सबेरे उन्हें भुने हुए चने मिलते और दोपहर में बहुधा उनके मन में एक विचित्र सी कलक होती । उन्हें भूख ही नहीं लगती ।

धीरे-धीरे बुरे दिन बीत गए । उन्हे आदत पड़ गई इसी तरह, गुजर करने की ! कभी-कभी पड़ोसी उन्हें कुछ भेंट के तौर पर मी कुछ-न-कुछ खाने को दे देते । वे मी तो बेचारे तंगी-तुर्शी से ही अपने-अपने दिन काट रहे थे । बहरहाल वे मरे नहीं ।

किन्तु उन्हें जो काम करने थे, उनको पूरा करने में वे असमर्थ रहे । जंगल, जहाँ से ईंधन और घर बनाने के लिए लकड़ी मिलती थी, भूसा-चारा मिलता था अब दो मील जान पड़ने लगा । वहाँ तक बच्चों को जाना ही दूमर हो गया फिर सर पर बोझा लादकर लाने की कौन कहे ?

एक बार सबको बुखार आया । वे चारपाई पर सर्दी-गर्मी में कापते-तड़पते और सूखे मुँह से बिना पानी पिये पड़े रहे । उनकी हड्डी-हड्डी कसकती रही । दो को तो सन्निपात भी हो गया किन्तु वे भी अच्छे हो गये और धीरे धीरे बीमारी की बातें तक भूल गए ।

कालू कतर-ब्यौंत कर कुछ दिन उतने ही सामान से किसी तरह काम चलाता रहा पर उसे पता था कि खाने-पीने के इतने सामान से काम न चलेगा और उसे कर्ज काढ़ना ही पड़ेगा । आखिर वह दिन आ ही गया जब उसे गाँव के महाजन के पास, जो कि अनाज के बोरों पर बैठा खाँस रहा था, जाना ही पड़ा और दस रुपये कर्ज लेने पड़े ।

साल मर का ब्याज पाँच रुपये होगा, महाजन ने बता दिया । बही खाते में नाम डाल दिया, लिखा-पढ़ी भी कर दी क्योंकि वह पढ़ा लिखा था । वह मालदार था और दयालु भी, क्योंकि वह उन लोगों

को, जिनके पास उसकी तरह रुपये न थे मदद देता रहता था। उसके यहाँ जाकर कभी कोई भी व्यक्ति बिना उधार लिए नहीं लौटा! खाली हाथ कोई नहीं गया।

कालू ने अच्छी तरह आँखें साफ कर खाते में अपना नाम देखा। हालाँकि वह लिख-पढ़ तो नहीं सकता था किन्तु जो कुछ कहा जाय उसे समझ सकता था। इसलिए उसने बताए हुए स्थान पर अंगूठा लगा दिया और कर्जदार बन गया। महाजन ने सांभर के चमड़े से बनी हुई छोटी-सी थैली निकाली जो बार-बार काम में आने से मैली और चिकनी पड़ गई थी। उसने जब थैली खोली तो कालू की आँखें निकल-सी पड़ीं क्योंकि वह ऊपर तक चमकते रुपयों से भरी थी।

महाजन ने लापरवाही के साथ मुट्ठी भर रुपयों को निकाल, हर रुपए को चौकोर पत्थर पर, यह जताने के लिए कि वह खरे हैं, बजाया और फिर कालू के हाथ पर, जिसने उम्र में कभी इतने रुपए नहीं छुए थे, एक-एक कर दस गिना दिए।

कालू ने रुपए होशियारी के साथ अपनी पगड़ी में लगा लिए। उसने बाजार में यह भी देखा कि उसे क्या क्या मोल लेना है। वहाँ पर साग-सब्जी, फल व मिठाई की दूकानें थीं। बाजारों में हर तरह की रंग-बिरंगी साड़ियाँ थीं। मीलों को घेर लें इतनी पगड़ियाँ और कपड़े थे। काँच के गहनों की चमक ने भी उसकी आँखों को चकाचौंध कर दिया पर उसने इन चीजों के देखने में वक्त बरबाद नहीं किया और ब... उसने मिठाई और सन्तरों की ओर देख... उसने मकई का आटा, चावल और ... खरीदा। उसके भाग्य से सामने ही ... फटे-फूटे शलजम भी मिल गए। ... निकलती लहरों और महक ने उसका ... खुश कर दिया।

कालू घर की ओर चल पड़ा। ... क़रीब-करीब दो रुपये खर्च कर डाले ... घर पहुचते ही उसने बाकी रुपए चूल्हे ... पास चुपचाप गाड़ दिए और ज... जरूरत पड़ी वहीं से निकाल लिए। ... धीरे वह खजाना घटने लगा क्योंकि ... परिवार अभी तक टिड्डी-दल की मा... नहीं उबर सका था। कालू को खाने ... सामान बराबर मोल लेना पड़ता था।

फिर भी उनके दिन फिरे। एक ... छोटा भाई बाघ के पैरों के निशान ... चारागाह की तलाश में एक लठिया ... सहारे बढ़ा जा रहा था। हालांकि ... सुरक्षित सरकारी जंगल में जाने का ... नहीं था। कहीं महकमा जंगलात ... अधिकारी जान जाते तो बैल बन्द ... मवेशीखाने में और लड़का जेल ... उसने यह बात जब कालू को बता... उसने फौरन कहा 'वहाँ बाघ का शि... छिपा होगा। मैं जाकर तलाश करूँगा ...

वह बताए हुए स्थान की ओर नि... के सहारे-सहारे चल दिया। नाले के ... बड़ी घास में, जहाँ उसने एक बार बा... आवाज-दहाड़ भी सुनी थी, वह च... रहा था। उसे बड़ी आशा थी। ...

में होकर एक जंगल की ओर गई थी। में वह दो मील दूर गया। चिड़ियों बन्दरों की ओर भी वह खबर-खोज की आशा से ध्यानपूर्वक देखता रहा। चाहता था कि किसी प्रकार यह मालूम जाए कि बाघ कहाँ रहता है।

उसकी नजर अचानक एक कौवे पर जो अपनी नजरें एक जगह पर गडाए था। वह जगह बड़ी पोशीदा थी काँटों के बीच अधखाया जंगली सुअर हुआ पड़ा था। उसके छिपाव से ही लगता था कि बाघ अभी यहाँ लौटकर ने के इरादे से गया है और तभी कौवों हौसला वहाँ जाने का नहीं पड रहा था। परन्तु कालू ने कमर से तेज चाकू निकाला और एक बडा-सा टुकड़ा उसके कंधे के पास से काट लिया। उस रात उन्होंने खूब भरपेट खाया। इतना भोजन उन्होंने कई महीनों से नहीं किया था। आज की रात शान्त घाटी के ऊपर चमकते चाँदनी में उन्हें मिठास और सुहावनापन लगा।

हालात बदल रहे थे। बरसात आई। फसल हुई। शहद की मक्खियों का एक छत्ता भी हाथ आ गया। कालू हमेशा उन दिनों में भी, जब परिवार भूखा मर रहा था, कुछ पैसे बचाकर अपने खज़ाने में जमा करता रहा। उसे आशा बँध चली कि जल्दी ही वह कर्ज चुकाकर दस्तावेज वापस ले लेगा।

पर वह दिन बहुत जल्द नहीं आया। कालू को यह न मालूम था कि पन्द्रह रुपये बचाने के लिए इतनी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। बहुत से लोग तो मूलधन तक नहीं जोड़ पाते और उसे चुकाने के लिए और कर्ज बराबर लेते रहते हैं और फिर सारी उम्र महाजन के कर्जदार बने रहते हैं।

किन्तु कालू ने संकल्प कर लिया था कि वह ऐसा नहीं होने देगा। वह सारी रक़म जरूर चुका लेगा। उसके खेत उसके परिवार के लिए ही पूरे न थे फिर महाजन को उनसे क्या दे सकेगा ?

वह भी वक्त आया जब चौदह रुपये जुड़

गए और तब उसने सब माई बहनोंको इकट्ठा कर कहा—महाजन से वेबाक़ होने के लिए सिर्फ एक रुपये की कसर है। इसलिए जब तक वह न पूरा होगा, हम बाहर से साग-सब्जी नहीं खरीदेंगे।

माई-बहनों ने उसकी बात सुनी किन्तु कुछ बोले नहीं। उन्हें इतनी समझ ही न थी कि बनिए से वेबाक़ होना क्यों जरूरी है? पर उन्होंने कालू की बात उसी तरह मान ली जैसे हमेशा सारी बातें मानते आए थे। उस दिन से वह रूखी-सूखी रोटी खाने लगे। कभी कोई शिकायत नहीं की।

अगले हफ्तों में उन्हें कोई खुशखबरी नहीं मिली और न कोई बुरी खबर या तकलीफ ही मिली। रक़म जुड़नी गई और एक दिन कालू रुपए ले और बड़ी-सी लाठी सम्हाल, ताकि रास्ते में कोई वारदात न हो जाए, महाजन के पास चल दिया। गांव में रेजगारी देकर उसने रुपये और ... एककर पन्द्रह रुपये महाजन के ... टनाटन बजा दिए।

महाजन ने सुझाया, 'ब्याज मर रहे ... इतना ही बहुत है अभी मूल की क्या ... पड़ी है?'

'ना बाबा! अभी सम्हालो अपनी ... रक़म। मैं अगले साल सुस्त में ... क्यों मरूँ?'

'अरे माई पाँच रुपये में पूरे ... साल भर तक तुम्हारे रहेंगे।'

कालू ने कहा—'ठीक है पर अग ... तुमसे अभी उबर जाऊँ तो फिर ... के पैसे मुफ्त में ही बता सकूंगा।'

महाजन आगे न बोल सका। ... तरह कालू ने रुपया चुकाया दस्तावेज ... लिया और आजाद होकर घर की ओर ... पड़ा। वह अब शान से घर की ओर ... जिन्दगी की ओर बढ़ा जा रहा था।

जानकारी

एक औरत: क्या तुम्हारे पति घुड़दौड़ के बारे में कुछ जानते हैं?

दूसरी औरत: शुरू से आखीर तक! घुड़दौड़ के एक दिन पहले ... उन्हें पता रहता है कि कौन घोड़ा जीतेगा ... घुड़दौड़ के दूसरे दिन उन्हें पूरी जानकारी रहती है ... वह क्यों नहीं जीता!

—'इंग्लिश डाईजेस्ट'

खनिज तेल की तलाश

—केशवदेव मालवीय

खनिज तेल का विश्व की अर्थव्यवस्था और राजनीति में बड़ा महत्त्व है। भारत में भी हाल ही में तेल की खोज की कोशिशें जारी हैं। ज्वालामुखी, खम्भात और बड़ौदा आदि में तेल की खोज होने के कारण भारत एक नये सुन्दर भविष्य की कल्पना भी कर सकता है। आकाशवाणी नयी दिल्ली से प्रसारित इस भाषण में भारत सरकार के खान और तेल मंत्री ने खनिज तेल की उत्पत्ति और खोज की अद्भुत कहानी बड़े रोचक शब्दों में प्रस्तुत की, जिसका सारांश यह है।

तेल दो तरह का होता है—एक तो खाने का, जैसे सरसों, जैतून, नारियल, मछली आदि का, जो मौजूदा वनस्पतियों और जानवरों से मिलता है, और दूसरा वह, जो भूगर्भ में करोड़ों वर्ष पहले मरे हुए जानवरों और पेड़ पौधों के दबकर सड़ने से बना था। संसार के सभी महाद्वीपों में खोजने से खनिज तेल मिल गया है। इस तरह भूगर्भ में हजारों फीट नीचे दबे हुए तेल को ही हम खनिज तेल कहते हैं।

खनिज तेल की तलाश से ज्यादा रुचिपूर्ण या रहस्यमयी कहानी शायद ही कोई दूसरी हो। लोग तो साधारणतया यही समझते हैं कि...यह खनिज तेल, जिसमें से मिट्टी का तेल, पैट्रोल, डीजल तैल, सड़क बनाने का कोलतार और मोबिल आयल आदि निकलता है—बहुत आसानी से जमीन में कूएं खोदकर निकाला जा सकता है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। तेल की तलाश में बहुत ज्यादा कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। तलाश में ही अरबों रुपये का खर्च करने के बाद भी तेल मिलने के मौके कम होते हैं। यह भी असम्भव है कि जमीन के ऊपर खड़े होकर ही कोई बता दे कि भूतल में तेल कहाँ छिपा होगा। पर तेल तलाश करने का विज्ञान अब बहुत आगे बढ़ गया है और हम यह जानते हैं कि अकसर भूतल में एक मील से तीन मील तक नीचे पहाड़ों की तलहटियों और गुफाओं के अन्दर फैल कर तेल बालू में भरा पड़ा मिलता है।

यह तो ठीक तरह मालूम नहीं है कि करोड़ों वर्ष पहले यह तेल कैसे बना होगा, पर अधिकांश वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि एक करोड़ वर्ष पहले से लेकर लगभग १० करोड़ वर्ष पहले तक की अवधि में उस काल के पेड़, पल्लव और जन्तुओं के समुद्र के किनारे दब जाने और सड़ने से ही तेल बना होगा। छिछले समुद्रों में अगाध जीव-जन्तुओं का संसार जब दब गया और दबा ही पड़ा रहा तब पहाड़ों से बहकर आया मलवा उसको और भी दबाता रहा, जिससे

वह समुद्र पर गया और करोड़ों वर्ष में मलबे का पहाड़ बनता गया जो अब पत्थर की चट्टानों की तरह हमें दिखाई पड़ता है या ज़मीन के नीचे दबा है। पहाड़ों से बहकर मैदानों में मिट्टी जमा होने की क्रिया आदि से आज तक बराबर जारी है। इन्हीं भूतल की तलहटियों में हज़ारों फ़ीट नीचे, चूने या बालू की पहाड़वाली घाटियों में जीव

भारत में हर साल लगभग ५० लाख टन पेट्रोल की खपत होती है। इसमें से लगभग ४ लाख टन, पेट्रोल—डिगबोई (आसाम) के तेल के कुओं से निकलता है। देश की पेट्रोल की खपत को देखते हुए यह खपत हर साल करीब १० प्रतिशत बढ़ेगी। इस हिसाब से दूसरी आयोजना के अंत तक पेट्रोल की सालाना खपत ७० लाख टन और तीसरी आयोजना के अंत तक १ करोड़ ४० लाख टन होगी।

जन्तुओं के सड़ने से बना द्रव पदार्थ खनिज तेल बालू के कणों में भरा पड़ा रहता है, जैसे शहद की मक्खी के छत्ते में शहद भरा रहता है। भूतल में तेल की कोई नदी या झील नहीं होती। छिछले समुद्र के पटने के बाद बालू के कणों में खनिज तेल बून्द-बून्द कर इकट्ठा होता है। बालू के कण ऊपर

के दबाव से पत्थर की चट्टान के समान क[illegible] कड़े हो जाते हैं। यदि ऊपर से दबा[illegible] पड़े तो तेल से भरे हुए यहीं बालू के [illegible] मुलायम भी बने रहते हैं, जिन्हें अंग्रेज़ी [illegible] "अनकनसौलीडेटेड सैंड" भी कहते [illegible] तेल की बून्दें अत्यन्त सूक्ष्म बालू के [illegible] में जकड़ी रहती हैं। तेलवाली पर्त[illegible] बालू की चट्टानों के ऊपर हज़ारों फ़ीट [illegible] किस्म की चिकनी मिट्टी का मलबा [illegible] जाने की वजह से तेल अपनी ज[illegible] ही पड़ा रहता है और ऊपर नहीं [illegible] लेकिन तेल पानी से हलका होत[illegible] इसलिए नीचे से ऊपर आने के लि[illegible] तो खोजता ही है। ये हज़ारों फ़ीट चि[illegible] मिट्टी की तहें तेल को दबाये रखने में [illegible] उसी तरह काम देती हैं, जैसे सोडा [illegible] की बोतल का गोलीवाला कॉर्क बोत[illegible] अन्दर के सोडा-पानी को दबाये रहता [illegible] जितनी ही मोटी चिकनी मिट्टीवाली [illegible] सतह से नीचे तक तेल के बालूदार च[illegible] को दबाये रहती हैं, उतनी ही [illegible] सम्भावना तेल के पाने की उस जगह [illegible] करती है।

समुद्री पानी से भी तेल का [illegible] सम्बन्ध है चूँकि पहले-पहल [illegible] छिछले समुद्र में ही पहाड़ों और दरि[illegible] से मलबा आकर लाशों को दबाता [illegible] सड़ाता है। अतः भूतत्त्व-वेत्ताओं का [illegible] है कि करोड़ों वर्ष पहले जहाँ छिछला [illegible] या वहाँ पर तेल मिलता है, दूसरी [illegible] नहीं। यह समुद्र धीरे-धीरे पटता [illegible] पहाड़ से आया हुआ मलबा उसको [illegible]

डिग्बोई रिफाइनरी, असम ऑइल कम्पनी

यह चित्र पूरी तौर पर चलती हुई इस रिफाइनरी के एक हिस्से का है, जिसमें तेल साफ करने के गैसोलीन प्लान्ट और स्टोरेज टैंक दिखाई दे रहे हैं। यहां औसतन ३,२०,००० गैलन क्रूड ऑइल साफ किया जाता है जिससे पैट्रोलियम, कैरोसिन, डीजेल ऑइल, जलाने के तेल, लूब्रीकैन्ट, बिटूमैन, मोम, कोक आदि बहुत-सी खनिज तेल में मिली हुई चीजें निकलती हैं। १९५८ में, असम आइल कम्पनी ने ११,४५,००,००० गैलन तेल बनाया। इतने पिछले साठ सालों में इतना कभी नहीं
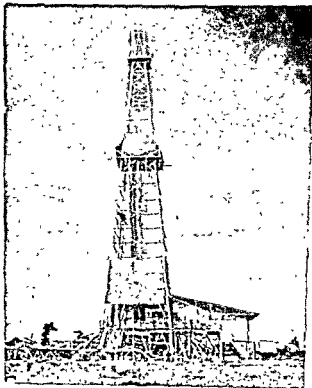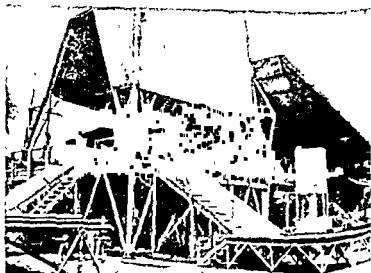
अन्दाज़ है कि देश में १९६१ तक लगभग ३० लाख टन क्रूड आयल तैयार होने लगेगा। इसमें वह तेल भी शामिल है, जो आसाम के नाहोर कटिया, हुगरीजन और मोरान के तेल के कुओं से निकलेगा।

नीचे ढकेलता रहता है और दो चार करोड़ वर्ष में तो समुद्र पहाड़ के मलवों से ढकेल-कर मीलों नीचे चला जाता है।

उदाहरणार्थ, खम्भात की खाडी का समुद्र, ं जो आज कैम्बे के पास बहुत छिछली हराई में है। अनुमान है कि किसी समय ,०-७० मील ऊपर अहमदाबाद के उत्तर ं यह समुद्र रहा होगा। नदियों के लवे इस छिछले समुद्र को करोड़ों र्ष तक पाटा तथा वहाँ के जीव जन्तुओं को दबाया और इस तरह समुद्र के किनारे को भी नीचे ठेल दिया। उन बलुही चट्टानों की और तटे पर तहों उन जीव जन्तुओं और पेड़ पत्तों की जम गयीं। इसी तरह लगभग छः सात हजार फीट मलवा खम्भात की खाड़ी के ऊपर सैकड़ो वर्गमील में जमा जिसके नीचे आज तेल पाने की सम्भावना हुई है।

दुनिया का अधिकांश तेल इसी तरह प्राचीन काल के छिछले समुद्री किनारों में बना है। इस तरह के स्थानों को 'कॉन्टी-नेन्टल शैल्फ' के क्षेत्र कहते हैं। भूतत्व-वेत्ताओं का अनुमान है कि आसाम से कश्मीर तक फैले हुए हिमालय के दक्षिण और विन्ध्यगिरि के उत्तरी क्षेत्र में करोड़ों वर्ष पहले समुद्र बहता था और इस समुद्र के किनारे उसी काल के जीव-जन्तु हिमा-लय और विन्ध्य से लाये हुए मलवों से दबकर तेल में परिवर्तित हो गये हैं। हिमालय के मलवा ने इस छिछले सागर को पाटा एवं समुद्र पीछे हटता गया और साथ ही भूगर्भ के अन्दर भी ऐसे परिवर्तन होते गये, जिनसे समुद्र अपनी जगह छोड़कर आज की जगह पर पहुँच गया। ये परिवर्तन बड़े-बड़े भूकम्पों और पाताल की उथल-पुथल से हुआ करते थे। आज भी खम्भात की खाड़ी भारत-वर्ष के पश्चिम के समुद्री किनारों पर नीचे हटती जाती है। करोड़ों वर्ष बाद हमारे देश का आज का किनारा और बढ़ जायगा और मीलों जमीन समुद्र हटने के कारण

अनुमान है कि पंजाब, गंगा की घाटी, आसाम, पश्चिम बंगाल, गुजरात, कच्छ, राजस्थान और पूर्वी तथा, पश्चिम किनारों पर लगभग ४ लाख वर्गमील क्षेत्र में तेल मिल सकेगा। यदि देश की तेल की आवश्यकता को ही पूरा न किया गया तो विदेशों से तेल मंगाने के लिए १९७६ तक लगभग ५ अरब रु० खर्च होगा।

आनेवाली पीढ़ियों को मिल जायगी। अतीत काल से जीव-जन्तु नदियों और पहाड़ों का मलवा बहकर समुद्र तट को पाटते जाते हैं और इसी पटी हुई जमीन के नीचे की तलहटियों में वनस्पति जीव-जन्तु सड़कर तेल बनाते हैं।

तेल की खोज के तीन तरीके

(१) भूतत्ववेत्ता अपने औजारों और भूमि-निरीक्षण यंत्रों द्वारा यह बताते हैं कि कहाँ छिछले समुद्रों में ऊपर से मलवे आकर तह पर तह बनाते गये हैं।

(२) वे आजकल की सतहों के नीचे-वाली इन तहों की गहराइयाँ मालूम करते हैं और यह भी कि अतीत में तेल बनकर कहीं दबा है या नहीं। भूतत्ववेत्ता ऊपर की चिकनी मिट्टी की तहों से सुरक्षित तेल के खजानों की गहराई और जगह पकड़ने के लिए कई प्रकार के यन्त्रों की मदद से और भूगर्भ में बारूद का धमाका देकर देखते हैं कि वह शब्द नीचे कहाँ तक गया और पथरीली चट्टानों से टकर खाकर कहाँ से वापिस आया। इस तरह आवाज की रफ्तार से नीचे पड़े हुए तेल और बालू की चट्टानों की अंदाजन गहराई नापी जाती है।

(३) तेल तलाश करने का आखिरी और निश्चित तरीका जमीन में कुआ खोदने का है। ऊपर बताये गये तरीकों से भूतत्ववेत्ता (जियोलोजिस्ट) इंजीनियरों को जगह बताते हैं, और गहरा कुआ खोदनेवाले इंजीनियर ५, १० या १५ हजार फीट की गहराई तक इन तेल-बालू की चट्टानों को ढूंढने के लिए कुए खो[दते] हैं। ऐसे कुए खोदने में बहुत रुपया ख[र्च होता] है। कभी-कभी तो पहले कुए में ही [एक-] दो करोड़ रुपया तक खर्च हो जाता है [और] एक या दो साल का समय भी लग [जाता] है। फिर दूसरे कुए में इतना ख[र्च] नहीं होता पर जैसी चट्टानें होती हैं, [उसी] तरह का खर्च होता है। कभी-कभी कुए खोदने पर भी हजारों फीट [तक] ऐसे बालू के पहाड़ नहीं मिलते, जिन[में तेल] दबा पड़ा रहता है। अतः कुआ [खोदने] पर जितना रुपया खर्च होता है, वह बेकार जाता है। पहले कुए को खो[दने के] बाद तेल-दर्शन हो जाने पर भी बहु[त तेल] नहीं निकलता तो फिर कई कुए [खोदने] पर वह जगह मिल पाती है, जहाँ [काफी] मात्रा में तेल मिलता है। जबतक इत[नी जगह] न मिले कि खर्च के रुपये वसूल हो जा[यें और] उसके दस-बीस-गुने ज्यादा मूल्य का [तेल] मिल जाय, बराबर प्रयत्न होता [रहता है।] अभी तक मानवीय विज्ञान तेल [की] तलाश की विद्या को इतना सफल न[हीं बना] सका है कि तेल के कुए बेकार [न] जाएं और पहले ही प्रयत्न में नीचे [दबा] हुआ तेल मिल जाय।

यह बड़े हर्ष की बात है कि [कै]ज्वालामुखी में पहले ही कुएं में [तेल का] प्रमाण मिल गया। अब यह [जानने के] लिए काफी कुएं खोदने पड़ेंगे कि [इस क्षेत्र] में तेल काफी फैलाव में या नहीं [इसमें] एक या दो वर्ष और लग सकते हैं [तब] तेल की मात्रा का ठीक-ठीक अंदाज

पीड़ित पल

एक पल ठहर दुआर पर
डाल एक नज़र गुलाब पर
मैं चला तो आँख रो गई।
मैं रुका तो आरती उदास हो गई।

आँख देखती रही थके हुए नयन
मन बटोरता रहा बिके हुए सदन
पीर ढूंढ़ती रही लुटी हुई गली
साँस फूंकती रही बुझी हुई अगन

प्रीत के चरण पखार कर
आँख का नशा उतार कर
मैं चला तो राह खो गई
मैं रुका तो जिन्दगी उदास हो गई।

इस तरफ चढ़ाव है, उस तरफ बहाव
और वक्त का मजाक उम्र का ढलाव
राह नहीं सूझती न बात बूझती
इस तरफ झुकाव है उस तरफ लगाव

नींद से नयन उधार कर
पीर का दिया उजार कर
मैं चला तो रात हो गई
मैं रुका तो चाँदनी उदास हो गई।

ज्योतिप्रकाश सक्सेना

कौन है न ?

—अरे आप रामचरित्तर को भी जानती हैं ?

राजू की चमकीली काली आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं।

युवती जरा हँसी।

—मैं और भी बहुत-सी बातें जानती हूँ। तुम्हारे घर में मुन्नी किसका नाम है ?

—आपने मुन्नी को देखा है ?

अब तो राजू टॉफी के बारे में सम्पूर्णतः भूल गया।

—मैं राजू, फिर छुट्टन—सबसे छोटी है मुन्नी। वह तो अभी सिर्फ छः सात महीने की ही है—अभी तो ठीक से बैठ भी नहीं सकती। आपने मुन्नी को कहाँ देखा ?

युवती ने फौरन ही कोई जवाब नहीं दिया। स्निग्ध कौतुकभरी आँखों से वह कुछ देर तक राजू को देखती रही। बाहर से एक माल-गाड़ी की शन्टिंग की आवाज सुनाई दी। लेकिन सेठ साहब तक अभी खर्राटे भर रहे थे।

—मालूम होता है जैसे आप सब कुछ जानती हैं। शायद आप हमारे घर किसी दिन आयी होंगी ?

युवती तब भी चुप रही। उसकी आँखों में कौतुक की आभा धीरे-धीरे गायब हो गयी।

—तुम्हारी जीजी कहाँ रहती है, राजू ?

—जीजी ? राजू सोच में पड़ गया।

—जीजी तो कोई नहीं है। हाँ, छोटे बाबू के मकान में इन्दु जीजी रहती है। दिन-रात अपनी मा से झगड़ती रहती लेकिन उसकी तो कोई जीजी नहीं है !

—शायद तुम्हारी कोई जीजी नहीं

—नहीं है। मैं ही तो सबसे बड़ा

—तुम नहीं जानते।

—युवती हँसी। पर इस बार राजू यह हँसी कुछ विचित्र प्रकार की लगी

—तुम्हारी एक जीजी थी।

—थी क्या ? राजू के लिए यह समझा हो गयी।

—मैंने तो उन्हें कभी नहीं देख

—तुम भला कैसे देखते ! तब तुम भी नहीं हुए थे। एक दिन वह तुम्हारे के साथ मेले में गयी थी, कांच की चू और मिट्टी के खिलौने खरीदने।

—'हाँ, मैं जानता हूँ। हाजीगं बड़ा भारी मेला लगता है।

—ठीक ठीक, हाजीगंज के मेले वहाँ एक बहुत बड़ा चरख लगा था।

—मैं भी उस चरख में बैठा हूँ। एकाएक खुश हो हाथ नचाते हुए बोला—चरख में बड़ा मजा आता उतर जाने के बाद भी कुछ देर तक लगता है जैसे दुनियाँ घूम रही है।

—हाँ, हाँ ऐसा ही लगता है। युवती राजू के और भी पास सरक ध धीमे स्वर में बोली—तुम्हारी जीजी भ चरख में चढ़ गयी। सब कुछ भूल और बहुत देर तक झूलती रही। औ झूलने के बाद जब नीचे उतरी, तब पापा का कहीं पता न था। बहुत लेकिन नहीं मिले, कभी नहीं मिले !

—अरे मेले में खो गयीं ? राजू चौंक उठा।

—हाँ, बिछुड गयीं।

—फिर अपने घर कैसे पहुँची।

—घर कहाँ पहुँची। फिर वह कभी लौटकर नहीं आयी।

—घर नहीं पहुँची ? डर से राजू के सांस ही मानों रुक गये :

—तो फिर कहाँ गयीं ? बच्चों को पकड़नेवाले चोर उठा ले गये ?

—नहीं, औरतों को पकडनेवाले चोर ! हाँ, वे ही उसे उठा ले गये ! एकाएक युवती की आँखें सजल हो गयीं।

असीम भय से राजू की आँखें फट गयीं।

—अरे बाबा, कैसी आफत ! फिर औरतों पकड़नेवाले चोरों ने क्या किया ? जीजी को कहाँ ले गये ?

—इसका भी क्या कोई ठीक-ठिकाना है। कितने घने वन-जङ्गल, नदी-नाले, पहाड़ और घाटियाँ, शेर-चीते और भालू-अंधकार-घना अंधकार। चारों ओर सिर्फ चीत्कार, छीना-झपटी, ललचायी आँखें और लपलपाती जीभें। सबके सब उसे नोंच-नोचकर खा जाना चाहते थे।

—खा तो नहीं गये ?

राजू की धड़कन जोर से चलने लगी।

—एक प्रकार से खा ही गये, और क्या !—फिर कुछ देर तक मग्न दृष्टि से युवती देखती रही। और बोली :—

'उसके शरीर पर बहुत से नाखूनों की खरोंचें लगीं, दांतों से काटने के अनेक चिन्ह—फिर धीरे-धीरे वह उस वन-जङ्गल की अभ्यस्त हो गयी। और तब उसकी आँखों की ओर देखकर शेर, चीते और भालू डरने लगे—एक-एक कर उसके पैरों पर आकर लोटने लगे। अब लोग उसे 'जङ्गल की रानी' कहते हैं।'

—सच ?

—सच।

राजू कुछ देर तक विह्वल रहा। फिर बोला—धत् ! आप खाली कहानी बनाकर सुना रही हैं।

—तुम अभी बच्चे हो न, इसलिए विश्वास नहीं करते। अच्छा, मान लो—अगर कहूँ, मैं ही तुम्हारी जीजी हूँ तो फिर ?

—आप ! आप कैसी बातें करती हैं। अभी कहा, मेरी जीजी जङ्गल में हैं, वे जङ्गल की रानी हैं। और अब कहती हैं कि आप ही मेरी जीजी हैं ?

—जीजी होने में बुराई क्या ? अगर कोशिश की जाय तो क्या जंगल से बाहर नहीं निकाला जा सकता ? युवती की आवाज जैसे कुछ भारी हो गयी।

—अच्छा राजू, तुम्हारे हाजीगंज में टेसू के पेड नहीं हैं ?

कहाँ से कौन सी बात ? स्थिर, शान्त, शुकदेव राजू, थोड़ी-ही देर में वह परेशान हो गया।

—हैं क्यों नहीं बहुत हैं।

—यदि मैं तुम्हारी जीजी बनकर चलूं तो रोज सुबह तुम्हारे लिए टेसू के फूलों की माला गूँथ दूंगी। तुम्हारे गांव के

पास नदी है न ? उस नदी में ही मैं तुम्हें तैरना सिखाऊँगी। गरमी में जब आम पकेंगे तो पेड़ पर चढ़कर मैं तुम्हें मीठे-मीठे आम खिलाऊँगी। जब बागवाला पकड़ने दौड़ेगा तो हम दोनों भागकर कहीं छिप जायेंगे। फिर, कभी-कभी हमलोग पिकनिक करने चला करेंगे। अन्त में जब एक दिन मेरी शादी होगी, रोशनी होगी, बाजे बजेंगे तब लाल चूनरी ओढ़कर रोते रोते मैं किसी और की बगल में जाकर बैठ जाऊँगी—और जाने से पहले तुम्हें अपने कलेजे से लगाकर इस तरह चूम लूँगी।

राजू की खिलौने जैसी काली-काली आँखों में इन्द्र धनुष चमक रहा है। यह तो कहानी नहीं है। यह सब तो हो सकता है—यदि उसकी जीजी होती तो यह सब अभी फौरन हो सकता है। इन्दु जीजी की अपेक्षा बहुत-बहुत सुन्दर हो सकती है उसकी जीजी। और—

लेकिन आधे रास्ते में ही राजू की विचारधारा रुक गयी। वास्तव में युवती ने उसे अपने कलेजे से चिपटा रखा था। और—और सबसे ज्यादा आश्चर्य यह है कि उसकी आँखों से टप टप आँसू राजू के गाल पर गिर रहे थे।

—क्या, ट्रेन आ रही है।—एक मोटी और फटी-सी आवाज से एकाएक ट्रेन का स्टेशन का वेटिंगरूम गूँज उठा। नदी किनारे के आम के पेड़ों से बहुत दूर, चौंककर युवती खिसक आयी। बाहर, ट्रेन आने का घंटा बज रहा था—हड़बड़ाते हुए सेठ भागकर उठ बैठे थे।

भीतर झांककर सेठ ने कहा—तुमने फि[र] घूँघट हटा दिया, क्या ! तुम क्या चा[हती] हो, तुम्हारे प्रशंसक और प्रेमी यहाँ भी तु[म्हें] चारों ओर से घेर लें ? फिर यहाँ भी त[ुम] 'सीन क्रियेट' हो ? साथ ही साथ युवती ने आध गज लम्बे घूँघट से अपना मुँह ढ[ँक] लिया। सेठ जी चिल्लाये, 'कुली-कुली'—

तीन-चार कुली दौड़ते हुए वेटिंगरू[म में] घुसे। सामान उठाने के लिये आप[स में] खींचातानी करने लगे। अपने ढंग से [किसी] तरह ट्रेन भी आकर रुकी।

इसके पहले ही आये थे राजू के [पिता] बजरंग बाबू। लेकिन भीतर घुसने [की] हिम्मत नहीं हुई। बाहर अपनी आँखें [बार-]बार मलते हुए सोच रहे थे, कहीं सप[ना तो] नहीं देख रहे हैं। अब उत्तेजित भाव [से] राजू के पास आकर बैठ गये।

हांफते-हांफते बोले—इसी[के पास] क्या बैठी हुई थी। इसे अगर पहले पह[चान] लेता ! इसको तुम जानते हो, राजू ! ... फिल्म स्टार मिस रूपा—सारे हिन्दुस्तान [में] उसका नाम है। 'मन मन्दिर' ... 'दिलदार निहार के' में मिस रूपा ने ... लाजवाब एक्टिंग किया है कि सिनेमा ... के बाद तीन रात तक मैं सो नहीं [सका] था। इस-बार गलती हो गयी। यदि ... उसके भीतर घुस आता और ... लेता !—कहते कहते बजरंग बाबू का ... एक दम ठंडा पड़ गया। उन्हें ... कि अपने दस वर्ष के बच्चे राजू से ... बातें कर रहे हैं।

मसल कर लेकिन कुछ चिड़चिड़े स्वर में बजरंग बाबू ने कहा—तुझे कलेजे से लगाकर बहुत प्यार कर रही थी न, क्यों ? जैसे तुझे तेरी मा प्यार कर रही हो, है न ?

—मा क्यों ? वह तो मेरी जीजी थी। वही जीजी, जो हाजीगंज के मेले में—प्रतिवाद करते हुए राजू कहनेवाला था। यकायक अकारण क्रोध में बजरंग बाबू फट पड़े। क्षण भर में ही जैसे उनका मुंह विकृत और विचित्र हो गया। राजू की बात को बीच में ही काट कर कर दांत मींचते हुए बोले—जीजी ! ऐसी ऐरी-गैरी लड़की भला तेरी जीजी क्यों होने लगी ! ऐसी औरतों का तो मुंह देखना भी पाप है। ले, अब उठ, आगरे की गाड़ी प्लेटफार्म पर लग गयी है।

लेकिन इतना कहने से ही तो अन्तरस्थ विवेक की अदालत में छुटकारा नहीं मिला उन्हें। मन ही मन वे अचकचा उठे।

बजरंग बाबू के मनोगगन में आज से सात बरस पहले की वह घटना कौंध गयी।

हाल ही गले-पड़ी अपनी दूर के रिश्ते की अनाथ भांजी सरला को लेकर वे मेले में गये थे। पत्नी की कड़ी ताक़ीद थी कि उसे ठिकाने लगाकर ही घर वापस लौटें ! नहीं तो उसके शादी-ब्याह का बन्ध करने में सारे गहने और जमा-जता ठिकाने लग जायगी। अभी अपने ही बालबच्चे इतने छोटे हैं, दूसरों का भार कहाँ तक ढोयें। और सदा से ही स्त्री के आधीन बजरंग बाबू की इतनी हिम्मत न पड़ी कि विरोध करते और मेले में पहुँच कर जब सरला चरख में दूसरी औरतों के झूलने बैठ गयी तो वह चुपके से नाचवाले खेमे की ओर सरक गये और वहाँ से सीधे नौटंकी स्वांग के तम्बू में। सारी रात नौटंकी का नाच देखकर जब घर लौटे तो उनके उतरे चेहरे से सरला के खो जाने का शोक ही तो जाहिर हो रहा था।

घर लौटकर जब बजरंग बाबू की पत्नी ने ये सब बातें सुनीं तो दोनों में काफी रात तक इस बात पर बहस हुई कि रूपा (सरला !) का पता लगाकर एक फिल्म-तारिका का अभिभावक बना जाय या नहीं !

बजरंग बाबू की पत्नी ने अब की बार भी बुद्धिमानी दिखाई। उसका प्रच्छन्न मत था कि फिल्म तारिकाओं के साथ मिलना-जुलना सम्भव हो गया तो फिर बजरंग बाबू की 'औरत-परस्ती' न जाने क्या क्या करिश्मे और दिखाये। इसलिए "सरला के साथ अब रिश्ता जोड़ना ठीक नहीं" यही कहकर उसने बहस बन्द कर दी। बजरंगबाबू रात भर स्वप्न देखते रहे, करवटें बदलते रहे। *

फिर ख्याल आया कि 'आज क्या है?' यह तो भाड़ में जाये मगर कोई न कोई तोहफा तो ज़रूर देना चाहिये! मगर क्या दें कुछ अवसर का भी तो ज्ञान हो! अहा! यह बात बनी! अगर चुपके से श्रीमती जी के हाथ में दस का एक नोट थमा दिया जाय—कुछ इस तरह कि हम जानते हैं कि आज क्या है इस लिए यह नक़द रक़म भेंट की जा रही है कि अपनी मन पसंद कोई चीज़ खरीद लीजिये—फिर तो उन से चुप न रहा जायेगा!

शाम को चाय की चुस्कियाँ लेते हुये हमने हल्की फुल्की इधर उधर की हांकनी शुरू की। और धीरे धीरे अपनी चाल को शब्दों में ढालने लगे। हमारी बात चीत का तोड़ मोड़ ऐसा था कि वाह वा! मगर केवल दस का नोट थमाने तक! उस के बाद जो हुआ वह कहते ज़रा शर्म आती है मगर अब छिपाना क्या!—नोट लेकर उन्हों ने 'धन्यवाद' कुछ इस प्रकार से कहा कि फूलों की दीवार फटने लगी, झरोखा खुला और श्रीमती जी के मुखमंडल पर मुस्कराहट की चांदनी छिटकने लगी "दोपहर के खाने की आप ने बहुत प्रशंसा की थी, यह शायद उसी का इनाम है!"

चोरी कायें तो लड्डू नहीं। होंटों पर जीभ फेरते हुये हमने कहा, "मगर...वह...आज तो... आज तो कोई खास दिन था ना! इसी लिए तो 'डालडा' का बड़ा डिब्बा आया है!"

"ओह!" चांदनी खिलखिला उठी, "अरे वह! वह 'डालडा' का बड़ा डिब्बा तो मैं इस लिए लाई हूँ कि अब सदा सभी खाने इसी में पकाऊँगी। पड़ोसिन मुझे बता रही थी कि 'डालडा' केवल कुछ चीज़ों ही के लिए नहीं बल्कि हर पकवान के लिए अच्छा है। और आज दोपहर का खाना आप को पसंद भी बहुत आया जो मैं ने सारा 'डालडा' ही में पकाया था।" और हमें चिढ़ाने के लिए हमारे मुँह के पास वे दस का नोट लहराने लगीं।

नोट की ओर ध्यान दिये बग़ैर और दिल पर पत्थर रख कर हम ने कहा, "हाँ, खाना तो बहुत स्वादिष्ट था।"

"वह इस लिए कि 'डालडा' एक बड़ी उत्तम चिकनाई है जो हर खाने के असली स्वाद को उजागर करती है। इस के मुहरबंद डिब्बों के कारण छुआछात या गंदगी का भी डर नहीं रहता। और 'डालडा' में विटामिन ए और डी मिलाये जाते हैं जो स्वास्थ्यकारक भी हैं और शक्तिदायक भी! तंदुरुस्ती और ताक़त की आवश्यकता तो हर रोज़ है केवल त्योहारों के दिन ही तो नहीं!"

थोड़ी देर के बाद वे फिर बोलीं, "पहले ख्याल था कि पल्लू में गांठ दे लूँगी कि आज महीने भर की चीज़ें खरीदनी हैं, मगर फिर सोचा कैलण्डर पर निशान लगा हूँ, सामने रहेगा— मगर" वे नोट सहलाते और कैलण्डर को प्यार से देखते हुये बोलीं "मगर यह न पता था कि इसे तिलक लगाने का ऐसा बढ़िया फल मिलेगा।"

एक आत्मिक सत्य

सब कुछ बाहर ही बाहर रहने दो।
मत छुओ इन फूलों को,
मत पियो इस रस - गंध को,
मत कुछ कहो इन परदेसी बादलों से,
मत देखो इन वैरागिन पहाड़ियों को,
सब कुछ बाहर ही बाहर रहने दो।

क्या पता छूने से
ये फूल मर जायें।
क्या पता पीने से
यह रस-गंध विष बन जाये।
क्या पता कुछ कहने से
ये बादल बे-बरसे रह जायें।
क्या पता देखने से
ये पहाड़ियाँ झुलस-जल जायें।
सब कुछ बाहर ही रहने दो।

तुम केवल दरवाजे की चौखट पर
सिर धरे
इन फूलों को खिलने दो।
इस रस-गंध को फैलने दो।
इन बादलों को बरसने दो।
इन पहाड़ियों को हरियाने दो।

आग्नेय

जीवन जमुना मरुथल की ओर

सद-दर्शन शास्त्री विल ड्यूरट के चिंतन ने संस्कृति के अतिप्राप्त प्रवाह को अपनी
पुस्तक 'प्लेज़र्स ऑफ फिलॉसफी' में स्पष्ट करने की चेष्टा की
है। युग की इस प्रधान समस्या का यह संक्षिप्त रूप हम यहाँ
आपके समक्ष विचारार्थ उद्धृत कर रहे हैं।

लोकाचरण और प्रचलित विश्वासों में होनेवाले परिवर्तन और उनसे
न क्षुब्धताएँ आज अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति में स्पष्ट हो गयी हैं। लगता
हम फिर सुकरात के युग में खड़े हों। उधर हमारा नैतिक जीवन खतरे में
और इधर हमारा बौद्धिक जीवन पुरानी रीतियों और विश्वासों के टूटने के
ा ही तीव्रतर और विस्तृत होता जा रहा है। हमारे विचारों और कार्यों
प्रत्येक दिशा नवीन और प्रयोगात्मक हो गई है। कृषि से व्यवसाय, गाँव
गर, नगर से महानगर तक की यात्रा ने विज्ञान को जहाँ उन्नत किया,
कला को क्षति पहुँचाई, जहाँ चिन्तन को निर्बाध किया, वहाँ राजशाही
अमीरशाही का अन्त कर प्रजातन्त्र और समाजवाद को जन्म दिया। इस
ा ने जहाँ नारी को स्वाधीनता दी, वहाँ दाम्पत्य के बीच दरार भी डाली;
ने नैतिक शास्त्रों का खंडन कर योग और भोग के विचारों को समूल
ाड़ फेंका; तृप्ति के बदले अतृप्ति को बढ़ाया। युद्धों की संख्या में कमी
पर उन्हें और भी भयावह बना दिया और हमारी समस्त प्रिय धार्मिक
स्थाओं को छीनकर बदले में एक यान्त्रिक और सांघातिक जीवन-दर्शन हमें
न किया।

प्रत्येक विकासमान सभ्यता में एक समय ऐसा आता है जब पुरानी सहज-

वृत्तियाँ और आदतें परिवर्तित उत्तेजना के सम्मुख अक्षम हो जाती हैं और प्राचीन संस्थाएँ और नैतिकताएँ, जीवन के दुर्दम विकास के सामने अड़नेवाले खोल की भाँति कड़कड़ाकर टूट जाती हैं। प्रवृत्तियों की एकत्मता अब हमसे अलग जा पड़ी है और हम अनास्था और तर्क के समुद्र में तड़फड़ा रहे हैं; अभूतपूर्व ज्ञान और शक्ति के बीच हम अपने उद्देश्य, मूल्यों और गन्तव्य-स्थल के प्रति शंकालु हैं।

इस अनिश्चय की परिधि से निकलने के लिए परिपक्व मस्तिष्क के पास एक ही मार्ग है कि वह स्थिति से अपने को विलग कर सम्पूर्ण पर अपने को केंद्रित करे। वास्तव में, हम सम्पूर्ण के ग्रहण की इस कला को ही भूल गये हैं। हम नागरिक न रहकर इकाई-मात्र रह गये हैं। मृत्यु के आगे हमारे सामने कोई लक्ष्य नहीं रह गया है; हम आज केवल यहाँ-वहाँ छितरे मनुष्य के टुकड़े रह गए हैं, इसके आगे और कुछ नहीं। आज कोई इस का साहस नहीं करता कि वह जीवन को उसकी सम्पूर्णता में देखे। हम प्रत्येक को अपने 'पार्ट' का ज्ञान तो है; किन्तु पार्ट का अर्थ हम से अज्ञात

सूझ-बूझ में पका विवेक ही सब कुछ है, यह हम भूल गये हैं। वा में दर्शन, यदि हम उसके प्रति ईमानदार हैं, तो वह हमारी आत्मा व्याधि-मुक्त कर सकेगा। इसके लिए हमें अपने चिन्तन का, जो इतना म और आत्मनिषेधी हैं, शोधन करना ही होगा।

सुचिंतित दर्शन अपनी मूल सिद्धि में एकरूपात्मक ज्ञान है जिससे जीवन में एका आती है। यह आत्म-संयम हमें निर्मलता और स्वाधीनता के नित-नूतन स्तर देता

हमारी आधुनिक संस्कृति बनावटी है और हमारा ज्ञान खतरनाक रूप यन्त्रविधियों में हम सम्पन्न हैं और उद्देश्यों में दरिद्र। प्रेरणात्मक धार्मि विश्वासों के कारण जो बौद्धिक संतुलन हममें उत्पन्न हुआ था, वह अब रह गया है। विज्ञान ने हमसे नैतिकता के अलौकिक आधारों को छीन लि है और सारा संसार एक विशृंखलित व्यक्तिवाद में फँसा हुआ नजर आता है हमारे चरित्र की खण्डितावस्था को प्रदर्शित करता है। हम फिर उस सम का सामना करते हैं जिसका कभी सुकरात ने किया था।

बिना दर्शन, बिना सम्पूर्ण दृष्टि के, जो उदेश्यों को एक-सूत्रता प्रदान करती है और इच्छाओं को नियमबद्ध करती है, हम एक ओर भ्रष्टता के कारण अपनी सामाजिक विरासत को खण्ड-खण्ड कर डालते हैं और दूसरी ओर क्रान्तिकारी पागलपन के कारण क्षण भर में अपने शान्तिपूर्ण आदर्शों का त्याग कर युद्ध के आत्मवध में साथ-साथ कूद पड़ते हैं।

हमारे बीच हजारों राजनीतिज्ञ हैं लेकिन कोई नीतिवेत्ता नहीं है। हम ...साधारण गति से धरती के चारो ओर दौड़ सकते हैं किन्तु हम यह नहीं ...ते और न हमने कभी सोचा है कि हम कहाँ जा रहे हैं। ●

(युगाचरण में आज जिस विभ्राट् विपर्यय का समावेश हो गया है, उसने हमारी ...त्मकता की सारी सहस्रधारा को अपनी अगणित पोषण-दिशाओं से हटाकर ऐसे ...ल मरुथल में उठाकर रख दिया है जहाँ खो जाने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं ...गया है। प्रो० विल डूरंट द्वारा निर्देशित इस समस्या के समाधान हम अगले अंक में ...के ही शब्दों में प्रकाशित करेंगे।—सम्पादक)

क्या जीवन भी एक कला है ?

मुझे यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि जीवन एक कला है या नहीं, किन्तु इन ...दों का कुछ अर्थ तो है ही और शायद यही हो। दूसरी कलाओं में जैसे ...त्रांकन का ही लें, माध्यम ही स्वयं अपनी सीमाएँ खींच देता है किन्तु जीवन ...माध्यम केवल मृत्यु द्वारा ही सीमित होता है। और मृत्यु तो इस कला के ...र्तन को ही समाप्त कर देती है दूसरी कलाओं में कुशलता या प्रवीणता ...सेल की जा सकती है लेकिन जीवन में, एक खराब काम को अच्छे से अच्छे ...के में करने की अपेक्षा कुछ ही ज्यादा कुशलता मिल सकती है। कला ...धित कृति का एक प्रभाव है : जीवन घटना-संयोग द्वारा इतना अधिक ...यंत्रित है कि इसका प्रवर्तन या आचरण केवल एक अचिन्त्य रचना या कृति ...न ही हो सकता है। —सॉमरसेट मॉम

अभिनन्दन

चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

अन्त में राजेश्वर को अपना निश्चय बदलना ही, इसलिये नहीं कि पत्नी के तर्क उसे पराम्त कर गये। बल्कि इसलिये कि कल की दाल-तरकारी और मसाले के खर्चे को उसकी जेब में कुल ढाई आने थे। कोई समय था जब उसकी ने दो आने में भी तीन समय तक रूखी रोटियों तरकारी का जोगाड़ कर लिया था परन्तु आजकल तो आने में पाव भर दाल नहीं आती ? बीड़ी का बन्डल आने में आता है। आज तो उसने सवेरे से अबतक दो ही पी हैं। और चाय में दूध भी बस कहने को ही था। दैनिक अखबारों की सारी रद्दी को एक बार हसरत से और फिर उसे निकाल कर कमरे के बीच में लगा।

पत्नी ने स्वर में कहा—' दीमक ने छलनी कर हैं। इन्हें तो कोई आने सेर भी न चाहेगा। जो अच्छे हैं उनमें से तुमने बीच बीच में काट कर बराबर कर रक्खा है। देख लेना ये भी छोटी कापियाँ भाव जायगी। अखबार तो रखते हैं उपरवाले जग्गू बाबू; और तह करके रख दिया। उनकी रद्दी सदा ही बारह आने जाती है।'

राजेश्वर पत्रकार है। पत्नी के इस 'प्रवचन से उसकी उमर आई। इन्हें बस रद्दी के बारह आने सेर के दाम पड़ी है। नहीं जानती, इन पत्रों से कटिंग काटकर न रक्खे उसका काम कैसे चले ? उसने कुछ गरमी से उत्तर दिया 'अच्छा, अच्छा आप और जग्गू बाबू महान चतुर हैं बस। रद्दी। मैं कहता हूँ इसी रद्दी के बल ही हमारी गुजर

ग काट कर न रक्खूं तो आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त लेख लिख कर कैसे दूं ? तुम्हें तो इस रद्दी के सही सलामत रहने की ही चिन्ता रहती है।'

पत्नी ने डर कर स्वर नीचा कर लिया !—'अरे तो मैं कुछ कह थोड़े ही रही हूँ !' भूखे राजेश्वर का क्रोध पत्नी की इस नम्रता से और भी अधिक बढ़ गया। उसने —'अभी कहने की कसर रह गई है ? इतनी खोज इतने श्रम से, कहीं कहीं आँकड़े लेख लिखता हूँ। चुटीले उदाहरणों से रसपूर्ण बनाता हूँ तब भी तो यह सम्पादक कह देते हैं—'राजेश्वर जी, लेख को और थोड़ा मांजिये, तनिक प्राण डालिये...' स्वयं को चाहे यह भी स्मरण न हो कि महात्मा जी की जन्म-तिथि क्या है, परन्तु पर बैठ कर सब एकदम बृहस्पति बन जाते हैं। और तुम कहती हो काट-काट रद्दी बरबाद कर दी। जी चाहता है गले में...

राजेश्वर की फाँसी अभी मुख से बाहर नहीं आई थी कि उसने सुना द्वार पर उसे ऊँचे स्वर में पुकार रहा था—'राजेश्वर जी ! अजी राजेश्वर जी ! कहाँ ' अरे !—राजेश चौंक गया। यह तो नगर के प्रसिद्ध दैनिक 'अंशुमान' के प्रधान ादक का स्वर था। सम्पादक अमित जी ! आज तो शबरी के घर भगवान भूल ! इतनी बड़ी हस्ती स्वयं चलकर इस छोटे से पत्रकार के द्वार आगई। अखबार मैली तहमद को खोल, धोती बना लांग कसता हुआ राजेश्वर बाहर आया। पत्नी रिचित पुरुष का स्वर सुनते ही कोठरी छोड़ आंगन में चली गई।

'नमस्कार। नमस्कार। आज आपने इधर आने का कष्ट कैसे किया। गनेश या रघु से कहला देते मैं स्वयं ही सेवा में उपस्थित हो जाता। मेरे योग्य कोई सेवा?'

अमितजी आज बड़े मूड में थे। आत्मीयता से राजेश्वर के कन्धे पर हाथ रखकर बोले—'साहित्य के सच्चे साधक तो आप ही लोग होते हैं, राजेश्वर जी! हम तो मात्र नैवेद्य को भगवान् के अर्पण करनेवाले पुजारी हैं। एक अच्छा काम आ गया है। सोचा अपने राजेश्वर को ही देना चाहिए। वो आजकल आर्थिक संकट में भी हैं। बस चला आया।'

'हैं हैं—राजेश्वर एकदम विभोर हो उठा···'सो तो आपकी मुझपर बड़ी ही कृपा हुई। आप के ही सहारे पल रहे हैं'·· इतने बड़े सम्मानित अतिथि को कहाँ बैठाये वह यही नहीं सोच पा रहा था, घरमें तो ढंग से दो कुर्सियाँ भी नहीं हैं। परन्तु गली में खड़ा भी कैसे रक्खे—'आइये, भीतर आ जाइये' कहता हुआ उन्हें अपनी कबाडी की दुकान जैसी कोठरी में ले आया। चारों ओर पुन्फ़ें अखबार···अलगनी पर पुराने कपड़े. .टूटे सन्दूक···फटी चटाई··· 'वाह वाह'—अमितजी ने एक ही हँसी के वार में राजेश के संकोच को उड़ा दिया— सच्चे सरस्वती के आराधक हो, भइया, मान गये।—ढीली-ढाली चारपाई पर आराम से बैठते हुये वे: 'बोले देखो व्यर्थ के तकल्लुफ़ से परेशान मत हो। मुझे समय बहुत थोड़ा है। बस काम की बात करके चला जाऊँगा।'

राजेश्वर ने प्रश्न की मुद्रा में बाँधी और तिपाई पर बैठ गया।

अपना चमड़े का बैग खोल, हुए फार्म निकालते हुए अमितजी 'देखा। काम बड़े परिश्रम का है। महीने में पूरा भी हो जाना चाहिए सम्बन्ध में जो व्यय आयेगा वह मिलेगा ही। इसके अतिरिक्त मासिक कार्य काल का वेतन भी

राजेश को कानों पर वि आ रहा था, २००) मासिक! ढ भाव से अपने कृपालु सम्पादक महीने में एक लेख और कहानि कर भी तो वह इतना नहीं कमा उत्सुकता से फार्म लेकर देखा— अक्षरों में लिखा था:—

'श्री सम्पतराम शर्मा अभिनन्दन

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री सम्प की पचासवीं वर्षगाँठ पर उन साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में, ग्रन्थ भेंट किया जायगा।

विषय—शर्मा जी की जीवन कृतियाँ उनकी साहित्यिक सेवायें संस्मरण...इत्यादि···इत्यादि।

सम्पादक मन्डल—सेठ हरम सेठ बुधराम ढिढवानियाँ, सेठ शारदा, श्री महेन्द्र, श्रीमती श्री अमित।

मूर्खों की भाँति राजेश्वर को अमित जी ने फरमाया—'भई क्या देख रहे हो। क्या शर्मा जी जानते। प्रसिद्ध ने—'

'जानता क्यों नहीं—राजेश ने जल्दी से उत्तर दिया—'अपने प्रान्त के वित्त-मन्त्री न !'

'हाँ'—अमित जी ने सन्तोष से गर्दन को झटक कर कहा—'है न तुम्हारे लिये स्वर्णावसर। धर्म और अर्थ का उन्मुक्त संगम। अपनी और साहित्य की सेवा एक साथ।'

राजेश्वर फार्म को दोबारा पढ़ने लगा—उसमें उसका नाम कहीं भी नहीं था, सहायक, प्रबन्धक किसी रूपमें भी नहीं। अमित जी कहते गये—'सम्पादक-मन्डल में नाम तो मेरा ही जायगा, परन्तु तुम जानते हो मुझे इतना समय कहाँ। बस तुम कल से ही काम शुरू कर दो। पटना, बनारस, प्रयाग या जहाँ भी उसके विषय में अच्छी सामग्री मिले एकत्र करलो। शर्माजी का एक बड़ा तैल-चित्र भी बनवाना है। किसी अच्छे चित्रकार को तय करो। पैसे की चिन्ता नहीं, ५००) तक दे देंगे।'

राजेश्वर अभी तक चुप था। अमितजी को बात समाप्त करते देख, धीमे से कहा—'परन्तु अमितजी ! शर्माजी तो राजनैतिक महारथी हैं। इधर वर्षों से तो उन्होंने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। बस वही आरम्भिक काल के तीन-चार उपन्यास हैं।'

'अरे तो तुम्हें इससे क्या ? तुम्हे आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से,—अमित जी चारपाईसे उठते हुए बोले—'जो स्वीकार हो तो आज सन्ध्या को सेठ लूणियाँ की कोठी पर आजाना। वहीं सम्पादक समिति की बैठक है। मार्ग-व्यय और कुछ अग्रिम भी मिल जायेगा।'

राजेश्वर व्यस्त भाव से उठ खड़ा हुआ—'आप तो चल दिये। बैठिये, बैठिये, कुछ बताइये तो यह अभिनन्दन किस उपलक्ष्य में निकल रहा है। जब सब काम मैं ही करूँगा तब परदा क्या ? वैसे तो अभी शर्माजी से भी वरिष्ठ कितने ही साहित्यक हैं जिन्हें अभिनन्दन नहीं मिला।'

अमितजी खीज उठे। उपेक्षा से कहा—'तुम्हारी बुद्धि भी बड़ी मोटी है। देखते नहीं, अभिनन्दन समिति में कौन-कौन है। सेठ हरमल बुधराम या शारदा जी कहाँ के साहित्य प्रेमी हैं। यह तो वित्त मंत्री को खुश करने के लिये है। अकेले लूणिया ने ही पाँच हजार दिया है। हमने सोचा, ये लोग भला कब काबू में आते हैं। रुपया मिल रहा है तो साहित्य का ही कुछ भला हो जाय। आठ सौ पृष्ठों का ग्रन्थ होगा। जिसमें २०० पृष्ठ शर्मा जी के ऊपर और शेष में उपन्यास कला पर बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों के लेख रहेंगे। कुछ लेखक बन्धुओं का भी लाभ हो जायगा।'

'अच्छा यह बात है ?' राजेश महान् सम्पादक की महान् सूझ पर नेत्र विस्फारित करता रह गया।

'और क्या'—अमितजी ने नहले पर दहला जमाया—'बाद में उपन्यास-कला वाले पृष्ठ पृथक् पुस्तक रूप में भी छपवा लेंगे। युनिवर्सिटी की उच्च कक्षाओं के कोर्स में लग जायगी तो एक निश्चित रॉयल्टी बंध जायगी। उसमें से तुम्हारा भाग रहेगा। नाम तो

स्थानों पर मेरा ही जायगा··· क्या क्नायें तुम्हारे नाम से चीज चलेगी नहीं, भैया। हाँ तो गुमन्य शीमन्, राजेश्वर की पीठ थपथपाकर अमित जी अपना बैग सम्हालते हुए चले गये।

राजेश्वर ने एक बार दीमक खाई रद्दी को ताका, फिर उत्साह से पत्नी को पुकारा–'शान्ती, जल्दी से चाय तैयार करो। लो यह अपनी दूध मंगा लो, मुझे अभी-अभी लान्ड्री जाकर अर्जेन्ट कपड़े धुलवाने हैं। हाँ, और क्या इन्हीं कपड़ों से सेठजी के यहाँ जाउँगा ?'

दांतो तले पसीना आ गया राजेश्वर को। अभिनन्दन ग्रन्थ के कार्य को उसने जितना सुगम समझा था वह उससे कहीं अधिक कठिन निकला। नकद रकम देने पर भी बड़े लेखक शर्माजी पर लेख लिखने को तैयार ही नहीं होते थे। जीवनी तो उसने जैसे-तैसे स्वयं ही सामग्री इकट्ठी करके लिख डाली। नाम दिया गया अमितजी का। परन्तु कठिनाई थी उनकी पुस्तकों पर बढ़िया समालोचना लिखाने की। छुट-भैये लेखक पचास रुपया पर भी लेख देने को तैयार थे, इसलिये नहीं कि शर्मा जी को वे महान् साहित्य-कार समझते थे, बल्कि पैसों की तंगी ही उन्हें तैयार कर देती-थी। परन्तु अमित-जी का कहना था—'लेख का वजन उसके मैटर से कम लेखक के नाम से अधिक बढ़ता है। तुम दो चार बड़े लेखकों से जिनकी हिन्दी-जगत् में धाक हो, तो लिखवा ही लाओ। दो सौ रुपे से मत चूकना'—२००) रु० ! जि... महीने भर में मिलेगा ; शर्माजी पर ... पृष्ठ का लेख लिखने से चार दिन में ... जायगा...परन्तु वह तो बड़ा लेखक है ! एक छोटा पत्रकार है जिसका छोटा-सा नाम-भी अमित जी जैसे राहु ने ग्रसा हुआ है। २००) में ... जी ने उसका काम ही नहीं ... लिया है। फिर भी उनको ... राजेश्वर आभारी है। हाँ, आभारी।

बड़ी आशा-उमंग और विश्वास से काशी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक ... पास पहुँचा। शंकरजी मस्त जीव हैं धोती-कुरते में गुजर करनेवाले। ... के गोले और अपनी कृतियों से ही ... रहनेवाले। राजेश्वर का स्वागत ... गले लगा कर किया परन्तु शर्मा... लेख लिखने की बात सुनते ही उनका ... चढ़ गया—बोले : 'सवेरे सवेरे ... नाम ले दिया ! वो साहित्यकार है ... पर अगर लेख लिख सकता हूँ तो ... एक पूरी पुस्तक नहीं लिख सकता ! ... भी तो कई जासूसी नॉवेल लिखे हैं ...

राजेश्वर ने सकुचा कर कहा—... शंकरजी, क्यों हँसी करते हो। ... कारणों से ही...

'कैसे भी सही...छपे तो हैं वे... साहित्य से बुरा साहित्य नहीं है ... शंकरजी ने अकस्मात् बात बदल ... 'अच्छा, राजेश्वर, क्या तुम्हें मैं ... टट्टू जंचता हूँ ! मैं तो समझता ...

साहित्यिक अश्व हूँ। तुमने तो मेरा दिल ही तोड़ दिया।'

राजेश्वर मजाक नहीं समझा। मूर्खों की भांति ताकने लगा। शंकरजी ने फिर व्याख्या की—'मूर्खराज' मैं तुम्हारे २००) या ३००)की परवाह नहीं, करता। पैसों के लिये न लेखनी बेचता हूँ और न स्वयं को।'

'शंकर जी'—राजेश ने खुशामद की—'आप उपन्यासों के मानदंड पर ही एक अच्छा लेख लिख दें। शर्माजी तो मात्र उपलक्ष हैं। साध्य तो हमारा साहित्य की सेवा ही है। सेठों ने रुपया दिया है। इससे साहित्य का भला क्यों न हो? अभिनंदन ग्रन्थ में अधिक भाग तो ठोस ही रहेगा।'

'हां भैया' शंकर जी ने मूड़ हिलाया—'लानत भेजता हूँ ऐसे ठोस काम पर। मैं साध्य और साधन दोनों को पवित्र रखना चाहता हूँ। —पर, मेरे यार तू उदास क्यों होता है। सभी मेरे जैसे फक्कड़ थोड़े ही हैं। तेरा ग्रन्थ तो पूरा हो ही जायगा। माय की माया अपार होती है, भैया'—राजेश्वर नमस्कार कर उठ आया। और भी दो चार स्थानों पर ऐसी अभ्यर्थना हुई। फिर भी उसने दो मास में घूम-फिर कर काफी सामग्री जुटा ली। जीवन में पहली बार राजेश्वर को जीने का आनन्द आया। वह भी २००) तक देकर किसी से रचना ले सकता है। अभी तक तो वह बेचारा अपना लेख ही दस-दस या पन्द्रह-बीस में बेचा करता था।

उसने तैल-चित्र बनने का आर्डर भी दे दिया।

घर पहुँचते ही वह पहिले अमितजी के पास पहुंचा। गरमागरम स्वागत करने के बाद सामग्री देख कर उन्होंने असन्तुष्ट भावसे कहा—'भई रफ्तार बड़ी धीमी है। ऐसे तो ग्रन्थ छपते-छपते साल लग जायगा।'

'जी! देर तो ऐसे कामों में लगती ही हैं। फिर शर्मा जी पर कोई लिखने को जल्दी तैयार भी नहीं होता।'

'अरे भई तो पैसे और बढ़ा दो! मैं इस मैटर को प्रेस में दे देता हूँ। तुम जैसे जैसे मिलता जाय भेजते जाओ।'—फिर तनिक स्वर धीमा कर रहस्य-भरे स्वर में अमितजी ने समझाया—'बात यह है लूणिया जी पर आजकल शर्मा जी बहुत खफा है। उनके कई मामले रोक लिये हैं। ग्रन्थ निकल जाय तो उन्हें आसानी हो जायगी। कई ग्रन्थों का अधिकांश व्यय तो वे ही वहन कर रहे हैं। डिडवानिया और शारदा जी ने तो कुल एक-एक हजार देकर ही बस कर दी। जाओ आज से तुम्हारा वेतन भी हम ढाई सौ किये देते हैं जम कर काम करो—हाँ।'

राजेश्वर दूने जोश से अभिनन्दन ग्रन्थ की तैयारी में जुट गया।

और डेढ़ महीने के तूफानी दौरे से लौट, घर-घर घूम, साम, दाम और भेद यथा-रीति उपयोग कर, राजेश्वर लौटा लगभग पाँच सौ पृष्ठों की स

लाया था, पत्नी ने ढाई सौ रुपये कमानेवाले कमाऊ पति के स्वास्थ्य को गिरा हुआ पाया तो चिन्तित स्वर में बोली—'हाय, हाय इतना काम क्यों करते हो। आधे भी नहीं रहे। लो अब तुम नहा धो लो। खा पीकर आराम करो। चार छः दिन कहीं मत जाओ।'

पत्नी के इस प्यार-भरे अभिनन्दन को उपेक्षित कर राजेश्वर ने व्यस्त भाव से लेखों, की गठरी बाँधते हुए उत्तर दिया—'पैसा कोई मुफ्त में नहीं दे देता। तुम भोजन बनाओ मैं घन्टे भर में आता हूँ—।'

उत्साह से उसका हृदय पुलक रहा था। *अब निश्चय ही ग्रन्थ चार महीनों में ही* छप जायगा। अमितजी कितने प्रसन्न होंगे, सम्भव है 'अंशुमान' में सह-सम्पादक की जगह ही रख लें। अच्छे समालोचना के पृथक् ग्रन्थ को रॉयल्टी का आधा भी दिया तो भी पाँच छः सौ रुपये वार्षिक से कम क्या होगा। कोर्स में तो वे उसे लगवा ही देंगे। अमितजी की पहुँच तो दूर-दूर तक है। ऐसे ही कल्पना के मनमोदक खाते हुए रास्ता कब बीत गया, उसे पता ही न चला।

अमितजी घर पर ही मिल गये। परन्तु सदा की भांति राजेश्वर को देखकर उनके मुख पर मुस्कान नहीं खिली। लपक कर *स्वागत भी नहीं किया*। जाने कैसा धुआं सा उनके मुख पर छा गया। राजेश्वर ने इसे लक्ष्य तो किया किन्तु वह अपना श्रम और कृतित्व दिखाने को आतुर था। गठरी खोल सामने की मेज पर लेखों की चट्टान-सी लगाते हुए उसने कहा—'लीजिये, [illegible] जी ? बाजी मार ली। आप इतना [illegible] दीजिये। जब तक पाँच सौ पृष्ठों तक [illegible] महीने भर में शेष सामग्री भी तैयार लाऊँगा।'

अमित जी बोले नहीं, अपने [illegible] से कान खुजाने लगे। राजेश्वर को आश्चर्य हुआ। पूछा : 'तबियत तो ठ[illegible] न आपकी ? बस एक पांच सौ रुपये [illegible] दीजिये। इतने में सब निपट जायगा।

अमितजी अब चैतन्य हुए। स्वर में बोले : 'नहीं भई अब कोई नहीं है। बल्कि जिन लोगों ने लेख न देकर एडवांस ले लिया है, हो स[illegible] उनसे भी रकम वापिस ले लो।'

ऐं ! राजेश्वर मानों आका[illegible] गिर पड़ा—'यह आप क्या कह र[illegible] ग्रन्थ फिर समय पर पूरा कैसे होगा !'

'ग्रन्थ तो अब छपेगा ही नहीं—'अ[illegible] ने बर्फ-से ठन्डे स्वर में कहा—'वित्त[illegible] का ट्रान्सफर हो गया है। वे केन्द्र [illegible] ऊँचे पद पर जा रहे हैं।'

'अरे !'—राजेश्वर का मुंह खु[illegible] गया।

अमितजी कहते गये—'प्रान्त[illegible] उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा लिए लूणिया जी अब एक पैसा देंगे।'

'तो, तो'—राजेश ने लड़खड़ाते कहा—'यह उतना छपा मैटर अ[illegible] सामग्री—'

'उँह !' डालदो उसे कोने में।

काम आ जायगी।'—अमितजी ने अपना चश्मा सम्हाला और सामने फैले किसी पहले लेख के देखने में जुट गये।

राजेश्वर को काठ सा मार गया। इतना श्रम—व्यर्थ गया! समालोचना... रॉयल्टी! उसने रुक कर कहा! 'मेरा वेतन?'

'वेतन का क्या प्रश्न है अब'—अमितजी ने गम्भीर स्वर में कहा: 'जब हमारी स्कीम ही फेल हो गई तो वेतन कैसा? हमारा तो स्वयं ही इतना नुकसान हो गया। अच्छा कल वल देखेंगे। जो बनेगा दे देंगे। कुछ तो तुम ले भी चुके हो! सौ रुपये महीने के हिसाब से जो निकलता होगा दे देंगे।'

१००) ?—राजेश्वर को लगा उनके सिर में जोर से चक्कर आ रहा है। * * *

क्यों न मन की साधना पाती अनश्वर

मूक रह जाते अधर,
जब बीन में झंकार होते।
झपक जाते हैं पलक,
जब कामना साकार होती।

कौन-सी ले साध निशि आती,
भटक कर लौट जाती!
नित किसी अज्ञात के पथ में
खड़ी दीपक सजाती!

तब कोई अवसाद रह-रह कर मचलता
क्यों विगत ढलता नयनसे नीर बनकर?

क्यों चकोरी चाँद से रह दूर जाती!
क्यों पपीहे की रटन में प्यास का स्वर!

जब विनय की रश्मि का
आलोक, भर जाता हृदय में।
मूक रह जाते समय पर
साधना के स्वर हृदय में

पलक प्रतिमा के न झुक पाते कभी,
क्यों किसी की अर्चना से रीझकर!

क्यों न मन की साधना पाती अनश्वर

कमलेश्वरी सक्सेना

संकेत

ओ नियामक
ऊर्ध्व, गामी चेतना के
रुचि परिष्कृत कर
ऋचाओं सी
किन्तु
क्षमता की चमत्कृति
का असंयत लोभ रहने दे।

आज भी
कुंठित
नहुष की आत्मा के
दीर्घ को लघु में बदल कर
ऋण बना के
वह अमंगल तुष्टि
जो प्रलय के
अट्टहासी घोष की
रण-वाहिनी
भय प्लावनी हुंकार बनकर
आस्था की सृष्टि पर
मँडरा रही है।

दृष्टि अन्यमनस्क
मत कर
वे
दिशा-निर्देश के संकेत
कितने सूक्ष्मतर हों!

राकेश

फासला

एक मैं हूँ : एक तुम हो
बीच दोनों के
बहुत कम फासला है;
सिर्फ उतना ही
कि जितना आदमी के
और उसकी छाँव के;
या कहो कि
फासला है बीच में जितना
किसी पतवार के औ' नाव के
या कहो कि
कुछ नहीं से कुछ नहीं के
बीच में जो फासला है—
सिर्फ उतना ही
हमारे औ' तुम्हारे
बीच में भी फासला है।

ओंकार दुवे

लहरें

हम लहर हैं :
जिन्हें सागर ठेलता हर बार
पर उचक कर
चाँद से पातीं इसी से प्यार
यों सदा संघर्ष ही
केवल हमारा प्राण।

श्रीप्रसाद शर्मा

सूर्यमुखी फूल : सूर्यमुखी हाथ

सूर्यमुखी फूल और
सूर्यमुखी हाथ बड़े प्यारे हैं।
पंक्ति में सजे हुए ग्लासों को
सूर्यों से, नयनों की
नीली रचनाओं से भरते ये!
पुनः पुनः गढ़ते फिर
नूतन प्रतिबिम्ब कई
झिलमिल हमारे हैं!
गोल लाल सूरज के छिपने पर
हाथ ये—
जीवन को दर्पन दिखाते हैं;
फूल ये—
कहीं झुका माथ
चूम-चूम उठा आते हैं।
हाथों औ' फूलों के
रिश्ते हमें बाँधे हैं।
सागर में नहाती उषा को
लजाकर
करते ये नख-शिख का
पहला सिंगार हैं;
बँधी हुई साँसों को फूंककर
वर्षों में पछुवा-हवाओं की
भरते गुहार हैं।
टेर लो!— घेर लो!
सूर्यमुखी फूलों को
सूर्यमुखी हाथों को।

रमेश कुंतल मेघ

वे हाथ

मुझको वे हाथ
जाने क्यों भा गये?

जो माटी में
बगिया कनेर की
बेलें लगा गये
चंपा-चमेली की
देही सहला गये।

जो अपने ही बालों में
कुसुम-बंध बाँध गये
माथे पर चारु चिन्ह
माँग में सिंदूर रेख
हलके से साध गये।

मुझको वे हाथ
जाने क्यों भा गये?

अजित पुष्कल

अवदान

डूबते सूरज की पांडु-किरण ने एक क्षीण निःश्वास छोड़ते हुए थके-माँदे पवन के कान में धीरे से कहा—"मेरे अंतिम प्रणाम स्वीकार करो। यह जीवन-यात्रा आज समाप्त हो रही है। मृत्यु-पर्व के इस मंडप में आओ, एक बार और मेरे स्नेह के अक्षतों को अपने भाल पर चढ़ा लो। जीवन का वंशीरव मौन के चिदानन्द मे अपनी सनातनता पाकर भी तुम्हारा स्तव-गान बनना चाहता है, क्या इसे आज भी अपना प्रेय नहीं मिलेगा ?"

पवन ने छिन्न लता-से किरण के दोनों हाथों को अपने अनुराग-बंध में थामते हुए पुलकांकुल कहा—"कण-कण दे-देकर जो स्वयं चुक गयी हो, निःशेष होकर जो सार्थकता में निःसीम हो गयी हो, वह भी यदि कुछ माँगे, तो क्या दाता का अपमान नहीं है ? दान के प्रेय तक क्या श्रेय का कोई शिखर कभी पहुँच पाया है ! निर्वाण के इस मौन मुहुर्त में, लो चढ़ा दो अपने स्नेह के अक्षत मेरे स्वेदार्द्र भाल पर ! अपनी अघोष वाणी से मुखरित कर दो मेरी वंदनाएँ भी...किंतु पूर्ण, परम काम्य की मेरी इस कली को भी अपने जूड़े में धारण कर लो...अपना असीम दे रही हो, तो मेरा यह अकिंचन भी अपने आँचल में बाँध लो कि तुम्हारे उदय की पूजा का श्री-गणेश मेरे नमस्कार से ही प्रारम्भ हो !

उपलब्धि

सहस्र श्यामकर्ण घोड़ों से जुता गोधूलि का रथ खड़ा था। लक्ष-लक्ष तिमिर-अलंकारों में सुसज्ज रात क्षितिज द्वार से बाहर निकली और एक क्षिप्र दृष्टिपात में सारे भुवन विस्तार को वैभव-विभोर कर दिया। तारों की झोली भरकर आकाश आया और हृदय की परिपूर्ण मुग्धता में विमोहित उसके हाथों ने अगणित तारों से रात के जूड़े को आलोकित कर दिया। रथासीन रात भुवन-परिक्रमा को निकल पड़ी। तिमिर-सुन्दरी के सौन्दर्य-विग्रह ने समस्त नक्षत्र-मंडल को सम्मोहित कर दिया—आकाश और उसकी अनन्त परिधियों में बिखरे असंख्य सूर्य-चन्द्रों ने अपलक उसकी मुख-छवि को देखा, मुग्ध-स्तब्ध उसके कंकण-रव को सुना...किन्तु अप्रमेय मुख श्री में प्रतिष्ठित उस तिमिर-तन्वंगी के मुख पर चिन्ता के छाया-बिन्दु विलीन होने के बजाय उत्तरोत्तर गहरे ही होते गये...आकाश ने मनाया, सहस्र-सहस्र सखियों ने मर्म को सुहलाया, दिशा-दिशा ने हास्य इंगित किये...किन्तु रात के मुख पर अम्लान अतराभा खिली नहीं खोयी निधि और गहरी चली गयी, मिली नहीं। चिन्तातुर आकाश ने रथ को रोका और प्रेमातुर हाथों के व्याकुल पाश में रात को थामते हुए कहा—'शुभे, तुम्हारी चिन्ता की रेखाएँ मेरा अंतर्यामी कब नहीं पढ़ पाया ? क्लांति

और आमोद का एक क्षुद्र बिन्दु भी क्या मेरे मर्म की उपेक्षा कर सक हैं? तुम्हारे विषाद का परिचय मेरी आत्मा को है···तुम्हें पर खिली उस चमेली से ईर्ष्या है जिसके गंध-माधुर्य का स्पर्श तुम्हारे सारथी और घोड़ों के मन भी विचलित हो जाते हैं।'

मन की बात के इस उद्घाटन से रात का जैसे मुख सोयी व्यथा का एक छोर पा गया। उसने विक्षुब्ध भ्रूचाल में आकाश को मा कर दिया। नयी वाक्-स्फूर्ति पाकर आकाश बोला—'किन्तु तुम्हें, न जानकर जो पकड़ लिया जाता है, वह क्या अर्थ तक ले जा सकेगा? चमेली की रूपाभा में गंध-बीज का जो संयोग है, उसे तुम्हा ईर्ष्यालु मन देख नहीं सका है। रूप का महत्त्व कौन नहीं मानता, सम्मोहन विफल कब हुआ है? किन्तु मर्म की कली जब तक नहीं खि तब तक सौन्दर्य में आवाहन कहाँ, सबसे आमंत्रण कहाँ!...और खिलती उसी समय है जब उसमें समा न पाये....चमेली ने अपने वह गंध एकत्र की है···धरती का रस लेकर उसने अपने घट में संजोयी है। तुम क्षितिज से नीचे कभी नहीं उतरीं। कहाँ से मिले तुम्हें रस की वह गागर जो चमेली ने धरती के स्तन्य को पीकर हैं? सो देवि! तुम्हारी विषण्णता निर्मूल है, भ्रम-विलास की विडम्ब है। धरती, गंध-मधुरा धरती की रज से भागनेवाली स्वर्ग-सुन्दरि, छोड़ो...औचित्य के हाथों ने जो दिया है उसके तोष से दूर भागो...पकड़ो वही जो तुम्हारा है...।

रतनलाल जोशी

पान का पत्ता

सर्वश्री अनवर आगेवान, शिवनन्दन कपूर और मोहन मिश्र के लेखों पर आधारित पान प्रसंग

हिन्दु-मुस्लिम संस्कृति-सभ्यता के मिश्रण का एक रंगीन प्रतीक है अमृत पत्र, ताम्बूल या पान का पत्ता। फल-ताम्बूल-दक्षिणा के उद्घोष से लेकर पानदान और पीकदान की परम्परा तक पान का प्रभाव सचमुच खोज की वस्तु है। पान की दूकान अपने आप में एक संस्था होती है। मुहल्ले भर की जानकारी पनवाड़ी और पनघट से हासिल करने की विधा का उपयोग आज भी होता है। पाप और पुण्य जो भी करना चाहे, पान का प्रभुत्व बचाकर नहीं कर सकते। सौन्दर्य और सुगन्ध, शृंगार और संस्कार और पान-महाम्य को भूरि-भूरि गाते हैं। संस्कृत-कोषों में पान के जो पर्याय दिये हैं उनके निर्माण का यदि बारीकी से अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि पान हमारे जीवन में कितना घुला-मिला है। उदाहरणार्थ, नागिनी, नागवल्ली, सप्तशिरा, भस्मपत्रा, और ताम्बूल।

रामायण, महाभारत, कामसूत्र और निघन्टु—सभी में पान की प्रशंसा के पुल बाँध दिये गये हैं। 'नायक मित्राणां च स्रजानुलेपन-ताम्बूलदानैः पूजनं न्यायतः' जैसी सामाजिक प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। आज पान की जगह प्रायः चाय और सिगरेट ने ली है पर ताम्बूल से तमाकू तक का इतिहास कम मनोरंजक नहीं है।

इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में राजशेखर सूरि ने एक कहानी भी लिखी है। शायद यह लोककथा ही हो। कथासरित् सागर के अनुसार राजा सहस्रानीक की पट्ट-महिषी ने एक बार लाल जल में नहाने का दोहद माँगा। राजा ने लाक्षारस-रंजित बावड़ी तैयार करा दी। रानीजी जब स्नान करने लगीं तभी एक गरुड़ ने उनको एक मांसपिण्ड समझ लिया और झपट्टा मारकर पंजे में दबोचा तथा उदयगिरि पर पना

हों। लेकिन रानी में जीवन की लाली देखकर गरुड़ उन्हें वहीं बिलखता छोड़ भागा। संयोगवश वहीं ऋषि-प्रवर जमदग्नि जी से भेंट हो गई। उनके आश्रम में रानी ने उदयन को जन्म दिया। कुमार उदयन ने एक बार नागराज वासुकि के अनुज वसुनेमि की किसी शबर से रक्षा की तो उसे चार वस्तुएं उपहार में मिलीं: वीणा, (जिसने वासवदत्ता को मोहित किया था!) सम्मोहिनी तिलक युक्ति, अम्लान माला और ताम्बूली।

धन्वन्तरि ने आयुर्वेद पर के सिर्फ दो तरह के ही पान बताये हैं—कृष्ण और शुभ्र। पर नरहरी ने सात किस्में गिनायी हैं: सब अम्लवारि, गुहागर, पट्टलिका, सौंवाटी, लवना और हेसनिका। लेकिन आजकल बंगला, देसी बंगला, मगही (ई) कपूरी, मद्रासी, महाराजपुरी, गोलचा, जगन्नाथी, सोनवाड़ी, बिल्हरा, बंगेर, देसी, सौंहड़ा, महोबिया, बेन्गी, बिरबुली साम्ना, टामक मदुरा, कुन्दा, कनकी, मीठा और बिलौआ आदि अनेक किस्में मौजूद हैं। ज्यादातर देसी, मगही (ई), बंगला, मीठा, कपूरी और महोबिया पान ही खाये जाते हैं।

भावप्रकाश निघण्टु और वाराहमिहिर के अनुसार पान में तेरह गुण हैं—कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर, क्षार, कषाय, कृमि-नाशन, कफहारित, दुर्गन्ध-नाशन, ,, वित्त-नाशक(?) कामाग्नि, शुद्धि और काम-संदीपन। पान की अगली नोक, पिछला डंठल और बीच की मोटी नसें राजनिघण्टु के अनुसार अग्राह्य हैं। खाली पान ही खाने में रुचिकर और त्रिदोष-नाशक होता है।

प्राचीन समाज में पान लगाना, … उठाना, ताम्बूल-करंक-वाहिनी … इन्हीं का अपना महत्त्व था। … लगाने और खिलाने की कला … अमीर-गरीब सभी करते हैं। … तम्बोलिनों की चतुरता के किस्से-कहानी कहीं भी सुन सकते हैं। यहां तक कि … थूकने की चतुरता का भी … की एक कहानी में यह निर्देश है कि … कुमार नागदत्त ने राजकुमारी के शयनागार में चोरी-चोरी पहुंचकर … अपना और राजकुमारी का … बना दिया यहीं अलबत्ते … थूककर चकवा-चकवी भी अंकित कर थे। बड़े शहरों की किसी भी बड़ी … के जीने की दीवारों पर पीक थूकने … इससे सीख ले सकते हैं! होठों को रं… इतना हानि-हीन तरीका शायद … हो, चाहे कत्था (खैर) चूना और … तथा अन्य मसालों के साथ पान … वैसे ही। पान के रस में अपना ए… रंग होता है जो होठों को … लालिमा देता है। आजकल पर पूगीफल (पान-सुपारी) का थोड़ा … कभी अगर होता हो। … लिपस्टिक और पान के रंग का … मुकाबला ही नहीं।

जौक साहब की एक शेर …

देखना ए जौक होंगे,
आज फिर लाखों के

लगाया आज उसने,
लब पै लाखा पान का!

एक साहब तो यहाँ तक कह बैठे कि :-

का बोसा पान ले,
औं में खड़े देखा करूँ।
भा मेरी तक़दीर,
पत्ते के बराबर भी नहीं॥

कुछ लोग पान के साथ कस्तूरी, लौंग, यफल और हर्र का उपयोग करना अच्छा ताते हैं, तो कुछ किवाम और पिपरमेन्ट वा अन्य सुगन्धित द्रव्य। बनारस और होबा, मद्रास, उड़ीसा, असम, बंगाल या कश्मीर में पान खाने के तरीके लग-अलग हैं। किन्तु पुराने और बासी के पत्तों का गुण सभी एक स्वर से नने और मानते आये हैं।

आयुर्वेद के अनुसार पान के कल्प से अनेक बीमारियाँ ठीक हो सकती। एक मत से, पान के साथ सुबह सुपारी दा, दोपहर को कत्था और रात में चूना दा खाना चाहिए। पान और पूग की ली पीक विषतुल्य तो दूसरी भेदक और र तथा तीसरी सुधातुल्य रसायन मानी ती है। राजबल्लभ ने यह भी लिखा है पान का मूल खाने से रोग, अग्रभाग ने से पाप-संचय तथा चूरा खाने से उम्र म और शिराएँ (नसें) खाने से बुद्धि ष्ट होती है।

दस्तों के बाद पान खाना वर्जित है। यादा पान खाने के ये फल हैं: निगाहें कमज़ोर होना, बालों का झड़ना और पकना दांतों का हिलना या मसूड़ों का सड़ना, खाल का रंग मैला या भद्दा होना और शरीर की ताकत कम होना। नेत्र रोग, विष रोग, अधिक नशा, क्षय और खूनी पेचिश में भी पान ज़हर है। धर्म शास्त्र के अनुसार विधवा, यति, ब्रह्मचारी और तपस्वियों के लिये पान गोमांस के समान होता है।

पान के अनेक अनुपान या नुसखे भी हैं, जैसे :—पान का डंठल बच्चों के गुह्य प्रदेश में प्रवेश कराने से कोष्ठबद्धी नष्ट होता है। पान का पत्ता भिगोकर लगाने से सिर-दर्द दूर होता है। गाल और गले की सूजन पर भी पान बाँधने से लाभ होता है। स्तनों में कठिन पीड़ा होने और सूजने पर भी पान बाँधने से शांति होती है। फोड़े पर पान बाँधने से घाव दूषित नहीं होता और आराम मिलता है। पान को सूखा ही, लगाकर बाँधने से बिना पका फोड़ा बैठ जाता है, और मोच खुल जाती है। चुपड़ कर एवं गर्मा कर बाँधने से फुंसियों की गाँठ पिघल जाती है और बैठ जाती है। पान के अर्क में तीन माशे शहद डालकर चाटने से कफ, श्वास, एवं खाँसी दूर होती है। पान के उबटन से शरीर-दुर्गन्ध मिटती और इसका रस आँखों में लगाने से रतौंधी दूर होती है। पान का शर्बत पीने से कफ, खाँसी श्वास और मंदाग्नि दूर होती है। पान की पकौड़ी काफी स्वादिष्ट होती है। नित्य भोजन के बाद नियमित पान खाने

से वह पाचन-क्रिया में सहायक होता है। अम्ल रोगी के लिए अधिक पान खाना अच्छा है। पान का रस गरम कर कान में डालने से कान का पीव, और आँख में डालने से चक्षु-रोग दूर होता है। हिस्टीरिया में भी दूध के साथ पान-रस का सेवन उपकारी है।

पान की जड़ें जहरीली होती हैं। यदि कोई स्त्री इसे बटकर खा ले तो जीवन भर के लिए बांझ हो जाती है! वैद्य लोग पान के रस के साथ कपास की जड़ बटकर उससे हीरक-चूर्ण को औषधार्थ शोधित करते हैं। खारी जमीन पर रहनेवालों के लिए भी पान लाभदायक है।

अधिक पान खाना हानिकर है, किन्तु प्रसिद्ध नृत्य-निर्देशक हीरालाल इसके अपवाद हैं। काम में लगने पर वे चार सौ बीड़े तक बनारसी पान खा जाते हैं! सहकारी दो-दो बीड़े पान देता रहता है, एवं वे उसे मुखस्थ कर, स्फूर्ति पाते, नृत्य निर्देशन करते रहते हैं। उनके लिए पाव भर सुपारी आधा पाव सुगन्धित तम्बाकू, एक बड़ी बोतल चूना, पाँच तोला कत्था नित्य व्यय होता है (पद्मिनी, रागिनी, वैजन्ती माला की नृत्य-कुशलता का भी यही रहस्य है क्या?)

वास्तव में पान के देशव्यापी प्रचलन को मद्दे नज़र रखते हुए इस पर अब कुछ आधुनिक विज्ञान की रीतियों से होनी चाहिए। गुण-दोष औषध-रूप से पान के का यथार्थ निर्णय होना क्या सरकारी या निजी पर कुछ पान-प्रेमी या लोग इस ओर ध्यान देंगे?

पान के गुण विज्ञान-सिद्ध होने पर तमाकू, काफी आदि की तरह इसको भी अन्ताराष्ट्रिय बाजार में होने तो यह भी विदेशों के साथ व्यापार बन सकता है। आज के विकसित स्टोरेज और केनिंग उद्योग के होते किस्मों को खाने लायक हालत में भेजना असम्भव भी नहीं होगा। •

अन्नपूर्णा : एक याद

—देवेन्द्र सत्यार्थी—

उस दिन अन्नपूर्णा में सागर से मुलाकात हो गई। मैंने छूटते ही पूछा, "कैसे हैं वेदी साहब—तुम्हारे नये गुरुदेव ?"

"मैं उन्हें आज आखिरी सलाम कर आया !" सागर के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी। और वह अपना प्रिय गीत गुनगुनाने लगा :

दिल दरिया समुन्दरो डूँघे,
कौन दिलाँ दीयाँ जाणे !

'दिल-दरिया सागर से गहरे, दिल की बात कौन जाने ?' सागर बहुरूपियों से दूर रहता है। दिल की सुनता है। दिल के लिए दिल दरिया की उपमा उसे प्रिय है। गीत का यह बोल उसका सबसे बड़ा सहारा है। किसी को इस गीत का गला घोंटते देखकर सागर खुश नहीं रह सकता। गीत का बोल रास्ता दिखाता है। पेड़ के समान गीत की परछाइयाँ भी बढ़ती जाती हैं। रगों में दौड़ता है लहू, समय के समुन्दर में गिरता है दिल-दरिया। आत्मा के घाव का एक ही इलाज है—सचाई। सचाई से काम लो। ईमान पर ईमान रखो। तभी रेखाएँ मुँह से बोलेंगी। तभी रंग ताल देगा। जितना गहरा है दिल दरिया उस से कहीं गहरा है सागर। फिर भी वह एक कमर्शल आर्ट कम्पनी में कैसे मुलाजम हो गया, यह बात मैं न समझ सका।

लेखक

कमर्शल आर्ट कम्पनी का ढोल पिट रहा था। जब वेदी साहब ने सागर को अपनी कम्पनी में जगह दी, तो वादा किया कि वह उसे पूरी ईमानदारी के साथ अपनी कला दिखाने की इजाजत देंगे।

लेकिन कमर्शल कम्पनी ही क्या हुई जो ग्राहकों को खुश करने का असूल हाथ से जाने दे ?

से वह पाचन-क्रिया में सहायक होता है। अम्ल रोगी के लिए अधिक पान खाना अच्छा है। पान का रस गरम कर कान में डालने से कान का पीव, और आँख में डालने से चक्षु-रोग दूर होता है। हिस्टीरिया में भी दूध के साथ पान-रस का सेवन उपकारी है।

पान की जड़ें जहरीली होती हैं। यदि कोई स्त्री इसे बटकर खा ले तो जीवन भर के लिए बांझ हो जाती है! वैद्य लोग पान के रस के साथ कपास की जड़ बटकर उससे हीरक-चूर्ण को औषधार्थ शोधित करते हैं। खारी जमीन पर रहनेवालों के लिए भी पान लाभदायक है।

अधिक पान खाना हानिकर है, किन्तु प्रसिद्ध नृत्य-निर्देशक हीरालाल इसके अपवाद हैं। काम में लगने पर वे चार सौ बीड़े तक बनारसी पान खा जाते हैं! सहकारी दो-दो बीड़े पान देता रहता है, एवं वे उसे मुखस्थ कर, स्फूर्ति पाते, नृत्य निर्देशन करते रहते हैं। उनके लिए पाव भर सुपारी आधा पाव सुगन्धित तम्बाकू, एक बड़ी बोतल चूना, पाँच तोला कत्था नित्य व्यय होता है (पद्मिनी, रागिनी, माला की नृत्य-कुशलता का भी रहस्य है क्या?)

वास्तव में पान के प्रचलन को मद्दे नजर रखते इस पर अब कुछ विज्ञान की रीतियों से होनी चाहिए। गुण-दोष औषध-रूप से पान के का यथार्थ निर्णय होना क्या सरकारी या पर कुछ पान-प्रेमी या लोग इस ओर ध्यान देंगे!

पान के गुण विज्ञान-सिद्ध होने तमाकू, काफी आदि की तरह मी अन्ताराष्ट्रिय बाजार में तो यह भी विदेशों के साथ बन सकता है। आज के विकसित स्टोरेज और केनिंग उद्योग के होते किस्मों को खाने लायक हालत में भेजना असम्भव भी नहीं होगा।

सागर: एक याद

देवेन्द्र सत्यार्थी

उस दिन अन्नपूर्णा में सागर से मुलाकात हो गई। मैंने छूटते ही पूछा, "कैसे हैं बेदी साहब—तुम्हारे नये गुरुदेव ?"

"मैं उन्हें आज आखिरी सलाम कर आया !" सागर के चेहरे पर मुस्कान खिल उठी। और वह अपना प्रिय गीत गुनगुनाने लगा :

दिल दरिया समुन्दरों डूँघे,
कौन दिलाँ दीयाँ जाणे !

'दिल-दरिया सागर से गहरे, दिल की बात कौन जाने ?' सागर बहुरूपियों से दूर रहता है। दिल की सुनता है। दिल के लिए दिल दरिया की उपमा उसे प्रिय है। गीत का यह बोल उसका सबसे बड़ा सहारा है। किसी को इस गीत का गला घोंटते देखकर सागर खुश नहीं रह सकता। गीत का बोल रास्ता दिखाता है। पेड़ के समान गीत की परछाइयाँ भी बढ़ती जाती हैं। रगों में दौड़ता है लहू, समय के समुन्दर में गिरता है दिल-दरिया। आत्मा के घाव का एक ही इलाज है—सचाई। सचाई से काम लो। ईमान पर ईमान रखो। तभी रेखाएँ मुँह से

लेखक

[र्गी]। तभी रंग ताल देगा। जितना गहरा है दिल दरिया उस से कहीं गहरा है सागर। [फि]र भी वह एक कमर्शल आर्ट कम्पनी में कैसे मुलाजम हो गया, यह बात मैं न समझ [पा]ता।

कमर्शल आर्ट कम्पनी का ढोल पिट रहा था। जब बेदी साहब ने सागर को [अप]नी कम्पनी में जगह दी, तो वादा किया कि वह उसे पूरी ईमानदारी के साथ [अप]नी कला दिखाने की इजाजत देंगे।

लेकिन कमर्शल कम्पनी ही क्या हुई जो ग्राहकों को खुश करने का असूल हाथ [से] जाने दे ?

बहुत जल्द सागर को पता चल गया कि शान्ति-निकेतन में मास्टर मोशाय से सीखी हुई कला उस जगह एक कदम भी नहीं चल सकती। उसे रह-रहकर मास्टर मोशाय की याद सताती। उसकी कल्पना में शान्ति-निकेतन घूम जाता, जहाँ कभी सप्तपर्णी के पेड़ तले उसने मास्टर मोशाय के चरणों में बैठ कर सच्ची कला के दर्शन किये थे।

चाय की प्याली उठाकर सागर ने फटी-फटी निगाहों से मेरी ओर देखा। मैं समझ गया कि बेदी साहब से पिंड छुड़ाने के बाद पेट की आग बुझाने का मामला और भी नाजुक हो गया है।

मैं ने कहा, "ऐसी भी क्या बात हो गई थी? इतनी जल्द तो तुम्हें यहां क़दम नहीं उठाना चाहिए था। और भई, मेरी पुस्तक के डस्ट कवर का क्या हुआ?"

"उसी पर तो झगड़ा हुआ," सागर कहता चला गया, "दो दिन की मेहनत से मैंने वह डस्ट कवर तैयार किया। लेकिन बेदी ॰ को पसन्द ही न आया। इसकी रू और कलर स्कीम बदलने के लिये एक आर्टिस्ट को सौंप दिया गया। बोले: कभी रास्ते पर नहीं आ सकते। जो तुम पर चढ़ गया है, वह अब नहीं सकता।' उन्होंने मेरा डिज़ाइन का घोंट दिया। रंगो में भी जैसे वि दिया। मुझे यह सब नागवार गुज़रा मै वहाँ से चला आया।"

"अब क्या होगा?" मैं घबराया।

"होना क्या है?" सागर ने फैलाकर कहा: 'दिल दरिया साग गहरे। दिउ बात कौन जाने
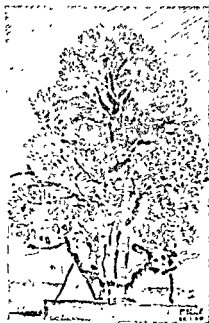
फिर पूं महीने बाद से मुलाकात तो पता चला किसी तरं दिलदरिया अपनी नाव खेने एक स्कूल के मा जा लगा है। वह मुझे घर ले गया, देर तक चित्र दि रहा। इन शान्तिनिकेत छाप थी।

सप्तपर्णी : शिल्पी : पंचानन पाल

देखते-देखते हम शान्ति-निकेतन की . . . में खो गये। सागर देर तक मास्टर मोशाय की कहानियाँ सुनाता रहा। विशेष रूप से उसने वह घटना सुनाई, जब वह जयपुर के एक कला-विद्यालय में शिक्षित . . . शान्ति-निकेतन पहुँचा था तब . . . ने हँसकर पूछा था : 'तुम्हारे पहले रंग पर हम अपना रंग कैसे चढ़ायेंगे?' और फिर वे पश्चात् कहते चले गये थे :—'रंग तो तुम्हारा अपना ही रहना चाहिए। मैं तुम्हें क्या सिखा पाऊँगा। पर हमारे कला-भवन के वातावरण में तुम अपने आप कुछ सीख जाओ तो हमारे जैसा भाग्यवान् कोई न होगा।'

सागर बोला, "हाल ही में पूरा एक सप्ताह शान्ति-निकेतन में बिताकर आया हूँ। वहाँ बहुत कुछ बदल गया। झोंपड़ियाँ हटाकर मकान आ जमे हैं। कुछ झोंपड़ियाँ अभी . . . हैं। सो वे भी कब तक? पक्के मकानों में मुझे वह . . . बना नज़र नहीं आई, जो झोंपड़ियों में और पेड़ों तले साँस लेती थी। पेड़ अब भी खड़े हैं। पेड़ों तले अब भी क्लास लगती है। लेकिन अब कला के दीवानों की पेड़ों के संग पहली-सी दोस्ती नहीं रही। मास्टर मोशाय तो अब अवकाश ले चुके हैं। लेकिन मैं तो उन्हीं से मिलने गया था। सप्तपर्णा का वह पेड़ उसी जगह मुस्करा रहा था; जहाँ कभी हमारी क्लास लगती थी। उसी तरह उसने बाँहें फैलाकर मेरा स्वागत किया। मैं भी बाँहें फैलाकर उससे लिपट गया। मेरी आँखों में आँसू डबडबा आये। और मैंने कहा : 'सप्तपर्णी, तुम उदास क्यों हो? क्या हुआ अगर तुम्हारी छाया में मास्टर मोशाय क्लास नहीं लेते?' और फिर मैं उस पेड़ का चित्र बनाने बैठ गया। अभी यह चित्र पूरा होने में देर थी कि किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा : "बेश भालो होए छे! चमत्कार!" मैं चौंका और मुड़ा। मैंने मास्टर मोशाय के चरण छू लिये। और फिर कहा : 'आप के बिना तो यह चित्र अधूरा ही रहेगा।' वे बोले : 'यह सप्तपर्णा मुझसे अलग तो नहीं है।' कहते-कहते सागर खामोश हो गया।

उसने मेज की बड़ी दराज से, चित्र . . .

मास्टर मोशाय का एक स्केच

माई-व हिन

मेरे सामने रख दिया। यह वही सप्तपर्णी का चित्र था। मुझे लगा, सप्तपर्णी का यह पेड़ मेरा भी स्वागत कर रहा है।

"तुम ने मास्टर मोशाय का चित्र क्यों न बनाया?" मैं यह पूछे बिना न रह सका।

वह बोला, "मास्टर मोशाय ने सच कहा था। यह सप्तपर्णी भी उन्हीं का एक रूप है। यह सच बात है। अगर वे शान्तिनिकेतन से अवकाश पाने के बाद भी घर बना कर वहीं रह गये, तो इसी लिए कि इस सप्तपर्णी को छोड़कर जाना उनके लिए मुश्किल था। एक बात और भी है। वह दिलदरिया वाला गीत उन्होंने विशेष रूप से सुना। गीत की भाषा वे नहीं जानते। पर गीत का भाव उन्हें प्रिय है। गीत सुनकर वे बोले: 'दिल दरिया की भाषा ही सच्ची भाषा है।' यह कहते-कहते वह चुप हो गया।

"ये बातें बहुत दिलचस्प हैं," मैं ने कहा, "लेकिन मेरी पुस्तक के डस्ट कवर का क्या हुआ? दिल दरिया की कोई लहर क्या मेरी समस्या भी सुलझायेगी? कल मैं अपने प्रकाशक से मिलने गया था। उसने बेदी साहब वाला डिज़ाइन दिखाया। सच कहता हूँ, सागर! तुम्हारी कला का गला घोटने के बाद जो बच रहा, वह था यह डिज़ाइन। मेरा प्रकाशक बेदी साहब का बिल अदा कर चुका है। फिर भी मैं ने कह दिया है, 'यह डिज़ाइन नहीं चलेगा, चाहे मुझे अपनी जेब से ही नये डिज़ाइन की कीमत अदा करनी पड़े।' अब मैं पूछता हूँ "क्या मेरी पुस्तक के डस्ट कवर पर सप्तपर्णी का यह पेड़ बांहें नहीं फैला सकता?"

"क्यों नहीं?" सागर ने उत्साह से कहा, "जरूर! जरूर!"

और सागर वह गीत गुनगुनाने लगा:

दिल दरिया समुन्दरों डूंघे,
कौन दिलाँ दीयाँ जाणे।

मेरे हाथ में सप्तपर्णी का चित्र ... रहा था। सागर की आंखें भी ... झुक गईं।

"तुम जानते हो, मेरा दिल कहां है?" वह बोला, "असल काम पड़ा रह जाता ... इधर-उधर के कामों में समय लुट जाता है।"

उसके चेहरे से जाहिर था कि ... पब्लिक स्कूल में बहुत खुश नहीं है।

फिर मैंने देखा, उसकी आंखों में ... चमक आती गई। मुझे लगा, वह ... नाव पर बैठा तेज़-तेज़ चप्पू चला रहा है।

मैं उसे ध्यान से देखता रहा। ... की छाप भी तो अपनी गाथा कह देती ...

सहसा मैंने सागर के मुख पर ... किरन देखी। वह बोला, "आत्मा के ... का और कोई इलाज नहीं, कोई इलाज ... है! सचाई इस घाव को भर सकती ... कला सचाई ही चाहती है। कला ... मास्टर मोशाय का प्रेम चाहती है। ... किसी सप्तपर्णी की याद पर नाव खेनी ...

*

अनेक देश एक इन्सान

—— कुलभूषण ——

चाड नदी के किनारे

विश्राम-कमरे में बहुत देर प्रतीक्षा में बैठा रहा। फिर अपने जहाज की होस्टेस एक अन्य कर्मचारी की मदद से पता चला कि यहाँ से कानो जाने वाली सर्विस बन्द हो चुकी है—अब केवल लेगास के रास्ते से कानो जा सकते हैं।"

"लेगास तो बहुत दूर है", मैंने कहा। "यह टिकट मुझे क्यों दिया गया, अगर सर्विस बन्द है तो?" किन्तु इसका उत्तर यह मिला कि, "आप लेगास से जाएं तो चालीस पौंड किराये और लगेगा।" यानी लगभग पांच सौ रुपये!

मैं कुल मिलाकर तीस पौंड लेकर बम्बई से चला था और रास्ते में कुछ अदन में खर्च हुआ था। अब सिर्फ बीस पौंड मेरे पास थे। यूनेस्को, से आये मेरे खर्च के पैसे पारि बैंक में मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मगर यहाँ, बिना पैसे के मैं क्या करूं, क्या न करूँ, कुछ समझ में न आया। सुबह के मनोहर मौसम में भी मुझे पसीना आ गया।

"अब क्या किया जाए?" मैंने होस्टेस से सवाल किया।

होस्टेस ने अपने नाजुक कंधे हिला दिए। फिर कुछ सोचकर बोली, "यहाँ एक होटल है, मेरे साथ आइए, मैं आपको वहाँ छोड़ दूं। अभी तो नहीं शायद शाम को कोई कमरा—"

"फिर इस समय?" मैंने पूछा।

उत्तर में उसने मेरा सामान उठवा कर स्टेशन वैगन में रखवा दिया।

आध घंटे बाद लोहे के एक ऊँचे फाटक के बाहर मेरा और एक अफ्रीकन का सामान रखकर, होटल के किसी अधिकारी से बिना कुछ कहे, हमारी होस्टेस चली गई। हम दोनों इस कठिन स्थिति में संयोग-वश साथी बन गए।

मजा यह था कि न मैं उसकी बात समझ सकता था, न वह मेरी। मैं अंग्रेजी के सिवा और कुछ बोल या समझ नहीं सकता था। और शायद वह भी अपनी वतनी जबान ही जानता था—अरबी या फीलानी या स्वाहेली।

देर तक मैं खड़ा रहा कि शायद कोई उधरसे गुजरे तो मैं उसे बुलाकर बात करूं। जब काफी समय हो गया और कुछ मामला बिगड़ता-सा लगा, तो मैंने अपने सा° से इशारों से कहा, "इस तरह काम

चलेगा। हमें पता लगाना चाहिए कि यहाँ कमरा मिल सकता है या नहीं?"

मेरे साथी ने मेरी बात के जवाब में हाथ हिलाकर, सिर झटकाकर कुछ कहा जो मेरे पल्ले नहीं पड़ा। मैंने हाथ के संकेत से उसे सामान की रखवाली करने के लिए कहा और गड्ढों के पार की इमारत की ओर चल पड़ा। दरवाजे के पास मुझे एक अधेड़ मोटी-सी महिला मिली, जिसे मैंने अंग्रेजी में समझाने की कोशिश की कि मुझे एक कमरा चाहिए। जब किसी तरह भी वह मेरी बात न समझ सकी, तब उसने मुझे अंदर 'बार'की ओर जाने का संकेत किया।

इस समय 'बार' पर एक मोटा आदमी बैठा काफी पीता हुआ इठ[illegible] रहा था। उसने मोटी फ्रेंच महिला से [illegible] देर बातचीत कर हाथों के संकेतों द्वारा [illegible] बता दिया कि यहाँ कोई कमरा [illegible] नहीं है।

अब मैं वापस गया और सामान [illegible] कर बड़े फाटक के बाहर निकल आ[illegible] मेरा अफ्रीकन साथी भी मेरे पीछे हो लि[illegible] और मैंने सोचा कि चलो, एक से दो [illegible] कुछ देर चलने के बाद, मोटे मोटे अक्ष[illegible] लिखा देखा "होटल डु चाड।" अन्द[illegible] देखा कि एक बड़े आँगन के तीन तर[illegible]
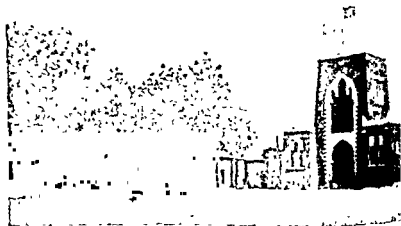
बार्नी में अमीर का महल : पेड़ों के नीचे अमीर की अदालत

खात कमरे हैं, और बाहर आँगन में कुछ मेजों के गिर्द कुर्सियाँ पड़ी हैं। हरे, पीले, नीले रंग के मेजपोशों से सारा वातावरण रंगदार लग रहा था और एक मेज पर एक फ्रेंच युवती बैठी बड़ी अदा से काफी के प्याले से चुस्कियाँ ले रही है।

मैंने लक्ष्य किया, मेरे साथी को देखकर युवती की त्यौरियाँ चढ़ गईं। अपनी आँखें फेरकर मैंने कमरों की ओर देखा। उनमें से अधिकतर मुझे खाली नजर आए। लेकिन तभी एक पतली-सी लड़की ने आकर मुझे व मेरे साथी को ऊपर से नीचे तक देखा और फिर "नोई-नोई" जैसे कुछ शब्द कहे। मैंने अंग्रेजी में अपनी प्रार्थना दोहराई कि मुझे एक कमरा चाहिए, लेकिन कोई नतीजा न निकला। हम दोनों फिर सड़क पर आ गये।

अटेची व बैग उठाने से मेरे हाथ लाल हो गए थे। इधर उधर भटककर गर्मी भी महसूस होने लगी थी। प्यास के मारे गला सूखा जा रहा था, क्योंकि सुबह से कुछ भी खाने को न मिला था। शायद मेरे अफ्रीकन साथी की भी यही दशा थी।

मैंने सोचा, क्यों न पारि (Paris) को "कब्ल", (तार) दे दूँ कि मैं यहाँ फंस गया हूँ। सो "पोस्त" कहकर हमने पोस्ट ऑफिस का पता पा लिया।

मैंने तार लिखकर काउन्टर के पीछे

कानो की एक मसजिद

बैठे एक सज्जन को थमाया और पैसों के लिए अफ्रीकी पौंडों के नोट आगे कर दिए। उसकी फ्रेंच मैं समझ नहीं पाया लेकिन सिर हिलाने से इन्कार जाहिर था। पौंड उसने क़बूल न किये। आज इतवार के कारण बैंक भी बंद थे, सो पौंडों की फ्रांकों में तबदीली भी असंभव थी! हम दोनों अपना सामान उठाकर फिर आगे बढ़ चले।

'कैम्प कुफ्रा' (रंगरूटों की भरती के दफ्तर) पर आकर दो युवक और एक अफ़सर की मदद के फलस्वरूप फिर 'एअर फ्रांस' की वही स्टेशन-वैगन कैम्प के बड़े दर-वाजे से अन्दर दाखिल हुई। हम दोनों ने अपना अपना सामान उठाया और गाड़ी में सवार हो गए। अपने मित्रों को मैंने धन्यवाद कहा और गाड़ी चल दी।

'एअर-फ्रांस' के कार्यालय में एक मुस्क-राते हुए अंग्रेजीदां व्यक्ति ने, मेरी सारी दास्तां सुनी। फिर उसने फोन पर दो-तीन जगह फोन किए। मैंने पैरिस के लिए एक द्रुतगामी तार दिया।

कुछ देर बाद मेरा ठहरने का प्रबन्ध हो गया, मेरे अफ्रीकी पौंडों के नोट फ्रांकों में बदले गए, और मैं सामान सहित अपने होटल के कमरे में पहुँच गया। मेरे अफ्रीकी साथी को ड्राइवर किसी अन्य स्थान पर ले गया तो एकाएक इस संदेह को पुष्टि मिली कि शायद मेरे हबशी साथी के कारण ही मुझे किसी भी फ्रेंच होटल में स्थान नहीं मिला था!

'लि राल्यी' नामक इस होटल को एक फ्रेंच दम्पति चलाते थे। परिवार में दो वर्ष उम्र के दो जुड़वां लड़के और एक १८ वर्षीया लड़की भी थे। पति-पत्नी और लड़की, तीनों जने दिन भर 'बार' के पीछे खड़े शराब के गिलास भरते रहते, या खाने की प्लेटों को ले जाकर गाहकों के सामने मेजों पर सजाते रहते, या पत्नी रसोई में पकवान पकाती और नौकरों से बर्तन धुलवाती और पति कार में बैठकर होटल के लिए शराब, डबल रोटी और अन्य सामान लाने बाजार चला जाता।

मेरा कमरा पिछले दालान के परे था, जहां आरामकुर्सी पर बैठा मैं इस फ्रेंच परिवार की चीखती ऊँची आवाजें और जुड़वां बच्चों का रोना सुनता रहता। सामने आंगन में एक पेड़ था जिसके नीचे मोटर खड़ी थी और जगह-जगह अफ्रीका की जंगली छिपकलियां रेंग रही थीं। इन्हें देखकर मैं पहले डर गया—लाल और पीले और हरे धब्बों वाली छिपकलियां गर्दन उठाए देर तक एक ही मुद्रा में जमी थीं लेकिन पता चला कि ये काटतीं नहीं।

समय भार-स्वरूप गुजरने लगा। बार के कमरे में जाकर सुबह नाश्ता और दोपहर को खाना खा आता और बाकी छन अपने कमरे में सोता अथवा पढ़ता रहता। साढ़े चार बजे होटल के बाहर पानी का छिड़काव कर खुली जगह पर मेजें, कुर्सियां लग जातीं। यहां बैठकर ठंडे रस का एक गिलास लेकर घंटा दो घंटे बैठना

दूसरे कुछ मेजों पर फ्रेंच पुरुष और युवतियां व महिलाएं बैठे बियर और ब्रांडी या कॉफी पीते रहते ।

यहाँ मुझे केवल एक जर्मन व्यक्ति ही ा मिला, जो अंग्रेजी बोल सकता था; ह का नाश्ता खाने समय एक दिन मेरी से मुठभेड़ हो गई । भारी-भरकम, ऊंचा : हावभाव व सूरत-शक्ल से नाविक । घ बैठे एक फ्रांसीसी ने मेरे विषय में ा था कि मैं अंग्रेजी बोलता हूँ । बस, ी से वह मेरे साथ बातें करने लगा । पहले उसकी आँखें शरारत से चमक उठीं । र मुस्करा कर बोला :

"तुम भारतीय नहीं हो।"

क्यों ?" मैंने हैरानी से पूछा।

"ऊं हूँ, तुम भारतीय नहीं ो। तुम्हारी अपनी भाषा हाँ है ?"

"हमारी भाषा हिन्दी है," ने जोश में आकर कहा। मगर स जर्मन नाविक पर कोई प्रभाव हीं पड़ा। बोला, 'अपना पास-ोर्ट दिखाओ।" और पासपोर्ट ेखकर बोला "तुम अंग्रेज के च्चे हो! पासपोर्ट पर भी अंग्रेजी ही लिखी है, बोलते भी ुम अंग्रेजी में हो, काम भी अंग्रेजी में करते हो। फिर तुम भारतीय कहाँ से हुए ?"

स्पष्ट था कि वह मजाक भी कर रहा था, कटाक्ष भी। मगर मेरे दिल में उसकी बात जम गई। मुझे विश्वास हो गया कि भारत की राष्ट्रियता की सच्ची नींव उस दिन पड़ेगी जिस दिन भारत में एक भारतीय भाषा राज्यभाषा होगी। इस एक जर्मन का एक कटाक्ष हिन्दी के विरोधी और अंग्रेजी के समर्थकों को परास्त करने के लिए पर्याप्त है।

एक दिन शाम को मैं खाने के लिए होटल की मेज पर बैठा तो दो नौजवान नजर आए। अरे, ये तो वही थे, जिन्होंने उस प्रथम दिन मुझे बचाया था। मैंने उठकर उन्हें अपनी मेज पर बुलाया और अपने साथ खाने के लिए आग्रह किया। काफी कठिनाई से वे माने।

खाने के बाद उन्होंने मुझे सिनेमा देखने के लिए आमंत्रित किया। सो हम 'ली स्वार" (शाम) नामक सिनेमाघर में गए, जो पोस्ट आफिस के सामने था। फिल्में अमरीकन थीं, मगर सम्वाद फ्रेंच भाषा में थे। बारह बजे रात को फिल्म समाप्त हुआ, तो बाहर मेज पर बैठकर हमने तीन बोतलें बियर पी। हमारी मित्रता अब पक्की हो गई थी।

'एअर-फ्रांस' के कार्यालय में मैं प्रतिदिन जाता और पूछ आता था कि पारि से कोई उत्तर आया या नहीं। पांचवें दिन दिन पता चला, उत्तर आ गया है कि मुझे माईड्ग्री तक पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया जाए। मेरे नाम एक तार भी आया था

बैठे एक सज्जन को थमाया और पैसों के लिए अफ्रीकी पौंडों के नोट आगे कर दिए। उसकी फ्रेंच मैं समझ नहीं पाया लेकिन सिर हिलाने से इन्कार जाहिर था। पौंड उसने कबूल न किये। आज इतवार के कारण बैंक भी बंद थे, सो पौंडों की फ्रांकों में तबदीली भी असंभव थी। हम दोनों अपना सामान उठाकर फिर आगे बढ़ चले।

'कैम्प कुफ्रा' (रंगरूटों की भरती के दफ्तर) पर आकर दो युवक और एक अफ़सर की मदद के फलस्वरूप फिर 'एअर फ्रांस' की वही स्टेशन-वैगन कैम्प के बड़े दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुई। हम दोनों ने अपना अपना सामान उठाया और गाड़ी में सवार हो गए। अपने मित्रों को मैंने धन्यवाद कहा और गाड़ी चल दी।

'एअर-फ्रांस' के कार्यालय में एक मुस्कराते हुए अंग्रेजीदाँ व्यक्ति ने, मेरी सारी दास्ताँ सुनी। फिर उसने फोन पर दो-तीन जगह फोन किए। मैंने पैरिस के लिए एक द्रुतगामी तार दिया।

कुछ देर बाद मेरा ठहरने का प्रबन्ध हो गया, मेरे अफ्रीकी पौंडों के नोट फ्रांकों में बदले गए, और मैं सामान सहित अपने होटल के कमरे में पहुँच गया। मेरे अफ्रीकी साथी को ड्राइवर किसी अन्य स्थान पर ले गया तो एकाएक इस संदेह की पुष्टि मिली कि शायद मेरे हबशी साथी के कारण ही मुझे किसी भी फ्रेंच होटल में स्थान नहीं मिला था!

'लि राल्यी' नामक इस होटल एक फ्रेंच दम्पति चलाते थे। परिवा दो वर्ष उम्र के दो जुड़वां लड़के एक १८ वर्षीया लड़की भी थे। पति और लड़की, तीनों जने दिन भर के पीछे खड़े शराब के गिलास भरते या खाने की प्लेटों को ले जाकर ग्राह सामने मेजों पर सजाते रहते, या पत्नी में पकवान पकाती और नौकरों से धुलवाती और पति कार में बैठकर हो लिए शराब, डबल रोटी और अन्य लाने बाजार चला जाता।

मेरा कमरा पिछले दालान के जहां आरामकुर्सी पर बैठा मैं इस परिवार की चीखती ऊँची आवाज़ जुड़वां बच्चों का रोना सुनता रहता। आंगन में एक पेड़ था जिसके नी खड़ी थी और जगह-जगह अफ्री जंगली छिपकलियां रेंग रही थीं देखकर मैं पहले डर गया—लाल और हरे धब्बों वाली छिपकलिय उठाए देर तक एक ही मुद्रा में ज लेकिन पता चला कि ये काटतीं न

समय मार-स्वरूप गुजरने लगा के कमरे में जाकर सुबह नाश्ता औ को खाना खा आता और बा अपने कमरे में सोता अथवा पढ़त साढ़े चार बजे होटल के बाहर छिड़काव कर खुली जगह प कुर्सियाँ लग जातीं। यहां बैठकर का एक गिलास लेकर घंटा दो घं

दूसरे कुछ मेजों पर फ्रेंच पुरुष और युवतियां व महिलाएं बैठे बियर और ब्रांडी या कॉफी पीते रहते।

यहाँ मुझे केवल एक जर्मन व्यक्ति ही ऐसा मिला, जो अंग्रेजी बोल सकता था; सुबह का नाश्ता खाते समय एक दिन मेरी उससे मुठभेड़ हो गई। भारी-भरकम, ऊंचा कद हावभाव व सूरत-शक्ल से नाविक। बैठे एक फ्रांसीसी ने मेरे विषय में था कि मैं अंग्रेजी बोलता हूँ। बस, से वह मेरे साथ बातें करने लगा। पहले उसकी आँखें शरारत से चमक उठीं। मुस्करा कर बोला :

"तुम भारतीय नहीं हो।"

क्यों?" मैंने हैरानी से पूछा।

"ऊं हूँ, तुम भारतीय नहीं। तुम्हारी अपनी भाषा हाँ है?"

"हमारी भाषा हिन्दी है," ने जोश में आकर कहा। मगर जर्मन नाविक पर कोई प्रभाव हीं पड़ा। बोला, 'अपना पास-र्ट दिखाओ।" और पासपोर्ट खकर बोला "तुम अंग्रेज के च्चे हो! पासपोर्ट पर भी ंग्रेजी ही लिखी है, बोलते भी म अंग्रेजी में हो, काम भी ंग्रेजी में करते हो। फिर तुम ारतीय कहाँ से हुए?"

स्पष्ट था कि वह मजाक भी कर रहा था, कटाक्ष भी। मगर मेरे दिल में उसकी बात जम गई। मुझे विश्वास हो गया कि भारत की राष्ट्रियता की सच्ची नींव उस दिन पड़ेगी जिस दिन भारत में एक भारतीय भाषा राज्यभाषा होगी। इस एक जर्मन का एक कटाक्ष हिन्दी के विरोधी और अंग्रेजी के समर्थकों को परास्त करने के लिए पर्याप्त है।

एक दिन शाम को मैं खाने के लिए होटल की मेज पर बैठा तो दो नौजवान नजर आए। अरे, ये तो वही थे, जिन्होंने उस प्रथम दिन मुझे बचाया था। मैंने उठकर उन्हें अपनी मेज पर बुलाया और अपने साथ खाने के लिए आग्रह किया। काफी कठिनाई से वे माने।

खाने के बाद उन्होंने मुझे सिनेमा देखने के लिए आमंत्रित किया। सो हम 'ली स्वार" (शाम) नामक सिनेमाघर में गए, जो पोस्ट आफिस के सामने था। फिल्में अमरीकन थीं, मगर सम्वाद फ्रेंच भाषा में थे। बारह बजे रात को फिल्म समाप्त हुआ, तो बाहर मेज पर बैठकर हमने तीन बोतलें बियर पी। हमारी मित्रता अब पक्की हो गई थी।

'एअर-फ्रांस' के कार्यालय में मैं प्रति-दिन जाता और पूछ आता था कि पारि से कोई उत्तर आया या नहीं। पांचवें दिन दिन पता चला, उत्तर आ गया है कि मुझे माईट्रयी तक पहुँचाने का प्रबन्ध कर दिया जाए। मेरे नाम एक तार भी आया था

कि मार्इट्री में मैं किस व्यक्ति से मिलूँ।

उसी दिन शाम को एक फ्रांसीसी सज्जन मुझे होटल में मिले और खाने के लिए अपने घर ले गए। यहाँ की अधिकतर कारों की तरह, उनकी कार भी सलेटी रंग की सिट्रोयन थी, जो उछलती-कूदती, ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर आसानी से चली जाती है। मैं इस कार में बैठ गया और कुछ देर बाद हम एक कच्ची सड़क को पार कर, एक कारखाने के बाहर, खुले आंगन जैसी जगह से गुजर कर रुक गए। यहाँ से दस कदम पर ही उनका घर था।

श्री पीनों ने मुझे अपनी पत्नी से मिलाया, जो किसी अंग्रेजी कॉन्वेंट में पढ़ चुकी थीं और इसलिए अंग्रेजी बोल लेती थीं। श्रीमती पीनों फ्रांस की सुन्दरता के अनुरूप ही थीं और उनके दो बच्चे भी बड़े भोले और चंचल थे। उनके साथ दो घंटे बिताकर और खाने के बाद सिट्रोनेल का गर्म प्याला पीकर मुझे लगा, कि मैं सभ्यता के दायरे में फिर से लौट आया हूँ!

अगले दिन सुबह दस बजे मैं फिर 'एअर फ्रांस' के कार्यालय में गया। मेरे लिए कार का प्रबंध अभी तक नहीं हुआ था, इसलिए हम दोनों खुद ही कारवाले की खोज में निकल पड़े। 'ह मेंत बनार्ड' के दफ्तरों को पीछे छोड़कर हम हबशियों की बस्ती की ओर निकल गए, जहाँ मिट्टी के घर थे, मिट्टी की ही कच्ची, ऊँची-नीची सड़कें थीं और तेज धूप में पीली मिट्टी और काले इंसानों और सफेद कपड़ों के सिवा और कोई रंग दिखाई नहीं देता था।

एक गली में पूछताछ की, जकरिया कहां है?' फिर दूसरी पूछा, 'गाड़ियों वाला अब्दुल्ला क और तीसरी बार जब कार रुकी, तो फ्रांस के आदमी ने बाहर निकलक नीचे थोड़ी-सी छांव में खजूर की लेटे एक हबशी से बातचीत शुरू बातचीत शायद अरबी में हो रही जकरिया फ्रांसीसी भी जानता कुछ कुछ अंग्रेजी भी। मेरी तरफ उसके काले चेहरे पर सफेद दां उठे और उसने मेरा अभिवादन कि अपनी लुंगी को कसकर बांध लिया

हम वापस चले, तो 'एअर आदमी ने बताया, कल दोपहर को अब्दुल्ला जकरिया मुझे लिवाने आ सामान बांधकर चलने के लिए तैया

अगले दिन बारह बजे तैया प्रतीक्षा करता रहा, मगर जकरि आया। शाम के पांच बजे, जब हो चुका था, एक बहुत बड़ी और गाड़ी ने होटल के आंगन में प्रवेश अंदर से एक ऊँचा और चौड़ा निकला, जिसने हरे रेशम की कसीदे का अबगादा (गले से नीचे तक बांहोंवाला पहरावा रखा था। सिर पर हरी-सुनहर थी और पांवों में पंजाबी जूतियों तिल्ले की चमकती चप्पलें थीं। उसके चेहरे को ध्यान से देखा, हैरानी का ठिकाना न रहा। वही हबशी, अब्दुल्ला जकरिया था

जकरिया ने देर के लिए क्षमा मांगी और बोला, "आज मेरा ड्राइवर नहीं जा सकेगा, क्योंकि उसे माईदूग्री में रात ठहरने की अनुमति नहीं मिल सकी। सो कल ...ह सात बजे आप तैयार रहे।"

दूसरे दिन वह ठीक समय पर आ ा। मेरा सामान बंधा रखा था, उसे ...ी के पीछे लादा और चल पड़े। गाड़ी ...रे और जकरिया के अलावा दो और ...दमी थे। एक ड्राइवर था, और दूसरा ...नर। फ्रांसीसी बस्ती की पक्की इमा-...ें, बड़ी बड़ी दूकानों और बैंकों को छोड़-...र हम एविन्यू द ला मौस्क की हबशी मंडी ...गए। फिर गाडी की मरम्मत के लिए ...शॉप में जाकर दो घंटे बरबाद किए।

इस दौरान में जकरिया ने मुझे बताया ...ि वह नाइजीरिया का निवासी है मगर ...ई लामी में उसका गाड़ियों का काम ...ना चल निकला है कि आज से नौ वर्ष ...ले वह अपनी सब औरतों को लेकर यहां ...ा बसा है। उसका अपना मकान है, ...ई गाड़ियां हैं, पांच ड्राइवरों को नौकर ...रख लिया है।

"तब तो आप अमीर आदमी हैं?"

जकरिया का चेहरा खिल उठा। बोला, "मैं मेहनत करता हूँ।"

गाड़ी ठीक होने के बाद हम पुलिस ...टेशन गए। यहा वृक्षों से घिरे बड़े से ...आंगन के चारों ओर खपरेल की छतों वाली ...तरतीब इमारतें थीं। सभी जगह स्त्रियों, ...च्चों, पुरुषों की भीड़ थी। और इन सब ...के बीच खाकी वर्दी और गहरी नीली टोपी-वाले सिपाही घूम रहे थे।

ड्राइवर और क्लीनर का परमिट बनवाने में जकरिया को देर नहीं लगी। वह काफी चालाक था और काम कराने के ढंग बखूबी जानता था। यहां से चलकर कुछ ही देर में हम चाड नदी के किनारे एक घाट पर पहुँच गए।

अप्रैल की गर्मी में नदी का किनारा ठंडा और शांतिदायक था। नदी के दोनों किनारों पर घने पेड थे। नदी का गदला पानी भी बहुत ठंडा था।

मेरे पास ही पेड़ के नीचे खड़ी एक पगली स्त्री कपड़े की थैली में मरे आटे को कुरेद-कुरेद कर उसमें अपने नोट छुपा रही थी! सफेद लबादे और सफेद पगड़ी पहने अफ्रीकी लोग नाव की प्रतीक्षा में खडे थे। नदी की धार में एक बड़ी सी नाव बहती चली आ रही थी।

आखिर लकड़ी के तख्ते से गुजर कर मेरी कार नाव में जा खड़ी हुई और मैंने जकरिया से हाथ मिलाया। नाव में यहां-वहां अफ्रीकी स्त्री-पुरुष बैठे या खडे थे। मैं जाकर गाडी में बैठ गया। नाव घाट से खुल गई और धीरे-धीरे सरकने लगी।

चाड नदी के दूसरे किनारे पर एक बस खड़ी थी—टूटी-फूटी पुरानी बस, जो चलते हुए काफी शोर करती होगी। नाव के दूसरे यात्री बसकी ओर भाग रहे थे—और मैं कार में बैठा कच्चे रास्ते की धूल को उड़ा रहा था मेरी माईदूग्री की यात्रा आरम हो गई।

अगली किश्त : नाईजीरिया की जमीन पर।

मुन्नी रोई तो भला क्यों ?

मुन्नी ने जब रोना शुरू किया तो पहिले फुस फुस करने लगी। फिर सुब्कियाँ भरीं और देखते देखते आसमान सर पर उठा लिया। मुन्नी की सहेली नीनू चुपके चुपके मुन्नी को मना रही अपनी तोतली भाषा में कह रही थी, "ना रो मुन्नी, जब मेरे पिता जी ओफिस से आयेंगे तो उ मैं बोलूंगी ..." लेकिन नीनू की सुनता कौन है। मुन्नी की नई गोल मटोल गुड़िया के भरे गुलाबी गालों पर मैल का बड़ा सा तिल लगा था, गुड़िया की नई फ्राक पर मैली उंगलियों के नि पड़े थे ... और मैं खिड़की की ओट में खड़ी यह तमाशा देख रही थी। जब मुन्नी नहीं मानी अंदर आई। मुझे देख कर तो जैसे गवैया वाह वा पाने पर ऊंची ऊंची तानों में गाने लगता है, उसी तरह से रोने लगी। बेचारी नीनू, हमारे पड़ोसियों की लड़की, दुबक कर सहमी सहमी कोने में खड़ी हो गई। अभी मैं सोच ही रही थी कि मुन्नी को मनाऊं तो नीनू और घबराएगी जो नीनू को दिलासा दूं तो मुन्नी अपनी चीखों से कानों फाड़ देगी, तभी नीनू की माँ, सुशीला दौड़ी आई। मु लपक कर गोदी में उठाया और लाड से कहने लगी, " बिटिया को कौन मारता है।"

और बिटिया रानी सिसकियाँ ले ले कर बोली, "चाची, नीनू—नीनू ने गुड़िया की फ्राक मैली कर दी!"

"ओ, हो, हो! हम नीनू को मारेंगे। अपनी प्यारी गु नई फ्राक लाके देंगे।"

"चाची, चाची, मेरे लिये नहीं, गुड़िया के लिये।"

मुन्नी, नीनू और गुड़िया को सुशीला अपने साथ ले गई और वे काम काज में लग गई। शाम के चार बजे होंगे जब मुन्नी

की ले कर नाचती हुई घर आई। नई फ्राक देख कर मैं ने सुशीला को आंगन से आवाज़ दी और चाय मेरे घर पीने को कहा। सुशीला आई तो मैं ने शिकायत की: "भला नई फ्राक लाने की क्या ज़रूरत थी?"

"यह नई नहीं बहिन! वही तो है। ज़रा धो डाली और इस्त्री कर दी, बस!"

"ज़रा धो डाली! ना बहिन, यह तो बहुत ही साफ़ और उजली धुली है! क्या चमक रही है!"

सुशीला चाय का एक घूंट पी कर बोली: "यह तो इस लिये कि इसे सनलाइट से धोया है। घर के कुछ कपड़े थे, मैं ने कहा चलो मुन्नी की गुड़िया की फ्राक भी धो डालूँ।"

मैं ने मन में कहा अब बात की जड़ तक उतर के रहूँगी: "तो ने कपड़े धो डाले तुम ने? अब हमें बनाओ मत! कपड़े पीटने पटखने की आवाज़ तक तो आई नहीं!"

सुशीला बोली: "अब चाय पी लें तो घर चल कर तुम्हें एक चीज़ दिखाऊंगी।" सुशीला मज़े से चाय पीती रही, मुसकराती रही, मुझे देखती रही। मैंने तो ऐसे तैसे कर के चाय पी डाली।

उस के घर जा कर देखा तो इस्त्री किये हुए कपड़ों का ढेर पड़ा था। उन्हें गिनने के लिए मैं हाथ लगाते डरती थी कि कहीं मैले न हो जाएं। सुशीला से बातों बातों में मालूम हुआ कि ये सभी कपड़े उस ने सनलाइट से धोए हैं। इन में चादरें, तौलिए, पर्दे, पाजामे, कमीज़ें, धोतियां, फ्राकें, वग़ैरह वग़ैरह, कोई एक चीज़ तो नहीं थी। मैं हैरान हो गई कि इतने सारे कपड़े धोए हैं तो समय भी कितना लगा होगा और साबुन भी कितना खर्च हुआ होगा। उस ने मुझे बताया कि, "यह सभी कपड़े आसानी से, आराम से, कम खर्चे में साफ़ और उजले धुले हैं। एक ही टिकिया से ४०/५० छोटे बड़े कपड़े धोना कोई बड़ी बात नहीं।"

उस दिन मैं ने फ़ैसला किया कि मैं भी अपने कपड़े सनलाइट से धो कर देखूँगी। और सचमुच सुशीला की एक एक बात सच निकली। सनलाइट साबुन थोड़ा सा मलने पर भरपूर झाग देता है और वह भी ऐसा कि जो कपड़े के ताने बाने में जा कर सारा मैल बाहर खींच लाए—न पीटने की ज़रूरत, न पटखने की—और कपड़े साफ़ और उजले धुल जाएं।

हां, एक बात और! सनलाइट की सुगंध भी ऐसी है कि कपड़ों में से स्वच्छता की महक आती है और इस का झाग हाथों को कोमल और मुलायम रखता है। अब जिसे इतना कुछ मिले उसे और क्या चाहिए!

यूरी अस्पताल में नौकर हो गया। अब उसे सब लोग डॉक्टर जिवागो के नाम से ...नते थे। उसे अपने काम में आनन्द मिलता था—आत्मसन्तोष भी। रोग के निदान तो वह इतना कुशल था कि बड़े-बड़े अनुभवी डॉक्टर भी उसकी तारीफ करने लगे।

किन्तु इस कामसे भी ज्यादा आनन्दित होते थे डा० जिवागो, लिख कर। मौका ...ते ही वह रचना करते। छात्रावस्था से ही उनकी महत्वकांक्षा थी कि वे एक महान् ...पन्यास लिखेंगे। जीवन के बारे में उनकी जो भी जानकारी और भावना या अनुभूति ...वे सब मिट्टी के नीचे बारूद की तरह उनके उपन्यास-रचना में छिपी रहेगी—और ...हरेक पाठक के हृदय में होगा उनका विस्फोट। किन्तु अभी तक इस तरह की उपन्यास-...ना का समय नहीं आया था। उसके लिए तो जीवन की गंभीर जानकारी चाहिए थी। ...वागो इसीलिए कविता लिखा करते थे। वे कवितायें मानों उनकी जिन्दगी के ...! बही-खाते के कुछ पन्ने थे—जिन्दगी में बहुत से वस्तुओं के परीक्षण से ...त, तीव्र अनुभूति पर आधारित। अथवा, जैसे चित्र-शिल्पी अपनी मास्टरपीस ...बना के पहले स्केच बनाकर परखता है। डा० जिवागो का विश्वास था कि :—

...मौलिकता और शक्ति ही किसी कलाकृति को यथार्थता प्रदान करती ...और उनके अभाव में कला बिलकुल बेकार, फालतू और वक्त ...की बरबादी बन जाती है।"

भावना प्रवण कवि पास्तेर्नाक फोटो लाइफ से साभार

जिन्दगी के दिन मजे में कट रहे थे। एक लड़का भी हो गया था। निवा
देख-भाल में ही समय काटती थी। किन्तु इन दिनों ही डा० जिवागो को दूना ि
एक सरहदी अस्पताल में। दूसरे राज्य के साथ लड़ाई छिड़गयी थी, देश में
प्राग भड़की ही थी। घायल सिपाहियों की भीड़ लगी थी उस अस्पताल में।

वहीं आकर डा० जिवागो का परिचय हुआ, लारा के साथ। लारा वहीं
थी। मास्को की लड़की थी, पहले भी देखा था उसे, किन्तु कभी . . .
कर सके थे। लारा के पिता की मृत्यु के बाद उसका वारिस बना बदमाश
जो उसके बाप की उम्र का ही उनका पुराना दोस्त था लेकिन अब उसको मा
बन गया। लारा की मा ने उसीके कहने से मास्को के एक कपड़ा-व्यवसाय में हि
लिया था और उसी की मार्फत ठीक किये मकान में वे रहते थे। कोमारोव्स्की
मा के प्रेम और बची-खुची सम्पत्ति से ही भला क्यों सन्तुष्ट होता? उसकी
किशोरी लारा पर भी लगी थी। अन्त में लारा उसके छल-छिद्रों की शिकार
उसके मनमें एक बार यह गर्व भी हुआ था कि मास्को का इतना नामी-गरामी आ
जैसा सुन्दरी युवती के प्यार का भिखारी था!

डा० जिवागो को यह भी याद था कि किस तरह, जबकि लारा की मा ने
खाकर आत्महत्या की थी और वे जब अध्यापक ग्रोमेको और मिशा के साथ
गये थे तब लारा और कोमारोव्स्की दोनों ही पास के कमरे से ससम्भ्रम बाहर नि
उसी दिन वह उसकी खूबसूरती और हाव-भाव पर न्यौछावर-से हो चुके थे।
और उससे प्राप्त अपनी संतान को वे प्यार करते थे किन्तु लारा को कभी
सके थे। डा० जिवागो मातृत्व, कला, दॉस्तोयव्स्की, फाउस्ट और स्वप्नों के लि
ही इस समस्या पर भी सोचने रहते कि यह कैसे संभव हुआ कि वह अपनी
सन्तान को प्यार करते हुए भी लारा में इतनी आसक्ति रखते हैं।

इधर लारा को जब उम्र बढ़ी और जिन्दगी के अनुभव हुए तब उसे अपनी
तरस आया। उसने कोमारोव्स्की के चंगुल से छूटने की प्राणपण चेष्टा की। अ
नादिया, की मदद से एक नौकरी जुटायी, पढ़-लिखकर इम्तहान पास कि
क्रांति-आन्दोलन का फरार आदमी नादिया का भाई पाशा उसके घर आकर
वह उसको प्यार भी करने लगी। उसकी मा ने जब उसे मास्कीनेस्को भेज

> "मुझे अपने इन बुद्धि जीवियों में यक़ीन नहीं। मैं तो
> मैं इधर-उधर बिखरे हुए एकाकी व्यक्तियों में यक़ीन
> हूँ—इन्हीं में शक्ति है चाहे वे थोड़े ही क्यों न हों।" —

से पहले वह मा से कोमारोवस्की का साथ छोड़ देने के लिये भी कह गयी थी। अन्त
. एक दिन उसने एक नाचपार्टी में कोमारोव्स्की पर गोली भी दाग़ी थी! किन्तु पूर्णतया
कोमारोव्स्की से लारा को मुक्ति तब मिली जब कि उसकी शादी पाशा से हो गयी।

कुछ साल तो लारा और पाशा मजे में रहे। किन्तु बाद में पाशा एक दिन लारा
से कुछ कहे-सुने बिना ही फौज में भर्ती हो गया। असल में पाशा को ऐसा लगा था, कि
लारा उसे मा का प्यार दे सकी है औरत का प्यार नहीं, जिसका वह हमेशा से भूखा था।
उसने अपने मन की इसी उपलब्धि को लारा से दूर रहकर आजमाना चाहा था।

बहुत दिन तक पाशा की कोई खबर नहीं मिली। कुछ लोगों ने यह कहा भी कि
वह दुश्मनों के साथ लड़ते-लड़ते मारा गया। लारा ने कई बार फौजी दफ्तर को चिट्ठी
लिखकर जानना भी चाहा पर कोई जवाब नहीं मिला। हारकर लारा को नर्स बनना
। वह अपना और अपनी बच्ची का काम अन्यथा चलाती। लाराको यह भी उम्मीद थी
शायद अस्पताल में किसी ऐसे घायल सिपाही से भेंट हो जाय, जो पाशा के हाल-चाल
सके। डा० जिवागो के साथ लारा का इस जगह परिचय तो हो गया किन्तु घनिष्टता
े का मौका अभी नही आया था।

क्रान्ति की लपटों में सारा देश झुलसने लगा। सेंट पीटर्सबर्ग की सड़को और गलियो
रक्तपात होने लगा। जार के सिपाहियों और क्रान्तिकारियों में घमासान मार-काट मची
, अस्पताल में तिल धरने को भी जगह न रही। काम इतना बढ़ा कि, डा० जिवागो
दम भर भी फुर्सत नहीं मिलती थी। फिर भी जब कभी डा० जिवागो को जरा भी
। मिलता वह कविता लिखते, डायरी के पन्ने उलटते और उन पर रोजमर्रा की
न्दगी के नाज-नक्शों को आँकते जाते। एक दिन डा० जिवागो ने अपनी डायरी में
वा: 'आज मुझे अकस्मात् यह ख़याल आ गया कि रूसी साहित्य में जब से ज्यादा
न्द की चीज है पुश्किन और चेख़व की बाल-सुलभ रूसी प्रकृति, दोनों की वह
ज्ज उदासीनता, जो वे मानव-जीवन के अन्तिम लक्ष्य या आत्मा की मोक्ष जैसे
म्बर-पूर्ण वस्तुओं की ओर सदा रखते रहे।... वे दोनों ही, अपने जीवन के
न्तिम दिनों तक, अपने मौजदा लेखक-जीवन के कार्यों की ओर आकृष्ट होते रहे

> प्रकृति सबसे अच्छी शान्तिकर दवा है। यह शान्त कर देती—यानी उदासीन बना देती है—और जो उदासीन हैं वे ही हर चीज़ को साफ़-साफ़ देख सकते हैं ताकि ठीक बने रहें और काम कर सकें। —चेख़व

और इन कार्यों की पूर्ति में अपनी जिन्दगी और कामों में नितान्त व्यक्तिग
शान्तिपूर्ण रीति ही अपनाते रहे। उन्हें इस की कमी चिन्ता नहीं रही कि दूसरे
जीवन या कार्यों में दिलचस्पी रखते हैं या नहीं। किन्तु उनके जीवन और कार्य
सब को दिलचस्प लगते रहे हैं। उनका काम—उन सेबों की तरह, जिन्हें पेड़ से
तोड़ लेते हैं—अपने आप पूरा हुआ और भाव और माधुर्य से अधिकाधिक पूर्ण होता ग

इसी बीच उनका प्रथम कविता-संग्रह मास्को से प्रकाशित हुआ
काव्य-मर्मज्ञों का ध्यान आकृष्ट भी किया।

तीन साल बाद डा० जिवागो को छुट्टी मिली। तोनिया का एक लम्बा नाराज
भरा पत्र मिला था। इसीलिये बड़ी कोशिश करने पर डा० जिवागो को यह छुट्टी मिली
सरहदी प्रान्त उराल से मास्को का रास्ता काफी लम्बा था। गाड़ी की खिड़की से
और क्रान्ति की ध्वंस-लीला देखते देखते डा० जिवागो की घर लौटने की खुशी म
गयी। हठात् सब कुछ बदल-सा गया था। हर आदमी अकेलापन महसूस कर रहा
कोई किसी की मदद करने से घबराता था। क्रान्ति के दौर में पुराने रीति-रिवाज
कानून टूट चुके थे, नये अभी बने नहीं थे। शायद इस परिस्थिति में भावुक मन को
पनाह थी—शाश्वत जीवन की विचारणा, शाश्वत सत्य और सौन्दर्य की भावना।

मास्को लौटकर डा० जिवागो ने देखा कि उनके नाते-रिश्तेदार, यार-दोस्त,
के फर्मांबरदार थे, सब न जाने कहाँ चले गये। निःसन्देह यह ठीक बात थी कि उन
ने गरीब-गुर्बाओं के हितों को कुचलकर उनकी लाशों पर ही अपनी बुलन्द इमारतें
की थीं इसीलिए पहले आघात में ही वे चूर्ण-विचूर्ण होकर ढह गयीं। क्रान्ति के
ही डा० जिवागो को यह अनुभूति हुई कि : "जीने का एकमात्र तरीका य
कि हम दूसरों की तरह जियें, अपना नामोनिशाँ छोड़े बिना ही
के जीवन में अपने को डुबा दें, कारण जिस खुशी में दूसरे न शा
हों वह भी क्या कोई खुशी है?"

ज़ार की सत्ता मिट गयी। नई सोवियत सरकार बनी। नये शासन में डा०
को कुछ कम तनख्वाह पर ही नौकरी करनी पड़ी। इसी बीच मास्को में टाइ
महामारी फैली। डॉक्टरों को कड़ी मिहनत करनी पड़ी। खाना-पीना और आरा
हराम हो गये। जीना भी मुश्किल। डा० जिवागो को अपने लड़के की बीमारी
और दवा जुटाना भी कठिन हो गया। वह खुद भी टाईफस के शिकार बन गये थे।

तोनिया और टीचर ग्रोमेको ने सलाह दी कि कुछ दिन के लिए कहीं दू
रहा जाय। हालत सुधरने पर फिर मास्को लौट आयेंगे। कहीं ऐसा न हो कि
सरकार की खाम-ख्याली से डा० जिवागो को क़ैद या खत्म कर दिया जाय।

डॉक्टर का यह पक्का मत था कि, "विज्ञान बनने के लिए मार्क्सवाद बहुत ज्यादा संदिग्ध है। मैं किसी ऐसे अन्य आन्दोलन को नहीं जानता जो इतना आत्मकेन्द्रित और वास्तविकताओं से काफी परे हो, जितना कि मार्क्सवाद है।" अतः आत्मरक्षा ही इस वक्त सबसे बड़ी अक्लमन्दी थी।

डा० जिवागो को अपनी मर्जी के खिलाफ दुबारा मास्को छोड़ना पड़ा। फिर वही लम्बा रास्ता तय करना पड़ा। अनेक झंझटों की वजह से रेल-गाड़ी कभी कभी तो कई दिन एक ही स्टेशन पर खड़ी रहती। एक बार एक जगह स्थानीय फौजी हाकिम के सामने डा० जिवागो को जवाबदेही भी करनी पड़ी। तभी यह पता चला कि यह फौजी हाकिम तो स्ट्रेलनिकोव के छद्म नाम से पाशा, लारा का पति, ही था!

अन्त में गाड़ी उराल प्रान्त के अन्तिम स्टेशन पर आ पहुँची। वहाँ से कुछ दूर वारिकिनो गाँव में जा ठहरे, सपरिवार डा० जिवागो। गाँव प्रायः बीरान-सा था। आने-जाने की सुविधा नहीं थी अतः किसी भी तरह के शहरी जन-जीवन से वह अलग जा पड़ा था। बिलकुल आदिवासियों जैसा जीवन था यहाँ। खेती-बारी और शिकार को ही लोगों की प्रधान आजीविका कह सकते थे।

कुछ दूर एक छोटा-सा शहर था जहाँ के पुस्तकालय में वह कभी-कभी पढ़ने जाते। एक दिन उसी पुस्तकालय में लारा से भेंट हो गई। अब वह उसी शहर में नौकरी करती थी। धीरे धीरे वे एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होते गये। डा० जिवागो को पता चला कि कोमारोव्स्की को षड्यंत्र से ही उनके करोड़पति पिता जिवागो का सर्वस्वान्त हुआ और उन्हें आत्महत्या करनी पड़ी थी। लारा के जीवन का अभिशाप भी कोमारोव्स्की ही था। दुःख के एक ही कारण-सूत्र को अपने जीवन में ग्रथित देखकर दोनों में और भी ज्यादा नजदीकी कायम हो गई।

एक दिन रात में शहर से वापस लौटते समय एक कज्जाक दल ने डा० जिवागो को पकड़ लिया और साईबेरिया भेज दिया। वहां उनके डॉक्टर की मृत्यु हो गयी थी अत॰ डा० जिवागो को उनकी जगह काम करना था। तोनिया और लारा को कुछ पता भी न चला डा० जिवागो का! साइबेरिया में डा० जिवागो प्राय॰ देखते कि बर्फ पर सूर्यास्त के गहरे कत्थई-से लाल रंग के धब्बे पड़े और जल्दी ही मिट गये। वह कोमल, धूलि-धूसरित दिगन्त, जो लिलैक के बैंगनी पराग से व्याप्त था अब चमकीले गुलाबी रंग से रंग गया और इसके धूमायित कुहासे ने रास्ते के पुष्पित वर्च पेड़ों की वह साज-सज्जा, जिसे उस गुनाबी आकाश पर अभी-अभी किसी ने अपने हाथों से सँवारा था, गन्दी कर दी; यह बिचारी पीली-सी तो पहले ही पड़ गयी थी और अब अकस्मात, गन्दली हो उठी। ऐसे क्षणों में डा० जिवागो की आन्तरिक व्यापक मानवीय अनुभूति उत्कृष्ट काव्यमयी भाषा

में फूट पड़ती और वे उसे तत्काल लिख लेते। और इस तरह डा० जिवागो का कलाकार इन विषम परिस्थितियों में भी मरा नहीं।

दो साल बाद ही डा० जिवागो साइबेरिया से भाग आये। पैदल ही आना चेहरा और कपड़े-लत्ते से भिखारी हो गये। किसी तरह लारा के मकान तक पहुँ लारा ने उनको बिना किसी दुविधा के अपना लिया। उसने डा० जिवागो को कि पाशा ने युग की आत्मा को ग़लत समझा था! उसने यह बहुत भयंकर सामाजिक और सार्वभौम खराबियाँ हैं उन्हें व्यक्तिगत और घरेलू समझ लिया। सिर्फ़ दलबन्दी की साजिशभरी बातें सुनी।

कुछ दिन बाद पता चला कि मामा निकोले और अन्य बहुत से लोगों के निकाले की सजा मिली है। तोनिया भी देश छोड़ने के लिये बाध्य डा० जिवागो की जान भी खतरे में है। भगोड़े को दंड तो मिलेगा ही। लारा की प्राण-रक्षा के लिए वारिकिनो गाँव में चली आयी। यहाँ के वीराने में कुछ दिन काफ़ी आराम से कटे। किन्तु दुर्भाग्य कि कोमारोव्स्की यहाँ भी आ काफ़ी बुड्ढा हो गया था वह, लेकिन आजकल इस नयी सरकार का हाकिम था। उसने कहा कि लारा और जिवागो की जान खतरे में है। वे उसके मंचूरिया चले तो सुरक्षित रहेंगे। डा० जिवागो राजी नहीं हुए। लारा उन्हें छोड़ नहीं सका। कोमारोव्स्की ने चुपचाप डा० जिवागो से कहा कि फ़ौजी अदालत ने को प्राण-दंड दिया है, अब लारा की बारी है। क्या वह अपने स्वार्थ के लिये उसे मरने देगा, बचायेगा नहीं?

जिवागो ने लारा को समझा-बुझा कर कहा, तुम कोमारोव्स्की की गाड़ी स्टेशन चली जाओ। मैं पीछे से सामान बाँधबूँधकर खुद आ रहा हूँ।

लारा निश्चिन्त होकर चली गयी। किन्तु डा०जिवागो के पैर स्टेशन की ओर बढ़े। वे उसी सुनसान मकान में चुपचाप बैठे रहे। वे कभी लारा को चिट्ठी लिखते फाड़ते, पागलों जैसी हालत थी।

उसी रात लारा का पति पाशा भी वहाँ आ पहुँचा। काफ़ी रात तक वह की ही बातें करता रहा—अपने दाम्पत्य-जीवन के आनन्दित क्षणों की चर्चा होने पर डा० जिवागो को पाशा की लाश मकान के सामने की बर्फ़ पर पड़ी मिली।

जिवागो फिर मास्को लौट आये। बिलकुल दरवेश। मास्को में आने पहले मुन्तज़िम की लड़की मारिना से उनकी मुलाक़ात हुई। उसने डॉक्टर की शुरू कर दी, उसके डा० जिवागो से दो सन्तान भी हुईं।

किन्तु डा० जिवागो का दुखी और परेशान मन कहीं नहीं लगता था। वह ला को भी छोड़कर मास्को में ही एक और जगह एक कमरा लेकर रहने लगे। ंना और अपने दो पड़ौसी मित्रों, डुडोरोव और गोर्डन, को पत्र लिखकर जता दिया।

एक दिन ट्राम में डा० जिवागो चले जा रहे थे कि अकस्मात् उन्हें एक पलित-केशा की ओर ताकने पर कुछ भ्रम हुआ। वे बार-बार उसको ओर ताकने लगे। रास्ते ीड़ से निकलते, धुसते हुए फिर अचानक दिल के दौरे में गिर पड़े। वे फिर कभी नहीं। उसी दिन संयोगवश मंचूरिया से लारा मोस्को आ पहुँची थी। वह काफी देर तक पास डा० जिवागो के शव के पास खड़ी रही। उसे रह-रहकर यही खयाल आ था कि जिन दो व्यक्तियों को वह जिन्दगी भर चाहती रही, वे मिट गये। लेकिन ने उसके जीवन को मिटा दिया वह नीच दुष्ट कोमारोव्स्की आज भी मजे में है!

इसके बाद लारा को कोई नहीं देख सका। उन दो पड़ौसियों और मारिना ने डा० जिवागो की लाश को दफनाया। तोन्या लाड्री गर्ल बन गई थी जो डुडोरोव गोर्डन के कपड़े धोती थी। गर्मियों में एक दिन गोर्डन और डुडोरोव फिर मिले डा० जिवागो की किताब को पढ़कर उनकी चर्चा करते रहे और मेरे दिल से ने दोस्त की दीर्लो भरी याद भी। ★

Wm. Collins Sons Ltd., London के सौजन्य से

इनाम का लोभ

"अगर तुम लोग वायदा करो कि २१ वर्ष की उम्र तक सिगरेट नहीं पिओगे"—मैंने अपने तीनों बेटों से कहा, "तो मैं हरेक को तीन सौ रुपये इनाम दूँगा।"

मेरे सत्रहवर्षीय बेटे ने कहा, "तीन सौ। पापा, मैं वायदा करता हूँ।"

मेरा पन्द्रह साल का लड़का थोड़ा हिचकिचाते हुए बोला, "इक्कीस वर्ष तक लम्बा अरसा है, लेकिन मैं कोशिश करूँगा।"

तब मैं अपने बारहवर्षीय बेटे की ओर घूमा, "और तुम?"

"ओह पापा" वह बोला, "आप ने पहले ही क्यों नहीं बताया!"

—'रीडर्स डाईजेस्ट' से साभार

क्या आप दिल से जवान हैं ?

जवान बने रहना बहुत कुछ मन पर भी निर्भर करता है। वैसे शरीर की इस नीरोगता और उम्र की कमी को जवानी के लक्षण तो मानने ही चाहिए।

शायद आप निम्नलिखित २१ प्रश्नों के उत्तर देना पसन्द करें और बगल के निम्नोक्त रीति से प्राप्त अंकों को जोड़कर यह जानना चाहें कि आप दिलसे कितने जवान हैं।

आप का उत्तर "नहीं" हो तो ० अंक लें और "कभी-कभी" हो तो एक तथा "हाँ दो अंक प्राप्त करें। सब प्रश्नों के उत्तरों के अनुसार प्राप्त अंकों को तीनों खानों में और नीचे लिखे नियमानुसार अपने ही बारे में जानकारी हासिल करें। इस प्रश्नोत्तर परी हम श्री० फ्रँक फेल्डमैन के प्रति आभारी हैं।

अब प्रश्नोत्तर शुरू करिए

	नहीं	कभी-कभी
(१) क्या लोग अक्सर आप की उम्र का अन्दाजा गलत लगाते हैं ? या आप जितनी उम्र के हैं उससे कम उम्र बताते हैं ?		
(२) अगर चन्द्रलोक की यात्रा करना सम्भव हो जाय तो क्या आप सबसे पहले यात्री दल में ही शामिल होना चाहेंगे ?		
(३) क्या आप अतीत (जो बीत गया) से ज्यादा अनागत (जो होनेवाला है) में रुचि रखते हैं ?		
(४) क्या आप कठिन समस्याओं के समाधान या उलझनों के सुलझाने में ज्यादा मजा लेते हैं ?		
(५) क्या आप की राय में, शिक्षा ही भय और अज्ञान के विरुद्ध सबसे बड़ा अस्त्र है ?		
(६) क्या आप दूसरों पर कठिन अनुशासन की अपेक्षा उनके द्वारा स्वयं माने हुए नियम-पालन या राजी-खुशी काम कराने के पक्षपाती हैं ?		
(७) अगर पिछले दस वर्ष की वैज्ञानिक प्रगति पर बहस चल रही हो तो क्या आप उसमें जानकारी और जोश-खरोश के साथ भाग ले सकते हैं ?		
(८) क्या आप खुराक और सेहत के बारे में बनाये गये आधुनिकतम नियमों के पालन में तत्पर रहते हैं ?		

) क्या आपके पास प्रायः युवक-युवतियाँ सलाह-मशविरा करने आते हैं ?

) क्या आप की पोशाक का फैशनेबुल होना जरूरी हो जाता है, या आप को अच्छा लगता है ?

) अगर आप से यह कहा जाय कि आप अपने पिछले पचीस वर्ष के रहन-सहन के ढंग को बदल दें, चाहे वह आप को कितना ही अच्छा क्यों न लगता हो, तो क्या आप तैयार हो सकते हैं ?

) क्या आप जवान लड़के-लड़कियों को अपने आप अपना-काम-काज चुनने देने के पक्ष में है ?

३) क्या आप नियमित रूप से सदा ही नयी से नयी किताबें और पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते रहते हैं ?

४) क्या आप नये-नये व्यंजन चखना, पकाना या पकवाना पसन्द करते हैं ?

५) क्या आप यह महसूस करते हैं कि बच्चों की बातों पर खूब अच्छी तरह ध्यान देना चाहिए और उनमें बचपन से ही जिम्मेदार बनने की भावना को जगाना चाहिए ?

(६) क्या आप कपड़ों की धुलाई के पुराने तरीकों की अपेक्षा नयी रीति से मशीनों के द्वारा कपड़े धोना ज्यादा पसन्द करते हैं ?

१७) क्या आप (अगर नाच-गान और खेल-कूद जानते हैं और इनमें सक्रिय भाग लेना पसन्द करते है तो,) नाच-गान और खेल-कूद के नये-नये तरीकों को आजमाना पसन्द करते हैं ?

(१८) क्या आप आज भी नयी-नयी चीजों को जानने, समझने और प्राप्त करने के लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने कि १६ से २५ वर्ष की उम्र में रहा करते थे ?

अगर आपके प्राप्तांकों का योग २१ से ३४ है तो आप दिल से जवान, उम्र जो भी हो। प्राप्तांक यदि १० से २० है तो आपके विचार दक़ियानूसी हैं। आप सच्चे मानी में न तो आधुनिक हैं, न जवान।

प्राप्तांक यदि १० से भी कम हैं तो आपको पिछली सदी में जीना चाहिए था। महाशय जी, किसी फिल्म को आप भले ही उलटकर चलालें, जिन्दगी को नहीं !

होता तो प्रयोगवादी अपनी कुण्ठाओं और आवर्जनाओं को प्रदर्शन-योग्य अलंकार न समझ लेता। अलौकिक होने के पहले यदि वह समाज-सापेक्ष्य बन सके, अमानवीय के पहले वह मानवीय बन सके और टालमटोल के लिए 'वैज्ञानिक मानवीयता' की मरीचिका का पीछा छोड़ दे, असाधारण के पहले साधारण (सहज) बन सके, कलाबाजी के बदले कला को प्रमुख मान सके, और भावोन्मादक होने के बदले वह भद्र बन सके तो अवश्य उससे कुछ आशा की जा सकती है।

विद्वान् बेविट का एक और कथन भी है :

'अपनी अलौकिक ज्योति (प्रेरणा) के सम्बन्ध में अपने को तथा अन्यों को धोखा दे सकना कहीं सरल है अपेक्षाकृत इसके कि उनको हम अपनी भद्रता, सहजता और बुद्धिमत्ता के स्तर के सम्बन्ध में बहका सकें।'

तो फिर प्रयोगवादी रचयिता क्यों इतनी निष्ठा के साथ अपने मार्ग पर डटा है? उत्तर है : जो उपचेतन अथवा अवचेतन अब तक अछूता रहा उसे खोजने, उसे व्यक्त करने का अग्रणी होने का सेहरा जो प्रयोगवाद के माथे बँधा, वह क्या कम पुरस्कार नहीं है? परन्तु यह खोज, यह भक्ति, (उपचेतन के प्रति) यह आसक्ति हैमिंग्वे के इस उक्ति की याद दिलाती है :

a wild dedication of your selves
To unpathed waters undream'd shores

अर्थात्, अज्ञात समुद्रों, अदृष्टपूर्व किनारों के प्रति पागल आत्म समर्पण।

किन्तु प्रश्न यह है कि क्या केवल इतना ही पर्याप्त है कि हम अछूते वर्ण्य, अछूती विधा, अछूता विधान खोजें, संयोजन करें, चलाएँ अथवा यह भी आवश्यक है कि वर्ण्य, विधा और विधान का प्रयोग [illegible] लिक हो, लोकरंजक हो, परंपरा से समकालिक परिवेश से समन्वित-समर्पित हो? केवल भव्यतम वैचित्र्य की खोज में पागल [illegible] बढ़कर मौलिक कौन होगा?

फ्रेंच प्रतीकवादियों तथा हासवादी [illegible] रोम के कवियों का हवाला देते हुए बेविट ने एक स्थल पर लिखा है कि उन लोगों ने 'अनेक विचित्र प्रयोग किए।' परन्तु सारी काव्यात्मक कार्रवाई (या इतर [illegible]) हमें कहीं भी न ले जा सकीं, जैसा [illegible] हम बहुत साफ देख सकते हैं।' प्रयोगवादियों के सम्बन्ध में इन पंक्तियों की सार्थकता निश्चित है। यह और बात है कि कुछ वर्षों तक चलती रहने पर भी दिग्भ्रांत दौड़ हिन्दी साहित्य के [illegible] उसी तरह एक गंदे कुरूप धब्बे के रूप में याद की जाय जिस प्रकार योरपीय [illegible] में प्रतीक-रूपक-तथा हासवादियों "पाप-प्रसून" को याद किया जाता है! दृष्टि से प्रयोगवादी का भी अपना [illegible] है। लेकिन एक ही क्षण, अधिक [illegible] क्या इसीलिए उसे क्षण से इतना मोह [illegible] अपनी अवधि का यह परिज्ञान [illegible] है, परन्तु उसके प्रति यह आसक्ति [illegible] क्या अत्यन्त स्वाभाविक नहीं है!

बेविट के उद्धरण : 'रेसो एन्ड रोमान्टिसिज्म' से तथा 'Abesrationss of the hour' से

शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है

'अनागता की आँखें'

वीरेन्द्रकुमार जैन की नवीनतम कविताओं का संग्रह

कविताएँ, जो अनागत के क्षितिज पर खुल रहे मानवीय प्रगति के अपूर्व नवीन प्रकाश पर्वों का संदेश वहन करती-सी लगती हैं:

'देख लेना, कल आदमी बदल देगा
भौतिक को आत्मिक में, अचेतन को चेतन में,
क्योंकि कल मनुज को सत्ता का भेद मिल जायगा।'

संग्रह खुलता है, '**कवि-यात्रिक : अमर जीवन की खोज में**' शीर्षक ५० पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका के साथ, जिसमें अपने आत्म-विकास की यात्रा को केन्द्र में रख कर कवि ने पिछले ५० वर्षों की विश्व-काव्य की प्रगति पर सर्वथा मौलिक और नवीन प्रकाश डाला है। मानव के लिए इसमें उज्ज्वल आशा का नूतन संदेश है। सत्ता के स्वरूप और जीवन-मूल्यों पर यह 'नितान्त स्वानुभूत चिन्तन, हिन्दी में अपने ढंग की अपूर्व चीज होगी।

रवीन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा पुस्तक कार्यालय एवं मुद्रक मण्डल १७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता-७ से प्रकाशित तथा

चतुर्थ वर्ष
अष्टम अंक
चौतालीसवीं किरण
मार्च, १९५९
बसन्तोत्सव अंक

संचालक
नीलरतन खेतान
चन्द्रकुमार अग्रवाल

सम्पादक व्यवस्थापक
पृथ्वीनाथ शास्त्री, एम० ए०

इस अंक में समर्पित

कहानी कुसुम

प्रधान कार्यालय
१७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता-७
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय
१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई ·
फोन : ४४-२४८

वार्षिक मूल्य ८) द्विवार्षिक १५)
एक प्रति ७५ नये पैसे

बोर्ड
स्ट्रा बोर्ड
श्रेष्ठ एवं
मार्गों की
परि।
से प्रस्तुत
बोर्ड सदा
स्वस्तिक बोर्ड
एण्ड पेपर
मिल्स लिमिटेड
पता
५१,
४, डलहौजी
कलकत्ता
फोन :

। सम्बन्धी सारा कार्य दफ्तरों से ही प्रारम्भ होता है। योजना की सफलता के लिए यह
ह है कि दफ्तर का प्रत्येक कर्मचारी पूरी तत्परता और पूर्ण कार्यकुशलता से काम करे।
भाव में राष्ट्र की प्रगति सुचारु रूप से नहीं हो सकती।

- दत्तचित्त हो कर अपना काम पूरा कीजिये ।
- अपना कार्य तुरन्त निपटा दीजिए। कार्य में तत्परता का अर्थ है जनता के लिए अच्छी सुविधा और आपकी पदोन्नति के अवसरों में वृद्धि ।
- अधिकाधिक बचाइये और उसे बीमा, प्रॉविडेण्ट फन्ड और भारत सरकार की अल्प बचत योजनाओं में लगाइये । इसमें योजना की सहायता और आपके भविष्य की सुरक्षा है ।
- फुरसत के समय अपने परिवार की सहायता कीजिये ।
- भारत सेवक समाज और प्रादेशिक सेना जैसे संगठनों में ऐच्छिक कार्य करके देश सेवा में हाथ बटाइये ।

योजना की सिद्धि – आप की समृद्धि

DA---58/3

नाप-तौल की मेट्रिक प्रणाली लागू हो जाने से हमें दो महत्वपूर्ण लाभ होंगे। प्रथम तो हमारे देश में अनेक प्रचलित प्रणालियों के कारण जो गड़बड़ी और नुकसान होते हैं, वे रुक जायेंगे।

इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सुचारु रूप से चल रही प्रणाली को हम पूर्णतया अपनाने में समर्थ हो सकेंगे। मेट्रिक प्रणाली को सारे विश्व में मान्यता प्राप्त है।

इन दोनों लाभों को प्राप्त करने की दिशा में हमने पहला कदम कुछ राज्यों और उद्योगों के चुने हुए क्षेत्रों में मेट्रिक बाट लागू करके उठाया है।

सरलता
व
एकरूपता
के *लिए*

भारत सरकार द्वारा प्रसारित

डी०ए० २८/४३३

सौंदर्य
प्रसाधनों में
अग्रगणीय
रेमी
स्नो
व पावडर
— सोल डिस्ट्रिब्यूटर्स —
कलकत्ता के लिये :

विनम्र निवेदन

★ सहयोगी लेखकों और कलाकारों से प्रार्थना है कि व अपनी रचनाएँ, कृतियाँ यदि प्रकाशनार्थ भेजना चाहें तो महीने की १५ तारीख तक भेजें।

★ रचना या कृति के साथ डाक टिकट न भेजें, क्योंकि अब हम अस्वीकृत रचनाएँ वापस नहीं कर पाते और रचनाओं की स्वीकृति रचना मिलने के बाद पन्द्रह दिन के भीतर ही भेज देते हैं।

★ सुप्रभात में सभी नवीन विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, अतः केवल साहित्यिक विषयों पर ही रचनाएँ न भेजें।

★ रचनाएँ साफ-साफ, प्राय : टाईप की हुई और कागज के एक ही तरफ स्याही से लिखी या छपी होनीं चाहिए और दोनों ओर हाशिए छूटे रहने चाहिए।

★ १५ दिन तक कोई भी सूचना न मिलने पर रचना अस्वीकृत समझें या जवाबी पत्र लिखकर पूछ लें। —सम्पादक

FORM IV

(Statement about ownership and other particulars about newspaper **SUPRABHAT** *to be published in the first issue, every year, after the last day of February.*)

(See Rule 8)

1.	Place of Publication	176, Muktaram Babu Street, Cal-7.
2.	Periodicity of its publication	Monthly
3.	Printer's Name	Shri Prithvinath Shastri
	Nationality	Indian
	Address	*176, Muktaram Babu Street, Cal-7*
4.	Publisher's Name	Shri Prithvinath Shastri
	Nationality	Indian
	Address	176, Muktaram Babu Street, Cal-7
5.	Editor's Name	Shri Prithvinath Shastri
	Nationality	Indian
	Address	176, Muktaram Babu Street, Cal-7
6.	Name/s and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	*Shri G D Agarwalla,* Stephen House, Calcutta-1

I, Prithvinath Shastri, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief

Prithvinath Shastri
Signature of Publisher

Date 1.3.59

प्रधान लक्ष्य

बहुत दिनों से यह एक फैशन हो गया है कि मिल्कियत और द्रव्य-वितरण के सवालों को हल करना ही सुधारकों का प्रधान कर्तव्य है। यह सच है कि समाज में द्रव्य-वितरण प्रायः ग़लत और अन्यायपूर्ण होता है। और इस बात का कोई भी नैतिक या उपयोगितावादी तर्क पेश नहीं किया जा सकता कि कोई भी आदमी, जिसने गैर-जिम्मेदार तरीके से जमीन हथिया रखी है वह उस जमीन की उपज को अपनी मर्जी से गोदामों में बन्द कर रखे या सड़ा दे, किसी को क्या? वास्तव में, जिस- प्राकृतिक साधन-सम्पत्ति पर सारे समाज का जीवन निर्भर है उस पर किसी का भी एकाधिपत्य नहीं होना चाहिए।

साथ ही हमें एक ऐसी मुद्रा-व्यवस्था की जरूरत है जो हमें बैंकों की गुलामी से छुड़ा दे, और हम जो कुछ पैदा करें उसे आसानी से खरीद सकें, हमें मिल्कियत की ऐसी व्यवस्था की जरूरत है कि जो इस एकाधिपत्य की प्रवृत्ति को रोक सके और ऐसा प्रबन्ध करे कि लोग उन साधनों पर जो समस्त मानव जाति की चीज हैं

इस्पात : क्या और कैसे ?

इस्पात मूल रूप से लोहा और कार्बन का मिश्रण है। मजबूती के लिए इसमें मैंगनीज, सिलीकोन, क्रोमियम तथा वैनेडियम आदि मिश्रित होते हैं। खानों से निकले लोहे में मिट्टी, सल्फर तथा फास्फोरस आदि खनिज भी मिले रहते हैं। अतएव इस्पात बनाने के लिए पहले कच्चे लोहे को आग में पिघलाकर साफ करते हैं फिर आवश्यक मात्रा में कार्बन तथा अन्य पदार्थ मिलाये जाते हैं।

कुछ समय पहले तक लोहे को साफ करने के लिए लकड़ी का कोयला काम में लाया जाता था। लेकिन अब लोहे की बढ़ती हुई माग को पूरा करने के लिए यह तरीका ठीक नहीं रहा है। १८ वीं शताब्दी में भी यही समस्या थी कि लोहा साफ करने के लिए ऐसा ईंधन काम में लाना चाहिए, जो सस्ता हो और पर्याप्त मात्रा में मिल भी सके। अतएव लोहा साफ करने के लिए खनिज कोयला काम में लाने की बात सोची गयी। लेकिन खान से निकाले हुए कोयले में वह ताकत और वे रासायनिक गुण नहीं होते, जो इस काम के लिए आवश्यक हैं। अतएव पहले भट्ठियों में इसे अधजला करके 'कोक' तैयार किया जाता है। लोहा पिघलाने की भट्ठियों में जब कच्चे लोहे के साथ कोक जलता है तब कोक से उत्पन्न कार्बन और कच्चे लोहे से उत्पन्न आक्सीजन के मिलने से एक नई गैस बनती है, जिसे 'कार्बन मोनोक्साइड' कहते हैं। लोहे से मिट्टी, सल्फर तथा फास्फोरस आदि पदार्थों को अलग करने के लिए चूने का पत्थर काम

जाता है, जो इन पदार्थों को लोहे से अलग करता तथा एक अन्य पदार्थ, 'स्लैग' तैयार कर देता है। इस प्रक्रिया के अनुसार इस्पात-कारखानों की चार शाखाएं होती हैं :

(१) कोक ओवेन या भट्टी, जो कोयले को अधजला कर कोक तैयार करती है;
(२) ब्लास्ट फर्नेस—जिसमें कच्चे लोहे को पिघला कर लोहा बनता है ;
(३) स्टील मेल्टिंग प्लांट—जिसमें पिघला कर तैयार हुए लोहे के साथ कार्बन आदि चीजें मिलाकर इस्पात बनता है ,
(४) रोलिंग मिल—जिसमें इस्पात बिक्री के लिए उपयुक्त रूपों में ढलता है।

इन चार प्रमुख शाखाओं के अतिरिक्त इस्पात के कारखाने में कुछ और भी विभाग होते हैं, जैसे बिजली पैदा करने के लिए बिजली-संयंत्र, लोहा पिघलाने की भट्टियों के लिए तेज हवा देनेवाले संयंत्र, इस्पात तैयार करनेवाले संयंत्र की देखभाल और मरम्मत करने के लिए मशीन-शॉप, पानी की सप्लाई तथा उसे ठंडा करने की व्यवस्था, अनुसंधान और परीक्षण करने के लिए प्रयोगशालाएँ, कच्चा माल तथा तैयार माल रखने के लिए गोदाम और प्रशासन तथा बिक्री के कार्यालय आदि।

कारखाने के लिए उपयुक्त स्थान

१० लाख टन इस्पात तैयार करने के लिए १७॥ लाख टन कच्चा लोहा, लगभग १७॥ लाख टन कोयला, ५ लाख टन चूने का पत्थर तथा २ लाख टन डोलोमाइट, मैंगनीज आदि अन्य पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इस्पात-कारखाना खड़ा करने के लिए वह स्थान सबसे अच्छा होता है, जो लोहे और कोयले की खानों के पास हो। साथ ही पर्याप्त मात्रा में पानी तथा यातायात की व्यवस्था भी देखनी पड़ती है। इस दृष्टि से हमारे देश में प्रस्तुत इस्पात कारखानों के लिए चुने गये स्थान—जमशेदपुर, बर्नपुर, राउरकेला, भिलाई और दुर्गापुर आदि बहुत ही उपयुक्त स्थान हैं।

ब्रिटेन, रूस, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में इस समय इस्पात बनाने के लिए बड़े कारखाने खड़े करने की प्रवृत्ति चल रही है। कारण, इन देशों ने यह अनुभव किया है कि जितना बड़ा कारखाना होगा, उत्पादन-व्यय उतना ही कम होगा।

रोलिंग मिल

रोलिंग मिल इस्पात कारखाने की महत्त्वपूर्ण शाखा है, क्योंकि कारखाना कितना बड़ा हो, इसका निर्णय इस शाखा के आधार पर ही किया जाता है। रोलिंग मिल में सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है—ब्लूमिंग मिल। ब्लूमिंग मिल की वार्षिक क्षमता इतने लाख टन

बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है, कि वह १३ लाख टन से १५ लाख टन तक इस्पात-पिंड माल तैयार करने में जरूर खपा सके। १३ लाख टन इस्पात-पिंड से १० लाख टन तैयार माल मिलता है। अतएव बिजली, कोयला, पानी और कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में मिलने की सुविधा होने पर ही १० लाख टन माल तैयार करनेवाला इस्पात-कारखाना बनाया जा सकता है। १० लाख टन से अधिक माल तैयार करने के लिए सामान्यतः दूसरे संयंत्र, और कभी-कभी दो से भी अधिक संयंत्र, लगाने पड़ते हैं।

सामान्यतः २० लाख टन से अधिक उत्पादनवाला कारखाना खड़ा करने पर यातायात, कच्चे माल तथा प्रबन्ध आदि की बहुत सी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती हैं।

कुछ देशों में अच्छे किस्म का लोहा और कोयला नहीं होता। ऐसे देशों में हाल ही में छोटी-छोटी भट्टियों में लोहा गरमाने की व्यवस्था हुई है। इन भट्टियों से दिन भर में केवल ५० से १५० टन तक लोहा तैयार किया जा सकता है। पर कीमत कुछ ज्यादा पड़ती है। फिर भी जर्मन गणराज्य तथा कुछ अन्य देशों में ऐसी छोटी भट्टियाँ काफी संख्या में लगायी जा रही हैं। इसका यह कारण है कि छोटी भट्टियों में तैयार किया हुआ लोहा आयातित (imported) लोहे से सस्ता बैठता है। इस दिशा में चीन में भी काफी प्रयोग हुए और हो रहे हैं। कुछ खास किस्म का इस्पात, जिसकी मांग थोड़ी ही रहती है, बनाने के लिए भी छोटी भट्टियाँ लगाना ही अधिकतर पसंद किया जाता है।

भारत में इस्पात के नये कारखाने

आज किसी भी देश की औद्योगिक उन्नति की कसौटी इस्पात का उत्पादन है और इसके उपभोग की क्षमता की दृष्टि से अभी अमेरिका पहले नंबर पर है। वहाँ हर साल १० करोड़ टन से भी अधिक इस्पात बनता है। रूस में अभी ५ करोड़ टन इस्पात हर साल बनता है। नयी सप्तवर्षीय योजना के अनुसार १९६५ में यह ८ करोड़ ६० लाख से ९ करोड़ १० लाख टन तक होगा और १९७० तक रूस आज के अमरीकी लौह-उत्पादन की बराबरी करेगा। ब्रिटेन और जर्मनी में सालाना उत्पादन २ करोड़ टन है। भारत का लक्ष्य दूसरी योजना के अंत तक हर साल ७० लाख टन इस्पात बनाना है। अतः अभी हम काफी पिछड़े हैं।

धरन बनाने से पहले इस्पात के पिंड बनाये जाते हैं और फिर उसमे रेल की पटरी आदि वस्तुएँ गढ़ी जाती हैं। उत्पादन के आँकड़ों में इन्हीं लौहपिंडों के वजन को लिया जाता है। १० लाख टन लौह-पिंडो से साढ़े सात लाख टन इस्पात का सामान तैयार होता है। दूसरी योजना की पूर्ति के लिए हमें ४५ लाख टन इस्पाती सामान तैयार करना होगा जिसका उत्पादन-ब्यौरा इस प्रकार है :—

१. वर्तमान कारखानों को बढ़ाने से	(टनों में) वर्तमान उत्पादन	(टनों में) १९६०-६१ का लक्ष
टाटा आइरन एंड स्टील वर्क्स	७ लाख ८० हजार	१५ लाख
इंडियन ,, ,, ,, ,,	३ लाख ३० हजार	८ लाख
मैसूर ,, ,, ,, ,,	३० हजार	१ लाख
२. सरकारी क्षेत्र के नये कारखानों से	.	
राउरकेला	—	७ लाख २०हजार
भिलाई	—	७ लाख ७०हजार
दुर्गापुर	—	८ लाख
कुल उत्पादन	११ ला० ४० ह०	४६ ला०६० ह०

राउरकेला और भिलाई के इस्पात-कारखानों में इस वर्ष ही इस्पात बनना शुरू होगा और साल के अन्त तक रोलिंग मिलें बिक्री के लिए इस्पात बनायेंगी। राउरकेला में २ लाख टन इस्पात की प्लेटें, ४,७०,००० टन इस्पात की विभिन्न किस्म की ५०,००० टन टीन की प्लेटें, और ५०,००० टन ढलवाँ लोहा तैयार होंगे उप-उत्पादन करने वाली मशीनें प्रतिदिन १३० टन कोलतार और इससे बनी चीजें, बेन्जौल, नैफथलीन आदि बनायेंगी। राउरकेला में सिन्दरी कारखाने जैसा एक बड़ा उर्वरक कारखाना भी बन रहा है, जिसमें ५,८०,००० टन नाइट्रोजन चूने का पत्थर बनेगा। भिलाई कारखाने में २ लाख टन रेल की पटरियाँ और इमारतों में काम आनेवाला १,६०,००० टन भारी इस्पात और २,६०,००० टन दर इस्पात, चद्दरें बनाने के लिए १,५०,००० टन इस्पात की सिलें और ३ लाख टन ढलाई काम आनेवाला लोहा बनेंगे। भिलाई में भी उप-उत्पादन करने वाली मशीनें १३० टन कोलतार और अन्य सम्बन्धित चीजें बनायेंगी। बर्नपुर और जमशेदपुर में नई ब्लास्ट भट्टियाँ बनने से लोहे का उत्पादन काफी बढ़ा है और बढ़ेगा।

भिलाई कारखाने के लिए तमाम मशीनें आदि रूस ने भेजी हैं, लेकिन का कार्य का पूरा दायित्व भारत पर ही है। राउरकेला में मशीनें आदि भेजने का ठेका लगभग ५० विदेशी फर्मों को दिया गया है।

अगस्त, १९५७ में लोकसभा में इन कारखानों की लागत का अनुमान इस तरह पेश किया गया था :—(१) तीन बस्तियाँ बनाने पर—४२ करोड़ रु०; (२) राउरकेला और भिलाई के लिए खानों पर २० करोड़ रु०; सलाहकारों की फीस पर ८ करोड़ रु०; देख-रेख करने वाले रूसी कर्मचारियों पर ४ करोड़ ५० लाख रु०; और कारखानों से बाहर खोज आदि अन्य कामों पर तथा सीमा शुल्क आदि पर ४५-४६ करोड़ रु० ।

ये सब कारखाने जब पूर्ण उत्पादन करने लगेंगे तब इस्पात के ज्यादातर आयात की पूर्ति देश में ही होने लगेगी—केवल कुछ औजारों, मिश्रित इस्पात और कुछ खास तरह के इस्पातों के आयात को छोड़कर। इसी अनुमान में खपत भी बढ़ेगी। छड़ों और सीखचों जैसी चीजों की पूर्ति के सम्बन्ध में तो काफी आसानी रहेगी। चूंकि भारत कच्चे माल के मामले में भाग्यवान् है, ये कारखाने अमेरिका, ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप के कारखानों की तुलना में अधिक स्थानीय लाभ उठाएंगे। यहाँ कच्चे माल की पूर्ति में अधिक खींचातानी की जरूरत न पड़ेगी। इसलिये यहाँ इस्पात के उत्पादन की लागत पश्चिमी यूरोप की तुलना में कम भी होनी चाहिए।
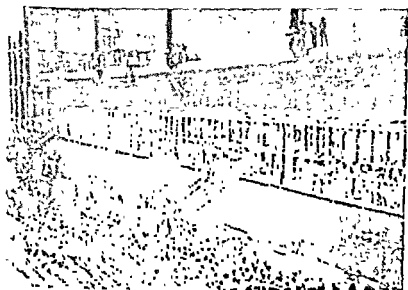
भिलाई लोहा और इस्पात-कारखानेमें कोक बैटरी नं० १ के चालू होनेके समयका एक दृश्य

यह आवश्यक है कि हम इस्पात इन कारखानों के निर्माण करने दिशा में।
राउरकेला कारखाने के निर्माण की पूर्ति में ही ६ महीने की देर हो रही है और वहां १९६१
के पहले पूरा उत्पादन शुरू न हो सकेगा जब कि प्रारम्भिक योजना के अनुसार यह इससे
पहले ही शुरू हो जाना चाहिए। शायद इस योजना पर देर से काम शुरू हुआ था कि
खयाल ही नहीं किया गया कि इससे विदेशी मुद्रा का काफी घाटा होता है।

इस्पात के इन कारखानों से ठेकेदारों और पूर्ति की व्यवस्था के विषय में भी
शिक्षाएं मिलती हैं। ठेका देते समय, सम्बन्धित फर्मों के साधनों, उसकी सम्पन्नता
क्षमता आदि की छान-बीन करना बहुत जरूरी है। ये ही बातें ज्यादा जरूरी हैं, न
कम से कम मूल्य का टेंडर। फिर, जैसा कि ऑडिट रिपोर्ट का कथन है कि, ठेका
शर्तों में, ठेकेदारों से पक्षपात भी रहा है। उन फर्मों को, जिन्होंने नक्शे तैयार किये
या जिन पर निरीक्षण का दायित्व था, ठेका देना अवांछनीय था, क्योंकि वे किसी
किसी प्रकार से काम की गति को धीमा ही करते हैं।

नियोजन में गलतियां तो पहले-पहल होती ही हैं। पर इनकी पुनरावृत्ति रोकी
सकती है। रेलवे बन्दरगाह और इस्पात कम्पनी के बीच सामंजस्य तथा उत्पादन
सभी स्तरों पर पर्याप्त प्रशिक्षण की सुविधाएं और प्राविधिक व्यक्तियों की आवश्यकता
का सामयिक अनुमान एवं मुदक्ष-मजदूरों को (जहां कहीं पर भी वे उपलब्ध हों
लाने का शक्तिशाली संगठन आदि कुछ ऐसी बहुत जरूरी चीजें हैं, जिन पर भविष्य
विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। * *

आचार्य नन्दलाल बसु का एक रेखाचित्र

अकादमी आफ फाइन आर्ट्स, कलकत्ता

रजत-जयन्ती चित्र-प्रदर्शिनी पर एक दृष्टि

रंगनाथ राकेश

अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स, कलकत्ता की प्रतिष्ठा सन् १७३३ में हुई थी। श्रीमती रानू मुखर्जी इस अकादमी की प्रेजीडेण्ट हैं। अकादमी की १९५८ की यह रजत-जयन्ती प्रदर्शिनी कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। कुछ पुराने और अन्य सभी प्रतियोगी चित्र, प्रस्तरशिल्प एवं मॉडेलिङ्ग समेत कुल मिलाकर इस बार ३७४ कलाकृतियाँ प्रदर्शित हुई थीं, ३५१, चित्र और २३ शिल्प-कृतियाँ।

फूल और उनकी जात बिरादरी
जयवन्त आर, हतल्कर

सभी शैलियों के चित्र थे। हाँ, आधुनिक शैली के चित्रों का प्रदर्शन अपेक्षाकृत अधिक था। चित्रों में वैरूप्य (distortion) तथा अतिरंजन (exaggeration) ही ज्यादा थे। शिल्प में भी सभी प्रधान माध्यमों की कृतियाँ थीं।

इस लेख के साथ उदाहृत ६ चित्रों की आलोक-छवियों में जयवन्त आर. हतल्कर का चित्र 'फूल और उनकी जात-बिरादरी' (Flowers and their kind) अपने सम्पुञ्जन (Composition) में परिमार्जित हैं। वानस्पत्य प्रकृति की पृष्ठभूमि में चार

घाट पर चढ़ती मानव-मूर्तियां भवनों के वैषम्य में क्षुद्र लगती हैं; और स्थापत्य की 'विराट भावना' पर जो प्रभावान्विति है वह भी स्तुत्य है।

चिन्तामणि कर का प्रस्तर-शिल्प 'उपवन-प्रतिमा' (Park Figure) गति और लय का सजीव-सा प्रतीक है। पार्क की निविड़ता के प्रतिरोध में भी मूर्ति का रूपायन लहरों-सा जीवन्त है। मांसल लावण्य के संग जीवन का स्पन्दन भी रेखाओं की वक्रिमा में छैनी-हथौड़ी द्वारा तराशा गया है।

शान्ति दवे का 'चरवाहा और कुटुम्ब' (Shepherd and Family) अत्याधुनिक शैली का चित्र है। रचना-भङ्गी में पिकासो का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। विकृतिकरण की प्रक्रिया में संयम है जिससे आकृतियों का सूक्ष्मीकरण (abstration) बारीकी से उतरा है : और वे चीन्ही जा सकती हैं—दाहिनी ओर खड़ी स्त्री, उससे बायें पुरुष और तीन पालित पशु। चित्र विदेशी शैली के ही अधिक अनुरूप है।

एक और स्वर्ण-पदक-प्राप्त कृति देवव्रत चक्रवर्ती का प्रस्तर-शिल्प-'शक्ति' (Energy) भी विरूपीकृत आकृति (Distorted Figure) है पर यहाँ शरीर-रचना (anatomy) का ध्यान रखा गया है। झुके पुरुष की रूप-रचना (Form) में लम्बीकरण (Elongation) की दशा का अतिरञ्जन पीठ से लेकर टाँगों तक पूर्णतया स्पष्ट है। शक्ति का उत्तोलन सधा हुआ लगता है, ऊपर का आदमी कसरती-पुट्ठोंवाला फुर्तीला जवान है. वक्रिमा और सम्पुञ्जन (Curves and Composition) भी काफी अच्छे बन पड़े हैं।
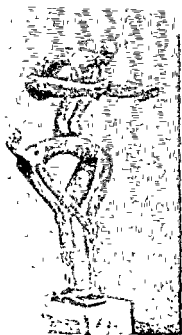
शक्ति देवव्रत चक्रवर्ती

अन्य चित्रों में अलमेल्कर का एक चित्र 'मछली और मछली वाली' (The woman with fish) श्लाघ्य था। मोहन बी० सामन्त का स्वर्णपदक से पुरस्कृत चित्र 'कैथेड्रल में खून' (murder in cathedral) काफी जोरदार था किन्तु इस पर Paul klee की तकनीक का प्रभाव है। इसमें वर्णिका (Colour Scheme)

वाराणसी

अरूप दास

उपवन प्रतिमा

चिन्तामणि कर
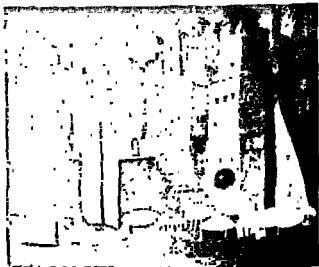
स्त्री और पक्षी   पद्मसी।

नारी   गोपाल घोष

स्केच और आधुनिक कला के कुछ अन्य उदाहरण जो इस प्रदर्शिनी में नहीं थे।

शोकाकुल नगर

तथा विचित्र रूप-योजना के द्वारा भय तथा अपार जुगुप्सा का चित्रण हुआ है। सौव मैत्र का 'लय के साथ' (In Tune) जीवन और गति के सामंजस्य सहित सशक्त अंकन था। अनिल बरन का चित्र 'नालन्दा का पतन' (Decay of Nalanda) और गोपाल घोष के छः आयल पेस्टल चित्र भाव प्रवण रंगीन कल्पना के उत्तम निदर्शन थे। गोपाल घोष में रहस्यात्मकता की अपेक्षा रागात्मकता ही अधिक दिखाई दी। अन्य कृतियों में फणिभूषण की शिल्प-कृति 'शालवन में विश्राम' (Rest on Shall wood) तथा चौधुरी का काष्ठ शिल्प 'मा और शिशु' और सुनील पाल का 'टोसों' हृदयग्राही थे। दूगड़ के तीन चित्र विशेष उल्लेखनीय थे—'The Chequered end' 'Approaching dusk' तथा 'Village in Morning'। इन्द्र दूगड़ की तूलिका में अपनी है। किन्तु इनके चित्र प्रतियोगिता में शामिल नहीं थे, कारण इन्द्रदा अकादमी के सम्मानित सदस्य हैं।

भारतीय सम-सामयिक कला-कृतियों के संकलन के प्रदर्शनार्थ हम अकादमी की प्रशंसा करते हैं और अकादमी के चित्र-निर्वाचकों के सामने यह एक सुझाव भी देना चाहते कि वे केवल आधुनिक और अत्याधुनिक चित्रों पर ही अधिक ध्यान न दें। परम्परागत भारतीय चित्रांकन के नित नये रूपों का अभिनन्दन भी बहुत आवश्यक है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि चित्रकला के जिन प्राचीन भारतीय आचार्यों के सभी शैलियों के अप्रतियोगी चित्र एक विशिष्ट भागमें प्रदर्शित हुए थे, उनके सामने बहुत से आधुनिक रंगों के चित्रकी के लगते थे। यह सन्तोष की बात है अकादमी ने सभी प्रकार के चित्रों का प्रदर्शन कर दर्शकों के सामने इस तथ्य को अप्रत्यक्ष रूप से भली भाँति प्रकट कर दिया। अकादमी की रजत जयन्ती के अवसर पर संयोजित इस वार्षिक चित्र-प्रदर्शिनी के लिये आयोजकों को असंख्य बधाइयाँ !!
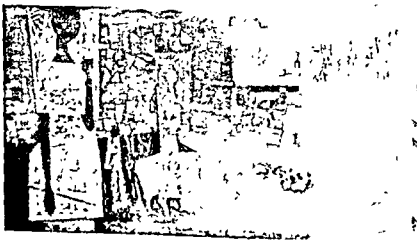
जीवन-जड़ता का इलाज : कुछ नुस्खे

विल डूरंट

गलाइ में प्रकाशित विचार माला की दूसरी लड़ी

आज यह आम सवाल है कि, मानसिक और नैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिए हमें आम तौर से करना क्या चाहिए ?

सबसे पहले अपनी तनदुरुस्ती पर ध्यान दीजिए और बाकी सब चीजें अपने-आप दुरुस्त हो जायेंगी। इसके लिए उचित भोजन और अच्छी आदतें जरूरी हैं। जो चीजें आप को नुकसान पहुँचाएँ, उनसे बचिए। आदमी अधिकांश में वही बनता है जो वह खाता है। ऐसा भोजन आप खुद ढूंढ निकालिए, जिससे आप को बदहजमी या और कोई परेशानी न हो। अगर दवा के बिना पेट साफ ही न होता हो तो यह मालूम करिए कि कौन सी वह चीज़ है जो आपको इस शर्मनाक तरीके से कमजोर बनाती है। शायद वह वजह मैदे से बने पकवान या मिठाइयाँ हों या आप के में हरी सब्जी और फलों की कमी हो। खास अक्लमन्दी तो यही है कि पेट साफ ए और मुँह बन्द।

अपना पुनर्निर्माण हमें पेट से ही शुरू करना पड़ेगा। तभी शरीर के हर अंग को भली-भाँति विकसित होने का मौका मिलेगा। प्रकृति ने हमें बुद्धिजीवी, क्लर्क पत्रकार या दार्शनिक बना कर ही नहीं भेजा है, उसने हमें घूमने-फिरने, वजन उठाने, दौड़ने और ऊँचाइयों पर चढ़ने के लिए भी बनाया है, जिससे कि हम अपने हाथों और पाँवों इस्तेमाल कर सकें। एक आदर्श कर्म-जीवन शारीरिक और मानसिक कार्यों का ा-जुला रूप होता है। लेकिन सब ऐसा जीवन नहीं बिता पाते। आज का जीवन ा जटिल और प्रतियोगी है कि 'प्रसिद्धि' पाने के लिए हमारी सम्पूर्ण शक्ति और य एक ही विषय या उद्देश्य की पूर्ति में चुक जाते हैं।

अपने घर के चारों ओर हरी घास का छोटा-सा मैदान, क्यारियाँ, पेड़-पौधे लगा के लिए हमें कैसा भी त्याग करने में नहीं चूकना चाहिए। शायद, कभी सिर्फ

इन्हीं की देख-भाल के लिए हमारे पास समय रहेगा। आखिर, मजबूर होने की बनिस्बत तन्दुरुस्त होना ज्यादा अच्छा है। प्रतिमा, जीते जी तो प्रायः दुःख ही ज्यादा भोगती है, मरने पर भले ही आदर और प्रसिद्धि पा ले, यह हमेशा याद रखिए।

अच्छी सेहत और काफ़ी ताकत के लिए नया परिवेश ज़रूरी है। यही क्या कम संतोष की बात है कि चाहे हम अपनी नस्ल नहीं बदल सकें पर अपने नज़रिये और हालात में तो तब्दीली हमेशा कर सकते हैं।

वह पुराना नियतिवादी दार्शनिक सिद्धान्त कि 'आदमी पैतृक देन और परिस्थितियों का गुलाम है' पूर्ण सत्य नहीं है, कारण आदमी में प्रगति और पुनर्निर्माण करनेवाली प्रचुर जीवनी-शक्ति भी तो है। यह सच है कि हमें उन प्रभावों से बचना ही पड़ेगा, जो हमारे मन और शरीर को मथने-मिटाने जा रहे हैं, जो हमें अपनी प्रति-मूर्ति ही बनाए दे रहे हैं।

हमें देखना चाहिए कि, क्या हम गन्दे, जाहिल लोगों में रहते हैं, और सिर्फ़ संसारी बातें खाने-पीने की चीज़ों में ही मन रमाये हैं? तब तो किसी भी कीमत पर हमें उन अच्छे लोगों का साथ खोज लेना चाहिए जो सहृदय हों, खूब जानकार हों, और चरित्र में हमसे कहीं अधिक दृढ़ हों। बेवकूफ़ों पर हुकूमत करने के बजाय बड़प्पन की बात मान कर चलना अच्छा है। सभ्यों में गौण बने रहना, बर्बरों का प्रधान बने रहने से बहुत ज्यादा अच्छा है।

अगर (जैसा कि आप सोच सकते हैं!) आप मजबूरन जिस तरह का जीवन जि[illegible] रहे हैं उसके वातावरण में आप से टक्कर [illegible] भी मनुष्य नहीं है तो गुज़रे हुए [illegible] प्रतिमाओं से दोस्ती करिए। कुछ [illegible] ही आप उनसे सलाह ले सकते हैं, [illegible] भाषण सुन सकते हैं और उस वातावरण [illegible] जी सकते हैं, जिसमें कि वे सदा रहे [illegible] यह सोचना ग़लत होगा कि पुस्तकों का [illegible] प्रभाव नहीं पड़ता, इनका प्रभाव [illegible] है जैसे कि पहाड़ी दर्रा, जितना [illegible] साल तेज़ ही होता जाता है। [illegible] महापुरुषों की संगति में हर घंटे [illegible] है। जब आप नैपोलियन और [illegible] साथ लंच खा सकते हों और फ्रेडरिक [illegible] वाल्तेयर के साथ डिनर तब [illegible] शर्म करने का तो सवाल ही नहीं [illegible]

यह तो बाहरी चीज़ों की बात [illegible] आन्तरिक समस्या और भी ज्यादा [illegible] है। हमारे अन्दर अभिलाषाओं का [illegible] सा है। इसके किस पेड़ को [illegible] उखाड़ फेंके और किसको मर जाने दें।

चरित्र का सबसे पहला [illegible] आधार है—मन, कर्म और वचन में [illegible] जम्य। गेटे के शब्दों में 'सम्पूर्ण [illegible] अथवा सम्पूर्ण से सम्बन्ध जोड़ना।' [illegible] दूसरा आधार है: 'साहिस्ते-साहिस्ते; [illegible] जाओ पीछे मत हटो।' बुद्धिमान, [illegible] बहुत अन्तरों से—जो इतने नहीं हैं [illegible] अपवाद इस नियम को ही बदल [illegible] तरह आच्छन्न कर दें—इसी [illegible] पर चलेंगे।

लेकिन जन्मजात प्रवृत्तियों के समूह में [illegible]में सब तरह की स्वच्छता को पहला स्थान [illegible]ना चाहिए। स्वच्छता, ईश्वरत्व के [illegible]राबर की चीज है।

कलह और उसके बड़े भाई घमण्ड के [illegible]ति भी हमें यही रुख रखना चाहिए; और हमें स्पर्धा से तो सदा बचना है। स्पर्धा भावी विजयों की कल्पना है और घमण्ड उन विजयों की यादगार। कलह का मतलब चीखना या मारना नहीं है, यह विनम्रता से चुपचाप अपने ही स्वार्थों की साधना भी हो सकती है। झगड़ालू स्वभाव कमजोरों की कलह-प्रियता ही है।

महत्त्वाकांक्षी होने का अर्थ क्रूर या स्वार्थी और लोभी होना ही नहीं है। ताकतवर उतनी ही जल्दी बाँटता है जितनी कि कमाता है और वह मालिक बनने से अधिक आनन्द निर्माण में पाता है; वह दूसरों के लिए मकान बनाता है, दूसरों के खर्च करने के लिए कमाता है। चरित्र, केवल दूसरों को वंचित कर अपने उपभोग से नहीं बनाता, यह निर्माण और सर्जन से बनता है।

ऐसे पेशों से सदा बचिए जिनमें सिर्फ सोचना ही सोचना हो। एक बढ़ई बनकर [illegible]प में खुशबूदार लकड़ी काटना ज्यादा अच्छा है, बनिस्बत रोज-रोज जोड़-बाकी करना या एकान्त कमरे में बैठकर बाहरी [illegible]नियों के बारे में चिन्तित बने रहना। एक [illegible]री संगीत सुनने से अच्छा है स्वयं किसी [illegible]ति की तान छेड़ना। खेलिए और हँसिए और अगर कभी जिन्दगी बहुत कटु-मजाक मालूम पड़े तो कटुता को भूल जाइए और मजाक को याद रखिए। हम अपनी समुद्री यात्रा के मौज-मजे ही याद रखते हैं और उसके तूफानी दिनों की तकलीफें धीरे-धीरे भूल जाते हैं। यही तो स्वाभाविक है, उचित है।

शादी करिए। एक बार जब यह प्राथमिक समस्या हल हो जाती है तो आप संसार में हर स्कर्ट के प्रति आकर्षित होने से प्रायः मुक्त हो जाते हैं; आप सोचने लगते हैं कि, कपड़ों में जो भी भिन्नता हो, औरत हर जगह एक-सी होती है। विवाह दूसरे के लिए सोचना और त्याग करना तो सिखाता ही है, साथियों से स्नेह-प्रेम की आदत भी डालता है। यह ठीक है कि धन पाने के लिए एक विवाहित व्यक्ति सब कुछ कर सकता है। लेकिन यह भी सच है कि उसीमें बहुमुखी कार्यक्षमता भी विकसित होती है।

दोस्त होना भी जरूरी है। अगर आप दोस्ती नहीं कर पाते हैं तो अपने को ऐसा बनाइए कि लोग आपके दोस्त बन जायँ। एकाकीपन, औषध के रूप में ठीक करनेवाला अनशन है, भोजन नहीं। चरित्र-निर्माण संसार-सरिता में ही होता है। अगर आप अन्दरूनी सोच-विचार में ही फँसे रहे तो गये। अपने चारों ओर के इस जगत्-प्रवाह में डूबते-उबरते ही हम आगे बढ़ते हैं। दोस्तों का होना इसलिए भी जरूरी है कि वे आपकी बातें सुनेंगे, आप पर हँसेंगे; उनसे

कृपया शेष पृष्ठ ६३ पर देखिए

सम्राट शाहजहाँ

ऐतिहासिक कहानी

डा० वृन्दावनलाल वर्मा

मुग़लिया दफ्तर का मुं

मुगल सम्राट् शाहजहाँ का शासन काल था।

सेना के भिन्न-भिन्न दलों के सिपाहियों का वेतन बाँटने के अलग-अलग दफ्तर थे। दफ्तरों में मुन्शी भी अपना-अपना अलग-अलग करते थे। सेना के बख्शी ने, तत्कालीन परिस्थिति के हिसाब-किताब की पूर्ण व्यवस्था कर रक्खी थी।

घुड़सवारों के एक दल में रहमान खाँ सिपाही भी था। वेतन सिपाही को बिलकुल ठीक समय पर मिलता रहे, ऐसा संभव नहीं था। देर-सबेर, मिल जाता था अवश्य। रहमान खाँ का वेतन बाकी में पड़

ा। वह जब दफ्तर में उसे लेने आया तब मुन्शी करमचन्द दरी पर कागज फैलाये पने बही खाते कलम-दावात से उलझे हुए थे।

रहमान खाँ को बैठे-बैठे जब काफी देर हो गई तब उसने कहा—'मेरे तो बाल-बच्चे खों मर रहे हैं और एक आप हैं कि सुनते ही नहीं।'

'जरा ठहरिये।' करमचन्द ने एक बही में कुछ लिखते-लिखते उत्तर दिया। सिर हीं उठाया।

'कब तक ठहरा रहूँ? नाकोंदम तो आ गया है।' रहमान का स्वर उत्तेजित हुआ।

'हूँ'—करमचन्द ने अनसुनी कर दी।

'जवाब दीजिये, जनाब। हूँ हूँ से काम नहीं चलेगा,'—रहमान का क्रोध उफान पर ाने को हुआ।

'क्या मुश्किल है, देखते नहीं कितना काम सामने पड़ा है?' मुन्शी जी ने फिर ा सिर नहीं उठाया, लिखते रहे।

'हक़-दस्तूर'—हमान ने बात पूरी हीं कर पाई कि रमचन्द ने सिर ठाया। देखा तो हमान की आँखों में से लोहू छा गया ा।

'खाँ साहब, मैने हा कि थोड़ा सा और ठहर जाइये। ापका चिट्ठा बनाये ता हूँ। पहले यह ाुत जरूरी काम नेपटा लूँ। रह गई क़-दस्तूर की बात ो वह तो खैर ठीक ी है।' मुन्शी फिर लिखने पर जुट ाये।
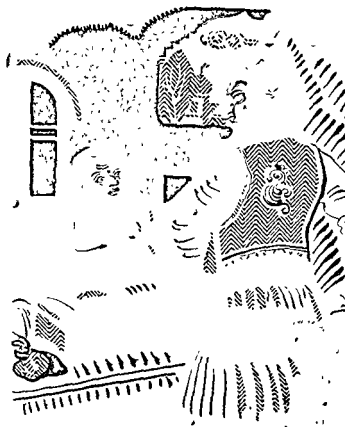
'हाँ ! यह तो ख़ैर ठीक ही है, जैसे तुम्हारे बाप का क़र्ज़ हमारे सिर पर हो !'

'कैसे बोलते हो, ख़ाँ साहब ?' मुन्शी ने कान पर क़लम खोंसते हुए कहा।

रहमान ख़ाँ आपे से बाहर हो चुका था—

'भाड़ में गये ख़ाँ साहब, और भट्टी में जाओ तुम ! देते हो मेरा चिट्ठा या फिर ?'—रहमान ख़ाँ के नीचे के दो दांत सदा हिलते थे, इस समय और भी हिलने लगे।

'या फिर—क्या ?' मुन्शी को भी कुछ ताव आ गया।

'या फिर—यह,'—रहमान ने अपनी कमर से बँधी तलवार की मूठ पर हाथ रख-कर कहा,—'या फिर यह कि,तलवार अपनी मूठ से तुम्हारे कम-से-कम दो दांत अभी अलग करती है।'

मुन्शी की भौंहें तनीं, ओठ बिरबिराये फिर भर्राये हुए गले से बोला, 'अभी देता हूँ चिट्ठा।'

'हाँ अभी, फ़ौरन,'—रहमान ख़ाँ अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखे रहा।

मुन्शी करमचन्द ने तुरन्त रहमान ख़ाँ-सम्बन्धी बही खोली और उसे देखकर एक काग़ज़ पर चिट्ठा तैयार किया और उसके हवाले कर दिया।

रहमान ख़ाँ चिट्ठा लेकर कहता हुआ चला गया—'ये मुन्शी लोग ऐसे मानते हैं।'

करमचन्द की आँख रहमान की पीठ पर तब तक लगी रही जब तक कि वह ओझल नहीं हो गया।

फिर मुन्शी ने बही में रहमान ख़ाँ के नाम के सामने बहुत सँवार-सुधार कर एक टीप लगाई और जहाँ की तहाँ रख दी।

●

रहमान ख़ाँ का वेतन फिर ... पड़ गया। वह करमचन्द के सामने ... शिष्टाचार के उपरान्त बातचीत चली।

'देखिए, मैं जल्दी में हूँ, देर न ...' रहमान ने मुन्शी जी को सावधान किया।

'दिन-रात काम में लगा रहता हूँ, देर लगती ही नहीं।' करमचन्द ने क़ायदे के साथ कहा।

'शुक्र है, आप उस दिन का ... भूले'—सिपाही रहमान ख़ाँ की ... पड़ी।

'किस दिन का ?'

'अजी उसी दिन का। ... गये ?',—रहमान ने आँखें ... तलवार की मूठ पर हाथ फेरा।

'ख़ाँ साहब, इतना काम रहता है मुझे अपने काम के सिवाय और कुछ याद नहीं रहता। स्वभाव ही ऐसा ... है। आपका काम तुरन्त किये देता हूँ।'

'करना ही पड़ेगा आपको। ... बही और तैयार कीजिये मेरा चिट्ठा।'

'आपका नाम, भाग ?' मुन्शी ने ... रहमान ख़ाँ ने अपना पता बतलाया।

करमचन्द ने बही खोली और ... का खाता निकाला। ... कहा,—'माफ़ कीजियेगा ख़ाँ ... आपकी हुलिया, जो इस बही में ... आपसे नहीं मिलती।'

'क्या कहा ?' सिपाही की ...

था,—'मेरी हुलिया नहीं मिलती! मैं वही तो हूँ, वही जो उस दिन तलवार के र पर चिट्ठा बनवा ले गया था।'

'साहब, इस बही में जो कुछ दर्ज है वह आपकी हुलिया से नहीं मिलता। चिट्ठा हीं बनाया जा सकता। चाहे जो करिए।'—मुन्शी ने दृढ़ता के साथ कहा।

'इसमें क्या हुलिया दर्ज है?' रहमान ने पूछा।

'इसमें रहमान खाँ सिपाही के नीचेवाले दो दांत गायब बतलाये गये हैं, और पके तो सब साबित हैं। आप रहमान खाँ हर्गिज नहीं हैं।'

रहमान का हाथ मूंठ से अचानक हट-कर दाँतों पर जा पहुँचा। हाँ, उसका तो एक भी दांत टूटा नहीं था।

विवाद बहुत थोड़ी देर ही चला। दफ्तर के और लोग भी आ गये। शिकायत बड़े हाकिम के सामने पहुँची। रहमान ने अपनी वास्तविकता का प्रमाण देना चाहा। परन्तु एक न सुनी गई। दफ्तर की बही तो बही थी। उस पर सन्देह नहीं किया जा सकता था। बड़े हाकिम ने अपना निर्णय रहमान के खिलाफ सुनाया :

'जबतक हमारे सामने दो गायब दांतों-वाला रहमान खाँ नहीं आता, चिट्ठा नहीं बनाया जा सकता है और न तनख्वाह मिल सकती है। हमारे दफ्तरों के कागज झूठे नहीं हो सकते।'

सिपाही का मुँह लटक गया। करम-र उसकी तलवार की मूठ पर आँख फेरकर देखने लगा—वह मुस्करा रहा था।

सिपाही को अन्त में दो दांत तुड़वाने पड़े! तब कहीं उसका चिट्ठा बना और ह मिला!!*

और आज के दफ्तरों के बाबू—?

*आधार—Manucci की Storia ii पृ० ४४९। सर यदुनाथ सरकार की क—Mughal Administration के पृ० १६८ पर उद्धृत।

उत्सव की

नीरू के पहुँचते ही सारे
पकड़ उठे। यह क्या!
यह बूढ़ा कहार रामदीन
चारपाई पर बैठा है।
हुई हड्डियाँ और नसें
रूप दे रही हैं। आँखें
है। वह शांत भाव से
बैठा मानो जुगाली कर
तालियाँ पीट रहे हैं।
पास पहुँच रहे हैं। नीरू
है लड़कों की शरारत की
ही भीतर साल रही है।

धिना धिन्ना

…बाबा के

बाजा-गाजा बंद।
सब लोग एक बार जोर

मी के शीघ्र ही प्रकाश्य उपन्यास

का

सन्तोत्सव विषयक एकांश

किन्तु रामदीन ज्यों का त्यों
: हुआ है। गांव के मुखिया कुबेर
री चबाते हुए मुसकरा कर पूछते
ो रामदीन आज अच्छी साइत बनी
अरे अब तो निकल आओ।'
अपनी आँख से कीचड़ पोंछता
पती आवाज में जवाब देता है—
बाबू अब किसके लिए निकलूं?
चों को भगवान ने छीन लिया जो
ही झोंपड़ी थी उसे आपके इन
रों ने उजाड़ कर होली मइया में
दिया। उससे भी पेट नहीं भरा
गई सहित मुझे भी डाल दिया।

अब इससे बढ़िया चिता कहां मिलेगी ! आज आप लोगों को असीस देते हुई मेरी सांस सांस उड़ जाएगी ।'

लोगों के कहकहे धीरे-धीरे घबराने लगे । एक अज्ञात आशंका जैसे लोगों की आँखों पर धीरे-धीरे सुलगी । होली जलाने का समय हो गया है । मुखिया ने जोर देकर रामदीन को होली में से निकल ने को कहा । किन्तु रामदीन अपनी थर-थराती आवाज में 'नहीं' को पकड़े रहा उसका तर्क तो सुनिए—'होली में जो चीज पड़ जाती है उसे वापस नहीं लिया जाता, इससे गाँव का भला नहीं होता । मेरे बाहर निकल आने से न मेरा भला होगा और न गाँव का ।' मुखिया और अन्य जवानों को क्रोध आता है । झटककर पूछते हैं—'किन बेवकूफों ने इस जपाट को को होली में फेंका है रे ! यह अच्छी एक नयी मुसीबत गड़ी हो गयी ।'

लड़के चिल्ला उठे—'नीरू ने, नीरू ने ।'

'एँ, मैंने ?' नीरू चौंक उठा ।

'हाँ हाँ तुमने तुमने', महेश तेज आवाज में जवाब देता है ।

'शरम नहीं आती तुम्हें झूठ बोलते हुए' ? नीरू भी तेज हो उठा ।

महेश ने लड़कों से कहा "बोलो लड़कों, नीरू ने नहीं

कहा था कि होली में पुरानी और बे
चीजों को जलाते हैं ।"

सब लड़के एक साथ चिल्ला उठे —'
हाँ कहा था, कहा था ।'

'बड़े समझदार हो तुम लोग !' नी
बौखला उठता है । 'मैंने यह तो नहीं
कि किसी बूढ़े आदमी को जान मे
गुण्डई करते हो तुम लोग और दोष
मेरे सिर !'

'तुम गुण्डे, तुम गुण्डे, ससुरा
हम लोगों को गुण्डा कहा ।' लड़कों
समवेत स्वर कौंध उठा ।

किन्तु दोष जिस किसी का
बूढ़े को तो होली में से निकालना ही
नीरू के मन पर चोट लगती है
छोकरे इस गरीब को इस आग में
कैसी बेहयाई से निकले जा र
आखिर यह महेश अपने को समझत
है ? मुखिया का बेटा हुआ तो
हुआ ? लफंगा नम्बर वन है ।
के कारण मार खाये है मुझसे ।
देखूंगा ।

"हैं ? अब कैसे हमला करूँ ?"

ं निकलूँगा जो चाहो सो करो।' दीन जिद पकड़े हुए है।

'क्यों वे नीरू की दुम! अब कालता क्यों नहीं है इसे? बलवाने के ए तो बड़ा वीर था।' मुखिया क्रोध से र गरजा।

'मुखिया काका, मैंने क्या किया है? ते लाड़ले महेश से क्यों नहीं पूछते हो, मने निरहू तेली का गोहरा उजाड़ कर । दो लाठी जमायीं और इस बुड्ढे को ने कन्धे पर ढोकर इसको कर्म-क्रिया ने की सोची!'

'चुप रह, शरम नहीं आती कैंची की ह ज़बान चलाते हुए।' मुखिया तैश में गया। 'मैं क्यों चुप रहूँ? शरम आपको आनी चाहिए कि एक बेगुनाह ड़के पर इस तरह अपने बेटे का गुनाह द रहे हैं। मैं तो दो घंटे से खलिहान बैठा हुआ था।' नीरू काँपने लगा।

'अच्छा रे छोकरे! तेरी यह हिमाकत! कहिया पूत जनमतें कहिया भाँकिरि रन।' चला है मुझी से पद और गुनाह ी बात करने।' मुखिया और एक बार रजा।

मुखिया और नीरू में कहा-सुनी हो ही थी कि सुमेर पाण्डे ने आकर अपने बेटे नीरू को जोर-जोर के तीन चार थप्पड़ जड़ दिये—'शैतान! हर जगह रार! बे-सहता रलता है। बड़ा बुद्धिमान का दुम बना फिरता है।' तब तक रमेश ने आकर सुमेर का हाथ थाम लिया।

'काका क्या करते हो? नीरू भइया ने तो सचमुच कुछ नहीं किया है। यह सब तो मन-गढ़ंत बातें हैं।'

'तो अब तक क्यों चुप थे?' सुमेर ने आग्नेय नेत्रों से रमेश की ओर देखकर पूछा। 'क्या करूँ काका? मेरी तो क्या किसी की भी हिम्मत इस महेश के खिलाफ बोलने की नहीं होती है। यह कुछ छोकरों का दल बनाकर सबको परेशान करता है।'

महेश ने रमेश को घूरकर देखा—जैसे कह रहा हो 'समझ लूँगा बच्चू!' मुखिया भी अपने लड़के की शिकायत सुनने का क़ायल नहीं था। लापरवाही से रमेश को देखकर बसटा—'अरे भाइयो, देर हो रही है। इस जपाट को होली में से बाहर खींचो।' लड़के हो-हो करते हुए आगे बढ़े और रामदीन को बाँहों पर टाँग लिया। रामदीन चमगादड़ की तरह उनसे चिपट गया किन्तु लड़कों ने उसे घसीट कर बाहर कर ही दिया। ढोलक पर थाप पड़ी; बोल गूँजे :

धिनाधिन्नाधिनाक झम'''झम'''झम ' झम
फागुन मरि बाबा देवर लागो, फागुन मरि'''

राग-रंग शुरू हुआ। होली में आग लगा दी गयी। लपटें चिटख-चिटख कर आसमान छूने लगीं। लपटों की लम्बी-लम्बी छायाएँ पोखरी को पार करती हुई बरगद और बाँसों की शिखाओं पर लोटने लगीं। लोग लपटों में तीसी भूनने लगे। शुभ कर्म है यह!

लपटें तेज होती जा रही थीं। सब एक

दूसरे को प्रणाम कर रहे थे—नया साल जो शुरू हो रहा है। बूढ़े रामदीन की खोह-सी आँखों में उसकी जलती हुई झोपड़ी की लपट लोट रही थी।

नीरू धीरे-धीरे अपने खलिहान में सरक गया और सुखिया का दरवाजा फिर चौताल, नगाड़ों और करताल-झाँझ के सम्मिलित नाद से मुखरित हो उठा। सबसे अलग एक बूढ़ी जर्जर परछाईं उस पेड़ की छाह में जाकर समा गयी।

नीरू खलिहान में लेटा-लेटा आज की घटनाओं के सूत्रों को सुलझा रहा था। आज का त्यौहार मस्ती का है, राग-रंग का है। पुस्तकों में उसने यही तो पढ़ा है। और अपनी तीव्र संवेदनाओं से उसने अनुभव भी यही किया है। किन्तु ये छोकरे अपनी मस्ती में दूसरों की मस्ती को क्यों भूल जाते हैं। बेकार की खुराफात ही करते हैं। वह यह भी अनुभव कर रहा था कि इन लड़कों के घरवाले भी तो उन्हें ऐसा करने देने के लिए सुविधाएँ जुटाते हैं।

उसका मन खिन्न हो उठा किन्तु होली तो राष्ट्रीय पर्व है। इसमें हमारी सामूहिक खुशियों की लहरें गले मिलती हैं। वह उठा। घर से कागज-कलम लेकर कुछ लिखा और चल पड़ा गांव के उत्तर एक टीले की ओर। टीले तक जाकर नीरू ने

"अटेन्शन प्लीज़!"

पीपल के पेड़ पर वह कागज चिपका दिया और धीरे-धीरे सफ़ेद रास्ते पर बढ़ता लौट आया।

भोर होते ही गांव के बाहर टीले के पास लड़कों का शोर उमड़ा। ... गाँव से भी कोलाहल की एक धारा ... लगी। लड़के होली की गरम-गरम ... को बुझा-बुझाकर झोले में भरने लगे। ... फिर एक सम्मिलित हाहाकार उस ... की ओर बढ़ने लगा। नायक था ... उस गांव से भी हाहाकार उस टीले की ओर ही दौड़ने लगा। गालियों के ... मय ने दोनों हाहाकारों को एक डोर में गूँथ दिया। महेश ही दौड़कर टीले पर आगे पहुँचा और झट से गरम-गरम राख एक मूठ बरम बाबा के पिंड पर फेंक... उसकी निगाह पड़ी लिखी विनती पर।

"भाइयो, आज का त्यौहार प्रेम एकता का है। आज के दिन हमें सब भाइयों के गले मिलना चाहिए। ... के दिन गाली-गलौज करना और फुहौवल करना कहाँ तक जायज है। सोचें। आप अपने एक भाई की ... पर ध्यान देंगे, ... उम्मीद है।"

नीचे किसी का ... नहीं लिखा था। ... कागज को फाड़ते हुए ... 'साला बड़ा ... गया है। अपने ... तो दूसरों को भी ... है।' और लड़के

। क्या है क्या है? सब पूछ उठे।
ह नहीं जी, यह निरुआ जो है न, इस
ाज पर गियान लिखकर टाँग गया
' कहता है कि पकड़िहावालों से
ई मत करो। भला बताओ तुम लोग,
पुरखे-पुरनिया करते आ रहे हैं उसे
छोड़ें?' यह कहकर उसने कागज के
ड़े कर दिये।

कबीर सररर...पाडे पुरवा...महेश
 उठा। 'सावधान भाइयो, वे देखो आ
पकड़िहा के अहीर सब। दूर हट जाओ
: ढेलों से मारो। कबीर सररर...
ड़ा...

ढेलों की सनसनाहट शुरू हो गई। वह
भागा। उसकी पीठ पर लगा गद से।
छोकरे की बगल से ढेला सनसनाता
ल गया। पक्की ईंट का टुकड़ा था।
ा तो चेता देता। दोनों टुकड़ियाँ
-लड़ते बगीचे में आ गयीं हैं। हाँ यहीं
ताल के चिकने-चिकने तमाम ढेले
े पड़े हैं। वह पेड़ की आड़ में छिप
। ढेला पेड़ से लगकर चूर-चूर हो
। वह जवान खंदक में छिपकर टीप-
कर मार रहा है। उसका सिर फूट
। चीखता हुआ घर भागा। उसकी
 को छीलता हुआ खिपड़ा छलक
। पांडे के छोकरे जोर पर हैं। पक-
 के अहीर भाग रहे हैं। दुम दबा
। किन्तु एक साहसी अहीर तो पेड़ की
पर चढ़ गया है। उसने एक बड़ा-सा
लेकर एक लड़के के ऊपर पटक दिया।
चित हो गया। खून का फौवारा फूट
निकला। लड़के घबराकर भागे। अहीरों की
बाजी पलट गयी। उन्होंने पांड़े के छोकरों
को खदेड़ा। पांड़े के छोकरे भागकर
खलिहान में आ गये। घायल लड़का
चीखता-चिल्लाता घर की ओर भागा।

नीरू बरम बाबा को धूल चढ़ाकर
लौट रहा था। उसने दोनों दलों की
गुत्थम-गुत्थी को देखा तो उसका माथा
ठनका। क्या करे वह? उधर अहीर
बढ़े आ रहे हैं। महेश ने एक अहीर
को डांठ के पीछे छिपकर पकड़ लिया
और उसकी नाक पर ऐसा घूंसा मारा कि
बेहोश हो गया। फिर पांड़े के छोकरे आगे
बढ़े। नीरू लपक कर बीच में आ गया
और दोनों ओर चिल्ला-चिल्ला कर कहने
लगा, 'भाइयो! यह क्या करते हो?
रोको, रोको यह बेकार की लड़ाई। इस
तरह तो कोई मर जायगा।' लेकिन उस
नक्कारखाने में तूती की आवाज की क्या
गणना? नीरू यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ
व्यर्थ हाथ उठा कर दौड़ता रहा, इधर संघर्ष
चलता रहा। जैसे नीरू नाम का कोई क्षुद्र
व्यक्ति वहाँ हो ही नहीं। उस जल-चक्र में
वह एक तुच्छ तिनके की तरह चक्कर काट
रहा था। उसने देखा, बाल-सेना के पीछे
जवानों का रिजर्व-फोर्स खड़ा था। पता
नहीं शांति के लिए या हमला करने के
लिए! एक गोल ईंट का टुकड़ा उसके
ललाट के रोओं को छूता हुआ सन्न से
निकल गया। देखा वह ईंट महेश की ओर
से आया था उसका जी हुआ इस महेश
नाम के जन्तु को पकड़ कर चूर-चूर कर

ने दिया जाय!' इन लोगों की और
पत्ति ही क्या है? देह पर कहने-सुनने
फटे-फटे गन्दे-गन्दे अँगोछे लिपटे हुए
जिन्हें शायद फटी धोतियों से फाड़-
ड़ कर बनाया गया है। किसी की कमर
मगई लिपटी है, जिसका पछोरा बाहर
कल कर लुटुर-पुटुर हिलडुल रहा है।
सी की कमर लंगोटी से कसी है। जो
छोटे हैं वे तो योंही मस्त विचर रहे
जो बड़े हैं वे अलबत्ता अपनी लाज की
इन छोटी-छोटी धोतियों या फटे पुराने
रों में फांसे हुए हैं। लेकिन इनका हृदय
तनी मस्ती और उल्लास से भरा है।
ता है, आज ये अपने भीतर कुछ नहीं
गे, सारा का सारा उड़ेल देंगे। बाहर
लेयों में, पगडंडियों पर, द्वार-द्वार पर एक
रे के चेहरों पर......

'बुरा न मानो होली है'। लड़कों का
ह आगे बढ़ रहा है। 'अहा शिकार तो
त गया। देखो भागने न पाये। कई ओर
आकर उन्हें घेरो।' ये हैं बेनी काका
न्हे चलते हैं तो इनकी अँगुलियाँ चिट्टिर-
िट्टिर बजती हैं, इसलिये ये लड़कों के
िट्टिर-पिट्टिर काका हैं। लड़कों से ये
तना ही भागते हैं उतना ही लड़के उनसे
पटते हैं।

एक मूंठ, दो मूंठ, तीन मूंठ। बेनी
ाका घबरा गये। 'अरे अरे पाजियो क्या
र रहे हो?' चार मूठ, पाँच मूठ और
ठ ही मूठ। बेनी काका घबरा गए हैं।
नकी आँखें मुंद गयी हैं। लड़कों के हँसने
ा शोर उनके कान के परदे फाड़ रहा है।

बेनी काका गालियों के साथ मुँह से थूक
उगल रहे हैं। भागना चाहते हैं पर बुरी
तरह घिर गये हैं। 'अरे सालो, पाजियो,
भागो नहीं तो एक एक का खून पी
जाऊँगा।' 'ये लो, ये लो' धूल फर्र...
फर्र...। बेनी काका के हाथ में डंडा आ
गया। लड़के भाग चले। 'चिट्टिर-पिट्टिर
चिट्टिर पिट्टिर' बेनी काका लड़कों के पीछे
दौड़ पड़े और डंडा चलाने लगे।

कुएँ पर राघू बाबा कुल्ला कर रहे हैं।
रास्ते में चलते हैं तो 'चित्त थू चित्त थू' के
मधुर स्वर में थूक की पिचकारी छोड़ते
चलते हैं। इसलिए ये चित्थू बाबा हैं।
लड़कों की भीड़ आते देख इनके प्राण सूख
गये। दूर से ही गाली बकने लगे। 'अब
देखऽ सरऊ लोग हमरे ऊपर धूल छोड़ब
तऽ ठीक नाहीं ग्राई। जे बा से हम कहि
देत हईं।'

'हो...हो . हो .हो...बुरा न मानो
होली है। बाबा थोड़ा सा हाथ में दे देंगे।'

'नाहीं...नाहीं...कुछ नाहीं तू सब लाभें
खड़ा रह नाही त जे बा से हम सबक टांगि
तूरि देब। चित्त थू चित्त थू।'

'अरे चित्थू बाबा थोड़ा-सा।'

'का कहले हवे? चित्थू! मारब सरऊ
तुहार जे बासे खपड़ोई अंधिया जाई।
चित्थू तोर बाप होई।'

'हो. हो...हो.. हो. बुरा न मानो।'
अतऽ हम कहि देत हईं।'

'हैं...हैं.. यह क्या कर रहे हो तुम सब
लोग चित्थू बाबा के साथ। हाथ में थोड़ा-
थोड़ा दे दो बुजुर्ग हैं कुछ ख्याल रखो।'

कहते हुए नीरू आगे निकल आया। रग्घू बाबा ने हाथ बढ़ा दिया कि नीरू ने एक मूठ धूल लेकर उनके मुँह पर मल दिया। 'होय.. होय होय...होय......अब तो एक...दो. तीन .'

चिल्लू बाबा कुएं पर गगरा छोड़ कर भागे। लड़कों ने उनका पीछा किया। कुत्ते भी भूँकते हुए उनके पीछे भागने लगे। एक लड़के ने उनका गगरा कुएं में टाल दिया। वे तो बाबा चित्त थू चित्त थू करते हुए गली गली भागे जा रहे थे। उधर से महेश अपने दल के साथ आ पहुँचा। बड़ी मुसीबत। रग्घू बाबा पास की हो फूस की छत पर चढ़ने के लिए एक नाद पर चढ़ गए और लपक कर छत पर चढ़ गए। पुराना फूस चरमरा कर नीचे बैठ गया और रग्घू बाबा बड़े से छेद में से नीचे घर में आ गिरे! लड़के घबराकर वहां से भागे। होली का हुड़दंग जो ठहरा।

'बुरा न मानो होली है।' अरे यह गोबर और कीचड़ की बौछार कहां से आ रही है। अच्छा तो सयाने लोग भी निकल पड़े हैं। भागो भागो, मगर भाग कर जाओगे कहाँ? कीचड़ का झोंका लगा छप्पर से। अरे इसके भी तो हाथ हैं। उसने गोबर उठाकर मारा और इसके मुंह पर गीला-गीला गोबर फैल गया।

'हो...हो...हो...हो...पकड़ो पकड़ो य एकदम कोरा है।' वह घड़ौन को भागा, भागा और वह भागा। मगर भी तो आदमी हैं। वह उठाकर पकड़ा धूल और कीचड़ से मरम्मत कर दी! तो वह भी उसी मे शरीक हो गया। तरह दुर्दशाग्रस्तों का सम्प्रदाय बढ़ता रहा है।

डम्मर मटाक धिना डम्मर मटाक धिन सदा आनन्द रहे एहि द्वारे जियेले ऐसे ह"

कबीर छ गया।

'प्रियतम तुम धोखा तो नहीं दोगे?"

कबीर गाने लगे लोग घरों में घुस गये। मन के भीतर दबे जनम-जनम के गन्दे उद्गारों को गौरों पर फेंकने लगे। जैसे घूरे पर कूड़ा फेंकते हैं। गौरे यही तो सार्थकता है उनके जीवन की! घरोंमें वे बन्द हैं। जब जी में आया तब घर के मर्द किवाड़ खोलकर दस पांच छींटे बरसा आये और फिर बंद। इससे अधिक सुरक्षा और धन्यता गौरों को क्या मिल सकती है? परन्तु आज तो नारियों को भी थोड़ी-सी छूट है और वे किवाड़ के पल्ले की आड़ से पुरुषों की कबीर-गर्जना सुनते ही उनों पर पानी फेंक रही हैं। आँगन में हलचल मची है। दीवारों पर नीली-पीली-लाल लकीरें उभर-उभरकर सुरू रही हैं।

कबीर की चोट नीरू के हृदय पर

ीचे गिर रही है। वह देखता है
छोटे छोकरे तक बड़ों को पैरोडी की
च्ची जबान से गालियाँ उगल-उगल
ांगन में नाच रहे हैं। और जिस
के घर में कबीर उमड़ रहा है वह
अपनी मा या भावज के प्रति बहती
लियों से छटपटा कर कबीर गानेवालों
कबीर सुना रहा है। 'अपने घर में
लग रहा है बच्चू को परन्तु अभी
ॉ आँगन में दूल्हन के घूँघट के पास
ले आयेंगे।'

ीरू अन्यमनस्क था उस भीड़
कर भी उससे अलग। उसका जी
ा था कि उसके घर कबीर न हो।
उसकी मा हैं, बहन हैं। भाभी
तो भी कोई बात न होती। मगर
आँगन में कबीर तो होना ही है।
ते लोग, घर में घुस रहे हैं। महेश बड़े
ह से छलक रहा है। नीरू की
त घर में जाने की न हुई। वह सोचता
कि यह प्रथा बन्द होनी चाहिए।
अभी तो उसकी आवाज दूध-सी कच्ची
मासूम है कौन सुनेगा उसे!

'सदा आनन्द रहे एहि द्वारे
जिये से खेले फाग रे।'

लोगों के बन्दरों के से काले-काले चेहरे
ाल लाल अबीर कैसी फब रही है।
। आगे हैं साठ साल के छैल छबीले
ी पांडे! वे ही तो आज के समारोह
ायक हैं। कबीर की बोहनी उन्हीं के
होती है। दुनिया में ३६४ दिन वे
जहाँ कहीं रहें—तराई में करताल लेकर या
चेलों के यहाँ ज्योतिषी बनकर—किन्तु
३६५ वें दिन वे औरतों को अखण्ड और
और व्यापक सुहाग का आशीर्वाद देने अपने
गाँव जरूर पधारते हैं।

उधर देखिये अन्धे कन्नू पांडे को गदहे
पर बैठाकर लड़के पीछे-पीछे हो-हो कर
रहे हैं। घबड़ाइए नहीं, जलूस इधर को ही
आ रहा है। एक ने नाद में से सड़ी सानी
निकाल कर छप्प से उसके मुँह पर मारा।
अन्धे महराज के कान पर मुंह ले जाकर
शागिर्द ने कहा—महाराज यह गनेसवा है।
महाराज के मुँह से आशीर्वाद के फूल झड़ने
लगे—'वाह उस्ताद क्या बात है? फिर
छप्प से। महाराज, यह किसुनवा है।
किसुनवा के घरे आज गदहा लोटे, वाह—
वाह—वाह ओ मारा, मारा।' फिर गीत
बन गया।

'ओ देखो मारा, वहाँ देखो मारा
कन्नू के मुंहे छपाक देना लागा
गाओ गाओ गाओ बजाओ खूब बाजा।
कानी गदहिया पर अन्हरा राजा।'

'साले शैतान छोकरों तुम सबों ने क्या
कहा?' 'कुछ नहीं उस्ताद कुछ नहीं आज
तो होली है' कहते हुए उस छोकरे ने गदहे
पर एक कँकरौही छोड़ दी। गदहा
दुलत्तियाँ झाड़ता हुआ भागा। कन्नू बड़ी-
सी तोंद लेकर धुन-धुन करता चिल्लाने
लगा। अरे क्या हो गया रे? 'कुछ नहीं
उस्ताद जरा भूडोल आ गया है।' गदहा
भागा जा रहा है, कन्नू जोर से उसकी

गरदन से चिपटा हुआ है। लड़के और जवान सब हो-हल्ला मचाये हैं। वह देखो, कन्नू महाराज नाबदान में गिरे छपाक से।······

दोपहर ढल रही है। लोग खा-पीकर आराम कर चुके हैं। कुंकुम और रंग खेलने का समय आ गया है। द्वार-द्वार पर घूम-घूमकर लोग फाग गा रहे हैं और कुंकुम तथा रंग से सबके चेहरों को रंग रहे हैं। आज तो लोग नया खाते हैं, नया पहनते हैं। शर्बती कुर्त्ते पर रंग खूब खिलता है। मगर नीरू क्या नया पहने ? उसके पास तो एक आधी बाँह की कमीज है जिसकी पीठ जगह जगह मुँह बाये हुए है। ऐसा नहीं है कि गाँव में वही ऐसा है मगर उसको शरम जो बहुत आती है। पता नहीं माँ ने किस कोमल धातु से उसका हृदय बना दिया है। अवधूत के समाज सभी छोकरे फटा पुराना पहनकर नाच गा रहे हैं। मगर नीरू झुन्ड में शरीक नहीं हो रहा है। वह उदास बरामदे में बैठा है और उसका दसवर्षीय छोटा भाई नए कपड़े के लिए मचल रहा है। तेरह बर्षकी बहन चम्पा भी तो है। उसके लिए एक पुरानी धुली हुई साड़ी को रंग देने से ही काम चल गया। वह अपनी हमजोलियों के साथ लोटे में रंग घोल कर निकल गयी है गाँव में।

छोटा भाई केशव मचल रहा है। मा परेशान है, बाप परेशान है।—फि चट···चट···चट। केशव तिलमिला क गिर पड़ता है। फेकरने लगा है। नीरू एकबार घूम कर उसकी ओर देख है उसकी घायल आँखों में एक दर्द एक बेबसी, एक मायूसी और न जाने क्या उतरा गयी थी। मानो वह कह रहा हो कि मैंने कौन सा गुनाह किया कि इस तरह मुझे बरस के पहले दिन यह मि सजा मिली ! आज साल के पहले दि मैंने एक सही सलामत कुर्त्ता ही तो मा क्या यह भी कोई गुनाह है। नीरू मा उफनते हुए आँसुओं तड़पती हुई व्यथा को सं नहीं कर पाता। और धीरे उठकर चलने ल है। अनजाने ही वह की तरंगों से खिंच है। धीरे से जाकर ठ के द्वार पर बैठ गया है।

'प्रियतम, मुझे, तुम जानते ही हो, कि ज्यादा चीख पुकार अच्छी नहीं लगती।''

फाग चल रहा है। मुखिया धुला हुआ शर्बती का कुर्त्ता दुपलिया टोपी लगाए रंग छिड़क रहे हैं। महेरा का ठाट एकदम नया है। कर का नया कुर्त्ता, नयी धोती। मुँह पान का बीड़ा, आँखों पर काठ वाला हरा चश्मा। छोटे-छोटे बड़ों के साथ उछल-उछलकर गा थे। उन्हें अपने नंग धड़ंगपन की सुधि न थी। नीरू चुपचाप से सटंगा हुआ बैठा था। मोहन उसका पास आकर बैठ गया। मोहन

पने पास बैठना अच्छा न लगा परन्तु रता भी तो क्या ?

महेश सहसा नीरू की पीठ पर हाथ ले कर उसकी कमीज के फैले हुए मुँहों को रेता हुआ बोला—'अरे यार नीरू, तुम बचपन में ही सन्यासी हो गये। आज ली है आज तो जरा आदमी की तरह हंसते-खेलते।' और उसकी अँगुलियाँ मीज के एक छोर से दूसरे छोर तक कर-राती हुई दौड़ गयीं। नीरू आहत हो गा। उसने घूरकर किन्तु बेबसी-भरी आँखों से महेश को देखा मानो कह रहा हो स तरह तुम्हें दूसरों की गरीबी का मजाक हीं उड़ाना चाहिए और वहां से उठकर ला गया।

दूसरे लड़कों ने भी इस दृश्य को देखा। हेश का यह मजाक बहुतों को बुरा लगा। छ तो अपनी कमीज के फटे अंशों को धर उधर छिपाने लगे कि महेश उन्हें भी फाड़ दे।

महेश मुस्कुराता हुआ घर में चला या। और सब लड़के फाग के हुल्लड़ में हो गये।

मगर नीरू ? उसका हृदय अपमान खौल रहा था और गरीबी उसके दिल में ाग काँटे की तरह चुभ रही थी। गरीबी दुख का अनुभव उसने आज पहली ार ही नहीं किया था। मगर आज के नुभव की तिक्तता कुछ और ही थी। ह धीरे-धीरे गांव के बाहर हो गया। उसे ग रहा था जैसे महेश की अंगुलियाँ अब ी उसकी कमीज में उलझी हुई हैं। वह शिथिल पैरों से बढ़ता-बढ़ता गांव के पश्चिमी बाग की ओर निकल गया। आम की मंजरियों की गंध चारों ओर फैली हुई थी। कुछ दूर पर एक खलिहान था जहाँ दखिखनी टोलावालों का ठाठ जमा होता है। खलिहान के पास यहाँ-वहाँ अरहर की भीड़ खड़ी थी। कुछ गेहूँ-जौ के सुनहले खेत अब भी दूर-दूर तक फैले हुए थे। मानो वे भी धूप का रंग खेल रहे थे। चने के खेत कभी कभी हवा के झोंकों में बज उठते थे। नीरू बरगद की छाँह में बैठने के लिए उसी ओर बढ़ गया।

अरे यह क्या ? यह कौन अस्थि-कंकाल यहाँ उतर आया है ? यह तो रामदीन है। हरे कच्चे का एक मूठ लेकर दानों को निखोर-निखोर कर खा रहा है। दूसरा लड़का होता तो रामदीन की इस दुर्गति पर अट्टहास करता, पू-पू करके चिढ़ाता मगर नीरू एकदम उदास हो गया। कुछ देर हक्का-बक्का-सा इस करुण दृश्य को देखता रहा। फिर भर्रायी हुई आवाज में पूछा—'बाबा, रामदीन बाबा !' काँपते हुए रामदीन ने झुर्रियों भरा चेहरा फेरा—'कौन ? कौन हो बाबू ?'

'यह तो मैं हूँ, बाबा, नीरू।'

'अच्छा, नीरू बाबू ? अब आँख नहीं रहीं बाबू, पहचाना नहीं जाता।' कहकर वह आँख से कीचड़ पोंछने लगा।

'लेकिन बाबा 'यह क्या कर रहे हो ?—आज होली के दिन ?' नीरू की आवाज कांप रही थी।

'जाने दो बाबू, अभी तुम बच्चे हो,

शिकवा कर रही थीं। वह उस अंधेरी में घुसने लगा कि सुन पड़ा, 'नीरू।'

'कौन है?' नीरू ने पीछे मुड़कर देखा। उसके देखने के पहिले अबीर से भरे हाथ उसके गालों पर चिपक चुके थे। ने देखा यह जमुना पाड़े की लड़की थी। वह नीरू के गालों को हथे-ली से कसकर इस कदर अपनी ओर ना चाहती थी जैसे वह उसके भीतर समस्त शक्ति निचोड़ कर अपने उन्माद ला देगी। नीरू इस दबाव के लिए नहीं था।

उसने थाजिजी से उसे फटकार कर —'क्या करती हो, चम्पा? तुम्हें शरम आती?' मगर चम्पा हांफ रही थी, बेना कुछ कहे उसके गाल को मलती मुसकराती रही। नीरू अभी यौवन माषा से परिचित नहीं था किन्तु ं की एक रंगीनी धीरे-धीरे उसके षा की लालिमा की तरह फटी तो थी। गांव की लड़की शोखी से इस नागफांस डाले यह उसके सरल गवई रों-भरे मन को असह्य था। उसे को गुस्सा आ गया। जोर से भिट-कर बोला—'जाओ, हटो, बदतमीज। देखेगा तो क्या कहेगा?'

चम्पा थोड़ी सहमकर कुछ दूर खड़ी थी। सँभलकर बोली—'अच्छा तो तक सोचने लगे हो? आज तो फाग का त्यौहार है। क्या हम रंग नहीं सकते हैं? हूँ: बड़े घमंडी हो गये हो।' हाँ हाँ घमण्डी हो गया हूँ, जाओ, तुम जल्दी से अपना रास्ता देखो।'

नीरू जल्दी-जल्दी घर चला आया। पता लगा कि खाना खतम हो चुका है। उसके पिताजी कल खलिहान से थोड़ा-सा गेहूँ पीटकर लाये थे। मा ने उसे पीस कर त्योहार की सोहारी बनायीं थी। गेहूँ था ही कितना? उसमें भी पवनी-प्रजा, लपसी तो सुबह ही कम पड़ गयी थी। इतना पैसा कहाँ जो गुड़ खरीदा जा सके। मगर रामदीन उसकी आँखों में तैर रहा था। वह क्या करे? शाम हो रही थी। उसका छोटा भाई रो-धो कर लड़कों में शामिल हो चुका था। बहन भी अपनी सहेलियों के साथ थी, पिताजी भी गाव में घूम रहे थे। मा शायद शाम के लिए खाना का प्रबन्ध करने के सोच-विचार में पड़ीं थीं।

नीरू घर से धीरे-धीरे गाँव के उत्तरवाले टीले पर निकल गया। वहाँ पीपल के पेड़ की निष्पत्र डालियों की छाँह में पत्थर के चबूतरे पर जा बैठा। उसके आस पास कुछ जंगली झाड़ियाँ थीं। पीपल के नीचे वहीं ब्रह्म बाबा का पिण्ड अभय वरदान-सा स्थित था।

नीरू का माथा घूम रहा था। अपमान की तिक्तता, रामदीन का चित्र. तेल की सोहारी क्या कम माथा घुमाती है? मगर गरीबों की तकदीर में घी कहाँ लिखा है? तेल की सोहारी यह धूप, अबीर की गरमी—सभी तो माथा घुमाने के लिए एक साथ गांठ जोड़ चुके थे।

शाम ढल गयी। ठंडी हवा का झोंका हेरने लगा। धीरे-धीरे चाँदनी निकल

आयी। गेहूँ-जौ के खेतों पर चाँदनी बिछ गयी। नीरू को यह बड़ा मनोहर लगा। गाँव से अब भी झालों की झमझमाहट, ढोलों की ढमढमाहट दूरियोंमें तैर रही थी।

नीरू चौंक पड़ा। हैं यह क्या ठंडा-ठंडा? एक मधुर खिलखिलाहट से टीला बज उठा, नीरू ने देखा—'संध्या तुम?' 'जी हाँ, मैं।' सन्ध्या फिर खिलखिला पड़ी और अबीर से भरी हुई हथेली को उसके गालों पर लपेट दिया। नीरू चुपचाप चबूतरे पर बैठा रहा। संध्या को यह चुप्पी अखरी। उसने नीरू के गालों पर ठुनकी देकर कहा—'क्यों जी साधू बाबा, आज इतने भारी क्यों हो गये हो? मैं तो तुम्हें कब से खोज रही हूँ। गाँव में तुम्हें पश्चिम की ओर से आते देखा भी तो तुम जैसे न देखने की कसम खाये थे। आखिर तुम्हें रह रह कर हो क्या जाता है?'

नीरू बोला—'संध्या तुम्हें यहाँ डर नहीं लगा। लोग कहते हैं कि यह बड़ा भयावना स्थान है। भूत-प्रेत रहते हैं यहाँ।'

'डर काहे का जी? मैं जानती थी कि तुम जब गाँव में नहीं हो तो उसी प्यारे टीले पर गये होगे। तुम्हारे साथ कौन-सा डर है जी।'

नीरू की आँखें गीली हो उठीं। गीली आँखों को संध्या के ऊपर दिया, स्निग्ध चमकीला मुंह जिसपर बिछल रही थी। बड़ी-बड़ी मासूम जिनमें कुंकुम का रंग धुल गया था। की हलकी हलकी आभा से रंजित काले-काले केश उसकी पीठके साथ, बगल भी, लहराकर फैल गये थे। गोरी-गोरी देह जिस पर रंगों के उभर आए थे। वह मुसकरा रही मानों ज्योत्सना में नहाती हुई स्वर्ग ही उतर आयी हो।

'क्यों संध्या, आज तुमने रंग न क्या?' नीरू ने उसके मुख की स्व लक्ष्य कर कहा।

'क्यों नहीं खेला? मगर यहाँ धो कर आयी हूँ।' वह मुसकरा र

'क्यों, संध्या!'

'इसलिए कि मैं दूसरों से रं मुख तुम्हारे हाथों को नहीं सौंपना

'तो क्या किसी ने तुम्हें और दिया है कि उसे धोने की ज़रूर है?' नीरू ने शोखी की।

'हिश। तुम तो क्या से क्या हो? किसकी मजाल कि मेरी भीतू दे। मैं तो अपनी समि कर रही थी।' संध्या का मुख उठा।

"अरे यह लो फिर प्रेम में पड़ गया।"

थोड़ी देर तक कोई नहीं बोला। फिर
: उठा। संध्या से अबीर लेकर उसके
पर कोमलता से रगड़ दिया। दो
ग्म आत्माएँ जैसे इस चाँदनी की
छता के नीचे कुंकुम की लाली में मांग
यीं। उनकी होली हो ली तो नीरू ने
।—'चलो अब घर चले देर हो रही है।'
। पहले चल पड़ा। संध्या पीछे पीछे।
: भी वह मौन रहा।

'क्यों जी, बोलते क्यों नहीं नाराज हो
। मुझसे ?' नीरू को मालूम हुआ कि
ा का गला मारी हो गया है। उसने
कर कहा—'नहीं संध्या मै नाराज किसी
नहीं हूँ। 'जानती हो मै कितना
व हूं ?'

संध्या कुछ न बोली। जैसे कह रही
: 'क्यों व्यर्थ की बातें कर रहे हो।'

'मेरी पीठ देख रही हो देखो महेश की
।लियाँ उसमें उलझी है कि नहीं ? आज
के सामने उसने मेरी गरीबीका मजाक
ाया है।'

'जाने दो, नीरू वह तो निरा जंगली है,
की बात का मेरखा नही करते।
ने तो...'

'क्या ? उसने तो ?'

'वह तो मुझे भी आज एक गली में
हना पाकर रग छोड़ने को झपटा था।
ो एक ईंट उठाकर दे मारी। भागता नहीं
खून की होली खेल लेता। तो भी पीठ
भरपूर ईंट पड़ी है, समझता होगा।

'तुमने...खैर...अच्छा किया। —मगर
: रामदीन कहार है न ? आज वह उस
बरगद की छाया में बैठकर चने निखोर-
निखोर रहा था। मुझे ऐसा लगता है संध्या
जैसे गाँव के इस राग-रंग पर एक काली
छाया तैर रही है।'

'तुम कविता क्या लिखते हो, पागल
ही होने जा रहे हो, नीरू।' संध्या मन ही
मन नीरू की इस कोमल करुणार्द्रता पर
रीझ उठी थी। उसे कुछ गर्व भी हुआ।

'सन्ध्या, मै अभी रामदीन के पास
जाऊँगा।' संध्या समझ गयी नीरू की
वेदना को।

'अच्छा जी, तुम अपने घर के पिछवाड़े
रहना, मै आऊँगी।'

'सन्ध्या, अब गाँव नजदीक आ रहा है
तुम आगे चलो।' सन्ध्या मुसकरायी और
चल पड़ी।

नीरू घर के पिछवाड़े खड़ा था कि
संध्या आयी और उसे एक पोटली पकड़ा
कर बिना रुके निकल गयी।

"आओ, कोई भला आदमी किसी ईमानदार
औरत से कुछ पूछ गछ नहीं करता।"

नीरू उस पोटली को लेकर पश्चिमी बाग की ओर बढ़ा। बाग में देखा दो, छायाएं बरगद की ओर बढ़ रही थीं। दोनों एक दूसरे से सटी थीं। कभी-कभी रह-रहकर लिपट जाती थीं। नीरू पहले तो कुछ सहमा। कौन हैं ये? भूत? नहीं नहीं, अभी तो शाम हुई है, भूत कहां से आयेगा। उसे पुस्तकों के उपदेशों से भी बल मिला। 'नहीं, नही भूत होते ही नहीं। यह तो मन का भ्रम है।' मगर बचपन में ही भूतों से डराकर बनाये गँवई-संस्कार जुगनू की तरह मन में कौंध उठे। वह पेड़ों की आड़ में छिपता-छिपता छायाओं का पीछा करने लगा। छायाएँ बरगद की सघन छांहकी ओर आ रही थीं। और नजदीक होनेपर कुछ स्पष्ट आवाजें भी आ रही थीं। सहसा दोनों छायाएँ रुक गयीं और एक स्पष्ट चीख सुनाई पड़ी।

'मु ˙ भु˙˙ भु˙˙ भूत!

'धि˙˙˙धि˙˙˙धीरे बोलो, च˙˙˙च च˙˙˙म्पा,˙˙˙को˙˙˙कोई ˙˙सु˙˙˙सु˙˙˙न लेगा!'

दोनों छायाएँ पीछे हटने लगीं।

कुछ दूर आकर गिरती-पड़ती सरपट भागने लगीं। एक छाया ने दूसरी की कमर हाथसे पकड़ ली। 'दे˙˙˙दे˙˙˙देखो, तुम अकेले कहां भागते हो?'

'भा˙˙˙भा गो न.......न...हीं तो ज˙˙˙जा...जान गयी!'

नीरू को हँसी आ रही थी। उसे मजाक सूझा पेड़ की छाँह में खड़ा होकर नकली सुर में ललकारा—'धरों˙˙˙धरों˙˙˙ओम क्रॅम तुमको नहीं छोड़ेंगा।' और उसने एक ढेला फेंक दिया जो पेड़ों के दलों से खड़-खड़ करता हुआ महेशके पास गिरा। महेश भड़-भड़ा जा रहा था। चम्पा उसकी कमरसे लिपटी-घिसटती भागी जा रही थी

'छो˙˙˙छोड़...पाजी...तू...तू हमको भी ले डू-बेगी। भू˙˙˙भूत तो मारेगा ही.. को...कोई दे...देख ले...लेगा तो दो. दो ...दोहरी मौत मि˙˙˙मिलेगी। भुऊ...ऊ... ऊत ढेले मार रहा है।' सड़क की ठंडी धूल में एक कुत्ता लेटा हुआ था। महेश बदहवासी में उसी के ऊपर गिर पड़ा। कुत्ता भों... भों...करके उठ खड़ा हुआ और इन भागते हुये जीवों के पीछे भूँकता दौड़ने लगा। महेश परेशान हो गया। 'सा.. सा.. साला यह भी ए...एक मुसीबत बन गया। च... च...च...म्पा .तू...तू हमें छोड़ नहीं... यह भु—भुत और कु...कुत्ता हमें जिन्दा न छोड़ेंगे।' नीरू हँस रहा था।

सूअर! साला बहादुर बनता है!

वह रामदीन के पास बढ़ गया। रामदीन आहट पाकर चौंक उठा—'कौन?'

'मैं हूँ नीरू।' कह कर उसने राम... के आगे वह पोटली खोल कर बढ़ा दी। रामदीन के भूखे हाथ उस पर एक साथ पड़े। उसकी आत्मा ज्यों-ज्यों तृप्त हो रही थी त्यों-त्यों उसकी खोह सी आँखों से आशीर्वाद की करुणा बरस रही थी। ... को ऐसा ज्ञात हो रहा था जैसे काले बादल छँट रहे हैं और दूध की तरह चाँदनी फूट-फूटकर उतरा रही है। जाने किस पेड़ मे कोयल कुहू...कुहू।

इस अंक के सभी व्यंगचित्र "पोर्क्रेक"।

अधःपात

✻ हाइनरिख़ हाइने ✻

श्री० सुधीन्द्रनाथ दत्त के बंगला अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर

अनाचार में डूबी जाती प्रकृति-सुन्दरी—
क्या उसने भी ली है मानव-धर्म-दीक्षा ?
पशु, पन्छी, फल, फूल, पतंग, मंजरी,
सबके द्वारा अपलापित होती नव-शिक्षा ॥

कैसे करूँ यक़ीन कि कुमुदी सती ?
हाटों में हँड़िया तोड़े, रंस-रंगों में वह लिप्त;
नटवर नव-कात्तिक प्रजापति (तितली),
मौन साध्वी चटु-चुम्बन-परिदीप्त ॥

भीरु माधवी भी मन-मन में रंगीली,
रति-परिमल में नही कमी उसकी अस्वीकृति;
लगती , कोई मानो कन्यका लजीली,
सचमुच, साधा करती है वह मोहकरी प्रतिपत्ति ॥

बुलबुल मौके पर गाने में कण्ठ कँपाता
किन्तु नहीं उसमें रहता उपलब्धि-लेश,
शक-शुबहा है, बाँधी गत में मींड़ लगाता
अतिरंजित काकुति-पूर्ण इक अभिनिवेश ॥

घट-घट में क्रमशः मिटता आता है, सत्य,
निष्ठा अथवा उसका देखा जाना भी है सख्त ।
कुत्ते की दुम पहले जैसी हिलती रहती नित्य,
किन्तु जगत् में नहीं और अब स्वामिभक्त ॥

और जब वह अमेरिका जाने लगा

—वसुमतीबेन

परम्परा और अन्ध-विश्वास
पर एक गुजराती कहानी
का
सरोजिनी रनां द्वारा
संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर

हम दोनों बड़े
और जिगरी दोस्त
मुझे मालूम हुआ कि
जल्दी ही
जानेवाला है। सोचा
आऊँ।

जब मैं उसके
पहुँचा, तब कुछ
आँगन में खेलते
औरतें भीतर-बाहर
जातीं दिखाई दीं।
उत्साह देख मुझे लगा कि अन्दर शायद कोई उत्सव हो रहा है। अन्दर देखा कि
नारायण की कथा हो रही है। कथा पूरी होने पर अशोक ने कथा पर तुलसी चढ़ाई।
में ही अन्दर से लक्ष्मी मामी ने आकर मुझे देखते ही कहा, 'अरे कुमार, तुम कब

सुनते ही अशोक ने चकित होकर पीछे देखा। तभी मैंने कहा, "देखो,
आदमी की तरह भली-भाँति समझलो कि अमेरिका से लौटते वक्त जब तुम
आओगे, तो फिर झूठ बोलने की हिम्मत कभी न करना, हाँ। नहीं तो
मेरे इस तरह कहने से पंडितजी को भी हँसी आ गई। मुस्कराकर बोले,
बात ही सच हो, और हम सबका मुँह मीठा हो।

कथा समाप्त हो चली थी और जैसे गुड़ पर मक्खियाँ या चींटे जमा हो
वैसे प्रसाद के लिये बच्चों की भीड़ लगी थी। अशोक और नानीजी ने
आरती की, प्रसाद पाया।

अशोक का आज व्रत है, इसलिए
खाना खालो।" मामीजी ने मुझे भी
दी। मैंने मजाक किया :—'मामीजी
ो पीताम्बर पहने अशोक ऐसा लगता
ो नयी शादी की लग्न के वक्त की
ान्ति करता हो।'

म लोगों ने अमेरिका के विषय में
प्पें मारीं। फिर मैंने अशोक से पूछा,
ायारियाँ तो हो गई हैं न?'

रे प्रश्न का उत्तर अशोक दे, इसके
ही लक्ष्मी मामी ने कहा, 'अरे अभी
क भी चीज करीने से नहीं रखी
।'

'यह क्या कहेंगे, मैं ही कहे देती हूँ।
र पोशाक चाहिए, इसलिये अचकन-
ा अभी दर्जी के पास ही पड़े हैं।
र को जो खास प्रसिद्ध मौजड़ी मंगाई
वह बड़ी है, इसलिये ठीक करने दी
बुआजी ने जो नया सूट इन्हें दिया है,
न्होंने यहीं इस्तेमाल कर लिया और
वह गंदा हो जाने के कारण ड्राइ-
निंग में दिया है। उसे लेने कौन
गा? यही है इनकी अमेरिका जाने की
ी। हमारे पड़ौस का भास्कर जब
रिका गया था, तब उसने जाने के पंद्रह
पूर्व ही सारी चीजें सूटकेस में संभाल
रखी थीं। इनको देखो कि किसी
ा से मेल ही नहीं खाता।'

मामीजी की बात काटकर बीच में
ोक उकताकर बोल उठा, 'अपनी ही
जाओगी या कुछ मेरी भी सुनोगी।
पोर्ट, वीसा, बैंक बैलेन्स, ड्राफ्ट् डॉलर्स
एक्सचेंज, सब कुछ ठीक हैं या नहीं?
भास्कर ने जाने के पंद्रह दिन पूर्व ही क्या
अपनी जेब भर ली थी? ठीक जाते समय
डालर्स के लिये कैसी दौड़-धूप करनी पड़ी
थी, यह तुम्हें कहाँ मालूम है?'

इस पर मामी कुछ नहीं बोलीं। मैंने
पूछा, 'कुमार, कल तुम्हारे सब रिश्तेदार
आने वाले हैं—मामी, मौसी, बड़ी बुआजी,
चाचा, भतीजे और इसके अलावा मामी के
मैके के रिश्तेदार। क्या उनके खिलाने-
पिलाने की भी कुछ व्यवस्था की है?'

लक्ष्मी मामी ने जरा तेजी दिखाते हुए
कहा, 'पर आनेवाले खाली हाथ हिलाते नहीं
आयेंगे। इन्हें देने के लिये कुछ न कुछ
तो जरूर लेकर आयेंगे।'

मामी मेरा हाथ पकड़ अन्दर के कमरे
में ले गई और मुझे नारियल का वह ढेर
दिखाया, जो आगन्तुक लाए थे।

'अरे वाह! कहीं नारियल की दुकान
तो नहीं लगानी है।'—मैंने पूछा।

'सब मेरे मैके के नारियल हैं या नहीं,
इनसे जरा पूछो। इसके अतिरिक्त सभी
पाँच-पाँच रुपये लेकर आये थे। लेकिन यह
ठहरे त्यागी और उदार, सो 'रहने दीजिए,'
कह कर सबके रुपये लौटा दिये।'

'लेकिन कुमार, जरा सोचो तो सही
कि रुपये लेने से लौटते समय अमेरिका से
उनके लिये कुछ-न-कुछ तो लाना ही होता।
और उसके लिए मैं डॉलर कहाँ से
लाऊँगा?' अशोक बीच में ही बोल उठा।

'लेकिन सब लोग बदले में कुछ पाने
की इच्छा से तो नहीं देते। कुछ प्रेम

भी देते हैं। जमाई ने हाथ से मना कर दिया, इस कारण मेरी बुआ को बहुत बुरा लगा। पर यह मेरी सुने, तब न। इनका अपना एक ही ख़याल है कि अगर एक के रुपये रखूंगा, तो फिर सबके रखने होंगे।'

'तो अशोक, उन सबके रुपये देने पर तुम क्यों नहीं रख लेते?' मैंने पूछा।

'कुमार, तुम भी देखा देखी अग्नि में घी डालने लगे। अरे, सबके रुपये लेकर मुझे ब्याज-सहित लौटाने जो होंगे।'

इसी समय औरतों का एक झुंड वहाँ आया। हरेक ने नारियल और पाँच रुपये भेंट दिये, लेकिन अशोक ने प्रत्येक को प्रणाम कर अपना पुराना वाक्य दुहराया 'नेग का नारियल रख लेता हूँ, लेकिन रुपये रहने दीजिये।'

वाद-विवाद और समझाना शुरू हुआ। मैंने कहा, 'अशोक, एक नयी तरीका बताऊँ नारियल तेरे और रुपये मेरे। कहो, है मंजूर?'

छोटे बच्चे नारियल तोड़ कर गिरी खायेंगे और बची हुई गिरी से कितनी ही तरह की मिठाइयाँ तैयार होगी, इस बात की कई औरतें चर्चा कर रही थी।

सारे दिन सगुन-विधि होती रही। सब बातें समाप्त होने पर हम सब अशोक का सामान व्यवस्थित रूप से रखने व बाँधने में लग गये।

'शेविंग सेट कहाँ है,'—मैंने पूछा।

अशोक बोला, 'वह तो कल बसंत भेंट में देगा। बाद में बैग में रख लूंगा।'

मेरे एक दूसरे प्रश्न के उत्तर में उसने कहा, 'छोटा सूट केस है न, तो इसमें ही छोटी चीज़ें रखनी होंगी। सू[illegible] हो, तो कल खरीद लेंगे। वैसे और उसका परिवार मुझे सूटकेस लेकिन उन्होंने उसे कहाँ उसका सिलवाने को भेजा है।'

मुझे हँसी आ गई। बोला, '[illegible] विवाह में जितनी मिली थीं, उसमें [illegible] भेंटें तुम्हें अब मिली हैं। रुपये मत लो, लेकिन भेंट तो लेते ही हो।'

इतने में ही लक्ष्मी मामी किसी [illegible] हुई भेंट लेकर वहाँ आई। इस और भेंटों को देखने व उसकी चर्चा करते उस दिन हमने सारी रात बिता दी, कुछ भी नहीं।

दूसरे दिन भोर में ही अशोक[illegible] ताऊजी आये। उन्होंने अमेरिका में का अकाल समझाया। पता नहीं क्य[illegible] थी जो खाद्य-सामग्री की एक लम्बी [illegible] देते हुए सारी चीज़ें साथ ले जाने को [illegible] समय-असमय काम में आये, ऐसा [illegible] ताई ने आयुर्वैदिक औषधियों की पोटली भी अशोक को समर्पित कर दी।

अमेरिका से वापस लौटा अशो[illegible] एक मित्र भी आया। उसने 'अमे[illegible] लोगों को भारतीय वस्तुएँ बहुत [illegible] लगती हैं,' कहकर उसे कौन-कौन सी ले जानी होंगी, कब किसको क्या देना इस पर एक बड़ा-सा लेक्चर ही दिया। बाद में लक्ष्मी मामी के [illegible] आये। उन्होंने अमेरिकनों के [illegible] जीवन का वर्णन कर उससे दूर [illegible]

रा दिया। चचिया ससुर ने वहाँ के ग्रामी जीवन, विद्यार्जन की सुविधा व जिरशिप आदि के बारे में कुछ स्पष्टी-ग कर अन्त में कहा, 'भारत के विषय छे जानेवाले प्रश्नों का उत्तर देने के पूर्व राई से सोचकर अच्छी बातें ही कहना। र यहाँ सचमुच देखने आता है।'

परदेश में सब लोग अशोक को फंसा तें, इस बात पर अशोक की बड़ी बहिन न्तित थीं। इसलिये उपदेश दिया, र सब तो मुझे जैसा ठीक लगे वैसा ना, लेकिन नियमित रूप से पत्र डालते ा और कहीं धोखे में फंसना नहीं।'

'और अमेरिकन लोगों को यदि अशोक र में फंसाये तब तो आपको कोई ापत्ति न होगी न ?'—मैंने मजाक किया : सब लोग हँसने लगे।

आये हुए मेहमान जब उठ-उठ कर र चले गये, तो मैंने लक्ष्मी मामी से ा कि अब आगे आने वाले मेहमानों को र ही बैठाया जाय, नहीं तो सूटकेस में ामान व्यवस्थित रूप से रखने में असुविधा े। पर मेरी इस सूचना पर अमल होने हले ही पाँडु चाचा पैर पटकते हुए अन्दर ये।

'क्यों रे अशोक, सारे गाँव के साथ ही और केवल मेरे ही साथ यह दयोग क्यों ?'

अशोक बोला, 'नहीं पाँडु चाचा, भला । कैसे हो सकता है ?'

'तो फिर तुम सबके घर भोजन के र गये और जब मेरी अम्बू निमंत्रण देने आई, तो उसे नामंजूर कर दिया! क्यों ?'

'लेकिन चाचा एक दिन में भला किस-किस के यहाँ खाने जाऊँ ? पिछला सारा महीना तो इसी कार्यक्रम में बीता है। सुबह-शाम खाने व चाय पर जाते-जाते सच मानिये, मैं करीब-करीब बीमार होने लगा हूं।'

अशोक की दयनीय दशा मुझे मालूम थी। पाँडु चाचा के समक्ष लक्ष्मी मामी कुछ बोल नहीं सकेंगी, यह भी मुझे मालूम था। इसलिये मैं बीच में ही बोल उठा, 'पाँडु चाचा, खा-खाकर इसकी क्या दशा हो गई है, जरा देखिए तो सही।'

'तो गोया मेरे यहाँ खाने के कारण शायद वह अधिक बीमार हो जायगा, यही कहते हो न ?'

'नहीं चाचा, ऐसी बात नहीं। लेकिन जाने से पहले स्वास्थ्य को भी तो सम्भा-लना चाहिये।' काफी समझाने पर चाचा राजी हुए। उनके साथ आई चाची को भी मैंने समझाकर कहा, 'तुम्हारे घर आकर चाचा के साथ बिना घी-बूरा खाये, वह अमेरिका नहीं जायेगा, इसका तुम विश्वास रखो।'

यात्रा के काम में आने वाली लगभग सभी वस्तुएँ आ गई थीं, इसलिये उस रात को हम उन्हें व्यवस्थित रूप से बैग में रखने बैठ गये। फहरिस्त मिलाकर एक-एक चीज रखने लगे तथा बैग में न आने पर उसे फहरिस्त से निकालते गये।

जयपुरी जूते, सादे जूते, चप्पल, स्लीपर, टाई, सूट, कुरता-पजामे, बंडी

आदि गिन-गिनकर हमने सूटकेस में करीने से रख लिए।

'पर भाई अशोक ये छोटी-मोटी मामूली चीजें क्यों यहां से लादकर ले जा रहे हो? वहाँ पर चाहो, जितनी खरीद सकते हो और वह भी यहां से अच्छी।' मैंने कहा।

एक छोटी-सी डिबिया से रोली और लाल धागा निकाल कर दिखाते हुए वह बोला, 'ये चीजें वहां मिलेंगी? यह तो देवी का प्रसाद है।'

यह कहकर वह हँस रहा था, लेकिन वास्तव में वह नाराज था, यह मैं जान गया। एक वस्तु कम करने से चार दूसरी नई चीजें सामने आती थीं। बहिन को बुरा लगेगा, पत्नी का मन खराब होगा, पिताजी क्या समझेंगे, चाचा चाची नाराज होंगे, यही सब कारण बताते हुए उसने कितनी ही अनावश्यक वस्तुएँ सहेज कर अपने साथ ले जाने को रख ली थीं।

कमरे के बीचों-बीच एक वजन करने की मशीन रखी थी। उस पर सब सामान का वजन हुआ, तब जितना नियमानुसार होना चाहिये, उससे ज्योदा वजन अधिक था। अशोक ने मेरी ओर देखा और कहा, 'इनमें की कुछ चीजें कम तो करो। देखें, तुम्हारी अक्ल कैसी चलती है।'

'पर सामान का वजन ज्यादा होने से अमेरिका नहीं जाने देते क्या?' बुआजी ने बीच में ही पूछ लिया।

'नहीं बुआजी, ऐसा तो नहीं है। लेकिन ज्यादा सामान होने से किराया ज्यादा देना पड़ता है।'

'तो लगने दो। हम लोग दे देंगे... लेकिन पैसे अधिक लगेंगे, केवल इसी... लड़के को परदेश में तकलीफ नहीं... चाहिये। हम भी तो इधर से उधर ... सैकड़ों वस्तुएँ साथ लेकर चलते हैं।'

एक भी वस्तु हम बैग से बा... निकालें, इसके लिये बड़ी बुआजी व ... लड़की जैसे हम पर पहरा देने को ... हो गईं।

इसी समय एक पुड़िया लेकर ... बहन आईं।

'यह क्या है?'—अशोक ने पूछा...

'तू चुपचाप इस पुड़िया को ... रखले। इस पुड़िया के प्रभाव से ... का जो वजन है, वह वास्तविक को ... कम हो जायगा।'

'ऐसा क्या जादू है इस पुड़िया में...' कह कर अशोक ने पुड़िया खोल ली।

तब हँस कर लक्ष्मी भाभी ... 'जीजी, जो सगुन की रोली लेकर ... वह तो बैग में रखनी ही होगी। ... अनादर नहीं करना चाहिये।'

'लेकिन पुड़िया में ही ... क्योंकर बंद रखा जाय। बैग के ... कपड़े के नीचे पसार दो ना। ... होगा।'—अशोक ने कहा। पर ... ऐसा लगा कि अशोक ने उसका ... किया है, इसलिये वह रोने ... क्या था, सामान लगाना तो एक ... सब लोग उसे समझाने-मनाने लगे ... में उसकी लाई हुई सगुन की पुड़िया ... का निर्णय हो गया। बैग में रोली ...

अशोक ने मेरे पास आकर धीरे से कान
ःहा, 'अभी न जाने और क्या-क्या
ार और सगुन बाकी हैं।'
रात-भर जाग कर हम कुछ लोगों ने
न ठीक से लगाया। दूसरे दिन रात
ो अशोक को रवाना होना था। कितने
नेकलना, कहाँ से निकलना, कौन सा
देखकर निकलना आदि के संबन्ध में
ा-उप-सूचनाएं आने लगीं।
ाद में ज्योतिष-रत्न तुलसीराम शास्त्री
। उनके बोल वेद-वाक्य थे। उन्होंने
'शाम के पाँच बजे शुभ प्रहर है। उस
अशोक को घर से निकल कर मामा
प्रस्थान करना चाहिये। और मामा
से रात के ठीक साढ़े आठ बजे
ना, यही श्रेष्ठ मुहूर्त है।'
ार बजे से ही घर के पारिवारिक
के वातावरण में रूपान्तर आ गया।
रोने लगी। भतीजों ने व मान्जों ने भी
अनुसरण किया। बड़ी बुआजी
रोते-रोते दूसरों को उपदेश देकर
रही थी कि रोना नहीं चाहिये।
ार अशोक लौट कर आयेगा, तब तक
। जिन्दा रहूँगी ?' ऐसा कहकर
के मस्तक को दोनों हाथों से छू कर
ो ने उसकी बलैयाँ लीं।
आजी को सान्त्वना देते हुए अशोक ने
-'बुआजी, तीन वर्ष तो चुटकी में
जायेंगे। दिन बीतने क्या देर
है ?'
स तरह सब को समझा-बुझाकर साढ़े
जे अशोक तैयार हुआ। अब शुभ

सगुन-परम्परा शुरू हुई। मान्जी ने मामा को सगुन का तिलक किया। बहिन ने राखी बाँधी। बड़ी बहन न दही हाथ पर रखा और सौभाग्यवती श्रीमती ने गुड़ की डली अशोक के मुंह में डालने को दी। जिस जिस को जो-जो करना था, वह करवा कर अशोक सबको प्रसन्न रखने का प्रयत्न कर रहा था। मामी, मौसी और बुआ ने अशोक की नजरें उतारीं। अशोक ने सबको प्रणाम किया।

ठीक पाँच बजने में जब दस मिनिट बाकी रह गए तो झवेरचंद सेठ असली गुलाब के फूलों की 'वैयन्ती माला' लेकर आये, जिसे अशोक के गले में डालकर जेठ भर ली। फिर शीघ्र ही पान-सुपारी और इत्र-फुलेल का कार्यक्रम शुरू हुआ। बड़ी बहन ने हाथ में नारियल और सवा रुपया लेकर अशोक की न्योछावर की। भाभी ने गुलाल लगाया। इस समय अशोक फोटो लेने लायक था। उसके नये कोट पर गुलाल और रोली बिखर गए। माथे पर गीली रोली पर इधर-उधर चावल लगे थे। नेकटाई में सलवटें पड़ गई थीं। अशोक की हालत इस समय किसी दंगल में हारे हुए व्यक्ति की तरह हो रही थी। कोई प्रेम से, कोई हक से, कोई शाबाशी देने के लिये उसकी पीठ पर हाथ फेर रहे थे और वह सबका आभार मान रहा था।

इतने में ही घर का वातावरण एकदम बदल गया। स्त्रियों के झुंड में से रुदन-स्वर सुनाई पड़ने के कारण अशोक के भाई भी रोने लगे। मा के पास आने समय तो

हो गये। अशोक के गाड़ी में
ूल से रह जाने वाले पैसों के
ने अम्बू अन्दर गई। गाय अभी
ी। दूध का प्रसंग सब भूल गये
चलने ही वाली थी कि ज्योतिषी
रियल लेकर आये। शुभ शकुन
ा होने लगी। कुछ लोग गाय
ा का उल्लेख करने लगे।

शोक से कहा, 'यह शुभ शकुन
क जारी रहें, ऐसा इन्तजाम
ना कम्पनी को देने की बात
हूँ क्या?'

के इशारे से उसने कहा, 'अरे
ी दे बेकार मुझ पर गरम हो

पर अशोक को बधाइयाँ देने के
जमा हो रही थी। गिने-चुने
तक भी गये। मैं भी गया।

से विशेष कुछ लेना न था।
ीक रिश्तदारों से मिलने गया।
। पर मैंने उससे पूछा, 'इस
ुख शकुन-विधि हुई या नहीं?'
का पिछला दरवाजा खोलकर
ारियल व हार दिखलाये और
ई हुई तो क्या हुआ, हमारी
ी ही बदलती है?'

ड्डे पर जाने के पूर्व अन्त के
शकुनों का कार्यक्रम शुरू हुआ।
का सम्मिलित फोटो लिया
ी मामी ने लोटे में पानी लेकर
जर उतारी। दादा ने सबको
'यह गम्भीर सूचना दी।

'चलो, चलो,' कहकर सब घर के बाहर निकल रहे थे। इतने में एक सुलोचना सिर पर पानी का घड़ा लिये सामने आई। इसी शुभ शकुन के साथ अशोक हवाई अड्डे पर जाने के लिए रवाना हुआ।

हवाई अड्डे पर उसके टिकिट पर लिखे अंकों का जोड़ शुरू हुआ। जोड़ों की १३ संख्या नहीं आई थी, सो सबने ताली बजाकर इस शुभ शकुन पर प्रशंसा प्रदर्शित की।

किन्तु इस समय भी बुआजी को चिन्तित देखा मैंने पूछा—'क्या हुआ, बुआजी?'

तब उन्होंने कहा—'मरी इस सरकार को और कोई चिन्ह नहीं मिला क्या? जो हवाई जहाजपर शकुनि का चिन्ह दिया है'

मैंने उनसे कहा—'यह शकुनि नहीं है, यह तो जल्दी और तेज रफ्तार दिखलाने

का चिन्ह है। इस चिन्ह का अर्थ है कि हवाई जहाज रफ्तार से जायगा।'

यह सुन उन्हें आनन्द हुआ।

जहाँ जहाज उतरे वहीं से तार देने की सलाह सब लोगों ने अशोक को दी। हवाई-अड्डे पर शान से घूमनेवाली होस्टेस को अशोक की अच्छी प्रकार देखभाल करने को सबने कहा। मामाजी तो पेशगी इनाम भी देने लगे। पर हँसकर उसने मना करते हुए कहा,—'आप बिल्कुल चिन्ता न करें। मैं इन्हें अच्छी तरह संभालूँगी। अब मुझे क्षमा करें, क्योंकि मैं बहुत जल्दी में हूँ। हवामान कार्यालय से संदेश आया है कि हवा अनुकूल नहीं है। सो बाद में आपसे मिलूँगी।'

इसके कुछ ही क्षण बाद हवा[illegible] कार्यालय से दूसरी सूचना आई कि [illegible] प्रतिकूल होने से आज जहाज नहीं जा[illegible]। हवाई अड्डे पर भाग-दौड़ शुरू हो [illegible]। सब शुभ शकुन किये, लेकिन वायु-देव[illegible] मनौती करना सब भूल ही गये थे। [illegible] लोग इस पर पश्चाताप करने लगे। [illegible] ने कहा—'अपना दोष नहीं है। [illegible] उतरने वालों के अपशकुन हमारे शुभ [illegible] में आड़े पड़ गये।'

मैंने सोचा, हर साल बहुत से वि[illegible] अमेरिका जाते हैं, और अध्ययन [illegible] वापस भी लौटते हैं। लेकिन हमारा [illegible] शुभ-शकुनों के जोर से भी अमेरिका [illegible] जा सका! * * *

मशीन जो प्रति घंटा दस लाख पृष्ठ पढ़ सकती है!

सोवियत वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक एवं प्राविधिक साहित्य के त्वरित स्वयं-चालि[illegible] और विश्लेषण के लिए ऐसा यंत्र बनाया है जो प्रति घण्टा दस लाख पृष्ठ पढ़ सकता है।

यह यंत्र एक प्रकार का ग्रन्थालय है जिसमें पाठक की माँग के अनुसार यांत्रिक पाठों को पढ़ने और उनकी समीक्षा करने के लिए यंत्र-प्रसाधन लगा हुआ है। पाठ और सांकेतिक चिन्हों में हैं। यदि पाठ किसी विदेशी भाषा में हों तो विशेष प्रकार द्वारा उसका अनुवाद कर लिया जाता है। प्रश्न विशेष प्रकार के यांत्रिक प्रसाधन [illegible] दिये जाते हैं जो उसके सांकेतिक चिन्हों में अनूदित हो जाते हैं। यांत्रिक 'पठन' [illegible] कोई चीज वैसे ही सुनी जा सकती है जैसे टेलीफोन के डायल पर नम्बर घुमाये [illegible]

यंत्र में पठन के लिए यांत्रिक प्रसाधन आवश्यक सामग्री चुन लेता है, पर्यवेक्षण करता है और पूछे गये प्रश्नों के अनुसार उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर[illegible] यंत्र की 'स्मरणशक्ति' में विद्यमान साहित्यिक संकेतों और विभिन्न प्रकार की [illegible] की सहायता से आवश्यक सामग्री का पता लगाया जाता है।

इस मशीन का प्रयोग एक प्रकार के पुस्तकालय के रूप में किया जा सकता है। उन पाठकों तक जिनके पास पढ़ने के लिए विशेष प्रकार के टेलीविजन हैं, तारों से इसे जोड़ा जा सकता है। आवश्यक पाठ को डायल करने से पाठक के सामने फौरन तस्वीर आ जायेगी। —'सोवियत भूमि' से साभार

'जीवन-जड़ता का इलाज : कुछ नुस्खे' का शेषांश

थता, सज्जनता और विनम्रता
गे। पराया स्नेह चाहते हैं तो
ं ; यदि दूसरों द्वारा प्रशंसित होना
आत्मगौरव बढ़ायें, लेकिन यह कमी
और सुनाया न जाय। बहुत ज्यादा
मी न दिखाइये। सूक्तियाँ भी यदि
ीं हो तो बुरी ही लगती भी हैं।
ीका भी बुरा न चीतें, न करें
ह इसे आपके खिलाफ हमेशा याद
कोई भी दुनियाँ में सबसे ज्यादा
नहीं है : यह अक्सर अच्छा है कि
और हमेशा अच्छा है कि कुछ कहे
दा सच कहनेके लिए ही उतावला-
बुरा है। परम्पराओं को मानिए,
के उसके नियमों के अन्तर्गत आप
हें। शान्त भाव से आगे बढ़िए,
नुभव बढ़ाइये, जीवन से ज्यादा
और अपने बच्चों के लिए भी जीवन-
को प्रज्वलित ही छोड़ जाइये।
ा चरित्र का सम्बन्ध केवल मन के
से है, बुद्धि और कल्पना से बिल्कुल
यदि ऐसा होता तो चरित्र-
कितना सरल रहता!
स्तव में, ऐसा नहीं है ; पूर्ण आत्मा
और कल्पना का वही स्थान है जो
में प्रकाश का। कल्पनाओं में बहकर
ाना सर्वस्व गँवा सकते हैं, लेकिन
ता से ही बड़ी-बड़ी विजय पा
हैं।
द्धि का उचित उपयोग किसी काम में

मदद करना है। जब यह स्वयं एक
उद्योग-धन्धा बन जाती है तो हैमलेटों और
कोरे तार्किकों को जन्म देती है ; अपने
आप से ही रस्साकसी नहीं हटती,
देह के पुट्ठे और पेशियाँ देह-मन की
आदतें बिगड़तीं हैं। किन्तु जब बुद्धि
इच्छाओं की आपसी आँखमिचौनी,
आवेगों की परस्पर पर्यालोचना और
लालसाओं को पारस्परिक रुकावट बन जाती
है, तब मनुष्य की वह सर्वोच्च स्थिति होती
है जिसमें कि उसके अपने प्रधानतत्त्व मिलकर,
इधर-उधर काफी दौड़-भाग के बाद, द्रवित
हो 'समरस' बन जाते हैं। तभी उसमें
परिप्रेक्ष्य की पूर्णता और सामंजस्यपूर्ण
अखण्ड प्रतिवेदन की क्षमता आ जाती है।

हमारी महज प्रवृत्तियाँ, हमारे थालों में
भरी हवाएँ हैं जिन्हे यदि रोका न जाय तो
वे हमें अपने पीछे बँधे गुलामों की तरह
घुमायेंगी। क्या ऐसे आदमी नहीं मिलते जो
मूर्तिमान् लोभ हैं, यौन-प्रवृत्ति हैं, खिलवाड़
हैं और कलह हैं। अपने आवेगों को पूर्ण
स्वतन्त्र करना चरित्र को बिखरा देना है।
इसीलिये ज्ञान की तुर्क इच्छा पर चलती है।
यही तर्क का सार है। हमारे पास आत्म-
संयम का साधन और अक्षागार आत्म-
निवृत्ति की वह शक्ति है जो चरित्र और
इच्छाशक्ति की अन्तिम आवश्यकता है।
हम खुद ही आत्म-संयम का प्रयोग करें तो
अच्छा है, नहीं तो संसार हमसे जबर्दस्ती
करवायेगा। दार्शनिक मिल का यह कथन

काफी महत्व-पूर्ण है कि, 'चरित्र तो गढ़ी-ढली इच्छा-शक्ति ही है।'

विश्लेषण से सामंजस्य अधिक कठिन है; मनोविज्ञान ने मानव-स्वभाव के टुकड़े तो कर डाले हैं लेकिन अभी तक उनको मिलाया नहीं है। आज भी यह कहना ज्यादा आसान है कि आदमी क्या है, बनिस्बत यह कहने कि उसे क्या होना चाहिए और कैसे बदलना चाहिए। हम इस महान् विषय के सिर्फ एक अंश को ही छू सके हैं जो इसी बीसवीं सदी में कुछ अन्य आविष्कर्ता विचारकों को अपनी ओर जरूर खींचेगा। हमारे पास ज्ञान तो है, किन्तु अब हम उस कला की खोजमें हैं जिससे हम अपना पुनर्निर्माण कर सकें, जैसे कि हमने महाद्वीपों और सागरों का पुनर्निर्माण किया है। लेकिन ज्ञान एक ताकत है और हर विज्ञान अन्त में एक कला बन जाता है जिसके परिणामों द्वारा मानव की अपनी दुनियाँ बदली है। इस पीढ़ी के पहले ही आदमी हवा-पानी के तरह तरह दिल-दिमाग भी गढ़ने लगेगा

अभी मानवीय आत्म-निर्मा पर्याप्त रूप से बदले नहीं जा सके सारी बाहरी दुनियाँ बदली जा चुकी अब ये भी जान-बूझकर अथक शक्ति से निर्मित सूक्ष्म और अति-प्रगति जीवन के अनुरूप अपने आपको गढ़ें पहले से अब आदमी की मानसिक इतनी बढ़ गयी है कि आज सर्वोच्च मानव का मन मन्दगति कृषक-मर्ति का मन ही नहीं रह गया। किसी हमारे मन-मस्तिष्क आधुनिकतम और हथियारों के समकक्ष हो जायेंगे और अक्लमन्दी तथा जानकारी का मुकाबला सकेंगे। तब हमारे उद्देश्यों और शक्ति सामरस्य होगा। शायद तभी हमारा यथार्थ मानवों के बर्ताव जैसा होगा।

साहित्य का उद्देश्य : अन्तर बाह्य आनन्द की सृष्टि

वीरेन्द्र कुमार जैन

ःय-सृजन के अपने अनुभव से यही
ःहूँ, कि अन्तत : वह आनन्द के
ः। आनन्द में से ही उसकी
ती है, और आनन्द के रूप में ही
फलित होता है। आनन्द के
से ही यह सारी चराचर सृष्टि
न होकर प्रकट हो रही है : और
री गति-प्रगति अन्ततः आनन्द-
ओर है।

से हमारे प्राचीन द्रष्टाओं ने साक्षी
सच्चिदानन्द भगवान के चिदानन्द
ही यह सृष्टि प्रकट होती है, और
ट का अन्तिम उद्देश्य भी उन
क परमानन्द रूप में लीन होना ही
र सृष्टि का मूल और उसकी
परिणति दोनों ही में आनन्द
न है, तो फिर मनुष्य द्वारा की
ं किसी भी सृष्टि का उद्देश्य भी
के सिवाय और क्या हो सकता है !
मानना होगा कि सृजन चाहे वह
साहित्य का हो या और किसी भी कला
का, प्रकृत रूप से उसका उद्देश्य आनन्द
है। यह कोई बुद्धि के तर्क से निर्णीत
सिद्धान्त नहीं, पर स्वयम् सृष्टि का स्वभाव
इस बात की साक्षी देता है।

साहित्य के जो भी अन्य उद्देश्य सम्भव-
तया स्थापित किये जा सकते हैं, वे सब इसी
अन्तिम और व्यापक उद्देश्य के अंग ही कहे
जा सकते हैं। मसलन कहा जा सकता
है—कि साहित्य व्यक्ति को विराट के साथ
तदाकार करने के लिये है; कि साहित्य
व्यष्टि को समष्टि के साथ एकतान करने
के लिये है; कि साहित्य निखिल चराचर
के साथ एकात्म-भाव स्थापित करने के लिये
है; कि साहित्य अल्प में से भूमा में जाने के
लिये है; सीमा को लांघकर असीम में
प्रवेश करने के लिये है; कि साहित्य
मृत्यु में से अमृत में जाने के लिये है; कि
साहित्य अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने
के लिए है; कि साहित्य असत् में से सत् में

जाने के लिये है ; कि साहित्य सत्य, शिव, सुन्दर की सृष्टि के लिये है ; कि नया साहित्य जीवन के नये सत्यों और मूल्यों के अन्वेषण के लिये है ; कि साहित्य उत्तरोत्तर विकास-प्रगति के लिये है।

इन सारे उद्देश्यों के सम्मुख फिर एक प्रश्न उठ सकता है कि यह सब किस लिये ? तो हमारे अन्तरतम में से अनायास उत्तर आता है : आनन्द की प्राप्ति के लिये, पूर्ण, पूर्णतर, पूर्णतम आनन्द की प्राप्ति के लिये। और यदि फिर भी प्रश्न उठे कि आनन्द किस लिये, तो अविकल्प रूप से आपके भीतर से उत्तर आयेगा कि आनन्द, आनन्द के ही लिये ; अपार, अखण्ड, अनन्त आनन्द के लिये। अल्प में से भूमा में हम इसीलिये जाना चाहते हैं, कि अल्प की क्षुद्र सीमा में राग-द्वेष है, दुःख है, आघात है, रगड़ है ; भूमा की विशालता में द्वंद्व का अवसान है, मुक्ति है, आनन्द है। मृत्यु से अमृत में हम इसीलिये जाना चाहते हैं कि मृत्यु दुःख और भय का कारण है और अमृत में आनन्द है, हमारे अखण्ड और सच्चे स्वरूप का अनुभव है। सारी विकास-प्रगति का उद्देश्य यही है, कि हमारा जीवन पद-पद पर आनेवाले द्वन्द्व, संघर्ष, बाधा, रोग, शोक, भय से अधिकाधिक मुक्त होकर, पूर्णतर आनन्द उपलब्ध कर सके।

तब साफ हो जाता है कि साहित्य के अन्य सारे उद्देश्य अवान्तर हैं, उसका

अन्तिम उद्देश्य आनन्द ही है। ज
एक सुन्दर, मनचाही कविता लिख ले
तो पाता हूँ कि मेरा मन एक प्रकार
से छलाछल भर गया है। कि जैसे मैं
नये ही स्वर्ग की हवाओं में सांस
लगा हूँ। मुझे कुछ घड़ियों के लिये
होता है कि मेरा जीवन मृत्यु से बाधि
है। आस-पास के सारे चराचर
मुझे एक अमृत का स्पर्श अनुभव हो
लगता है कि बाहर जो कुछ है,
पराया नहीं है, मेरी ही आत्मा का
है, मेरे ही अपनत्व का साक्षात्का
चेतन-अचेतन, सुन्दर-असुन्दर,
अपरिचित, सभी के प्रति एक
आत्मीयता मेरे भीतर उमड़ने ल
लगता है कि मैं सारी सृष्टि के सा
कार, तल्लीन, एकतान हो गया हूँ।
चाहे मेरी कविता का विषय दुःख,
पीड़न, शोषण, संघर्ष, युद्ध, विनाश
हो ; अथवा सौन्दर्य, प्रणय, मिलन,
क्रीड़ा-विलास, उल्लास हो।
लेने पर, अनुभूति समान रूप से
की ही होती है। दुःख, शोक, मृत्यु
की कविता लिखकर भी मैं उन
काष्ठाओं का चित्रण करके,
विभीषिकाओं को भेदने का उन्
करके, उसके फलस्वरूप, अन्तर
के चिन्मय, अमर, सर्वशक्तिमान
स्रष्टा के आनन्दमयरूप में
लेता हूँ।

पर साहित्य-सृजन का उद्दे

भावात्मक या आत्म-लक्ष्यी
।) आनन्द की प्राप्ति ही नहीं है ,
जगत् में मानव की रोज-मर्रा की
स्था में, आनन्दमय, परिस्थितियों
भी उसके उद्देश्य में समाविष्ट
चिन्मय है, मनचाही सुन्दर,
ष्टि करने की शक्ति रखता है,
न्द का स्रष्टा और भोक्ता हो
बाहर के जगत में, जीवन में,
ज में यदि चारों ओर दुर्व्यवस्था
है, त्रास है, अभाव-पीड़न है,
, हाहाकार है ; यदि मनुष्य के
ष्य का अपमान और शोषण
र से चल रहा है , यदि मुट्ठी भर
अपने निर्बाध आनन्द-भोग के
ों मानवों को दासत्व का जीवन
। मजबूर कर रहे हों , यदि सत्ता
के मद में प्रमत्त कुछ सत्ता-स्वामी
टे मानवता को दिन-रात सर्वनाशी
तंक-तले जीने को लाचार किये
ाहित्य की सार्थकता इस बात में
इस असत्य, अन्याय, अनाचार
विद्रोह की घोषणा करे , इसके
परम कल्याणकारी शिव के रुद्र-
ी सृष्टि करे । वह अपने शब्दों में
त्र-दर्शन जगाये, कि निपीड़ित
एकात्म होकर राशि-बद्ध रूप से,
त्याचारी की बड़ी-से-बड़ी शक्ति
देने के लिये कटिबद्ध होकर खड़ी
। तब साहित्यकार अपनी अन्त-
में से वह मशाल ऊँची करे,
काश में स्वार्थी असुरों की सारा
भेद-माया खुलकर सामने आ जाये, जिसकी प्रलयकारी ज्वाला में असत् और अकल्याण की अट्टालिकाएँ जलकर खाक हो जायें, स्वार्थ का भैंसासुर जिसमें जलकर सदा के लिये भस्म हो जाये, और जिसकी ज्योति में से निर्बाध मानव-मंगल के असंख्य सोते फूट पड़ें।

इसी से कहना चाहता हूँ कि साहित्य केवल भावात्मक आनन्द की सृष्टि करके ही नहीं रह जाता ! वह अपने भाव-जगत् के अनन्त आनन्द को बाह्य वस्तु-जगत में साकार देखना चाहता है। सच्चा साहित्य वही है, जो बाहर के जगत में ऐसी सुन्दर, सम्वादी, कल्याणी जीवन-व्यवस्था का अनुष्ठान करे, जो मानव के भाव-जगत् के आनन्द को अक्षुण्ण बनाये रख सके। जो बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय हो, "जो अणु-अणु को सुख से उर्मिल देखना चाहे, जो बाह्य-जगत् और अन्तर्जगत में समान रूप से आनन्द की सृष्टि करे। आकाश की नीलिमा में आनन्द का सागर उमड़ रहा है : पर यदि मेरी बाहरी परिस्थितियाँ इतनी विषम और भीषण हैं, कि मेरे तन-मन की सारी रोशनी बुझ गई है, तो यह आकाश की नीलिमा और कोई सुन्दरतम कला-कृति भी अपने सारे आनन्द को लिये मेरा मुँह ताकती खड़ी रह जायेगी : वह मुझे मिथ्या लगेगी, निःसार और फीकी लगेगी। आनन्द जगाने का उसका प्रयोजन व्यर्थ हो जायेगा !

जो लोग यह मानते हैं कि साहित्य का सम्बन्ध केवल भीतरी, भावात्मक आनन्द से है, वस्तु-जगत की प्रतिक्रियाओं और वेदनाओं से वह निरपेक्ष है, वे पलायनवादी हैं, अनजाने ही वे स्वार्थी शोषण के हामी हैं, उस शोषण के साझीदार हैं। वे भगवान के नाम पर अन्न्य और पाखण्ड का प्रचार कर रहे हैं, और वे गीता और उपनिषद् को अपने आसुरिक स्वार्थ का हथियार बनाने का जघन्यतम अपराध कर रहे हैं। 'कला के लिये कला' का सिद्धान्त, ऐसे ही स्थापित स्वार्थी मद-न्धों के [illegible] प्रमाद का आविष्कार था।

इसीसे फिर दोहराना चाहता हूँ कि साहित्य का उद्देश्य है आनन्द, अन्तर्-जगत् और बाह्य-जगत् में समान रूप से इस की सृष्टि। साहित्य के अन्य सारे उद्देश्यों का समावेश अनायास और [illegible] रूप से इस उद्देश्य में हो जाता है। [illegible] का सृजन अन्तर-बाह्य आनन्द के [illegible] लिये है, और पूर्णतम आनन्द है सच्चिदानन्द भगवान की प्राप्ति है।

बहुत खेले खेल
बाहों के, नयन के और मन के
गुनगुनाया भी बहुत कुछ,
बहुत देखी-लहर
देखीं—कशितयां
बस्तियां-बनती-बिगड़तीं बादलों के देश की,
जा पड़ीं परछाइयां मेरी-तुम्हारी
बहुत पीछे,
ला चुके सब शगुन-जोड़े
कौन यह सुनसान तोड़े!
लो उठो भी
चन्द्रमा अब चढ़ रहा है

बढ़ रहा है ज्वार पूनों का,
हैं सभी पाती लहर की
ये घरौंदे बने-अधबने
चित्र सारे, उँगलियों से जो खिंचे
रेत पर खींचे-मिटाये
और वे साधें कि जिनको [illegible]
तुमने सुनाया सीपियों में,
कर वसीयत लहर को सब
हट चलें हम दूर तट से
लिवाने उन्हें हर लहर आती है!
पातियां हम जिस लहर को
वह अभी मझधार में है!

नीम-माहात्म्य

बनफूल

हमारे मुहल्ले के नवागन्तुक यतीन बाबू को एक हिसाब से असमर्थ ही कहा जा सकता है। समाज के साधारण नियमों को किसी तरह तोड़ेंगे नहीं। कहीं से निमंत्रण मिला तो जायेंगे नहीं, मुहल्ले में किसी की खबर नहीं लेते, घर जाने पर खुश होने के बजाय भाव-भंगी से जताते हैं मानो नाराज ही हुए हों। फिर भी हमलोग प्रायः रोज ही शाम को उनके घर पहुँच जाते हैं। यतीन बाबू के चरित्र में कोई भी खोट हो, उनके घर की चाय एकदम निर्दोष होती है। उस दिन शाम को जब हम लोग, माने, माधव बाबू पुण्डरीकाक्ष बाबू और मैं, पहुँचे तब वह किसी आदमी से कुछ बातचीत कर रहे थे। इन आदमी को इससे पहले कहीं देखा नहीं जान पड़ा। यतीन बाबू का जैसा स्वभाव है, हमलोगों की ओर नजर भरकर देख लिया बस, किन्तु मुँह से एक बार भी 'आइये, बैठिये,' नहीं कहा, बात-चीत करते रहे। फिर भी हमलोग बैठ ही गये।

यतीन बाबू कह रहे थे : 'वह बचपन से ही ऐसा था। पण्डागिरी करता फिरता था, और तभी से शराब पीना भी सीख गया, शायद।'

'हमलोगों के हेम बाबू के लड़के फटके की बात कह कह रहे हैं क्या ?'

यतीन बाबू ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया, थोड़ा हँसकर उसी आदमी की ओर देख कहने लगे : 'उसके बाद उसके बाप ने उसे स्कूल से उठा लिया, न मालूम क्यों उठा लिया, किन्तु स्कूल छुड़ाने के बाद उसे एक अपने आत्मीय के पास बिहार भेज दिया। हाँ एक बात कहना भूल गया, इसी बीच लड़का कविता भी लिखने लगा।'

माधव बाबू पुण्डरीकाक्ष बाबू की ओर देखकर बोले, 'अपने जगा की चर्चा कर रहे हैं, समझ नहीं रहे ?''

दो बार आई. ए. में फेलकर तपोनाथ के ज्येष्ठ पुत्र जगदीश ने दूसरे के पैसों से शराब पीना और सिनेमा-पत्रों में प्रेम-कविता लिखना शुरू कर दिया था, आजकल वह छपरा में ननसाल में रहता है। अतएव माधव बाबू का अनुमान शायद ठीक था।

ते लरकती मूँछों को पोछ रहे थे, इस बात पर कुछ टिप्पणी कर दी, ग के लड़कों के हाल-चाल ऐसे ही क गया, आप आशु मास्टर की बात हैं। उसकी हिस्ट्री जानते हैं क्या ?'

न बाबू कुछ हँसे, कोई जवाब नहीं स्कूल के इस नवागत शिक्षक की नामी थी कि वे लड़कों के साथ मिलते-जुलते हैं। अपरिचित महाशय —'उसके बाद ?'

के बाद क्या, नौकरी गई। अनेक बदनामी फैल गई, अभिभावकों गा कि लड़कों की मति-गति ही न गय। 'सब कमिटी' ने भगा ाने भगाना पड़ा।'

ों की मति-गति क्यों बिगड़

लड़कों के साथ बैठकर शराब हता: 'धर्म-कर्म सब दकियानूसी की सूझ-बूझ है, इस युग में यह हीन है।' कहता, 'कुसंस्कार हटा की राज्यक्रान्ति की बात कहता र मिल की व्याख्या करता।'

?'

और फिर क्या ? थोड़े दिन मटर- ा फिरा। वृद्धों के उपदेश और सुने, फिर अकस्मात् एक दिन मर गया।'

'मर गया ? क्यों, क्या हुआ था ?'

'कॉलेरा !'

माधव बाबू ने कहा, 'समझ गया, नीपू के भाँजे की बात कह रहे हैं, वह भी कलकत्ते में मास्टरी करता था, कुछ मस्त तबीयत का आदमी था, एक साल के करीब हुआ, मर गया। नीपू के भाँजे की ही बात कहते हैं न ?'

पुण्डरीकाक्ष बाबू ने प्रतिवाद किया, 'नीपू का भाँजा शराब कहाँ पीता था ? शराब पीता था वह छिदे, मास्टरी भी करता था। किन्तु वह तो टाईफॉइड में मरा है। आपने शायद गलत खबर सुनी है, यतीन बाबू।'

यतीन बाबू फिर हँसे थोड़े-से। जवाब नहीं दिया। इतना अभद्र व्यक्ति शायद ही दिखाई पड़ेगा कहीं !

अपरिचित व्यक्ति की ओर देखकर यतीन बाबू ने कहा 'श्रद्धा होती है इस आदमी पर ?'

अपरिचित व्यक्ति ने कहा, 'यही है आप के महापुरुष की कहानी ?'

'नाम छुपा लिया है अतः महापुरुष नहीं जान पड़ता। नाम पहले बोल देने से प्रति पद पर महापुरुष दिखाई देता।'

'नाम क्या है, सुनूँ तो ?'

'हैनरी लुई विवियन डिरोजियो।'

अनु: मोहन मिश्र
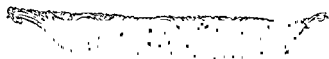
यहाँ की घाटियों से दूध के झरने छलकते
यहाँ के आदमी का मन बड़ा निर्मल।
ये जल की थैलियाँ
रुक-रुक लरज कर मागती हैं जो
बिना बोले, बिना गरजे
बहुत चुपचाप जातीं गल।

मेरे देश में ऋग्वेद का संगीत भी गूंजा था
उसके और पहले, और पहले, और पहले
गरजती सिन्धु-सरिता के किनारों पर
झलकीं किसी तहजीब की ऊँचाइयाँ।

मेरी एक भोली-सी बहन
जिसके देश की झीलें बड़ी
झीलों पर हजारों घर;
हंसों की सफेदी पाँत
चेरी के लगाए फूल,
जब भी सोचती हूँ तो मुझे
ये काँगड़ा की घाटियाँ भी
हाय, जातीं भूल।

मेरा एक भाई था बड़ा रणधीर
जिससे खौफ खाते थे फिरंगी लोग
लन्दन का बहुत मजबूत सिंहासन
मेरे वीर की हुँकार से ही काँपता।

मगर इन्सानियत के दुश्मनों ने घेर कर
उस वीर को, सरदार को था चीर डाला।
उसकी लाश अपने हाथ से मैं छू न पाई
पर याद मेरे खून में घुल-मिल गई।

मैंने आदमी को श्वान जैसा काटते देखा,
मैंने मजहबों की खाल ओढ़े नर-दरिन्दे
अपनी भूमि, अपने स्वर्ग को भी बाँटते हैं
तुमसे क्या सुनाऊँ वह कहानी
लहू के उस समन्दर की कथा
यूँ, याद है मुझको जुबानी।

मैंने कब नहीं इतिहास के झोंके सहे, मैं सरदार के पंजाब की बेजोड़ पंजाबन

दिखलाई तो हर ओर रोशनी देती है

— कीर्ति चौधरी *

हर ओर जिधर देखो
रोशनी दिखाई देती है
अनगिन रूपों रंगों वाली

मैं किसको अपना ध्रुव मानूँ
किससे अपना पथ पहचानूँ
अँधियारे में तो एक किरन काफी होती
मैं इस प्रकाश के पथ पर आकर भटक गया।

चलनेवाले की यह कैसी मजबूरी है
पथ है...प्रकाश है...
दूरी फिर भी दूरी है

क्या उजियाला भी यों सबको भरमाता है?
क्या खुला हुआ पथ भी
पग को झुठलाता है?

मैंने तो माना था
लड़ना अँधियारे से ही होता है
मैंने तो जाना था
पथ बस अवरोधों में ही खोता है

यह मैं अवाक् दिग्भ्रमित चकित सा
देख रहा
यह सुविधाओं, साधनों
सुखों के मेले
यह भूल-भुलैय्या
रंगों, रोशनियों का
अद्भुत नया खेल
इसमें भी कोई ज्योति साथ ले जाएगी?
क्या राह यहाँ पर आकर भी मिल जाएगी?
दिखलाई तो हर ओर रोशनी देती है...

विरोध, समर्थन और निर्माण

—डॉ० रामानन्द तिवारी—

कुछ विचारकों का विश्वास है कि सृष्टि और समाज की व्यवस्था में एक विरोध का तत्व वर्तमान है। यही तो समाज के विकास की प्रेरणा है। साम्यवादी समाज-मीमांसा का मूल सिद्धान्त विरोध ही है। हीगल के तर्कशास्त्र में जो पक्ष,विपक्ष और समन्वय की त्रिपुटी है, वही साम्यवादी समाज-मीमांसा का आधार है। समाज की कोई भी स्थिति रूढ़ होकर 'पक्ष' बन जाती है। जब उसका विरोध होने लगता है तो उस विरोधी 'पक्ष' को 'विपक्ष' कहते हैं। इन दोनों पक्षों के विरोध का समाधान जिस तीसरी स्थिति में होता है उसे 'समन्वय' कह सकते हैं।

समाज-विकास-रूप विष्णु के ये तीन चरण हैं। इन तीनों चरणों की सत्यता एक सीमा तक समाज के इतिहास में प्रमाणित होती है। प्राचीन वैदिक धर्म लौकिक और भौतिक अधिक था। इसे हम 'पक्ष' मान सकते हैं। उपनिषद, जैन-धर्म और बौद्धधर्म के अतिरंजित अध्यात्म से इसका विरोध हुआ। यह 'विपक्ष' है। पौराणिक लोक-धर्म में दोनों के 'समन्वय' का भी प्रयत्न हुआ। भारतीय दर्शन के द्वितीय उत्थान में इसी क्रम की आवृत्ति एक बार फिर हुई। कुमारिल भट्ट के मीमांसा-दर्शन में वैदिक कर्मकाण्ड की प्रतिष्ठा हुई। शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में उसके प्रति योगी ब्रह्मवाद का प्रचार हुआ। रामानुज आदि के वैष्णव वेदान्तों के कर्म और अध्यात्म का भक्ति में समन्वय हुआ। पक्ष, विपक्ष और समन्वय से युक्त इसी प्रकार की त्रिपादगति समाज के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में भी दीख पड़ती है।

तर्कशास्त्र भी विरोध और संगति बुद्धि का स्वभाव मानता है। इस दृष्टि सामाजिक प्रगति का यह निरूपण मनुष्य के बौद्धिक स्वभाव के अनुरूप है। मनुष्य की बुद्धि अन्याय नहीं सह सकती। अन्याय के प्रति सजग होने पर वह उसका

करती है। इस विरोध का
न एक नये समन्वय में होता है।
समाज के विकास की यह व्याख्या
नहीं है। पक्ष, विपक्ष और समन्वय
ें ही चरण वास्तविक होते हुए भी
की प्रगति की समुचित व्याख्या नहीं

ई भी रूढ़ व्यवस्था काल की प्रगति
प अनुपयुक्त हो जाती है। अतः
त होकर समाज की चेतना उसका
करती है। यह विरोध उस रूढ़
को गिराना चाहता है। वह व्यवस्था
दा करती है। विरोध के द्वारा
ढ़ि दोषपूर्ण तत्त्व नष्ट होते हैं और
एक सामंजस्य की स्थिति में दोनों
न्वय होता है। समन्वय की स्थिति
हो जाने के बाद फिर यही क्रम
है।

माज की उपरोक्त व्याख्या में रूढ़ि-
, विरोध और समन्वय के तीन तत्त्व
ते हैं। ये तीनों ही मानव चेतना
र्ण और महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। किन्तु
ः मानव-चेतना में इनसे भी अधिक
ण तत्त्व विद्यमान हैं, जो समाज की
में इनसे भी अधिक सहायक हो
। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण
की चेतना का रचनात्मक तत्त्व है।
ः यह रचनात्मक तत्त्व ही समाज की
की मूल प्रेरणा है। रूढ़िवादी तत्त्व
स्थिति का समर्थन कर प्रगति में
होता है। विरोध ध्वंसात्मक है।

यह ध्वंस किसी सीमा तक विकास का
आवश्यक अंग है। समन्वय रूढ़ि के
समर्थन और विरोध का समझौता है।

किन्तु सम्भवतः रचनात्मक तत्त्व, जो
नई व्यवस्थाओं के निर्माण में साकार होता
है, सामाजिक प्रगति का अधिक समृद्ध स्रोत
है। समर्थन, विरोध और समन्वय तीनों
इस निर्माण के अंग हो सकते हैं। किन्तु
निर्माण का अपना निर्माण केवल रूढ़ि का
समर्थन नहीं है। वह नवीन रचना है।
निर्माण ध्वंस नहीं है क्योंकि वह रचनात्मक
है। निर्माण केवल समन्वय भी नहीं है।
समन्वय में प्राचीन के सामंजस्य का भाव
अधिक है, नवीन रचना का भाव नहीं है।
समाज की प्रगति केवल समन्वय के आधार
पर नहीं होती, वरन् नवीन निर्माणों के
आधार पर होती है। यह नवीन निर्माण
पूर्व-स्थितियों का विरोधी हो सकता है,
किन्तु नवीन निर्माण में विरोध की
निषेधात्मक वृत्ति की अपेक्षा रचना की
भावात्मक वृत्ति ही प्रधान होती है।

निर्माण की यही भावात्मक वृत्ति
सामाजिक विकास का मूल स्रोत है। उक्त
तीनों वृत्तियों का समाहार करके यही
रचनात्मक वृत्ति सामाजिक प्रगति को
विकास की नयी दिशाओं में अग्रसर करती
है। अतः रचनात्मक दृष्टिकोण ही समाज
के कल्याण का सही मार्ग है।

आधुनिक राजनीति और सामाजिक
कार्यों में सक्रिय निर्माण की अपेक्षा निर्माण

का 'समर्थन' अधिक हो रहा है। यह स्पष्ट है कि इस समर्थन से प्रचार अधिक और निर्माण कम हो रहा है। बस समर्थन का यही दोष है। इसके अतिरिक्त समर्थन केवल बाधक न होकर घातक भी हो जाता है। जिस चीज का जितना समर्थन किया जाता है वह सबल होने के स्थान पर उतनी ही मन्द भी होती जाती है। पिछले दस वर्षों से हिन्दी के समर्थन से हिन्दी की स्थिति दुर्बल ही हुई है। संस्कृति के नाम पर लोक-कलाओं का समर्थन हो रहा है, उसमें भी इन कलाओं का गौरव नष्ट होता दिखायी दे रहा है और उन्नति तो कुछ हो ही नहीं रही। हिन्दू-संस्कृति के पक्षपाती समर्थन द्वारा लोग उसका भी पैसा ही अहित कर रहे हैं।

यह एक विचित्र बात है कि समर्थन किसी भी पक्ष अथवा स्थिति को दुर्बल और मन्द बनाता है। ऐसी ही विचित्र गति 'विरोध' की भी है। विरोध का उद्देश्य किसी अवाञ्छनीय स्थिति को मिटाना है। किन्तु प्रायः विरोध का फल इसके विपरीत होता है। अध्यात्मवाद ने वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध किया किन्तु वह आज तक जीवित है। आर्य-समाज ने मूर्ति-पूजा का विरोध किया किन्तु यहाँ नित्य नये-नये मन्दिर बन रहे हैं। कांग्रेस ने मुस्लिम लीग का विरोध किया किन्तु उसका फल पाकिस्तान हुआ। जातिवाद, प्रादेशिकता और साम्प्रदायिकता का विरोध हो रहा है और फिर भी ये बढ़ रहे हैं। धार्मिक मतवाद लौकिक अनर्थ के विरुद्ध है और सोये हुए धर्म फिर भी जग रहे हैं। ... केन्द्रियता के विरोध से ... साम्राज्यवाद के विरोध से नये ... तानाशाही के विरोध से नयी ... खड़ी हो रही है।

'समन्वय' में भी इसी तरह भ्रान्तियाँ हैं। समर्थन और विरोध ... में ही भावात्मक और निषेधात्मक ... दिखा दो रूपों में प्रकट होते हैं। ... वास्तविक समन्वय के विपरीत है। ... का सच्चा रूप उदारता से ... यह उदारता परम्परा को भी ... देती है। उदार परम्परा अपने ... को जीर्ण पत्रों के समान त्यागने के उत्सुक रहती है और प्रगति के नये ... में खिलती है। रूढ़ि की संकुचित ... पड़े 'समन्वय' में अन्धकार-बन्द ... रह जाती हैं। 'भारतीय ...' समन्वय में कुछ ऐसी ही भ्रान्ति ... समन्वयात्मक संस्कृति का ... भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की ... धाराओं की उपेक्षा कर कल्पना के ... पर ही गगन-विहार कर रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक ... की सही दिशा का निर्देश निर्माण ... होता है। नवीन रचना में समर्थ ... विरोध अपना आग्रह छोड़कर सहयोगी बन जाते हैं। रचना के ... में समन्वय भी सही रूप में होता है।

कृपया शेष पृष्ठ ८० पर

न अन्ताराष्ट्रिय स्थिति का प्रभाव
र यह पड़ा है कि स्वतन्त्र और
से किये निर्णयों पर ही जनता
निर्भर करता है और इसी पृष्ठभूमि
र पत्र घटनाओं का यथार्थ चित्र
कर सकेंगे, जिस पर बड़े राष्ट्रों से
सहयोग निर्भर करते हैं। हमारा
मत बहुत-कुछ पत्र एवं पत्रकारों
बनता-बिगड़ता है। श्री नेहरू का
ा पूर्णतः सही है कि 'लेखकों के
से महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं कि वे
खते हैं, किस प्रकार लिखते हैं।
ह है कि वे जो कुछ भी लिखते
सत्य समझते हैं या नहीं। अपने
को एवं अपनी भावनाओं की
क वे ईमानदारी से करते हैं
हीं।' वस्तुतः आज लेखकों
नाओं में इस ईमानदारी का ही
हमें राज्य-साहित्य और प्रचार-
से कोई परहेज नहीं, किन्तु इस
ा साहित्य पढ़ने से यह भी पता तो
चाहिए कि लेखक जो कुछ भी
ा है, वह उसके अन्तर की वाणी है।

आज का अधिकतर साहित्य नकली साहित्य है, और किसी-न-किसी 'वाद' के घेरे में घिरा है। व्यर्थ का आडम्बर और टीम-टाम ऐसी रचनाओं में रहते हैं। यही कारण है कि कई मन साहित्य के कूड़े में कभी-कभी एक-आध रत्न के दर्शन होते हैं। खेद है कि लेखन-क्षेत्र में भी ईमानदारी का दुखद अन्त और आडम्बर एवं तड़क-भड़क का साम्राज्य स्थापित होता जा रहा है। और तो और पत्र एवं पत्रकार भी उन्हीं के बढ़ावे में संलग्न रहते देखे जाते हैं। लेखक और पत्रकार, युग के प्रतिनिधि हैं, जनमत की शक्तिशाली आवाज हैं, यह कभी भूलना नहीं चाहिए।

सच्चे पत्रकारों में पक्षपात नहीं होता। जिसने जनता के हितों की हत्या कर, रगड़े-झगड़े द्वारा अनुचित लाभ उठाने का प्रयास किया और जनता के प्रति विश्वासघात किया, प्रतिक्रियावाद के प्रश्रय देने के निमित्त जनता की आवश्यकताओं और हितों से दूर रहने का बहाना किया वह तो पत्रकारिता के लिये कलंक है। पत्र एवं पत्रकार व्यक्ति-विशेष के स्वार्थ-साधने-

के हथकंडे न बनें, प्रगतिपथ में बाधा डालने वालों का पर्दाफाश करें। वे सामाजिक और आर्थिक प्रगति में योग देनेवालों को ही प्रोत्साहन दें—यही आवश्यक है। आज के पत्रकारों को ऐसे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के निर्माण का नेतृत्व ग्रहण करना है जो देश के लिये—उसके लोकतांत्रिक जीवन के लिये—सहायक हो सके।

सामान्य जनता को लोकतंत्र के आदर्श पर ले चलने के लिये पत्रकारों के कंधों पर महान् दायित्व है और इसमें ईमानदारी एवं कर्तव्य-निष्ठा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। आज हमारा देश लोकतंत्रवाद की ओर अग्रसर है। यदि पत्रकार चाहे तो उसे प्रगतिशील रख सकता है अथवा बिगाड़ सकता है। इसमें हृदय की सचाई एवं ईमानदारी तथा सत्य और यथार्थता ही ऐसे प्रदीप हैं जिनके प्रकाश में पत्रकारिता की साधना करनी पड़ती है। अवश्य ही अन्याय का विरोध करने में नवीन विचारों और कल्पनाओं का वाहक बनने और नव-निर्माण के संदेश का अग्रदूत होने में आज पत्रकारों का स्थान अन्य कोई नहीं ले सकता है और इसके लिये समुचित सुविधा एवं स्वतन्त्रता अनिवार्य है। सरकारी संस्था अथवा किसी भी प्रकाशन के मालिकों का कर्तव्य है कि वे पत्रकारिता की प्रतिष्ठा करें, सुविधाएँ दें। वे यदि ऐसा नहीं करते हैं तो अपने कर्तव्य को भूलते हैं और जब हमें सुविधाएँ सुलभ नहीं होंगी तब हम सहयोग नहीं कर सकेंगे। किन्तु इसके लिये पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता

में कदापि नहीं पड़ना चाहिये। ... है, जनता की आवाज है और ... प्रदर्शक भी। हमारा ... भी ... नहीं हो सकता।

किन्तु आज अधिकांश ... चाटुकारिता या दल-बन्दी ही ... होने लगी है और कलाकारों, ... के शोषण के साथ-साथ सामान्य ... ठगी द्वारा दूसरों की तिजोरियाँ ... है। ऐसा जान पड़ता कि इन ... की अपेक्षा पशु हो अच्छे हैं। ... उनमें अधिकार एवं स्वत्व का ... या प्रतिस्पर्द्धात्मक संघर्ष तो नहीं है ... कि हमारे व्यावहारिक क्षेत्रों में ... आर्थिक और सामाजिक आदर्शों के ... है। आश्चर्य तो यह कि ... संस्कृति और सभ्यता के लिये ... इन्हीं आदर्शों को मिटाने में लगे ...

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि ... की पत्रकारिता कुल मिलाकर ... पर अग्रसर होती जा रही है ... अपने कर्तव्यों को पहचानते हैं और ... प्रयत्नशील भी हैं। ... भले ही उसमें बुराई भी हो, ... है। किन्तु स्वाधीनता-संग्राम के ... कार्य एवं प्रचार के तुल्य ... नैतिक स्तर नहीं रह पाता है। ... पत्र एवं पत्रकारों की प्रवृत्ति ... जाती है। व्यक्ति-विशेष की ... स्वार्थ-साधन के लिये पत्रकारिता ... में व्यवहृत होती है। ऐसे ... हैं, जो सिर्फ स्वार्थ-साधकों ...

के शोषकों के ही लिए चल रहे हैं।
स्तव में हमारी सारी चेष्टाएँ
ोन्मुख पत्रकारिता की प्रवृत्तियों को
त्व प्रदान करने के निमित्त होनीं
। हमारे समस्त कार्य एवं व्यवहार
देश्य से संगठित हों। किन्तु इसके
। आवश्यक है कि हम पत्रकार ईमान-
उदारता, निष्पक्षता, सत्य आदि
ो दृढ़ता से अपनायें और विरोधी
ों के प्रति पूर्ण सतर्क रहे तथा
नतापूर्वक पग बढ़ावें। लेखनी उठाने
य सारी बातें विस्मृत रख केवल
के पत्रकार बनकर ही लिखें। सत्य
धार हो तो नयी पीढ़ियों को प्रकाश
। और पत्रकारिता की उन्नत होगी।
ाम प्रत्येक पत्रकारका कर्त्तव्य है जिससे
वं समाज के विकास में गतिशीलता
विधता का समावेश संभव हो।
न्तु आज एक ओर तो पत्रों में
ा, बन्धुत्व एवं पूर्ण प्रगतिशीलता का
ाया जाता है और दूसरी ओर व्यवहार
वल विरोध किया जाता है बल्कि
रण,शोषण और उत्पीड़न द्वारा अपना
ा जाता है। यह स्थिति भयावह है।
रिता के नाम पर जो स्वार्थ-साधन
चाहता है, शोषण के आधारों को
करता है, प्रवंचनाओं के आधार पर
र्जन करता है वह अपनी पत्रकारिता
म खोदता है। सामाजिक सिद्धान्तों में
और राजनीतिक मतान्तर संभव हैं,
नकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती
न्तु स्वार्थ के लिये ही संस्था या
सुधार-समिति का प्रचार या ढोंग, पत्रकार
का नाम लेकर सुरा-सुन्दरी में लिप्त हो जाना
क्या कम लज्जाजनक है?

हम पत्रकार हैं और पत्रकार की हैसियत से ही अग्रसर रहें। इसके लिये न चाटुकारिता आवश्यक है और न अम्मत-फरोशी की ही जरूरत है। सुधार या समीक्षा के आवरण में विषाक्त प्रचार या व्यवहार, अपने स्वार्थ-साधन एवं सहयोगियों के शोषण को स्थायित्व देने के प्रश्न अशुभ हैं। यदि पत्रकारिता को भ्रष्ट नहीं होने देना है तो अवश्य ही निष्पक्षता एवं ईमानदारी से कदम बढ़ाना होगा और अपने विचारों का ऐसा स्तर कायम करना होगा जो दूसरों की दृष्टि में हास्यास्पद सिद्ध न हो।

दुख है कि आज हमारी विचारधारा बड़ी गन्दगी में फंसी है, और हमारा व्यवहार सन्तुलित नहीं। हमारा प्रेरणा-स्रोत विशुद्ध न होकर अर्थार्जन हो रहा है। नैतिकस्तर निम्नगामी होता जा रहा है। जबतक पत्रकारिता की ओढ़नी ओढ़कर यह संहार-लीला हम चलाते रहेंगे, तबतक हमारी हालत पनप नहीं सकती, यह निश्चित है। आज आवश्यकता है कि हम किसी प्रश्न पर पूर्ण विवेचना करें और तबतक अपने विचार प्रकट न करें जबतक पक्षपात-रहित तथ्यों का यथार्थ अध्ययन समाप्त न कर लें। इस प्रकार निष्पक्षता के निर्वाह से ही हम एक स्वस्थ वातावरण बना सकेंगे।

किसी भी पत्रकार के लिये अपने विषय की व्यापक पूर्व-पीठिका का ज्ञान, सरल सुबोध एवं प्रवहमान स्वच्छन्द-गुम्फन की

कैदी की आत्म-हत्या

•

मूल : वे० गोविन्द राजन्

•

अनु० : एम० सुब्रह्मण्यम्

•

एक तमिल कहानी

"क्या कहा, मरने के लिए भी रिश्वत ?"

कान्स्टेबल राजू के मानव-मन में जरा चेतनता आयी। 'आत्महत्या के लिए उद्यत उस कैदी से मैं कैसे कहता कि तुम अगर रिश्वत दोगे तो तुम्हें मरने से नहीं रोकूँगा। अगर वह पैसा दे देता तो भी इस नीच काम में कैसे सहयोग देता मैं ? नहीं ; कदापि नहीं। किसी की मौत मेरी आजीविका का साधन न बने।' यही सब सोचता-सोचता राजू चाय की दूकान में घुस गया।

"अरे भाई राजू, आज तो तुम बहुत थके मालूम होते हो ! क्या बात है ?" चाय की दूकान के अन्दर से जेल के वार्डन की आवाज आयी।

"हाँ, भाई, सुबह से अभीतक चाय पीने की भी फुर्सत नहीं मिली"—अपनी लाल पगड़ी को मेज पर रखकर लंबी सांस लेता हुआ राजू वार्डन के पास जा बैठा।

दूकानदार को राजू के लिए गरमागरम चाय लाने का आदेश देकर वार्डन राजू से पूछने लगा—"क्यों भाई राजू, बाहर जो आदमी खड़ा है उसे कहाँ से पकड़ लाये ?"

"यह एक विचित्र 'केस' है। आत्म-हत्या करने जा रहा था ; पकड़ा गया। सचमुच मरना ही है तो साला घर पर ही

सादे से कपड़ों तन ढँके, गले में
ा पहने और माथे पर विभूति
बड़ा धार्मिक शैव-सा दिखाई
। उसकी विनम्रता और दयालुता
श्चर्य होता था कि क्या यह वही
थाने में काफी रोब जमाता है।
वालों के दाँव-पेंच में तो वह
। कुछ दाँव-पेंच तो स्वयं उसीने
। किसी भी परिस्थिति में वह
घबराया। चौराहे पर याता-
त्रण का काम भी उसे कभी-कभी
या तो बिना रोशनीवाली
र तादाद से ज्यादा भारी बोझि
के चालकों और ट्रैफिक के
को तोड़नेवालों की कृपा से रोज
बें भर जातीं थीं। लेकिन कुछ
उसका भाग्य बिगड़ा था। कोई
ऐसे न निकले कि उसकी मुट्ठी गरम
और तभी उसका प्यारा बच्चा सख्त
पड़ा। डाक्टर ने दो दिन पहले ही
लिख दिया था। पर वह खरीद
का। आज यह शख्स मिला तो राजू
रहा था कि एक 'किस' मिला।
यह तो आत्महत्या कर लेना चाहता
समे रिश्वत कैसे ली जाय?

राजू ने एक लम्बी सांस ली, उसके
बड़ी उथल-पुथल मची थी। अगर
भी दवा नहीं खरीदी तो बच्चे का
होगा? अगर इस वक्त कोई पैसा
ना मिलता, चाहे रिश्वत के रूप में
यों न हो, तो वह उसका आजीवन
बन जाता। उसको लगा कि दुनियाँ
में मददगारी जैसी कोई चीज ही नहीं
रही।

कैदी की चुप्पी ने राजू को और गुस्सा
कर दिया। उसने इस बार सोचा: 'यह
आदमी भी बड़ा सनकी है, इसको पकड़
लाकर मैंने ही बेवकूफी की। इसको तो
मरने देना ही उचित था। इससे कुछ ले
लिवाकर छोड़ ही दूं तो कैसा रहे?

अब वह कैदी के पास सरक आया,
और धीरे से पूछा, 'क्यों, कुछ पैसे-वैसे हैं
तेरी जेब में?'

कैदी को राजू की ओर से ऐसे प्रस्ताव
की उम्मीद न थी। उसे विस्मय हुआ।

राजू आगे बोला—"सुनो, आगे से
आत्महत्या की कोशिश नहीं करना। यदि
इस बार के कसूर से बचना चाहो तो दस
रुपये निकालो।"

कैदी फिर भी चुप रहा तो राजू ने
सोचा कि इस दुनियाँ में दूसरों पर ज्यादा
सहानुभूति प्रकट करना ठीक भी नहीं है।
उसने कड़ाई से पूछा—"सुनो, पैसा है कि
नहीं? अगर-नहीं है तो चलो हमारे साथ
थाने।"—यदि तुम्हारे पास पैसा नहीं तो,
किसी परिचित आदमी से ही लेकर दे दो।
नहीं तो जेल की हवा खानी पड़ेगी।"
राजू ने आखिरी दाँव लगाया। कैदी हाथ
मलने लगा। राजू का ध्यान अचानक
कैदी के हाथ पर की अँगूठी पर पड़ा।
उसकी चमक ने एकबारगी उसके ध्यान को
अपनी ओर खींचा। उसने झट पूछा—
"क्या यह तुम्हारी ही अँगूठी है?"

"हाँ।"

"यह अंगूठी ही दे दो, आगे ऐसा काम कभी न करना, अच्छा !"

कैदी लंबी साँस लेकर थोड़ी देर तक अपनी अंगूठी को देखता रहा। फिर धीरे से उसे अपनी उंगली से निकाला। बड़े अनमने भाव से उसे राजू की ओर बढ़ाया और वहाँ से तेजी से कदम बढ़ाते हुए वह चल दिया।

राजू का मन खुशी से नाचने लगा। अब दवा खरीदने में कोई दिक्कत नहीं रहेगी, बच्चे की जान बच जायगी।

राजू कैदी की अंगूठी लेकर एक परिचित साहूकार के पास गया। रेहन रख-कर पैसे लाया। दूकान से दवा लेकर जल्दी जल्दी घर पहुँचा।

बच्चा ज्वर की अधिकता से न जाने क्या-क्या बकने लगा था। उसकी नानी पास बैठी रो रही थी।

डाक्टर कई सुइयाँ लगवा चुके थे। तरह तरह की दवाइयाँ मंगायी जा रहीं थीं। सब प्रयत्न कर जब डाक्टर साहब हार गये तो मायूसी से सिर हिलाते हुए चले गये।

राजू बच्चे की जान बचाने के लिए अपना सब कुछ देने को तैयार था। लेकिन यमदेव राजू की कोई भी रिश्वत लेकर बच्चे की जान बख्श देने को शायद तैयार न थे। बच्चा धीरे-धीरे अन्तिम श्वास लेने लगा। राजू की आँखें छल-छला आयीं। जोर से दिल धड़कने लगा। समझ नहीं पा रहा था कि क्या किया जाय। पागलों [illegible] वह बच्चे के पास ही बैठा रहा।

करीब पाँच वर्ष पहले जब उस[illegible] मृत्यु-शय्या पर पड़ी थी, तब उस[illegible] पहली बार डबडबायीं थीं और [illegible] आज। उसके जिद्दी और चिड़चि[illegible] को सहते हुए भी वह कई साल [illegible] रही। मरते समय सिर्फ इतना कहा [illegible] को प्रेम से पालिये, उससे कहाँ से [illegible] आयेगा।" ये वाक्य राजू के मन [illegible] की लकीर की तरह अंकित हो गया।

इसके बाद उसका मन [illegible] आकर्षणों की तरफ से उचट गया। करुणा का स्रोत फूट पड़ा। उसका स्वभाव भी कुछ सुधरा था। अपनी [illegible] तस्वीर के सामने वह रोज़ दिया [illegible] रखता, फूल चढ़ाता। उसका सारा प्रे[illegible] पर ही था। अब दुनियाँ में उसे, [illegible] के सिवा और किसी की भी चि[illegible] थी। यदि यह बच्चा भी उसे छोड़ [illegible] जाय तो......इससे आगे वह [illegible] सका।

निश्चल पड़े हुए बच्चे के कोमल [illegible] को उसने अपने हाथों पर रखा। सुहलाया और उसके हाथ में बच्चे [illegible] अंगूठी दिखी तो एकदम उसका [illegible] कौंध उठा। यह अंगूठी उसकी [illegible] प्रेम से बच्चे को पहनायी थी। [illegible] बार उसे पैसे की जरूरत पड़ी [illegible] उसे बेचने को कभी राजी नहीं [illegible] खयाल आया, पता नहीं इस अंगू[illegible]

र में यह अंगूठी पहन रखी थी
राजू उस अंगूठी को छीन लाया!
नहीं, वह अभागा अब जीवित भी
या नहीं।
ीवार पर टंगी हुई उसकी स्त्री की
ने जैसे मुस्कुरा कर कहा :—'आपने
। लेकर एक आदमी को मरने दिया।
रिश्वत देकर क्या अपने लाल को बचा
कते हैं?'

उसका चेहरा पीला पड़ गया। बच्चे के
बचाना उसके काबू में नहीं था।
न उस बेचारे कैदी की जान बचाना
सके हाथ में था। उसने बच्चे की
ी उतारी और झट-पट उठ खड़ा हुआ।
और वर्दी पहनकर घर से निकला।
ा ने पूछा भी, "बच्चे को ऐसी हालत
ोड़कर कहाँ चले?" किन्तु राजू ने
अनसुनी कर दी।

राजू सीधे साहूकार के पास गया।
ने बच्चे की अंगूठी गिरवी रख वह
ठी छुड़ायी तेजी से और फिर सायकिल
उस कैदी की खोज में चल पड़ा।
सबी कान्स्टेबल राजू की तलाश करने की
क मानों कंठित हो गयी थी। सारा शहर
न मारा, कैदीका पता न चला। आखिर
रकर वह शहर के बाहर एक आम
बगीचे में बैठ गया। अकस्मात् देखा कि,
ी दूर पर हो कोई धीरे-धीरे चला जा
ा है। राजू ने आगे बढ़कर देखा कि यह
ी आदमी है जिससे उसने अंगूठी झपट
ी थी। राजू को एक ओर उसके मिलने से
न्तोष हुआ तो दूसरी ओर मरने की
आतुरता पर झुँझलाहट भी आयी।

"क्यों बे, सबेरे की मेरी बातें याद नहीं
तुझे? कितना समझाया कि मरने का
हठ छोड़। फिर भी अब खुदकशी करने
जा रहा है क्या?"

'..........'

"अच्छा, नहीं बोलेगा। यह ले अपनी
अंगूठी। दूसरों की संपत्ति हड़पने की मुझे
कोई इच्छा नहीं।"

राजू बहुत थका था। उसे अपना ही
शरीर भारी मालूम होने लगा। किसी तरह
वह उस आदमी को लेकर थाने पहुचा।

थाने पहुँचते ही उसने इन्स्पेक्टर साहेब
को बड़े अदब से सलाम किया और सब
हाल कहा।

इन्स्पेक्टर साहब का मुँह खिल उठा।
बेकार बैठे उनको शायद एक 'केस' मिल
जाने की खुशी थी। स्वयं उसकी जाँच
पड़ताल की, तो जेब से एक पत्र निकला
जिसमें लिखा था :

आत्महत्या का कारण पूछनेवालों से,

"मेरी आत्महत्या पर आप बेकार परेशान
न हों। मैं जिन्दगी से नफ़रत करता हूँ।
और आत्महत्या का निश्चय कर चुका हूँ।
अपने बारे में यह निर्णय करने का मुझे
पूरा हक़ है। कानून दण्ड का भय दिखा
कर मेरे इस हक को छीनने की कोशिश
कर सकता है। लेकिन हाड़-माँस से बने
इस मानव शरीर को गति देने वाले प्राण
पर कानून अधिकार नहीं चला सकता।"

—जिन्दगी से आजिज एक अ...

इन्सपेक्टर पूछने लगे—"क्यों बे, तुम जिन्दा रहना नहीं चाहते ? तुमने पत्र में लिखा है कि 'कानून मेरे मरने के हक को छीन नहीं सकता' अब तो कानून से यह काम हो गया न ?

कैदी चुप रहा। इन्सपेक्टर बोला—"अरे, कौन है, इसे 'लॉकप' में ले जाओ।"

राजू ने घड़ी देखी तो बच्चे की याद आते ही उसका दिल धड़कने लगा। इन्सपेक्टर से आज्ञा ले वह घर की तरफ चल पड़ा।

घर पर बच्चे को होश में आया देख उसे अचरज भरी खुशी हुई। वह अपनी बूढ़ी सास से बोल रहा था। कुछ ही देर पहले आये डॉक्टर अपनी सफलता पर गर्व कर रहे थे।

राजू का शरीर रोमांचित हो उठा। बड़े प्रेम से बच्चे पर हाथ फेरने लगा। उसका मन कहने लगा कि रिश्वत को लौटाने, और एक आदमी को मरने से बचाने के कारण ही उसका बच्चा बच गया है। भगवान् को उसने अनन्त धन्यवाद दिया, जिसने उसे सुबुद्धि दी। उसे एक अजीब-सा आत्म-सन्तोष हुआ आज।

दूसरे दिन चौराहे पर खड़ा राजू फिर ट्रैफिक कंट्रोल कर रहा था। धूप से ऐसा परेशान था कि पास आये अपने वार्डन दोस्त की ओर भी उसका ध्यान नहीं

"अरे राजू, पता है तुमको, वह हत्या वाला कैदी जेल में मर गया!"

राजू चौंक उठा। "कैदी मर ग तुम झूठ तो नहीं बोल रहे हो!"

वार्डन बोला—"आज सवेरे कैदी को देखने सरकारी डाक्टर किन्तु वह भी उसकी मृत्यु का का नहीं बता सके।"

"मैं तो उसे जेल में बन्द कर कर रहा था कि मैंने एक आदमी से बचा दिया। लेकिन...?"

राजू पत्थर की भांति तबतक जबतक कि मोटरों के भोंपुओं की ही उसे चेताया नहीं। उसने यंत्रव फैलाया, दूसरा समेटा, कुछ गाड़ि पार कर गयीं, कुछ रुकीं रहीं। या चालू करने का अधिकार उसे दे रखा था। लेकिन जो करोड़ों पार्थिव संसार की ओर दौड़े और इसे छोड़े जा रहे हैं, व रोकने का अधिकार भी उसके होता! तो ...भी रोकना असम्भ

रह रहकर उसे यही याद आ "हाड़-मांस से बने इस मानव गति देनेवाले प्राण पर, का अधिकार नहीं चला सकता।"

या भारत का विभाजन अनिवार्य था ?

कसी भी देश का पुनर्गठन या विभाजन एक इतनी बड़ी ऐतिहासिक घटना है, ा और विपक्ष की दलीलों का कभी अन्त ही नहीं होता। चूँकि इतनी बड़ी ा पर्याप्त वजनी कारणों के नहीं घटती, अतः केवल यह कहना काफी नहीं कि ः ही चाहिए था या कि ऐसा नहीं होना चाहिए था। इसके औचित्य-अनौचित्य ः या तो परिणाम करता है या फिर समय यानी इतिहास ही। कदाचित इसीलिए अबुलकलाम आजाद ने अपनी आत्म-कथात्मक पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' में वेभाजन के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करने के बाद कहा है—"केवल इतिहास त का निर्णय करेगा कि विभाजन को स्वीकार कर हमने अक्लमंदी और सही ा है या नहीं।"

कि भारत के आजाद होने से पहले और बाद में उसे अपनी आजादी का बड़ा र चुकाना पड़ा है और मौलाना साहब इस सौदे या संघर्ष में कोई तटस्थ दर्शक ही नहीं, बहैसियत काँग्रेस-अध्यक्ष के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और केन्द्रीय व्यक्ति उनके विचारों पर गम्भीरता और निष्पक्षतापूर्वक गौर करना चाहिए। मौलाना यह दृढ़ मत था कि भारत की भलाई उसके संयुक्त रूप में ही है और अगर सरदार नेहरूजी (और गांधीजी भी) जरा अधिक दृढ़ता, दूरदर्शिता और समझ से काम ा का विभाजन टाला जा सकता था। विभाजन के बाद के ११ वर्षों के अनुभव में तो इस पर गौर करना और भी जरूरी हो जाता है, क्योंकि जिस साम्प्रदायिक खत्म करने के लिए देश का बँटवारा हुआ, क्या वह खत्म हुआ या और भी ः इस विभाजन से किसको क्या लाभ हुआ ? कम से कम भारत को तो यह रूर हुआ कि उसमें यह अधापन कहीं अधिक गहरा और व्यापक हुआ, हिन्दु- या भारत-पाकिस्तान के सम्बन्ध अधिक कटुता, घृणा और द्वेषपूर्ण हुए तथा के ब्रिटिश-अमरीकी सामरिक अड्डा बनने से भारत के सिर पर एक ऐसी तलवार कि उसके भय से बचने के लिए उसे अपनी कुल आय का ५६ प्रतिशत प्रतिरक्षा- ं करना पड़ रहा है।

भेद-नीति और सांप्रदायिकता का जन्म

यह सर्वविदित है कि सन् सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम में जिस अभूत
मुस्लिम एकता की रीढ़ बन पाई, उसकी विफलता के बाद इसे तोड़ना ब्रिटिश
वादियों का पहला और प्रमुख काम बना। अपने साम्राज्य की स्थापना और न
करने के लिए हिन्दू-मुसलमानों में फूट और विद्वेष के जहर के बीज बोना
समझा गया। इसीलिए पहले हिन्दुओं की पीठ ठोंकी गई। उन्हें विधर्मी मुस
मुक्त कर अभय-मंत्र देनेवाले माई-बाप अँगरेजों ने शिक्षा देकर अपने दफ्तरों-क
कुर्सियाँ भी दीं। इसके विपरीत मुसलमानों के दिल्ली के तख्त पर फिर बैठने
को सदा-सर्वदा के लिए खत्म करने को उनकी जागीरें छीनी गईं, नौकरियों से
दिया गया। फिर इस मजबूरी की हालत में सर सय्यद मुहमद और आगा खाँ
बनाकर अँगरेज साम्राज्यवादी मुसलमानों के भी माई-बाप बने। शिक्षा औ
की उनकी हिन्दुओं से पृथकता दिखाने तथा उन्हें शिक्षा देकर सरकारी ओहदे प
बनाने के लिए अलीगढ़-विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। मुस्लिम-लीग
मुसलमानों के पृथक संगठन की आत्मा का जन्म यही थी। पर अँगरेजों के
बावजूद लीग तब चंद साम्प्रदायिक मुसलमानों की आगा खाँ की एक जेब
बनी रही।

इस बीच बहुसंख्यक हिन्दुओं में अँगरेजी शिक्षा की एक नई प्रतिक्रिया
वे जहाँ काफी बड़ी संख्या में अँगरेजी साम्राज्य के चपरासी, क्लर्क और अफसर
उन्हींमें से कुछ लोग अँगरेजों द्वारा होनेवाले भारत के निर्मम शोषण के खि
उठाने और सीमित आजादी की माँग करनेवाले भी निकले। इन्हें और इन
को दबाने के लिए ब्रिटिश हुक्कामोंने न केवल सरकारी नौकरियों में ही मुस
मारना शुरू किया, वरन् राजनीतिक मोर्चे पर भी उनकी नस दबाने और उन
का प्रतिनिधित्व करने के दावे को झुठलाने के लिए लीग को बढ़ावा दिया।
२१ के असहयोग-आंदोलन तक यह साम्राज्यवादी चाल विशेष कारगर नहीं
इसके कुछ ही समय बाद जब बम्बई के कुछ संकीर्ण और अदूरदर्शी हिन्दू-अवम
दुष्टता के कारण वहाँ की प्रदेश-कांग्रेस कमेटी से मोहम्मदअली जिन्ना को हट
'उसने अपनी महत्वाकांक्षाओं को पहुँची इस ठेस को सांप्रदायिक अंधेपन का
कर अधिक से अधिक राजनीतिक पूँजी बटोरी।

जिन्ना और लीग को जीवन-दान

गाँधीजी की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पहले तो जिन्ना और लीग के रूप
वादी अँगरेजों द्वारा पैदा किए गए खतरे की अहमियत को कम कूता, दोनों क

हिन्दू-मुस्लिम एकता के अपने प्रयत्नों को जारी रखा। पर जब अँगरेजों ने देश की
ी हुई आजादी की माँग को झुठलाने-फुसलाने के लिए कांग्रेस और गांधीजी को
दुओं का तथा जिन्ना और लीग को मुसलमानों का प्रतिनिधि मानकर बातें करनी शुरू
तो गांधीजी ने भी देश की आजादी के लिए जिन्ना से सीधा राजनैतिक सौदा
ा चाहा, उसके पास कई बार दौड़-दौड़कर गए और उसे 'क़ायदेआजम' (महान नेता)
कहना शुरू किया। पर जिन्ना अपनी मुसलमानों के लिए पृथक प्रदेश की माँग से
। टस से मस नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में मौलाना साहब का कहना है—"कांग्रेस को
ने के बाद मि० जिन्ना अपना बहुत कुछ राजनैतिक महत्त्व खो चुके थे। पर गांधीजी
ाने-अनजाने जो कुछ किया, अधिकांशतया उसीसे मि० जिन्ना ने भारत के
नैतिक जीवन में फिर महत्त्व प्राप्त कर लिया। "गांधीजी ही ने सबसे पहले जिन्ना
लिए क़ायदे-आजम या महान नेता का प्रयोग शुरू किया!" इस कथन में काफ़ी तथ्य
र सचाई है। गांधीजी के इस रुख-रवैये से दुखी और असन्तुष्ट मौलाना अकेले ही
, अनेक कांग्रेसी नेता और कार्यकर्त्ता भी थे। जिनकी स्मरण-शक्ति एकदम धुँधली
हो गई है, वे यह भूले न होंगे कि अँगरेजों से भी अधिक जिन्ना और लीग की राज-
क साख बढ़ाई गांधीजी ने। गांधीजी ने देश की एकता और आजादी की भावना से
त होकर ही जिन्ना एवं लीग से सीधे राजनीतिक सौदे की बातचीत की; पर
ग्यवश सौदा तो हो न सका और उनकी राजनीतिक साख बढ़ जानेसे कई अपढ़-नासमझ
लमान तथा कई राष्ट्रवादी मुसलमान भी अँगरेजों और गांधीजी द्वारा स्वीकृत
लमानों के प्रतिनिधि जिन्ना और लीग की शरण में जाने को मजबूर हुए। इस प्रकार
न्ना और लीग भारत के सारे मुसलमानों के सच्चे और यथार्थ प्रतिनिधि न बने हों, पर
की आजादी के रास्ते के एक बड़े और मजबूत रोड़े तथा उसके विभाजन के तगड़े पाये
र बन गए। चाहे ऐसा गांधीजी के अनचाहे-अनजाने ही हुआ हो, पर इस तथ्य
इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस बनावट ने देश के विभाजन का पथ-प्रशस्त ही
ा।

नेहरूजी की भयंकर भूल

अगर उपर्युक्त स्थिति देश के विभाजन की भूमिका का बीजारोपण था, तो इसे
कुरित, पल्लवित और विकसित किया १९३७ के बाद के कांग्रेस और विशेषकर नेहरूजी
रुख-रवैये ने। यह सभी मानेंगे कि १९३७ में सीमित आम चुनावों के बाद बने भारतीयों-
मंत्रिमंडल न सिर्फ गवर्नरों की नामजद परिषदों के शासन से आगे का जनतांत्रिकता की
ा में एक बहुत बड़ा क़दम था; बल्कि भारत के भाग्य-निर्णय की दिशा में
ा एक महत्त्वपूर्ण क़दम भी था। युक्त-प्रांत और बम्बई को छोड़कर इस चुनाव में लीग

ता और एकता का दम भरनेवाले कांग्रेसी नेताओं का हिन्दूपन उन पर
ी तरह हावी था—खास तौर से टंडनजी और पन्तजी के वजनी व्यक्तित्वों पर—
लीगी प्रतिनिधियों को मंत्रिमंडल में लेने में 'मुस्लिम-खतरा' देखते थे। शायद
के प्रभाव ने नेहरूजी और सब के सम्मिलित प्रभाव ने गांधीजी को भी मौलाना
व को अस्वीकृत करने को प्रेरित किया होगा। या फिर यह भी सम्भव है कि
ांत के हिन्दू-कांग्रेसियों के बहुमत के आगे नेहरूजी और गांधीजी को झुकना पड़ा।
स कारण से भी हो, नेहरूजी का ऐसा करना हमें तो एक भयंकर भूल ही लगती
उसका परिणाम न केवल युक्त-प्रांत में, बल्कि समूचे भारत में लीग को मजबूत और
बनाने में सहायक और प्रेरक ही हुआ।

हिन्दुओं की कच्ची राष्ट्रियता

यद्यपि यह अब केवल एक काल्पनिक बहस का ही विषय रह जाता है कि अगर
ा का सुझाव स्वीकार कर लिया जाता, तो क्या लीग को जीवन-बल न मिलता
वह १० वर्ष बाद देश का विभाजन कराने में सफल न होती? पर यह हमारे
नता-संघर्ष के इतिहास का एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न है। व्यक्तिगत रूप से
ौलाना के कथन में काफी वजन मालूम होता है कि यदि ऐसा होता, तो व्यावहारिक
। (चाहे थोड़े समय के लिए ही सही) युक्त-प्रांत में लीग कांग्रेस में मिल जाती और
के हिन्दूपन के खिलाफ प्रचार करने को उसे न अच्छा मसाला मिलता और न
भोले-भाले कान ही। बहुत बड़ा बहुमत होने पर भी कांग्रेसी दो लीगी मंत्री लेने में
पड़े और एक को लेने को क्यों सहमत हो गए, हमें तो यह उनके छद्म हिन्दूपन और
राष्ट्रियता के सिवा और किसी कारण से नहीं मालूम होता। दो मंत्री लेने से जहाँ
मंत्रिमंडल के निर्णयों में कोई खास फर्क या बाधा न पड़ती, वहाँ अल्पसंख्यक
ानों को अपने प्रतिनिधित्व और हित-रक्षा का अधिक पुख्ता आश्वासन भी मिलता।
वे कांग्रेसकी न्याय-परायणता और राष्ट्रियताके अधिक कायल ही होते। पर जिन्होंने
सोच-समझ कर दो के बजाय केवल एक लीगी मंत्री लेनेकी ही बात पर जोर दिया,
बातों से प्रेरित-प्रभावित जान पड़ते थे: पहली तो यह कि लीग के केवल २६
में से दो को मंत्री बनाने से हिन्दुओं के अनुपात में मुसलमानों को अधिक प्रति-
व मिल जायगा। दूसरी यह कि दो लीगी मंत्री मंत्रिमंडल में शायद अधिक गड़बड़ी
सन्तुलन पैदा करें, जब कि अकेला लीगी मंत्री शेष मंत्रियों की दया पर ही निर्भर
अगर ऐसा ही सोचा गया हो, तो इसे संकीर्ण हिन्दू-साम्प्रदायिकता, राजनैतिक
रिता और राष्ट्रीय कृपणता के सिवा और क्या कहा जायगा? इसका जो परिणाम
—लीग के प्रभाव और व्यापकता में वृद्धि—वह सर्वथा तर्क-संगत ही था।

विभाजन की स्वीकृति

इस तरह मौलाना ने कांग्रेस और खास तौरसे गांधीजी के रुख-रवैये को इस हद
के प्रभाव एवं महत्त्व को बढ़ानेवाला बताया है, जो कि देश को दो राष्ट्रों में बांटने
वकालत करती थी। इसके बाद देश का विभाजन अनिवार्य एवं एक स्वयंसिद्ध
हो चुका था। पर मौलाना की राष्ट्रीयता इतनी गहरी और ठोस थी और हिन्दू-मुस्लि
एकता के वे इतने बड़े कायल थे कि कांग्रेस की भूलों और उसके कारण लीग के बढ़े
प्रभाव के बावजूद उन्हें भारत के एक बने रहने में अटूट विश्वास था। १९३७ में यु
प्रांत में कांग्रेस और लीग में हो सकनेवाले सहयोग-समझौते के अवसर के खोने
उन्होंने जितना खेद और पश्चात्ताप प्रकट किया है, उससे कहीं ज्यादा खुशी और स
का इजहार किया उन्होंने १९४६ में लीग और कांग्रेस द्वारा केबिनेट मिशन योजन
स्वीकार कर लिए जाने पर। उन्होंने इसे 'स्वाधीनता-आन्दोलन की एक गौरवपूर्ण घ
कहा है। पर जब १० जुलाई, १९४६ को नेहरूजी ने बम्बई में एक प्रेस-कान्फ्रेंस में
कहा कि 'कांग्रेस किसी भी तरह के समझौते से वचनबद्ध नहीं है और वह परिस्थिति
अनुसार कार्य करने को स्वतंत्र है,' तो मौलाना ने इसे गलत और दुर्भाग्यजनक बता
उनका कहना है कि पहले योजना पर अमल करने की स्वीकृति देने के बाद कांग्रेस का
तरह मुकर जाना ही लीग द्वारा इसे नामंजूर किए जाने का प्रत्यक्ष कारण बना, जि
हिन्दू-मुस्लिम एकता या लीग-कांग्रेस सहयोग का एक और महत्त्वपूर्ण अवसर हा
निकल गया और देश के विघटन एवं विभाजन का मार्ग प्रशस्त हुआ। मौलाना साह
कथनानुसार इस गलती की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी भी नेहरूजी पर ही है!

पर इसके बाद भी मौलाना ने माउंटबैटन और कांग्रेसी नेताओं को सुझाया कि
केबिनेट मिशन-योजना को दफनाकर देश के विभाजन को मंजूर न करें, भले ही
अंगरेजों का भारत से जाना दो-एक वर्षों के लिए स्थगित ही क्यों न हो जाए।
मौलाना के इस प्रयत्न को सफलता नहीं मिली। उन्होंने बड़े खेदपूर्वक लिखा है कि
पहले सरदार पटेल मांउटबेटन के देश के विभाजन के प्रस्ताव के पक्ष में हुए और
जवाहरलाल। इसके बाद जो गांधीजी कहा करते थे कि देश का बँटवारा मेरी लाश प
हो सकेगा, वे भी माउंटबेटन और सरदार पटेल से बातचीत होने के बाद इसके
खिलाफ न रहे और उन्होंने कांग्रेस-कार्यसमिति में ३ जून, १९४७ को तथा अ
भारतीय कांग्रेस-कमेटी में १४ जून को दिए गए अपने भाषणों में विभाजन को स
करने की बात कही। मौलाना का कहना है कि सरदार पटेल ने अन्तरिम सरकार
विभाग अपने हाथों में रखने की अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने की बेसब्री में
विभाग लीगी प्रतिनिधि को सौंप दिया, जिसने सारी सरकार को पंगु बना दिया।
सरदार तथा नेहरूजी ने यह निष्कर्ष निकाला कि लीग के साथ मिल-जुलकर काम

त है और वे विभाजन के पक्षमें हो गए। मौलाना की धारणा है कि अगर इस र पर विचलित और निराश होकर काँग्रेसी नेता विभाजन को स्वीकार न करते, तो जों के भारत छोड़ने में थोड़ी देर भले ही लगती ; पर वे संयुक्त भारत को ही स्वतंत्र र जाते। आपने एक बात यह भी लिखी है कि फौज को अगर राजनीति से परे रहने जाता और उसमें हिन्दू-मुस्लिम अपने मिले-जुले रूप में ही रहते, तो सांप्रदायिक न के विस्फोट के रूपमें हुआ नरसंहार भी न होता। साथ ही उन्होंने बँटवारे की में भारतीय महाद्वीप पर अँगरेजों के पाँव जमाए रहने और उससे भारत को होनेवाले बेत नुक़सान की ओर भी संकेत किया है।

हमें मौलाना साहब के कथनों में काफी सार दिखाई पड़ा, यद्यपि उनकी सभी बातों क उनका-सा मत हमारा या बहुतों का शायद न भी हो। पर इससे इतना तो स्पष्ट भारत का विभाजन अनिवार्य नहीं था—गांधीजी ने भी उसे अंततः खुशी से नहीं, र अधिकतम निराशा और असंतोषके साथ और 'आपद्धर्म' मानकर ही स्वीकृत किया। ना की बातों पर विचार करते समय हमें दो बातें याद रखनी चाहिएँ ' पहली तो कि मौलाना उन राष्ट्रवादी मुस्लमानों में से थे, जिनका भारत की अखंडता और एकता गट एवं अटूट विश्वास था। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हिन्दू-मुसलमानों की एक -जुली संस्कृति बन चुकी है और दोनों का भविष्य एक है। यदि यह बात न होती, कभी के काँग्रेस छोड़कर लीग में चले गए होते या फिर गांधी-नेहरू-पटेल आदि द्वारा त देश के विभाजन के लिए उनकी भर्त्सना न करते। दूसरी बात यह कि मौलाना सभी नेताओं एवं सहयोगियों के प्रिय और आदरणीय थे, जिनके बारे में उन्होंने ा है। अतः उनका मत कटुता, वैमनस्य और किसी भी तरह की छींटाकशी से मुक्त एकमात्र तथ्यों की मौलाना साहब के मत से अभिव्यक्ति है। उनसे असहमत हुआ जा ा है, पर उनकी सचाई या उन्हें लिखनेवाले की ईमानदारी में संदेह करने की कहीं गुंजाइश नहीं।

—राजनीति का एक विद्यार्थी

(स लेख में भारत के विभाजन की अनिवार्यता को चुनौती देते हुए अच्छा-खासा प्रकाश डाला है। पर इसका दूसरा पक्ष भी इतना ही प्रबल और महत्त्वपूर्ण है कि देश का विभाजन तरह से अनिवार्य-सा हो चुका था और इसीलिए गांधीजी, नेहरूजी सरदार पटेल और राजेन्द्र आदि को उसे मानना पड़ा। यदि इस पक्ष पर भी कोई विस्तृत प्रकाश डालें तो हम के विचार सहर्ष पाठकों के सामने रखेंगे, ताकि पाठक दोनों पक्षों का मत जानकर तन्त्र निर्णय कर सकें। —सम्पादक)

केवल मुस्कुराकर किया और पास खड़े स्कूल मास्टर से पूछने लगे—'हम लोग तो ठीक अबूझमाड़ में हैं न ?'

—'नहीं, यह तो छोर का एक गाँव है।'

स्कूल मास्टर पिछले आठ-दस बरसों से उस क्षेत्र में रहा है। शायद उन लोगों के जीवन को बहुत निकट से जानता है। बहुत-सी बातें बताएगा—इन लोगों को खेती कहाँ है। मैदानी भाग में हल चला कर खेती करना तो उन्हें आता नहीं। बस घने से घने जंगल में रहना और ऊँची से ऊँची पहाड़ी में कोसरा बुनना, पहले पहाड़ी के जंगल जलाकर साफ किए जाते हैं। फिर कुदाली-फावड़ों से धरती खोदकर कोसरा की खेती होने लगती है। बहुत हुआ तो उडद की दाल। साग के लिए जिर्रा-भाजी का खट्टा शोरबा काफी है। आज इस पहाड़ी पर खेती है तो नीचे का आठ कोपड़ियों[...] गाँव भी बसा है। दो बरस बाद [...] देखिए तो यह पहाड़ी छोड़ लोग दूसरी [...] चले जाएँगे और यह गाँव खाल[...] जाएगा ! मिसेज जोन्स को इन बा[...] कोई दिलचस्पी न थी, उकताक[...] उठीं, थोड़ी दूर तक टहलती रहीं। आँखों में बाइनाकुलर चढ़ा लिया।

थकावट से मेरी टाँगें और पलकें भारी लगे। में दरख़ तने ही जाउ हर भी सम पार मन स्व लं

पा ले नं में तं

'लज्जाम्बरासि नवयौवनासि'
बस्तर क्षेत्र में आदिवासी युवति-युगल

फोटो : शानी

व है। मन प्रसन्न हो और हों तो बच्चों सी शरारत चलता उनमें भर जाती हैं किसी बात पर खिन्न हो गयीं ; जोन्स भी बातें करने का साहस पाते। दोनों के स्वभाव या रुचियों गा नहीं; अक्सर मिस्टर जोन्स ही करते दिखाई देते हैं। मिसेज नाकार हैं। उन्हें प्रकृति का उन्मुक्त चाहिए। सुन्दर और सजीव

र के जगह नई घटे चाहतीं उनके की बात और है। देश से दूर वे प्रकृति होकर न्थ्रपॉल- है सि- ी बस्तर आदिम- की ओर गए थे। कमाड़ की गाँव-गाँव मशान हो ; । सड़क ई तीन

मील जंगल में घुसने के बाद एक ऊँची जगह पर चार-आठ झोपड़ियाँ दिखीं—यही गाँव था। फूस और बाँस की कमचियों से से बनी सभी झोपड़ियों के सामने केवल एक ही आँगन था जिसके एक ओर लकड़ी की एक डोंगी पड़ी हुई थी। उसके पास की एक मोटी सूअरनी अपने छह-सात छोटे-छोटे पिल्लों से घिरी लेटी थी। तीसरी झोपड़ी के ठीक दरवाजे के सामने एकदम नंगी और धूल में सनी पाँच-सात बरस की दो लड़कियाँ खेल रही थीं। मिसेज जोन्स को दूर से ही देखकर वे एकाएक उठीं और घबड़ाकर एक ओरके जंगल में तेजी से घुस गईं। मिस्टर जोन्स की आँखों में कोई तरल-सी ममता घिर आई, स्नेहिल दृष्टि से बच्चों की ओर ताकते हुए वह मुस्कुराए लेकिन मिसेज जोन्स के होठों के अगले भाग में एक कठोर-सा सूखा पन घिर आया निर्विकार।

'मैं प्रकृति का लाडला हूँ'
बस्तर क्षेत्र का एक आदिवासी युवक
फोटो : शानी

में पूछने लगीं : 'ये बच्चे मुझे देखते ही क्यों भाग खड़े हुए ?' जवाब में मि० जोन्स केवल हँसने लगे।

लौकी की बेलें सभी झोंपड़ियों पर छाई हुई थी और पिछले आँगन के मण्डप पर फैली-बिखरी सेम की लताओं में नन्हें और प्यारे बैंगनी फूल सज रहे थे। कुछ दूर पर सलपी का बड़ा पेड़ खड़ा था जिसकी गर्दन में टँगी मटकी में रिस-रिसकर रस भर रहा था। उसके पास से ही सरककर सरसों के पीले खेतों का आँचल तोरई फूल की तरह लहराता था और इन सबकी पृष्ठभूमि में कोहरा-ढँपी नीली-नीली पहाड़ियों का जादू-भरा दायरा···

मिसेज जोन्स मोह में थमी खड़ी रह गईं। थोड़ी देर तक मंत्रमुग्ध-सी निहारती रहीं फिर पास के एक टीले पर जा कैमरे का स्नैप लेकर, राइटिंग-बोर्ड के एक कागज में पेन से स्केच खींचने लगीं। मिस्टर जोन्स ने कहा—'पूरा गाँव खाली है, लोग कहाँ गए ?'

—'दिन में लोग गाँव में नहीं मिलते। सुबह होते ही पहाड़ी पर चढ़ जाते हैं और वहाँ से शाम के पहले नहीं लौटते।' मिसेज जोन्स ने टीले से ही स्केच खींचने-खींचते रुककर पूछा—'इनके खेत कहाँ हैं ?'

'पहाड़ी पर ही तो खेत होते हैं।' कहकर स्कूल मास्टर ने सामने की पहाड़ी के एक उजड़े हुए भाग की ओर इशारा कर दिया, जो वहाँ से ऐसा लग रहा था जैसे ऊँची-ऊँची घास के मैदान में थोड़ी-सी जगह किसी ने छोड़ दी हो।

—'चार माह तक जी तोड़कर काम करते हैं। बाकी आठ महीने जंगल-जंगल शिकार करते मारते ... औरतें जंगल में कंद-मूल और मह[ुआ] इकट्ठे करती हैं।'

मिसेज जोन्स वहाँ से उठ[कर] झोपड़ी के पास तक चली गईं थीं। ... की दरार से भीतर झाँकती हुई ... ही पुकार उठीं—'यह देखो तो ...'

झोपड़ी के भीतर देखने को ... बाहर खड़े रहकर पहाड़ियों, ... और सरसों के पीले खेतों के बैक[ग्राउंड] ... फोटो लेना या स्केच खींचना ... है पर भीतर देखने पर सुन्दरता [के पीछे] कुरूपता झाँकती है। आदमी ... जीवन जीता है, खयाल आते ही ... टता है।

मैंने मिसेज जोन्स का सा[थ] ... कुछ नहीं, बाँस की एक-दो च... पर एक-दो चिथड़े (शायद वह ... दो-तीन माटी की काली-काली ... दीवार से लटका एक माँदर (... और कुछ सूखी-सूखी तूँबियाँ···

लेकिन मिसेज जोन्स कुछ ... रही थीं—जहाँ चूल्हा था उसके ... एक धुंए में छँटा बाँस खुँसा ... उसमें माँस की बड़ी-बड़ी बोटि[याँ] ... लिए लटक रही थीं।

मैने कहा—'यह गाय का माँस है, [illegible]या जा रहा है।'

मिसेज जोन्स शायद आश्चर्य प्रकट [illegible]तीं लेकिन तभी उस मोटी सुअरनी का छोटा पिल्ला मटककर उनके पास तक गया और उनके लौटते ही तेजी से [illegible]गा। उनका ध्यान बँट गया। खुशी से [illegible]ककर उस पिल्ले की ओर देखती हुई [illegible]ी—'लुक ऍट दैट पपी!'

मिसेज जोन्स जानवरों को बहुत प्यार [illegible]ती हैं। जहाँ भी जाती हैं दो-एक कुत्ते-[illegible]ी या बन्दर अपने गिर्द जरूर समेट लेती [illegible]। अपने खाने में से आधा निकालकर भी [illegible] जानवरों को दे डालती हैं भले वह [illegible]रेयल या बीमार कुत्ता ही क्यों न हो!

[illegible] जिधर वह पिल्ला भागा था—मिसेज [illegible]न्स उधर ललचाई दृष्टि से ताक रही थीं। [illegible]का वश चलता तो दौड़कर उसे पकड़ [illegible]तीं और बड़े प्यार से उसे गोद में बैठाकर, [illegible]चकारतीं, सहलातीं और शायद उसके [illegible]ों जिस्म पर अपने गाल तक धर देतीं!

लेकिन मिस्टर जोन्स कह रहे थे कि [illegible] पहाड़ी पर चलना चाहिए। इससे उनके [illegible]ों का देखना तो होगा ही, गाँव के सभी [illegible]ोगों से भेंट भी हो जाएगी। सुनकर [illegible]सेज जोन्स वहाँ से बच्चों की तरह दौड़ती [illegible] आईं और सबसे आगे जाकर [illegible]कती हुई बोलीं—'चलो पहाड़ी पर [illegible]ने के लिए सबसे पहिले मैं तैयार हूँ।'

[illegible] पहाड़ी की चढ़ाई लगभग एक मील की [illegible]। आधा फासला मिसेज जोन्स गुन-गुनाती हुई तय कर गईं...

'एण्ड सम डे आई नो,
बैक टु हर आई विल गो,
फ़ॉर माई हार्ट, इट क्राइज़
फ़ॉर योर लव्, डार्क आईज़।

—मैं जानता हूं एक न एक दिन मैं उसके पास वापस लौट जाऊँगा।

ओ मेरे गहरे आँखोंवाली दिलवर तेरे लिए मेरा दिल हमेशा रोता है।'

बड़े ही सुरीले कंठ से निकला कोई लोक-गीत, शायद कोई प्रेम का वेदनामय गीत...। मेरी बरोनियों की छाँह में वही स्वर अपनी सारी कशिश और मिठास लिए घुल रहा है...

अकस्मात् पास की झाड़ी में सूखे पत्ते चरमर टूटने लगे, बाँस की नुकीली टहनियाँ थरथराईं, वेदावरी काँटे का नाजुक पौधा कई बार काँपा, गिर्रा के सुर्ख फूल हिले...हिले और गेहुएँ रंग की एक भरपूर जवान औरत बाँस की झाड़ी के पास आकर खड़ी हो गई—मासल और सुडौल। गर्दन, कँधे, उरोज और नाभि तक अनढँकी। कमर के नीचे केवल एक कपड़ा था। तभी पटेल आया, गाँव के आठ-दस लोग इधर-उधर से सिमटते दिखाई दिए और मिसेज जोन्स ने मुझे आवाज दी।

कच्चे पपीते के बिखरे बीज धूप में कैसे झलमलाते हैं? शायद बनजारी के दाँतों की तरह जब वह गर्दन पीछे डालकर हँसती है। हँसती है और जब हँसी झेल नहीं पाती तो अपने उरोजों पर बाहों की कैंची बनाकर थकी-थकाई सी बैठ जाती है।

खीरे का रंग पकने के बाद वनजामी के जिस्म की तरह ही तो होता है न ? ऐसे ही गदराया-गदराया, मांस और रस से भरपूर। उसमें नाखून गड़ा दो तो क्या खून निकल आएगा ? बरगद की छाँव की सारी गहनता बनजामी ने शायद अपने बालों में समेट ली है। तेल से चमकाकर उन्हें कितना कस लिया है। उसके लाल मँगों, कौड़ियों, ककुर और किसी जंगली नीले फूल से सजे दाहिने कान की तरफ झुके, टेढ़े, जूड़े को देखकर मुझे अनायास ही किसी लोकगीत की पंक्तियाँ याद आ गयीं :

'कान खाई खोसा नी बाँध रानी,
मैं मारेदे अगिन बान !

प्रियतमे कान पर झुका हुआ टेढ़ा और मादक जूड़ा मत बाँध. मुझसे नहीं रहा जाता। कहीं मैं तोर तुझे घायल न कर दूं।

चीड़ के बादामी फल की तरह उभरे पपोटों से निकली पलकें छेदावरी काँटे-सी ही तो होती हैं, फिर वनजामी ने छेदावरी का एक पौधा अपने कान में क्यों खोंस रखा है ? जिरों की कोई नस छिटककर उसकी पुतलियों में डोर बन गई है। भारी-भारी देखती हुई मिस्टर जोन्स, मिसेज जोन्स और फिर मेरी पत्तल पर ठहर जाती है और उन काँटों से लहूलुहान करती पूछती है—और दूँ ? और दूँ ?...

मिसेज जोन्स कोसरा का रेत-मिला भात खा रही हैं—उनसे नहीं खाया जाता। जिरों का इतना खट्टा शोरबा भी हलक के नीचे नहीं उतरता। लेकिन मिस्टर जोन्स एन्थ्रॉपॉलजिस्ट हैं। जिन आदिम[illegible] के बीच रहकर उन्हें काम क[illegible] वह सबसे पहिले उनका खाना ख[illegible] अभ्यस्त हो जाना चाहते हैं। कोस[illegible] बारीक दानों और रेत के रंग में [illegible] होता। उन्हें चुनकर अलग अलग [illegible] कठिन है। रेत समेत चबाने पर भी [illegible] जोन्स के चेहरे पर शिकन नहीं। [illegible] मिसेज जोन्स बरबस मुस्कुरा रही हैं[illegible]

कुछ देर पहिले जब जलती हुई [illegible] राख फैले ढेर के पास तीन पत्थ[illegible] खाना बन जाने की सूचना के सा[illegible] चलने के लिए वनजामी निकट आ [illegible] तो मिसेज जोन्स ने भरपूर [illegible] वनजामी की ओर देखा और त[illegible] अपने पर नजरें फिसलातीं दूस[illegible] ताकने लगीं। मिसेज जोन्स [illegible] क्यों देख नहीं पाईं ? शायद [illegible] हो कि वनजामी एक जवान लड़की इतने सारे पुरुषों के बीच इतने [illegible] में—लगभग नंगी-सी—क्यों खड़ी

सबने उठकर वनजामी का [illegible] और राख बिखरी अंगीठी के पा[illegible] मिसेज जोन्स के पूछने पर [illegible] कि वनजामी पहाड़ी के नीचेवा[illegible] लड़की है। बाप नहीं, अकेले [illegible] अतः खेत का सारा काम अकेली [illegible] किसी ने बताया कि वनजामी के मारवो परलकोट की पहाड़ी [illegible] आ बसा है। यह सच है कि जैसी लड़की आस-पास की पहा[illegible] गाँवों में एक नहीं लेकिन दर[illegible]

ों का साँवला, बलिष्ठ और हँसमुख
मी क्या हर जगह मिल सकेगा ?
ात महीनों से दिन-रात साथ रहकर
बनजामी को जीत क्यों नहीं पा
बनजामी के मन में क्या कोई और
!?

गीठी तक मारवी भी मेरे साथ
। देखता हूँ कि बनजामी से अधिक
शायद मारवी में है। वह निकट होती
पलकें उठाकर बनजामी की ओर
मारवी से नहीं बनता लेकिन जब
र हट जाती है तो एकटक ताकता है।
कायर है या बहुत ही नाज़ुक।

ने हुए पत्तों के पास पहुंचकर मिसेज
रुक गईं। अंगीठी के एक ओर
ज जर्जर एक बुढ़िया बैठी हुई थी।
पास शायद उसकी बहू थी। तेईस
धेक की नहीं होगी। एक बच्चा
नकर ही बूढ़ी हो रही थी। याज से
दाहिना पाँव गल रहा था; अपने
बच्चे का मुंह खुले स्तन में देकर
मी और स्वस्थ लोगों की ओर कैसी
भुकी निगाहों से देखती थी वह ?

मिसेज जोन्स ने केवल क्षणभर उधर
। फिर अपने पति की ओर शिका-
आँखों से देखने लगीं—'यहाँ कैसे
जायगा ?'

खाते-खाते मैंने मारवी से पूछा : 'क्या
बनजामी के साथ घोटुल जाते और
-साथ नाचते हो कभी ?'

'हाँ, रोज।'

'और नाच के बाद ?'

मारवी झेंपा। 'बनजामी घर चली
जाती है।'

तभी मैंने कहा—"मारवी, जब तुम
बनजामी को इतना प्यार करते हो तो उसे
लेकर भाग क्यों नहीं जाते ?"

लेकिन उस बात का जवाब मारवी के
पास नहीं। बस, हँसता रहा।

दोपहर की साँस उखड़ चुकी थी।
बदली के एक टुकड़े ने इधर छाँह कर दी
लेकिन दूसरी तरफ की पहाड़ी में फैली
रोशनी का आँचल और तेजी से कलकलाने
लगा। मेरे बार-बार आग्रह करने पर बड़े
ही संकोच से मारवी ने एक गीत गाया।
लेकिन गीत की पहिली पंक्ति सुनकर ही
बनजामी उठकर चल दी। गीत का मात्र
था :

'ताना नारे बेदो हन्दार
किस टोपी अवकोर ?
लेयोर जोगी रूपे बापीयो
बिसीर कोडो लादोयो
कोरेला कारेलाग !
चोलोर लयोर रेलोयो
पाउर हगोय अबकोकोए
तानाय नारे बेदोय
उसाय बेने आकी।'

—वह किस गाँव की है जिसका चेहरा
आग की तरह दमकता है ? उसने जोगी
की तरह वेश तो बदल लिया है लें
उसका तेज छिपाए नहीं छिपता।
मोहाच्छन्न कर देनेवाला सिंगार

बाद वहाँ के हे
दरख्तों और
पहाड़ियों पर
आँचल डालकर
पलकों में
नशा घोलेगा।
आँचल को आहि
आहिस्ते सरका
यहीं कहीं
आँगन में गोलाइ
सूखने थान-सा—
जब अनायास
जाएगा तो यह
कैसी लगेगी!

सब विदा
आए—पटेल,
जर्जर बुढ़िया,
इधर-उधर फैले
याज पीड़ित
और उसका

उन्मादक और मनभावन है—जैसे लम्बी और हरी लता में खिलनेवाले करेला के प्यारे-प्यारे फूल। उसका सुन्दर मुख यों दहकता है जैसे सियाडी की घनी बेला में फैले हुए नर्म चिकने और कोमल पत्तों पर सूरज की रश्मियाँ चिलचिलाती हैं। नहीं, उसकी तरह गाँव में और है?'

नीचे उतरने में देर न थी। सारा सामान जो पिछले दो-तीन घंटों से बिखरा हुआ था, समेटा जाने लगा। थोड़ी देर के बचा लेकिन बनजामी दिखाई न दी। जाते सब लोगों से घिरकर मुझे कुछ स्मरण आया, मैंने मि० जोन्स से —'ये लोग बख़्शीस माँगते हैं।'

मिस्टर जोन्स के कुछ कहने के उनकी पत्नी ने आश्चर्य से मेरी ओर हुए पूछा—'किस बात की?'

इस बात का जवाब देना मेरे कठिन हो गया।

टर जोन्स ने पूछा—'इन दो-चार ा ये लोग क्या करेंगे ?'

'सब मिलकर शराब पिएंगे।' स्कूल ने तेजी से कहा।

त्काल मिसेज जोन्स बोलीं—'यह च्छी बात नहीं।' उनके होठों में वही कठोरता घिर आई। मुझसे कहने —'हमें पैसे देना नहीं अखर रहा है, न आप खुद बए न, यूँ माँगकर ह पीना क्या अच्छा ा है ?'

मैं कुछ भी कह ने की स्थिति में ीं। यह सब उन्हें झा नहीं सकता। चता हूँ कि अभी ड़ी देर पहिले मिसेज ोन्स इन लोगों की कितनी प्रशंसा कर ही थीं—इनकी सादगी, व्यवहार भोलापन और मेहमान-नवाजी की। और अब क्या हो गया ?

मिस्टर जोन्स ने कुछ न कहा। धीरे-धीरे मुस्कुराते हुए वह कुछ रुपये निकालने लगे। मिसेज जोन्स के होठों का रूखापन और भी गहरा हो गया। रुपये लेकर सलाम करते लोगों की ओर एक बार भी देखे या सलाम का जवाब दिए बिना ही वह तेजीसे पलटीं और नीचे उतरने लगीं। याजवाली औरत की गोद के बच्चे की ओर देखकर मैं सोचता हूँ कि मुअरनी का पिल्ला इस बच्चे से निश्चय ही खूबसूरत होगा, नहीं तो मिसेज जोन्स इसे भी उसी तरह प्यार क्यों नहीं कर सकीं ? * * *

आदमी के आदिम शत्रु-मित्र

डा० सेल्मैन वेक्समैन

मनुष्य ने तो अपने आदिम मित्र जीवाणुओं को बहुत बाद में पहचाना पर वे आदकाल से ही हमारी सेवा करते आ रहे हैं। जब हमारे पूर्वज अपनी भेड़-बकरियों, गाय-भैंसों आदि के साथ कबीले बनाकर घास के मैदानों की तलाश में घूमते-फिरते थे, तब वे यह नहीं जानते थे कि उनके दूध को कौन सड़ने से बचाता है और कौन उसे फाड़ता या जमा देता है।

इसके बाद जब उनकी सन्तति गाँव और नगर बसाकर रहने और अनाज की खेती करने लगी, तब ये जीवाणु खमीर आदि में मिलकर रोटी बनाने में अदृश्य रूप से उसकी सहायता करते रहे। एक और प्रकार के जीवाणुओं ने अंगूर और अनाज से शराब खींचने में भी मनुष्य का हाथ बटाया। इससे भी बड़ा उनका काम था—खेतों में घास-फूस और पत्तियों को गला-सड़ा कर पौधों को नत्रजन (Nitrogen) और अन्य पोषक पदार्थ देनेवाले तत्वों का रूप देना।

आधुनिक विज्ञान की प्रगति के साथ पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में जीवाणु प्रकाश में आये और विज्ञान की एक विशेष

अंगूरों की बागवानी इतनी पुरानी हो
है कि अब इसकी उत्पत्ति का निर्णय
ाहीं हो सकता। कहते हैं कि ६००० वर्ष
मी मिस्रियों ने इसका प्रयोग शराब
ने में शुरू कर दिया था। प्राचीन
ित्य में जैसे हिब्रु, ग्रीक, संस्कृत, और
ा साहित्य में तो इसका प्रचुर उल्लेख
ा ही है।

विकसित हुई। लुई पास्च्योर, फर्डीनैंड
रावर्ट कोच, पॉल आदि बहुत से
नकों ने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया
जीवाणु मनुष्य-जीवन के लिए परम
गी हैं। इन लोगों ने ही रोगक
ाुओं और सहायक जीवाणुओं का भी
ागाया।

१) जो मनुष्यों, पशु-पक्षियों और
ति में रोग फैलानेवाले हैं उन
कीटाणुओं को फौरन खत्म कर देना
चाहिए।

(२) जो कि खमीर आदि उठाने और
अनेकों रासायनिक क्रियाओं में सहायक
होते हैं उन जीवाणुओं को अपने मददगार
समझना चाहिए।

पुरानी प्रथाएँ समाप्त

अब हम यह जान गये हैं कि अधिकांश
बीमारियाँ किसी देवी-देवता के कोप से
नहीं फैलती हैं इनके मूल कारण कीटाणु
होते हैं। विज्ञान के प्रसार से रोगों के सही
कारणों को हम समझने लगे हैं और यह भी
कि सफाई, दवाओं और टीकों आदि के द्वारा
रोगों की रोकथाम नामुमकिन नहीं। पहले
निमोनिया, चेचक, डिफ्थीरिया आदि रोगों
के लिए कुनीन आदि काष्ठौषधियों और
और टीके (सीरम) आदि का ही प्रयोग
किया जाता था। अब संखिये और पारद के
रसायनों का भी प्रयोग होता है। अनेक
बीमारियों में रामबाण 'सल्फा' औषधियों
के आविष्कार ने चिकित्सा में युग-परिवर्तन
हो गया है।

उपकारी जीवाणुओं से लाभ उठाने का
भी काफी प्रयत्न हुआ है। अच्छी नस्ल के
जीवाणुओं का चुनाव, नस्ल-सुधार, वंश-
वृद्धि और पौधों और मिट्टी में उनको छोड़ने
की दिशा में काफी काम हुआ है। आजकल
जीवाणुओं से औद्योगिक कार्यों के लिए
भी कई प्रकार के मद्यसार (अलकोहल)
ऑरगेनिक एसिड और एसीटोन
रासायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं।

ाल

विटामिनों और एनजाइमों के बनाने में भी जीवाणु काम आते हैं। मूंग की खेती में शिंब या लेग्यूम से बहुत लाभ होता है। शराब, पनीर तथा दूसरी खाने-पीने की चीजों में जीवाणुओं का असाधारण उपयोग होता है। खाने-पीने की चीजों को सुरक्षित रखने, मलमूत्र को ठिकाने लगाने, कूड़े करकट और गोबर की खाद बनाने और फफूंद या भुकड़ी पैदा करने में जीवाणु हमारे मददगार बनते हैं।

मनुष्य के पालतू

अब धीरे-धीरे 'जीवाणु' एक प्रकार से मनुष्य के पालतू प्राणी बन गये हैं। किन्तु जीवाणुओं के ये सब उपयोग भी प्रतिजीव-औषधों (एंटीबायोटिक्स) के आविष्कार के सामने फीके पड़ गये हैं। इन प्रतिजीवों में लाभकारी जीवाणुओं के बनाए हुए रासायनिक तत्त्व होते हैं, जो रोगक कीटाणुओं को खा जाते हैं। इस प्रकार हैजा, प्लेग आदि महामारियाँ, जो महायुद्धों से भी कहीं अधिक संहार करती थीं, अब प्रायः पूरी तरह वश में आ चुकी हैं। बच्चों की अनेकों बीमारियाँ अब आसानी से मिटायी जा सकती हैं। पेट और आँतों की भी कई बीमारियाँ आज उतनी व्यापक और मारक नहीं रहीं, जितनी कि पहले थीं। बीमारियों के शमन से लोगों की आयु बढ़ गयी है। मनुष्य जाति का चिर-शत्रु राज-रोग क्षय भी अब अजेय नहीं रहा है। बस, अब कैन्सर को जीतने की बारी है।

व्यावहारिक उपयोग

प्रतिजीवों (एंटीबायोटिक्स) की खोज १९३९ में ड्यूबोसने की। इसके पहले यही ज्ञात था कि फफूंद आदि में कुछ

विशेषज्ञों का कथन है कि जुगनू किसी दिन जीवन-रहस्य की गुत्थी सुलझा देंगे। जीवन-निर्माण सूर्य रश्मियों के ... शक्ति-परिवर्तन द्वारा ही सम्भव होता है, जिसके कर्ता पेड़-पौधे हैं। जुगनू ... रासायनिक शक्ति को प्रकाश में बदलते हैं—इतने अच्छे तरीके में कि शायद ही ... बिजली कम्पनी कर सके। बिजली का बल्ब अपनी बहुत-सी शक्ति को ... नष्ट करता है किन्तु जुगनू की रोशनी में गर्मी नहीं होती। लेकिन ६० वाट के एक ... के बल्ब की जैसी रोशनी देने के लिए २,३७,००० जुगनुओं की जरूरत पड़ेगी।

सुप्रभा

; होते हैं, जो हानिकर कीटाणुओं
ट कर देते हैं। इस तरह के प्रयोग भी
किन्तु इस ज्ञान का व्यापक और
ारिक उपयोग कभी नहीं हुआ था।
' में पैनिसिलिन और इसी तरह की
न्य चीजें जैसे ऐक्टिनोमाइसिन तथा
बाद स्ट्रेप्टोमाइसिन और स्ट्रेप्टो-
।९नों लो हमारे हाथोंमें महामारियों
ने के अनेक अमोघ अस्त्र आ गये।

जेन जीवाणुओं में प्रतिजीव पदार्थ
करने की क्षमता है। उनमें
... का प्रमुख स्थान है।
उड़कर लगनेवाली बीमारियों के
के लिए जो ३० से भी अधिक
इस्तेमाल होते हैं, उनमें से केवल
ाकाणुओं (बैक्टीरिया) से, २-३
से और बाकी लगभग २५ 'ऐक्टीनो
से ही बनते हैं। प्रतिजीव-
ों में सबसे अधिक उपयोगी पेनसिलिन
स्ट्रेप्टोमाइसिन है। इनके अलावा
म्फेनिकोल' और 'टेट्रासाइक्लिन्स'
मुख हैं। दुनिया भर में बननेवाले
व पदार्थों में से तीन-चौथाई यही
पदार्थ होते हैं। इन प्रतिजीवों से
संसार भर की उड़कर लगने वाली ६०
प्रतिशत बीमारियाँ रोकी जा सकती हैं।
अधिकांश रोगाणुओं पर 'पेनसिलिन' और
'स्ट्रेप्टोमाइसन' जरूर असर करते हैं। जिन
पर ये काम नहीं करते, उन्हीं के लिए
बाकी कम प्रचलित प्रतिजीव पदार्थ काम
आते हैं। फफूंद और छोटे विषाणुओं पर
उपर्युक्त पदार्थ काम नहीं करते, कुछ
प्रतिजीव पदार्थ विषाणुओं और कैंसर की
चिकित्सा में भी काम आते हैं। इनमें
ऐक्टिनोमाइसिन और सारकोसिन आदि
प्रमुख हैं, पर ये अचूक दवाएं नहीं हैं।
आशा है, जल्दी ही विषाणुओं और कैंसर
की कारगर औषधि भी खोज ली जाएगी।

चिकित्सा के अलावा प्रतिजीव पदार्थों
का और भी उपयोग है। ये मुर्गियों,
बत्तखों, सूअरों आदि घास न खानेवाले
पशु-पक्षियों को खिलाए जा सकते हैं और
पशुओंके बहुत से रोगोंमें भी काम आते हैं।
खाने की कुछ चीजों और कृत्रिम गर्भाधान
के लिए अच्छी नस्ल वाले सांड के वीर्य
तथा विषाणुनाशक पदार्थों को देर तक
रखने में भी प्रतिजीव पदार्थों का पर्याप्त
उपयोग होता है। *

*नेतारशिप भी एक अपेन्डिक्स की तरह है ; जब क्रिया-हीन हो तब
ार है और यदि क्रिया-शील हो तो बहुत ही ज्यादा खतरनाक।"*

—मि० मॉरिस एडेलमैन

क्या देश गांधी-मार्गसे हट रहा है!

लक्ष्मीचन्द जैन

आज सर्वत्र एक बात सुनाई देती है : 'यह देश महात्मा गांधी के मार्ग से हट रहा है।' कहनेवाले व्यक्तित्व जैसे भिन्न हैं, वैसे ही वृत्तियाँ भी भिन्न है। कोई परिहास में कहता है, कोई आलोचना और टीका में कहता है। तो कोई आत्म-निरीक्षण के रूप में कहता है। और कोई सचाई की रक्षा के लिये यह कहकर ही संतोष कर लेता है। कोई कोई कुछ न मानते हुए, न समझते हुए यह कह देते हैं। किसी न किसी दृष्टि से कोई न कोई व्यक्ति यह भाव प्रकट कर ही देता है।

देश की इस मनोदशा से दो बातों का पता चलता है—पहली, यह कि गांधी एक व्यक्ति नहीं था बल्कि एक अभिलाषा थी जो किसी न किसी रूप में हर एक में विद्यमान है और हर एक के मुख से विभिन्न रूपों में मुखरित होती है। गांधी कोई शरीर नहीं था, बल्कि वह एक अस्तित्व था जो अपने जीते-जी, समाज में व्याप्त हो गया था। दूसरी यह कि जब कोई यह कहता है कि देश गांधी-मार्ग से हट रहा है तो इसके साथ यह भी अव्यक्त रूप से कह जाता है कि देश को गांधी-मार्ग पर चलना चाहिये। और देश गांधी-मार्ग पर चलने को उद्यत होगा तो मैं भी पीछे नहीं रहूँगा। यह सब अभिलाषा इस एक वाक्य में है जो आज की परिस्थिति को व्यक्त करता है। स दूसरी बात है कि कोई इस अभिलाषा की अभिव्यक्ति से ही संतोष कर लेता है, तो कोई नहीं करता। बहरहाल इतना सही है कि इस वाक्य के पीछे एक बड़ी और छटपटाहट छिपी हुई है : राष्ट्र की आकांक्षा और राष्ट्र की छटपटाहट। ज्यों समय बीत रहा है, राष्ट्र की यह आकांक्षा राष्ट्र की यह छटपटाहट उतने ही वेग से प्रकट हो रही है। यही सबसे बड़ी शक्ति गांधी-विचार की है।

'आचार्य वह है जो आचार से सदाचारी बनावें।' 'जीवन का रहस्य निष्काम सेवा है।'
'सच्चा व्यक्तित्व अपने को शून्यवत् बनाने में है।'
'सबसे ऊंचा आदर्श यह है कि हम वीतराग बनें।'
'पुरुष अपने देहका स्वामी है।'
'सौन्दर्य आतरिक वस्तु है अतः उसका प्रत्यक्ष दर्शन संभव नहीं।

गांधी-विचार कोई प्रासंगिक विचार [न]हीं है बल्कि एक शाश्वत विचार [है]। जीवन की किसी न किसी छोटी-मोटी [घट]ना या प्रसंग से इस विचार का जीवन में [प्रव]ेश होता है। जब उसका विकास-क्रम [शु]रू होता है तब समूचे जीवन-ढाँचे को [ब]दलने तक यह विचार तृप्त नहीं होता। [इ]स विचार की सफलता या असफलता [त]ात्कालिक घटनेवाली घटनाओं और [प]रिस्थितियों से नापना गलत है। इस तरह [न] तो इस विचार के प्रति और न उन [प्रव]र्तकों के प्रति हम न्याय कर सकेंगे, [ज]िनके परिणामों और कामों को सफलता [य]ा असफलता की कसौटी पर कसते हैं।

बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और गांधी जैसे महापुरुषों के विचारों की खूबी यही है कि [उ]न्हें समय की अवधि से नापना-तौलना संभव नहीं है। महापुरुषों के विचार समय की अवधि से नहीं चलते हैं वे तो पूर्णतया कालातीत होते हैं। यदि कोई आदमी यह कहता है कि देश गांधी-विचार से हट रहा है तो वह गांधी विचार की असफलता जाहिर नहीं करता बल्कि वह यह क़बूल करता है कि हमारे अन्दर पुरुषार्थ की कमी है, जिसके कारण हम इस विचार से पीछे हटते हैं।

गांधी इस देश में जीये, मरे। उन्होंने अनेक वर्ष तक इस देश की धरती पर भ्रमण किया, अनेक उनके साथी, सहयोगी बने। परन्तु समझने की बात यह है कि गांधीजी के अत्यन्त निकटतम अनुयायियों में, सहयोगियों में भी अनेक बार अनेक प्रश्नों पर मतभेद हुए। विगत १० वर्ष का इस देश का इतिहास अनेक ऐसे प्रसंगों को अपने आंचल में छिपाये हमारे सामने प्रस्तुत है।

मुझे वीरगति प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं है। परन्तु प्रेमधर्म की रक्षा के लिए, जिसे मैं अपना सर्वोच्च कर्तव्य समझता हूँ, और उसका पालन करते हुए यदि वीरगति मेरे सामने आकर खड़ी हो जाय तो कहा जायगा कि उसे पाने की पात्रता मैंने सिद्ध कर ली है।

—महात्मा गांधी

"जिस हिन्दी की मैं बात करता हूं, वह एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। संस्कृतमयी तथा फारसीमयी हिन्दी की तो वही दशा होगी, जो छोटी पहाड़ी से निकले झरने की होती है।"

—महात्मा गांधी

गांधीजी किसी प्रश्न पर क्या रखते थे, इस विषय को लेकर आज भी यदा-कदा कोई विवाद या चर्चा अत्यन्त उच्च स्तर के नेताओं में छिड़ जाती है। संत विनोबा, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, जवाहरलाल नेहरू, पट्टाभि सीतारामय्य, मोरारजी देसाई आचार्य कृपलानी, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि गांधीजी के निकटतम और श्रेष्ठ साथियों में से हैं, जिनकी विचार-भिन्नता, वृत्ति-भिन्नता और आचरण-भिन्नता का परिचय सारे देश को है। इन धुरंधर लोगों में यदि एकवाक्यता और कार्यक्रम की एक-रूपता कायम होती तो अपने देश को अधिक बल मिलता।

असल बात यह है कि गांधी-विचार को अभी हम पूरी तरह हजम नहीं कर पाये हैं। न तो यह पूरी तरह आत्मसात् हुआ है, और न जन-जीवन में ही यह विचार ओतप्रोत हो रहा है। विचार के तौर पर राष्ट्र ने उसे मान्यता दी और स्वीकारोक्ति भी प्रगट की। इस तरह एक मानसिक अनुकूलता हुई। परन्तु राष्ट्रिय जीवन के हर क्षेत्र में—जैसे शिक्षा, उद्योग, प्रशासन, न्याय, आरोग्य, देश-विदेश के सम्बन्ध जोड़ने में—हम उसका ठीक अनुबंध कर नहीं पाये हैं। क्या इसके लिये नये तरीके नहीं खोजने होंगे? गांधी-दर्शन आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक योजनायें पूरी नहीं करनी पड़ेंगी? किन्तु क्या देश आज इस आरोहण के लिये प्रस्तुत है? ज्यों ज्यों यह विचार हजम होता जायगा, त्यों त्यों आरोहण का एक-एक चरण अधिक स्पष्ट, सुदृढ़ और प्रगतिशील हो सकता है। किन्तु आरोहण-काल में कितना समय जायगा यह भी तो एक अहं सवाल है। और उसका सही उत्तर आज हममें से किसी के पास नहीं है। हो की यह लम्बाई १०-२० वर्ष भी हो सकती है और १००-२०० वर्ष भी हो सकती है। समय की इस लम्बाई को कम करने का एक तरीका यही भी हो सकता है कि गांधी-मार्ग का एकबार पुनः मूल्याङ्कन हो और यह स्पष्ट घोषित किया जाय कि राष्ट्र गांधी-मार्ग को किन पद्धतियों पर चलेगा, किन पर नहीं। अन्यथा आरोहण की गति क्षुण्ण होगी और चाहने पर भी लोग उसमें शामिल न हो सकेंगे और शायद पथ-भ्रष्ट हो जायेंगे।

"साहित्य वह है, जिसे चरस खींचता किसान समझे और सादर भी।"

—म० गां०

अनेक देश एक इन्सान

—— कुलभूषण ——

नाइज़ीरिया की ज़मीन पर

चाव नदी के पार, सड़क के दोनों ओर
थे, जिनमें रेत के सिवा कुछ भी नहीं
ाई देता था। सड़क भी रेतीली धूल से
। चढ़ती-उतरती क्षितिज की चकाचौंध
गो रही थी। पेड़ों पर केवल सूखी-
ी टहनियों के अलावा कुछ नहीं था।
: तांबे की तरह तपा हुआ आकाश था।
तेज धूप और लू में हमारी कार बढ़ी
रही थी। कार में सभी जगह धूल की
मोटी होती जा रही थी। गला चटखा
मैंने लेमन की एक बोतल खोलकर प्यास
ने की कोशिश की।

रास्ते के गांवों में एक ही किस्म के
ल की छतोंवाले मिट्टी के गोल झोंपड़े
और उनमें हबशी स्त्रियां, पुरुष और
े। पुरुषों के अंगरखे मैले, फटे या पैबन्द
हुए और अधिकतर स्त्रियों की छातियां
। मगर इस नग्नता में अश्लीलता खोजने
भी नहीं मिली।

ट्रकों और लारियों में लदीं मूंगफली
र कपास शहरों की ओर जा रही थीं,
ां से रेल और जहाजों पर लादकर इन्हें
प भेजा जाता है।

एकाएक देखा कि सैंकड़ों सफेद बगले हमारी ओर आ रहे थे और दर्जनों कार के ऊपर से उड़े जा रहे थे। कुछ बगलों के पंख हमारी कार के शीशों से भी टकराये, मगर फिर भी वे उड़ते ही चले गए। उनकी सीधी गर्दनें, ऊँचे उठे हुए लाल चोंच और लाल पांव, और फैले हुए सफेद से परों से मुझे पहली बार ही महसूस हुआ कि अफ्रीका का घना जंगल किस प्रकार के दृश्यों से भरा होगा। फिर एक वृक्ष पर लाल पक्षी दीखे और फिर हरे रंग के पक्षी। तोतों के आकार के ये पक्षी वृक्षों की सूनी शाखाओं पर से उठे और हमारी कार के ऊपर से उड़ते हुए दूसरी ओर अदृश्य हो गए। कितने मनोहर पक्षी थे! कैसे भले रंग, और कैसी भोली सूरतें! और फिर छोटी छोटी चिड़ियां, धनुष के सतरंगों जैसी लाल, हरी, पीली, नीली चिड़ियों के झुंड यहां-वहां पेड़ों पर बैठे दिखाई दिए।

बारह बजे के लगभग हम एक बड़े से गांव में पहुँच गए, जो फ्रांसीसी सीमा था। सड़क के पासवाले झोंपड़ों में चाय की दूकानें और कुछ अन्य

।, उनकी खुली स्वच्छ मुस्कराहट में कहीं
ी दुराव न था। श्रीमती हालपिन प्रत्येक सुखी
वेवाहिता महिला की तरह जब-तब अपने
ति को देखकर मुस्करा देती थीं। (अगले
देन सुबह, जब मैंने इस दम्पति को अपने
ो, चार व छ: वर्ष के तीन बच्चों के साथ
ाश्ता करते देखा, तब मुझे इस मुस्कराहट
के स्रोत का ज्ञान हुआ।) बातचीत के
ौरान में बात समाचारपत्रों पर आ गई।
ी हालपिन बोले, "इंगलैंड के बहुत-से
माचारपत्रों को मैंने पढ़ा है। मेरे विचार
में वे काफी बेईमान हैं। कुछ पत्र हत्याओं
और यौन-अपराधों के रंगीन विवरण के बल
र अपनी प्रतियाँ बचते हैं, तो कुछ राजनीति
की ओछी चालों पर।" मैंने कहा, "हमारे
श के समाचारपत्रों में निरपेक्ष गाम्भीर्य ही
काफी मात्रा में होता है।" प्रमाण-स्वरूप
मैंने एक भारतीय दैनिक पत्र की एक मासकी
प्रतियाँ भेजने का उनसे वायदा कर दिया।

दूसरे दिन साथ के कमरों में ठहरने के लिए आये मा-बेटे से मेरी भेंट हुई। मा लगभग पचास वर्ष की कमजोर व दुबली-पतली महिला थीं और बेटा १६-१७ वर्ष का नवयुवक, जिसकी मसें भीगना अभी शुरू हुआ था। ये दक्षिणी अफ्रीका के अंग्रेज निवासी थे और जोहानसबर्ग से अपनी लैंडरोवर जीप गाड़ी में आ रहे थे। गाड़ी में स्टोव, खाने का सामान, चारपाई व बिस्तर थे।

कच्चो, नीले शीशे जैसी निर्मल आँखों के नवयुवक ने अपनी यात्रा के बारे कहा, "बेल्जियन कांगो और कैमेरून्स हम पार कर चुके हैं। अनेक जङ्गल और नदियाँ, और छोटे-छोटे गाँवों में से गुजरते हुए आ रहे हैं। काफी कठिन यात्रा रही मगर बहुत ही दिलचस्प भी। कहीं पीने योग्य पानी नहीं है तो कहीं सड़कें नहीं और कहीं तो खाने की भी कोई चीज नहीं मिलती है। यहाँ से आगे चलकर हम घाना में अक्रा अथवा उसके उत्तर में डाकार बंदरगाह से लंदन के लिए पानी का जहाज पकड़ेंगे। रात को पता चला कि मा बीमार हैं, मैं उन्हें देखने गया। स्टोव और कपड़ों और अन्य सामान से घिरे एक कैम्प-बेड पर, वह लेटीं थीं। मेरे पूछने पर बोलीं, "मैं कल ठीक हो जाऊँगी। बस, कुछ थक गई हूँ—और कोई बात नहीं है।" कमजोर व असहाय-सी दिखाई देनेवाली इस महिला के कठिन यात्रा करने के साहस को देखकर मुझे श्रद्धा हुई।

तीसरे दिन दोपहर को मैं अपने कमरे में सुस्ता रहा था, कि रेस्ट हाउस का हबशी बेयरा मेरे पास आया। टूटी-फूटी अंग्रेजी में उसने मुझे बरामदे में चलने को कहा। बाहर एक गठरी उठाए एक और हबशी खड़ा था। वह मुझे सलाम कर बोला, "साहब, कुछ चीजें लाया हूँ। देख लीजिए। खरीदने की जरूरत नहीं—केवल देख लीजिए।" लकड़ी के छोटे छोटे बक्स, काली धातु के हाथी, गैंडे, और सारस, चमड़े के बटुए, इत्यादि उसने फैलाकर सामने रख दिए। मैं धर्मसंकट में पड़ा सोच रहा था कि इनकार कैसे करूँ और खरीदूँ तो क्या खरीदूँ—जबकि हवाई जहाज में

करते हुए मैं बहुत कम वजन ले जा सकता हूँ। तभी मेरे पड़ोसी मा-बेटे बाहर निकल आए और उन्होने मोल-भाव करना आरंभ कर दिया। अब मुझे कोई चिंता नहीं थी।

चौथे दिन सुबह मुझे कानों के लिए हवाई जहाज पकड़ना था। श्री० वर्नान जैक्सन एक महिला की गाड़ी में मुझे छोड़ने आए। महिला से परिचय हुआ, तो पता चला, आप मिस बॉसमैन हैं—लाहौर के विमिन्स' ट्रेनिंग कॉलेज की भूतपूर्व प्रिंसिपल। पिछले पाँच वर्ष से नाइजीरिया में कार्य कर रही हैं। वह कुछ ऊँचा सुनती हैं और कान में एक यंत्र पहनती हैं। उनसे बातें करते हुए मैंने सोचा, "भारत के साम्राज्य के बाद नाइजीरिया के अंग्रेज सचमुच सख्तजान हैं, आसानी से हार माननेवाले नहीं।"

कानो के एअरपोर्ट होटल में भी मेरे लिए कोई कमरा सुरक्षित नहीं था। दो दिन पहले दिया गया तार अभी तक नहीं पहुंचा था। एक रात यहाँ बिताकर मुझे जारिया का जहाज पकड़ना था, सो इसी चिंता में बैठा मैं संतरे का शर्बत पी रहा था, कि जहाज के एक अंग्रेज साथी ने मेरी चिंता का कारण पूछा और फिर अपना कमरा मेरे हवाले कर दिया।

अगले दिन मुँह-अंधेरे उठकर मैंने हवाई-जहाज पकड़ा और आठ बजे जारिया पहुँचा। नौ बजे के लगभग मैं 'नौर्ला' (नार्दर्न रीजन लिटरेचर एजेंसी) के कार्यालय में था और डायरेक्टर श्री कारपेंटर से बातें कर रहा था।

नौर्ला उत्तरी नाइजीरिया की सरकारी प्रकाशन संस्था का नाम है और यह पुस्तकें और साप्ताहिक व मासिक पत्र निकालती है। अन्य कोई प्रकाशन संस्था इस इलाके में नहीं है, इसलिए जो भी यहाँ होता है वह निर्बाध रूप से सारे में फैल जाता है। जनता सिर्फ फ़ारसी लिपि ही पसंद करती है, मगर अंग्रेजी सरकार की नीति के अनुसार अधिकतर रोमन लिपि ही फ़ैलानी, हाउस व अन्य भाषाओं में पुस्तकें और पत्र निकाले जाते हैं—(यहाँ के अधिकांश अंग्रेज अधिकारियों का मत है कि इस नीति से सब जातियों के एक होने में आसानी होती है।)

खाने के बाद तीन घंटे तक खूब डटकर सोया। जब उठा तो चाय मेज पर थी और बाहर प्रौढ़ शिक्षा विभाग के एक अधिकारी श्री० कोर्ट जीप गाड़ी में मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जल्दी जल्दी तैयार होकर मैंने दरवाजा खोला और श्री० कोर्ट ने कुछ नाइजीरिया निवासियों के साथ मेरे कमरे में प्रवेश किया। मेरे साथ हाथ मिलाते हुए नौजवानों के चेहरे खिल उठे। श्री० कोर्ट ने कहा, "ये यहां के उत्साही नवयुवकों में से हैं। तीन वर्ष पहले प्रौढ़ शिक्षा में आए थे तो बिलकुल निरक्षर थे, और अब अंग्रेजी बोल और पढ़ लेते हैं।"

अब हम श्री० कोर्ट के घर गए। उनकी पत्नी सुसंस्कृत और सभ्य हैं; दोनों म

सुम

विन से अलग रहते हुए भी मानसिक ष्टि से उनके बीच रहते हैं, यह देखकर के हैरानी भी हुई, प्रसन्नता भी। कुछ । पीने के बाद श्री व श्रीमती कोर्ट के य जीप में बैठकर मैं जारिया का बाजार ने निकला। कच्ची सड़कों के दोनों र मिट्टी के घर, लकड़ी के अनघड़ वाज़े, घुटनों तक आनेवाले खुली लम्बी हों के 'रीगा' (लबादे)पहने पुरुष व स्त्रियाँ, र सभी जगह बच्चों का नटखट कौतूहल। ों का बाजार वैसा ही गंदा, वैसा ही । हुआ, वैसा ही शोर-गुल भरा था—जैसा रे बाजारों में होता है। कुछ बुड्ढी रतें जमीन पर टोकरियों में हरे-पीले आम ए बैठीं थीं। एक किशोरी बाला का गंतुक के प्रति कौतूहल उसे मेरे पास च लाया। थालों में सजे पकोड़ों जैसी ज़े जिन पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। न पर बिछे कपड़े पर सीपियों और कों की तरतीब—यहाँ की स्त्रियों के सद आभूषण। गहरे हरे, नीले, पीले र लाल छपाई के कपड़े। श्री कोर्ट ने की ओर संकेत करते हुए बताया, हाँ के जीवन में रेगिस्तानी रेत और ो का रंग इतना अधिक है कि इन्हें रंगों से प्रेम हो गया है। देखिए न, ते शौक से ये लोग इन रंगों को पहनते- ते हैं।"

और मेंहदी भी। टोकरियों में ऊपर भरी पिसी हुई मेंहदी लोग खरीद रहे "गर्म देश में यह ठंडी होती है", श्री० ने समझाने का प्रयत्न किया। कहा, 'यही चीज हमारे देश की स्त्रियाँ भी सौन्दर्य बढ़ाने के लिए हाथ-पैरों में लगाती हैं।" यह सुनकर श्रीमती कोर्ट हैरान हुईं और फिर उनके होंटों पर मुस्कराहट खेल गई।

इस बाजार में घूमते रहे और बच्चे हमारे पीछे टोली बनाए ताली बजाते, कूदते-फांदते, शोर मचाते रहे। एक स्थान पर जमीन पर कुछ पुस्तकें बिछी थीं, उनकी ओर संकेत करते हुए श्री० कोर्ट ने कहा, "नौलों की पुस्तकें यहाँ भी हैं।" पुस्तकों पर बाजारी धूल की पर्त जमी थी—मगर मक्खियों का अभाव था। ज्ञान से शायद मक्खियों को भी चिढ़ है।

शहर से बाहर की ओर रास्ते में एक ऊँचे से मिट्टी के मकान के सामने रुके तो श्री कोर्ट ने कहा, "यह जारिया के अमीर का महल है।" मिट्टी की ऊँची दीवारों और बुर्जों पर लाल-नीले-हरे रंगों की सजावट व चित्रकारी थी। नीचे धूल में 'रीगा' पहने जी-हुजूरों की भीड़ सुस्ता रही थी; शायद वह संध्या की प्रतीक्षा कर रही थी जब कि अमीर के महल का आंगन राग-रंग से गूंज उठेगा।

नगर की पुरानी मिट्टी की दीवार के पास कुछ पहाड़ी टीलों के गिर्द हम कुछ देर टहलते रहे। ये टीले मेरे मन में हबशी योद्धाओं के गढ़ बनकर उभर रहे थे और मैं सुन रहा था, श्री कोर्ट कह रहे हैं, "यहाँ की मिट्टी बहुत उपजाऊ है। यहाँ एक अन्न होता है, बहुत छोटा—जिसे पीसकर यहाँ के लोग खाते हैं।"

श्रीमती कोर्ट ४० के लगभग हैं—ऊ

व स्वस्थ, आंखो में समझ की चमक है। भारत के जीवन के विषय में बहुत से उत्सुक प्रश्न उन्होंने किए। मैंने अपने तईं सभी प्रश्नों का सविस्तार उत्तर दिया। सब सुनने के बाद उन्होंने मेरी ओर देखा। उनके स्वर में कटाक्ष नहीं था, और न जिज्ञासा का लेश था। बहुत श्रद्धा से, या कहूँ प्यार से, वह बोली, "आप अपने देशको बहुत प्यार करते हैं—क्यों ?"

"जी", मैंने कहा। "अपना देश किसे प्यारा नहीं होता ?"

और वह मुस्करा उठीं। आज भी जब मैं उस मुस्कराहट को याद करता हूँ, तो मेरा मन अभिभूत हो उठता है। कितनी शुभ्र, कितनी सात्विक, कितनी भावनामयी मुस्कान थी वह।

अगले दिन सुबह मेरे लिए एक कार आई। ड्राइवर की जगह पर एक नाइजीरियन सज्जन बैठे थे। मुझसे हाथ मिलाकर बोले, "मुझे मेहोमद (मुहम्मद) याजीद कहते हैं। श्री कारपेंटर ने कहा है कि मैं आपको यहाँ के अमीर के यहाँ ले जाऊँ।"

सिविल लाइन्स को पार करते हुए हम कल वाले मार्ग से ही गुजरे। रास्ते में आम के पेड़ों पर हरे-हरे आम लटके नजर आ रहे थे। मैंने सोचा, अगर भारत में सड़कों के किनारे इस प्रकार के पेड़ होते तो शायद एक भी फल, (ठेकेदार न हो तो) बचता ही नहीं।

श्री० याजीद बोले, 'यहाँ के अमीर काफी उदार विचार रखते हैं। उन्हें बाहर से आनेवाले सज्जनों से मिलने का [illegible] आप उन्हें मिलकर खुश होंगे।

ये एक तरह से छोटे राजा हैं, [illegible] हाथों में अंग्रेजी राज्य से पहले र[illegible] व धार्मिक, दोनों सत्तायें निहि[illegible] मगर आज भी उनके अधिकार सुर[illegible] अंग्रेजों ने इन अमीरों की एक कमे[illegible] रखी है, जिसके परामर्श से सारा [illegible] चलता है।"

राजनैतिक सत्ता और धार्मिक [illegible] एक ही व्यक्ति में समावेश न भारत [illegible] था, न यूरोप में। अफ्रीका में य[illegible] प्रकार हुआ, इसे जानने की लालसा [illegible] में जगी, मगर इसका फौरन निराक[illegible] हो सका।

पिछली शाम को मिट्टी का जो [illegible] महल देखा था, उसीके बाहर एक [illegible] साये में हमारी गाड़ी रुकी और ह[illegible] निकल आए। श्री याजीद ने दो [illegible] दूर, धूल से भरे खुले मैदान के पार [illegible] महल के दरवाजे के बाहर जमा ज[illegible] की भीड़ में से एक दो व्यक्तियो[illegible] किए। प्रश्नों के उत्तर उन लोगों [illegible] बैठे ही दिए। फिर एक व्यक्ति उठ[illegible] अन्दर चला गया।

कुछ मिनट तक हम खड़े प्रतीक्ष[illegible] रहे। फिर एकाएक चारों ओर [illegible] मच गई। अपने-अपने लबादों को [illegible] हुए सभी लोग उठ खड़े हुए।

इससे पहले मेरा ख्याल [illegible] श्री० याजीद डर रहे हैं, कि उन्हें [illegible] मालम नहीं कि हमें किधर से [illegible]

मु[illegible]

श करना होगा, कि जी-हुजूरों के सामने
। आत्म-विश्वास डिग गया है। मगर
ये ओर अनुमान ग़लत निकले।

जी-हुजूरों ने हाथ उठाकर शायद कुरान
आयतें पढ़ीं या अरबी में अपने राजा का
गान किया। जो भी हो, उनकी ऊँची
वाज़ से मेरे कानों के सारे पर्दे झनझना
, और कुछ देर के लिए मेरी समझ
न आया कि यह सब क्या हो रहा है।

महल के द्वार से सभी तक बहुत ही
चे और ऊँचे व्यक्ति बाहर निकले।
के लबादे की शान देखकर, जिसमें सुनहरे
रों का महीन और सुन्दर काम था, मुझे
। चल गया कि यही अमीर हैं।
होंने श्री याजीद से बातचीत की, मगर
से पहले मुझसे हाथ मिलाया और मेरी
नों पर दूसरे हाथ की उंगली रखे महल
ने के लिए वापस मुड़ गए।

हम तीनों ने दरवाजे के अन्दर प्रवेश
या, तो एक बार फिर अफ्रीकी गलों की
ची आवाजें हवा में गूंज उठीं। अपने
वन में पहली बार मैंने अपनी महत्ता को
स किया!

महल के छोटे बाहरी कमरों में से
ते हुए मैंने सोचा, इस शान-शौकत का,
दरबारी चीख-चिल्लाहट का सम्बन्ध
। हमारी मुग़लिया तहजीब से नहीं

रास्ते में यहाँ-वहाँ, अफ्रीकी दरबारी
थे। उनके "सलामालेकुम" से मिलते-
ने अभिवादन का जवाब मैंने भी

"सलामालेकुम" से दिया और मुझे यह
देखकर प्रसन्नता हुई कि मेरा उत्तर सुनकर
उनके काले चेहरों पर मुस्कराहट खेल गई।

लम्बे दरबार-कमरे के अन्तिम छोर
पर बीचोंबीच एक गद्देदार कुरसी रखी थी,
उस पर अमीर बैठ गए। मुझे और
श्री याजीद को उनके सामने पड़ी दो
कुर्सियों पर बैठने का आदेश हुआ। बैठने
के बाद मैंने अपने चारों ओर देखा।

हमारे पीछे चटाई पर चार-पांच
दरबारी बैठे। उनके चेहरे भाव-हीन थे,
उनके हाथ निश्चेष्ट पड़े थे, मगर उनकी
आँखें सतर्क थीं। शायद वे अमीर के अंग-
रक्षक थे जिन्हें आगंतुकों पर नजर रखने
का आदेश था।

हमारे दाईं ओर एक दरवाजा था, जो
महल के अंदर जाता था। दरवाजे के पास
दीवार पर एक हिजरी (मुसलमानी)
कलन्डर लटका हुआ था।

अमीर के तख्त के पीछे दीवार पर दो
रंगीन चित्र थे। एक महारानी एलिजाबेथ
का चित्र था और दूसरा हवाई-जहाजों की
कम्पनी का एक कैलेंडर जिस पर एक
अफ्रीकी युवती का आवरण-रहित चित्र था।

कमरे का वातावरण गंभीर था, मगर
मुझे सभी कुछ ऐसा मालूम हो रहा था,
जैसे यह उजड़ी हुई जमींदारी का कोई
बैठकखाना हो। सभी चीजें, कुर्सियां, गद्देदार
सिंहासन, जमीन पर नमदा और छोटी-
छोटी दो मेजें—धूल-भरी तो नहीं, मगर
पुरानी दिखाई दे रही थीं। मगर क्हें।

कबाड़ी की दूकान की बू इन चीजों में अभी तक बसी हुई थी, तो अत्युक्ति न होगी। मगर अमीर की उपस्थिति में मेरे मस्तिष्क में ऐसे विचार आने असंभव थे। मैं उनके कठोर चेहरे और पीली आंखों की दृढ़ता को देख रहा था···उनके बड़े-बड़े मजबूत हाथों को देख रहा था, जो उनकी शाही पोशाक पर धुथे पड़े थे।

श्री० याजीदकी सहायता से हमने बातचीत आरंभ की। अमीर ने कहा, "उम्मीद है, आपको रास्ते में तकलीफ नहीं हुई होगी।"

"आपकी मेहरबानी से बिलकुल तकलीफ नहीं हुई।"

"आपने हमारे यहाँ पधार कर हमें इज्जत दी है," अमीर ने कहा। और फिर इस प्रकार की कुछ और शिष्टाचार की बातों के बाद अमीर ने पूछा, "आपके मुल्क को आजाद हुए कुछ ज्यादा दिन नहीं हुए—और जैसा आप जानते हैं, हमारा मुल्क कुछ दिनों में आजाद होनेवाला है। मुल्क की तरक्की के लिए आपको क्या-क्या मुश्किलें आईं और आपने उन्हें कैसे सुलझाया, हमें इसमें बहुत दिलचस्पी है।"

मैंने भारत की पंचवर्षीय योजना को इतने विस्तार से और इतने आत्मविश्वास के साथ समझाया, कि बाद में खुद मुझे हैरानी हुई। इस्पात का महत्त्व, उद्योग और खेती की समसामयिक प्रगति, का देश की खुशहाली के साथ उत्पादन संबंध—सभी बातें मैंने खोलकर समझाईं।

श्री० याजीद मेरे उत्तर का अनुवाद
हुए अपनी टिप्पणी भी देते रहे।
अनुवाद में कभी कभी मुझे अहमद
का नाम भी सुनाई दिया था, इसलि
में मैंने उन्हें पूछा, तो उन्होंने
किया कि श्री० क्रूमासी के भारत के
भी वह मेरे जवाब के साथ जोड़ते रहे

लगभग एक घंटे तक हमारी
चलती रही। अंत में जब मैंने उनसे
मति लेनी चाही, तो उन्होंने बड़े
मेरा धन्यवाद किया। मैंने भी
आशंका प्रकट की कि शायद अपनी
से मैंने उन्हें उबा दिया है। मगर
श्री० याजीद और अमीर दोनों ने
किया।

मुझे विदा करते वक्त भी बा
जी-हुजूरों का शोर एक बार फिर

उस दिन शाम को मेरा श्री० कार
यहाँ निमंत्रण था। टैक्सी यहाँ बहु
थी, और श्री कारपेंटर का घर
नहीं था। मगर घर ढूँढ़ने की
बचने के लिए टैक्सी की
अढ़ाई मील की दूरी के लिए
शिलिंग (लगभग ७ रुपए) देने पड़े
कारपेंटर ने मुझे अपने बरामदे में
और हम दोनों बहुत देर तक
रहे। श्री कारपेंटर ने मुझे बताया
जंगली जानवरों में बहुत दिलचस्पी
पश्चिमी अफ्रीका के जीव-जंतुओं पर
पुस्तक बहुत दिनों से स्कूलों में पाठ
लगी हुई है। बैरा ने दो बोतलें
खोलीं—और निमंत्रण की रस्म

। हुई। यह बियर मुझे बहुत कड़वी फिर भी दो एक घूंट पिए। काश, देश में भी किसी को निमंत्रण देना ही आसान होता!

अगले दिन मैं जारिया का एक बड़ा ज देखने गया। नाइजीरिया कॉलिज आर्ट्स, साइंसेस एंड टेक्नॉलोजी" ा शहर से दूर, मिट्टी के घरों के देश सवीं शताब्दी के भवन-समूह है। ल आधुनिक आकार का, तिमंजिला निवास देखते ही बनता है।

कला-विभाग में कुछ अंग्रेज प्राध्यापकों तचीत हुई, तो मैंने उनसे अफ्रीकी -कला के स्रोत के विषय में पूछा। हुआ कि ऐसी कोई चीज इस देश में है। यूरोपीय पद्धति के अनुसार ही थियों को कला की शिक्षा के सिद्धांत ाए जाते हैं। इंजीनियरिंग, डाक्टरी, अन्य विभागों की भांति इस विभाग में फ्रीकी विद्यार्थियों की गिनती कम है, सरकार की ओर से सभी को पर्याप्त ों हैं। किसी भी प्रतिभाशाली विद्यार्थी आसानी से छात्रवृत्ति मिल जाती हैं।

रतीय प्राध्यापक श्री० लाहिड़ी भी इस में साइंस विभाग के प्रमुख हैं और तीन वर्ष से यहीं हैं। इकहरे बदन वे, अधेड़ उम्र, लाहिड़ी महोदय ने हाथ मिलाया, फिर बैठाया, और पीते हुए मुझसे थोड़ी बातचीत भी बोले, "आप कल जा रहे हैं, वरना ो अपने घर पर निमंत्रित करता।"

"आपका निवास-स्थान कहां है?"

"मैं लंदन में रहता रहता था। वहीं के उपनिवेश विभाग से इस पद के लिए चुन कर भेजा गया हूं।"

श्री० लाहिड़ी मुझे बहुत प्रतिभाशाली लगे। अपने देश की स्थिति जानते हुए, अभी वह भारत लौटना नहीं चाहते। उन्हें प्रत्येक वर्ष लंदन में छुट्टी बिताने की सुविधा मिली है। अंग्रेजों के उपनिवेश में, अंग्रेजों की भांति रहकर, जनता से कोई भी सरोकार न रखकर अपना कार्य करने में संलग्न रहने की कला भी वह काफी सीख गये हैं।

दोपहर को श्री० कारपेंटर अपनी मोटर में मुझे लेने आए और बोले, "आज आपकी भेंट यहां के रेजीडेंट साहब से कराने का प्रबंध किया है।" पहले भी कई बार वह इस बात का उल्लेख कर चुके थे, मुझे कुछ खीझ-सी थी कि रेजीडेंट के विषय में यह इतना जोर क्यों दे रहे हैं। खाना खाकर मुझे अनुभव हो रहा था कि मैं सो रहूं—मगर यह शिष्टाचार के विरुद्ध था कि मैं श्री कारपेंटर के सुझाव को न मानूं।

रेस्ट हाऊस से एक फर्लांग की दूरी पर एक कटीले तारों से घिरा स्थान था, जिसमें गर्द से भरे आंगन के चारों ओर कुछ बैरकनुमा घर थे। इनके बीच में एक दुमंजिले मकान के एक बड़े से कमरे में रेजीडेंट महोदय से मेरी भेंट हुई। रेजीडेंट महोदय लगभग पचास वर्ष के वयोवृद्ध अंग्रेज थे। खुरदरा मगर शक्तिशाली चेहरा, अनुभवी आंखें, और तीखे कान। बोले, "माफ कीजिए, आजकल यहां के अमीरों की असेम्बली हो रही है। मैं उसी में व्यस्त

था। आपको शायद पता होगा कि आगामी दो-तीन वर्षों में ही नाइजीरिया आजाद हो रहा है और हमें ऐसा प्रबंध करना है कि शासन की बागडोर नाइजीरिया निवासियों के हाथों में निर्विघ्न सौंप दी जाय।"

एक अंग्रेज महिला-टाइपिस्ट रेजीडेंट महोदय के बाएं हाथ रखी एक मेज पर टाइप कर रही थी और हम लोग इसी टिकटिक में बातें कर रहे थे। मैंने पूछा, "मेरे विचार में इस देश में मध्यम वर्ग के लोग शायद हैं ही नहीं और यही वर्ग अधिकतर किसी लोकतन्त्र की नींव होता है। फिर नाइजीरिया में लोकतंत्र का क्या भविष्य है?"

रेजीडेंट साहब ने स्वीकार किया कि "यह विचार सभी अंग्रेज अधिकारियों को उद्वेलित कर रहा है। मगर स्वराज्य की माँग को ठुकराना भी संभव नहीं है। सारे देश की आर्थिक व्यवस्था खेती पर आधारित है। मूँगफली और कपास और केले यहाँ की पैदावार हैं; उद्योग के नाम पर कुछ टिन इत्यादि की खानें हैं, एक कपड़े की मिल है जिसने हाल ही में काम आरंभ किया है, और कुछ हाथ की दस्तकारी है। अगर आजादी की तारीख कुछ आगे बढ़ा दी जाय तो शायद लोक-तंत्र दृढ़ बनकर आये।"

अंतराष्ट्रिय आदान-प्रदान का यह नाटक शायद कुछ लोगों को निरर्थक प्रतीत हो, मगर मुझे लगा, कि इससे लाभ भी बहुत हैं।

पाँच दिन जारिया में बिताने के बाद छठे दिन सुबह साढ़े छः बजे जीप से मैं कटसीना के लिए रवाना हुआ। लगभ सवा सौ मील की यात्रा पाँच घंटे में पू हुई। दस मील की कच्ची सड़क और फि पक्की सड़क के दोनों ओर खेत और घ और कुएं और पुरुष-स्त्रियाँ-बच्चे! नं पैरोंवाले, लबादों से ढके, काले पुरुषो सफेद दाँत एक अजनबी को गाड़ी में गु रता देखकर चमक उठते; छातियों के ऊ से लेकर घुटनों तक एक चौड़ा धोती-जै कपड़ा बाँधे, सिर पर छोटे बड़े गट्ठर उठा स्त्रियाँ सड़क के किनारे पल भर को ठिठ जातीं; नंग-धड़ंग अथवा चीथड़ों में ढं बच्चे कूदते, फाँदते और तालियाँ बजा जैसे मोटर में बैठा आदमी चिड़ियाघर जानवर से भी अधिक दिलचस्प जीव है रास्ते में कुछ देर के लिए एक खाकी-व का जवान अफ्रीकी सिपाही भी हमारी ग में आ बैठा। उसकी पगड़ी पर एक ग नीला बिल्ला चमक रहा था। उतरते ह उसने मेरे ड्राइवर को धन्यवाद दिया; उसी बेपरवाही से जैसे कि साम्राज्यव देशों के अफसर अपने मातहत क्लर्क धन्यवाद देते हैं!

कुछ स्त्रियाँ अपने दूध-पीते बच्चों लेकर चल रही थीं—और खुली छाति पास कपड़े में बँधे उनके बच्चे बड़ी शां स्तन्य-पान में लीन थे। यद्यपि अधि स्त्रियों ने यथोचित कपड़े पहने हुए थे, भी यहाँ—वहाँ कुछ ऐसी नवयुवतियाँ दिखाई दीं, जिन्होंने केवल कमर के कपड़ा बाँध रखा था। छातियों का पुष्ट व तना हुआ था। मगर उन्हें दे

ते के उन्मत्त सौंदर्य का बोध होता था,
ना का भाव नहीं—शायद इसलिए
ामार्थता का निवास छिपाव में है,
े और जीवंत रात के सपनों की भाँति
देन के खुले प्रकाश में लुप्त हो जाती है।
सौभाग्यवश, कटसीना के रेस्ट-हाउस
ई कमरा खाली नहीं था और मैं एक
को अधिकारी का मेहमान बन गया।
मी तैयार नहीं हुआ था—उसमें दो
उसके अपने रहने के लिए बने थे, जो
ः उसके इंगलैंड-प्रवास में संयोजित
व पर आधारित थे। ये कमरे अन्य
कमरों के विपरीत पहली मंजिल पर
त्येक कमरे में दोनों ओर दो-दो
कियाँ थीं और एक कमरे के कोने में
के आसपास ढलान की चौकोर जगह
जिसमें बैठकर शायद नहाया जा
ा था। नीचे मिट्टी के आँगन के
ओर कई अँधेरे कमरे थे। सबके
जे आँगन की ओर खुलते थे—दूसरी
बाहर की चारदीवारी में भी खिड़की
द थी। शौचगृह में जमीन के बीचो-
एक गोल छेद था। जिसकी चौड़ाई
इंच थी। मैंने अनुमान लगाया कि
नीचे गहरा चौड़ा गढ़ा होगा जो
ओर से बन्द है। पानी का प्रबन्ध
ा के एक दूसरे कोने में था—जमीन में
कच्चे कुएँ के पास कुम्हड़े के सूखे
व दोनों में गदला मटियाला पानी
था।

रसी घर की पहली मंजिल के एक
में मेरे अफ्रीकी मेजबानों ने एक चार-
पाई, एक कुर्सी और एक मेज रख दीं। एक
नीची-सी कैम्प कॉट पर मसहरी लगी थी
और चारपाई के पास लाल गलीचा बिछा
था। लकड़ी के चौखटे की कपड़ेवाली
कुर्सी पर जब मैं बैठा तो एकाएक मेरी
नजर एक छिपकली पर पड़ी जो मेरे पास
ही जमीन पर रेंग रही थी। फोर्टलामी में
देखी छिपकली की भाँति लाल और काली
छिपकली को देखकर मैं चौंककर पीछे हट
गया। उपहास का डर न होता तो शायद
मैं जोर से चीख उठता। मगर छिपकली
अपने आप दीवार पर होती हुई खिड़की
के रास्ते बाहर चली गई।

एक ओर की खिड़कियाँ बाहर के
छोटे आँगन में खुलती थीं और दूसरी
ओर की खिड़कियाँ अन्दर आँगन में।
शाम के समय मैं बैठा पढ़ रहा था कि एक
भारी मोटी जनानी आवाज अन्दर के आँगन
से आई। मैं उठकर खिड़की पर आया, तो
देखा—एक लम्बी चौड़ी हबशी स्त्री जिसने
केवल जाने (लुंगी) पहन रखी थी, चिल्ला
रही थी। काले घुंघराले बाल, लाल गुम्सैन
आँखें, और चौड़ी हड्डी का चौड़ा शरीर।
मुझे देखकर वह पलभर ठिठकी और फिर
एक अँधेरे कमरे में गायब हो गई।

कुछ देर शान्ति रही—फिर धड़ाम से
पानी में गिरने की आवाज कुएं के पास से
आई—और फिर उसी स्त्री-कंठ की रोने
की आवाज सुनाई दी। मुझे लगा, जैसे
वही स्त्री किसी पुरुष पर अपनी खीज प्रकट
कर रही है—और किसी के गिरने के कारण
को भी उसी के मत्थे मढ़ रही है!

रात को मैं मिट्टी के तेल की ढिबरी जलाकर सोया। बहुत देर बाद आँख खुली, तो सुना—कहीं अफ्रीकी गाना गाया जा रहा है। इतनी रात तक गाने का तुक मेरी समझ में नहीं आया—मगर ढोल या तबले की ताल के साथ अंधेरे में उनकी आवाजें उतरती चढ़ती रहीं। रेगिस्तान की दिन की गर्मी के बाद रात की ठंडी हवा में गाने का आनन्द शायद वही समझ सकते हैं जो वहाँ के निवासी हैं। मैं देर तक कमरे में घूमता रहा। नीचे अन्दर के आगन में बूढ़ा हबशी व जवान औरत चटाई पर लेटे थे—दिखाई बहुत कम दे रहा था, मगर उनकी आवाजें जब-तब . जाती थीं।

उस रात मुझे बहुत देर तक नं आई।

अगले दिन सुबह मैं लोहे के गं में,मेरे पानी से नहाया और कपड़े बाहर की चारदीवारी पर ज अफ्रीकी मजदूर बैठे काम कर दीवार पर दोनों तरफ पैर लटका में गीली मिट्टी लिए, वे दीवार व जा रहे थे और दोनों ओर से मलते जा रहे थे। नीचे आंगन में जगह मिट्टी के ढेर थे और ि
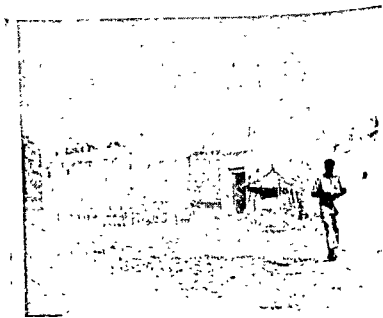
कटसीना में बने घरों के कुछ नमूने

सूखे कुम्हड़ों के बर्तनों में पानी
बजे की गर्मी इतनी कठोर थी,
हमारे देश में दोपहर के समय
।

-हाउस में खाना खाते समय मुझे
त महिलाएँ मिलीं। गर्मी के कारण
पहले हम एक गिलास शर्बत पी रहे
महिलाएँ और मैं अकेला पुरुष।
कोई बात-चीत संभव नहीं हुई।
ब बेयरे ने खाना लगाया और
। छः में से दो महिलाओं के साथ
या, तो हमारा आपस में परिचय
। तब रोज खाने के समय इन

महिलाओं से बातचीत होने लगी। पता चला, 'जारिया कॉलिज् आफ आर्ट्स एण्ड टेक्नॉलॉजी' में काम करती हैं और कुछ दिनों के लिए छुट्टी बिताने कटसीना आई हैं।

"आप न्यूयार्क भी जा रहे हैं—ओह, कितनी अद्भुत है आपकी यात्रा।" उनमें से एक ऊंची व चौड़ी अधेड़ उम्र महिला ने कहा। डील-डौल में वह भारत के किसी पहलवान से कम नहीं थीं, और चूंकि उसके एक पैर में पट्टी बँधी थी, हो सकता है कि कुछ ही समय पहले उसने किसी से कुश्ती भी की हो! अंग्रेजी सुन्दरता का
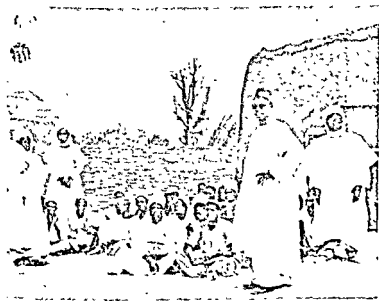
कादरा में एक समाज-शिक्षा कक्षा

नमूना वह शायद उपस्थित न कर पायीं, मगर फिर भी वह सुन्दर थीं। अन्य पाँच महिलाएँ भी अपनी जीवन-यात्रा की कौमार्य-अवधि को इतना अधिक बढ़ा चुकीं थीं—कि लगता था वे सदा कुमारी रहने के लिए ही पैदा हुई हैं!

उन सबने मेरे साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। मेरे भ्रमण और फोर्टलामी के अनुभवों को सुना। जब मैंने बताया कि मैं इंगलैंड भी जाऊँगा, तो एक पतली लम्बी महिला ने कहा, "आपको इंगलैंड में बहुत कष्ट होगा। वहाँ के अंग्रेज हमारी तरह बातचीत करने के आदी नहीं हैं।"

मैंने उत्तर दिया, "मेरा जीवन-दर्शन स्पष्ट और सीधा है। अगर अंग्रेज मुझसे नहीं बोलेंगे, तो मैं भी उनके साथ चुप्पी साध लूँगा।"

सभी महिलाएँ हँस पड़ीं।

कटसीना में जो चार दिन मैंने बिताए, वे इन महिलाओं के सम्पर्क में काफी अच्छे कटे। मुझे केवल एक खेद रहा कि अंतिम दिन वे मुझसे रुष्ट हो गईं। शाम को रेस्ट-हाउस के पास क्लब में एक नाच का आयोजन था। मुझसे अनुरोध किया गया कि मैं भी चलूँ और मैं मान भी गया। मगर न जाने क्यों मैंने नाच के विषय में अपनी अनभिज्ञता को बातों ही बातों में एक महिला पर प्रकट कर दिया। उसके बाद तो वे महिलाएँ मुझसे बोलीं तक नहीं और न मुझे नाच के लिए अपने साथ ले गईं। और अफ्रीका में अंग्रेजों के सामाजिक जीवन की झलक देखने से मैं इस प्रकार वंचित रह गया।

मगर इन महिलाओं से मिलकर इ[illegible] एक बात की पुष्टि मिली। वह य[illegible] स्त्रियाँ—बहुत भोली व साहचर्य को [illegible] हैं। उनके मस्तिष्क का विकास [illegible] रहन-सहन के ढंग मूल चरित्र और [illegible] में कोई परिवर्तन नहीं करते।

रेस्ट-हाउस में एक युवती, मिस [illegible] मेरे साथ खाने पर बैठी और [illegible] सुन्दरता व भोली मुद्रा से मैं बहुत प्र[illegible] हुआ। इधर-उधर की बातों के बाद [illegible] "आप दिल्ली से आए हैं! मैं का[illegible] लड़कियों के टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल में [illegible] हूँ। कुछ देर पहले जब मैं सूडान में [illegible] वहाँ आपके शिक्षा मंत्रालय के स[illegible] सैयिदैन से भी मिली थी।"

"जी, वह वहाँ शिक्षा प्रणा[illegible] निरीक्षणार्थ के लिए बनी कमेटी के [illegible] बनकर गए थे।"

मिस स्टैंटन ने मुझे अपना का[illegible] "आप कानो आएं तो मुझे अवश्य [illegible]

कटसीना में दो अफ्रीकी स[illegible] भी भेंट हुई। एक थे मलाम[illegible] कुमासी और दूसरे थे अलीयू देरी[illegible]

'मलामा' अफ्रीकी जबान में [illegible] लिए प्रयोग किया जाता है और [illegible] उर्दू शब्द 'अलामा' से निकला [illegible] अन्य अफ्रीकी घरों की भाँति मला[illegible] का घर भी मिट्टी और लकड़ी [illegible] बाहर की दीवार में दरवाज़े के [illegible] खाली प्रवेश-स्थान है। अन्दर [illegible] कमरा है जहाँ नौकर इत्या[illegible]

ी हैं। इस आंगन के परे सोफे, मेजें
कुर्सियों से सजा बैठक-खाना है।

मलामा कूमासी उत्तरी नाइजीरिया के
न-शिक्षा-अधिकारी हैं। यहाँ के
रों की भाँति ऊँचा, चौड़ा, डील-डौल,
की तहों में केवल हाथ और मुँह
ई देते हैं। उन्होंने मुस्कराकर मुझे
वादन किया। ठंडा शर्बत पीने के लिए
, मगर खुद कुछ नहीं पिया—क्योंकि
रोजे चल रहे थे। बोले, "भारत की
चीज मुझे बहुत पसंद आई—दही।
में बहुत स्वादिष्ट लगता है।"

बाद में वह मुझे अपनी ब्यूक गाड़ी में
कर कटसीना की सैर कराने ले गए और
के बाजार की तंग गलियों से गुजरते
न्होंने इनका भारत के साथ मुकाबला
केया।

मलामा कूमासी बड़ी उम्र के थे; उनके
ीत अलीयू येरीमा काफी छोटी उम्र के
ौर कुछ ही वर्ष पहले इंगलैंड से पढ़ाई
त करके लौटे थे। कटसीना में समाज-
ा का कार्य देखते थे। उनके साथ
काफी घनिष्टता हो गई। वह मुझे
ा और रीमी नाम के दो गाँवों में ले
और वहाँ की व्यवस्था समझाई। ये
कटसीना से काफी दूर थे। खेती के
रखने का स्थान, दवाखाना, गांव के
ख्य लोगों के एकत्रित होने का स्थान,
ी कुछ देखा। गांव के बाहर एक
ह कुछ टीन के छप्परों को दिखाकर
के नीचे सीमेंट के फर्श थे, अलीयू
, "छप्परों का यह समूह मंडी के

लिए इस्तेमाल होता है। प्रत्येक व्यापारी
अथवा किसान इनमें से एक भाग किराए
पर लेता है और इस तरह कम किराए पर
पक्की दूकान उसे प्राप्त होती है।"

गांव के बाहर हमने एक कुआं भी देखा।
पानी का अभाव यहाँ भी वैसा ही है, जैसा
हमारे देश के कुछ भागों में: और सरकार
की चेष्टा है कि अधिक से अधिक कुएं खोदे
जाएं। मगर मुझे यह सुनकर हैरानी हुई
कि एक कुआं खोदने पर ४५० पौंड अर्थात
पौने छः हजार रुपए लागत आती है। इस
हैरानी का निवारण तब हुआ जब श्री
अलीयू ने बताया कि कुआं खोदने व बनाने
का सभी सामान (सीमेंट और लोहा भी)
इंगलैंड से आता है। (सीमेंट का एक कारखाना
अभी हाल ही में नाइजीरिया में बना है।)

अलीयू मेरे ठहरने के स्थान पर एक-दो
बार आए और मुझे अपने घर पर भी
आमंत्रित किया। एक दिन उनके घर पर
बैठकर कुछ बातें हुईं। बोले, "जिस
जगह आप रहते हैं, उसके बाहर, दरवाजे
के आस-पास कुलियों के साथ बातें करने
वाली लड़कियों को आपने देखा होगा।"

मैंने हामी भरी। छोटी उम्र की कुछ
लड़कियों को मैंने कई बार सड़क पर इधर-
उधर घूमते देखा था। निहायत महीन
कपड़े पहने वे कभी-कभी बूढ़े कुलियों अथवा
नौकरों के साथ चाय पीते हुए भी दिखाई
दी थीं। अच्छे घरों की जवान स्त्रियाँ
खुले मुँह बाहर नहीं निकलतीं, यह भी मैं
जान गया था। मगर ये लड़कियाँ कौन
थीं, उनका उल्लेख सुनकर मेरी उत्सुकता

यहीं।

अलीयू बोले, "ये यहां की वेश्याएं हैं— बहुत घटिया किस्म की सस्ती लड़कियां। आमतौर के घरों में किराया देकर रहती हैं। अधिकतर वे ही लड़कियां पेशा करती हैं जो अपने पतियों के साथ नहीं रहना चाहतीं, अथवा जिनके माता-पिता उन्हें रखने से इनकार करते हैं।"

अलीयू एक दिन मेरे साथ गेस्ट-हाउस में आए। मैंने उन्हें अन्दर आकर मेज पर बैठने को कहा। उस समय खाने के कमरे में बैरे को छोड़कर कोई नहीं था, फिर भी बड़े आग्रह के बाद वह बैठे। बैरे के साथ उन्होंने अपनी भाषा में बातचीत की, एक गिलास शर्बत पिया, चले गए। शायद मेरा अनुमान गलत हो, मगर मुझे ऐसा लगा कि वह यहां अधिक देर नहीं बैठना चाहते थे। इससे पहले मैंने एक दिन उनसे पूछा था तो बोले थे, "यहां के अंग्रेज अधिकारी अधिकतर हम लोगों से सामाजिक मेलजोल पसंद नहीं करते।" शायद इसीलिए अलीयू यह नहीं चाहते थे कि वह अंग्रेजों के रेस्ट-हाउस में बैठे देखे जाएँ।

चार दिन कटसीना में बिताने के बाद मैं कानो के लिए रवाना हुआ।

यहां इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि नाइजीरिया में जनरल मर्चेन्ट्स का व्यापार अधिकतर भारतीय व्यापारियों के हाथ में है। जारिया में भी जब मुझे एक बार सेन-टाइन व कैंची की आवश्यकता हुई थी, तो श्री कारपेंटर मुझे चेलाराम की दूकान पर ले गए थे जिसकी दर्जनों शाखाएं इस देश में हैं। यहां [illegible] तीयों की इतनी अधिक संख्या नहीं है, जितनी दक्षिणी अफ्रीका में है; [illegible] काम अंग्रेजों के लिए अधिक [illegible] नहीं और अफ्रीकियों के बूते से बाहर है— उसे हमारे देशवासियों ने अपने हाथ बुद्धिबल से हथिया लिया है।

कानो की मस्जिद और अमीर के महल-अदालत की प्रसिद्धि मैं [illegible] चुका था, (फरवरी अंक में प्रकाशित [illegible] देखें) मिट्टी के मकानों के ढेर में [illegible] की ऊँची मस्जिद की इमारत को देख हैरानी हुई। बहुत देर तक उसके [illegible] की सड़कों पर घूमता रहा। [illegible] एक ओर अमीर का ऊँचा महल [illegible] मस्जिद के सामने बहुत छोटा [illegible] महल के बाहर, छाते के नीचे, [illegible] कुर्सी पर बैठा; अमीर अपनी प्रजा के [illegible] सुनता रहा था। एक अफ्रीकी [illegible], जो पोशाक से धनी-मानी दिखाई देते थे, [illegible] पास से गुजरे, तो मैंने कहा, "[illegible] आपका फोटो लेना चाहता हूँ।" [illegible] मुझे ऊपर से नीचे तक एक बार [illegible] फिर मेरे अफ्रीकी ड्राइवर ने [illegible] "वह कहते हैं, फोटो लेने के पैसे [illegible]" मैंने कहा, "फोटो लेने के लिए पैसे [illegible] मेरे उसूल के खिलाफ है।" [illegible] पैसे के बिना चित्र उतरवाने को [illegible] न हुए।

अफ्रीकियों पर विदेशी [illegible] फोटोग्राफरों के प्रभाव का यह [illegible]

ाज तक नहीं भूला। अब भी मैं सोचता , क्या वह सज्जन सचमुच धनी-मानी थे मे वह अपनी वेप-भूषा से दिखाई देते थे ? । केवल फोटोग्राफरों के लिए ही उन्होंने शाक पहन रखी थी ?

कानो के भीड़-भरे बाजारों का चक्कर गाते समय मुझे बार-बार भारत के किसी टे नगर अथवा मंडी बाजार की याद ती रही। वही होटलों पर कुलियों-रीगरों का समूह, वही दवाओं की व गन-पैंसिल-कलम बेचनेवाली छोटी टी दूकानें। वही फोटोग्राफरों की दूकानों काले परदे और शीशे के शो-केश में त। वही सड़क और दूकानों के बीच : नाले। वही गंदी खड़खड़ाती लारियाँ।

शाम को एअरपोर्ट होटल के बाहर, कारी की वस्तुएं बेचने वालों की पंक्ति रे, बाग में बैठे मेरी भेंट एक अमरीकी क से हुई। ऊँचा, लम्बा, सुन्दर युवक , शायद पच्चीस छब्बीसके लगभग आयु े। परिचय हुआ, तो पता चला, किसी रीकी कम्पनी में काम करता है और पेट्रोलियम की खोज कर रहा है।

"यहाँ तेल बहुत है क्या ?" मैने पूछा।

"तलाश कर रहे हैं", उसने कहा। र यहां के लोग बहुत मूर्ख हैं। तेल के जाँच में हमें कई लोगों की खेती की न में से गुजरना पड़ता है। जमीन के की मालिक हमारे काम में बाधा डालते में जमीन पर पाँव नहीं रखने देते।" देर चुप्पी साधकर उसने फिर कहा, "मेरा बस चले तो उनको गोली से उड़ा दूं। उनकी मूर्खता व हठ से हमारा काम तेजी से नहीं बढ़ पाता, आखिर वे समझते क्यों नहीं कि हम उनकी भलाई की बात सोच रहे हैं ?"

मैंने कहा, 'शायद आप ठीक कहते हों मगर आप अपने आपको उन गरीब किसानों के स्थान पर रखकर सोचें। उनकी जमीन चली जाएगी, तो खेती का एकमात्र साधन चला जाएगा। आप तेल ढूंढना चाहते हैं, तो बेशक ढूँढिए, मगर उनके जीवन की बर्बादी पर आगे बढ़ने का अर्थ वे खुद न समझें और आपको अपनी जमीन दे दें, यह आशा आपको नहीं करनी चाहिए।"

युवक को शायद पहली बार जीवन के अभाव-पक्ष का ज्ञान हुआ था। ढीला पड़कर बोला, "आप ठीक कहते हैं। मैंने इस प्रकार कभी नहीं सोचा। मगर मैं पूछता हूं, आखिर हमारा काम भी तो पूरा होना चाहिए। यहाँ की सरकार को कुछ ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे हम निर्बाध रूप से अपना काम कर सकें।"

बहुत देर तक हम लोग बातें करते रहे। भारत के बाहर यह पहला अमरीकी व्यक्ति मिला था। मैं सोचने लगा, हमारे देश में इस छोटी उम्र में कालेजों की पढ़ाई समाप्त नहीं होती; मगर यह कमसिन जवान अफ्रीका में काम करने निकल पड़ा है। मानवीय यथार्थों व संघर्षों के विषय में अनभिज्ञ यह युवक क्या विज्ञान के लाभों को अफ्रीकी लोगों तक सचमुच पहुँचा

सकेगा।

नौ बजे मैं सामान-सहित हवाई अड्डे पर आ गया। विश्राम-गृह में रेडियो बज रहा था, इंगलैंड जानेवाले अंग्रेजों के नाम लेकर रेडियो पर उनके लिए संगीत के रिकार्ड बजाए जा रहे थे, उनकी शुभ-यात्रा के लिए सदिच्छाएँ प्रकट की जा रही थीं। अफ्रीकी स्त्रियाँ व पुरुष बैठे जहाजों की प्रतीक्षा कर रहे थे। विदेशी हवाई-कम्पनियों के विज्ञापनों के 'बीच 'वेस्ट अफ्रीकन एअरवेज कारपोरेशन' के विज्ञापन अफ्रीका के जंगलों के साथ हवाई जहाज का सम्बन्ध जोड़ रहे थे। बाहर रात गहरी थी और जहाजों की घरघराहट का कंपन था और बत्तियों का प्रखर प्रकाश था जो 'रनवे' पर आ-जा रहा था।

अंतिम बार मैं अपने ड्राइवर की ओर मुड़ा। वह "बार" के पास मेज पर बैठा अपने एक मित्र के साथ कोका-को[illegible] रहा था। "भाई, तार जरूर दे[illegible] पैसे जरूरत से ज्यादा दे दिए हैं।" टूटी अंग्रेजी में उसने मुझे तार दे[illegible] आश्वासन दिया।

जहाज आया; और कुछ देर ब[illegible] उसमें बैठा था। बत्तियों के मद्धिम[illegible] में सभी लोग सो रहे थे। मैंने भी [illegible] ऊपर रैक से गहरा नीला कम्बल और उसे ओढ़कर आंखें बन्द कर सोचा, 'नाइजीरिया से जा रहा हूँ। सुबह मैं हालैंड के स्की[illegible] अड्डे पर पहुँच जाऊँगा—कल मैं यू[illegible] प्रथम बार पांव रखूँगा।'

मैं सो रहा था और चार सौ मी[illegible] घंटा की गति से अंधेरे को चीरता जहाज अफ्रीका के सहारा रेगिस्तान [illegible] कर रहा था। *

असभ्यता

"जनता और राष्ट्रीय योजनाओं में भाग लेनेवाले मजदूरों के निवास की समस्या नहीं हल हो जाती तबतक देश में मनोरंजन-घरों को बनने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए।

ठेकेदारों द्वारा बनाये गए बड़े-बड़े आवासगृह सिर्फ आडम्बर हैं। यह मेरी समझ के बाहर की बात है कि ऐसे बड़े मकान कैसे बनते हैं, जब कि लोहे की इतनी कमी है। चोर-बाजार! कैसे मकान बनाते के सामान चोर-बाजारी से सुलभ हो जाते हैं?

घरों की कमी को देखते हुए ऐसे मकान असभ्यता के चिन्ह हैं।"

जवाहरलाल नेहरू

खास तौर से महिलाओं के लिए—

क्या आप का विवाहित जीवन सुखी है ?

गृहस्थी में कोई गडबडी होने से औरत-मर्द एक दूसरे से झगडते हैं। उनके परिवारिक जीवन न झगड़ों का बड़ा असर पड़ता है। विशेषत' पत्नियों की तो जिन्दगी ही दूभर हो जाती है।

निम्नलिखित ३० प्रश्नों का उत्तर लिख कर आप पता पा सकती हैं कि आप के विवाहित जीवन ई गड़बड़ी तो नहीं है। आप का उत्तर "नहीं" हो तो ० अंक लें और कभी कभी" हो तो एक "हाँ" हो तो दो अंक प्राप्त करें। सब प्रश्नों के उत्तरों के अनुसार प्राप्त अंकों को तीनों खानों में लें और नीचे लिखे नियमों के अनुसार अपने ही बारे में जानकारी हासिल करें। इस प्रश्नोत्तर-त्र के लिये हम श्री मारगुरित बार्जा के प्रति आभारी हैं।

अब प्रश्नोत्तर शुरू करें

) क्या आप सोचती हैं कि आप लोगों के विवाहित जीवन में आप के पति विघ्न डालते हैं ?

) क्या मौका पाते ही आप अपने को सही और अपने पति को गलत सिद्ध करती हैं ?

) क्या आप उनकी बात उस समय भी टाल जाती हैं जब कि आप को मान लेनी चाहिए ?

) जब वे कोई कहानी कहते हैं तो आप बीच में टोक देती हैं या कहानी को खुद पूरा करने लगती हैं ?

) क्या अपनी छुट्टियाँ बिताने का सारा प्रोग्राम आप खुद बनाती हैं ?

) क्या आप उनके कपड़ों को खुद चुनकर निकालती हैं या उन्हें मदद देती हैं ?

नहीं	कभी कभी	हाँ
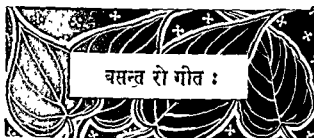
आँगण ऊबो आज बसंत
धरती रो परदेसी कंत
फल्या फूल बिछाया पंथ
क जाणे माटी मुलके रे।
माटी मुलके रे, माटी रा माटी कुदरत पुलके रे
माटी मुलके रे॥

कँवली कँवली तीतरयाँ, अे रंग-बिरंगी डोले
नाजुकडी कलियाँ रा घूंघट भँवर हठीला खोले॥
कोयल गाय बसंती गीत
आयो आज मदनरो मीत
पाली घणी पुराणी प्रीत
करस की गागर छलके रे।
गागर छलके रे, आ गाँठ गठीली होगी घुलके रे
माटी मुलके रे॥

आगे आगे पतझर आयो, सारी गैल बुहारी।
लारें लारें फागुण ल्यायो चम्पाई पिचकारी॥
कीन्ही मनमानी ऋतुराज
रूठी राधा मनगी आज
बैरण लाजाँ मरगी लाज
क ड्योढी व्हैगी लुलके रे।
ड्योढी व्हैगी रे बायरियो मीणों पंखी झलके रे
माटी मुलके रे॥

सहेल्याँ री बाडी में लुक छिप तीन्य खेले ।
: बणा दीन्हो मन्मथ ने देवर भामी मेले ॥

हिवडे लेय हिलोला प्यार
जागे समदरिया में ज्वार
लीन्ही अंगडाई कचनार

क पाँख पसरग्या खुलके रे ।
ड पसरग्या मिरगानैणी मतना जावे टलके रे
माटी मुलके रे ॥

व दिया री ज्योत में प्रीतम री पाती बाँचे ।
री चढगी ढलते शालू चिपरिया में पाँचे ॥

आया ऊपर फूल्या बोर
बोराँ नीचे नाचे मोर
लुल लुल होड करे गणगोर

क राती चूनड चिलके रे ।
नड चिलके रे, हाथाँ में राची हल्दी मलके रे
माटी मुलके रे ॥

ाँध मोठडो नींबू पीलों, श्रो आयो सैलाणी ।
ासयो धान पधार्यो थारी घर घर में भिजमानी ॥

काँसा में केसरिया भात
मीठी वाताँ करती रात
ल्यायो सोनारो परभात

क टपटप मोती ढुलके रे ।
मोती ढुलके रे, चन्दा री चाँदी बहगी गलके रे
माटी मुलके रे ॥
श्रोहो माटी मुलके रे, माटी रा माटी कुदरत पुलके रे
माटी मुलके रे ॥

त्रिलोक गोयल

मेरी
कितनी अच्छी कमला
जब से कमला बेटी स्कूल की छुट्टियों में मेरे
पास आई है, उस ने आते ही मेरे घर की काया पलट दी।
पहिले मैं सारा दिन किसी न किसी काम में उलझी रहती थी—
पर कमला बेटी का भगवान भला करे, अब तो वह सभी काम
चुटकियों में होने लगे हैं।
कपड़ों को धोने की बात ले लो—कहने को तो कोई बात नहीं
पर जब उस ने मुझे बताया कि कपड़े धोने का साबुन शुद्ध
होना चाहिये, तो मुझे बड़ा अचंभा हुआ—उस ने कहा,
"शुद्ध साबुन से कपड़े अच्छी तरह धुलते हैं क्यों कि
शुद्ध साबुन ज़्यादा झाग देता है और ऐसा झाग
जो न कपड़ों को नुकसान पहुंचाये, न हाथों को।"
वह सनलाइट साबुन घर ले आई और उस से कपड़े धो
कर दिखाए। ज़रा सा मलने पर साबुन कितना भरपूर झाग
देने लगा—मैं ने जो कमला को कपड़े धोने के लिए
डंडा दिया, तो कहने लगी—
R 234A 30111

जिसके अमर विचारों की पूंजी आज भी जम रही है

अम्बिका प्रसाद 'दिव्य'

विचारवान् इमर्सन का पूरा नाम था राफ वाल्डो इमर्सन (१८०३-१८८२)। इमर्सन अपनी आत्मा से भारत के बहुत निकट थे। पर, वास्तव में इमर्सन न भारत के हैं न अमेरिका के, वे सार्वभौम हैं और मानव-मात्र के हैं। विचार मानव-मात्र के मुरझाये हृदय में प्राण फूंक सकते हैं। उनके, विचार-चन्द्र-सूर्य वाद-विवाद के राहु से कभी ग्रस्त नहीं हुए। वे सत्य अनुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में ही सदा प्रस्तुत होते हैं।

आत्म-निर्भयता या स्वावलम्बन पर विचार करते समय 'स्व' पर उनका जोर देखिए। पुस्तकों और रूढ़ियों की महत्ता तो उनके सम्मुख कभी कोई मूल्य ही नहीं रखती।

"मनुष्य को उस प्रकाश को ग्रहण करना सीखना चाहिये, जो उसके अन्तर्तम से, उसके मस्तिष्क में चमकता है। प्रत्येक मनुष्य की शिक्षा में एक समय आता है जब वह इस परिणाम पर पहुंचता है कि ईर्ष्या मूर्खता है तथा अनुकरण आत्म-हत्या। उसे अपने ही को, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, स्वीकृत करना चाहिये। यह विश्व अच्छाइयों से भरपूर है परन्तु पौष्टिक भोज्य का एक भी दाना, अपने परिश्रम के बिना हमें प्राप्त हो सकता है?"

विचारवान् इमर्सन

इमर्सन प्रत्येक मनुष्य में एक नयी शक्ति देखते थे। किसी को भी नगण्य व उपेक्ष्य नहीं समझते।

"जो शक्ति एक मनुष्य के अन्दर विद्यमान है वह प्रकृति में नवीन है और उसके अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि वह क्या कर सकता है, और वह स्वयं भी नहीं जानता, जब तक कि वह अथक प्रयत्न न करे।"

अपने में विधान करें।

विश्वास की लौह-शृंखला से प्रत्येक
भंकृत हो उठता है।"

नकी दृष्टि में समाज व्यक्ति के मार्ग में
के रूप में सामने आता है।

"समाज हर जगह अपने
क सदस्य के पौरुष के विरोध
ड्यंत्र करता है। समाज एक
ी-जुली कम्पनी है जिसमें
क सदस्य अपनी स्वतंत्रता
संस्कृति को उसे भेंट कर
स्वीकार कर लेते हैं ताकि वे
भाँति अपनी जीविका कमा
। समाज के नियमों का पालन ही
ी की दृष्टि में सबसे बड़ा गुण है, और
-निर्भरता- दुर्गुण। समाज नाम और
रिवाजों को ही पसन्द करता है,
विकताओं को तथा स्वाधीनचेताओं
हीं। लेकिन जो मनुष्य बनना चाहता
से इस प्रवृत्ति का बहिष्कार करना ही
। जो अमर कीर्ति चाहता है उसे
ई के नाम में अटके नहीं रहना
ये। वरन्, ढूढ़ना चाहिये कि उसकी
विक अच्छाई क्या है। यदि कोई
पवित्र है तो अपने मस्तिष्क की
ाई हो। अपने को अपने में लगाओ
तुम्हें दुनिया की अनुमति प्राप्त हो
गी।

"तुम्हें वही करना चाहिये
तुमसे सम्बन्ध रखता है, न
कि जो दुनिया सोचती है। यह
कठिन अवश्य है क्यों कि तुम्हें
ऐसे भी मनुष्य मिलेंगे जो यह
सोचते हैं कि वे तुम्हारे कर्तव्य
को तुमसे कहीं अधिक अच्छा
समझते हैं। दुनियाँ में दुनियाँ
की राय से रहना सरल है तथा
अपनी राय से रहना तो एकान्त
में ही सरल है। पर महापुरुष
वही है जो जन समुदाय के बीच
में भी एकान्त की स्वतंत्रता अपनी
पूर्ण मधुरिमा के साथ बनाये
रखता है।" जो रूढ़ियाँ तुम्हारे लिये
निर्जीव हो चुकी हैं, वे कहते हैं, उनसे
चिपटे रहने से तुम्हारी शक्ति बिखर
जाती है। इससे तुम्हारा समय नष्ट
होता है और तुम्हारे चरित्र के प्रभावों
पर धब्बा लगता है।

"यदि तुम एक निष्प्राण चर्च
को चलाते हो, एक मृत बाईबिल
सुसाइटी को अनुदान देते हो, किसी
बड़ी पार्टी के साथ किसी सरकार के
पक्ष या विपक्ष में अनुमति देते हो, या
एक नीच गृहसंचालक की तरह अपनी
टेबुल सजाते हो, तो तुम्हारे सही रूप का
पता नहीं लगाया जा सकता। बात यह है
कि तुम्हारे जीवन से इतनी शक्ति खिंच
जाती है। पर अपना काम करो
और तुम परख लिये जाओ

उस तत्त्व को पा लेते हैं जिसे हम अन्तर्जात प्रकृति या सहज बुद्धि अथवा इच्छा-शक्ति कहते हैं। यही सब कार्यों तथा विचारों का स्रोत है। हम अनन्त बुद्धि की गोद में लेटे हैं जो हमें अपने सत्यों का भान कराती है तथा अपने कार्यों का उपकरण बनाती है। जब हम कोई न्याय देखते हैं, जब कोई सत्य देखते हैं, तब हम स्वयं कुछ नहीं करते, केवल उसअनन्त बुद्धि की किरणों के लिये मार्ग खोल देते हैं।"

यदि कोई व्यक्ति समाज की वर्तमान व्यवस्था पर विचार करता है तो इमर्सन कहते हैं, "उसे इस आचार शास्त्र की आवश्यकता पड़ेगी। मनुष्य का हृदय और स्नायु उसके शरीर से बाहर खिंचे हुए से प्रतीत होते हैं और हम डरपोक, निराश, और रुदनशील बन गये हैं। हम सत्य से डरते हैं, भाग्य से डरते हैं, मृत्यु से डरते हैं, और एक-दूसरे से डरते हैं। हमारा युग पूर्ण और महापुरुषों को पैदा नहीं करता। पर हमें ऐसे पुरुषों की जरूरत है जो जीवन को फिर से नया कर दें, सामाजिक व्यवस्था को सुधार दें, लेकिन हम देखते हैं, बहुत से लोग तो विचार और व्यवस्था में ऐसे दिवालिया होते हैं, कि वे अपनी जरूरतों को भी नहीं मिटा सकते। हमारा घर भिक्षुक है। हमारी कलायें, हमारे पेशे, हमारा धर्म हमारे चुने हुए नहीं, वरन समाज ने हमारे लिये चुना है। हम लोग [illegible] बैठाये सिपाही हैं। हम भाग्य के [illegible] युद्ध से डरते हैं, जहाँ शक्ति पैदा होती [illegible]

यदि हमारे युवक अपने पहले [illegible] में असफल होते हैं तो वे साहस खो [illegible] हैं। यदि नया रोजगार असफल [illegible] तो लोग कहते हैं कि वह बरबाद हो [illegible] परन्तु आत्म-विश्वास करो तो नई [illegible] अवश्य आविर्भूत होंगी। अनन्त [illegible] आत्म-विश्वास न होने से ही होता है [illegible] इच्छा-शक्ति की दुर्बलता है। [illegible] लोगों के प्रति हमारी सहानुभूति भी [illegible] है। भाग्य का रहस्य आनन्द है, [illegible] हाथ में है, बशर्ते हम आत्मविश्वासी [illegible] मिहनती हों।

अपने पर ही जोर लगाओ, [illegible] अनुकरण मत करो। तुम्हें जो प्रति[illegible] है उसे ही तुम सारे जीवन की संचि[illegible] के साथ प्रति क्षण प्रस्तुत कर [illegible] दूसरे से नकल किये हुए हुनर पर [illegible] अधिकार आधा ही रहता है। [illegible] कहाँ है जिसने शेक्सपियर को [illegible] प्रत्येक बड़ा आदमी अद्वितीय है। [illegible] की पुस्तकें पढ़कर कोई शेक्सपियर [illegible] सकता। **वही करो जो स्वभा[illegible] तुम्हें, करने को मिल[illegible]** न तुम अत्यधिक आशा ही कर [illegible] अत्यधिक साहस ही।

सब मनुष्य समाज पर आशा करते हैं, पर

सुधारता कोई नहीं। समाज
ी आगे नहीं बढ़ता। यदि वह
दिशा में आगे बढ़ता है तो
री दिशा में उतना ही पिछड़
ा है। उसमें निरन्तर परिवतन
रहते हैं। वह बर्बर है वह
य है, परन्तु ये परिवर्तन
ाति नहीं, क्योंकि प्रत्येक चीज
बदले में, जो दी जाती है,
ले लिया जाता है। यदि
ाज नई कलायें प्राप्त करता है
पुरानी खो बैठता है। सभ्य
्य ने कोच बनाया परन्तु
ने पैरों की शक्ति खो बैठा।
बैसाखियों पर चलता है।
के पुट्ठों में शक्ति नहीं, उसने
र घड़ी बनाई और सूर्य को
कर समय बतलाना भूल
। उसका नोटबुक उसकी
ण-शक्ति को छीन ले गया।
समाज एक लहर है। लहर आगे बढ़ती
रन्तु पानी, जिससे वह बनी है आगे
बढ़ता। पानी का वह अंश घाटी से
र नहीं चढ़ जाता। जो मनुष्य आज
माज को बनाये हैं, दूसरी ही साल
ाते हैं और उनके साथ उनका अनुभव
माप्त हो जाता है।

इसी तरह सम्पत्ति पर
सा और उस सरकार का
सा, जो उस सम्पत्ति की रक्षा
ी है, सिर्फ आत्म-निर्भरता की
कमी है। मनुष्य अपने से भटक
गये हैं और किसी किसी चीज में
तो इतने दूर हैं कि वे सामाजिक
संस्थाओं को भी अपनी सम्पत्ति
का रक्षक समझते हैं। वे एक दूसरे
का मूल्यांकन भी इस बात से
करते हैं कि उनके पास क्या है—
इस बात से नहीं कि वे क्या हैं।
परन्तु एक सुसंस्कृत व्यक्ति तो
अपनी सम्पत्ति से लज्जित होता
है और अपने स्वभाव को ही
अधिक मान देता है।"

इस प्रकार इमर्सन के विचार स्वयं अमर ही नहीं,—निष्प्राण व्यक्तियों को भी, जो जीवन से हताश और निश्चेष्ट हो बैठते हैं, जो अपने आप का मूल्यांकन न कर सकने के कारण अपने व्यक्तित्व को खो बैठते हैं—अमर-मार्ग की ओर ले जा सकते हैं। मार्ग उनका सीधा और सुलझा हुआ है। उनके विचार मथकर रूप से क्रान्तिकारी हैं, परन्तु व्यक्ति को ऐसे ढंग से समाज के ऊपर उठाना चाहते हैं कि समाज की बर्बरता उसके विरोध में न उठ सके। उनके कथनानुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने में एक इकाई है वह सब प्रकार से पूर्ण है, और संसार में अपना एक विशेष रूप से निर्दिष्ट कार्य लेकर आया है। इस लिये उसे अपना ही अन्वेषण करना है और जो वह स्वयं है उसी का विकास करना है। उनके अनुसार ईर्ष्या-द्वेष मूर्खता है और अनुकरण आत्मघात। इस प्रकार व्यक्तित्व के भी विकास के लिये इमर्सन के
के शक्तिशाली हैं, और अन्यत्र दुर्लभ हैं।
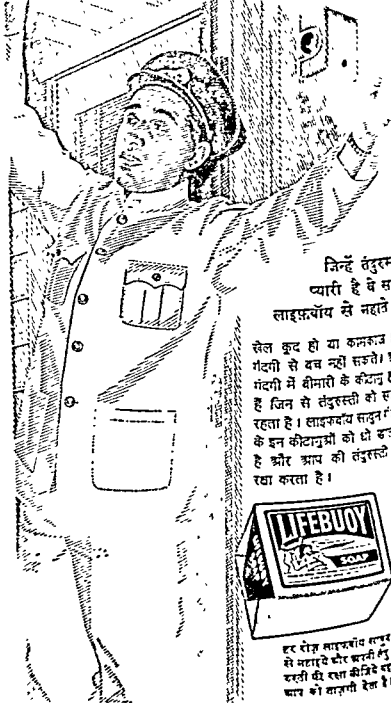
जिन्हें तंदुरुस्ती
प्यारी है वे स
लाइफ़बॉय से नहाते हैं
खेल कूद हो या कामकाज
गंदगी से बच नहीं सकते।
गंदगी में बीमारी के कीटाणु
है जिन से तंदुरुस्ती को
रहता है। लाइफबॉय साबुन
के इन कीटाणुओं को धो
है और आप की तंदुरुस्ती
रक्षा करता है।
LIFEBUOY
SOAP
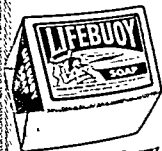
ा का दार्शनिक विवेचन :
—डॉ० देवराज ; प्रकाशक—
न ब्यूरो, सूचना-विभाग,
देश सरकार ; लखनऊ ।

देवराज ने भारतीय और पाश्चात्य
मपराओं के बारे में हिन्दी के पाठकों
चनाएँ भेंट की हैं, वे अत्यन्त
हैं। आलोच्य ग्रंथ इस क्षेत्र में
ौजपूर्ण रचना है—सबसे विशिष्ट
वपूर्ण। मानव-संस्कृति का विषय
हन है, उतना ही व्यापक भी है;
देवराज ने प्रस्तुत पुस्तक में इस पर
र व्यापकता से विचार किया है।
रूप में वर्तमान सांस्कृतिक संकट की
र उसके कारणों के विश्लेषण से
र प्राच्य और पाश्चात्य मनी-
विचारों के विश्लेषण के बाद
उन तत्वों का विवेचन हुआ है,
धार पर एक नये जीवन-दर्शन की
नेष्पत्ति होती है। इस जीवन-
लेखक ने 'सृजनात्मक मानववाद'
ा है। इस विचार के विभिन्न
०देवराज ने देसा विकसित किया है
वेचन, हो, 'एक व्यापक संस्कृति-
दर्शन' हो गया है। संस्कृति की व्याख्या
करते समय लेखक ने प्रायः सभी विषयों
पर अपनी धारणाएँ व्यक्त की हैं, केवल
व्यक्ति और समाज पर विशिष्ट या संश्लिष्ट
दृष्टि से पर्यालोचन नहीं किया। सिर्फ
विचारकों के दृष्टिकोण को नहीं लिया
बल्कि संबंधित विषय पर मौलिक विचारों
की प्ररूपणा भी प्रस्तुत की है।

प्रस्तावना में लेखक ने स्वयं कहा है कि
'इस समय हमारे देश में दार्शनिक जिज्ञासा
और चिंतन बड़ी अवनत अवस्था में हैं।
मौलिक चिंतन का अभ्यास तो जैसे हम
भूल ही गए हैं। विदेशी शासन के समय में
हमारे देश के अनेक मनीषियों, जैसे स्वामी
विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक तथा सर्व-
पल्ली राधाकृष्णन और श्री अरविन्द तथा
गांधीजी ने भी प्राचीन विचार-पद्धतियों
की नई, युगोचित व्याख्याएँ दीं। किंतु
हमारी धारणा है कि प्राचीन दर्शनों की
पुनर्व्याख्या कभी नए चिंतन तथा नवीन
विचार-पद्धतियों के निर्माण का स्थान नहीं
ले सकती।. इसका यह अर्थ नहीं है कि
आज हम नये युग के नये बोध और प्रश्नों
को ध्यान में रखते हुए, नवीन, साहसपूर्ण
चिंतन न करें।' निस्सन्देह इस पुस्तक में
वास्तव में 'नवीन और साहसपूर्ण चिंतन' ही
मिलता है।

मनुष्य स्वभाव से सृजनशील है और
उसकी सृजनशीलता की क्षमता का नाम ही
संस्कृति है। जो सृजन के क्षेत्र में निरन्तर
प्रगति करता है, सही माने में वही सुसंस्कृत
व्यक्ति कहा जायेगा। पर सृजन के तत्व

अवश्य परोक्षित होंगे, क्योंकि हर प्रकार का सृजन संस्कृति की परिधि में नहीं आता। लेखक के मत में केवल जीवन का बाहरी परिवेश ही संस्कृति नहीं है। उसका 'आन्तरिक या आध्यात्मिक व्यक्तित्व भी जिन तत्वों से विकसित हो सके, उन्हीं का नाम संस्कृति है।' वर्तमान जरूरतें और उनकी पूर्ति ही जीवन का 'इत्यलम्' नहीं है, मनुष्य की सार्थकता यह है कि 'वह ऐसी चीजों की चेतना प्राप्त करे, जिनका उसकी जरूरतों से दूर का भी संबंध नहीं है और इस प्रकार जरूरतों के क्षेत्र का अतिक्रमण कर अपने को विश्व की निरुपयोगी छवियों से संबद्ध और असंख्य जीवन-संभावनाओं में उल्लिप्त करे।' अर्थात् प्रत्यक्ष उपयोगिता ही संस्कृति की कसौटी और ध्येय नहीं है। शायद इसीलिए यह मानना युक्ति-संगत है कि संस्कृति का जन्म तब हुआ, जब मनुष्य ने अपनी मौलिक जरूरतों से मुक्ति पाई। संस्कृति की इस मूल धारणा के साथ ही डॉ० देवराज ने संस्कृति और सभ्यता के अन्तर, कला की प्रकृति, दर्शन के स्वरूप, धर्म, नीति और आचार आदि की प्रकृति और पद्धति, प्रेम, मैत्री, शिक्षा तथा राजनीति प्रभृति समस्त संबद्ध विषयों पर भी विवेचन किया है, और सबके द्वारा नये जीवन-दर्शन अर्थात् 'सृजनात्मक मानववाद' की पुष्टि की है।

कुछ तो विषय की गंभीरता के कारण, कुछ मूल निबन्ध अँगरेजी में लिखा जाने के कारण भाषा बहुत क्लिष्ट और दुरूह हो गई है। यद्यपि पुस्तक के अन्त में संकलित शब्द-कोष से काफ़ी सहायता [illegible] तथापि कहीं-कहीं भाषा की [illegible] अभिव्यक्ति कुंठित हो जाती [illegible]

पुस्तक की सबसे बड़ी [illegible] पाद-विषय-संबंधी लेखक [illegible] इसमें सम-सामयिक युग के [illegible] भूमि में न केवल नये बोध [illegible] का संकेत है, बल्कि एक [illegible] लेखक के शब्दों में, काश [illegible] मान संस्कृति का भाग और [illegible] हमारी प्राचीन धरोहर के [illegible] किया जायगा। वैसा करने [illegible] होगा कि हमारी साम्प्रति[illegible]

'युग-प्रभा[illegible]

केरल से निकलनेवा[illegible] पाक्षिक। दक्षिण हिन्दी [illegible] धारणा को झूठा साबित [illegible] प्रभात'' करीब तीन सा[illegible] भाषी प्रदेश केरल से निक[illegible] की प्रमुख भाषाओं की, [illegible] चार भाषाओं की, सुन्दर [illegible] के अलावा दक्षिण के जन[illegible] चित्रों से 'युगप्रभात' का [illegible] रहेगा। आपका सहयोग [illegible]

दि आज हममें सक्रिय जिज्ञासा तथा और सौन्दर्य की उपलब्धि का भाव नहीं तो हम अपनी समस्त धरोहर के द सुसंस्कृत नहीं कहला सकेंगे।'

पुस्तक वास्तव में पठनीय, मननीय, संग्रहणीय है।—भँवरमल सिंघी

●

नीम की निबौलियाँ—गुरुबचन की दस कहानियों का संग्रह है। ये नेयाँ अधिकतर हमारे निम्न व निम्न-र्ग के शोषित-पीड़ित घुटते अंगों की ई हैं। इन कहानियों के पात्रों की ही उनके दुख-सुख, अभाव-अभियोग भी आस-पास के देखे-सुनने हैं ··उर्दू हिन्दी में आनेवाले इस कथाकार के हिन्दी भाषा की प्रान्जलता अनायास ली गई प्रतीत होती है। यद्यपि कहीं उसके अशिक्षित पात्र पुस्तकीय भाषा ते हैं परन्तु उनका जीवन पुस्तकीय है, वह देश के कठोर यथार्थ का दर्पण लेखक ने सभी पात्रों को आँखों से चुनकर लेखनी में उतारा है और यही कहानियों की सफलता है। सत्य की ा से उद्भूत ये कहानियाँ शिव की ना लेकर आई हैं। और सौन्दर्य तो ी कृति को प्रत्येक कलाकार प्रदान ा ही है। गुरुबचन सिंह का शिल्प भी अधिक निखरेगा।

एका—अनुरंजनप्रसाद सिंह की ी बड़ी २४ कविताओं का छपा संग्रह कविताएँ तुकान्त अथवा गेय न होने पर भी लय से काफी सीमा तक बँधी है। जीवन अनुभव और प्रयोगों से ही आगे बढ़ता है। अनुरंजन की यह कविताएँ भी उनके प्रयोग ही हैं, जिनमें भावना और बुद्धि का सशक्त प्रयोग है। 'अनकही कथा' 'प्रसार खंड' 'वह चाँद चाँदनी रात' जैसी कविताएँ मन को सिक्त करती हैं तो 'जेठ की दोपहरी' 'रवि ठाकुर' 'ओ हमारे मीत' जैसी बुद्धि को झकझोरतीं हैं। कवि के पास सजग दृष्टि और पैनी बुद्धि है। दवा का मोह छोड़ यदि अपनी लेखनी मात्र साहित्य साधना की ओर उन्मुख रक्खेंगे तो अनुरंजनजी इससे भी अधिक प्राणवान् काव्य-संग्रहों का सृजन करेंगे। 'एका' सचमुच एक सुन्दर प्रथम कृति है।

महान् मनीषी—विदेशों के १५ महापुरुषों के जीवनवृत्त तथा शब्द-चित्रों का सुन्दर आकलन। लेखक हैं जगन्नाथ प्रसाद मिश्र। सरल सरस व प्रान्जल भाषा में लिखे ये जीवन-वृत्त हिन्दी के पाठक को प्लेटो, सॉक्रेटिस, वाल्तेयर, कार्ल-मार्क्स, आइंस्टाइन इत्यादि विश्व विभूतियों का सुन्दर परिचय देते हैं। किशोरों के लिये भी यह एक सुन्दर संग्रह है। संक्षेप में लिखे यह वृत्त खोज और परिश्रम से लिखे गये हैं। ऐसे जीवन-वृत्त और भी लिखे जाय तो हिन्दी के भंडार की वृद्धि ही होगी। मिश्र जी में अच्छी निबन्ध-प्रतिभा के दर्शन हुए हैं। ●

—चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

पत्रकार बृहत्रयी : ले० गौरीशंकर गुप्त : हिन्दी के अग्रगामी तीन महान् जीवन और कार्य-कलाप का दिग्दर्शन करानेवाली इस छोटी-सी पुस्तक हम गुप्तजी की तारीफ करते हैं। आशा है, निकट भविष्य में, हिन्दी पत्रका और भी बड़ी और अच्छी पुस्तक गुप्तजी शीघ्र ही लिखेंगे। —

इस वर्ष के प्राप्त कैलैन्डरों में हमें सबसे अच्छा इम्पीरियल टोबेको कम्पनी कैलैन्डर लगा, जिसमें भारतीय लोक-जीवन पर बारह सुन्दर चित्र बारह बड़े-बड़े छपे संगृहीत हैं। रंगनेवाले कैलैन्डरों में अलेम्बिक का कलेन्डर भी काफी अच्छा है।

शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है

'अनागता की आँखें'

वीरेन्द्रकुमार जैन की नवीनतम कविताओं का संग्रह

कविताएँ, जो अनागत के क्षितिज पर खुल रहे मानवीय प्रगति के अपूर्व नवीन प्रकाश पंथों का संदेश वहन करती-सी लगती हैं :

'देख लेना, कल आदमी बदल देगा
भौतिक को आत्मिक में, अचेतन को चेतन में,
क्योंकि कल मनुज को सत्ता का भेद मिल जायगा।'

संग्रह खुलता है, **'कवि-यात्रिक : अमर जीवन की खोज में'** शीर्षक ५० पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका के साथ, जिसमें अपने आत्म-विकास की यात्रा को केन्द्र में रख कर कवि ने पिछले ५० वर्षों की विश्व-काव्य की प्रगति पर सर्वथा मौलिक और नवीन प्रकाश डाला है। मानव के लिए इसमें अक्षुण्ण आशा का अद्भुत संदेश है। सत्ता के स्वरूप और जीवन मूल्यों पर यह नितान्त स्वानुभूत चिन्तन, हिन्दी में अपने ढंग की अपूर्व चीज होगी।

[illegible]नाथ शर्मा द्वारा सुप्रभात कार्यालय एवं मुद्रक मण्डल लि०, १७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता-७ से प्रकाशित तथा मुद्रित

-' SUPR B AT" March '59 Regd. No. C-3796. Per Copy

प्रभात

चतुर्थ वर्ष, नवम अंक, पैंतालीसवीं किरण, एप्रिल, १९५९

संचालक
नीलरतन खेतान
चन्द्रकुमार अग्रवाल

सम्पादक-व्यवस्थापक
पृथ्वीनाथ शास्त्री,
एम० ए०

इस अंक में समर्पित

कहानी-कुसुम

पृ० ६१ पर छपा ब्लाक 'धर्मनान'के सौजन्य से

प्रधान कार्यालय
१७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय
१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई
फोन : ४४-२४८

वार्षिक मूल्य ८) रुपये।
एक प्रति ७५ नये पैसे

सेवा कर रहे हैं...
गृह एवं
उद्योग
के लिये
प्रभात
उत्पादन
"भारत का सर्वप्रथम...
तौभी सर्वोत्तम!"

का सर्जन करता हूं।"

त्र का सर्जन हुआ और वह वसुन्धरा पर बाल-क्रीड़ा करने लगा। रत्नगर्भा वसुन्धरा की सर्वतोमुखी सौन्दर्य-वृद्धि के लिये वह दिन-रात अथक परिश्रम में जुट गया।

अत्यन्त श्रम के कारण उसकी देह से विनिःसृत श्रम-बिन्दुओं की धारा से पृथ्वी आप्यायित होगई।

चारों ओर से वह शस्य-श्यामला सुजला, सुफला, हो उठी।

अलंकृत शिशुओं जैसे खेतों में सुनहली फसल ायी। उद्भिन्न-यौवना मोहिनी तरुणी-सी

काएँ अपना गौरव के विज्ञापनार्थ पर उठाती रहीं। पराक्रम और की महत्त्वाकांक्षाओं से अनेक हानगरमें परिणत होने लगे। के इस अभिनव स्वरूप ावान् को गौरवान्वित ौर पुलकित कर दिया।

अब तो तेरी अन्तर्वह्नि है न?"

वसुन्धरा ने कोई उत्तर दिया। एक गम्भीर । अन्तर से निकल ।

और मानव ने नामकरण ।, 'देखो! देखो! ामुखी!'

भगवान् भी क्रुद्ध हुए "यह तुष्ट वसुन्धरा कभी शान्त नहीं हो ी! नये उत्तम प्राणी मानव ने ार की तरह इसे अनेक रूपों में बदला, परिश्रम से सुन्दर बनाया फिर भी

इसकी ज्वाला नहीं मिटी। अब हम कुछ कभी नहीं पूछेंगे।"

वसुमती पर प्रत्येक वस्तु अत्यधिक वेग से बढ़ रही थी—धन-धान्य, [illegible] उसके कर्म-फल-स्वरूप सुख-दुःख और सामाजिक वैषम्य।

सतत वर्तमान ऐश्वर्य के साथ ही पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष भी बढ़े। दूसरों [illegible] बनाकर, उनके शोषण से स्वकीय सुख-प्राप्ति की इच्छा भी बढ़ी। परिणाम [illegible] स्थान पर सामरिक अभियान। मानवों ने द्वन्द्व-युद्धों को छोड़ संग्राम और [illegible] विश्व-युद्ध की ओर कदम बढ़ाये।

भगवान् ने सोचा, मानव के स्वेद बिन्दुओं से नहीं तो इस रक्त प्रवाह से [illegible] की अन्तर्वह्नि अवश्य ही बुझी होगी।

भगवान् का मौन टूटा, पूछा, "मानव की श्रम-बिन्दु धारा से तेरी [illegible] बुझी थी, पर अब उसके रक्त प्रवाह से तो......"

"पहले की अपेक्षा और भी ज्यादा धधकी है..." वसुमती सुबकी।

स्रष्टा ने संतप्त हो कहा, "तो, तो, अब तेरी अग्नि शायद ही [illegible] अपने रक्त से अधिक मूल्यवान वस्तु मानव के पास नहीं।"

स्रष्टा महा-सुषुप्ति की गोद में शेषशय्या पर जा विराजे।

अनेक युग बीत गये।

एक दिन शयनागार में भगवान् को एक मधुर गीत सुनाई दिया। वह [illegible] चिर-परिचित था। वसुन्धरा ही तो गा रही थी!

असीम विस्मय हुआ उन्हें। उनकी तो यह धारणा था कि [illegible] वसुमती का कोई अन्य स्वर कभी नहीं गूँजेगा। फिर यह संगीत!

कितनी शान्त और मधुर-स्वर लहरी! दुखी कंठ से ऐसा स्वर [illegible] है? असंभव! अग्नि में कहीं फूल तो नहीं खिलते!

भगवान् अधीर बालक-से वसुधा के पास पहुँचे, बोले, "यह क्या हो [illegible]"

"हास्य, संगीत, नृत्य।"

"क्यों? अन्तर में ज्वाला संजोये तू कैसे आज गाने लगी है?"

"अन्तर्ज्वाला तो कभी की बुझ गयी, प्रभो!"

"कैसे? किसने बुझायी?"

"मानव ने जब अपने अन्तरस्थ बन्धुत्व के स्नेह से द्रवित करुणा के [illegible] मेरी सारी ज्वाला मिट गयी, प्रभो!"

दान

ह का मैं दान !
ा है

ो व्यथा का,
लोक का
ाशक तिमिर में
ूर्य का संदेश !
की पूँजी,
ार का पारस,
किरणों का,
सकूंगा मैं
तुम्हारे
ज्वल !
ा का आधार,
ापथ मेरे,
याचना है और,
ा हूँ स्नेह का मैं दान !

ारावार
ामिर का !
प्राण की
व्याकुल लौ !
स जीवन का,
ऊषा का,
ाक श्रद्धा का
इसे
ारा स्नेह पावन !
ो सजग व्याकुल
स्नेह का मैं दान !

मेरी साधना है सुन रही रव
अश्व-वाही
सूर्य के रथ का
तिमिर को वेध
वह होगा उदय
जगते हुए अरुणिम क्षितिज पर !
स्वागत चाहती करना उषा का
जागरण की नव प्रभा का
वहन करती ज्योति
मेरी नमित अंतिम सांस !
संभव हो सके यह
इसलिए ही
माँगता हूँ स्नेह का मैं दान !

डा० ब्रजमोहन गुप्त

काठ की सीढ़ी | प्रेमेन्द्र मित्र

चौड़े काठ की सीढ़ी ऊपर उठी है
चक्कर खाती हुई बहुत ऊँचाई तक,
इसके सोपान कालीन से ढके हुए हैं,
जो पुराना नहीं है
किन्तु चमक-विहीन है।

सीढ़ी के एक मोड़ पर
स्टूल पर बैठा रहता है एक सशस्त्र प्रहरी।
उसके बैठने की भङ्गी है कठोर,
मुख-मुद्रा निर्विकार,
जैसे पत्थर पर खुदी आकृति हो।

दिन भर वह बैठा ही रहता है,
वह जो काठ की सीढ़ी ऊपर चली गई है
उसी के एक खास मोड़ पर।

सीढ़ी से उतरते हैं कदाचित् दो-एक आदमी
भारी गम्भीर शब्द करते हुए,
भड़कीली पोशाकें पहन
बेमरा भी जब-तब चढ़ने-उतरते हैं।
केवल प्रहरी ही बैठा रहता है;
और काठ के टब में
एक पाम का पौधा
अपने हरे पञ्जों जैसे
पत्तों को फैलाये रहता है।

इस बड़ी-सी इमारत की मोटी दीवारों को भेदकर
बाहर का शोर-गुल आ ही पहुँचता है।
ट्राम की घर्घराहट,
शहर की बड़बड़ाहट
और सूरज की रोशनी
खिड़की के मोटे-मोटे काँच से
धीमी औ' फीकी हो आती हैं।
वर्दी के नीचे प्रहरी का वक्षःस्थल
धुक्-धुक् करता है क्या?
पाम के पौधे के पत्ते क्या हिलते हैं?—
नहीं कहा जा सकता।
जो विशाल सीढ़ी
उठना चाहती है आकाश की ओर
उसके ही नीचे वे बैठे रहते हैं—
काठ के टब में यह पाम का पौधा
और काठ के स्टूल पर
सशस्त्र यह प्रहरी।
तो भी मैं हताश नहीं होता।

जानता हूँ—पाम के पौधे में छिपा है अरण्य, जिसे
काठ का टब कभी अपनी छोटी-सी सीमा में बाँध नहीं सकेगा।
काठ के स्टूल पर निस्संग जनता
स्तब्ध, गतिहीन-सी थमी है
पर एक दिन उसकी भी यह जड़ता चली जायगी।
सिर्फ काठ की सीढ़ी ही
आसमान कभी नहीं पहुँचेगी।

अनु० गोपालचन्द्र दास

उस दिन शाम को एकाएक ही दृष्टि
इण्डियन म्यूजियम में मेरी निगाह
उठी ! मोटे फ्रेम का चश्मा चुराकर
एक सहज आकुंचन, वृत्ताकार सौम्य
शिल्पी के ईमान की एक छाया,
उम्र की गवाही देने वाली सिकनें, एक
आत्म-गौरव में उलझी-पुलझी सी। एक
सब देखता रह गया।

ब्रिटिश रॉयल -
लन्दन द्वारा
प्रदर्शनी में

शिल्पी : फणिभूषण से एक मुलाकात
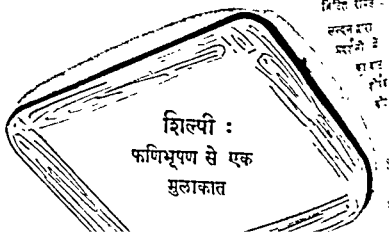
। शिल्प तथा कलकत्ते में दो एकक प्रदर्शनियाँ अभी
आयोजित हुई हैं। इसके अतिरिक्त एक जर्मन ग्रंथ
rtist lexicon, leipzig पृष्ठ ५१७) में मैंने इनका
भी देखा है।

बिड़ला हिन्दी हाई-स्कूल (कलकत्ता) के हॉल में
पुरुष की तूलिका का कमाल तो हरेक देख सकता है।
मार्दव, इतनी पेशलिमा, अजंता जैसी इतनी
ान्वितियाँ, एक साथ भित्ति-चित्रों में आँकी गयी
: दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है।

हाथिदा ने अपनी कृतियों के कुछ आलोक-चित्र
दिये थे। पहली कृति
मही' जो यहाँ उदाहृत है
लचित्र है। यह चित्र
दृष्टियों मे प्रथम कोटि
। अभिव्यञ्जना की संहति-
(Compactness of
ession) इसमें सशक्ततम
रेखाओं का सम्पुञ्जन
nposition of Lines)
पूर्ण है। कथ्य और रूपायन
me and form) को
ी वृत्त की वक्रिमा में

पितामही

कौशल के साथ अंकित किया गया है वह भी क्या
शंस्य है? बूढ़ी दादी के बैठने की मुद्रा को भी भिन्न
ह व्यवहार करना साधारण कलाकार से सम्भाव्य
था। वृद्धा पितामही दो पौत्रियों और दो पौत्रों
हानी सुना रही है—यही स्थूल कथ्य है यहाँ।
ों की आश्चर्य-विस्फारित आँखें, कहानी सुनने
न्मयता, अंकायित छोटे पोते की निंदासी मुद्रा,
दादी का पोपला मुँह, पलित केशराशि, मर्मदर्शी
: सभी कुछ अपने रूपायन में संग्रथित हैं। एक ही
ं जीवन की सारी सीमायें जैसे साकार हो

ाथ राकेश

उठी हों। कहाँ दादी का अपना वह अनुभव और कहाँ बच्चों की सरलता! पर दोनों का सहज सामञ्जस्य अनायास ही बन पड़ा है। लयात्मक मङ्गी (rythmical pose) की एकात्मकता तो अन्युत्तम है ही।

उनके काष्ठ-शिल्प के उदाहरणार्थ इस परिचय के साथ 'सर्प-नृत्य' की फोटो प्रतिकृति प्रस्तुत है जिसमें मानो जीवन की समग्र गत्यात्मकता ही जीवंत है। शरीर-रचना में भी सर्पिल गत्यात्मकता की तराश अपनी सीमा में बेजोड़ बन पड़ी है। जीवन का

सर्प-नृत्य

फुटपाथ का शाहजादा

छन्द इस नृत्य में मुखरित है। ... भारतीय-शिल्प-विधान का ध्यान ... ने सभी कला-विधियों में सदैव ...।

'फुट-पाथ का शाहजादा' शीर्षक ... चित्र भी उत्तम है। शीर्षक के अनुरूप ... पृष्ठभूमि भी अंकित है। ... बिफरा चेहरा पर बादराते ... यहाँ वातावरण की प्रभावान्विति ... द्रष्टव्य है। उड़ते हुये ... चुचुदियाँ, हाथ का हुक्का, ... चिथड़ों को बोरे में ठूंस कर ... गयी मसनद, पास के ... सिंहासन-सा परिवेश, ... भाव-मुद्रा और तनु-भंगी—... द्वारा असाधारण विद्रूप अंकित है। ... धनाकांक्षा, विलासिता, ... मनमौजीपन जैसे ... इसमें क्रमशः फूटी पड़ी है!

'झाँसी की आत्मा' तैल-चित्र परम्परा-
ी शैली में है, जिसमें झाँसी की सारी
ह्हासिकता मुखरित है। धावमान अश्व
टाप, अयालों की मुद्रा—वीरांगना
मीबाई का यह रूप पार्श्वस्थ असंख्य
ों की अपेक्षा वर्ण और आकार-
र दोनों में तीव्रतर और व्याप्य
ाया गया है।

फणिदा की प्रत्येक कृति में उनका
ना मुग्ध, सुचिन्तित, आत्मामय दर्शन
ा-सर्वत्र झलकता है।

इस बार उनसे मेरा जो वार्तालाप हुआ,
ो अविकल दे रहा हूँ अब।

"आप अपनी कला में किस वस्तु को
नता देते हैं फणिदा, ?"

"कथ्य या वस्तु (theme) और
भिव्यञ्जन (expression) पर।"

"आधुनिक शैली (Modernistic
hool) को कहाँ तक आप प्रेय या
ा मानते हैं? आलोचकों में से कुछ
आपको
म्परावादी
Classical)
ली में
तते हैं,
ह लोक-
म्परा वादी
Folk);
ौर कुछ
स्टर मोशॉय
ा था यें
दलाल बसु)

की शैली के, क्या यह..."

"आधुनिक शैली मेरे लिये एक माध्यम (medium) मात्र है साध्य नहीं। अतिरंजन (exaggeration) को मैंने प्रायः विरूपीकरण (distortion) की अपेक्षा ज्यादा अपनाया है। प्राच्य (Oriental) शिल्प की प्रतीकात्मकता (Symbotism) को भी मैंने पचाया है। मैं परम्परावादी शैली में पहले दीक्षित था, फिर स्वयं ही लोक-शैली में आ गया। शांति-निकेतन में मास्टर मोशॉय के पास मैं केवल ७ मास रहा था। विशिष्ट प्रभाव मुझ पर लोक-शिल्प और लोक-चित्र-शैली का ही पड़ा है। आप मेरे काष्ठ-शिल्प, प्रस्तर शिल्प, वाश, स्केच, टेम्पेरा, फ्रेस्को, डाइरेक्ट प्लास्टरिंग, स्क्रोल आदि सभी कृतियों में मूलतः यही पायेंगे।"

"भास्कर्य या प्रस्तर-शिल्प में आप प्रभावान्विति (impression) पर ही विशेष जोर क्यों देते हैं? यदि बुरा न मानें तो देवीप्रसाद राय चौधुरी द्वारा सद्यः निर्मित एस्प्लेनेड-चौरङ्गी-मोड़ पर बापू की कांस्य प्रतिमा को कल्पना परिप्रेक्ष्य बनाकर विचार ि

झाँसी की आत्मा

ंगनाथ राकेश

ा २

कर लें !"

"शौक़ से, आपने अंग्रेजी और बंगला दैनिकों में जो पढ़ा है—वह सब किताबी कूड़ा है, देखिये—देवीबाबू में साधना है, वे महान् शिल्पी भी हैं, पर उनकी यह शिल्प-कृति तो बहुत ही लचर है। गान्धी जी कभी अकेले नहीं चले थे ? डाँडी-यात्रा या 'एकला चलो रे' उनका ध्येय भी नहीं था, मिशन भी नहीं। वह तो बहुजनहिताय, बहुजन सुखाय से सर्वोदय के पथिक बने थे। ऐसा ही कोई प्रतीक या चर्खा ही यहाँ ठीक रह सकता था। फिर परम्परावादी और आधुनिक शैलियों की खिचड़ी भी है इसमें। मास्कर्य में वातावरण की प्र... न्विति (impression of envi... ment) सम्भवतः यदि नहीं ... होता तो मास्कर्य केवल ढाँचा म... जाता है। जानें दें इस चर्चा को, ... तो यह जानते ही हैं, मैं केवल शि... हूँ, आलोचक या विद्वान् नहीं..."

बाद में हम लोग भारतीय शिल्प... कला की आज की स्थिति पर कुछ ... करते रहे और फिर मैं चला आया। ... के विषय में फणि दा ने स्वयं कुछ लि... का वायदा किया है।

—रंगनाथ राके...

कम्पोजिटर

शिल्पी : फेन्द्र० ...

क्या जवाब दूँ ?

मैंने चाहा—
मेरे विश्वास सभी के हों,
इसलिए
उन्हें बहुतों तक पहुँचा आया हूं ।
अनुदिन,
सब के घर,
बिना बुलाए जा-जाकर
उन विश्वासों को काफी चमका आया हूं ।
मेरी जो निष्ठा सब दिन रही तुम्हारे प्रति
वह सब को दूँ,
वह सब की हो,
इसलिए आज घर-घर न्यौता दे आया हूँ ।
लेकिन, तुमने
उन विश्वासों की हत्या की,
निष्ठा को गला घोंटकर मारा अभी-अभी,
हे परम मित्र !
यह अब तक की मेरी उपलब्धि अनोखी है,
इस पर मैं कितना गर्व करूँ,
दो तुम्हीं बता !
....
माना, ' मैं, आखिर, यह सब का सब भूलूँगा,
प्रभु से भी कह दूंगा—वह तुम को क्षमा करे,
लेकिन, मैं कैसे भूलूँगा उनको,
जिनको—
विश्वास दिये, निष्ठा देने की बात कही,
मैं सोच रहा हूं —
क्या जवाब दूँगा उनको ?

श्रीहरि

कला के कुछ

पुनर्मिलन
शिल्पी :
धनराज भगत

एक स्केच
शिल्पी :
जैनुल आबेदीन

…उत्कृष्ट नमूने

दोस्त
शिल्पी :
अब्दुर रहमान चुग़ताई

नूरजहाँ
शिल्पी :
अज्ञात
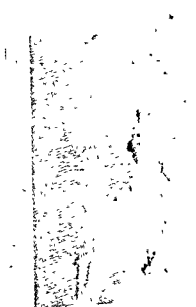
यूरोप की रॉतर्दम नगरी में द्वितीय विश्व युद्ध में हुए विध्वंस के दो स्मारक

मानव

केन्द्रीय बजट
(१६५६–६०)

अवनीन्द्रकुमार
विद्यालंकार

भारत सरकार का बजट भारत की आर्थिक व वित्तीय स्थिति का दर्पण है। भारत 'वर्तमान आर्थिक स्थिति और उसकी भावी गति-विधि के प्रतिबिम्ब इसी में दीख पड़ते । प्रथम सोलहो आने कांग्रेसी वित्तमंत्री श्री० मुरार जी देसाई का प्रथम बजट कई दृष्टियों महत्वपूर्ण भी है; इस ने यथार्थ सत्य और वस्तुस्थिति को स्पष्ट रूप से सामने रखा है। मत से भारत की जनशक्ति में विश्वास, आगे बढ़ने का साहस तथा समाजवादी ढांचे की ापना और वैयक्तिक सम्पत्ति को बढ़ने देने से रोकने का विरोध इस बजट में स्पष्ट लकते हैं। दूसरे मत से, इसमें सिर्फ प्रतिगामी और पूँजीवादी व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलता है। आज की आर्थिक स्थिति में जैसा हो सकता था, यह बजट ठीक वैसा ही । यही कारण है कि 'देसाई-बजट' का न तो जोरों से स्तुतिगान हुआ है, और न एक निन्दा ही।

१६५६-६० के बजट का एक लक्ष्य है। द्वितीय पंचवर्षीय नियोजन को सफल ाना और तीसरे नियोजन के लिए रास्ता साफ करना। वित्त मंत्री ने स्वतः कहा है :

"अब वार्षिक बजट सरकार के वित्त-प्रबन्ध का लेखा-जोखा ही नहीं है; ह इससे कुछ अधिक है। हर बजट देश के लगातार विकास की एक-एक जिल का संकेत है और इस विकास मे उससे जो सहायता मिलती है, उसको खकर ही उसके सम्बन्ध में राय बनाई जानी चाहिए। इसलिए नियोजन को मल में लाने मे हम जिस मंजिल तक पहुच गए हैं, वह मंजिल ही एक तरह इस बजट को उपयोगी बनाती है।...हमे नियोजन अमल में लाने का काम ागे बढ़ाना चाहिए। ..ऐसा करते हुए मैंने उन्हीं बातों को बराबर ध्यान में ा है जो नियोजन को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक और ये बाते हैं—कर लगाकर तथा ऋण लेकर अधिक से अधिक धन टाना, विकास कार्यों के अलावा दूसरे कार्यों पर होने वाले खर्च की बढ़ती र पूरा-पूरा नियंत्रण रखना और विकास कार्य के लिए केन्द्रीय बैंक से कम से म ऋण लेना।"

इस कथन से शायद ही किसी को आपत्ति हो। किन्तु इस के परीक्षण के ... का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

१९५९-६० की आय का विवरण

राजस्व	बजट (१९५८-५९)	अनुवीक्षित (१९५८-५९)	बजट (१९५९-६०)
जकात*	१७०.००	१३९.००	१३०.०० +२.७३
केन्द्रीय उत्पादन शुल्क	३०४.७९	३०१.११	३०७.०० +१८.०८
निगम (कारपोरेशन)कर	५५.५०	५६.००	५८.
आयकर (नियमकर को छोड़कर)	८४.५३	८६.७०	८७
मृत-सम्पत्ति-शुल्क	१२	१२	[illegible]
सम्पत्ति कर	१२.५०	१०.००	१०.५० +२.५०
रेल-किराया आदि	७	११	[illegible]
व्यय कर	३.००	१.००	१.
उपायन (गिफ्ट) कर	२.००	१.२०	१.
अफीम	२.८७	३.३१	३
ब्याज	९.६०	८.३६	१०.
नगर प्रशासन	४४.२४	४५.६३	३१.
चलमुद्रा व टकसाल	३९.६२	३४.७९	५१.
नगर निर्माण कार्य	२.८७	२.८७	३.
राजस्व के अन्य स्रोत	३२.६३	२६.२१	४१.
डाक व तार सामान्य राजस्व में विशुद्ध अंश दान)	२.३४	५.३८	४.
रेल-सामान्य राजस्व में विशुद्ध अंशदान)	७.०४	६.४०	१.
योग-राजस्व	७९७.९९	७२८.२०	७८७.११ +२३.३१

* बजट के कर प्रस्तावों का प्रभाव

१९५९-६० के व्यय का विवरण (लाख रु० में)

व्यय	बजट १९५८-५९	अनुवीक्षित १९५८-५९	बजट १९५९-६०
ाजव से प्रत्यक्ष व्यय	६४.४५	६६.६३	१०१.६५
.	१३	१६	१६
ण-चुकाना	४०,००	४२.०६	५७.८८
.	२००.४४	१९७ ७२	२२२.७३
वि मुद्रा व टकसाल	८.५०	९ १४	९.८३
गर-निर्माण कार्य व विविध ार्वजनिक कार्य	१८.७१	१८ ३२	१९.३५
ानें	९.४०	९.५२	९.६३
विध : विस्थापित	२०.४८	२४.७५	१९.६२
न्य व्यय	५० ३२	५७ ८१	७१.३०
ज्यों को अनुदान	४७.०३	४६.९५	४९ ०२
साधारण मदें	२८ ४०	१५.२१	३५ २६
तिरक्षा सेवाएँ (विशुद्ध)	२७८.१४	२६६ ८७	२४२.६८
ोग-व्यय	७९६.०१	७८८ १५	८३९.१८
) घाटा	(-) २८.०२	(-) ५९.९५	(-) ५८.३२

प्रतिरक्षा व्यय में ३५ करोड़ रु० (१९५७-५८ की अपेक्षा) कमी करने पर भी यह बजट टे का ही है। पहले किए अनुमान से यह दुगुनी ज्यादा है। १९५९-६० में २३.३५ रोड़ रु० के अतिरिक्त कर लगाने पर भी ५८.३२ करोड़ रु० का घाटा बना हुआ है। नी चालू खर्चा भी कागजी मुद्रा के नोट नासिक प्रिंटिंग वर्क्स में ज्यादा छापकर कर्जा लेकर पूरा करना है। प्रतिरक्षा व्यय में ३५ करोड़ रु० कमी करना दूरदर्शिता या नहीं यह विवाद-ग्रस्त है।

प्रतिरक्षा-व्यय में कमी के साथ यदि नागरिक प्रशासन-व्यय में भी कमी होती तो र भी अधिक अच्छा होता। १९४८-४९ में नागरिक प्रशासन का व्यय १.५ करोड़ रु० था। १९५८-५९ में यह १९७२२ करोड़ रु० हुआ और १९५९- ० में २२२.७३ करोड़ रु० से भी अधिक होगा। वेतन-कमीशन की रिपोर्ट के कारण नों में सम्भावित वृद्धि को यदि २५ करोड़ रु० मानलें तो यह राशि २४७.७३ करोड़ रु० जायगी। राज्यों को मिलनेवाला अनुदान (४९.०२ करोड़ रु०) इससे अलग है।

विभिन्न मंत्रालयों में कमचारियों की संख्या (३१ दिसम्बर १९५७ को)

उद्योग व वाणिज्य	९,५६२
शिक्षा व अनुसन्धान	१४,९०९
आडिटर-जनरल का दफ्तर	३०,०००
वित्त	८२,०००
खाद्य व कृषि	१८,२५८
स्वास्थ्य	५,५००
स्वराष्ट्र	१४,३८३
सूचना व प्रसार	८,२६२
सिंचाई व बिजली	१०,०४८
पुनर्वासन	६,७०५
परिवहन व संचार	२,१८,०००
निर्माण आवास व पूर्ति	३९,४११
प्रतिरक्षा (नागरिक विभाग)	२,७०,०००

समाजवादी कल्याण राज्य की स्थापना हमारे राष्ट्र का लक्ष्य है, किन्तु य
केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों का वेतन-प्रमाण देखा जाय तो वह इस लक्ष्य के ह
विपरीत है। ५५रु० से ३०० रु० मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों की संख्या
सरकारी कर्मचारियों में ९८.३ प्रतिशत है, किन्तु इनका कुल वेतन ८६.५ प्र
होता है और शेष १.७ प्रतिशत १३.५ प्रतिशत वेतन पाते हैं। इस तरह केन्द्रे
प्रशासन का व्यय दो सालों में ९१ करोड़ रु० बढ़ना कहां तक उचित है!

अब भी अधिक नहीं है क्या ?

द्वितीय पंचवर्षीय नियोजन का व्यय-लक्ष्य ४८०० करोड़ रु० से घटकर ४५
करोड़ रु० हो गया है। लेकिन सरकारी इरादा यही है कि मूल व्यय-लक्ष्य कायम
नियोजन-परिव्यय पर एक नजर डालिए।

नियोजन परिव्यय (करोड़ रु० में)

	केन्द्र	राज्य	योग
प्रथम वर्ष १९५६-५७	३४२	२९७	६३९
द्वितीय वर्ष १९५७-५८	५००	३४६	८४६
तृतीय वर्ष १९५८-५९	५६२	३९९	६८१
तीन साल का योग	१,४०४	१,०४२	२,४६६

चतुर्थ वर्ष १९५९-६०   ८४३   १,१२१
पंचम वर्ष १९६०-६१ (शेष)   ९२९

नियोजन-परिव्यय प्रतिवर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। अतः अनुमान है कि नियोजन के पाँचवें साल में नियोजन परिव्यय ९२९ करोड़ रु० नहीं बल्कि १,२२९ करोड़ रु० होगा, और इस प्रकार आरम्भ में घोषित ४,८०० करोड़ रु० के ही लक्ष्य को पूरा किया जायगा। नियोजन का 'ख'भाग (३०० करोड़ रु०) यद्यपि इस समय स्थगित है, किन्तु सरकार का संकल्प उस लक्ष्य को पूरा करना ही है अन्यथा घाटे की वित्तीय व्यवस्था को अधिकाधिक मात्रा में अपनाने की बात नहीं कही जाती। लेकिन विशेषज्ञों की दृष्टि से ४,५०० करोड़ रु० का नियोजन लक्ष्य वर्तमान भारतीय जनता के बूते से बाहर है। विकास योजनाओं को सफल बनाने के लिए राष्ट्रीय आय का ४ से ७, और अब १०-११ प्रतिशत व्यय हो रहा है। एक औद्योगिक देश के लिए यह उचित हो सकता है, लेकिन भारत जैसे देश के लिए, जिसकी ७० प्रतिशत जन संख्या येन-केन-प्रकारेण अपनी जिन्दगी की गाड़ी धक्का दे-देकर आगे बढ़ा रही है, १०-११ प्रतिशत खर्च करना एक असह्य भार है।

इधर कीमतें बराबर बढ़ रही हैं दूसरे नियोजन के पहले तीन वर्षों में ही कीमतें १५ प्रतिशत और जीवन निर्वाह का व्यय ११ प्रतिशत बढ़े हैं। और यदि खाद्य व कृषि मंत्रालय का फसल के बारे में अन्दाज़ ठीक भी निकला तब भी खाद्य पदार्थों की कीमतें ऊँची ही जाएंगी, कारण जनसंख्या में २५ लाख से भी ज्यादा वृद्धि के कारण प्रति वर्ष दस लाख टन अन्न-धान्य की मांग बढ़ जाती है। अतः १९५८-५९ में ७०० लाख टन पैदावार होने पर भी संकटपूर्ण स्थिति ही बनी रहेगी जब तक कि आबादी की बढ़वार काफी हद तक न रोकी जाय।

१९५६ में १४ लाख टन अन्न धान्य विदेशों से आया और १९५७ में ३५ लाख टन। शायद इसीलिए मंत्रियों के बराबर आश्वासन देने और खरीफ़ की फसल आने पर भी थोक भावों में विशेष अन्तर नहीं आया। पंजाब में सस्ती दूकानों के आगे पंक्ति में खड़े-खड़े एक लड़का मर गया और एक व्यक्ति तीन दिन तक लगातार पंक्ति में खड़े होकर भी आटा नहीं पा सका। सस्ते अनाज की ४,८०० दूकानों के लायक भी सरकारी गोदामों में अन्न-धान्य जमा नहीं है। प्रति एकड़ उत्पादन भी नहीं बढ़ा है। मद्रास में १९५८-५९ में चावल ६७,००० टन हुआ, जबकि उसका निर्धारित लक्ष्य २२,००० टन था। सत्य यह है कि १९५३-५४ में प्रति व्यक्ति को जितना अन्न खाने को मिलता था आज उतना भी नहीं मिल रहा है। इस अवस्था में यदि सरकार ने इस साल की उपज से ३०[illegible] टन अन्न-धान्य ही संचय किया, जैसा उसका विचार है, तो स्थिति और भी अधिक [illegible] जायगी। खाद्य व कृषि मंत्री को १९५९-६० में बर्मा का चावल ही नहीं अपितु [illegible] से भी अन्न-धान्य आयात करना पड़ेगा और इसमें विदेशी-मुद्रा काफी खर्च हो

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

इसीलिए, भारतीय आर्थिक-व्यवस्था की आधार-रूपा कृषि में विशेष रीक्स है, सहकारी खेती-बारी पर जोर दिया जा रहा है। किन्तु इसकी सफलता अभी दृष्टि के गर्भ में है।

औद्योगिक उत्पादन

१९५७ से औद्योगिक उत्पादन की गति भी धीमी पड़ी है। औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक इस प्रकार रहा :

आधार वर्ष	(१९५१=१००)	
		प्रतिशत वृद्धि
१९५५	१२२.४	८%
१९५६	१३२.६	८%
१९५७	१३७.३	३.६%
१९५८ (अक्टूबर तक)	१४१.२	४%

कपड़े और जूट का उत्पादन भी घट गया है। १९५८ में कोयला, सिमेंट, डिज़ल इंजिन, इलेक्ट्रिक मोटर, मैशीन कल-पुर्ज़े, गन्धकाम्ल, बाईसिकल, और सीने की मशीन, इन उद्योगों का उत्पादन ही आशानुकूल बढ़ा है। किन्तु १९५८ में चीनी, वनस्पति, कपड़ा, इलेक्ट्रिक लैम्प, पावर ट्रांसफार्मर और मोटरों का उत्पादन घटा है। उत्पादन घटने का कारण यदि उपभोक्ताओं की माँग में कमी है तो क्या यह सोच-विचार की बात नहीं है?

हमारी विकासशील आर्थिक व्यवस्था का हमारे आयात पर भी प्रभाव पड़ा है :

	करोड़ रुपयों में		
	आयात	निजी आयात का भाग	पूँजी मान सरकारी खाते में
१९५५-५६	३२६.२	२२३.४	६६.८
१९५६-५७	३१९.०	२११.०	११८.२
१९५७-५८	३६६.०	३०४.९	११२.२
१९५८-५९	२६७.८	७८.२	१२३.०

(पहले ६ मासों में)

स्पष्ट है कि आयात-वृद्धि का कारण राष्ट्रीय उद्योग हैं और निजी उद्योग की तुलना में राष्ट्रीय क्षेत्र के उद्योगों का क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है। इस स्थिति में यदि १९५८-५९ के बजट का आनुमानिक घाटा २०० करोड़ रु० की जगह २४८ करोड़ हो गया और १९५९-६० में २२५ करोड़ रु० का घाटा होने का अनुमान हो तो क्या आश्चर्य!

दूसरे नियोजन-काल की आबादी में ६०० करोड़ रु० का कर-भार बढ़ाया जा चुका ।। इस साल भी २३.३५ करोड़ रु० का और निर्धारित कर-भार बढ़ाया गया है, और ह आनुमानिक राजस्व घाटे का २५.५ प्रतिशत है। नियोजन कमीशन की योजना के नुसार ४५० करोड़ रु० का और नया अतिरिक्त भार डालना चाहिए था। लेकिन इस वधि में अभी तक ६५० करोड़ रु० का कर-भार डाला गया है और यह निर्धारित लक्ष्य । १०० करोड़ रु० अधिक है। इस साल और नया कर नहीं लगाया जायगा, यह विश्वास ः साथ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वित्तमंत्री ने कहा है, 'वर्ष के भीतर वे देखेंगे कि भी वंचित उपायों द्वारा घाटा कैसे कम किया जा सकता है।'

कम्पनियों पर सम्पत्ति-कर लगाने का प्रस्ताव तो प्रो० काल्डर ने भी नहीं किया ा। यह वस्तुतः बचत पर कर था और उस राशि पर कर था, जो उत्पादन में लगती ी। यह सिद्धान्ततः और व्यवहारतः दोनों दृष्टियों से ठीक नहीं था। श्री देसाई ने यावहारिक कठिनाई के कारण इस को हटाया है। लेकिन इस को पूँजीपतियों के प्रति रियायत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वैयक्तिक सम्पत्ति पर कर की दर बढ़ा दी है, और यय-कर से उन्मुक्त राशि घटा दी है और व्यय-कर लगाने के लिए व्यक्ति को नहीं रिवार को एकक यूनिट माना गया है।

आरक्षित रकम सरकार के यहाँ बाधित रूप से जमा करायी जाय, इस कानून का अब विधा अन्तकर दिया गया है। पूँजी बनी आरक्षित रकम पर कर भविष्य में लगेगा। किन्तु ह कर समझ में न आनेवाला है, क्योंकि लाभ का जो अंश आरक्षित में डाला जाता है, स पर कर पहले लिया जा चुका है। उस पूँजी बने आरक्षित पर कर लगाना एक ही स्तु पर दो बार कर लगाने के समान है। इसको हटाने के बदले वित्त मंत्री ने कहा है के यदि इसे 'प्रीमियम' पूँजी खाते में रखा जायगा तो उसका ३० प्रतिशत ही सरकार गी। बोनस शेयर पर कर की दर श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने १२½ प्रतिशत से बढ़ा कर ।० प्रतिशत कर दी थी। यह पहले से न लग कर अब अगले साल १९६०-६१ में ागू होगा।

निम्न श्रेणी या दूसरे दर्जे के सम्पत्तिशालियों और धनियों पर वित्तमंत्री कम पालु हैं। सम्पत्ति-कर के उच्च खण्ड में वृद्धि ३३⅓ प्रतिशत की गई है, लेकिन निम्नतम खण्ड में लगभग १०० प्रतिशत और मध्यम खण्ड में ५० प्रतिशत की गई है। कहना न ोगा कि समता स्थापित करने और विषमता दूर करने के विचार से भी इसमें उलटा ोना चाहिए था।

खाण्डसारी चीनी के भी दो विभाग किए गए हैं। मशीनों से बनी खाण्ड-आरी चीनी पर उत्पादन-शुल्क लगा है, देशी खाण्डसारी चीनी पर नहीं। इससे

मिलों की चीनी से खाण्डसारी चीनी के दामों में केवल ८ आने का अन्तर रह जायगा। अतः गन्ना अब मिलों को अधिक मिलेगा और चीनी का उत्पादन बढ़ने से सरकार की आमदनी भी बढ़ेगी।

लेकिन डिजल आयल पर कर लगाने से न केवल सड़क-प्रतियोगिता से रेलवे की रक्षा ही हुई है बल्कि रोजगार के एक साधन पर कड़ा प्रहार भी हुआ है। पथ परिवहन पर दुनिया भर में भारत में सबसे अधिक कर है। सेवाओं को और मँहगा बनाने से लागत का मूल्य बढ़ेगा। वनस्पति तेलों पर कर बढ़ाने का भी यही प्रभाव पड़ेगा। आश्चर्य यह है कि पके खाद्यपदार्थों (जिनमें नमक भी होता है) अन्न, वस्त्र, तेल, जीवनोपयोगी हर चीज पर कर लगा है, लेकिन नमक पर कर नहीं। नमक कर सरकार को प्रतिवर्ष १० करोड़ रु० मिल सकते हैं और दुबारा लागू न करने की कोई खास वजह नहीं दिखाई देती। स्टेनलेस स्टील के बर्तन चीनी माटी के बर्तन आदि शायद इस क्षेत्र में आ जाते किन्तु वित्त मंत्री ने खाण्डसारी चीनी तक का क्षेत्र पार करना ही बहुत समझा।

पूंजीगत परिव्यय

नियोजन के प्रारम्भ से ही, १९५०-५१ से लेकर १९५५-५६ तक, विभिन्न साधनों और उपायों जैसे विदेशी सहायता अनुदान, कर्ज, बचत, आदि द्वारा पूंजी का निर्माण ९८.५ करोड़ रु० से ४३१.२ करोड़ रु० हुआ और १९५७-५८ में ७२३.२ करोड़ रु० (अनुवीक्षित अनुमान) और १९५८-५९ में ७९०.६ (बजट अनुमान) करोड़ रु० हुआ। इसका अर्थ यह है कि नौ साल में ही पूंजी-निर्माण प्रति वर्ष अठगुना होने लगा है। सरकार की यह सफलता उल्लेखनीय है।

राजस्व और पूंजीगत बजट का घाटा १९५८-५९ में २२५ करोड़ रु० और १९५९-६० में २२२ करोड़ रु० रहता है। सरकार का इरादा इस वर्ष विकास के कार्यों पर ८४३ करोड़ रु० खर्च करने का है। इसमें से १५० करोड़ रुपया राजस्व बजट से आयेगा और ६९३ करोड़ पूंजी बजट से। इसमें से राज्यों को ६३ करोड़ रु० (राजस्व) और १९५ करोड़ (पूंजीगत) सहायता के रूप में दिया जायगा। इसके अतिरिक्त रेलें अपने साधनों से ३९ करोड़ रुपया खर्च करेगी और राज्य २३९ करोड़ रु०। सबको मिलाकर ११२१ करोड़ रु० होता है। अतः १९६०-६१ के लिए ९१३ करोड़ रु० रखा जायगा, यदि नियोजन परिव्यय का लक्ष्य ४,५०० करोड़ से बढ़ा कर ४,८०० करोड़ नहीं किया गया। औद्योगिक विकास में इसका एक बड़ा भाग किस मात्रा में लगा है, यह नीचे देखिए।

औद्योगिक विकास में व्यय (करोड़ रु० मे)

	१९५८-५९	१९५९-६०
अणुशक्ति प्रतिष्ठान	२.४४	४.२२
…ानज फर्टि०एण्ड केमि० लि० के शेयर	४.७५	६
…वी इलेक्ट्रिकल लि०	५	७
हिन्दुस्तान हैवी इंजी० कार्पोरेशन के शेयर	०.६	१.३५
हिन्दुस्तान स्टील लि० शेयर	१४४.२	—
…ल अनुसंधान योजना	१.९६	३.२६
…ायल इण्डिया प्राइवेट लि०	४	२
…विले लिगनाइट कार्पोरेशन	६.४८	१३.०
…र्न शिपिंग कार्पोरेशन	०.९०	१.९५
…र्न शिपिंग कार्पोरेशन	२.२५	१.६०
…यर इण्डिया इण्टरनेशनल	२.८३	२.८८
…यर लाइन कार्पोरेशन	०.८०	३.६७

इसके अतिरिक्त भी सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएँ हैं, जिनको इसमें से कर्ज देया जाता है और दिया जायगा, जैसे खादी व ग्राम उद्योग को १९५८-५९ में ७.१२ करोड़ रु० कर्ज दिया गया था और १९५९-६० में ७.३३ करोड़ रु० मिलेगा और …ाता आयरन और इण्डियन आयरन कं० को २ करोड़ रु० मिलेगा।

राष्ट्रिय ऋण

भारत का राष्ट्रिय ऋण १९३८-३९ में ९५० करोड़ रु० था। अब यह १९५८-५९ …ं ४,०१७ करोड़ रु० और १९५९-६० में ४,८२१ करोड़ रु० हो जायगा। यह कर्ज …पए और विदेशी मुद्रा दो रूपों में है, इसका ब्यौरा इस प्रकार है।

ऋण का ब्यौरा (करोड़ रु० मे)

	१९५८-५९	१९५९-६०
…पयों का कर्ज	३,६७५	४,२३९
विदेशी मुद्राओं का कर्ज	३९१	६६२
योग	४,०६६	४,८०१

विगत दो साल में ही भारत पर विदेशी कर्ज २९० करोड़ रु० बढ़ गया है। पर किस-किस देश का कर्ज है यह भी नीचे देखिए :

विदेशों का कर्ज (करोड़ रु० में)

	१९५८-५९	१९५९-६०
स्टर्लिंग ऋण	२१.४४	९२.०६
अमेरिकी डालर ऋण	२४६.००	४१२.२१
कनाडा डालर ऋण	२१.७१	११.७१
सोवियत रूस	४०.८६	६१.३४
पश्चिमी जर्मनी	३१.७१	६४.६६
जापान	१.००	१२.७६
योग	३६०.७२	६६१.७२

भारत सरकार पर रुपया-ऋण (करोड़ रु० में)

	१९५८-५९	१९५९-६०
चालू कर्ज	१२७५.२	११३१.
विदेश कर्ज	२०४.४	२६६.२
अवधि समाप्त कर्ज	१२.१	१६.८
योग	१४९१.६	१८४७.१

इस के अतिरिक्त भविष्य-निधि (प्रोवीडेण्ट फण्ड), तरह-तरह की बचत निधि आदि भी भारत सरकार पर कर्ज मानी जाती हैं। इन सब को मिलाकर राष्ट्रीय ऋण की स्थिति इस प्रकार है :—

	३१-३-१९५९ को (करोड़ रु० में)	३१-३-१९६० को
नियमित कर्ज	४०११.८२	४८२१.२१
अन्य देय	११३३.६७	१२२७.११
विविध-शुद्ध-ऋण	—२०.६२	—२०.६२
योग	११८०.१७	६०३३.२०

भारत की यह है आर्थिक स्थिति। इस संकट को जान कर तीसरी पंचवर्षीय [illegible] का लक्ष्य बहुत ऊंचा रखना, वह भी विदेशियों की सहायता के भरोसे, क्या [illegible]

गीत

फागुन बीत गया अब दरसो, ओ निंदिया के बैरी !
अँधियारी उजियारी गिन-गिन कब से द्वार खड़ी हूँ !

कली-कली को किरण गुदगुदी देकर चली गई रे ।
ओढ़ न पाई शरमीली मैं, चुनरी धरी नई रे ।
की मनुहार बयरिया से, मन तोड़ गई मुँह झौंसी,
सब के जी की हुई, एक मैं बेबस छली गई रे ।

गैल गैल सब लगे उदसिया, पनघट रीता छूँछा,
दीठ ननदिया के तानों से अब तो हार खड़ी हूँ !

गड़ी कील-सी आज हिये में फगनौटी की रातें ।
मस्तायी-सी देख चाँदनी, पोर-पोर दुख जाते ।
आँगन-आँगन तरुनाई के महकी थी अमरइया—
गाल, गुलाल हुए बिन रह जाते क्या, जो तुम आते !

पथ पर उड़ती धूल देखकर छिन भर को भरमाती ।
एक बार फिर झूठ परखने को हुशियार खड़ी हूँ !

नारायणलाल परमार

सवेरा होते ही समोसेवाला फाड़-फाड़कर चिल्लाया, गरम, गरमा-गरम, गरमा-गरम-चाय। सर्दी

सत्यवादी हरिश्चन्द्र
बीसवीं सर्दी में

★ शान्ति मेहरोत्रा ★

कल के बजाय
ही हों किन्तु
इससे कौन
कर सकना
बनेवाला एक
महिला के लि
मर अकेली
यह विशाल
लगा कि रात
एक बड़ी रेला
हटाने के
में अकेली बन
बाकी सब
हैं, मिठाई
लगाते हैं। ह
ने टूटे कटि
फंसाकर मन
जगह सिर्फ
कोयला तेज
ऊपर से वह
जताया कि
दो सेर
अधिक जाने
है। दूधवाले
की नजर
थोड़ा सा
ही तो दिया। कोई कब रोक पाता।

हरीश ने बरामदे में बैठ अखबार
पलटा। फिर उसे तहाकर रखते हुए

; ओ शुभा।'
भीतर से उत्तर आया—
'जी आई, दूध उबलनेवाला है, उतारकर रख दूँ तो आऊँ।'
फिर थोड़ी ही देर बाद एक ख भोली-सी युवती आंचल से पोंछती हुई आई और बोली—
'हां। अब कहिये, क्या है?'
'जरा शेविंग का सामान उठा।'
'खूब! पहले ही कह दिया । तो मैं लेती हुई आती।'
'इस तरह आपके दो बार दर्शन ये, यही क्या कम सौभाग्य है। यह है कि आपने तो अभी तक सेवा का कोई अवसर दिया। फिर मैं कैसे सुबह-सुबह कष्ट का साहस कर सकता था?'
'झूठ बोलना तो कोई आपसे न ले,' शुभा ने हँसकर कहा।
'अरे राम का नाम लो। झूठ ना तो मैंने कल से सचमुच दिया। अब तो वही कहूँगा सच मानूँगा। कल जब हमारी ा-देखी बच्चों ने भी बहाने बनाने कोशिश की तो मुझे बहुत दुख ा। येही दिन तो हैं जब हम ! किसी हद तक अपने बनाये वे में ढाल सकते हैं।'
'आपकी माया निराली है। तो किसी बात पर ध्यान ही

ान्ति मेहरोत्रा

नहीं देंगे या फिर उस पर ऐसी गंभीरता से चिपकेंगे कि देखनेवाले भी देखते ही रह जायें। अब तो हमें भी सत्यवादी हरिश्चन्द्र जी से डरकर रहना चाहिये। है न ?'

'ऐसा हो तो फिर क्या कहने। किसी तरह आप हमसे डरकर रहें यह क्या कम लाभ है ?—आज कुछ चाय-वाय का सिलसिला नहीं दिखाई दे रहा है ?'

'वही तो कर रही थी कि बीच में आपने पुकार लिया। पानी चढ़ाकर आई हूँ। जल्दी बताइए कि नाश्ता क्या बनेगा, तो मैं चलूँ।'

'अगर वैसे चॉप बना दो जैसे मिसेज चोपड़ा ने बनाकर खिलाये थे तो मजा आ जाय।'

'अच्छी बात है। मैं गर्म पानी और बाक़ी सब सामान भिजवाये दे रही हूँ। लेकिन यह झंझट जल्दी निबटायें, वरना चॉप ठंडे हो जायेंगे।' शुभा चली गई और मँझले लड़के के हाथ शेविंग का सामान बाहर भिजवा दिया।

हरीश ने मेज सीधी की; शीशे का एंगिल ठीक किया ही था कि उसके पड़ोसी चोपड़ा जी टहलते हुए इधर आ निकले—

'मैंने कहा हरीशचन्द्र जी, क्या हो रहा है ?'

'आइये, आइये चोपड़ा जी, नमस्कार। ज़रा धूप खा रहा हूँ और इस मुसीबत को झेलने की तैयारी कर रहा हूँ।'

'बहुत अच्छे! आप धूप खा रहे हैं, हम हवा खा रहे हैं! सुबह-सुबह नाश्ते-पानी का खर्चा बचा!' चोपड़ा जी हँसे; जैसे कोई मजाक किया हो।

'और कहिये क्या हाल-चाल [illegible]' हरीश ने पूछा।

चोपड़ा जी ने ठंडी साँस भरी—

'हाल क्या पूछते हो, यार। [illegible] यह कम्बख्त आखिरी हफ्ता [illegible] कटता। सोचता हूँ कहीं से [illegible] उधार मिल जाते तो किसी तरह [illegible] चलता।'

हरीश घबड़ाया कि चोपड़ा ने [illegible] की भूमिका बांधी है; बस अब [illegible] उसने बात बदलते हुए कहा—

'सो तो हुई। दफ्तर में कैसी [illegible] है ? दिसम्बर में तो आपके यहाँ [illegible] बड़ी धूम रहती है।'

'हां भई। रोज रात में [illegible] बजते हैं। तिस पर थके-हारे घर [illegible] पास इतना भी नहीं कि चार [illegible] मँगवा सकें। बड़ी मुश्किल है। तुम्[illegible] दस रुपये होंगे ?'

हरीश पसोपेश में पड़ गया। [illegible] कहना चाहता था लेकिन तब [illegible] प्रतिज्ञा याद आगयी। कहा, 'भई, [illegible] है कि…रुपये तो थोड़े-बहुत हैं [illegible]

'लेकिन क्या। हैं तो दे दो। [illegible] की शाम को ही वापस मिल जायेंगे।' [illegible] ने तपाक से कहा।

हरीश को सच बोलने पर [illegible] हट हुई; लेकिन अब तो तीर छूट [illegible] विवश होकर कहना पड़ा, 'भाई चो[illegible] यों तो आप अपने ही हैं इसलिये [illegible] की कोई बात नहीं। लेकिन अब [illegible]

आपने रुपये उधार लिये हैं, कभी कानी- मी वापस नहीं की। आज आप करने की बात कह रहे हैं, पर पैसा में आते ही सब भूल जायेंगे। इसलिए मैं इस चक्कर में नहीं फँसना चाहता।'

चोपड़ा जी अवाक् रह गये। समझ पाये कि इस कटु सत्य का क्या जवाब आवेश के कारण वे हकलाते-हकलाते लगे, 'बस, बहुत हो गया हरीश बाबू। तो ऐसी बातें बना रहे हैं जैसे आप बड़े धन्नासेठ हों और मैं आपका ग़रीब दार! लानत है उस पर जो कभी कानी कौड़ी भी माँगने आये। समझ कर कह दिया था नहीं तो दस की बिसात ही क्या? इतना तो -दीवाली में अपने नौकरों को इनाम ता हूँ।...आज से कभी आपके घर रक्खूँ तो कहियेगा...।"

'अब यह तो आपकी इच्छा है। मैंने कहा है। आप बुरा मान गये, यह दुर्भाग्य है...।'

चोपड़ा जी दनदनाते हुए लौट गए।

कुछ ही देर बाद नन्हे राजीव ने आकर 'पापा, मम्मी कह रही हैं चाय ठंडी ही है। जल्दी आइये।' हरीश खिन्न से भीतर चला गया। पहुँचते ही शुभा उलाहना दिया, 'आखिर वही बात न। चाय, चॉप-सब ठंडे हो रहे हैं न आपको पता ही नहीं।'

'ज़रा चटनी की बोतल उठा दो—अरे बस! दूध ज़्यादा मत डालो। दो-चम्मचों में कौन सेहत बन जायगी।' हरीश ने कुर्सी खींचते हुए पत्नी से कहा।

'यह साड़ी कैसी लगी आपको? नयी से नयी चीज़ पहनो लेकिन क्या मजाल जो आप अपनी ओर से कभी तारीफ़ कर दें।'

'साड़ी अच्छी है लेकिन तुम अपने लिये हल्के रंग के कपड़े बनवाया करो। चटख़ रंग साँवले रंग पर खिलता नहीं है।'

शुभा के दिल पर गहरी चोट लगी। बड़ी साध से उसने किसी तरह समय निकालकर जल्दी जल्दी वह साड़ी बदली थी। उसने उदास होकर कहा—

'इतना उदार होने की क्या ज़रूरत है। साफ साफ़ कहिये कि काले रंग पर चटख़ रंग के कपड़े नहीं खिलते। सच तो यह है कि जब आदमी मन से उतर जाता है तो असुन्दर लगने लगता है। पाँच साल पहले आपने ही नीले रंग की साड़ी लाकर दी थी और मेरे पहनने पर कहा था कि इसमें तुम चाँद-सी सुन्दर लगती हो ·· ख़ैर! मेरी क़िस्मत।'

'चॉप बहुत ही बढ़िया बने हैं,' हरीश ने समझौते का प्रयास किया।

'सवेरे-सवेरे बाहर किससे झकझक हो रही थी?' शुभा ने चाय पीते हुए पूछा।

'वही चोपड़ा जी थे। पूछने लगे दस रुपये हैं? मैंने कहा, हैं तो ···'

शुभा चिढ़ गई। बात काटकर बोली, 'क्यों नहीं। उनके लिये क्या कमी है। मैं माँगती तो हज़ार बहाने मिल जाते!'

'अरे भई सुनो तो! बिना पूरी बात···'

'पूरी बात सुनकर क्या करूँगी।

नन्हीं बच्ची नहीं हूँ जो समझती न होऊँ। ऐसी ही साड़ी मिसेज चोपड़ा पहने थीं तो आपने कहा था कि बड़ी स्टाइलिश है; वही मैंने पहनली तो बुरी हो गई। मैं एक-से-एक बढ़िया हजार चीजें बनाकर खिलाती रहती हूँ लेकिन आपने आज ही कहा कि वैसे ही चॉप बनाओ जैसे मिसेज चोपड़ा ने खिलाये थे। मेरे हाथ की बनी चीज में वह मिठास तो आने से रही।'

हरीश भी बिगड़ा,

'चुप भी रहो न अब। कैसी बेवकूफी की बातें करती हो? कहो तो मैं कुछ भी बोलना ही बन्द कर दूं?'

'न बोलिये, आपकी मर्जी। हम हैं ही किस लायक? हम तो आपके लिये उसी दिन दो कौड़ी के हो गये जिस दिन हमारे माँ-बाप ने हमें इस घर में ढकेल दिया।'

'ठीक है। जो मन में आये, बकती रहो। मैं तो ऊपर जा रहा हूँ।'

हरीश की इच्छा हो रही थी कि कुछ देर कहीं एकान्त में जा बैठे लेकिन घर में जगह इतनी कम थी कि एकान्त का सुख कल्पना से परे था। ऊपर जाकर देखा कि उसके पिताजी कापी खोले बड़े मुग्ध भाव से कोई भजन गुनगुना रहे हैं। उसे देखकर वे और भी प्रसन्न हुए। भजन बीच ही में रुक गया।

'आओ बेटा। चाय पी चुके?'

'जी हां।'

'मैंने तो ऊपर ही मंगवा ली थी। आलू की टिकिया बहुत बढ़िया बनी थी... असल में बहू हमारी है बड़ी सुघड़। साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी।'

हरीश को इस वक्त सुभा की यह प्र[illegible] अच्छी नहीं लगी। वह कपड़े सुखाने लिये बँधी रस्सी को कसने लगा।

'बेटा, वह भजन जो कल तुम्हें [illegible] था, पूरा हो गया। कहाँ छपने भेजें[illegible]

हरीश असमंजस में पड़ गया।[illegible] उत्तर दे, यह सोच न पाने के कारण अपने पिता जयराम जी का मुँह दे[illegible] रहा। जयरामजी ने गले में पड़ा म[illegible] ठीक किया, ऊनी कुरते की बाहें [illegible] कीं और मुस्कराकर बोले—

'याद नहीं रहा क्या? लो, सुनाये देता हूँ।'

फौरन जयरामजी ने झूम-झूमकर [illegible] वही भजन गाकर सुना डाला।

'पिताजी, भजन तो अच्छ[illegible] लेकिन...लेकिन एक तो इसे आजक[illegible] कोई पत्रिका शायद ही प्रकाशित करे।[illegible] ऐसा लगता है, जैसे मीरा की इस प[illegible] तरह छाप हो। लोग पढ़ेंगे तो यही क[illegible]

जयराम जी को यह आलोचना [illegible] नहीं लगी।

'वाह बेटा! हद करते हो। [illegible] मैंने इतने भक्ति-रस में डूबकर [illegible] कि दूसरे किसी की भी छाप तो इस[illegible] हो नहीं सकती।'

'नहीं, पिता जी। छाप क्या, [illegible] आधे से अधिक शब्द भी ज्यों के त्यों [illegible] के हैं। घर में गाने के लिये [illegible] गीत है, लेकिन प्रकाशन के लिये...'

'हुंह। यह सहज सात्विक भा[illegible]

ता; वे सब चांद-चकोर और
'वाली कविताएँ छप सकती हैं
म्हारी पत्रिकायें पटी रहती हैं?
वक बने हो। ऐसी एक लाइन
दिखा दो तो जानूँ।'
चाहें तो कहीं भेजकर देख लें।
हर है कि 'संपादक के अभिवादन
सहित' वापसी डाक से लौट
,

हाँ। भेजेंगे नहीं तो क्या तुम्हारे
रेंगे? आजकल के लड़के बड़े-
ो कुछ गिनते ही नहीं। आप
लेखक हैं। हम तो जैसे अब तक
ाते रहे!'

ा ने सफाई देनी चाही—
ा जी, आप तो बुरा मान गये।
जकल के सम्पादकों की पसन्द
कह रहा था।'
न जयरामजी के लिये अब
ना दूभर हो गया। इतना कह-
ठीक है। वह सब हम भी खूब
। नादान नहीं हैं.।' वे नीचे
।

श को पिता के इस तरह खिन्न हो
काफी दुःख हुआ। सुबह न जाने
मुँह देखकर उठा था कि जो
ाया वही नाराज। वह कुछ देर
ता रहा। फिर देर होती देख
ल्दी तैयार हुआ, दो-चार कौर
ते खाये और दफ्तर चला गया।
पहुँचे कुछ ही देर हुई थी कि
ने आकर धीरे से कहा—

'आपको बड़े साहब याद फर्मा रहे हैं।'

सुनते ही हरीश को पसीना आ गया क्योंकि अक्सर उनका यह याद फर्माना लोगों को डाँटने-फटकारने के लिये ही होता था। कमरे में पहुँचते ही उसने बड़े साहब, यानी वर्मा साहब को मुस्कराते हुए झुककर नमस्कार किया। मुस्कान "हुजूर, माई-बाप" मार्का थी। वर्मा साहब ने सिर को जरा-सा हिला भर दिया। उनके चेहरे पर असंतोष साकार था। बड़ी बेरुखाई के साथ वर्मा साहब बोले, 'बैठिए।'

हरीश ने सहमते हुए आज्ञा-पालन किया।

'देखिये मिस्टर हरीश, इस जरूरी पत्र का उत्तर कई दिन पहले चला जाना चाहिए था। मुझे बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि आप बहुत लापरवाह होते जा रहे हैं और काम में पहले जैसी दिलचस्पी नहीं लेते।'

'लेकिन साहब, इस सम्बन्ध में दो एक बातों पर आपका परामर्श अनिवार्य था इसीलिये पत्र पाने के दूसरे दिन ही मैंने आपके यहाँ भेज दिया था। यह देखिए, मेरे नोट के नीचे तिथि पड़ी है।'

'आपका मतलब यह है कि गलती आपकी नहीं, मेरी है! क्यों?' वर्मा साहब गुर्राये।

'जी नहीं, मैं तो सिर्फ यही कह रहा था कि अगर यह जल्दी ही पता चल जाता कि इस सम्बन्ध में क्या करना है तो मैं फौरन जवाब लिख भेजता।'

'साफ कहिए न कि आप बड़े कर्मठ हैं

और सिर्फ मेरी सुस्ती के कारण ही बहुत से काम पड़े रह जाते हैं…एक तो आप ग़लती करते हैं, ऊपर से उसको कबूल नहीं करना चाहते। क्या खूब है!'

'किन्तु साहब, मैं तो "आवश्यक" लिखकर यह काग़ज स्वयं आपकी ट्रे में छोड़ गया था। आप किसी दूसरे कार्य में व्यस्त थे…।'

'मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहता। आपको फिर इस बारे में पूछ-ताछ करनी चाहिये थी।'

'जी, तीन दिन पहले भी मैंने याद दिलायी थी…'

'उससे क्या। इतनी ज़िम्मेदारियों के रहते मैं इन छोटे-छोटे पुर्जों का कहाँ तक ध्यान रख सकता हूँ? अब से अपने नोट में यह भी जोड़ दिया करिए कि आप क्या कार्यवाही उचित समझते हैं जिससे मैं अगर सहमत होऊँ तो ठीक है लिखकर तुरन्त वापस भेज दूँ। आप लोग तो सारा काम मुझी पर झोंककर निश्चिन्त हो जाते हैं।'

'जी, भविष्यमें ध्यान रक्खूँगा।' हरीश ने क्षमा-याचना के भाव से कहा।

'हूँ।' वर्मा साहब ने ट्रे से दूसरा काग़ज उठा लिया। हरीश दो-तीन मिनट प्रतीक्षा करने के बाद वापस जाने के लिये उठा।

'ठहरिये। आपने पांच दिन की छुट्टी के लिये प्रार्थना-पत्र भेजा है; क्या कोई ख़ास काम है?'

'जी, कोई विशेष काम तो नहीं, लेकिन…'

'जब ख़ास काम नहीं है तो छुट्टी लेनेकी क्या ज़रूरत है! आप, घर बैठे क्या करेंगे!'

"जी, मैंने सोचा कि दिसम्बर हो रहा है; छुट्टियां 'लैप्स' हो जायेंगी। के कई छोटे-मोटे काम पड़े हैं…'

'यह सब कुछ नहीं। कोई होता तो मैं छुट्टी मंज़ूर कर देता, यह आराम-तलब होने की टेंडेन्सी बेहद नापसन्द है। जाइए, काम में लगाइये और मेहनत करना सीखिए।'

हरीश को भी ताव आ गया। उमड़ते हुए क्रोध को दबाने का प्रयत्न करते हुए भी इतना तो मुँह से गया—'साहब, और लोग तो बहाने बनाकर घर में बैठ रहते हैं। कोई देता है मां की हालत ख़राब है, बीबी बीमार पड़ जाती है और जूड़ी-बुख़ार धर दबाता है। उन्हें मिल जाती है, लेकिन मैंने सच्ची दी तो आपको आपत्ति हो रही है।'

वर्मा साहब भला इतनी कड़ी सह लेते। उनका चेहरा तमतमा बिगड़कर बोले—'अपने अफ़सर से करनी चाहिये, पहले यह ढंग तब फिर इस कमरे में पैर अब आप जा सकते हैं।'

इस घटना से हरीश को हुआ और अपने मित्र रमाशंकर यह बताकर कि उसके सिर में हो रहा है, वह तीन ही बजे चला आया।

यरामजी भोजन और विश्राम के बाद
जाने के लिये तैयार होकर शुभा से
: थे—
ह, बनवारी के हाथ दिल्ली वाले
ास धोती जोड़े दूकान भिजवा देना
रीश से कह देना…' तब तक बेटे
दी वापस आते देख आश्चर्य-भरे
बोले—
अरे, हरीश तो लौट आया। आज
जल्दी कैसे बन्द हो गया ?'
त्तर तो खुला है, पिता जी। मैं
ल्दी चला आया।'
बियत तो ठीक है न ?' पिता के
चिन्ता थी।
ी हां। आज ज़रा वर्मा साहब से
नी हो गई। उसी से इतना जी
हो गया कि मैं जल्दी चला आया।'
ाद उसने सारा किस्सा पत्नी तथा
को सुना दिया। जयराम जी ने
होकर कहा—
दा, तुम बड़े 'टैक्टलेस' हो। अफ़सरों
ं इस तरह जवाब देता है ? —जानते
कि आजकल नौकरी मिलना कितना
है ? फिर भी इस तरह नादानी से
रते हो। तुम्हारी यही आदत मुझे
अच्छी नहीं लगती। अव्वल तो
र्मा जी की बात काटनी ही नहीं
थी, क्योंकि ऊँची कुर्सी पर बैठने
यक्ति कोई ग़लत बात कह सकता है—
नकर चलने वाला व्यक्ति मूर्ख होता
: हमेशा धोखा खाता है। अफ़सर
ाले को काला कहे तो उसकी परख

की प्रशंसा करनी चाहिए। और अगर काले
को सफ़ेद कहे तो उसकी अपूर्व एवं मौलिक
सूझ पर दाद देनी चाहिए। दूसरे, अगर
तुम अपने को बड़ा सत्यवादी समझते हो तो
जो कहना था इस ढंग से कहते कि उन्हें
बुरा न लगता। ख़ैर, जो हो गया सो हो
गया। कल जाते ही पहले माफ़ी माँग लेना।
और देखो…आज शाम को लीलाराम दूकान
नहीं आ रहा है। भीड़ का समय होगा।
तुम चले आओ तो सहारा हो जायगा।'

'जी, अच्छा। मैं छः बजे तक आ
जाऊँगा।'

जयराम जी दाहिनी मुट्ठी में पान की
डिब्बी दबाये चले गये। वर्माजी से हरीश
को मुँह की खानी पड़ी, यह सोचकर उन्हें
कुछ संतोष हो रहा था, क्योंकि सुबह की
बातों की कड़वाहट वे भूल नहीं पाये थे।

शाम को हरीश जब दूकान पहुँचा तब
वहाँ काफ़ी भीड़ थी। किसी ओर हैन्डलूम
की धोतियों की माँग थी, कहीं कमीज़ के
कपड़े की। कोई पैन्ट के लिए गम
कपड़ा फड़वा रहा था। वह जल्दी से एक
कोने में चप्पल उतारकर काम में लग गया।

'कब से चिल्ला रही हूँ कि बढ़िया
रंगीन वायल दिखा दीजिये लेकिन कोई
सुन ही नहीं रहा है। न दिखानी हो तो
साफ़ कह दीजिये, कहीं और से ले लेंगे।
शहर में कपड़े की दूकानों की कमी थोड़े ही
है।' एक महिला बिगड़ कर बोलीं।

'यह लीजिये, बहनजी, रंगीन वायल।
माफ़ करियेगा, भीड़ ज़्यादा है इसी से कुछ
देर हो गई।' हरीश ने क्षमा-याचना की।

त मेहरोत्रा

बहनजी प्रसन्न हो गईं। पूछने लगीं—

'भाई साहब, यह कपड़ा मजबूत रहेगा न? जल्दी फट तो नहीं जायगा?...एक बार मैंने वायल की छै धोतियाँ बनाईं; सबकी सब गली हुई निकल गईं!'

भाई साहब ने सोचा कि कपड़ा खुद तो बनाया नहीं है जो उसकी गारन्टी दे दें। कौन जाने मजबूत हो या न हो। अतः स्पष्ट बात कह देना ही उचित समझकर बोला—

'देखिए बहनजी, इस बारे में तो कुछ कहा नहीं जा सकता। हो सकता है सालों न फटे, हो सकता है जल्दी ही फट जाय।'

'अरे! तब तो रहने दीजिये। और कहीं ले लेंगे।'

'लेकिन दूसरी जगह भी तो आपको यही कपड़ा मिलेगा। यहाँ तो फिर भी कुछ सस्ता ही मिल जायगा।' हरीश ने आग्रह किया।

'गारन्टी तो आप कुछ देते ही नहीं! और सस्ता होने का तो मतलब ही यही है कि आप इसे किसी तरह बेचकर छुटकारा पाना चाहते हैं। पुराना रक्खा हुआ कपड़ा होगा!'

हरीश के बहुत आश्वासन देने पर भी बहनजी रुकीं नहीं। उनके पास की कुर्सी पर बैठा एक युवक मुस्कराकर बोला,

'बहनजी लोगों से फुरसत मिल जाय तो हम भी कुछ अर्ज करें!'

'फर्माइये', हरीश ने झेंपकर उत्तर दिया—'हमारे लिये तो सभी ग्राहक बराबर हैं।'

'जरा ऊनी कोटिंग दिखा दीजि[illegible]

हरीश ने गर्म कपड़ों का [illegible] दिया। युवक ने एक चेक पसन्द [illegible] कहा—'इसका रंग तो कमाल का है [illegible] भाव है?'

'अठारह रुपये, पचीस नये पैसे'

'क्या पूरा पीस है?'

'जी हाँ, पूरे कोट का है।'

'ठीक है। नाप दीजिये। मैं [illegible] खरीदना भी चाहता था। [illegible] इसका कोट खूब ही जँचेगा।...[illegible] क्या खयाल है?'

'कपड़ा तो यह खूब [illegible] इस पीस में ये दो बारीक-से छेद हैं।'

'अरे! कहाँ हैं...देखूँ।...मुझे दिखाई नहीं पड़ते।'

'लाइये, रोशनी में देखकर [illegible] बहुत बारीक हैं।...ये देखिये।'

'यह तो बहुत बुरा हुआ। [illegible] इसे रहने दीजिये।'

'इसको ले लें, दाम कुछ कम कर[illegible]'

'नहीं जी, नया माल [illegible] देखा जायगा। कमीज का [illegible] ही दिखाइये आप।'

'यह लीजिये, [illegible] रहा है।'

'हाँ, है तो बहुत सुन्दर। [illegible] रंग पक्का है न?'

'ठीक कह नहीं सकता। पर [illegible] के कपड़ों की धारियाँ कभी कभी [illegible] निकल जाती हैं।'

तब तो इसे रहने ही दीजिये। आप
ो माल दिखा रहे हैं, सब में कुछ-न-
ख़राबी है। क्या आपकी दूकान पर
माल पुराना और रद्दी ही है?'

अरे वाह···और कपड़े देख लीजिये न।
ा नया माल भरा पड़ा है...।'

ायराम जी के कान में बेटे की बातें
नक पड़ रही थीं। इस बार ग्राहक
विक्रेता के बीच हुआ वार्तालाप सुनकर
उन्होंने कड़ी आवाज से कहा—

'हरीश! तुम घर जाओ। यहाँ के काम के लिये मैं अकेला ही काफ़ी हूँ। तुम्हारी मदद की बिलकुल जरूरत नहीं है।'

'लेकिन, पिता जी···' हरीश ने सफ़ाई देनी चाही।

'तुम जाओ।' पिता के रोषपूर्ण, गम्भीर आदेश में समझौते की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। *

प्रणयिनी

शिल्पी · अब्दुर रहमान चुग़ताई

न्त मेहरोत्रा

नयी जात-पाँत

✽ जे० बी० एस० हाल्डेन ✽
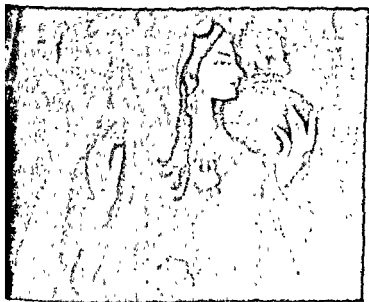
मैंने यह मुहावरा यूरोप के प्रथम श्रेणी साहित्य पर बोलते वक्त इस्तेमाल किया था। भाषण के प्रारम्भ में ही मैंने यह महसूस किया कि मुझे इस तरह के भाषण देने की अपनी योग्यता के बारे में स्पष्ट कर देना चाहिए। अतः मैंने यह बतला दिया कि मेरी डिग्री ऑक्सफ़र्ड की 'ग्रेट्स' ही है। इस डिग्री की परीक्षा प्राचीन ग्रीक और लैटिन भाषाओं के दार्शनिक और ऐतिहासिक अध्ययन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाधि या शोध-कार्य की डिग्री आदि मुझे प्राप्त नहीं हुई और न विज्ञान-सम्बन्धित कोई पदवी ही। सम्मानार्थ 'डॉक्टरेट' जरूर मिली थी। अतः भारतीय विश्वविद्यालयों के नियमानुसार तो मैं सिर्फ़ ग्रीक तथा लैटिन भाषाएँ, और शायद दर्शन और इतिहास ही, पढ़ा सकता हूँ, न कि, विज्ञान का कोई विषय !

(प्रोफ़ेसर हाल्डेन आजकल इंडियन स्टैटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट में बायोमेट्री से संबन्धित अनुसंधानों में व्यस्त हैं। —सं०)

मैंने अभी-अभी एक विश्वविद्यालय में सांख्यिकी (स्टैटिस्टिक्स) के प्राध्यापक पद-प्रार्थी एक सज्जन को प्रस्तावित करने में अनिच्छा जाहिर की थी जिसकी वजह है उसकी योग्यताओं में ... सांख्यिकी में शोधकार्य पर मिली डिग्री ! मैं ऐसे कितने ही सांख्यिकी-रदों को जानता हूँ जो सांख्यिकी में विशेषज्ञता के लिए जगत्प्रसिद्ध हैं। इनमें शायद ही कुछ लोगों के पास सांख्यिकी में कोई डिग्री होगी। उन लोगों को पर्यवेक्षणों से वास्ता पड़ा, जैसे भारत में सत्येन्द्रनाथ वसु, ... की ... में प्रशान्तचन्द्र महालनवीस और ... की लम्बाई और उनके रिश्तेदारों के ... में आर० ए० फ़िशर, भूकम्प के ... एच० जेफ़्रे इत्यादि, इत्यादि। इनके डिग्रियाँ हैं किन्तु ये सांख्यिकी से अन्य विषयों में हैं।

शायद कोई यह कहे कि सांख्यिकी एक नया विज्ञान है, इसके बारे में यह लागू हो सकती है लेकिन पुराने विज्ञानों के विषय में विशेषज्ञ ... है, यह बिलकुल गलत है। कुछ ... और देता हूँ। कैंब्रिज में प्रोफ़ेसर पी० एम० डिरैक् गणितीय भौतिकी के प्रसिद्ध प्राध्यापक हैं और ...

। परन्तु उनकी डिग्री इञ्जीनीयरिङ्ग में यूरोप महाद्वीप में बहुत से ऐसे प्राध्यापक जो केवल मेडिकल डिग्रियाँ लेकर ही तत्त्व (फिजिऑलॉजी), दैहिक-रचना नैटमी), विज्ञान (बॉटनी) तथा प्राणितत्त्व (जूलॉजी) पढ़ाते हैं। लंदन यूनिवर्सिटी कॉलिज् में दैहिक रचना प्राध्यापक जे० ज़ैड० यंग की डिग्री प्राणितत्त्व में है। इस पद पर आने से पहले उन्होंने कभी किसी मृत देह की चीर-फाड़ नहीं की थी। यद्यपि उन्होंने आज त-से महत्त्वपूर्ण कार्य मानव की दैहिक

परम्परा की तानाशाही अब टती जा रही है—अब हमें ी से सब्र नहीं होता कि ये यें या बातें मौजूद हैं : हम यह हते हैं कि क्या उन्हें ऐसे ही ने और रहने देना चाहिए?
—जे. एस. मिल

ना के बारे में किये हैं, विशेषतः प्य की सूक्ष्म नाड़ियों के उपचार के बारे । और भी ऐसे बहुत-से उदाहरण दिये सकते हैं।

इसका कारण सीधा-सा है। किसी भी ज्ञान में बाहरी आदमी ही खूब अच्छी ह से यह देख पाता है कि कौन-सी चीज ज्यादा जरूरत है, केवल वही व्यक्ति नहीं कि उस विज्ञान का विशेषज्ञ है। जैसे, पिताजी की डिग्री मेडिसिन में थी और बर्मिंघम विश्वविद्यालय में खनन-शास्त्र (माइनिंग) के प्राध्यापक और 'माइनिङ्ग इंजिनीयर्स' की संस्था के अध्यक्ष थे। वजह यह थी कि घरों, कारखानों और खानों में रहने और काम करनेवालों के लिए साफ हवा देनेवाले रोशनदान, खिड़की आदि के संबन्ध में उन्होंने काफी काम किया था। फलतः कोयले की खानों के मजदूरों की सेहत ही नहीं सुधरी, बल्कि आग लगने और विस्फोटों के खतरे भी बहुत कम हो गये।

सिर्फ भारत में ही यह आवश्यक होता है कि कोई विद्वान् व्यक्ति किसी यूनिवर्सिटी अथवा कॉलिज् में विषय-विशेष पढ़ाने के पहले उसी विषय-विशेष की डिग्री प्राप्त करे। यह भारत जैसे बहु-भाषा-भाषी देश में शायद और भी ज्यादा जरूरी है। किन्तु मेरे एक मित्र को अपनी ही मातृभाषा की अध्यापकी से सिर्फ इस लिये वंचित कर दिया गया था कि उनकी डिग्री उस भाषा में नहीं थी, यद्यपि उनकी कितनी ही अच्छी कविताएँ उसी भाषा में प्रकाशित हो चुकी थीं परन्तु उनकी डिग्री दूसरे विषय में थी। इससे भी ज्यादा खतरनाक नियम यह है—कम से कम एक विश्वविद्यालय में तो है ही—कि जबतक किसी विद्यार्थी की बी० ए० या बी० एॅससी डिग्री आनर्स के साथ इच्छित विषय की न हो, तब तक वह एम० ए० या एम० एॅससी के पाठ्य-क्रम में वही विषय नहीं ले सकता। यह ठीक है कि भारत में वैज्ञानिकों और विशेषज्ञों की जरूरत है, परन्तु जगदीशचन्द्र बोस, साहा और प्रशांतचन्द्र महालनबीस ने

प्रो० बी० एॅस० हाल्डेन

विभिन्न विज्ञानों की लड़ी में अपनी ओर से एक नयी कड़ी जोड़कर ही सुख्याति प्राप्त की है।

मैं इस बात का यदि निर्देश करता हूँ तो मुझसे कहा जाता है कि भारतीय शिक्षक तो केवल प्रारम्भिक ज्ञान की बात पर ही जोर डालते हैं जो किसी भी विषय में विशेष ज्ञान प्राप्त करने से पहले बहुत जरूरी है। मुझे अपने उन वैज्ञानिक शिक्षकों की याद आती है जिनमें से किसी ने भी ऐसा नहीं कहा, और मुझे पूर्ण विश्वास है कि अपने छात्रों के निर्वाचन में वे किसी भी शिक्षक की अपेक्षा कम ध्यान नहीं रखते थे। यदि मैं वनस्पति-विज्ञान का शिक्षक होता तो निश्चय ही मैं उन विद्यार्थियों को प्रधानता देता जो रसायन-शास्त्र अथवा प्राणितत्त्व पढ़ चुके हों। जिन स्त्री-पुरुषों ने प्रारम्भिक परीक्षाएँ अच्छे ढंग से पास की हैं, वे साधारणतया किसी भी विषय में अच्छा नतीजा दिखा सकते हैं—खास तौर से, जब कि वे किसी एक विषय से दूसरे विषय में जाते हैं। इस तरह का कोई भी अच्छा छात्र यह समझ सकता है कि नया विषय लेने पर उसे कितना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा और उतना वह करेगा या नहीं और उसे प्रथम श्रेणी मिलेगी या नहीं। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसे कई विषयों की अच्छी जानकारी है, शोधकार्य में उस व्यक्ति से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकता है जिसे कि केवल एक ही विषय की जानकारी है।

कोई रसायनविद् या भूगर्भ-तत्त्ववेत्ता, जिन पर कि ये लेबल लगे हों, शायद अपनी सन्तान को अपनी 'जाति' ह[illegible] बना सकेगा और न किसी इतिहास[illegible] लड़की से किसी गणित विशेषज्ञ [illegible] होने में कोई बाधा ही पड़ेगी। [illegible] वाला भी शादी-ब्याह के मामले में बाहर नहीं माना जायगा। [illegible] जाति-प्रथा की तरह इस नयी [illegible] में कोई खास बन्दिशें नहीं हैं। [illegible] विचार से आदमी की योग्यता [illegible] सम्भावनायें इस नयी जात-पाँत के [illegible] बहुत ज्यादा घुसती जा रही हैं।

पहले उच्च-जातियों में वर्ण[illegible] सम्बद्ध नियम यह भी था कि वे [illegible] यात्रायें नहीं कर सकते। ऐसा प्रतीत [illegible] है कि नये ढंग से इसी व्यवस्था [illegible] नया संस्करण होनेवाला है। कारण, [illegible] है कि शिक्षा मंत्रालय ने विश्ववि[illegible] अधिकारियों से हाल ही में प्रार्थना [illegible] कि वे विदेशी संस्थाओं से छात्र-[illegible] में कोई सम्पर्क न स्थापित करें। [illegible] सीधे भारत सरकार द्वारा [illegible] विदेशों से भी अब इसी तरह के [illegible] आशा की जाती है।

वास्तव में सर्वाधिक [illegible] वृत्तियाँ प्रायः इस तरह दी जाती हैं [illegible]

प्रोफेसर गिलक्राइस्ट (वैदिक [illegible] जिसका अर्थ है कास्ट का दा[illegible] स्कॉटलैण्ड की पुरानी भाषा है।) [illegible] मित्र प्रोफेसर उदयनदास से [illegible] उनकी निगाह में कोई ऐसा [illegible] नहीं जो उनकी प्रयोगशाला में [illegible] खोजपूर्ण काम कर सके। [illegible]

द दोनों की राय में श्री हनुमानदास
के छात्र निश्चित हुआ। अब छात्र-
के लिए प्रो० गिलक्राइस्ट ने मिड्रास
उंडेशन को लिखा और प्रो० लक्ष्मणदास
इस चांसलर श्री रामदास से पूछ लिया
सब ठीक हो गया। प्रो० गिलक्राइस्ट
स फाउण्डेशन को यह नहीं लिख सकते
वह दिल्ली के श्री कौटिल्यदास को
कर एक योग्य व्यक्ति ढूंढ़ लें। शायद
हिन्दुस्तान में प्रो० लक्ष्मणदास ही ऐसे
के हैं जो इस बारे में कुछ समझते हैं।
भी हो, प्रो० गिलक्राइस्ट तो यही सोचते
कारण, एक छात्र के बारे में उनको काफी
भा अनुभव पहले हो चुका है, यद्यपि
नेवाले छात्र के इम्तहानों के नतीजे और
क्तिगत प्रमाण-पत्र आदि सभी अच्छे थे
न्तु काम करते समय वह बिलकुल अयोग्य
बित हुआ था। हो सकता है कि
हनुमानदास प्रथम श्रेणी में आनर्स
न हो और अभीष्ट विषय में उसके पास
ई ऊँची डिग्री भी न हो। इस हालत में
लो के कौटिल्यदास द्वारा उसका निर्वाचन
मुश्किल है। सारांश यह है कि प्रो०
लक्राइस्ट को फिनलैंड से एक विद्यार्थी
ना पड़ेगा और बेचारा एक भारतीय युवक
लायाकीपारकर विदेशों में पढ़ने-लिखने की
विधा से वंचित हो जायगा। मुझे मालूम
कि मिड्रास फाउण्डेशन का संसर्ग कुछ
देह-योग्य पूँजी लगाने वाले विदेशियों से
। किन्तु हमें अगर ऐसी कोई भी विदेशी
दद मंजूर है तो हम उसके अर्थ-स्रोत के बारे
में कुछ ज्यादा नहीं कह सकते और भारत
में अगर इस तरह के संबन्धों में भ्रष्टाचार
मौजूद है तो वह नई दिल्ली में भी हो सकता
है तथा किसी यूनिवर्सिटी में भी।

भारतीय वैज्ञानिकों में यह विशेषज्ञता
की सनक एक ऐसे सिरे तक जा पहुँची है कि
न तो उसमें साहित्य, कला और प्रशासन के
कार्यकर्ताओं की श्रद्धा है और न इन लोगों
को डॉक्टर या इंजीनियर ही कुछ मानते हैं।
कई बार तो मुझसे भी यही कहा गया था—
'आप वैज्ञानिक नहीं हैं। आप एक प्रखर

रीति-रिवाजों को आदमी
सिर झुकाकर मान लेता है और
तक़दीर के आगे घुटने टेक देता
है—सभी बातों में, सभी चीजों
में, चाहे वे तन की या हों मन
की या धन-दौलत की। —फ़ॅने

बुद्धिशील व्यक्ति हैं।' इंग्लैण्ड के लोग अब
ऐसी विशेषज्ञता के खतरों से वाक़िफ़ हो गये
हैं, और अपने अच्छे विश्वविद्यालयों से इसे
हटाने की कोशिश में हैं। उदाहरणार्थ, लन्दन
के यूनिवर्सिटी कॉलिज के जीव-शास्त्र विभाग
में नियुक्त प्रो० डी० एम एस वाट्सन को ही
लें। इनके साथ मैंने भी काम किया था।
वे विश्वविख्यात Palaeontologist, हैं,
और Comparative anatomy के साथ
ही पुरानी चाइनीज कहीं में प्रत्र काठ

जे० बी० ऍस० हाल्डेन

चीजों के ज्ञान में भी निष्णात हैं। उनके पास इसका एक अच्छा-खासा संग्रह भी है।

इधर कुछ वर्षों से विशेषज्ञता वाले विद्यार्थी ही अधिक निकले हैं। लेकिन मुझे याद है, कि एक वर्ष विद्यार्थियों ने लयडन के विभिन्न प्रदेशों से पोस्टकार्ड भेजकर ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन को बाध्य किया था कि वह संगीत की एक खास धुन को भी प्रसारित करे। इस श्रेणी में कुछ असाधारण जीवशास्त्री भी थे जिनमें से एक तो शरीर-शास्त्र का प्रोफेसर होने योग्य था। उसी विभाग के एक प्राध्यापक की डिग्री भूगर्भ शास्त्र में थी और दूसरे की इंजीनियरिंग में।

यह एक खेदपूर्ण तथ्य है कि कुछ पेशों में विशेषज्ञता की डिग्रियाँ बहुत जरूरी हैं, जैसे कि हवाई जहाज चलाना या चिकित्सा और चीर-फाड़ के पेशों में यही आवश्यक है। कारण, लोग अपनी जान इन पेशों के लोगों को सौंप देते हैं, और उनके पिछले जीवन या योग्यता के बारे में कुछ नहीं पूछते। उन राज्यों या देशों में यह बात उतनी बुरी नहीं, जिनमें कि प्रत्येक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क है और कोई भी व्यक्ति किसी भी परीक्षा के लिए तैयार होकर उसमें बैठ सकता है, किन्तु भारत जैसे देश में, जहाँ पचासों में शायद एक भी पिता अपने किसी एक बच्चे को भी विश्वविद्यालय की पूरी शिक्षा का भार-वहन नहीं कर सकता, यह सरासर ज्यादती है। यहाँ तो ऐसी छात्र-वृत्तियाँ भी बहुत कम हैं जिन पर विद्यार्थी पूरी तरह निर्भर कर सकें। यही भारी हालत जब

इंग्लैण्ड में थी तब बहुत से वै[...] बिना किसी डिग्री के ही पर, [...] पदवी और अधिकार प्राप्त किये [...] प्रीस्टले, डेवी, फैराडे, वैलेस। कि[...] में ऐसे उदाहरण बहुत ही कम [...] सिर्फ एक ही भारतीय को जान[...] डिग्री न होनेपर भी अनुसंधान में [...] जीविका चला रहा है, और [...] सभी वैज्ञानिक कॉनफ्रेन्सों में [...] आमंत्रित भी होता है। लेकिन [...] तनख्वाह विश्वविद्यालय के उन [...] धारियों की अपेक्षा फिर भी का[...] जिन्होंने प्रथम श्रेणी का कोई [...] अभी तक नहीं किया है। विश्ववि[...] अध्यापन कार्य के लिये तो व[...] आज भी 'अछूत' ही समझा जाता [...]

प्राचीन जाति-व्यवस्था में इन [...] यह गुण तो था कि सबसे धनी [...] जमींदार भी अपने बेटे के लिये [...] पदवी नहीं खरीद सकता था, [...] कितना ही धार्मिक या विद्वान क्यों [...]

इस व्यवस्था का जो भी दोष [...] किन्तु मैं समझता हूँ, कि वह [...] कभी नहीं बनी। किन्तु जो [...] विश्वविद्यालयों के शासक [...] छत्रछाया में पाल-पोस रहे हैं [...] जैसे देश के लिये कभी हितकर [...] मैं आशा करता हूँ कि देश को [...] बनाने से पहले ही इस व्यवस्था [...] के लिये कदम उठाये जायेंगे, [...] भी हमारे कितने ही [...] किया था।

। दिन स्थानीय क्लब में दो युवा प्राध्यापक, दो तीन लेखक और पत्रकार
। तुरन्त नारियों की चर्चा करने लगे। उनमें से कई तो लम्बी-लम्बी विदेश
मी कर चुके थे और वे रस ले-लेकर अपने-अपने अनुभव सुना रहे थे। उनकी
नारी कभी पुरुष के बराबर नहीं हो सकती थी। आजकल ऐसा करने के प्रयत्न में
दमनी तो क्या होती, नारी भी नहीं रही है।

में जो लेखक थे, पूछ बैठे, 'तो फिर रह क्या गई है।'

वल शरीर।'

एक, आधुनिक नारी केवल शरीर मात्र है जो फैशन के बल पर रूप और यौवन
कर्षण बनाये रखने में जीवन खपा देती है।'

रे प्राध्यापक बोले, 'यदि वह ऐसा न करे तो पुरुष की आंखों में भ्रम नहीं
सकती।'

पक ने मुस्कराकर कहा, 'दोस्तो। मैं आपकी राय से सहमत हूँ, पुरुष को
देने में वह असाधारण रूप से दक्ष है। कभी कभी तो वह पुरुष को इस प्रकार मूर्ख
है और स्वयं ऐसी सुगमता से बच निकलती है कि हमें काठ मार जाता है।'

र मुहावरे के प्रयोग पर प्राध्यापक कुछ चौंके। जो सबसे अधिक नारि' क
में आने की डींग मार रहे थे, वे बोले, 'क्यों, क्यों क्या किसी सुन्दरी' न
लूट लिया है?'

ग कहने लगे, 'उसने क्या किया इसका निर्णय तो आप ही कर सकते हैं।
अनुभव में वृद्धि हो इसलिए वह कथा मैं आपको सुनाये देता हूँ :—

"उन दिनों में एक देश की राजधानी में ठहरा हुआ था। कई बार मैं वहाँ जा चुका था पर समारोहों की चकाचौंध में मुझे किसी के विशेष सम्पर्क में आने का अवसर नहीं मिला था। नाच-रंग में ही वे दिन बीत जाते थे। जिसे टिकाऊ आनन्द कहते हैं उसका अनुभव मुझे इसी बार हुआ था। मुझे वहाँ लगभग दो महीने ठहरना पड़ा। एक शानदार होटल में राज्य की ओर से सब प्रबन्ध था और मेरी प्रार्थना पर एक दुभाषिये की व्यवस्था भी कर दी गई थी।

वह दुभाषिया एक युवती थी। मैं आज भी विश्वास से नहीं कह सकता कि वह सुन्दरी थी या नहीं पर निर्विवाद रूप से उसमें जादुई आकर्षण था। उसकी कटि अत्यन्त क्षीण, कन्धे पुष्ट और वक्षस्थल उभरा हुआ था। उसकी काली विनोदपूर्ण आँखें मेरी सबसे बड़ी कमजोरी थीं। वह अक्सर बात-बेबात पर हँस पड़ती और तब उसके मोती जैसे सफेद, छोटे-छोटे, एक जैसे दांत, मेरे वक्ष में चमक उठते।

कुछ औरतें होती हैं जिनकी सुन्दरता अनुपम भले हो न हो, पर परेशान करनेवाली होती हैं। वह उन्हीं में थी। उसका नाम, मान लें, मारिया था।

मारिया दिन के अधिकांश भाग में मेरे साथ रहती थी। एक क्षण के लिए भी मैंने उसे
नहीं देखा, बल्कि हर क्षण
ही रहती थी और इस बात
ध्यान रखती थी, कि मुझे
प्रकार की असुविधा न हो।
आश्चर्यजनक कर्तव्य-
चकित था।

मेरा काम कुछ ऐसा था
स्थान पर नहीं टिकता था।
मेरे साथ घड़ी की सुई की भाँति
गतिमान रहती थी। निश्चित
मैं उसके आने की
निश्चित समय पर ही वह
विदा लेती......

अचरज तो यह है कि मैंने

'त्रियश्चरित्रम् पुरुषस्य भाग्यं
देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः'

। का प्रयत्न नहीं किया कि वह कहाँ है, क्या करती है, वह विवाहित है विवाहित। सच तो यह है कि उसने अवसर ही नहीं दिया। पर उन्हीं अचानक एक ऐसी बात हो गई कि न ही मन कुछ अनुमान कर लिए फिर तो पूछने का प्रश्न ही नहीं

क दिन मैं कुछ अस्वस्थ था और कमरे में ही काम कर रहा था। ा पास बैठी पुस्तकों और चार्टों के मेरे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न रही थी। कहीं दूर वसन्तकालीन ी हुई बर्फ की बूंदें टप-टप कर गिर ीं...

ाफ करें, मैं यह बताना या कि कुछ दिन के लिए धानी के पास ही एक चला गया था, जहाँ मैं कभी झींगुरों की झनकार न सकता था। वे गांव, गांवों जैसे नहीं थे। क विज्ञान की सभी वहाँ प्राप्त थीं। इसीलिये एक ओर मैं बर्फ की ौर झींगुरों का प्राकृतिक सुन सकता था, दूसरी टेलीविजन पर नवयुग के पूर्ण नृत्य भी देख सकता इस पर मुझे मारिया जैसी का सुखद साहचर्य भी ा।

ौर उस दिन तो मुझे

समझाते-समझाते वह बिल्कुल पास आ गई। उसकी सांसों की सुगन्ध से मैं उत्तेजित हो उठा, पर सहसा उसने अपना कॉलर ठीक किया और शरारत-भरी विनोदपूर्ण-दृष्टि से मेरी ओर देखा, कहा, 'क्या तुम नहीं समझते कि आगे आने-वाला जीवन आज के जीवन की अपेक्षा अधिक सुन्दर और सुविधाजनक होगा।

मैंने दृष्टि उठाकर पूछा, 'क्या मतलब ?'

'मतलब ! आज विज्ञान जिस गति से प्रगति कर रहा है उससे क्या युद्ध समाप्त नहीं हो जायेंगे ? संहारक न रहकर वह क्या मनुष्य के सुख का समाधान न बनेगा ?

ु प्रभाकर :

ौर कभी मुझे उदास देखती तो तुरन्त ाट्यगृह अथवा ओपेरा गृह में मेरे लिए ाग्रह किया करती। जिद के साथ मुझे वहाँ ले जाती।

और विदा···हाँ, वह उसी जोशो-खरोश के साथ विदा लेती···इस नियम में कभी व्याघात न पड़ता···।

मुझे लगा, जैसे मुझे इस नियम की पवित्रता को भंग करना चाहिए, जैसे कि पहल करनी चाहिए···।

सो उस दिन मैंने उसे अब तक के उपहारों में सबसे मूल्यवान उपहार भेंट किया। ऐसा करते समय उसके हाथ की उँगली मेरी उँगलियों से छू गई। वैसे हम सदा हाथ मिलाते थे, पर तब उस उँगली को जरा-सा दबाने में मुझे जो सुख मिला उसका बखान न कर सकूँगा, पर··· उसके शरारती नयन सदा की तरह चमक रहे थे। उसने एक बार शायद कुछ कहना चाहा पर फिर धन्यवादपूर्वक उसे स्वीकृत कर लिया। बोली, 'तुम क्यों इतना कष्ट करते हो? क्यों?'

मैंने कहा, 'क्योंकि मुझे आनन्द मिलता है।'

वह बोली, 'ओह तुम कितने अच्छे हो, कितने भले···।'

मैंने कहा, 'लेकिन तुम से अच्छा नहीं, तुम से भला नहीं···।'

सहसा उसके मुख पर एक भाव आया। कुछ बेचैन-सी हुई। आह, यही तो मैं चाहता था। आनन्दातिरेक से मैंने उसका हाथ दबा दिया और. .

और वह द्रुतगति से कमरे से बाहर निकल गई। और मैं इस आकस्मिकता से अभिभूत-विमूढ़ खड़े का खड़ा रह गया। आगे बढ़कर उसे पकड़ न सका।

अगले दिन सूचना मिली कि वह आ न सकेगी। अचानक किसी काम से उसे बाहर जाना पड़ा है। तभी एकाएक मुझे भी एकदम देश लौटने का आदेश मिला। मेरा हृदय इन परिवर्तनों को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। लेकिन विधि का विधान···।

प्रबन्ध करने में कई दिन लग गये। मैंने उसे आग्रहपूर्वक सन्देश भिजवाया कि जाने से पूर्व किसी भी तरह मिल सके तो कृतज्ञ होऊँगा।

वह एयरोड्रोम पर आई। वही मारिया - वही छरहरी, पुष्ट कन्धों और विनोदपूर्ण काली आँखोंवाली मारिया। वह सदा की तरह शरारतपूर्ण मुस्कराहट से जगमगा रही थी। उसने बहुत ही बढ़िया पोशाक पहनी थी और बसन्त-ऋतु के उस सुहावने प्रभात में और भी सुहावनी लग रही थी। उसने मुझे देखते ही हाथ फैला दिए। मैंने उसकी पकड़ की उष्णता को महसूस किया। मैंने किसी तरह फुसफुसाकर कहा, 'बहुत आवश्यक काम से जाना पड़ रहा है। शीघ्र लौटूँगा।'

'ओह, धन्यवाद। इस बार मेरे साथ ठहरना।'

'मारिया ··'

'हाँ कमल...कमल तुम बहुत भोले हो बहुत भोले हो!'

और मैं जैसे प्रेम के अतल में डूब गया।

'अच्छा विदा'—उसने उसी जोशो-खरोश के साथ कहा और फिर एक काफी बड़ा सुन्दर पैकेट मेरे हाथों में देते हुए बोली, 'मेरी ओर से तुच्छ भेंट!'

मैं तो तब वहाँ था ही नहीं, फुसफुसाया, 'मारिया... 'कमल...'

उसने फिर हाथ दबाया और शरारत-पूर्ण मुस्कान से आँखें मेरी आँखों में डालते हुए कोमल स्वर में कहा, 'हो गया। विदा...'

'विदा...'

सबसे विदा लेकर मैं उड़ चला पर मेरा हृदय तो वहीं गया था। जितनी देर देख सका उसे देखता रहा फिर पक्षी की तरह सीट में घुस गया। मैंने अनुभव किया कि बसन्त-ऋतु भी वियोगिनी के रूप में गा रही थी।

घर आकर सबसे पहले मैंने वह पैकेट खोला। [illegible] न पाया। उसमें वे ही सब उपहार थे जो समय-समय पर मैंने उसे दिये थे। साथ में एक चित्र था, जिसमें [illegible] विनोदपूर्ण आँखोंवाली मारिया थी। उसके साथ था [illegible] कन्धों और [illegible] अल्हड़ युवक और उन दोनों को घेर खड़े थे तीन बालक, सेब से [illegible] फूल से सुन्दर, शैशव से चंचल...

नीचे लिखा था :—

'मुक्त व्यवहार वासना के [illegible] होता बल्कि इस कारण हो [illegible] उसमें वासना नहीं होती।''

इतना कह कर लेखक ने [illegible] की ओर देखा और पूछा...[illegible] की आवश्यकता ही नहीं [illegible] विमूढ़ उन सबको भी [illegible] गया था।

नारी चरित्रम् : विष्णु [illegible]

बंगाल के बाउल गीत

लावण्य प्रभा राय

बरसों पहले की घटना है। पूर्वी बंगाल के एक छोटे शहर से मैं कलकत्ता जा रही थी। पावस ऋतु, रात का समय। गाड़ी का जनाना डब्बा खचाखच भरा। बाहर घनघोर अन्धकार। लगातार झड़ी। वर्षा की झमझम।

गाड़ी की भक् भक् आवाज में से मैंने एकाएक सुना, कोई गा रही थी :—

इंगिते सकेते पलके पलके,
कोथा जेते नारि पाछे येके डाके,
सुने सेइ तान चमके ओठे प्राण,
ब'ले 'कथा मान, फिरे आय, आय।'

गीत के उतार-चढ़ाव के प्रति मेरा ध्यान आकृष्ट हुआ। मैंने देखा, उधर की बेंच पर बैठी हुई एक स्त्री गा रही थी। वेश व चन्दन के तिलक से वैष्णवी जान पड़ी। उसकी आँखें बन्द थीं। गीत में तल्लीन वह गा रही थी :—

'मन माझे जेन कार डाक सुना जाय।
के जेन आमारे अति साध करे
हाथ दु'खाना धरे काछे टेने निते आय।'

उसकी बन्द आँखों की कोरों से आँसू ढुलक रहे थे। परन्तु उसके चेहरे पर एक विचित्र शान्तिपूर्ण आनन्द की झलक थी मानो उसके आँसुओं के पीछे किसी की मुस्कान छिपी थी।

टकटकी बँध गई। साथ ही कागज-पेन्सिल निकाल कर मैंने उस गीत के ... लिख लिये।

न जाने कितनी बार उस स्त्री ने उस गीत को दुहराया और मैंने भी उसमें ...

'अवहेला करि दौंड़ाइया जाइ,
चौदिके नेहारि किछु नाही पाइ,
फिरे एसे काछे देखि हृदि माझे
दौंड़ाइया अछि आमार अपेक्षाय।
मन माझे येन कार डाक सुना जाय॥
आमि हले तारि से होत आमारि,
निले तारि मर्म कर तो कर्म जारि,
केन कि कारण निल ना मोर मन,
केन मनोमोहन नामटि धराय।
मन माझे येन कार डाक सुना जाय॥'

भाव-समाधिस्थ बाउल
मानिक सरकार का एक रेखा-

चारों ओर के कोलाहल में उसकी तन्मयता कुछ विचित्र ही थी—मानो वह किसी और लोक में पहुँचकर न जाने किसकी पुकार से व्याकुल हो। वैष्णवी का चेहरा, उसकी तन्मयता, उसकी बन्द आँखों से अश्रुओं की धार इन सब ने मेरे मन में एक अमिट चित्र बना दिया, जो आज भी वैसे ही उज्वल है। बाउल गीतों के प्रान्त में मेरा जन्म हुआ। बचपन से बाउलों और उनके गीतों के साथ मेरा अन्तरंग परिचय भी है परन्तु उस वैष्णवी के मुख से सुने हुए उस वर्षा-रात्रि का बाउल-गीत आज भी भूलता नहीं। जीवन भर उसकी आवेगमय पुकार मेरे मन को उन्मना करती रहेगी।

शहर से दूर गाँव के एकान्त में रहनेवाले हैं ये बाउल-पंथी, जिनके गीतों को बाउल गीत कहा जाता है। ये लोग

ने के साथ एक तार का एक साज बजाते हैं, जिसे एकतारा या गोपी-यन्त्र कहते हैं न गीतों की भाषा जितनी ही सरल होती है, भाव उतना ही आध्यात्मिक रहस्यपूर्ण। लोग समाज के निम्न स्तर के हिन्दू या मुसलमान होते हैं—हिन्दू बाउल अधिकतर वैष्णव और मुसलमान बाउल सूफी। आउल-बाउल, दिवाना, बावरा आदि नके विभिन्न प्रकार भी हैं। बिचित्र है इनकी जीवनयात्रा; विचित्र हैं इनके आचार-यवहार। अधिकतर ये लोग 'सहजिया' होते हैं। बंगाल के बाउल गीतों का ऐसा विचित्र आवेदन है कि वह सुननेवालों के मर्म को स्पर्श कर गहराई तक पहुंच जाता है। जैसे शब्द, वैसी धुन। साथ ही साथ गानेवाले की विचित्र तन्मयता, जो योगी की भाव-समाधि के सदृश है।

बाउल गान की सांस्कृतिक विशेषता

"हमारे देश के इतिहास-प्रयोजन के बीच ही नहीं, मनुष्य के अन्तरतम गम्भीर सत्य के बीच में भी मिलन-साधना चली आ रही है। बाउल साहित्य में बाउल सम्प्रदाय की वही साधना देखने को मिलती है। यह हिन्दू-मुसलमान दोनों की ही वस्तु है, इसमें कोई किसी दूसरे को आघात नहीं पहुँचता। इस मिलन में सभा-समिति की प्रतिष्ठा नहीं हुई। इस मिलन में गान जाग उठा है। इस गान की भाषा और सुर अशिक्षित माधुर्य के कारण कितने सरस हैं। इस गान की भाषा और सुर में हिन्दू और मुसलमान का कंठ मिला है, कुरान-पुरान का झगड़ा बाधा नहीं बना। इस मिलन में भारतीय सभ्यता का यथार्थ परिचय है, विवाद-विरोध की बर्बरता नहीं। बंगाल के गम्भीर ग्राम-चित्त में उच्च सभ्यता की प्रेरणा, स्कूल कॉलिज से अगोचर रहकर अपना काम अपने आप कैसे करती आ रही है, कैसे वह हिन्दू-मुसलमान के लिए एक ही आसन रचने की चेष्टा करती है, इन बाउल गीतों में उसी का परिचय मिल सकता है।" —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

बंगाल के हृदय के मर्म-कोश का मकरन्द है यह बाउल गीत। शिक्षित समाज ने यद्यपि इसे अपनाया है परन्तु यह है बंगाल की—विशेष कर पूर्वी बंगाल की—दीन-हीन, अशिक्षित जनता की मर्मवाणी। इन गीतों के शब्दों में गम्भीर आध्यात्मिक भावना के साथ ज्ञान के तत्त्व तथा उदार सार्वजनिक मतवाद ओत-प्रोत हैं। इनमें एक विचित्र विशाल, उदार दृष्टिकोण है जो किसी भी जाति, सम्प्रदाय या धर्मभाव से प्रभावित नहीं हुआ। सब प्रकार की संकीर्णता से ऊपर इन गीतों में एक ऐसी सार्वजनिक पुकार है जिसे मानवात्मा की ही चिरन्तन पुकार कह सकते हैं। सम्प्रदायों में, विभिन्न धर्ममतों में हैं केवल द्वन्द्व, कलह, ईर्ष्या अथवा पारस्परिक अविश्वास। किन्तु बाउल सदा सर्वत्र यही गाते हैं:—

'(मोर) जाइते तो चाय ना रे
मन मक्का मदीना।

(एइ जे) बन्धु आमार आछे, आमि रइबे तारि काछे
(आमि) पागल हइताम दूरे रइताम
तारे चिनताम रे यदि ना।
(आमार) नाई मन्दिर कि मसजिद
नाइ पूजा कि बकरीद
तिल तिले मोर मक्का काशी
पले पले सुदिना॥'

मानुष के हृदय में परमात्मा की पुकार पहुँचती है परन्तु मानुष परमात्मा के निक
जा नहीं सकता। पद-पद पर बाधाएँ, पद-पद पर नाना विघ्न। सहज सुन्दर मार्ग से म
चल ही नहीं सकता, क्योंकि विविध धर्म हैं उस सहज-मार्ग की प्रधान बाधा। मनुष्य धर्म
का आश्रय लेना चाहता है परन्तु वहीं उसको सबसे अधिक निराश होना पड़ता है।
बाउल का मत है :

'(तोमार) पथ ढाइकाछे मन्दिरे मसजेदे।
(तोमार) डाक सुने साँई चलते ना पाइ
रुइखा दाँड़ाय गुरुते मरशेदे॥

डुइबा जाते अंग जुड़ाय,
तातेइ यदि जगत् पुड़ाय,
ब'ल् तो गुरु कोथाय दाँड़ाय
अभेद साधन मरलो भेदे॥

तोर दुधारेइ नानान् ताला
पुरान, कोरान, तसबी, माला
भेख पथइ तो प्रधान ज्वाला
काइन्दा मदन मरे खेदे॥'

धर्म का पथ विधि, विधान, रीति, नियम से अवरुद्ध है। वहाँ सहज, सुन्दर, न-
भाव का अंकुर कैसे उग सकता है? उस पथ पर जो चलता है वह जीवन के अमृत को नहीं
पाता। निडर होकर विधि विधान के बंधन तोड़ने का साहस जिसमें है वही सच्चा
पथिक रसराज का दर्शन पाता है और वही है वास्तव में बाउल।

बाउल कहता है कि एक कलश जल सिर पर ढोना कठिन है परन्तु समुद्र में डूबना । पूर्ण साधना में कोई बाधा, कोई भय नहीं है । वह तो पूर्णानन्द है । जैसे :—

'पूरा साधन साधछो यदि
धरछो ना आर कोन धार,
भाँगा साधन विषम बाँधन
आधार बाधार नाइरे पार ॥'

समाज में मनुष्य का जीवन आचरण-नियमों से जकड़ा हुआ है। इसीलिए सन्यास लेने से पहले अपना श्राद्धसंस्कार करना आवश्यक समझा जाता है। बाउल-पंथी भी और जीवित रहते हुए सामाजिक दृष्टि में मृत है। तभी वह बाउल यानी पागल है क्योंकि पागल का कोई सामाजिक बंधन नहीं है और बाउल न होकर इस पथ से मानव जीवन के चरम लक्ष्य पर पहुंचना असमव है ।

तभी तो बाउल गाता है:—

'ताइ तो बाउल होइ नु, भाई ।
लोकेर वेदेर भेद विभेदेर
आर तो दाबि दावा नाइ।
नाइ हाकिम हुकुम जुलुम नेम रीति,
निजानन्दे चलि सदाइ आत्मभाव प्रीति,
प्रेम योगेते नाइ रे वियोग
सबार साथे नाचि गाइ।'

बाउल ने इस परम सत्य को जाना कि विधि-विधान, रीति-नियम तुच्छ हैं, मानव का सार सत्य है सच्चिदानन्द की प्राप्ति। और शिशु के सदृश सहज व सहज होने से परमानन्द की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। बाउल चेतावनी देता है :—

'यदि भेटचि सेइ मानुषे
तबे साधने सहज ह'बे
तोर जाइते ह'बे सहज देशे।'

यही है संसार का, मनुष्य जीवन का, सार सत्य और यह सहज तत्व ही है विश्वेश्वर । बाउलों के सहज मार्ग से मनुष्य सहज ही आप्तकाम हो जाता है। मानुष ही

सब कुछ है—मानुष के भीतर ही विश्व ब्रह्मांड का सब सत्य प्रच्छन्न है। मनुष्य बाउलों की श्रेष्ठ साधना व श्रेष्ठ सिद्धि। उनका आदि भी मानुष, अन्त भी मानुष। बाउल गाता फिरता-'आमि कोथाय पाब तारे, आमार मनेर मानुष जे रे।'

'आद्य अन्त एइ मानुषे, बाइरे कोथाओ नाइ।
आचार विचार धोखाबाजी, भुलिछ नारे भाइ।
तन्त्र-मन्त्र वेद पुराने, घुराय केवल नानान् टाने
योगी यागी तीर्थे स्नाने।
(सेइ) सहज मानुष रे हाराइ।
जातेर पातेर परदा ढाका, मिथ्या अन्ध हइया थाका
(ताइ) सहज मानुष देय ना देखा
(तारे) सहज बिना केमने पाइ।
ध्यान ज्ञान प्रेम योगानन्द
मानुष नाइले केवल धन्ध
सिद्धि साधन रस आनन्द
मानुष छाड़ा किछुइ नाइ।'

सब रहस्यों का मूल समाधान भी मनुष्य के भीतर ही है। शास्त्रों में, धर्म इस रहस्य की कुंजी नहीं मिलेगी। मनुष्य के मन की बात, उसकी आशा, साधना, सिद्धि, सुख-दुख, प्रेम-अनुराग, स्खलन-पतन इत्यादि का हिसाब किस मिल सकता है? बाउल वाणी है:—

"किसी के हिसाब के वही-खाते में क्या उसके हृदय की खबर मिल सकती है? उसके सुख दुःख, स्नेह-प्रेम, दुनियाँ के खातों में नहीं लिखे जाते।"

बाउलों की इस सहज भावसाधना में एक विचित्र लीलामयी शक्ति है। उनकी अधिकतर भावनायें मन की गहराई में प्रच्छन्न रहती हैं। उस गहराई में ही है उनकी पूजा, उनकी साधना। वे कहते फिरते हैं:—

आछे तोरि भीतर अतल सागर
तार पाइलि ना मरम
तार नाइ कूल किनारा शास्त्र-धारा
नियम कि करम।

इन बाउलों का न मठ है न मन्दिर, न देव न देवी। सब प्रकार के बंधन

ागल साधकों ने अपने मनोमन्दिर में देवता के आसन पर मनुष्य को बिठाया।
ों की अन्तरात्मा का ध्यान ही है इनकी योग-साधना। श्वास-श्वास की अरूप माला
ाना रहता है इनका अजपा जप। ये लोग गुरु मानते हैं परन्तु इनके गुरु केवल पथ
ाज देते हैं। इनके व्यक्तित्व को प्रभावित नहीं करते। साधक की अन्तरात्मा को
कर देना ही गुरु का कार्य है। आत्म-साधना से ही साधक अमृत की खोज पाते
यही है बाउलों का धर्ममत। दत्तात्रेय के समान वे कहते हैं कि, 'गुरु अगणित' हैं।
। ज्ञान का एक कण, पथ का थोड़ा-सा भी इशारा मिलता है वे सभी गुरु हैं।

ाउलों की यही विशेषता है कि वे अपने गीत, अपना परिचय लिखकर नहीं रखते।
ते हैं: 'नदी में सहज गति से जो नाव चली जाती है उसको गति का क्या कोई
रहता है? हम भी सहज मार्ग के राही हैं। हम अपना कोई चिन्ह नहीं छोड़ना
।' इसलिये बाउलों के कोई शास्त्र, कोई पोथी-पुस्तक नहीं है। इनके गीतों का भंडार
कंठ में ही रहता है। यह दूसरी बात है कि कोई उनका संग्रह कर उनको पुस्तका-
में बाँध ले।

न्तोष की बात है कि अध्यापक मन्सूरुद्दीन द्वारा संगृहीत और सम्पादित बँगला
साहित्य के श्रेष्ठ संकलन 'हारामणि' में अनेक बाउल गीत प्रकाशित हो चुके हैं।

ाल ही में अध्यापक उपेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा संगृहीत और सम्पादित वृहत ग्रन्थ
ार बाउल ओ बाउल गान' [ओरिएन्ट बुक कम्पनी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित] भी
काव्यधारा को आगे बढ़ाने में समर्थ हुआ है।

यक्ति-स्वातन्त्र्य के इस युग में सहज मानव-धर्म के प्रति तो मनुष्य का मन खिंच
ा है। इस सहज साधना में बाउलों का सदा दान अमूल्य रहेगा। इसलिये उनके गीत,
ा परिचय संसार से लुप्त न हो जाय इसके प्रति विशेष ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है
के प्राचीन बंगाल की अध्यात्म-साधना के एक विशिष्ट भाव-ऐश्वर्य के एक मात्र
ाधिकारी हैं ये बाउल साधक।

एक समाधि

सुदर्शन सिंह मजीठिया

चाँदनी झेलम की लहरों के साथ खेल रही थी। उन पर नावों की एक क
चली जा रही थी। अपनी भाषा में नावों पर बैठे लोग गीत गा रहे थे। मैंने नावि
से पूछा, 'ये क्या गाते हैं ?' नाविक हँस पड़ा। 'क्या करोगे सुनकर ?' वह झेल
के पानी को देखता रहा। 'बताओ वे क्या गाते हैं ?' मैंने फिर पूछा।

उसने कहा, वे गाते हैं :—

'उठे तूफ़ान हैं ....मंजिलें दूर हैं।'

नाविक के स्वर झेलम पर से बहने वाली हवा के साथ बह गये। इन अनेक नावों पर अफ़ीदी लदे हुए थे। झेलम का सौंदर्य खिल रहा था। शायद इसीको देखकर मुग़ल सम्राट् जहांगीर ने कहा था कि, 'पृथ्वी पर यदि कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है।'

मैं उन अफ़ीदियों का क़ैदी था। मुझे पकड़कर वे अपने देश ले जा रहे थे। सुना था कि, जो भी आदमी इन अफ़ीदियों द्वारा पकड़ लिया जाता है वह या तो गुलाम बनाकर रख लिया जाता है या उनकी जिन्दगी ही ख़त्म कर दी जाती है। शायद यह मेरा अंतिम दर्शन था झेलम का।

ी छः फूट का एक हट्टा-कट्ठा पठान
ी नाव चला रहा था। वह मेरी
समझता था इसलिए उसे मुझसे
ते थी। सरदार की अंगारों के
दमकनेवाली आँखों को देखकर
ग उड़ जाते थे। उस दिन कई
ा हुआ सरकारी माल और कैदियों
: झेलम के पार जा रही थीं।
नाव मुझसे कुछ दूर ही थी।
ा मैंने वंशी उठायी और रात्रि
नता को चीरता हुआ अपना स्वर
ा। उस समय रात्रि का तृतीय
म्भ हो रहा था। सरदार ने
ाव मेरी ओर कर कहा, "कैदी,
मी बजा लेता है?"

ज़ूर, कैदी बड़ी ही बेहतरीन बांसुरी
ै।" उस पठान ने कहा और मेरी
कर वह हँसने लगा। मैंने अपनी
बन्द कर दी। सरदार ने कहा,
यों नहीं, कैदी?' मुझे क्रोध आ
ा कहा, 'सरदार, तुम्हारी हुक्म मेरे
र हाथ चला सकता है, दिल
। गाना या न गाना मेरी अपनी
। कैदी अब नहीं गाएगा।' 'इसका
रवाना ही दे सकेगा।' सरदार
जवाब था। उसने अपनी नाव मेरे
हटा ली, किन्तु उस पर से मैं
ांखें नहीं हटा सका क्योंकि मेरी
हीं जाकर उस स्त्री पर टिक गई
सरदार के पास बैठी मुझे देख
। उसके सौन्दर्य ने मेरे हृदय में
को-सी सिहरन पैदा कर दी थी।

मैंने उस पठान से पूछा, 'सरदार के साथ वह कौन है?'

पठान ने कहा, 'वह सरदार की इकलौती लड़की है। मा मर चुकी है। सरदार उसे अपने साथ रखता है। वह औरत है किन्तु मर्दों से भी ज्यादा ताकतवर है। कई बार उसने सफलता-पूर्वक छापे मारे हैं। उस स्त्री की छाया मेरे हृदय को छू गई। मैं झेलम की ओर ताकता रहा। नाविक ने पूछा, 'क्या देखते हो?'

'लहरों की तरह उठकर गिरना ही तो आदमी की जिन्दगी है।' मैंने कहा।

'ठीक कहते हो।' वह बोला।

एक अंधेरी कन्दरा में मुझे फेंक दिया गया। पहाड़ियों से घिरे उस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में निर्जनता ही बसती थी। सुरक्षा की दृष्टि से अफ़रीदियों की यह जाति ऐसे ही प्रदेश में बसती है। ये लुटमार कर अपना गुजारा करते हैं। मैं जिस रास्ते से आया था उसका बिल्कुल पता नहीं था। लेकिन मुझे रोज ही थोड़ा-बहुत रूखा-सूखा खाना जरूर मिलता था।

एक दिन सरदार ने मुझे बुलवाया और पूछा, "कब तक इसी तरह क़ैदख़ाने में पड़े रहोगे?"

"जब तक आपकी मेहरबानी होगी।"

"जब तक दौलत का पता नहीं बताओगे इसी तरह दिन काटने होंगे।"

"मुझे किसी की दौलत का पता नहीं। मैं तो पुलिस का सिर्फ़ एक अधिकारी हूं।"

"सो हम कुछ नहीं जानते।"

कैदखाने में ही मेरा सारा समय बीतता था। अधेरे में पड़ा-पड़ा मैं वंशी बजा लिया करता था। प्रहरी उसे ध्यान से सुनता। उससे मेरी मित्रता हो गई थी। रोज रात्रि के प्रथम प्रहर की समाप्ति पर अफ्रीदियों की महफिल एक विशाल पेड़ के नीचे लगा करती। उसमें वे गाते-बजाते। एक दिन मुझसे भी वंशी बजाने को कहा गया। मैंने दिल खोलकर वंशी बजाई। मैंने जो कुछ भी बजाया वह उनके पूरा पल्ले पड़ा नहीं लेकिन उन्होंने उसमें काफी मजा लिया। सरदार की लड़की भी बड़े ध्यान से सुनती रही थी।

महफिल में मुझे रोज निमंत्रित किया जाता। इसी तरह एक माह व्यतीत हो गया। उस स्त्री के प्रति मेरी उत्सुकता काफी बढ़ गई। परन्तु उससे मिलने का मौका हाथ कभी नहीं लगा।

"सखि, पुरुषों की प्रीति का क्या विश्वास ?"
एक पोलिश व्यंग-चित्र

एक दिन सरदार ने मुझे अपनी कन्दरा में फिर बुलाया। काफी खिलाया-पिलाया और अचानक मेरी ओर मुड़कर कहा, "ज्वान, तुमने 'उस' सरकारी दौलत का पता नहीं बताया।"

"सरदार, आपका शुबहा बिला वजह है। मुझे किसी सरकारी दौलत का पता नहीं। इस मामले में मुझसे उम्मीद मत रखो।"

उसने त्यौरियाँ चढ़ा लीं। अंगारों की तरह उसकी आँखें जल उठीं। उसने कहा, 'कैदी, बहुत दिन हो गए तुम्हारा मुँह देखते-देखते। आज से दो दिन के अन्दर अगर नहीं बता सके सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा। समझे।'

मेरी आँखों के सामने अँधेरा-सा छा गया। उसी समय मुझे कैदखाने में बन्द कर दिया गया। जिन्दगी की उस काली गुफा में समाप्त हो चुकी है। चारों ओर अँधेरा। सामने, गुफा में और मेरे मन में चारों ओर अँधेरा ही था। उस अंधकारमय जीवन पर मैं दिन भर सोचता रहा और भूखा रहा। अंतिम रात सामने आ गई। वह मेरी जिन्दगी की आखिरी रात थी।

मेरे मन में तूफान उठा था, कुछ भी नहीं सूझ रहा था। कभी इधर घूमता, कभी उधर। जिन्दगी की कीमत समझने का उस दिन मौका मिला। इससे पहले एक पुलिस अफसर की हैसियत से, सरकारी नौकर की हैसियत, से मैंने कईयों फांसी के तख्ते तक पहुँचा दिया था। आज पता लगा कि इस

ें पर जीवन के अंत समय में क्या
:।
' जिन्दगी का भार मैंने तीस वर्षों
केया, सबेरे उसका अंत हो जाने
। आधी रात तक उस छोटे से
े रोशनी में बैठा, उसे ही एकटक
हा मैं।
का दूसरा प्रहर बीत गया। तीसरा
।। बस मौत के दो प्रहर और
। मैंने आँखें पोंछी और सामने
टक खुल रहा था। मेरा चेहरा फक
।। क्या जल्लाद अभी से आ

काली छाया अन्दर घुसी।
पहचान नहीं सका। वह मेरी
ग' बढ़ी चली आ रही थी। मै
(मी पूछा, 'कौन···है।'
र नहीं मिला। मेरे स्वर काँप रहे
ने फिर पूछा 'कौन ?' उसने अपने
कपड़ा हटाते हुए कहा, "पहचाना ?"
ने तो मैं उसे एकटक देखता रहा।
ने आँखें नीची कर लीं। यह तो
की लड़की थी!
ने कहना शुरू किया, 'कैदी, जानते
तुम्हारी जिन्दगी की आखिरी रात
ने उसके चेहरे को देखा। चिंता
रासी को रेखाएं उसके मुख पर
।
ने कहा, 'जानता हूँ।'
दौलत का पता बता कर जिन्दगी को
क्यों नहीं नहीं कर लेते? जान-
र मौत से क्यों खेलते हो।' मैंने

सोचा, वाह री नारी! आधी रात के समय दौलत का पता पूछने आई है। जो काम बाप से नहीं हुआ उसे यह पूरा करने आई हैं। मैंने कहा, "आधी रात के समय हमदर्दी तो आपने काफी जताई। मैं इसका शुक्रिया अदा कर सकता हूँ। लेकिन धन का सुराग पाने की कोई उम्मीद बेकार है। इस गरीब की क़िस्मत में मौत ही लिखी है।"

वह काफी देर मौन रही। फिर उसने कहा, "कैदी, यदि तुमको इस समय छोड़ दूँ तो क्या करोगे?"

मेरे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। मैंने कहा, 'जन्म भर आपका अहसान मानूंगा।'

"मैं जाने·· देती...लेकिन", वह रुक गई।

'लेकिन क्या!'

"लेकिन कैदी, तुमको न पाकर तलवार मेरी गरदन पर चलेगी।" सुनकर मैं असमंजस में पड़ गया। उसने फिर कहा 'तुम मेरी जिन्दगी बचाओ, मैं तुम्हारी जिन्दगी बचाती हूँ।'

मैं समझा नहीं।

'मैं चुपचाप चली आई हूँ। तुम जहाँ भी जाओ मुझे भी वहीं ले चलो। बोलो, है, मंजूर?'

मैंने कहा, 'हाँ, चलो।'

'आओ, मेरे पीछे-पीछे ..' मैं उसका हाथ पकड़े हुए उबड़-खाबड़ जगह में मैं बढ़ता गया और न जाने किन-किन रास्तों से वह निधड़क इस अंधेरी रात में बढ़ी जा रही थी।

आखिर, वह सवाल जिसने मुझे शुरू से ही परेशान किया था,

पूछ ही डाला, "तुम्हें क्या जरूरत थी अपने घर से भागने की ?" उसने मेरी तरफ मुड़कर कहा, "हर किसी के पास दिल होता है। उसमें मुहब्बत होती है। मुहब्बत अमीर भी करते हैं, गरीब भी। फर्क इतना ही है कि अमीरों की मुहब्बत अपनी मौत के बाद ताजमहल सरीखी कोई चीज छोड़ जाती है और गरीबों की मुहब्बत श्मशान की धूल की तरह उड़ जाती है।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

मैं अपने शहर में आ गया। उसे मैंने बहाना बनाकर एक जगह ठहरा दिया। कैदखाने की जिन्दगी मैं अभी तक भूला नहीं था। मैं जानता था कि जब तक यह औरत यहाँ है, किसी भी वक्त मौत या मुसीबतें आ सकती हैं। इन वहशी औरतों का क्या भरोसा ? वह मेरी ओर भले ही काफी खिंची थी लेकिन उससे बात करने में भी मेरा दिल काँपता था। डी० एस० पी० के आते ही ही मैंने सारा हाल कह दिया। सबने मेरे साथ हमदर्दी जताई और उस औरत को गालियाँ सुनाईं। किसीने कहा, 'ये जंगली औरतें भी क्या मुहब्बत का ढोंग करती हैं !'

वह मुझे ऐसे टेढ़े-मेढ़े रास्तों से लाई थी कि मुझे पता नहीं था, अन्यथा मैं पुलिस के सिपाही लेकर उन डाकुओं का नामोनिशान तक मिटा देता।

मेरे कई साथी मारे गए थे। अतः पुलिस ने उस औरत को हिरासत में लेकर उस पर मुकदमा दायर कर दिया।

'कोर्ट में जब तक मैं इतना रहा, वह मुझे घूरती रही। माह तक चला। उसे फाँसी की उसने अपनी ओर से कुछ भी दिया। न सरकारी अपील की फाँसी की सजा का हुक्म पाकर आँखें पहले जैसी ही चमक रही थीं।

'फाँसी से एक दिन पहले मिलना चाहा। इच्छा न रहते हुए जब मिलने पहुँचा, तब उस 'गुफा' की बातें याद है न ...'

'हाँ।' मेरा उत्तर था।

'मुझे अब फाँसी दी जाएगी। क्या तुम एक बार वह गीत नहीं जो पहले दिन नाव पर गाया था !'

सभी विस्मित थे कि फाँसी के पर भी जाकर यह औरत इतनी क्यों थी।

मैंने बाँसुरी उठाई और तान गीत का भाव था :

"मेरे देव मुझे शरण चाहिए।' वट वृक्ष से सरिता ने कहा।

'कैसी शरण ?' वृक्ष ने पूछा।

'मुझे अपने पैरों के पास में आज्ञा दीजिए। मुझे शरण चाहिए'

वृक्ष ने अनुमति दे दी। से बहने लगी।

परन्तु एक दिन जड़ों की सब मिट्टी बहा ले उस सरिता की धारा में गिर

गिरते-गिरते उस वृक्ष ने

एक

ऐसे ही एक अन्य वृक्ष से फिर शरण
ही है।" मेरा गीत समाप्त हुआ और
आँखों से आंसुओं की बूँदे गिर
उसने कहा "हम जंगली हैं, वहशी हैं
दगाबाज नहीं।" उसके बाद वह
गई। उसके शब्दों की अपेक्षा
आखों की मौन भाषा कहीं तेज
मैं अन्दर ही अन्दर तिलमिला गया।
सने सिर्फ इतना कहा, "कैदी मुझे
होने जा रही है। मेरे मरने के बाद
व लेने तो कोई आएगा नहीं। तुम
माधि उस देवदारु के नीचे बनवाना।
त्यु के बाद मेरा प्रेम जीवित रहेगा।
दि कभी फुर्सत हो तो उस समाधि के
तान छेड़ दिया करना। प्रेतावस्था
मुझे उससे शांति मिलेगी। जितनी
तुम यह गीत गाओगे उतनी ही बार
मुझे शान्ति मिलेगी।"

वह पुलिस के सख्त पहरे में थी। फांसी का समय हो रहा था। पुलिस उसे लेकर चली गई और उसे फांसी हो गई।

मैंने खास तौर से दरख्वास्त की तो सरकार ने अन्तिम संस्कार के लिये उसकी लाश मुझे सौंप दी।

आज इस बात को दस साल बीत चुके हैं। देवदारु के नीचे उसकी सफेद समाधि आज भी बनी है। कभी मैं वहां वंशी बजाता हूँ तो दिल भर उठता है और जब कोई मुझसे पूछता है कि देवदारु के नीचे यह किसकी समाधि है तो मैं कह देता हूँ: "किसी फकीर की, जिसक जीते-जी मैं नहीं समझ सका था कि वह कितने बड़े दिल का है।" * * *

सदा कुँवारा रहने की वजह

ांस के भूतपूर्व परराष्ट्र मन्त्री श्री शूमाँ से एक बार पूछा गया, "आपने अभी तक
क्यों नहीं किया? क्या आप सदा कुँवारे रहना चाहते?"
ी शूमाँ ने उत्तर दिया, "मैं एक बार पातालगामी मार्ग के एक प्लेटफार्म पर
था। भीड़ बहुत ज्यादा थी और लोग एक-दूसरे पर गिरे पड़ते थे। इतने में मेरे
बड़े जूते से पास ही खड़ी एक महिला का पैर कुचल गया। वह चिल्ला उठीं और
भ-शब्द भी कहे। लेकिन ज्यों ही मेरे चेहरे पर नजर पड़ी, त्यों ही वे बोलीं:
'क्षमा करें। मैं समझी कि आप मेरे पति हैं!'
ैंने तभी से आमरण अविवाहित रहने का निश्चय कर लिया।

ौनसिंह मजीठिया:

दान वीर करण

तीन महीने हुये होंगे इस बात को। नौकरानी उस दिन फिर देर से आई। ले घर में गंदे बरतनों की ढेरी लगी थी। मैं ने उसे डाटा, "तुम नौकरी करती हो अफसरी! समय पर नहीं आ सकतीं तो हम कोई और प्रबंध कर लें!"

इस पर मेरे देवता स्वरूप पति मुझे समझाने लगे, "क्यों धमकाती हो बेच को! किसी खास बात ही से देर हुई होगी!"

मैं जवाब में कुछ कहने ही को थी कि रसोई घर से कुछ टूटने की आवाज आ मैं भागी भागी गई। फर्श पर एक बड़ी प्लेट चूर चूर पड़ी थी। अब मैं क्रोध विविश हो गई। "अपने बाप का घर समझा है क्या? एक रुपये की प्लेट थी, तुम्हारी तनख्वाह से काटूंगी!"

मेरे रहमदिल पति फिर बीच बचाव के लिए आ पहुँचे, "पांच में से एक रु काट लोगी तो बेचारी के पल्ले क्या पड़ेगा!"

मैं ने तीखेपन से जवाब दिया, "गरीबों से हमदर्दी तो आप की घुटी में पड़ी आप क्या दान वीर करण से कम हैं!"

इतने में गली से चीनी कांच के बरतन बेचने वाले की आवाज़ आई। उ फटी पुरानी पतलूनें कमीज़ें ले कर मैं बाहर जाने को थी कि उन्हों ने अपने को स्वर में मुझे पुकारा "इन चीथड़ों से तुम्हें क्या मिलेगा—एक प्लेट या गिलास इस से तो अच्छा है कि ये कपड़े किसी अनाथ आश्रम में भेज दो—कुछ काम आयेंगे!" उन्हीं पांव पलट कर मैं ने कपड़ों को अलमारी में पटका और उन के पा जा कर, जल के, बोली, "गरीबों अनाथों का ऐसा ही दर्द है तो खूबसूरत प्लेटें क्या ज़रूरत है! आप केले के पत्तों पर खाइये और भिखमंगों को दावतें पर बुलाइये"

दावत से जैसे उन्हें कुछ याद आ गया, बोले, "रामेश्वर को जानती हो

ारा में हम पास पास रहते थे। वह अब यहीं आ गया है। मैं ने उसे और उस परिवार को अगले हफ्ते खाने पर बुलाया है।"

"आप से यही आशा थी!" मैं ने छूटते ही कहा, "आप सचमुच दान वीर करण हैं! हर मुसाफिर आप का मित्र है, हर आते जाते से आप का नाता है! आप को घर चलाना पड़े तो इस दरियादिली का भाव मॉलूम हो!"

बड़े संतोष से उन्हों ने मुझे जवाब दिया, "लोगों से दोस्ती तो कोई ऐसी दरियादिली की बात नहीं! वक्त पड़े तो दोस्त काम आते हैं। और कई बार उन से कई काम की बातों का पता चलता है। अब उस दिन रामेश्वर के घर बैठे बैठे उस से खान पान और तंदुरुस्ती के बारे मे बातें होने लगीं। मुझे पता चला कि वे अपना सारा खाना 'डालडा' वनस्पति में पकाते हैं। उस ने बताया कि 'डालडा' में पका हुआ खाना पौष्टिक भी होता है और स्वास्थ्य के लिए गुणकारी भी।"

मैं हैरान रह गई। मेरे काम काज में हाथ बटाने का भी इन्हें ख्याल रहता है! मतलब की बात सुनते ही मेरा गुस्सा ठंडा होने लगा। स्त्रि की आधी से अधिक जिंदगी तो रसोई घर मे चूल्हे और खाना पकाने ही मे बीत जाती है। इसी लिए तो ऐसी बातों पर झट से उस के कान खड़े हो जाते हैं।

इस बात को आज तीन महीने हो गये हैं। हमारे घर मे उस दिन से 'डालडा' ही इस्तेमाल होता है। उन के मित्र की बात बिलकुल सच निकली। खाना जैसा स्वादिष्ट अब बनता है पहले कभी न बनता था। मैं ने इस का कारण पूछा तो वे बोले, "यह इस लिए कि 'डालडा' में जो भी पकाओ वह अपना असली स्वाद देता है!"

एक दिन मुझे छेड़ने को कहने लगे, "महीने हो गये अब तुम कभी उलझती लड़ती नहीं। और अब तो तुम्हारी तंदुरुस्ती भी पहले से अच्छी है।"

मैं ने चमक कर कहा, "आप को घर मे शान्ति अच्छी नहीं लगती तो मै तय्यार हूं! भगवान आप को बुरी नजर से बचाये, तंदुरुस्ती तो आप की भी पहले से अच्छी है।"

वे बोले, "हमारी तंदुरुस्ती भी 'डालडा' ही के कारण अच्छी हुई है। क्योंकि इस में विटामिन 'ए' और 'डी' मिलाये जाते हैं जो खाने को पौष्टिक बनाते हैं।"

रामेश्वर और उस के परिवार से अब हमारा संबंध बहुत पक्का हो गया है। आए दिन हम उन के यहां होते हैं या वे हमारे यहां। और अगर उन से मिले कहीं हफ्ता भर गुज़र जाये तो मैं अपने पति से यह कहे बिना नहीं रह सकती। वे जैसे इस खबर की राह देखते हों—छूटते ही मुझ पर फबती कसते हैं "तुम क्या दान वीर करण से कम हो!"

★
★
★ 'रॉबर्ट साहब का गृह-त्याग' शीर्षक बँगला एक
★ लम्बी कहानी का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर
★

शंकर

★
★

आप लोगों से मेरा एक अनुरोध है। कृष्णप्राण के कहीं भेंट हो जाय, तो कृपया मुझे एक तार भेज दें। खर्चा मैं वहाँ पहुचते ही चुका दूँगा। (बुरा न मानें, अच्छा होता है।)

कृष्णप्राण की कोई तस्वीर मेरे पास नहीं है, प्रकाशित करा देता। पर उसकी दुनिया यह है: इञ्च लम्बा। सिर पर घुँघराले सुनहले बाल। परिधान— का लम्बा अंगरखा। नंगे पैर, हाथ में एकतारा। नाक, खिंची आँखें। साक्षात श्री कृष्ण, फर्क है सिर्फ सुनहरे रंग और भूरी भूरी आँखों का। उम्र करीब

आप यक़ीन करें, हजार आदमियों की भीड़ में पहचान लेंगे।

कृष्णप्राण से मिलने पर कम से कम मेरे तक जैसे भी हो उसे रोक रखियेगा।

गैर यदि यह बिलकुल ही सम्भव न
बमसे कहियेगा कि मिसेस बनार
ो बहुत दिनों से खोज रही हैं। वे
ो ज्यादा देर तक नहीं रोकेंगी। एक,
एक सवाल पूछेंगी। उसके बाद...
से मिलते ही सवाल करने लगना
नहीं, यह मैं जानता हूँ किन्तु क्या
गारतीय होने के नाते आपको इतना
र तो मि० बनार के प्रति करना ही
।

मिसेज बनार के बारे में आप कुछ
ा ही चाहें तो भारत संस्कृति सोसाइटी
शाक में ५ साल पहले छपा मेरा लेख
। भारत के धार्मिक जीवन को इस
नी के दान की गौरव-गाथा शायद
तक कहीं नहीं प्रकाशित हुई थी
ए मैंने यह लेख स्वयं लिखा था।
बनार का नाम सिस्टर निवेदिता,
मिस मैकलाइड के साथ सदा याद
जायेगा। मैंने तो भारत की प्राचीन
धना के प्रति इतना जीवन्त विश्वास
सी में देखा, न पढ़ा।

मिसेज बनार के साथ मेरा परिचय
ुआ। इसकी भी एक अपनी कहानी
फिर भी आपसे खुलासा किए देता

मिसेज बनार के साथ मुलाकात करने
र्व-प्रेरित होकर ही गया था। पद-
र में बेकार बैठा था। धुन सवार
विलायत जाना चाहिए।

रे चतुर दोस्त शरत ने तो यह भी
था कि 'चलो, खलासी बनकर ही
चलें। लिप्टन साहब भी तो अमेरिका
खलासी बनकर ही पहुँचे थे।' लेकिन मैंने
यही कहकर टाल दिया था कि अब तो
खलासीगीरी मिलना भी आसान नहीं है,
भाई। एक बार तो घर का सन्दूक तोड़ने
की भी इच्छा हुई थी। किन्तु, बाद में समझ
आई कि इससे बहुत हुआ तो बम्बई तक
ही पहुँचूंगा। फिर पासपोर्ट, इन्जेक्शन
सर्टीफिकेट, गारन्टी वगैरा कौन देगा?

अकस्मात् एक दिन शरत ने आकर
कहा कि चल तुझे मिसेज बनार के यहाँ
यहाँ ले चलूँ। मेम साहब बहुत धनी
महिला हैं। आगे-पीछे कोई नहीं है।
वे भारतीयों को बहुत स्नेह करती हैं।

पता नहीं शरत का इनसे किस तरह
परिचय हुआ था। लेकिन लाउडन स्ट्रीट

के एक मकान पर जब हम लोग पहुँचे तब दरबान ने यह कहकर बैठा दिया कि 'मेम साहब पूजा कर रही हैं। आप लोगों को बैठने के लिए कहा है।'

ड्राइंग रूम में बैठते ही मेरी निगाह दीवालों पर टंगी सुन्दर तस्वीरों पर पड़ी। उन्हीं में एक अत्यन्त सुन्दरी किशोरी का तैल-चित्र देखकर मैंने कहा था कि यह शायद माता 'मेरी' का चित्र है। शरत् ने मजाक उड़ाते हुआ जवाब दिया, 'धत् यही तो मेम साहब हैं। इंडिया का भूत सवार होनेसे पहले का चित्र है यह। आज-कल तो दिन-रात इंडिया ही इंडिया करती हैं। कहती हैं, इंडिया ही जगत् को रास्ता दिखायेगी, सारी पृथ्वी क्लान्त होकर इसी से एक दिन करुणा की भीख माँगेगी। पर मुझे तो यह सब सोचने की फुर्सत नहीं, भाई। मै तो पहले विलायत जाकर नट-बोल्ट बनाना सीखना चाहता हूँ। पीछे सोचूँगा इन सब बातों पर।'

इसी समय मेम साहब बैठक में "आगयीं। कहा, 'हलो शरत्'।"

शरत् ने झट से कहना शुरू कर दिया, "इसी को बारे में कहा था आपसे। जब से आपका नाम सुना है तभी से आपके दर्शन के लिए बेचैन था। रोज कहता था, मदाम के पास कब ले चलोगे।"

मदाम थोड़ा हँसी। माथे पर चन्दन का तिलक था। बहुत ही सुन्दर लग रहीं थीं। बोलीं, 'मेरा भी क्या नसीब है, न्यूकासल में ही कोयला भेजना पड़ता है। भारत की, अमृत-सन्तानों को ही यह सिखाना पड़ता है कि तुम ... पुत्राः' हो।"

इसी बीच बेअरा चाय के साथ में बहुत-सा खाद्य—सैंडविच, ... केक। मदाम सब चीजें ... सरकाकर बोलीं, "कितने भाग्यवान् हैं ... सब! You are born in the ... of rebirth."

सैन्डविच मुँह में भरते-भरते ... कहा, "मैं तो पहले इन बातों में विश्वास नहीं करता था, लेकिन अब ...' मदाम जरा असह्य-सा भाव दिखाकर बोलीं ... नो, माई डियर बॉय, तुम विश्वास करो ... It is in your blood, ... विश्वास तुम्हारे अवचेतन में छुपा ...।"

मैं चुपचाप दोनों की बातें सुन रहा था। मदाम कैसा बढ़िया गरद का ... पहने थीं। लगा मानों दीवाल पर टंगे ... सुन्दर तस्वीर के ऊपर किसी ने ... अभिज्ञता का रंग चढ़ा दिया है। ... निष्पाप कैशोर की ... किन्तु प्रज्ञा के आलोक से ... हो उठी है। चेहरे की हर ... विश्वास की छाप थी। इनकी ... क्या होगी। इनके जैसी मेम ... हाफ पैंट पहनकर मैदान में टेनिस ... हैं या घुटने गले को ... पहने ... मोटर दौड़ाती फिरती हैं।

मेम साहब बोलीं, "गीता ... जाति की अमूल्य सम्पदा है। ... पढ़ती हूँ और रोज नयी ... हूँ।"

श्रद्धावश मेम साहब के ...

ताक सका। पैरों की ओर निगाह तो देखा कि बहुत ही पतले धीया क मोजे पहने हैं। कैसे मारी-मारी ं दोनों !

मेम साहब ने ब्लैक ऐण्ड ह्वाइट की टट निकाली "तुम लोग कुछ गलत मझना। यह बुरी आदत विलायत से है। कोशिश करती हूँ अभी छूटी नहीं चांदी के लाइटर से सिगरेट जलायी। बातें शुरू हुईं। भारतीय दर्शन के शरत् का इतना अनुराग पहले कभी देखा था। शाम हो गई और हम लोग लगे तो मदाम ने कहा, "जरा ठहरो, र से कहे देती हूँ तुम लोगों को कुछ क पहुँचा आये।"

गाड़ी में तो कुछ पूछा नहीं। पीछे को पकड़ा तो बोला, 'जो हो भाई, तो विलायत जाना है। किसी तरह ो। सीधी बात है।"

अत्यन्त अच्छी लगीं थी मिसेस बनार । लोभ सवार न सका, कई बार उनके या। सदा आदर पाया, कितनी ही कहीं। कहते-कहते जरा रुकतीं फिर उठतीं, "किन से कह रही हूँ यह सब। ज तो तुम्हारी ही बातें हैं। मैं ही कितना जानती हूँ। पर जानने का कर रही हूँ, मेरे बच्चो। यह जो विशाल है, इसके प्रत्येक तीर्थ में कितने ही की साधना संचित है।'

ने विस्मय से उनकी ओर देखता रह , विदेशिनी होकर भी इतना जानती ब्लैक एण्ड ह्वाइट के टीन से सिगरेट निकाल उसे जलाते हुए मिसेस बनार ने कहा, "जीवन को जानना होगा, स्वयम् को जानना होगा। दुःख की कठोर अनुभूति द्वारा ही उसका आलिङ्गन करना होगा।" और शरत ने तीन सैन्डविच एक साथ मुँह में भर कर कहा, "आश्चर्य, आज कल नवीन भारत इस सत्य की उपेक्षा करता है।"

"कौन कहता है? भारत क्या आज भी बुद्ध के चरणों में श्रद्धांजलि समर्पित नहीं करता? कपिलवस्तु के राजकुमार ने अपने सुख-स्वर्ग को त्यागकर दुःखदग्ध पृथ्वी का आलिङ्गन किया था, इसीलिए तो आज भी उनकी पूजा होती है।" मेम साहब ने सोत्साह उत्तर दिया।

वे अकस्मात बोलीं, "बोधगया देखी है तुम लोगों ने?" नहीं, सुनते ही मेम साहब दो एयर कंडीशन क्लास की टिकिट कटा लायीं। मैंने कहा भी, "फर्स्ट क्लास ही काफी था?" मदाम घबड़ा-सी गयी—"गॉड फॉर्बिड्!—इस क्लाईमेट में फर्स्ट क्लास! अन्त में तुम लोग बीमार पड़ जाओ, तो?"

मिसेज बनार भारत के लिये दोनों हाथों से रुपये खर्च करतीं। पैसे कुछ भी मोह ममता नहीं थी; शरत ने एक बार कहा भी. "ऐसा न करें। 'आगे नाथ न पीछे पगहा।' अगाध सम्पत्ति का क्या उपयोग करेंगी? बस, मैं किसी हिन्ट्स दे दूँ, यही फिक्र है मुझे तो। तुझे हिन्ट दिए देता हूँ। मेम साहब, ... मुझसे ज्यादा तुझे ही स्नेह करती बस, मुँह खोलकर एक बार अपनी

कइ डाल। कुछ भी रुका न रहेगा।"

लज्जा और घृणा से मैंने सर नीचा कर लिया। किसी के विश्वास, और श्रद्धा का फायदा उठाकर उसे ठगना! शायद पहले करता भी। किन्तु मिसेज बनार ने तो मेरी अन्धेरी ज़िन्दगी में सत्य का दीपक जला दिया था।

एक दिन शरत ने कहा, "भले ही अंग्रेजी 'पर्न्ह' नहीं जानता होऊँ। किन्तु देख 'मैनेज्' कर लिया। मेरी बात सुनकर पहले तो मेम साहब ने कहा कि 'विलायत में क्या सीखोगे? वे ही तुम लोगों के चरण-तले बैठकर सीखेंगे एक दिन। वह दिन ज्यादा दूर नहीं है अब।' मैं भी तो कम चालाक नहीं हूँ। स्वामी जी के वचन कण्ठस्थ कर रखे थे, 'नया हिन्दुस्तान सारे यूरोप को अपनी वाणी सुनाये।'

इसके बाद मेम साहब ने ननुनच नहीं की। कह दिया, "अपने जाने का प्रबन्ध करो। मैं रुपया दूँगी। It is my duty aud I will."

टूरिस्ट क्लास में शरत् के जाने की बात सुनकर वे खूब नाराज हुईं। "मेरे चालीस पौंड बचाकर क्या नफा होगी?" फिर उन्होंने खुद ही टॉमस कुक को टेलीफोन कर पी० एण्ड ओ कम्पनी के जहाज में केबिन रिज़र्व करा दिया।

शरत् के जाने के बाद मैंने मेम साहब के यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। बड़ा बुरा लग रहा था। इच्छा करता तो मैं भी विलायत जा सकता था।

किन्तु समय के साथ सब भूल गया।

एक दिन शाम को मिसेज बनार के ... खुद ही आ पहुँचा। तब यह ... था कि उसी दिन रॉबर्ट साहब ... मेरी मुलाकात हो जायगी!

उस दिन मेम साहब ... गीता पढ़ रहीं थीं। मुझे देखते ही ... बन्दकर कहा, "क्या हाल है? ... खबर भी नहीं दी। सोच रही थी ... गया तुमको?"

मैंने कहा, "तबियत ठीक नहीं ... आपका क्या हाल है?" मेम ... कहा, "अच्छा ही किया तुमने ... आकर। इतने दिनों तक रॉबर्ट से ... करते-करते थक गयी थी।"

रॉबर्ट को मैं नहीं जानता था। ... साहब से सुना था कि महीने ... वह कलकत्ते आया है। ... नया ऑफिसर है। ... बी० ए० पास कर सीधा ... आया है।

"अजीब लड़का है। ... तरह निष्पाप। पर ... पहले-पहले घर से यहाँ आने ... यह वर्ग उसके लिए बड़ा ... इन टाइपिस्ट लड़कियों के ... है। फिर क्या, बस हर शाम ... स्ट्रीट में गाड़ी लिये ... किसी न किसी लड़की को ... किसी 'बार' में जा बैठेगा।

वैसे लड़का अच्छा है, ... पर बिगड़ते कितनी देर ... इसीलिये भारत के प्रति उसकी ...

की कोशिश में हूँ। उसे भारत की
का ज्ञान होना ही चाहिये। किन्तु
बन्ध में वह एक अजीब-सी धारणा
गया है। किसी तरह भी कुछ
नहीं चाहता।"

य आ गयी मेम साहब ने केक मेरी
ढ़ाया ही था कि बाहर मोटर की
सुनाई पड़ी।

बर्ट साहब ने कमरे में प्रवेश किया।
म साहब हँसी, कहा, "बहुत बड़ी उम्र
म्मी तुम्हारी ही बात हो रही थी।"
गत होने के साथ बहुत दिन बचने
सम्पर्क?" रॉबर्ट साहब ने सोफे
ते-बैठते पूछा।

साहब ने परिचय कराया। परिचय
रॉबर्ट की ओर चाय का प्याला
ए मेम साहब ने कहा, 'शंकर किन्तु
ऐसा गँवार नहीं है। मेरी बातें
सन्द करता है।"

किये सुनहले बालों में अगुली चला
र्ट साहब बोले, "क्यों इस लड़के का
खराब कर रही हो? भारत में अभी
फी इंजिनियरों, डाक्टरों और
कारीगरों की जरूरत है। नागा
यों की संख्या न बढ़ने से भी कोई
नि नहीं होगी।"

साहब फिर नाराज हो उठीं। "यह
कल ही समाप्त हो गयी थी।"

र्ट साहब हँस पड़े, जेब से दो
टिकट उन्होंने निकाले "ज्यादा
ी है। चलो, वहाँ पहुँचने में ही
मेनट लग जायेंगे।"

मेम साहब की अनुमति ले मैं उठ पड़ा। मुझे दरवाजे तक पहुँचाते हुए मेम साहब ने कहा, 'तुम तो जानते ही हो, मैं सिनेमा नहीं, देखती फिर भी आज जाऊँगी, क्योंकि इसे अपने दल में शामिल करना है। भारतीय-दर्शन, भारत का धर्म आन्दोलन सभी धर्मों का सार है यह उसे समझना पड़ेगा ही।"

मिसेस बनार के यहाँ रॉबर्ट साहब से फिर मुलाकात हुई। दोनों ही खूब जोर-शोर से तर्क-वितर्क कर रहे थे, तभी मैं जा पहुँचा।

मिसेस बनार कह रहीं थीं, "योरोप की सबसे बड़ी भूल तो यही है। प्रचलित विचारों के विरुद्ध कोई वहाँ कहते ही क्रोध करता है। अगर कोई समझाता है तो सोचता है कि हमला कर दिया। वास्तव में हिन्दू धर्म के आश्रय में सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है। युद्ध-क्लान्त योरोप की रक्षा का एकमात्र यही उपाय है।"

रॉबर्ट मेरी उपस्थिति से कुछ झिझके अतः मैंने कहा, "आलोचना में निस्संकोच रहिये।"

रॉबर्ट साहब बोले, "भारत के सम्बन्ध में यह अन्ध-श्रद्धा मुझे अच्छी नहीं लगती। हजारों वर्ष से धार्मिक मन्दिरों की पूजा करते-करते भारत की क्या दशा हुई, यह क्या मैं नहीं जानता!"

मेम साहब फिर क्रोधित हो उठीं, "यह तुम्हारी संकीर्णता है।"

रॉबर्ट हँसे, "योरोप संकीर्ण है? ब्रिटि-

यम जान्स, मैक्समूलर, विलसन, उइरफ और सैकड़ो उदार योरोपीय क्या कलकत्ते में जन्मे थे ?"

कुछ दिनों बाद मेम साहब के भवन में प्रवेश कर रहा था कि दरबान ने कहा, "अन्दर मत जाइये। रॉबर्ट साहब चेचक से बीमार हो आजकल यहीं पर हैं।'

फिर दो एक सप्ताह बाद गया। मेम वे साहब बाहर ही थीं उस दिन। देखते ही मुझे अन्दर लिवा ले गयीं।

देखा, रॉबर्ट के सारे चेहरे पर काले-काले दाग हो गए हैं। किन्तु चेहरे की सौम्यता ज्यों की त्यों है।

मेम साहब रॉबर्ट के सुनहले बालों में अँगुलियाँ डालतीं हुईं बोलीं, "उफ कैसा अभिमानी है! उस दिन तुम्हारे सामने बहस करते-करते झगड़ा कर चला गया तो फिर कोई खबर ही नहीं दी। मै खुद ही मदाम बेरिल के पार्क स्ट्रीटवाले गेस्ट हाउस में पहुँची तो देखा, यह हाल है। भाग्यवश पहुँच गयी, नहीं तो मदाम एम्बुलेन्स से कैम्बेल अस्पताल भेज रहीं थीं। वहाँ पहुँचने पर इस अचैतन्य देह का क्या हाल होता! सचमुच यह ऋषि-मुनियोंका आशीर्वाद है कि मैं इसे यहाँ ला सकी।'

रॉबर्ट इस पर कुछ हँसा, बोला, 'फिर वही ऋषि-मुनि?'

"बीमारी के दिनों में मैंने कभी यह बात नहीं उठाई, किन्तु सदा के लिए मुँह तो बन्द नहीं रख सकती।" मेम साहब ने जवाब दिया :

बेअरा फलों का रस रख दे ग
साहब ने रॉबर्ट को रस पिलाया
से मुँह पोंछ दिया। बाहर
विदा करते वक्त मेम साहब ने
रॉबर्ट उनके लिए एक चुनौती है।
उसे मानों जन्म-जात विद्वेष है।
उसे भारत-धर्म में दीक्षित कर
रहेगी, चाहे जो कुछ हो।

कुछ दिन बाद रॉबर्ट को ले
बनार नैनीताल चलीं गयीं।
शरीर ठीक किए बिना तो
नहीं बनाया जा सकता था।

नैनीताल से लौटने पर फिर
मेम साहब ने मुझे अद्वैत आश्रम से
कुछ पुस्तकें भी दीं। जब तक हम
या धर्म-चर्चा करते, राबर्ट सिगरेट
उड़ाता और 'टाइम' पढ़ता रहा।

घड़ी की ओर ताककर उसने
पूछा भी, "तो फिर तुम स्विमिंग
जाओगी?" मेम साहब हँसी,
जानते ही हो रॉबर्ट, वह मेरी
क्लब में जाकर तैरने में मैं आन
होती। इसके अलावा मुझे
करना है।'

राबर्ट साहब ने उस दिन मुझे
लिफ्ट देना चाहा। बोले, "
आपको एस्प्लेनेड तक छोड़ना
मेम साहब बोलीं, "वाह, बहुत
तब तो।"

राबर्ट साहब खुद ही ड्राइव

त में बिठा लिया गाड़ी में। मेम
कहा, "शंकर, फिर आना तुम।"
ई से बोलीं, "गुस्सा नहीं होना।"
से बाहर आते ही रॉबर्ट साहब ने
र तेज निगाह से ताका। 'कितने
गये यहां आते?"
रीब एक साल।"
कसलिए आते हैं?"
र्ट साहब ने मेरा हाथ पकड़ कर
Please do'nt take it other
इस सरल महिला के मन में ये
और विश्वास के कुसंस्कार जमाने
नाम?"
' अप्रत्याशित अपमान के कारण
र क्षोभ से मैं उस दिन चौरंगी
ही उनकी गाड़ी से उतर पड़ा।
ी नहीं गया लाउडन स्ट्रीट।

ा हाईकोर्ट के एक बैरिस्टर के यहाँ
मिल गयी और एक अपरिचित
जगत् में खो गया।
न दिन बाद हाईकोर्ट के काम से ही
म्बर्स गया। एकाएक रॉबर्ट साहब
ख्याल आया। आर्बिट्रेशन
न्ट के बड़े बाबू से पूछा, 'रॉबर्ट
ा यहाँ क्या ओहदा है?'
बाबू ने मेरी ओर देखा, "आपकी
बर्ट साहब से जान-पहचान थी?"
ी, कभी थी तो।"
ो तो सन्यासी हो गये हैं।"
चौंका! रॉबर्ट साहब, सन्यासी हो

श्रद्धा से मेरा अन्तर भर उठा। घर
लौटते ही मेम साहब को एक पत्र भी
लिखा—'आपके कारण ही यह सब
सम्भव हुआ कि रॉबर्ट साहब जैसा नास्तिक
व्यक्ति आस्थावान् बन गया और धर्म-साधना
के लिये इतना त्याग कर सका। आप
मेरा आन्तरिक प्रणाम लें। आधुनिक भारत
के नैतिक पुनरुत्थान के इतिहास में, सिस्टर
निवेदिता, मदर, और मिस मैकलाइड—
के साथ ही आपका नाम भी स्वर्णाक्षरों में
लिखा रहेगा।' पत्र का कोई भी उत्तर
नहीं मिला। मैंने चाहा भी नहीं था।

अपना हाईकोर्ट के जीवन का अध्याय
समाप्त कर फिर एकबार मैं यात्रा-पथ पर
निकल पड़ा। तृतीय श्रेणी, दिल्ली मेल।
गाड़ी जब बर्दवान स्टेशन पर रुकी और
किसी काम से मैं प्लेटफार्म पर उतरा तब
एकाएक नजर पड़ गयी एक खोंचेवाले पर
जिसके सामने खड़ी एक मेम साहब हरे दोने
में रखीं पूड़ियाँ खा रही थीं। खोंचेवाले ने
मिठाई लेने के लिये भी कहा तो मेम साहब
ने 'नहीं' कहा और तभी उनका कण्ठ स्वर
सुनकर मैं चौंक पड़ा।

इतने में ही गाड़ी की सीटी बज गयी
और मुझे दौड़ कर अपने डिब्बे में उठना
पड़ा। रात और भीड़ बढ़ने के कारण मैं मेम
साहब से भेंट करने न जा सका। पर पूड़ी
खरीदने का वह दृश्य मन में उथल-पुथल
मचाने लगा।

दूसरे दिन सबेरे ही मुगलसराय स्टेशन
पर उतर मेम साहब को फिर खोजा। स्टीव,

श्रेणी के डिब्बे में बेंच के एक कोने पर वह उदास बैठीं थीं। बालों पर ब्रश या कंघी कितने दिनों से नहीं किये गये, कौन जाने। आँखों के चारों ओर स्याही थी। इन कई वर्षों में ही उनकी उम्र मानो पन्द्रह वर्ष बढ़ गयी थी। परिधान में गरद का स्कर्ट अब और नहीं रहा—बहुत ही घटिया किस्म की तांत की साड़ी, सो भी फटी-सी।

भीड़ ठेलकर गाड़ी में जाना सम्भव नहीं। अतः खिड़की से ही कहा, "गुड मॉर्निंग, मदाम!"

मेम साहब मेरे मुँह की ओर ताकती रह गयीं। कहा मैंने, "आप पहचान नहीं पायीं? मैं हूँ—शंकर। रॉबर्ट साहब के सन्यासी-होने की खबर सुनकर आपको अन्तिम पत्र भी लिखा था।"

मेम साहब पहचान गयीं। पर प्रसन्न नहीं हुईं। मुँह विकृत कर बोलीं, "तुम्हें शर्म आनी चाहिए! शरत और तुम्हारे लिए कुछ किया था एक दिन? पत्र लिखकर मुझे अपमानित करने का क्या अधिकार था तुम्हें?"

गाड़ी के अन्य यात्री मेरे मुँह की ओर देख रहे थे। मैं कुछ समझ न पाया, हक्का-बक्का-सा ताकता रह गया। फिर मुझे भी गुस्सा आ गया। कहा मैंने, "आपसे ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। कहने को तो बहुत कुछ कह गयीं आप, पर मैंने क्या ऐसा शर्मनाक काम किया है?"

मेम साहब उफन पड़ीं, "शर्म शर्म तुम लोगों को है, जो आयेगी? मनुष्य की दुर्बलता का सुयोग ले उसका सर्वनाश कर सकते हो तुम लोग!"

बड़ी मुश्किल से उस दिन [illegible] संयत किया मैंने। अनेक उदाह[illegible] मारत इनके द्वारा। कृतज्ञता की दु[illegible] मन शान्त किया। जाते वक्त [illegible] कहा, "अनेक व्यक्ति देखे हैं, [illegible] हूँ, परन्तु आप सचमुच बेजोड़ हैं।" समाप्त कर अपने डिब्बे की ओर आ [illegible] था, कि देखा मेम साहब मुझे बुला [illegible]

अनिच्छा होने पर भी [illegible] "तुम नाराज हो गये? मेरा [illegible] नहीं। एक तो इतनी गर्मी [illegible] थर्ड क्लास की यह तकलीफ!"

उत्तर न दे मैंने चुपचाप [illegible] उचित समझा। उन्होंने फिर पू[illegible] तो बहुत देश घूमे हो? क्या तुमने [illegible] को कहीं देखा है?"

"कृष्णप्राण?" इसके आगे [illegible] के पहले ही गार्ड ने सीटी बजा दी।

इलाहाबाद स्टेशन पर [illegible] ले मैं उतर पड़ा। अचानक [illegible] बजार भी अपनी अटैची लिये उतर [illegible] कहने लगीं, "सोचा था कानपुर [illegible] देखूँगी। पर तुम जब हो तो [illegible] इलाहाबाद ही खोज डालूँ। कुछ [illegible] नहीं जा सकता। हो सकता है, [illegible] त्रिवेणी-संगम पर नहा रहा हो।"

विश्राम-गृह में थोड़ा [illegible] हम त्रिवेणी-संगम पर [illegible] प्रायः सन्ध्या हो चली थी। [illegible] कोई निश्चित प्रोग्राम [illegible] ही देश भ्रमण की इच्छा [illegible]

साहब ने मेरे दोनों हाथ पकड़
ते हुए कहा, "मुझसे बहुत नाराज
मझती हूँ। पर क्या करूँ, दिमाग
।"

के किनारे एक पेड़ के नीचे
ठ गये हम दोनों। मैंने कहा,
की पूजा नहीं करेंगी?"

साहब हँसी, "पूजा...वह सब तो
। मेरा तो सब कुछ खो गया है।"
फिर चौंका। रॉबर्ट साहब—
रक्त रॉबर्ट साहब, यह बात सुनकर
सोचते! मैंने कहा, "ठीक है
ये पूजा की क्या जरूरत? डाइव
एक साधारण अंग्रेज भी जिसके
से कंचन बन गया, पूजाका
प्रयोजन?"

साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया।
अचानक दौड़ीं और सामने से
ए कुछ सन्यासियों को
लगीं। फिर उनसे कहा,
राध क्षमा करें। आप में
ने क्या कृष्णप्राण को देखा
ा नाम था रॉबर्ट।" और
हीं हुलिया सुना डाली जो
को शुरू ही में बता दी है।
सन्यासी ने कहा, "नहीं
किसी साहब महाराज को
देखा नहीं यहाँ।"

ा मेम साहब पुनः मेरे पास
ठ गयीं। "क्यों खोज रही
ॉबर्ट साहब को?" पूछा
ॉबर्ट साहब किस मठ के
सन्यासी हुए हैं? फिर, जिसके लिए आप
इतना कष्ट उठा रहीं है, वह चाहे तो
आपको पत्र भी तो लिख सकता है?"

मेरी ओर देखतीं रहीं मेम साहब।
ऐसी तीव्र थी उनकी वह दृष्टि कि लगा, मुझे
सम्मोहित कर डालेगी। उसके बाद एका-
एक मेरे जघे पर सर रखकर रोने वे लगीं।
मैंने कभी उन्हें रोते नहीं देखा था। लाउ-
डन स्ट्रीट के भवन में ही एक बार रॉबर्ट
साहब से कहते सुना था, "दिव्य ज्ञानी
कभी आँसू नहीं बहाते। सुख-दुःख किसी
से भी पराभूत नहीं होते।"

त्रिवेणी-संगम के पवित्र सलिल में मानों
किसी ने अबीर छिड़क दिया हो। उसी
अन्धकार में इलाहाबाद किले के समीप
बैठकर मिसेस बनार से उस दिन रॉबर्ट
साहब की यह पूरी कहानी सुनी।

"तुम तो जानते हो वह ईश्वर में

विश्वास नहीं करता था।"

"अवश्य जानता हूँ। मुझे भी एक दिन यही कहा था, इसलिये ही तो मैंने आपके यहां आना-जाना मैंने बन्दकर दिया था।" कहा।

मेम साहब हँसी, "मैं जानती हूँ। रॉबर्ट ने स्वप्न ही कहा था। और यह भी कि, कुसंस्कारों में फँसाकर एक युवक का समय क्यों नष्ट कर रही हो? इस उम्र में दुनियादारी देखने-समझने से उसको बहुत लाभ होगा।"

मैं काफी डर गयी। कहा कि, धार्मिक विश्वासों के अभाव में तुम किसी दिन डलहौसी की लड़कियों के चंगुल में फँस जाओगे। उसने इसका मजाक उड़ाया कि क्या इसी से बचाने के लिये तुम मुझे शास्त्रों और ऋषि-मुनियों का पुजारी बनाना चाहती हो।

रॉबर्ट को भारत-प्रेमी बनाने के लिये मैंने भारत-दर्शन के लिये तीर्थ-यात्रा का प्रस्ताव रखा। किन्तु जब उसने इसके लिए भी मना किया तब फोटो खींचने का लोभ दिखाया मैंने।

रॉबर्ट ने कहा, "That is intersting. तीर्थों, मन्दिरों में तो नहीं, पर पहाड़, साधु-सन्यासियों आदि की तस्वीरें दिलचस्प होंगी। 'इल्स्ट्रेटेड लन्दन' आदि पत्र सहर्ष इन्हें छापेंगे भी।"

हम दोनों ने सारे दक्खिन की यात्रा की। जगह-जगह रॉबर्ट ने नाक पर रूमाल रखते हुए भी कितनी ही तस्वीरें उठाई। किन्तु हमेशा कहा कि, "यही भारतको दुनियाँ को राह दिखायेगा! ... सूझता है!"

इलाहाबाद आकर संगम ... के लिये हमने नौका की। ... रॉबर्ट ने कई तस्वीरें लीं। ... जाते ही देखा कि एक युवती ... में खड़ी आँखें बन्द किए ... थी। रॉबर्ट कैमरे से ... मैंने मना किया। नहाती ... करने से अकारण कोई ... हो जाय। उसका ध्यान ... लोगों की ओर दृष्टि पड़ते ही ... दोनों गाल लाल-लाल हो उठे।

नौका से उतर, नदी-किनारे ... में आ बैठे हम लोग। दोनों ... रॉबर्ट कैमरे में नया फिल्म ... अकस्मात् सुनाई पड़ा, "देव!"

रॉबर्ट ने चौंककर कैमरा ... रख दिया। भीगे वस्त्र ... सामने खड़ी थी। नवयौवन, ... बाईस वर्ष की उम्र। ... उठी। दूध से धुले-से ... पैर। दो चार काले-काले ... कर शरीर से चिपक गये थे। ... दृष्टि से रॉबर्ट की ओर ही ...

विरक्त हो रॉबर्ट ने ... "जरा एकान्त में बैठकर ... कुछ बातें करूँगा, उसमें भी ... देश है। Privacy नाम की ... जानते लोग!"

"इतने दिन कहाँ थे, देव!" ... दूर ही से रॉबर्ट को प्रणाम किया।

पूछा, "कौन हो तुम? क्या
ी?"

। विरक्त हुई। मुख विकृत कर
र रहो तुम। अपने देवता को ही
ँगी।" रॉबर्ट के मुँह की ओर
ऽ निहारती रही। मुझे ऐसा
मानों वह अपनी उन भूखी आँखों
को निगल रही थी।

उसी हालत में आगे बढ़ी और
सटकर बैठ गयी। रॉबर्ट चिहुँक
उसने टूटी-फूटी हिन्दी में पूछा,
तुम? क्या चाहती हो?"

और छलना न करो, गिरिधर।
री मीरा हूँ। वीरभूमि की उस
स्वप्न देकर तुम तो छिप गये।
। नींद कहाँ। खाना-पीना सब
गया तो घर से निकल पड़ी।
ों बाद दया की, प्रभो? उस पर
ाहब बनकर छलना कर रहे हो!"
का चेहरा तमतमा उठा। अंग्रेजी
मुझसे पूछा—"क्या चाहती है
ता?"

हा, "यह वैष्णवी है। संसार
गवान् कृष्ण को खोज में घूमती
। भजन गाती है, पूजा करती
हाँ तक कि कृष्ण के लिये ही
ीवन-यापन करती है।"

ग से एक अठन्नी निकाल रॉबर्ट
र फेंक दी। वैष्णवी ने कहा,
देव, आधे में क्या होगा? मैं यह
।"

सोचा, पूरा रुपया चाहती है।
रॉबर्ट से यही कहा भी।

वैष्णवी मेरी ओर कड़ी नजर से ताक-
कर बोली, "क्या सब उल्टा-पुल्टा समझा
रहे हो मेरे प्रभु को?" और इसके बाद
ही रॉबर्ट के दोनों पैर पकड़कर रोने लगी।

रॉबर्ट के पैर हटाने का प्रयत्न करते ही
वह वैष्णवी और भी अधिक झुक गयी
उसकी देह पर। "चरणों में आश्रय दो, मेरे
देवता।"

विरक्त हो रॉबर्ट ने कहा, "इसी
भारत को तुम ने सर पर उठा रखा है?
कैसा पागलखाना है?"

रॉबर्ट उठनेवाला था कि वैष्णवी ने
हाथ जोड़कर कहा, "चाहे और कुछ न
दो। अपनी चरण-रज तो लेने दो। यह
दासी उसे सर माथे चढ़ायेगी।" आज्ञा की
जरूरत नहीं पड़ी, वैष्णवी रॉबर्ट के दाँये
पैर के जूते का फीता खोलने लगी।

रॉबर्ट ने दोनों पैर हटा लिए। वैष्णवी
बड़ी-बड़ी आँखों से रॉबर्ट की ओर निहारती
रही। मुख पर व्यथा की बदली छा गयी।

मैंने कहा, "तुम्हारी चरण-रज लेकर
यदि कोई शान्ति पाता है, तो तुम क्यों
रोकते हो उसे?"

रॉबर्ट ने चुपचाप उसे जूते खोलने दिए।

परन्तु वह मुझसे बोली, "मेरे प्रभु
मुझे दगा दे रहे हैं, तुम क्यों बीच में पड़ती
हो?" और इधर रॉबर्ट ने भी मुझे डाँटा,
"तुम्हारी स्वामखयाली के पल्ले पड़कर अब
मेरे मोजे भी उतारे जा रहे हैं।"

वैष्णवी जूते खोलकर मोजा उतारने
लगी थी। रॉबर्ट ने उसी वक्त बैरा को बुला

दबा दिया और उसका फोटो ले लिया।

वैष्णवी ने पूछा, "यह क्या किया, मेरे आराध्य?"

रॉबर्ट ने हँसकर कहा, "तुम्हारी तस्वीर ले ली।"

अपने आँचल से रॉबर्ट के पैर पोंछते हुए वैष्णवी ने कहा, "छाया लेकर क्या करोगे, देव?"

वैष्णवी ने जमीन से अठन्नी उठाकर रॉबर्ट की जेब में रख दी।

उसके चेहरे की ओर देख रॉबर्ट ने कुछ सोचा; फिर मेरे कान में कहा, "एक अति सुन्दर फीचर बन सकता है। 'लाइफ' अथवा 'इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज' खुशी से ले लेगा—एक कृष्ण-प्रेमिका का जीवन!"

मैंने वैष्णवी से बंगला में कहा, "साहब तुम्हारी कई तस्वीरें लेना चाहते हैं।"

वैष्णवी ने क्रोध से कहा, "मेरे देवता मेरी तस्वीर उठायें, या मुझे पानी में फेंक दें, इससे तुम्हें क्या?"

मैं हँसी। रॉबर्ट भी हँसा। फिर थोड़ा सोचकर बोला, "तुम्हारे रहते कुछ असुविधा होगी।"

कैमेरा कंधे से लटकाते हुए रॉबर्ट उठ-पड़ा, कहा, "तुम चलो, मैं थोड़ी देर बाद ही होटल आऊँगा।"

मैं होटल लौट आई।

"उसके बाद?" मैंने पूछा।

मेम साहब की आँखें [illegible] उठीं। "वही मेरी अन्तिम मु[illegible] रॉबर्ट फिर लौट कर नहीं आया[illegible]

सारी रात रॉबर्ट की [illegible] बिस्तरे पर छटपटाती रही। सु[illegible] का कोई समाचार नहीं मिला[illegible] हो जब पुलिस में समाचार देने [illegible] तभी एक बड़ा-सा पैकेट लेकर [illegible] मुलाकात करने आया। उसने [illegible] साहब ने आठ आने पैसे दिये [illegible] और यह पैकेट होटल में पहुँचा देने [illegible] कहा है।

पैकेट खोलकर देखा कि राबर्ट[illegible] पैन्ट, शर्ट, जूते, कैमेरा सब कुछ [illegible] साथ में एक कागज का टुकड़ा भी[illegible]

मेम साहब ने अपनी [illegible] एक कागज निकाला, मुझे दिया[illegible] लिखा था : 'जाता हूँ। सचमुच [illegible] मय है भारत वर्ष। —[illegible]'

मैंने कागज मेम साहब को [illegible] दिया। उन्होंने उसे सहेज कर [illegible]

"तभी से खोज रही हूँ उसे। [illegible] कोई मेला, कोई आश्रम नहीं [illegible] ही लोगों को पैसे दिये, [illegible] देखते ही मुझे तार कर देना। [illegible] तार भी मिला एक दिन। [illegible] वहाँ गयी। पर कहाँ था रॉबर्ट!

बहुतों ने कहा, देखा है। [illegible] साहब वैरागी को। [illegible]

प्रवासी पीर : अपने [illegible]

तारा, सर पर गुच्छेदार मुनहले
े पर भिक्षा की झोली। साथ
वैष्णवी। कैसी सुन्दर सरल,
आकृति थी उसकी! मानो साक्षात्
ने जन्म ले लिया हो।"

साहब रोते-रोते कह रही थीं,
लिये मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया।
ड़ दिया, गाड़ी बेच दी।"

ाहब का यह पश्चात्ताप मुझे अच्छी
। सान्त्वना देते हुए कहा, "जो
हब सत्य के अनुसन्धान में संसार
तोड़कर कृष्ण-प्राण हो गये, उन्हे
यदा होगा अब? पिंजड़े का पंछी
ा खोलकर उड़ गया तब उसे लौटा
या फायदा?"

साहब ने मेरी बात की ओर ध्यान
। कहा, "मेरा सर्वस्व गया,।
खोजना ही होगा। कम से कम
उससे मिलना ही होगा।"

ीं?" मुझे कौतूहल हुआ।

साहब पहले तो जरा हिचकी।
ी, "रॉबर्ट से एक प्रश्न पूछूँगी।"
ा प्रश्न?"

लज्जा से लाल हो उठीं वे, धीमे से बोलीं, "मुझे प्रश्न करना ही होगा। नहीं तो किसी दिन भी रॉबर्ट को क्षमा नहीं कर सकूंगी।" आगे कुछ कहने से पहले ही मेम साहब कुछ द्विधा में पड़ गयीं।

"यदि कोई आपत्ति हो तो मत कहिये। जब उनके साथ भेंट हो जाए तो पूछ लीजियेगा।" मैंने कहा।

मेम साहब ने मन ही मन कुछ सोचते हुए कहा, "मेरा क्या? यदि कुछ आपत्ति होगी तो उसी की। उस पर तुम्हारी सारी श्रद्धा मिट जाय तो भी मैं कहूँगी।"

मेम साहब के ओंठ काँपने लगे। चारों ओर देख कान में धीरे से बोलीं, "अबतक और कोई नहीं जानता। रॉबर्ट ने जब मुझे होटल में चले जाने को कहा था, ठीक उसके पहले भीगी साड़ी पहने उस वैष्णवी की ओर एक बहुत ही अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखा था।"

मैंने मिसेस बनार के मुँह की ओर देखा। उनके ओंठ तब भी काँप रहे थे। बोलीं, "मुझे क्षमा करो, हो सकता है, यह मेरी गलत धारणा हो। फिर भी एक बार उससे पूछूँगी, केवल एक बार पूछूँगी, कि उसकी उस दृष्टि में क्या था?"

आज भी मेम साहब मोह-मुक्त कृष्ण-प्राण को खोजती फिर रही हैं। उनके लिये मैंने स्वयम् भी उसे बहुत खोजा है।

आपको यदि कृष्णप्राण से किसी प्रकार भेंट हो जाय तो, कृपया, एक तार दे दीजियेगा। और सचमुच ही अगर उसे रोका जा सके, तो कहियेगा—"मिसेस बनार आप से एक, सिर्फ एक, प्रश्न पूछने के लिये आपको बरों से खोज रही हैं।"

शंकर

हमारी रानी माँ

हमारे पड़ोस में एक छोटा
इस में रानी माँ रहती है।
अपनी छत पर खड़े होते हैं
आँगन में रानी माँ को कभी
कातते देखते हैं तो कभी

एक दिन मैं ऊपर खड़ी
बाल सुखा रही थी कि
माँ पर पड़ी। चरखा
लेकिन रानी माँ कान नहीं
ने सोचा चलो दोनों
आपबीती और कुछ जगबीती
करेंगे। रानी माँ के पास पहुँची तो उस ने पीढ़ी आगे खिसका कर
"अब मैं इतनी भोली भी नहीं जो इस बात को सच समझ बैठूँ कि रूस ने
आसमान पर नया सितारा चढ़ाया है जिस में एक कुत्ता भी बंद है"।

मैं ने रानी माँ को स्पूटनिक और लायका के बारे में कुछ बताया तो उस ने दाँतों तले
उंगली दबा ली। "भगवान तुम्हारा भला करे," उस ने कहा, "अब पूरी तरह समझ
मोटी बुद्धि की हूँ, ज़रा देर से समझती हूँ।"

यह बात तो नहीं कि रानी माँ मोटी बुद्धि की है। बच्चे जब अपना पाठ ऊँचे ऊँचे
तो उन से सवाल पूछ पूछ कर आप भी बहुत कुछ सीख गई हैं। दूसरी औरतों की तरह
कि लकीर की फ़क़ीर बनी रहे।

अब उस दिन की बात है। मैं बाजार
जा रही थी कि रानी माँ ने कहा,
"बेटी तकलीफ़ न हो तो मेरे लिए
कपड़े धोने का साबुन ले आना।"
मैं अपनी आदत से मजबूर सनलाइट

ले आई। अब रानी माँ ने साबुन देखा तो ...

"बेटी, हमारे घर में कौन रेशमी कपड़े पहनता है जो तुम इतना मँहगा साबुन उठा लाई!"

"लेकिन रानी माँ, हम तो अपने घर के सभी कपड़े सनलाइट ही से धोते हैं।" रानी माँ देर चुप रही। फिर बोली, "बेटी तुम तो जानती हो हम लोगों की हालत, अब में इतनी ताकत कहाँ जो ऐसे ...ती साबुन से कपड़े धोयें।"

...रानी माँ की तसल्ली करती कि ...से बुलावा आ गया। मैं बाद को ...का कह कर चली आई, मगर काम ...सी उलझी कि फुरसत न मिली। ...तेपहर ढले दरवाजे पर खटखट की ...ज़ सुनी। दरवाज़ा खोला तो ...ने रानी माँ खड़ी थी। मुझे देखते ...मेरी बलायें लेने लगी, "भगवान ...रा भला करे, यह साबुन तो ...त का है। ज़रा आ कर देखो तो ...!"

...ने देखा तो रानी माँ के आँगन ...साफ़ सफ़ेद उजले कपड़ों की कतारें ... दुलहन की बरात नज़र आती थीं। रानी माँ ने मेरे कान में कहा, "इतने कपड़े धो ... फिर भी साबुन कुछ बाकी पड़ा है ... इस हिसाब से तो मैं कहूँगी कि यह साबुन कोई ...ा नहीं, बिलकुल मंहगा नहीं, बल्कि सस्ता है।"

...नी माँ ने बैठते हुये पूछा, "एक बात बताओ बेटी, यह तो मैं ने सुन रखा था कि सनलाइट ...पड़े धोते वक्त पीटने पटकने की कोई ज़रूरत नहीं। इस लिए मैं ने सारे कपड़े इस ...ाग में ही मल मल के धो लिए . . बड़े साफ़ और उजले धुले हैं ... हाँ तो मैं यह ...ता चाहती थी कि सनलाइट में ऐसी कौन सी बात है कि जो यह इतने काम का साबुन है!"

... ने कहा, " रानी माँ सनलाइट एक बिलकुल शुद्ध साबुन है, जिस के कारण यह बहुत ...र झाग देता है, और वह भी ऐसा जो कपड़े के ताने बाने में छिपा मैल बाहर निकाल लाये।"

"ओह! अब समझी क्यों हम से कपड़े इतने साफ़, उजले और जल्दी धुल जाते हैं और इन में से स्वच्छता की महक भी आती है।"

थोड़ी देर चुप रह कर बोली, "अच्छा अब क्या करूँ करें! अब तो मेरे पास फ़ुरसत ही फ़ुरसत है।"

गीत

जा रहा हूं, कुछ नहीं तो;
प्यार के दो फूल दे दो,
तुम नहीं तो भी अकेले में तुम्हारी बात होगी।
दूर हूंगा मैं; अजानी-
राह, मौसम भी अजाना।
हो न पायेगा पवन के,
हाथ भी पाती पठाना।
फिर कभी जो चाँद की,
टहनी अंधेरे में परस ले,
समझ लेना, गाँव मेरे घिर गई बरसात होगी।
यदि कभी बीमार बादल
खिड़कियों में उलझ जाये
औं' कुहासे में दिवाकर
चाँद बनकर छटपटाये।
यदि मुंडेरे पर पखेरू
सहमते चारा लुटायें
समझना, बँटती मेरे घर दर्द की सौगात होगी।

हरिहरसिंह

सन्त

ाँगन का सहजन
। साल नहीं फूला,
ला नहीं
रे का टेसू
स बार!
मराई की
ोई शाख नहीं बौरी
ी नहीं
ोयल की
-भरी पुकार!
र

न्त को
रूँगा स्वीकार,
ोई
झे भेज दे
ूलों, मंजरियों का
ुच्छा
उपहार!

रवीन्द्र भ्रमर

यूनिफॉर्म

सभ्यता का यूनिफॉर्म
पहन नहीं पाया
पर ओढ़े हूँ।

अंग्रेजी भाषा के
रटे हुए शब्द-वाक्य
अधिक रङ्ग लाते हैं
इसलिए जोड़े हूँ!

वैसे हूँ नास्तिक,
पर चेअरमैन हूँ
रिलीजस कमेटी का।
मैं भी कुछ कम थोड़े हूँ!

हुई नई अन्ताराष्ट्रिय पहचानें
मैं इसीलिए,
छुटमुटिया रिश्तों को तोड़े हूँ!

अब गीत क्यों लिखूँ
जब कि लिखा सकता हूँ
अब लिखनेवालों ने
अपना मुख मोड़े हूँ!

सभ्यता का यूनिफॉर्म
पहन नहीं पाया
पर ओढ़े हूँ!

सरोजकुमार

दार्शनिक जीवन दार्शनिक ज्ञान के लिए परमावश्यक है, या नहीं इस विषय पर एक सारगर्भित लेख

व्यावहारिक जीवन में दर्शन शास्त्र का सर्वाधिक दुरुपयोग वे करते हैं, जो केवल शाब्दिक विश्लेषण-जनित ज्ञान को ही दर्शन का परम तात्पर्य समझ लेते हैं। 'योग-शास्त्र संस्कृत में लिखा गया है, मैं वह भाषा अच्छी तरह से जानता हूं, अतः मैं योगविद्या का ज्ञाता हूँ।' यह ठीक उसी प्रकार की बात है है कि 'राजा मनुष्य होता है, मैं मनुष्य हूँ, अतः मैं राजा हूँ।' प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट रूप से यह जान लेना चाहिये कि किसी भी दार्शनिक पदार्थ का शब्द-परक बोध अत्यन्त निकृष्ट होता है, और कहीं कहीं तो विपर्यय भी हो जाता है, क्योंकि **'नहि विशेषण कृत-संकेतः शब्दः'**—योग शास्त्र का ही मत है।

प्रयोग-हीन शाब्दिक अध्ययन कितना निकृष्ट है, इसका एक उदाहरण यह है :—

सांख्य-कारिका में बुद्धि के 'अध्यवसाय' शब्द का प्रयोग है व्याख्याओं के अनुसार अर्थ है निश्चय करना। पर है क्योंकि बुद्धि के साक्षात्कार के साधन सांख्ययोग में कहा है, जो फल बताया है, वह घट सकता, जिसका लक्षण केवल करना' है। अध्यवसाय का साहित्यिक है, पर सांख्ययोग में पारिभाषिक शब्द है। चित्त में जो' बोध-वृत्ति उदित 'अध्यवसाय' है। इसका किसी भी प्रचलित ग्रन्थ में न टीकाकारों ने ही यह साक्षात् अनुभव कर इस लक्षण देने की चेष्टा करते। ने अध्यवसाय शब्दमात्र का

ाँमि समझा, क्योंकि उस समय अनुभव र्थ लक्षण विज्ञापित होता था, पर कोई भी स्पष्टतर लक्षण देने के लिये ही नहीं करता।

ाच तो यह है कि दर्शन-ग्रन्थों में ा पदार्थों का स्थूलतः उपदेश किया । प्रत्येक पदार्थ का परिपूर्ण वैशिष्ट्य न पदार्थों से सम्बन्धित अनेक गौण का ज्ञान सर्वत्र कथित नहीं है। ास्त्र का प्रायोगिक अनुशीलन करने- ो अनुक्त विशिष्टता और पदार्थों का र सकते हैं, केवल भाषा या शब्द- ा बल पर दार्शनिक विषयों का ज्ञान ो सकता। वस्तुतः दार्शनिक विद्या ार्शनिक ग्रन्थ समानार्थक नहीं हैं। का स्थूल अंश ही ग्रन्थों में परिभाषित । विशिष्ट शब्दार्थ-बोध तो सम्प्रदाय सरणशील व्यक्ति को ही होता है।

ास्त्र में कुछ बातें रहती ो वास्तव ा नहीं है, अर्थ-वाद- है। 'रोच- फल-श्रुतिः' । प्रसिद्ध । कौन-सा र है और ्या सत्यवाद सही कोई ी पहचान है। जो वस्तुतः सत्य नहीं है फिर भी कहा जाता है, उसी को साधारणतया अर्थवाद मानना चाहिये।

शब्दाश्रित-बल-परायण पण्डितों ने अर्थवाद और सत्यवाद का बहुत-कुछ अन्योन्य-संकर कर दिया है, क्योंकि शब्दार्थ-बल पर तो यह कभी निश्चित नहीं हो सकता कि कौन अर्थवाद के रूप में रोचकता के लिये कहा जा रहा है और कौन वास्तव है। जैसे, पंचप्राण के सच्चे विज्ञाता के लिये श्रुति अमृत-भोग की फलप्राप्ति कहती है।

किन्तु यह सत्य है या अर्थवाद— इसका निरूपण वह नहीं कर सकता, जिसने प्राणतत्त्व का वास्तविक अनुशीलन नहीं किया। आधुनिक व्याख्याकार बिना अनुशीलन के ही 'कौन अर्थवाद है कौन नहीं' यह कहने की धृष्टता करता है और 'अन्धों के हस्ति-दर्शन न्याय' से मिथ्या व्याख्या करता है। हम आधुनिक व्याख्यानों में उक्त स्थल को अर्थवाद रूप से मान्य देखते हैं। पर प्राणानुशीलन-कारी व्यक्ति यही कहता है कि उसमें अर्थवाद को गन्ध भी
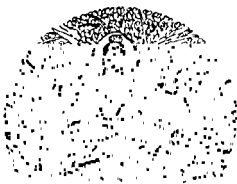
आगे के पृष्ठों में भगवान् बुद्ध के जीवन से संबन्धित कुछ रेखा-चित्र देंखें, जिनके शिल्पी हैं, श्री पद्म श्रीवास्तव।

नहीं है क्योंकि उसे साक्षात् अनुभव होता है

पतञ्जलि ने कहा है :—'सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलाश्रयत्वम् (२।३६) अर्थात् सत्य की प्रतिष्ठा में क्रिया फलाश्रयवती होती है। पर 'क्रिया-फलत्व' का लक्षण क्या है—यह आजकल का दार्शनिक नहीं कह पाता चूँकि शब्द के बल पर तो एक सामान्य ज्ञानमात्र होता है, विषय की उपलब्धि नहीं।

आज कहीं-कहीं दर्शन शास्त्र की जो हास्यकर परिस्थिति है, उसमें उन व्यक्तियों का भी हाथ है, जो जड़ और बाह्य पदार्थों के विश्लेषण के लिये बहुत-सी गलत बातों की अवतारणा करते हैं। ऐसे दार्शनिक अपनी प्रयोग-हीन चिन्ताओं को जब पाश्चात्य विज्ञान के सिद्धान्तों के सामने रखते हैं, तब उनका खोखलापन स्पष्ट दिखाई देता है। दर्शन के प्रति जन साधारण में जो उपेक्षा-बोध है, उसका मुख्य कारण भी यही है। चूंकि जनता समझती है कि इतने स्थूल विषयों में दार्श-

निक गलत बोल रहा है, तो विषयों में भी उसका मत
जैसे, वैशेषिक सूत्र के में 'आकाश नील क्यों है!' 'इन्द्र नीलमणि की प्रभा से वर्ण हो जाता है' (२।१।५) हास्यास्पद है।

यत्र-तत्र शंकराचार्य में का दर्शन-दोष मिलता है, युक्तियों के खोखलेपन है। 'दृश्यते तु' (२।१।६ सूत्र के भाष्य में शंकर ने कहा है गोमय से चेतन वृश्चिक वस्तुतः यह असत्य है। शरीर से शायद गोमय का हो, किन्तु उसके भी सम्बन्ध नहीं है। अतः बल पर शंकर जो प्रमाणित वह सिद्ध नहीं होता। परीक्षण के ही अभाव में

उदाहरण दे दिया। वस्तुतः अप्राणी
organic) से प्राणी (organic) की
त्ति कहीं भी विज्ञान-सम्मत नहीं है।

दर्शन-शास्त्र का सर्वाधिक अपव्यवहार
वय-वादी करते हैं। कुछ ऐसे भी
क हैं, जो मेधावी हैं, और आर्ष-दर्शनों
थूल रूप से थोड़ा-बहुत समझते भी हैं,
किसी भी दर्शन में स्थिर-मति होकर
देष्ट मार्ग का पूर्णतः अनुशीलन करने
अपेक्षा दर्शनान्तरों के साथ साम्य-
चेष्टा करते रहते हैं। यह एक हेय
है कि कोई व्यक्ति किसी भी दर्शन
च्चतम स्थिति का अनुभव किये बिना
न्य दर्शनों से उसकी मर्यादा की
करने लगता है।

मैने बहुतों को यह कहते सुना है कि
से सांख्य उच्च है, और उसमें भी
दान्त है।' क्यों उच्चतर है, यह कैसे
गया ? क्या सांख्य तथा न्याय में

भाषित परा गति का साक्षात् अनुभव कर वे
दोनों की तुलना करते हैं ? दोनों दर्शनों
की जो परम सत्ता है और उसके शाब्दिक
विवरण से जो ज्ञान होता है, वह इतना
सामान्य है कि उससे तुलना-मूलक ज्ञान कभी
नहीं हो सकता। फिर दोनों दर्शनों के
उपदेष्टा आचार्य भी कभी अन्य दर्शनों से
इस प्रकार तुलना नहीं करते क्योंकि दोनों
पृथक् दर्शनों से संमत परम पदार्थ का
ज्ञान किसी एक आचार्य को हुआ नहीं था।
अतः ऐसी स्थिति में दर्शनों की उच्चावचता
का निरूपण करना गलत है।

दर्शन-शिक्षार्थी का सगत आचरण
यही होना चाहिये कि वह अपने संस्कार
के अनुसार किसी शास्त्र का मनन तथा
आचरण करे और उसके अनुसार ही सत्य
की उपलब्धि भी करें। दोनों मतों को
ठीक-ठीक न जानकर 'समन्वय' करना सहज
है, पर किसी मत अथवा दर्शन का यथार्थ
ज्ञान दुरूहतम है— यह कभी न भूलें।

कुछ ऐसे भी समन्वयवादी आजकल हो गये हैं जो प्रतीच्य दर्शन-विज्ञान के पदार्थों से प्राच्य दर्शन के पदार्थों की एकता सिद्ध करने के लिए सचेष्ट रहते हैं। प्राच्य तथा प्रतीच्य शास्त्रों में मानित पदार्थों में वस्तुतः एकता है या नहीं, इसके लिये वे कुछ भी वास्तविक प्रमाण नहीं देते, केवल शब्दार्थ की एकता के बल पर ही अपने कल्पित सिद्धान्त का समर्थन करते रहते हैं। जैसे, न्याय-वैशेषिक दर्शन में अणु-परमाणु शब्द का व्यवहार है और आज कल पाश्चात्य विज्ञान में भी atom, Molecule आदि शब्द व्यवहृत होते हैं। मैंने कितने ही आलोचकों को देखा है, जो वैशेषिक के अणु और भौतिक विज्ञान के atom आदि को एक-सा समझते हैं और तदनुसार अपने दर्शन को सुप्रतिष्ठित भी करते हैं। यह एक असत्य चिन्तन है, क्योंकि वैशेषिक में अणु के जो साधर्म्य, वैधर्म्य स्वभाव आदि कहे गये हैं, वे

पूर्णतया atom इत्यादि मे
सकते, अतः शब्दार्थ मात्र से
का बोध करना मति-विभ्रम है।

यदि परीक्षा पूर्वक
न हो तो कोई भी
कह सकता कि एक ही
मतों में यथार्थतः विरोध है या
वह निश्चय-पूर्वक यह भी नहीं
कि समानरूप से
दर्शनों के मतों में
या केवल प्रतिभासिक

अनुशीलन जब केवल
हो जाता है, तब ही
दैन्य आ जाता है कि वह
में समता का
में यथार्थतः विभिन्न
में असमर्थ हो जाता है।
से भी यही बात स्पष्ट हो

वेदान्ती जगत के
चनीय' कहता है, और

जिस दर्शनशास्त्री ने इनमें से किसी
ी यथार्थ ज्ञान या अनुशीलन में
जीवन नहीं बिताया है, वह सहसा
च सकता है कि, 'अनिर्वचनीय' तथा
' एक ही वस्तु है, और सच बात
है कि, कुछ लोगों ने ऐसा मत
पित भी किया है। पर जिसने दर्श-
अन्तिम पदार्थों के विषय में सामान्य
धर्म का अनुभव किया है, वही
कह सकता है कि इन दोनों में
ता है, या नहीं। एक रुपया मुद्रा है
क गिन्नी भी मुद्रा है, और जिसने इन
मुद्राओं का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं
वह शब्द-परक अनुमान से दोनों
मान कह सकता है, पर उसका
प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित होगा।
, अन्ततोगत्वा तो प्रत्यक्ष ही तो
न का नियामक है।

ार बात तो यह है कि प्रत्यक्ष से ही
न तथा आगम प्रमाणित होते हैं
(दे० योगभाष्य १।४३)। पर बहुत से आधुनिक दर्शनवेत्ता काल्पनिक उपपत्ति को ही दर्शन-विद्या का उत्कर्ष समझते हैं, तथा कल्पना में लाघव-गौरव का विचार करने से ही मान लेते हैं कि वे दार्शनिक हो गये। यह एक दयनीय स्थिति है। दर्शन अभी तक इन लोगों के हृदय में नहीं बसा—ऐसा ही जानना चाहिये।

जब तक अनुभव तथा परीक्षा से पदार्थों की प्रकृतिगत समता का बोध न हो, तब तक पाश्चात्य विज्ञान के किसी भी पदार्थ से प्राच्य दर्शन के तदनुरूप पदार्थ की समता बताना केवल बुद्धि-व्यामोह है।

यहाँ हम कुछ ऐसे विपर्यस्त विचारों का उल्लेख किए दे रहे हैं, जो इसी तरह के दोष-पूर्ण अध्ययन के कारण होते हैं।

पाश्चात्य विज्ञान का ether न्याय-वैशेषिक का शब्द-गुणक आकाश नहीं है। ether एक काल्पनिक अवास्तव पदार्थ है, पर आकाश एक वास्तव, जड, बाह्य द्रव्य

ामशंकर भट्टाचार्य

है, जिसका गुण है 'शब्द'। यदि ether एक वास्तव पदार्थ होता तो एडिंग्टन आदि प्रख्यात वैज्ञानिक उसके प्रत्याख्यान के लिये विचार प्रकट न करते।

आजकल के कुछ अपरिपक्व-मति विद्यार्थियों से यह भी कहा जाता है कि सांख्य के गुणत्रय को Phenomena Noumena कहा जा सकता है; पर यह भी भ्रम है। इसी प्रकार आत्मा को Soul या सांख्य की प्रकृति को Matter रूप से पहचानना भी केवल शाब्दिक भ्रममात्र है। मैटर ज्यामिति के बिन्दु की तरह एक वैकल्पिक पदार्थ (दे० योग सूत्र १।६) है, पर प्रकृति उससे सम्पूर्ण विपरीत है।

सक्रिय अनुशीलन न करने से शास्त्र का ज्ञान कितना अल्प तथा अपूर्ण हो जाता है, उसके कुछ निदर्शन निम्नोक्त हैं :—

पतञ्जलि ने कहा है :—'समान जयात् ज्वलनम्' (३।४०)। उदान जयात् जलपङ्क कण्टकादिषु असङ्ग, उत्क्रान्तिश्च (३।३६)। योग शास्त्र में वर्णित पंच प्राणों में समान और उदान के विजित होने से क्या फल होता है, केवल इसी का उल्लेख आचार्य ने किया है, पर व्यान, अपान तथा प्राण के जय से कौन-सा फल होता है, उसका उल्लेख नहीं किया। तो हो नहीं सकता कि इन तीनों के जय से कुछ फल होता ही नहीं। ... क्या कोई भी ऐसा दार्शनिक है ... तीनों के जय पर कुछ भी प्रकाश डा... यदि इन दार्शनिकों में कोई भी ... का प्रकृत अनुशीलन कर रहा है ... वह अवश्य ही अपने प्रयोग तथा ... बल पर निश्चित रूप से कुछ कह सकता ... विद्वान् का अर्थ ही है कि वह ... को स्पष्ट करने में भी समर्थ है। ... जितना लिखा है, उतने ... बोधमात्र करने से कोई उस ... नहीं हो जाता।

प्रायोगिक अनुशीलन के ... ही आधुनिक दर्शन-... के सम्यक् परिचय देने ... असमर्थ रहते हैं। ... वैशेषिक दर्शन में ... उल्लेख है। ... ही ...

सुजाता और तथागत

। कि
ी भी
ा को
' का
ल नहीं
. इस
र जो
विवरण
देते

> दार्शनिक का कर्तव्य दुखी पर दया करना ही नहीं है—यह तो जिन्दगी में उसके लिये कुछ कर गुज़रना है। —वॉल्तेयर

वही जान सकता है जिसने उस दर्शन की सक्रिय परीक्षा की है। उदाहरणार्थ, योग-शास्त्र के भाष्य-कार ने कहा है :—'महत्तत्त्व के तन्मात्र तथा अस्मिता रूप कई सविशेष प्रमाण होते हैं (२।१९)।' सांख्य (जो योग का 'समान तन्त्र) कहता है :—'महत से अहंकार होता है और उससे यन्त्रणाओं की उत्पत्ति होती है।' अब कोई भी अध्येता कह सकता है कि यह शास्त्रीय मतभेद है, और कुछ लोगों ने ऐसा कहा भी है। पर जिसने महत, तन्मात्र आदि पर सक्रिय परीक्षण किया है वही कह सकता है कि इसमें वास्तविक विरोध है या नहीं। केवल शब्दवेत्ता विश्वसनीय नहीं हो सकता।

उससे किसी भी समीक्षक को तृप्ति ...कती। 'विश्वास करो' 'श्रद्धालु बनो', सिर्फ यह कहनेसे ही ...सिद्धान्त प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

...तो होने की चीज है, ...नहीं, यह एक सार्वभौम ..., जिसकी अवज्ञा कभी ...जा सकती।

...दार्शनिक विषयों का परीक्षा-...ण नहीं किया, वह यह कदापि ...सकता कि आपाततः दो दर्शनों ...ा प्रतीत होती है, वह वास्तविक ...ा औपचारिक। एक ही दर्शन ...ो ऐसे स्थल होते हैं, जहाँ साधा-
। यह
ता है
एक
चार्यों
विरोध
। पर
ध है
इसको

हमारा आर्य दर्शन कदापि पाश्चात्य फिलॉसफी नहीं हो सकता। फिलॉसफी में बुद्धि का व्यावहारिक उत्कर्षमात्र होता है। उसके मनन से चित्त-स्तर का जातिगत परिवर्तन नहीं होता। हमारे दार्शनिक के लिये यम-नियम आदि का आचरण सर्वतोभाव से पूर्ण तथा अनिवार्य है। विश्व-प्रक्रिया के अगम्य रहस्य का ज्ञानमात्र ही लक्ष्य नहीं है। हम यह

> मैं किसी दार्शनिक की पर्वाह वहीं तक करता हूँ जहाँ तक कि वह दूसरों के लिये एक आदर्श उदाहरण बन सकता है। —फ्रेडरिक नीत्से

दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि बौद्ध तथा जैन दर्शनों के मूल में भी यही सत्य है, और मौलिक सदाचरण के बारे में तो (जो दर्शन शास्त्र के शरीर की मज्जा है) इन तीनों दर्शनों में कोई भी तात्विक भेद नहीं है। भारतीय दर्शन के साथ उसकी साधन-प्रणाली का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, और साधन-हीन दर्शन भारत में वाग्विलास-मात्र समझा जाता था। दर्शनों को हेय वे ही व्यक्ति कहते हैं, जिनका जीवन दर्शनोक्त पदार्थों की उपलब्धि के लिये वेगवान् नहीं है। प्रयोगशाला (Laboratory) से हीन मौलिक विज्ञान जैसा अनर्थक है, उपलब्धि कारक प्रयत्नहीन दार्शनिक का वाक्य भी ठीक ऐसा ही समझना चाहिये। किसी भी दर्शन का प्रत्येक सिद्धान्त नैतिक प्रयोगशाला में परीक्षण भी किसी भी विद्वान् की को परीक्षा बिना प्रामाणिक नहीं मा

यहाँ हमारा इतना ही दो अपनी कमियों से परिचित हो उन विपर्यस्त भावों से दार्शनि जो हानि हुई है, उसको भी ठीक है कि दर्शनों में जितने सत्य हैं वे मानव के लिये परम

> व्यर्थ है वह दार्शनिक की वाणी जो किसी के दुख की दवा नहीं बनती। जैसे कोई दवा अगर शरीर से रोग न निकाल सके तो वह बेकार है वैसे ही अगर किसी फिलसफा से मन की व्यथा नहीं हटती तो वह भी बिलकुल बेकार ही है।
>
> —एपिक्युरस

> मैं एक बार प्रोफेसर (विलियम) जेम्स के साथ उनका भाषण सुनने के बाद घर लौट रहा था। बात-चीत के अन्त में मैंने यह इकबाल किया कि मेरी इच्छा भी दर्शन के अध्ययन की है। वह बड़ी संजीदगी से मेरी ओर मुड़कर बोले, "ऐसा कभी न करना। तुम अपना पेट फिर पूरब की हवाएँ खाकर ही भर सकोगे!
>
> —वाल्टर बी० कैनन

्षिण अफ्रीका में गोरों के काले कारनामे

रोनेल्ड एम० सेगल

, १६ दिसम्बर, १८३८ के दिन नाटाल के सीमान्त पर कुछ गोरे
ज़ूलू सेनासे भिड़ंत हुई, जिसके परिणाम-स्वरूप दक्षिण-अफ्रीका की
 शक्तिशाली आदिम जाति की शक्ति और प्रभाव निश्चिन्ह हो
 दिन से कालों पर गोरों का शासन थोपा गया। तब से दक्षिण-
जाकर बसे गोरे हर साल इस दिन को एक पवित्र त्योहार के रूपमें
 इसे 'डे आफ् दि कवेनेण्ट' कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि इस
 ने गोरों के काले शत्रुओं को उन्हें सौंपकर इस काले महाद्वीप पर
म्राज्य की नींव डाली !

शत्रु-भाव का उदय

लगभग सवा सौ साल बाद दक्षिण-अफ्रीकनों की जो स्थिति है, उसका
करते हुए हाल ही में दक्षिण-अफ्रीका की गोरी सरकार के अर्थनीति
त्री ने कहा है—"आज दक्षिण-अफ्रीका के दुर्बल, छोटे और अकेले
र की ही तरह फिर खून की नदी के किनारे खड़े अपनी पराजय
 की प्रतीक्षा कर रहे हैं ! और हम गोरे भी १८३८ की तरह ही
ाबूद कर देने पर तुले हुए दुश्मनों से घिरे हैं। अगले १०-२०
रे भाग्य का फैसला हो जायगा।"

ज तो दक्षिण-अफ्रीका पर गोरों का राज है। अकेले जोहानेसबुर्ग
,०० गोरे और ५,७६,२०० काले हैं। फिर भी क़ानूनन यह गोरों का

नगर बना दिया गया है। यहाँ रहने, दुकान लगाने, कारबार करने, पढ़ने, पार्क-पुस्तकालयों में जाने आदिका अधिकार सिर्फ़ गोरों को है तो सड़क या फुटपाथ तक पर नहीं चल सकते। सब काले जोहानेस मील दूर एलेक्ज़ेंड्रा में रहते हैं, जहाँ से रोज़ हरी बसें उन्हें गोरों के कल-कारखानों में काम करने के लिए लाती हैं। इन काले मज़दूरों भर के हाड़-तोड़ परिश्रम के लिए केवल १६ पौंड मासिक अधिक मिलता है। इसी का परिणाम है कि हज़ार पीछे २००-३०० द... १६ वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले ही मर जाते हैं। मोटे पेट... बच्चे और रास्तों के किनारे असमय मरे पड़े बच्चों की लाशें आम नजारा है।

वर्ण-भेद की दुर्नीति का मूल

१६४७-४८ से १६५७ तक जहाँ खानगी उद्योग-धंधों में का... वाले गोरोंकी संख्या १,२६,००० से बढ़कर २,०२,००० (५७.७ प्र...

ट्रान्सवाल के बेनोनी शहर में कारखाने के मजदूरों को मारती-पीटती पुलिस

वहाँ कालों की २,००,००० से बढ़कर ३,६७,००० (८३.५ प्रतिशत) हो
इसी अनुपात में कालों की बराबर वृद्धि हो रही है। अबतक गोरे मिस्त्री
होते थे और केवल शरीर-श्रमके लिए कालों को रखते थे। पर अब कई
दक्ष कारीगर भी बन गए हैं, जिससे गोरे मालिक कुछ चिन्तित हैं। इसे
के लिए वे जिस भेद-नीति को अपना रहे हैं, उसके अन्याय के विरुद्ध
। संघबद्ध रूप से काले आवाज भी उठाते हैं। १६५७ में तो कालों ने
र ले जानेवाली बसों की रंग-भेद नीति की कड़ाई के खिलाफ़ उनका

वेसी उत्तरी और दक्षिणी रोडेशिया की सीमाओं पर बहती है। पूरा होनेपर
बाँध पानी, बिजली आदि की खपत करने वाले संसार के सबसे बड़े बांधों
से एक होगा। यह विश्व बैंक की मदद से बना है और अफ्रीका
की आर्थिक उन्नति का एक प्रतीक है।

जम्बेसी नदी पर अफ्रीका की करीबा बाँध

ड एम० सेगल
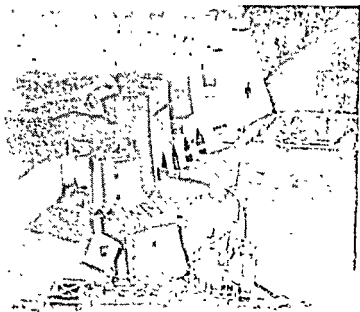
बहिष्कार ही कर दिया था और मीलों पैदल चलकर आते-जाते थे। [illegible] तक पोर्ट एलिज़ाबेथ के मार्ग पर प्रतिदिन कोई ६० हज़ार काले २० [illegible] पैदल चलते नज़र आते थे।

कालों के इस संगठित विरोध की प्रवृत्ति को तोड़ने के लिए गोरे [illegible] समझौते के बजाय बल और षड्यंत्र से ही काम लेने में अधिक [illegible] हैं। जनवरी, १६५७ में दक्षिण-अफ्रीकन पार्लमेंट में बोलते हुए [illegible] मंत्री ने कहा था—"कालों का यह संगठित प्रतिरोध कोई अर्थनीति [illegible] बल्कि राजनीतिक मसला है। उनके बस-बहिष्कार को भंग करके [illegible] क़ानून और व्यवस्था को मानने के लिए बाध्य करना होगा।" इसके [illegible] ही दिन बाद शासन ने बहिष्कार करनेवाले कालों की शिकायतें सुनने के [illegible] अंधाधुंध उन पर डंडे बरसाने शुरू किए। इससे उत्तेजना और भी [illegible] जिससे घबराकर जोहानेसबुर्ग की सिटी-कौंसिल और व्यापार-मंडल [illegible] ने [illegible] क्षति-पूर्ति के लिए नए कर देने की सिफ़ारिश की और कालों की उजरत में [illegible] कुछ वृद्धि करने का सुझाव रखा। फल-स्वरूप जहाँ दैनिक आवश्यक [illegible] चीज़ों की मूल्य-वृद्धि ११.१ प्रतिशत हुई, कालों की उजरत में केवल [illegible] प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार कुछ समय के लिए कालों का [illegible] विरोध ठंडा पड़ गया और गोरे फिर निश्चिन्त होकर अबाध गति से [illegible] शोषण में जुट गए।

किन्तु दक्षिण-अफ्रीका की वर्ण-भेद-मूलक दुर्नीति का प्रधान आधार [illegible] है। अफ्रीकनों की सबसे बड़ी भूख भूमि की है। १६१३ में पहली [illegible] ने 'नेटिव लैंड-एक्ट' पास किया, जिसके अनुसार गोरों द्वारा [illegible] अच्छी ज़मीन दख़ल कर ली जाने के बाद जो ज़मीन बचे, उसका [illegible] से अनुमति लेकर उपयोग कर सकते हैं; पर कब्ज़ा या मिल्कियत उनकी [illegible] हो सकती। इसी के साथ कालों को शिक्षा, नए उद्योग-धंधे [illegible] मताधिकार आदि से भी वंचित कर दिया गया। कुछ समय [illegible] कम्यूनिज़्म-विरोधी क़ानून की ओट में तो गोरों ने किसी भी [illegible] को कम्यूनिस्ट बताकर उसके सब अधिकार, संपत्ति आदि छीन [illegible] एकाधिकार भी अब अपने हाथ में ले लिया है।

मरता क्या न करता?

१६३६ में जब हर्टजोग और स्मट्स के दल एक हो गए, तो उन्होंने समस्याके हल के लिए एक नया कानून पास किया 'नेटिव ट्रस्ट एण्ड लैण्ड ।इसके अनुसार दक्षिण-अफ्रीका की ८७॥ प्रतिशत आबादी को १२ प्रतिशत नी भूमि दी गई और बाकी १२ प्रतिशत के लगभग गोरी आबादी को प्रतिशत अच्छी भूमि । इसमें भी जो निकम्मी भूमि अकेले काले व्यक्तियों गई है, उसका औसत तो आधा प्रतिशत भी नहीं है । कालों के हिस्से धिकांश जमीन का मालिक भी गोरों का नेशनल ट्रस्ट ही है ! यदि वे गोरे चाहें, कालों को निकालकर जमीन गोरों को दे सकते हैं। फिर जो । एकदम रेतीली या जंगल-भरी है, उसके काले बाशिंदों में से १८ से र्ष की उम्र के हर व्यक्ति को अपनी आय का ७५ प्रतिशत कर के रूप में रहता है। इस पर भी गोरे किसान (जमींदार) या कल-कारखाने के क कालों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं, इसके दो उदाहरण देखिए :

(१) म्लोंग तेम्बेनी नामके एक काले खेत-मजूर को अपने गोरे मालिक की तीन भेड़ें चुराने के जुर्म में ६ मास की कड़ी कैद और लगभग ३००) जुर्माने की सज़ा दी गई । जज ने कहा कि उसके एक पत्नी और ६ बच्चे हैं और उसकी आय है १४) मासिक तथा राशन के रूप में ४ गैलन मीली-खाद्य । आप ज़रा पाठक सोचें कि इसमें वह ८ प्राणियों का पेट कैसे भर सकता है?

(२) जिम मेन्तसी के एक स्त्री और ५ बच्चे हैं और पूर्वी केप का एक गोरा मालिक उसे १४) मासिक और १८ पिंट मीली-खाद्य तथा थोड़ा-सा नमक राशन के रूप में देता है। जब उसने कुछ अधिक खाद्य की माँग की, तो उसे बर्खास्त कर दिया गया। इस पर उसने एक चाकू निकाल कर अपने गोरे मालिक पर हमला किया, जिसके फलस्वरूप उसे फाँसी की सज़ा मिल गई ।

खानगी जेलें !

कालों पर डंडे बरसाने और उन्हें सज़ा देने का अधिकार केवल गोरी

या अदालतों को ही नहीं, हर गोरे को प्राप्त है। १९४७ में पादरी ...
स्कॉट ने इसके लिए गोरे किसानों (जमीन्दारों) द्वारा बनाई गई खानगी जे
का भी भंडाफोड़ किया। आलू के बड़े-बड़े फार्मों में काले मजूरों को हाथ
अँगुलियों से आलू खोद-खोद कर निकालने पड़ते हैं, जिससे उनके हाथ
नहीं, शरीर के कई अंग बेकार हो जाते हैं। यही हाल मक्का और गेहूँ
खेतों में काम करनेवालों का है। जब कभी अधिक परिश्रम या ठंड पर
कोई मजूर शिथिल या बेहोश हो जाता है, तो गोरे संतरी उसको ढंडों
ठोकरों से मरम्मत करते हैं और उन्हें सजा देने को खानगी जेलों में बन्द
देते हैं। इसमें कभी-कभी कई कालों की हत्या भी होती है, जिसकी कि
को कोई चिन्ता नहीं।

गोरे न्याय-मंत्री ने पहले स्वयं एक खानगी जेल खोली, जिसका अनु
दूसरों ने भी किया। इनसे और सरकारी जेलों से कैदियों को नाम मात्र
उजरत पर गोरों के फार्मों में काम करने भेजा जाता है। इस पर भी काले
गोरे फार्मों की सस्ते मजदूरों की माँग पूरी नहीं हो पा रही है।
के डर से कोई काला इन फार्मों में काम पाने जाता ही नहीं।

पास की कठोरता

काले मजदूरों को संघबद्ध न होने देने और गोरों के शोषण के लिए
बेगार लेते रहने के अभिप्राय से गोरे शासन ने हर १६ वर्ष से ऊपर के
लिए अपनी शनाख्त के नाम पर पास रखना अनिवार्य कर दिया है।
पहले १७६७ में केप पर अँग्रेजों का अधिकार होने पर पास का चलन शुरू
गया। इसका उद्देश्य था इस बहाने हर काले को गोरों के खेतों या का
में सस्ते श्रम के रूप में भेजना। इसी के आधार पर कालों का गोरों के
घुसना या काम पर बाहर निश्चित समय के भीतर वहाँ से लौटना नि
किया गया। इसी के आधार पर १९२१ में ट्रांसवाल कमीशन ने काले
म्युनिसिपल मताधिकार से भी वंचित कर दिया। ७२ घंटे से अधिक
रहनेवाले काले के लिए विशेष पास लेना अनिवार्य कर दिया गया।
या अधिकारियों की विशेष सिफारिश पर पास होने पर उसे अधिक से अ

रों तक शहर में रहने की अनुमति दी जाती। कालों के लिए शहर में या जमीन खरीदने, रहने आदि का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

जब नेशनलिस्ट-पार्टी सत्तारूढ़ हुई, तो उसने पास के नियमों को और ठोर बना दिया। उसने पास की अवधि से अधिक कहीं रहनेवाले की बढ़ा दी। उन्होंने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने, रहने, ठहरने, करने आदि के लिए अपने मालिक, म्युनिसिपैलिटी, मजूर-संघ आदि से पूर्व ति प्राप्त करना भी ज़रूरी कर दिया। अगर इस कठोरता के खिलाफ़ कोई भी चूँ करता, तो उसे पास से वंचित कर ऐसा निराश्रित और अनाथ दिया जाता कि काम या राशन पाना भी उसके लिए असंभव हो जाता। ही समय पहले सरकार ने पास-कानून स्त्रियों पर भी लागू कर दिया, जिसके र में कई प्रदर्शन हुए। फल-स्वरूप कालों पर डंडे बरसाने के अलावा गोरी ने लाखों व्यक्तियों को पकड़कर जेलों में कैद भी कर दिया। इससे गोरों ह प्रत्यक्ष लाभ हुआ कि अब उन्हें अपने फार्मों के लिए और भी कम र पर काले क़ैदी-मजूर मिलने लगे! फिर इस बहाने गोरे अधिकारियों लों से जुर्माने के नाम पर उनकी नाम-मात्र की ज़मीनें, झोंपड़ियाँ, बर्तन, आदि न जाने क्या-क्या कब्जे में कर लिए। १९५० में पास-कानूनों की ल्ना करने पर २,१७,३८७ काले दंडित हुए थे और १९५५ में ,६०३, जो दक्षिण-अफ्रीका के पुरुषों की संख्या के अनुपात में कुछ मामूली है। इधर तो दंडित महिलाओं की संख्या भी तेज़ी से बढ़ रही है।

श्रमिकों का नियंत्रण

पास-कानून वर्ण-भेदमूलक दुर्नीति से गोरों का प्रभुत्व और शोषण जारी का एक बहुत बड़ा हथियार तो है ही, काले श्रमिकों के जीवन और नों को नियंत्रित रखने का एक बहुत बड़ा यंत्र भी है। कालों के किसी संगठन को सरकारी मान्यता नहीं दी जाती और उनके हर प्रतिरोध या ल को अवैध घोषित कर दिया जाता है। विरोध करनेवालों के न सिर्फ़ ही ज़ब्त कर लिए जाते हैं, बल्कि उन्हें कड़ी सज़ा भी दी कभी कुछ मज़दूरों को अपने गोरे मालिकों से कोई शिकायत

१६५८ के
नोबेल-पुरस्कार-विजेता
और उनके उपन्यास पर
कुछ विचार

बोरिस पास्तेरनाक और 'डा० ज़िवागो'

—मोहनसिंह सेंगर

१६१७ की अक्टूबर-क्रांति के बाद बोरिस पास्तेरनाक (६६) रूसमें रहने
पहले रूसी कवि-लेखक हैं, जिन्हें गत वर्ष साहित्य का नोबेल-पुरस्कार देना घोषित हु
(इससे पूर्व १६३३ में यह पुरस्कार रूसी लेखक इवान बूनिन को मिला था, प
फ्रांस में प्रवासी थे ।) १६५८ में ही भौतिक विज्ञान का नोबेल-पुरस्कार भी तीन
विज्ञानवेत्ताओं को मिला । किन्तु 'प्रावदा'-जैसे ज़िम्मेदार रूसी (सरकारी) पत्र ने
विज्ञानवेत्ताओं को मिले नोबेल-पुरस्कार को 'विज्ञान के मौलिक महत्त्व के
उपयुक्त व्यक्तियों को दिया गया पुरस्कार' बतलाया, वहाँ पास्तेरनाक को
साहित्यिक पुरस्कार को 'प्रतिगामी राजनीतिक ध्येय से प्रेरित' कहा । 'प्रावदा'
मत है कि 'पास्तेरनाक रूसी यथार्थता को बदनाम और रूस के बुद्धिजीवियों के
और महत्त्वाकांक्षाओं, कार्यों और लेखन को विकृत करनेवाला है! इस
फिलिस्टाइन में यदि सोवियत गौरव की एक भी चिनगारी है, तो वह इस पुर
घोषणा पर पश्चात्ताप ही करेगा ।' मास्को-रेडियो ने भी दस भाषाओं के सो
साहित्य में पास्तेरनाक का कोई स्थान न होने, उन्हें एक क्षयशील कवि और
नवप्रकाशित उपन्यास 'डाक्टर ज़िवागो' को कलात्मक दृष्टि से निम्न स्तर का
-समाजवाद के प्रति घृणा से ओतप्रोत बतलाया और कहा कि यदि इसका

हर जाना चाहे, तो खुशी से जा
'मास्को लिटरेरी गजट' के शब्दों
का नोबेल-पुरस्कार एक गद्दार
त और उपन्यास-लेखन-कला
से एक सड़ी हुई और द्वेषपूर्ण,
चना पर घोषित हुआ है।' रूस
साहित्यिक पत्रिका की राय
र्व बुर्जुआ साहित्य-प्रेमियों ने
प्रतिगामिता का हथियार बनाने
ही 'डाक्टर जिवागो' को
चुना है, जो रूसके खिलाफ़
पूर्ण कार्य है ! यह शीत युद्ध
भी अधिक बढ़ावेगा।' रूसी
के ८०० सदस्यों ने सर्वसम्मति
क को संघ की सदस्यता से ही
किया, बल्कि उनकी रूसी
छीन कर उन्हें स्वदेश से बाहर
ने के लिए अगली मर्दुमशुमारी
नाम तक मिटाने के लिए जोर
बाहर फ़्लोज द डान' के लेखक
लोवर ने कहा—'पास्तेरनाक को
से निकालना ठीक ही है। उसका
डाक्टर जिवागो' असंदिग्ध रूपसे
है।' कॉम्सोमोल के नेता
सेमीचेस्तनी ने तो यहाँ तक कहा
नाक एक सूअर है, जो अपने
खाने की जगहों में गंदा करता है
लोगों को भी, जो उसके साथ रहते
के श्रम पर वह स्वयं जीवित

ाक की विवश प्रतिक्रिया

र की प्रतिक्रिया सोवियत रूस
में स्वतंत्र वृत्ति के लेखक की स्थिति पर एक खासी अच्छी खेदपूर्ण टिप्पणी है ! जिस लेखक ने पुरस्कार की सूचना मिलने पर तार द्वारा सहर्ष विनम्र संतोष प्रकट किया, उसीको सिर्फ़ सात दिन बाद ही स्वदेश के साहित्यिक शत्रुओं और सरकारी दलालों द्वारा उठाये गये तूफ़ाने-बदतमीज़ी को देखकर यह लिखने को मजबूर होना पड़ा कि 'मैं जिस समाज में रह रहा हूँ और उसमें मेरे इस सम्मान को जो अर्थ दिया जा रहा है, उससे मैं अपने आपको नोबेल-पुरस्कार पाने का अधिकारी नहीं समझता।'

पास्तेरनाक ने 'प्रावदा' में एक चिट्ठी छपवाकर स्पष्ट किया कि 'नोबेल-पुरस्कार डाक्टर जिवागो पर नहीं, बल्कि मेरी कविताओं पर मिला है और इसी कारण मैंने पहले उसे स्वीकृत किया था। कवि की हैसियत से ५ वर्ष पहले भी मेरा नाम इस पुरस्कार के लिए प्रस्तावित हुआ था।··· अब जिस उपन्यासकी इतनी निन्दा हो रही है, अगर उसी पर मुझे पुरस्कृत किया गया है, तो वह राजनीतिक कारणों से भी हो सकता है। इसीलिए मैंने इसे लेने से इन्कार कर दिया।···पहले पुरस्कार-प्राप्ति पर मैंने जो खुशी जाहिर की थी, वह मेरी गलती थी। मैं नहीं चाहता कि मुझमें और मेरे देश के बीच में कोई दीवार खड़ी हो या मेरे देश को कोई नुकसान हो। 'नोवी मीर' के संपादकों ने डाक्टर जिवागो को छापने से इन्कार करते हुए मुझे चेतावनी भी दी थी कि 'डाक्टर जिवागो' अक्टूबर-क्रांति और सोवियत-राष्ट्र के आधारभूत सिद्ध

ाद सेंगर

के खिलाफ है। अगर यह इतालीमें छप न गया होता, तो मैं इसमें अवश्य ही सुधार-संशोधन करता। पर अब तो वह मौका हाथ से निकल चुका। दूसरे देशों में यह पुस्तक मेरी स्वीकृति के बिना ही छापी गई है।'

क्या यह पत्र-प्रकाशन वस्तुस्थिति या सचाई की अपेक्षा भय, आतंक, जिल्लत, आशंका की उन परिस्थितियों को नहीं प्रदर्शित करता, जिनमें निरंकुश आततायी शासन से त्रस्त न जाने कितने राजनेता, बुद्धिजीवी लेखक, कवि और कलाकार यंत्रणा-कैंपों या गोली का शिकार होने से पहले ही झूठे इक़बाली बनकर अपने समाज-सम्मान का गला घोंटने को बाध्य हो गए थे? कवि बोरिस पास्तेरनाक आज अपने ही देश में एक आश्रय-मित्र-हीन प्रवासी की तरह हैं। अतः हम उनसे इसके अतिरिक्त किस प्रतिक्रिया की आशा कर सकते हैं? लगता है, जैसे दोष-स्वीकृति के बाद भी वे अपने को निर्भय और निश्चिन्त अनुभव नहीं कर पा रहे, अन्यथा ख़ुश्चेव को वे स्वयं ही यह पत्र न लिखते :—

'यह पत्र मैं सीधा आपको, सोवियत संघ की केन्द्रीय कम्युनिस्ट पार्टी को और रूसी सरकार को लिख रहा हूं। मुझे पता चला है कि सरकार मेरे रूस से बाहर जाने के मार्ग में कोई रुकावट खड़ी नहीं करेगी। पर मेरे लिए ऐसा करना असंभव है। मैं अपने जन्म, जीवन और काम से रूससे घनिष्ठ रूप से बँधा हूं। मैं तो रूससे अलग और उस से बाहर रहने की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। मेरे से और चाहे जैसी गलतियाँ हुई हों, पर मैं यह कभी नहीं सोच सकता कि मेरे नाम को लेकर पश्चिम में एक इतना बड़ा राजनैतिक तूफ़ान उठ खड़ा होगा। स्वेच्छया नोबेल-पुरस्कार नामंज़ूर कर... अपनी मातृभूमि की सीमाओं से बाहर... लिए मृत्यु के समान है। इसलिए मैं... अनुरोध करता हूं कि मेरे खिलाफ़ कड़े... न उठाया जाय। मैं अपनी छाती... रखकर कह सकता हूं कि मैंने रूसी... लिए कुछ किया है और शायद भविष्य... उसके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकूं।'

पास्तेरनाक का अप...

कवि पास्तेरनाक एक उदार... सुसंस्कृत, सत्य और सौन्दर्य के... मननशील एवं चरित्रवान् साहित्... उस परम्परा के तटस्थ सृजनात्मक... हैं, जो बाहरी घटनाओं एवं ... अछूते रह अपनी ही दुनिया में... अपने ही ढंग से अपने पात्रों ... का चित्रण करते हैं। यद्यपि... ऑर्थोडॉक्स चर्च की धार्मिक मान्... हैं, पर वे अपने-आपको प्रायः ... बतलाते हैं। रूस के अधिकांश ... समान वे भी कम्युनिस्ट या मा... हैं और न कभी उन्होंने रूसी ... की हिदायतों के अनुसार सा... ही की, अथवा सरकारी गुर्गों ... लेखकों के प्रति किये गए विधा... बहिष्कार आदि के किसी ... या परोक्ष रूप से साथ ही ... पिता अच्छे चित्रकार और ... विशारदा थीं। इन दोनों के ... विरासत ने ही पास्तेरनाक को ... चेता कवि बनाया—सत्य, ... जीवन का उपासक कवि, जि...

उनकी प्रकाशित रचनाओं में
है। उनका स्पष्ट कथन है कि
जीने के लिए पैदा हुआ है, जीने
री करते रहने के लिए नहीं।
ई भौतिक पदार्थ या ऐसी चीज
जिसे मन चाहे ढंग से गढ़ा जा
ह आपके और मेरे विचित्र
से भी परे है।'

४ में जापान के साथ हुए युद्ध में
र, अकाल, आतंक और मृत्यु के
हार की दुखद प्रतिक्रियाएँ, पहला
गृह-युद्ध, अक्टूबर-क्रांति और
न-आतंक के रक्तिम कीचड़ से
। नए रूस के चेहरे को पास्तेरनाक
नेकट से देखा। निःसंदेह उन्होंने
लहर का स्वागत किया, पर
ो छाप एक निष्पक्ष-निर्दल
क मन पर पड़ सकती थी, वही
पड़ी और उसी की प्रतिछवि
हुट कविताओं तथा उसके घनी-
'डाक्टर जिवागो' के रूप में
ई। पर चूँकि पास्तेरनाक एक
विचारक हैं और वे अपने-
सी दल या मतवाद के हाथों बेच
हैं, उनकी दृष्टिभंगी और
का भिन्न होना स्वाभाविक ही
: इन्हें सरकार का कोप-भाजन
और उन्होंने शेक्सपियर, गेटे
अनुवादों द्वारा ही अपने साहित्यिक
अक्षुण्ण बनाए रखने की
इसका एक उदाहरण यह भी है
छ समय पहले ही उनसे कहा

गया था कि वे बाकू की तेल-खदानों के क्षेत्र
में रहकर तेल-श्रमिकों की सफलता और
कार्य-पटुता का अध्ययन करें और इस पर
एक पुस्तक लिखें। पर उन्हें सरकारी हुक्म
पर लिखना अच्छा नहीं लगा, अतः वे
बाकू नहीं गये।

किसी भी सृजनात्मक कलाकार के
जीवन तथा साहित्य के प्रति रुख, विचारों
और दर्शन को किसी समय-विशेष के
शासन या मतवाद के पक्ष या विपक्ष में
बाँटने का प्रयत्न न तो समीचीन है और न
लेखक के साथ न्याय ही। उसके सम्पूर्ण
जीवन-दर्शन को हमें समझ और सहानुभूति
के साथ देखना होगा। पास्तेरनाक १९वीं
शताब्दि की उस दार्शनिक संस्कृति की
पृष्ठभूमि में पले और बड़े हुए, जिसमें
आदमी अपनी आशा-निराशा, प्रेम-विरह,
सुख-दुख आदि को अतीत के नक्शे पर देखने
का आदी था। इस काल के बुद्धिजीवी तटस्थ
और अपने ही फन में मस्त रहनेवाले जीव
थे। उनका खानगी जीवन अपना था,
उनके अनुभव अपने थे और इन्हीं के
माध्यम से वे युग के राजनैतिक एवं सामा-
जिक परिवर्तनों को देखा करते थे। कभी-
कभी इसी लिए इनकी रचनाएँ जीवन की
मुख्य धारा से जरा अलग और सम-
सामयिक घटनाओं से अप्रभावित होती थीं।
शिलर के शब्दों में यह एक प्रकार की छट-
पटी कला है। परन्तु मार्क्सवाद से प्रेरित
कम्युनिस्ट शासन में व्यक्ति के इस अलग
और तटस्थ व्यक्तित्व के लिए कोई स्थान
नहीं है। जो कलाकार सरकारी झंडा-

बरदार न बने, सरकारी मतवाद को अग्रसर करने और लोकप्रिय बनाने के लिए साहित्य न रचे, उसके लिए जैसे इस व्यवस्था में कोई उपयोग या स्थान नहीं। फलतः गैर-कम्युनिस्ट और गैर-मार्क्सिस्ट पास्तेरनाक को ऐसी व्यवस्था में 'क्षयशील सभ्यता का पहरुआ, परम्परावादी औपचारिकता का प्रचारक, बुर्जुआ और कल्पना-विलासी' आदि न जाने क्या क्या कहा गया! रूस के जिन कलाकारों ने इस निन्दा, कलंक या बहिष्कार से बचने के लिए अपने-आपको कम्युनिस्टों का चारण बनाया और बादमें, शायद अन्तर्मन में, अपने प्रति किए गए इस अविश्वास एवं विश्वासघात की ग्लानि महसूस कर आत्म-हत्या की, उनमें येसेनिन, मायकोवस्की और फेदेजेव के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी पास्तेरनाक के गहरे दोस्त थे। चूँकि पास्तेरनाक कच्चे विचारों और सस्ती लोकप्रियता के भूखे न थे, अतः उनका हश्र ऐसा नहीं हुआ, बल्कि उन्हें इन घटनाओं से कुछ सबक ही मिला। मायकोवस्की की कब्र के पास खड़े होकर पास्तेर्नाक ने क्रांति के इस कवि के अशोभन अंत पर आँसू नहीं बहाए, सिर्फ इतना ही कहा कि 'जो पागल शासन सदियों से आ-जा रहा है, उसकी वेदी पर यह एक और बलि चढ़ी।'

पास्तेरनाक-विरोधी साहित्यिक षड्यंत्र

पिछले ४० वर्षों में रूस में घटनाएँ जिस तेजी से घटीं और आगे बढ़ीं, में जो ऊँच-नीच आए, जीवन के क्षेत्र में परिवर्तन का जो उतार-चढ़ा उसने कवि पास्तेरनाक के अनुभवों, स्थाओं, विचारों, प्रतिक्रियाओं में एक असाधारण आलोड़न पैदा। इसके फल-स्वरूप उन्होंने १९०३ से १९२९ तक के रूसी जीवन का चि कवि-डाक्टर के माध्यम से किया। हैं कि इसका अधिकांश भाग उन्होंने तक लिख भी लिया था, पर स्ता आतंक और आततायीपन की दोस्त इसे प्रकाश में लाने की बात सोच (पाए। (तब तो शायद उन्हें भी य न रहा होगा कि उनकी यह रचन रूस में छप भी सकती है!) पर स्तालि मृत्यु के बाद जब ख्रुश्चेव ने उसके यीपन का भंडाफोड़ किया, 'नोवी मी संपादक त्वारदोवस्की को बर्खास्त कि तथा साहित्य में सचाई के ठेकेदा पोमेरन्त्सेव के संकीर्ण विचारों की आम भर्त्सना की, तब पास्तेरनाक को कि संभवतः रूसमें अब सहिष्णुता और विचारों का युग आ गया है। अ 'डाक्टर जिवागो' को पूरा करने ही ध्यान दिया। १९५५ में जब यह हुआ, तो उन्होंने इसे कम्युनिस्ट समर्थक लेखकों के संघ के द्वारा मीर' में धारावाहिक रूप से प्रका भेजा। (१९५४ में पुस्तक के अन्त के कुछ कविताएँ 'ज्नमाया' पत्र में छ सितंबर १९५६ में 'नोवी मीर' के

यास को अस्वीकृत कर लौटाते हुए
[और निराशा के साथ लिखा कि
अक्टूबर १९१७ की क्रांति को
गार किया गया है और यह राजनै-
वरोध की भावना से लिखा गया है !
ारक ने इन लांछनों और आरोपों का
त्तर नहीं दिया और उपन्यास की
पि चुपचाप रख ली ।
ी बीच इताली के प्रसिद्ध कम्युनिस्ट
ि डा० जी० फेल्त्रीनेली किसी
ा मास्को आए और साहित्यिक क्षेत्र
० जिवागो' की भर्त्सना सुनकर
पांडुलिपि देखनी चाही । पास्तेनारक
पर कोई आपत्ति नहीं की और
ा आश्वासन के साथ उसे अपने
इताली ले गए कि पसंद आने
। इसका इतालियन भाषान्तर
त करेंगे । जब रूस के सरकारी
ियकों को इसका पता चला, तब बड़ा
ा मचा और पास्तेरनाक पर जोर
गया कि वे तार देकर 'डा० जिवागो'
ाशन रुकवा दें या फिर पांडुलिपि
ी हेर-फेर करने के बाद छपवायें ।
होकर पास्तेरनाक ने इस आशय का
ा० फेल्त्रीनेली को भेज दिया । पर वे
थे कि पांडुलिपि एक बार रूस जाने
ा शायद ही लौट कर वापस आ सके,
उन्होंने वैसा करने से इन्कार कर
। इसके बाद 'डा० जिवागो' इतालियन
छपा ही, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी आदि
दया और उसकी लाखों प्रतियाँ हाथों
क गई ! यह विश्व-साहित्य

के इतिहास में एक अभूतपूर्व दुर्घटना है कि यह रचना जिस भाषा में लिखी गई, उसमें और जिसके लेखक द्वारा लिखी गई, वहाँ नहीं छपी है और शायद उस देश में छपेगी भी नहीं।

पत्रों में प्रकाशित विवरण से प्रकट है कि पास्तेरनाक और डा० जिवागोको कम्युनिस्ट विरोधी आरोपित करने के पीछे कम्युनिस्टों के सरकारी साहित्यिकों और पास्तेरनाक के साहित्यिक शत्रुओं एवं विरोधियों का बड़ा गहरा हाथ रहा है । पाँच साल पहले जब कि पास्तेरनाक का नाम साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार के लिए प्रस्तावित हुआ, तब भी ये गुर्गे गला फाड़-फाड़कर चिल्लाए थे कि रूस में अगर कोई साहित्यिक नोबेल-पुरस्कार पाने को अधिकारी हैं, तो वे शलोव या ल्योनफ ही हैं, और कोई नहीं । १९५८ में पुरस्कार-घोषणा और 'डा० जिवागो' के प्रकाशन ने जैसे इनके बुद्धि-विवेक के बांध को ही तोड़ दिया और इन्होंने पास्तेरनाक के खिलाफ एक गैर-सरकारी जिहाद-सा शुरू कर दिया । पास्तेरनाक के खिलाफ यह गलत, भूठा और बेईमानी-भरा आन्दोलन शुरू करने में मुखिया बने सरकारपरस्त लेखक-संघ के मंत्री और पास्तेरनाक के प्रतिद्वन्द्वी सुरकोव । सुरकोव ही दिसम्बर १९५७ में मास्को-स्थित इतालियन दूतावास के एक अधिकारी को साथ लेकर पास्तेरनाक के पास यह धमकी देने गया था कि वे 'डा० जिवागो' की पांडुलिपि ११

नरसिंह सेंगर

मँगा लें, अन्यथा वे रूस के खिलाफ एक अमैत्रीपूर्ण कार्य और विश्वासघात करने के अपराधी होंगे। जब पास्तेरनाक ने 'डा० जिवागो' में सुधार-संशोधन करने की बात नहीं मानी और बाद में डा० फेल्त्रीनेली ने उसे लौटाने से इन्कार कर दिया, तब तो सुरकोव का दिमाग फिर गया और उसने २ दिसम्बर, १९५७ के 'प्रावदा' में न सिर्फ पास्तेरनाक की, बल्कि उसे पुरस्कृत करनेवालों की भी भर्त्सना की। 'डा० जिवागो' को रूस में न छपने देने और बाद में लेखक-संघ के कुल ८०० सदस्यों द्वारा सर्वसम्मति से पास्तेरनाक को संघ की सदस्यता से बर्खास्त करने का प्रस्ताव पास कराने में भी सुरकोव का ही प्रमुख हाथ था। आज तो सुरकोव और उसके गुर्गे पास्तेरनाक को उसकी जीविका ही नहीं, जीवन के आधार से भी वंचित करने में आशातीत सफलता पा चुके हैं! उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि सरकारी टुकड़ों पर पले ये दरिन्दे अपनी ही जाति के लोगों को निगलने या समाप्त करने का पुण्य कार्य किस खूबी से कर सकते हैं! जैसे गोर्की ने चेखव के संस्मरणों के अंत में इन्हीं को संबोधित कर लिखा हो—'मेरे दोस्तो, तुम बड़ी बुरी तरह जी रहे हो। इस तरह जीना शर्मनाक है!'

'डाक्टर जिवागो' की मर्म-वाणी

'डाक्टर जिवागो' को दुबारा पढ़ने के बाद हमें ऐसा लगा कि इसे असाधारण साहित्यिक कृति कहनेवालों ने इस अतिरंजना की है, जितनी कि कम्यूनिस्ट-विरोधी और प्रति... बतलानेवाले टुकड़खोरों ने! ... टॉलस्टॉय, दोस्तॉएवस्की, चेखव, तु... पुश्किन आदि की परम्परा में यह अनोखी या अद्वितीय कृति न... और न ही शलोकोव के 'क्वाइट ... द डॉन' या दुदिन्त्सेव के 'नॉट बाइ ... एलोन' जैसे राजनैतिक ... छाप ही इस पर है। कला और शा... दृष्टि से शायद यह कोई असाधार... उत्कृष्ट कृति नहीं है। एक जिवाग... छोड़कर इसके अन्य सब पात्र पूरे ... पाए हैं और जीवन की सहज ग... अपेक्षा घटनाओं के घटाटोप ने कथा... न सिर्फ उलझा ही दिया है, बल्कि कहीं उसे बड़ा विशृंखल भी बना... है। सारा उपन्यास एक ऐसी लम्बी यात्रा-सा है, जो कई बार पाठक को ... भी देता है। घटनाएं भी धीरे ... जादुई ढंग से घटती हैं। अगर इसमें ... उल्लेखनीय बात है, तो यही कि यह ... पूर्व के रूसी जीवन और क्रांति के ... रूसी जीवन के बीच की एक ऐसी क... एक ऐसा सेतु है, जो अभी तक पूरी त... या ... नहीं हो पाई है। और ... कड़ी या सेतु पिछले चार... के रूस में आए राजनीति... क्रांति, अकाल, भुखमरी, बेकारी, और आतंकवाद के तूफानों और ... प्रतिक्रिया-प्रभाव का प्रतीक है। ...

: मध्यवित्त के बुद्धिजीवी के
गशा-निराशा, प्रेम-विरह, प्रशास-
निक आदि में उसके मनोभावों की
क हुई है, तो दुत्कारने या राज-
गरोप लगाने की अपेक्षा उस पर
गैर सहानुभूति से विचार किया
हिए। किसी साहित्यिक या कला-
केवल मतवादी कसौटी पर ही
राजनीतिक बटखरों से तौलना न
ंदी है और न ईमानदारी ही।

सुप्रसिद्ध रूसी कवि एलेक्जेंडर
शब्दों में कहा जाय, तो 'डाक्टर
सही मानी में रूस के भयंकर वर्षों
न है। इन भयंकर वर्षों में रूस
भय, क्रान्ति, अकाल, रक्तपात,
ारित्रिक ह्रास, युद्ध, गृह-युद्ध,
ा, भ्रातृ-हत्याएँ, कई टूटते हुए
क जीवन, सामूहिक शुद्धि और
ाया स्तालिन-युग की बर्बरता और
कता की लपटों और तूफान में से
पड़ा है। कवि-डाक्टर जिवागो के
प्रतिक्रिया और जीवन इन्हीं लपटों
ान में से निकली आँच और धुँए,
र जलन की मानवीय मस्तिष्क पर
एक मूक वेदना और निराशा से
ी कहानी है। इस तूफान में पड़कर
जिवागो को रूस के एक छोर से
र तक भटकना पड़ा। इसी दौरान
ने विवाह, प्रेम, प्रशासनिक जुल्म-
ियों और युद्ध की विभीषिका एवं
बरता के कटु अनुभव प्राप्त किए और
एक निराश-हताश टूटे हुए व्यक्ति के

रूप में मास्को की एक ट्राम से उतरने के
बाद हृदय की गति रुक जाने से मर गए।
इस मौत ने मानो एक ऐसे भावनामय व्यक्ति
के जीवन पर एक मोटी काली रेखा खींच
दी, जिसने कभी प्रशासनिक आततायीपन
के आगे अपने-आपको झुकाया नहीं, अपनी
भावनाओं और जीवन की भाषा को कुंठित
नहीं होने दिया।

यह कहानी मानो मौत से घिरी हुई
जिन्दगी एक की कराह है। इसमें रूस को
उसके समग्र रूप में देखा गया है। क्रान्ति
का स्वागत किया गया है, किन्तु उसके नाम
पर हुई बाल्शेविकों की जुल्म-ज्यादतियों
का समर्थन नहीं। इसमें भौतिक उन्नति
और सुखों के नाम पर हुई रूसी नागरिकों
की दुर्दशा, निराशा और यंत्रणा न केवल
रेखांकित ही हुई है, बल्कि इन्हें अस्थायी
परिवर्तन बताते हुए उज्ज्वल एवं आशापूर्ण
भविष्य का उद्घोष भी है।

मिथ्या लाञ्छना

'डा० जिवागो' की समूची कहानी को
पढ़कर कोई भी निष्पक्ष पाठक देख सकता है
कि समूचे उपन्यास में एक हारे-थके निराश
व्यक्ति के उद्गारों के रूप में मानवीय भावना,
आकांक्षा और स्पृहा अपने सभी रूपों में
अभिव्यक्त हुई हैं। चूँकि जिवागो डाक्टर
होने से पहले कवि थे, अतः डाक्टर के कटु
अनुभवों के बीच से भी कभी-कभी कवि
जिवागो झाँक उठता है। उनकी भावुकतापूर्ण
कल्पना ने कथानक के जलते हुए रेगिस्तान
में जहाँ-तहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य के ऐसे मुग्ध
कर देनेवाले वर्णन किए हैं कि पाठक

सहज सुख ही नहीं, आगे बढ़ने का उत्साह और आशा भी मिलते हैं। जहाँ इस रूप में उनकी व्यक्तिवादी रचनात्मक कला का संपूर्ण रूप उभरा है, वहाँ साहबी सीमा के रूप में धर्म के प्रति उनकी अडिग आस्था और अटूट विश्वास भी प्रकट हुए हैं। इसी वजह से उन्होंने फौजी वर्दी-धारी राजनेताओं द्वारा राष्ट्र के सारे नागरिकों के लिए एकमत से और एक ढंग से रहना अनिवार्य बना दिए जाने के बावजूद व्यक्तिगत स्वतंत्रता का झंडा ऊँचा ही रखा।

यह सही है कि पास्तेरनाक ने लेनिन, स्तालिन और उनके हत्यारे अनुयायियों की कड़ी आलोचना की है और ईसाई-मत की श्रेष्ठता भी प्रतिपादित की है, पर ऐसा उन्होंने क्रांति के वृक्ष की छाल और फल-फूलों को चखने के बाद ही किया है। उनके अनुभवों और अभिव्यक्ति का निचोड़ यही है कि व्यक्ति को आज़ादी से साँस लेने की सुविधा इसलिए मिलनी चाहिए कि उसकी हर अनुभूति और अभिव्यक्ति अबोध मानव प्रकृति का नैसर्गिक नियम या कानून है। इसीलिए चारों ओर से व्यक्तिवाद-विरोधी और समग्रतावादी वर्दीधारी शासकों, उनके झंडा-बरदार लेखकों और इस आततायीपन को दर्शन का जामा पहनानेवाले धूर्त दार्शनिकों के बीच रहकर भी पास्तेरनाक ने मानव की मर्यादा और अबाध स्वतंत्रता की आवाज़ ही बुलंद की। उन्होंने बलपूर्वक या कानून द्वारा नया जीवन बनाने, देने या लाने का दावा करने-वाले मदांध कट्टरपंथियों से भी यही कहा कि 'मनुष्य को स्वतंत्र और इच्छा से वंचित कर कौन नया जीवन है। उसके—किसी भी एक व्यक्ति जीवन और व्यक्तित्व का तिरस्कार ह्रास जीवन की गति, मति और कुंठित करना ही है।'

अगर हम इन बातों पर ज़रा और गहराई से विचार करें, तो कि ये बातें किसी वाद या राज- खिलाफ नहीं, बल्कि मानवता और अबाध स्वतंत्रता की यह केवल मार्क्सवादी या व्यवस्थाओं के संबंध में ही व्यवस्थाओं के बारे में भी लागू है, मानव-व्यक्तित्व की अबाध स्वतंत्र सीमाएँ संकुचित हो रही हैं प्रफुल्ल विकास और अभिव्यक्ति पर लगाई जा रही हैं।

और पास्तेरनाक कोई पहले हैं, जिन्होंने इस तरह की बातें उनके पूर्ववर्ती रूस के श्रेष्ठ कवि ब्लॉक अथवा चेख़व, गोर्की, दोस्तॉएवस्की और अन्य साहित्य की रचना करने में आदि ने भी मानव की मर्यादा और की प्रतिष्ठा पर निरन्तर ज़ोर दिया है। गहरी मानवता और ऊँची आभास प्राइस्ट और कारका में भी है।

यह हम कभी नहीं कहते कि जिवागो' कोई बहुत ऊँचा, आदर्श चरित्र है, पर उतना ही

ा मानव की कहानी है—ऐसे मानव परिस्थितियों के अनुकूल अपने-न बना सका, न बदल सका और परिस्थितियों को बदलने की प्रबल या पर्याप्त क्षमता भी नहीं थी। अगर केसी व्यवस्था पर कटाक्ष है, तो उसी समें मनुष्य अपना स्वामी और स्वतंत्र र दूसरों का दास, ताबेदार या मीड़ नगण्य, अनामी इकाई-भर रह गया (उपन्यास रूस के कृती कथाशिल्पियों म्परा में–कथानक के गठन, चरित्रों के विकास और औपन्यासिक सम्पूर्णता है से—शायद साधारण ही ठहरे। पर सरलता और सहज स्वाभाविकता तो नाक की अपनी ही हैं।

ार उनपर किसी का असर लगता है, प्रसंगों में शेक्सपियर का ही। उपन्यास में दी गई कविताओं में अनेक स्थानों शेक्सपियर का हैमलेट बोलने लगता रसी की रहस्यमयी आशावादिता ने नाक को यह दृष्टि दी कि वे सोवियत मौजूदा व्यवस्था के अवराह्न में भी संध्या को देख सके और एक नव की कल्पना कर सके। यह किसी ल या मत-विशेष के पक्ष या विपक्ष बल्कि, सब समयों के विश्व-मानव की भूत और महत्त्वाकांक्षा की ही सबल स्पष्ट अभिव्यक्ति है। 'डा० जिवागो' लेखक की निराशा-हताशा, संस्कृति के न में झुलसने और दार्शनिक संस्कृति तीन, रक्तरंजित क्रांति के वर्तमान उज्ज्वल भविष्य में दृढ़ विश्वास की धाराओं में से बहने के प्रति एक सहज मानवीय सहानुभूति है। अपने मन-मस्तिष्क और जीवन की वृत्तियों को जिसने भयंकर तूफान में पड़कर बदला नहीं, अपनी मूल्य-मान्यताओं को जिसने प्रलोभनों और निराशाओं को निगलने नहीं दिया, जिसका देशभक्तिमय रूसीपन कभी फीका नहीं पड़ा, वह 'डा० जिवागो' ही साहित्यिक मापदंड से सतही एवं निरुद्देश्य-सा दिखने पर भी शिलर के शब्दों में 'एक रहस्यमयी अटपटी कलाकृति' है, इसमें संदेह नहीं। हिंसा, अत्याचार, पक्षपात, अमानुषिक यन्त्रणाओं आदि में जो डा० जिवागो अपने पाँवों पर मजबूती से खड़े रह सके, प्रेम और विरह के साथ जीवन के अपने ढंग को जिन्होंने नहीं छोड़ा-मोड़ा, उनका जीवन पलायन या कायरता का नहीं था और न उनकी मृत्यु ही व्यर्थ गई। रूस के इतिहास में वे अमर रहेंगे—यद्यपि अभी पता नहीं कितने वर्षों तक रूस की जनता उनसे अपरिचित ही रखी जायगी! इस सम्बन्ध में स्वयं पास्तेरनाक ने भी कहा है—

मुझे यह पुस्तक लिखनी ही पड़ी क्योंकि रूस के पिछले ४० तूफानी वर्ष किसी ऐसे ही अवतार की प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे खुशी है कि मैंने ऐसी पुस्तक लिखी। मुझे इस बात का तनिक भी खेद नहीं कि यह रूस के बाहर छपी। पर इसे लेकर जो शोर गुल मचाया जा रहा है वह मुझे पसन्द नहीं। मेरे देश की सरकार यह कभी नहीं होने देगी कि नोबेल पुरस्कार मुझे मिलने दे। यह और इस सम्बन्ध की अन्यान्य बातें बड़ी कठोर और दुखद हैं। पर इसी प्रकार की कठिनाइयाँ तो जीवन को उसका सजग पहलू

और गुरुता देती है और उसे सुखद, जादुई तथा यथार्थ बनाती है।"

इसके बाद पश्चिम के जो लोग 'डा० जिवागो' को साम्यवाद या रूस-विरोधी हथियार के रूपों में इस्तेमाल कर रहे हैं, उन्हें सबोधित कर पास्तेरनाक ने कहा है—

'मैंने यह उपन्यास किसी राजनैतिक प्रचार की दृष्टि से कभी नहीं लिखा। मैंने तो आज के रूस में जैसा जीवन है, उसे उसकी सम्पूर्णता और गहराई के साथ ही दिखाने की चेष्टा की है। मैं कोई प्रचारवादी नहीं हूं और न ऐसा करना मेरे उपन्यास का ध्येय ही है।"

यथार्थ में तो यह उपन्यास रूस के बारे में है, रूस के खिलाफ नहीं। यह जीवन की शाश्वतता का निदर्शन है और है मतवाद, दलगत राजनीति और शासन से समझौता न करनेवाले व्यक्ति का वैयक्तिक जीवन और उसकी स्वतन्त्रता के अधिकार की सहज अभिव्यक्ति, भौतिक लाभों एवं सुख-सुविधा के विरुद्ध आत्मा के सुख और सन्तोष की चरम परिणति। आदि से अन्त तक इसमें एक नैतिक उद्दामता है। मानव के अस्तित्व और स्वतन्त्रता के प्रति अटूट आस्था और अटूट विश्वास है। इस रूप में 'डा० जिवागो' सिर्फ आजके रूस का एक हताश-पीड़ित चरित्र नहीं, आनेवाले कल के रूस की आशा-आकांक्षा-भरी भवितव्यता का उजला प्रतीक भी है, जिसका मूलमंत्र है कि 'मनुष्य अच्छाई से ही अच्छाई की ओर आकृष्ट होता है।'

इस प्रकार डा० जिवागो कला की दृष्टि से असाधारण कृति न होने पर भी ध्येय की परिणति का उत्तम आदर्श है। ही वह किसी भी रूसी व्यक्ति से बड़ा और ऊँचा व्यक्ति भी है। वह रूस ही नहीं विश्वमानवता के लिए एक आश्वासन है कि 'चिन्ता या दुःख मत करो मैं अकेला हूँ, अपनी असहाय अवस्था के बावजूद मैं कसम खाकर विश्वास दिलाता हूँ कि मैं हर दिन तुम्हारे साथ हूं, यद्यपि की सारी महामारियां हमारी आशाओं को ध्वस्त-भ्रष्ट कर दे रही हैं, फिर भी हमकी टूटेगी नहीं।' और वह स्तालिन तानाशाहियों का सबसे दुर्बल शिकार हो ही उनका सबसे जबर्दस्त दुश्मन भी है।

ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री की रूस यात्रा के दौरान में उनके साथ लगभग ६० पत्रकार गये थे, जिन पर इस यात्रा-काल के लिये सेंसर का प्रतिबन्ध नहीं था। इन दिनों पास्तेरनाक 'डा० जिवागो' की चर्चा से 'बचने' के लिए मास्को से दूर एक स्वास्थ्य-गृह में चले गये। वे भूले नहीं थे कि, कुछ दिन पहले 'डेली मेल' के सम्वाददाता ने इनसे मुलाक़ात की, तब न छापने देने का वचन उनकी एक सद्य-रचित कविता की प्रतिलिपि भी कर ली थी और बाद में बाहर कर वह सर्वत्र छपा डाली। उस कविता का सारांश यही है कि, 'दुनिया के ... होकर भी अभी तक मैं ...

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

वड़े बूढे जब यौवन के द्वार पर खड़े लड़के लड़कियों को भूलकर राग रंग में मग्न हो जाते हैं, तब...? आपने कभी सोचा है? मानव-जीवन की इस सार्वभौम समस्या पर एक युगोस्लाव कहानी

द्वार

❀ बोरा स्तांकोविच

रात में सोते-सोते अचानक निद्रा भंग हो रजतमयी चन्द्रिका मुखमंडल धो देती है, अजीब-सा लगता है। आँखें फाड़कर आश्चर्य उसकी ओर ताकते हैं और पैर फैलाये बड़े इत्मीनान से आराम से लेटे रहते हैं जैसे माँ के पास ही लेटे हैं।

हम लोग ग्रीष्म ऋतु में घर से बाहर मैदान में सोते बड़ी अजीब बात है, घर को बिलकुल भूल जाते हैं। पकाने, खाने और बिस्तर को बाहर लाने ले जाने के। कोई घर के भीतर झाँकता भी नहीं, क्योंकि सभी काम बाग में या द्वार पर ही कर लिए जाते हैं। द्वार पर पानी का छिड़काव होता है, चारपाइयाँ जाती हैं, ओढ़ने के लिए कम्बल रखे जाते हैं

के प्रकाश में छत के काई लगे हरे टाइलों पर जो प्रतिच्छाया आकर पड़ती है उससे वह और भी काली जान पड़ती है। जोर से साँस भी तो नहीं ले सकते। खाँसने में भी डर लगता है कि कहीं हल्की से हल्की आवाज भी रात की निस्तब्धता में दूर-दिगन्त तक न गूंज उठे। कम्बल से मुँह ढक लेते हैं। कम्बल भी अभी-अभी धुल कर आया है। नये धुले हुए वस्त्र की सुगंध लेते चुपचाप पड़े रहते हैं। रसोई घर में झींगुरों की झनकार, या बगीचे में पत्तियों का मर्मर स्वर अथवा रात बीते तक जानेवाली और एक डाल से फुदक कर दूसरी डाल पर बैठनेवाली चिड़ियों की फड़फड़ाहट सुनायी देती है। कुएँ की दीवाल के उभरे हुए पत्थरों में अटका पानी बूँद-बूँद करके कुएँ में गिरता है टप्......टप्....। दूर, बहुत दूर से बाँसुरी का सुरीला और बंधा हुआ स्वर सुनाई दे जाता है......

रविवार का दिन था। लोग मुझे उस दावत में नहीं ले गये थे। पड़ोसी आइको के बड़े बेटे का विवाह था। आइको का मकान मेरे घर के बिल्कुल पास था। मेरी मा और पिताजी दावत में चले गये थे। घर में एक मै और नुरका बच रहे। नुरका गाँव के रिश्ते से मेरी चचेरी बहन लगती थी। मेरी मा उसे एक दिन पहले ही घर ले आयी थी। मा मेरी और घर की देखभाल करने और खाना पकाने के लिए नुरका को छोड़ गयी थी। नुरका मेरे साथ घर में इसलिए भी रह गयी थी

...डा आनन्द आता है। चटाई पर लेट कर ...और छिड़काव के बाद धरती से जो सोंधी ...गंध निकलती है उससे प्राण में स्वर्गिक ...आनन्द की अनुभूति होती है। चन्द्रमा

कि, उसे आशा थी, शादी पर जब सब लोग 'कोलो' नाचेंगे तब वह बाग की दीवार पर बैठकर बड़े आराम से उन्हें देख सकेगी।

नुरका ने बाग से पत्थर, लकड़ी आदि उठाकर उन्हें बाग की दीवार के सहारे उगे सेब के पेड़ के पास जमा किया। उस पर खड़ी होकर वह बड़ी आसानी से नाच-गाना देख सकती थी। काफ़ी तादाद में लोग 'कोलो' नाच रहे थे। उन लोगों के साथ-साथ मैं भी शामिल हुआ। उस भीड़ में जितने नवयुवक थे सभी मेरे साथ 'कोलो' नाचने को तैयार थे। मेरी समझ से तो इसका कारण यह नहीं था कि वे सब मेरे साथ नाचने के इच्छुक थे, वरन् नुरका को रिझाने के लिए ही आपस में होड़ लगा रहे थे। नाचते समय बाग की दीवाल के पीछे पत्तियों और डालों के झुरमुट से झांकता हुआ नुरका का गोल चेहरा साफ नजर आता था। बाग की दीवाल पर वह जिस प्रकार से उचककर खड़ी होती थी उससे उसकी छाती का ऊपरी भाग और उस पर चमकनेवाली सोने की जंजीर भी नजर पड़ते थे।

नुरका नाच देखने में मस्त थी, किसी ख़ास युवक का नाच देखने भर के लिए वहाँ नहीं आयी थी। नुरका हमें नहीं देख रही है, यह जान कर कुछ युवकों को, खास तौर से म्लादेन को, बड़ी निराशा हुई और कुछ गुस्सा भी आया। म्लादेन का कद लम्बा, और चेहरा लाल था। वह नुरका के पड़ोस में ही रहता था और 'कोलो' नाच में इस उद्देश्य से भाग लेने आया था कि एक तो वहं नुरका से आंखें मिला सके दूसरे उसे यह बता सकेगा कि देखो किसी लड़की के साथ 'कोलो' पसन्द नहीं करता। म्लादेन ने 'कोलो' नाचना स्वीकार किया भी एक कारण था। वह नुरका बताना चाहता था कि यद्यपि यह छोटा है तथापि तुम्हारा चेहरा और तुम्हारा है, इसलिए मैंने 'कोलो' नाचना स्वीकार किया है म्लादेन के भाव को समझकर कु पड़ी थी, पर उसने म्लादेन से नजर नहीं मिलायी।

दिन भर तो 'कोलो' नाच पर जब रात हुई तब मेरी मां मुझे जबरदस्ती पकड़कर घर ले फिर फाटक बंद कर दोनों गये। अब घर में केवल मैं और बच रहे। मुझे रात में और 'कोलो' में नहीं जाने इससे शुरू में तो मुझे बड़ा और रह-रह कर किसी न नुरका पर ही अपना गुस्सा मैंने खाना नहीं खाया और कुछ अखरोट और बादाम क्रोधवश वे सब उसी के ऊपर फें

दरवाजे पर नुरका ने पानी साफ किया, बिस्तर लगा दिये एक कटोरे में कुछ खाना ले आयी

लेकिन, ऐसी रात को खाता? खाना कटोरे में ज्यों रहा। दूर बहुत दूर आसमान में

कान की काली छाया से ऊपर उठ कर
ाँक रहा था। चन्द्रिका मकान के टाइलों
पड़कर उन्हें शीशे की भाँति चमका रही
। मकान की छाया द्वार की ओर पड़
ी थी जिससे वहाँ अँधेरा था। हाँ,
ा के हल्के झोंके बीच-बीच में आकर
तों को स्पन्दित कर जाते थे। उधर पास
एक बाग से—जहाँ शादी की मौजें चल
ी थी,—तश्तरियों, थाली, कटोरों और
ासों की खनखनाहट सुनाई पड़ रही
। दीपों का हल्का पीला प्रकाश पेड़ों
शत-शत जिह्वाओं से छन-छन कर उस
ा को आलोकित कर रहा था। बीच-
व में बैंड मन्द स्वर में बज उठता था।
म ऋतु की उस रात में ऊपर नीचे चारों
र एक अजीब मृदु मादकता फैल
थी।...

•

'नुरका, कुछ खालो न', मैंने कहा।
ने रोटी का एक टुकड़ा उठा लिया और
तोड़-तोड़कर लपेटने लगी। वह
न्त थी। इधर-उधर करवटें बदल रही
। कभी चोली के बन्द कसती और
उन्हें ढीला करती। कभी बालों का
खोलती और गुथी हुई चोटी को ढीला
लगती।

'बड़ी गर्मी लग रही है!' उसने कहा।
ी आवाज में तेजी और कुछ चिड़-
पन था।

मैंने उसकी ओर आश्चर्य से देखा।
तौर पर मैंने उसे इतना परेशान और
होते पहले कभी नहीं देखा था।

वैसे नुरका को मैं अच्छी तरह से जानता था। इससे पहले भी वह अक्सर मेरे घर आती रहती थी। हँसी-मजाक करने में बड़ी तेज थी। लड़कियों और नयी बहुओं को बटोरकर कोई न कोई खेल खेलती ही रहती। हर खेल की अगुवाई भी वही करती। पिता जी का तो यह हाल था कि जल्दी भोजन करके सोने चले जाते। परन्तु माताजी हम लोगों के साथ ही रुक जातीं। फाटक बन्द करके दराजों और छिद्रों को भी इस ढंग से बन्दकर दिया जाता जिससे भीतर क्या हो रहा है, कोई चाहे भी तो झाँककर न देख सके। इसके बाद हम सब खेल-कूद, नाच-गान आरम्भ कर देते। नुरका इसमें सबसे आगे रहती।

लड़कियाँ क्या न करतीं? मर्दों के कपड़े पहनकर एक दूसरे को डराने का प्रयत्न करतीं, कुश्ती लड़तीं और बगीचे में पेड़ों के नीचे घास पर लोटतीं। नुरका इस हुड़दंग की नेत्री होती। वह अपने काले-काले केशपाश बिखराकर हँसती हुई भागती, और जो लड़की अँधेरे में डरती या भागती उसे दौड़कर पकड़ लेती और लिपट जाती।

नुरका जब नाचती तब उसकी बाँहें फैल जातीं। एक डाकू का, जो किसी लड़की का अपहरण कर उसे घोड़े पर बैठा कर पहाड़ों की ओर भाग गया था, गीत गाती वह और नाचते-गाते पीतल की थाली उठा लेती, उसे डफ की भाँति बजा... मस्त हो जाती। उसके लम्बे-लम्बे शैवाल-जाल की भाँति तरंगि...

इसी बीच मैंने मुड़कर देखा। म्लादेन दीवाल पर इस प्रकार चढ़ा बैठा था मानो अब भीतर आया, अब आया। नुरका किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रही थी। उसे जैसे और कुछ सूझ ही नहीं रहा था, उसमें इतनी भी हिम्मत न थी कि एक बार पीछे मुड़कर देख भी लेती। वह बड़ी दृढ़ता से मुझे चिपटाये हुए थी। छोटे-छोटे कंकड़ों से भी ठेस खाकर वह लड़खड़ा जाती थी, पेड़ की मामूली टहनी भी जैसे उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बन कर आती थी, जिसके स्पर्श मात्र से वह कांप उठती थी। हर छाया से, यहां तक कि रात के बढ़ते हुए कुहासे से भी वह डरी जा रही थी।

भागते और लड़खड़ाते हुए आखिरकार वह बाग के फाटक तक पहुँच ही गयी और तब कहीं उसकी जान में जान आयी। यहाँ पहुँचने के बाद ही वह ऐसा अनुभव कर सकी कि किसी बड़े फन्दे से बचकर आयी है। यहाँ आकर उसने दम लिया, माथा सहलाया, बाल सँवारे और हवा करने लगी। कुएँ पर पहुँची। पानी भरकर मुँह धोया और द्वार पर छिड़काव किया।

नुरका अब अपने होशो-हवास में आ गयी थी। उसकी आँखें चमकीं और मटकने लगीं। उसके गाल सुर्ख थे, कुछ देर पहले ही सर धोया था अतः उसकी घनी कुन्तल-राशि अभी गीली थी। 'कोलो' नाच की ध्वनि अब भी सुनाई पड़ रही थी। बन्दूकें दगने लगीं, पहले इक्का-दुक्का और फिर कई एक साथ। उच्च स्वर से गीत फिर आरम्भ हुआ। कोई शहनाई बजा रहा था, ... हो रहा था...'यौवन, जब हम ... मिले थे!' जिससे हृदय में गुदगुदी ... होती थी।

नुरका खड़ी हो गयी। अब ... उसके वश में न था। दफली ... में लेकर ही वह नाचने लगी। ... यह नाच ऐसा था कि, मैं जीवन-... भूल सकता। कोई नहीं देख रहा, ... उसे पूरा भरोसा था। उसका ... थिरक उठा। मंद-मधुर स्वर में ... वह नाच में इतनी तन्मय हो ... कि उसे अपने तन-मन की ... रही। उसके केशपाश लहरा उठे, ... खुल गयी। उन्नत, पुष्ट उरोज ... चन्द्रिका में चमकनेवाली मणियों की ... चमक उठे। सारा ... नुरका जिस प्रकार झूम-झूम कर नाच ... थी उससे ऐसा प्रतीत होता था कि ... आत्म-विभोर होकर बाह्य जगत को ... भूल चुकी है। उसके नेत्रों में ... थी। गीत के उतार-चढ़ाव के अनु... उसके अंग-प्रत्यंग की थिरकन भी ... थी। उसके नाच को देखते-देखते मुझे ... लगा मानो मेरा हृदय आलोकित ... है और उसने सारे विश्व को ... लिया है। गीत का एक एक ... था और अंत में इस भाव के ... हुआ :

"जिस दाय नैनों से मिले ...

शेषांश पृष्ठ १३४ पर दे...

अनेक देश एक इन्सान

—— कुलभूषण ——

एम्सटर्डम और न्यूयार्क

रात हवाई जहाज उड़ता रहा। मैं
रात सो-सोकर जागता रहा।
न निकला, और सुबह नौ बजे
आपको एक नये संसार में पाया।
साफ थी, धूल का कहीं निशान
वी को हम एक ही रात में पीछे
ये और अब हालैंड के हवाई
शिफोल' पर थे।
र में हमने न केवल फ्रेंच वेस्ट
अलजीरिया और मैडिटेरेनियन
र कर लिया था, बल्कि स्पेन,
बैल्जियम को भी पीछे छोड़

का को झुलसाने वाली गर्मी के
फोल' के हवाई अड्डे पर ऐसी
ो दिल्ली में नवम्बर-दिसम्बर में

च महिला से मैंने पूछा, 'न्यूयार्क
हाज कब जाता है?"
हला ने मुस्करा कर मुझे साथ
लिए कहा। चन्द मिनटों में

ही रात के जहाज पर मेरी सीट बुक हो गयी; मेरा पासपोर्ट एम्सटर्डम शहर में पूरा दिन बिताने के लिए ठीक हो गया और मेरा सामान हवाई-अड्डे पर सुरक्षित रख दिया गया था—ताकि रात को न्यूयार्क जानेवाले जहाज़ पर रखा जा सके, मेरे अफ्रीकन नोट हालैंड के गुल्डन नोटों में बदल चुके थे; और मुझे बस की दो टिकटें दे दी गई थीं —एक हवाई अड्डे से एम्सटर्डम जाने के लिए और दूसरी एम्सटर्डम शहर से हवाई अड्डे पर आने के लिए। इसे कहते हैं सुदक्ष कार्य !

मेरे पास एक भारतीय मित्र का पता था। मैंने महिला से फोन पर मित्र से बात करने की इच्छा प्रकट की। दो-तीन नम्बर मिलाने के बाद उसने फोन मुझे दे दिया। दूसरी ओर से मेरे मित्र की अभिभाविका श्रीमती बीम बोल रही थीं—"जी,

हां, मि० मोहन यहीं रहते हैं।...…आपका तार उन्हें नहीं मिला...आप बस से शहर में आ जाएं और वहां से टैक्सी लेकर मेरे घर पर...फिर बातें होंगी...जी हां…जी… जी…।"

चौड़ी, शानदार बस में चारों ओर शीशे लगे थे, जिनमें से हालैंड का प्राकृतिक सौंदर्य और भी सुन्दर दिखाई दे रहा था। सड़कें चौड़ी व साफ थीं, जैसे किसी ने खेतों के बीच सीमेंट के फीते बिछा दिए हों। बस के ड्राइवर की वर्दी चुस्त थी; वह सबको टिकटें दे चुका था और अब बस चला रहा था। पौने घंटे बाद हम एम्स्टर्डम पहुंचे। म्यूजियम-प्लाज के बागों के बीच शीशे की ऊंची खिड़कियों वाला, गहरे नीले रंग का के० एल० एम० का सुन्दर कार्यालय था। यहां से टैक्सी पकड़ कर मैं कर्कलान पहुंच गया।

श्रीमती बीम ने घर का दरवाजा खोलते हुए मुस्कराकर मेरा स्वागत किया।

सुसज्जित बैठक में भारत की कला के नमूने सजे थे; उनके बीच सोफे पर बैठकर श्रीमती बीम ने मुझे काफी का एक प्याला देते हुए कहा, 'मोहन को मैंने फोन कर दिया है; अगर वह हॉस्पिटल से आ सका, तो दो बजे के लगभग आएगा। अभी दस बजे हैं; मेरा सुझाव है कि तब तक हम शहर का एक चक्कर लगा लें।..."

मैं शीशे के दरवाजों में से अन्दर के कमरे में घूमते हुए तीन ऊंचे ऊंचे कुत्तों को देख रहा था। श्रीमती बीम बोली, 'ये कुत्ते बहुत अच्छे हैं। शायद आपको कष्ट हो, इसलिए उन्हें उस कमरे में बंद कर दिया है।…आपको कला में दिलचस्पी हो तो चलिए यहां की दो कला-दीर्घाएं देख लें..."

हम घर से बाहर निकले और ट्राम पकड़कर रिज्क्स म्यूजियम की ओर चले। रास्ते में डच घरों को देखकर, उनके बाहर चौरस्तों पर लगे बागों में ट्यूलिप के खिले फूलों को देखकर, सड़कों की सफाई और लोगों के सभ्य-व्यवहार को देखकर, मुझे ऐसा लगा जैसे मैं किसी सुन्दर स्वप्न-लोक में पहुंच गया हूं। यूरोप की यह मेरी पहली झलक थी। मैं सारी प्रफुल्लित हो उठा।

रिज्क्स म्यूजियम में डच-चित्रकारों के प्रसिद्ध चित्र देखे—वर्मियर और डि हूच के डच घरों व लोगों के चित्र, रैम्ब्रांट के रिजन के धार्मिक महात्माओं के चित्र, विन्सेन्ट फान गो के धूप और छाया के तीव्र रंगों के आभास से भरे चित्र, रूसडेल के प्रकृति-सौंदर्य के चित्र। दोपहर तक हम अमरीकन दर्शकों की भीड़ में इन पुराने चित्रकारों की कला का आनन्द लूटते रहे और फिर यहां से निकल म्यूजियम आफ मार्डन आर्ट में गए। यहां विन्सेन्ट फान गो के बनाए रेखाचित्र, प्रस्तर-कला के कुछ नमूने देखे। कुछ चित्रकारों की कलाकृतियों को भी एक नजर देखा।

हालैंड के सिक्के मुझे इसी म्यूजियम

ल देखने को मिले। दोनों स्थानों कुछ चित्र खरीदे थे, सो गुल्डन के जैसे चमकीले सिक्के मेरी हथेली गए—एक गुल्डन, ५० सेंट, २५ सेंट सेंट। इतने छोटे सिक्के कि जेब में कि न हों। इतने सुन्दर सिक्के कि टाए न हटें।

बजे के लगभग मोहन और मैं एक घर से बाहर निकले। इस बार र साथ था। और उसने मुझे अपना ट पहना दिया था। जेबों में हाथ म दोनों धूप में घूमते-घूमते एक पुल । एक सिगरेट और कापियों की पर मैंने न्यूयार्क के लिए एक तार मोहन ने कहा, "दूकानदार पोस्ट फ़िस का काम भी देखता है इससे कुछ आमदनी हो जाती है। क लोग ईमानदार हैं। बस, तार दे दो—रसीद-वसीद की कोई नहीं।"

हैरानी से कहा, "मैंने अफ्रीका से दिलवाया था, सो तुम्हें मिला मगर यह तार न गया, तो मुझे रेशानी होगी।"

न ने मुझे आश्वासन दिया, "तुम करो। अब चलो, यहाँ की नहरों करें।" पुल के नीचे एक नाव खड़ी । और खिड़कियाँ शीशे की थीं ने की सीटें गद्देदार। हम अन्दर ठ गए। मोहन ने कहा, "थी बीम गिम और लोगों जैसे नहीं हैं—वे दोनों मेरा बहुत खयाल रखते हैं। सिर्फ एक बार होटल में मिलने आए थे किन्तु मेरे स्वास्थ्य की गिरी हुई दशा को देखकर मुझे अपने घर ले गये। तब से मैं इनके पास ही हूँ।"

चारों ओर धूप थी और नहरों के किनारे पेड़ थे और यहाँ-वहाँ पुल थे जिनके नीचे से हमारी नाव सरकती-खिरकती चली जा रही थी। नाव के मोटर की धड़कन तेज मगर चाल धीमी थी, नाव में स्त्री, पुरुष, बच्चे बैठे सैर का आनन्द ले रहे थे; और नाव चलानेवाले के पास एक युवक खड़ा माइक हाथ में लेकर डच, अंग्रेजी, फ्रेन्च और जर्मन भाषाओं में एम्सटर्डम के प्रसिद्ध भवनों का ब्यौरा यात्रियों को बता रहा था।

मोहन ने कहा, "यहाँ के अधिकतर विद्यार्थी चार भाषाएँ जानते और बोलते हैं। यह युवक यहाँ विश्वविद्यालय में पढ़ रहा होगा, अपने खाली समय में 'गाइड' का काम भी करता है।"

यहाँ लगभग सभी पुराने मकान उन दिनों की यादगार हैं जब हालैंड का पूर्वी साम्राज्य और व्यापार सबसे अधिक बढ़ा चढ़ा था। माइक पर युवक बोल रहा था, "आपके दाईं ओर भूरे रंग का जो भवन है, वह यहाँ के प्रसिद्ध व्यापारी 'क' ने १७७० ई० में बनाया था। दूसरे मकानों की तरह इस मकान की छत पर आपको एक लोहे की पुली लगी दिखाई देगी। इसका दर-

वाजा इतना छोटा है कि इसके रास्ते केवल आदमी ही आ जा सकते हैं, बड़ा सामान नहीं। छत की पुली के सहारे, रस्सा गिरा कर, सामान बाहर ही बाहर ऊपर खींच लिया जाता है और खिड़की के रास्ते कमरे के अन्दर पहुँच जाता है।"

शहर से निकलकर हमारी नाव बंदरगाह में आई। माइक पर युवक ने कहा, "एम्सर्डेम का शहर समुद्र की सतह से नीचे है; अधिकतर जमीन समुद्र को जमीन से ली गई है।" हमारे चारों ओर ऊंचे ऊंचे जहाज थे और हमारी नाव समुद्र की लहरों पर पानी के छींटें उड़ाती सूर्य के प्रकाश में चली जा रही थी। मनुष्य की मेहनत का नायाब क़रिश्मा, यह बंदरगाह, देखकर किसे हैरानी नहीं होगी? जगह जगह एम्सटल बियर और फिलिप्स रेडियो और अन्य चीजों के बिजली के विज्ञापन थे। छोटी बड़ी नावें क्रेन डॉक्स और अनगिनत जहाज।

सात बजे से मोहन को अस्पताल वापस जाना था अतः हम दोनों घर लौट आये। विदा के वक्त की दो बातें मुझे याद हैं। श्रीमती बीम ने कहा था, "यहाँ की जलवायु मुझे माफ़िक नहीं। मेरे जोड़ों में दर्द रहता है। काश, हम भारत ही में रह सकते! वहाँ की धूप कितनी अच्छी है!"

श्री बीम ने कहा था:—आपके देश में जो पहली पॉकिट-बुक छपे उसकी एक प्रति हमें ज़रूर मिलनी चाहिए।

पाकेट-बुक यानी अच्छी छपी, [illegible] नर्म जिल्द की पुस्तकों के प्रकाशन [illegible] वितरण की विधियों का निरीक्षण [illegible] ही तो मेरी इस यात्रा का उद्देश्य था। [illegible] बीम की बात के पीछे छिपी भावना [illegible] आनन्दित हो उठा।

एम्सटर्डेम और न्यूयार्क के समय [illegible] पाँच घंटे का अंतर है। हमारी रात [illegible] पाँच घंटे अधिक लम्बी हो गई थी।

दूसरे दिन दोपहर के [illegible] (न्यूयार्क-समय) हम न्यूयार्क के [illegible] हवाई-अड्डे पर उतरे।

हवाई अड्डे की [illegible] अधिकारियों के गहरे नीले [illegible] टोपियाँ, अनगिनत जहाज, [illegible] मैकेनिक, अनगिनत पेट्रोल की [illegible] और सामान ढोने के ट्रेलर—मशीन[illegible] के सबसे वैभवशाली देश के [illegible] बड़े नगर की पहली झाँकी।

अभी हम सामान के लिए [illegible] रहे थे, कि एक अमरीकन युवती ने [illegible] कुछ लोगों के नाम पुकारे, उन्हें [illegible] दिए। मेरा नाम भी पढ़ा [illegible] अमरीका में आकर उसका रूप [illegible] था—'कलवशान' या कुछ ऐसा ही [illegible] पड़ा। मेरे पत्र में 'अंतर्राष्ट्रीय [illegible] संस्था' के श्री गिलर्ड ने लिखा था [illegible] 'ईस्ट साइड टर्मिनल' में मेरी [illegible] रहे हैं। उन्हें हालैंड से मेरा [illegible] मिल चुका था।

बहुत जल्दी मेरा सामान '[illegible]

कर दिया और चार पश्चिम-अफ्रीकी
के बदले दस डॉलर का एक्सचेंज
र से लेकर 'ईस्ट साइड टर्मिनल'
वाली बस में सामान रखकर मैं अंदर
ठा।

हमारे देश में हवाई-अड्डे से शहर तक
-जाने का किराया टिकिट में शामिल
है। मगर अमरीका में मुझे एक
तीस सेंट बाहर जाने के लिए देने
। हालैंड की तरह यहाँ भी ड्राइवर ने
से पहले सबसे किराया वसूल किया।
बस का प्रवेश-द्वार एक बटन दबाकर
किया, और बस चल पड़ी।

सड़कों पर अनगिनत मोटरें थीं।
गी और बहुत बड़ी बड़ी। न जाने ये
कहाँ से चली आ रही थीं। सड़कों की
ई, पुलों का उतार-चढ़ाव और आवा
का निर्बाध वेग दर्शनीय थे। न्यूयार्क
पनगरों के सभी मकान ऐसे थे जैसे
बड़े रईसों ने बनाए हों। साफ-सुथरे,
वाली, छ:-आठ-दस-मंजिले। रास्ते में
जगह जमीन खोदनेवाले के हाथ में
न नहीं बिजली की ड्रिल थी। बटन
या और ड्रिल की लौह-नोक जमीन के
र घुसती चली गई। मजदूर के हाथों
स्ताने थे और पैरों में फुल-बूट।

एक जगह हमारी बस एक सुरंग में से
ी। बहुत लम्बी सुरंग जिसमें बिजली
तेज प्रकाश हमेशा रहता है। सुरंगों
कहीं भी ठहरना मना है, और
नियम की रक्षा के लिए स्थान-
न पर पुलिस के सिपाही जंगलों के ऊपर
खड़े दिखाई देते हैं। सुरंग की दीवारें व
छतें पक्की हैं—जमीन के नीचे बनी इन
लम्बी सुरंगों को विज्ञान का चमत्कार ही
कहना चाहिए। कई सुरंगें तो पानी की
सतह के नीचे भी बनी हैं जो सड़कें पार करने
में पुलों की जगह आवागमन के काम आती हैं।

'ईस्ट साइड टर्मिनल' एक, बहुत बड़ा
हॉल है, जैसा कि बड़े स्टेशनों पर होता है।
कमरे के चारों ओर अलग-अलग
हवाई-कम्पनियों के काउंटर हैं जहाँ जाने-
वाले यात्री अपना सामान तुलवाते हैं और
हवाई-अड्डे के लिए बसों की प्रतीक्षा करते
हैं। चढ़ने-उतरने के लिए बिजली से चलने
वाली सीढ़ियाँ पहले-पहल मैंने यहीं देखीं।

श्री० गिलर्ड को ढूंढने में तकलीफ
नहीं हुई। बड़े तपाक से कुशल-क्षेम पूछने
के बाद मेरी दो चीजों में से एक अपने
हाथों में लेकर वे आगे बढ़े और हम लोग
बिजली की सीढ़ियों से नीचे पहुँचकर
टर्मिनल से बाहर निकले और एक टैक्सी में
बैठ गए। श्री गिलर्ड ने कहा, 'चौंतीसवीं
सड़क, स्लोन हाउस।'

चारों ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ थीं
और हमारी टैक्सी सड़कों पर ऐसे चली जा
रही थी मानो वह किसी कुएँ की तलहटी में
दौड़ रही हो। दिन में भी दुकानों में
बिजली की चकाचौंध मौजूद थी। रंगबिरंगे
बिजली के विज्ञापन जल-बुझ रहे थे। स्त्री-
पुरुषों की मेलों जैसी भीड़ थी, कारों का
शोर था, और आकाश से हलकी सी फुहारें
पड़ रही थीं। मैं बाहर देखना चाहता था;
मगर श्री गिलर्ड साथ थे और सभ्यतावश

उनसे बातें करना भी आवश्यक था।

श्री गिल्बर्ट ने कहा, 'आपने वाई० एम० सी० ए० में ठहरने की इच्छा प्रकट की थी, सो आपको वहीं ले जा रहा हूँ। अभी गुजारे के लिए पैसे तो आपके पास होंगे ही, कल तक आपका चैक भी आ जाएगा।'

'जी', मैंने कहा, 'काम तो कुछ कठिनाई नहीं होगी।'

स्लोन हाउस पहुँचकर श्री गिलर्ट ने पूछताछ की। मालूम हुआ, कोई कमरा खाली नहीं है, चार बजे के लगभग खाली होगा। सो दो घण्टे तक मैं चिट्ठियाँ लिखनेवाले कमरे में बैठा लोगों को आते-जाते देखता रहा। श्री गिलर्ट मुझसे विदा लेकर चले गए और मुझे न्यूयार्क का नक्शा आदि देते गए। बोले, 'कल दोपहर को आप हमारे कार्यालय में आइएगा तो बातें होंगी।—और हाँ, अपने सामान पर नजर रखिएगा, वरना—'

मैंने सामान उठाकर अपने पास ही रख लिया।

चार बजे मैंने फिर कमरे के लिए पूछा। इस बार मुझे एक हरा और एक सफ़ेद कार्ड दे दिये गए। इन्हें भरकर मैं २.३० डालर प्रतिदिन किरायेवाले एक अन्धे-खाने रहने लायक कमरे का किरायेदार हो गया।

१४ मंजिलों के इस भवन में सातवीं मंजिल पर कमरा नम्बर ७८३ में पहुँचकर मैंने सामान खोला। खिड़की के पास एक ओर लकड़ी की छोटी अलमारी में कपड़े रखने और टाँगने की पर्याप्त सुविधा थी। दूसरी ओर छोटी-सी मेज बाइबल की प्रति थी और उसके पा कुर्सी पड़ी थी। मेज और दरवाजे एक ओर दीवार से सटी चारपाई विछा था—सफ़ेद, उजली चा तकिया और काला कम्बल। पास ज़मीन पर एक नमदानुमा ताकि उठते समय पैर उसी पर र छोटा था, मगर सभी सुविधाएँ कारण कुछ ही दिनों में मैं इसका गया। सारा दिन कामकाज में बा कमरे में केवल सोने के लिए है

विलियम स्लोन हाउस न्यूयार्क भवनों के मुकाबिले में यद्यपि मगर फिर भी यह अपने में व्यवस्थित नगर जैसा है। इसके में लॉन्ड्री है, जहाँ पाँच मिनट कठघरे में बैठिए, आप के धुले हु उजली हो जायगी; नाई को डालर (लगभग सात रुपए) में यू-शाइन की जगह २५ सैंट (१ आने)में बूट चमाचम हो सकते हैं शौचालय में हाथ धोकर एक से दबाइए तो गर्म हवा से में सुखा देगी।

पहली मंजिल (सड़क के मंजिल) पर स्लोन हाउस की जहाँ जलपान करने के लिए है; एक कोने है जहाँ (७ रुपए) में आप अच्छा ख सकते हैं; सुर दे उठाकर चलते आइए—पहले आ

ाियाँ व आमिष भोजन, डबल रोटी के के, पाई (मीठी चीज), आइसक्रीम, दूध र चाय या कॉफी—सब चीजें अपनी द के अनुसार उठाते जाइए। सफेद ाक पहने, सिर पर कपड़े की ऊँची टोपी ाए रसोइए आपको गर्म खाना परोसते र चमकती कल में से काफी के प्याले ते हुए आपको देते जाएँगे। पैसे देकर र निकलिए—चम्मच, काँटा, छुरी और पज के रूमाल लीजिए और किसी भी पर बैठ जाइए। मेज पर चीनी से भरी शियाँ हैं, नमक और मिर्च-दानियाँ हैं। कागज के डिब्बे में आता है, एक तरफ ने का ढक्कन लगा है, उसमें नलकी ाकर पी जाइए।

अमरीका के लोग कीटाणुओं से बहुत ते हैं, इसलिए खाने से सम्बन्धित सभी जें यहाँ कागजों में लिपटी मिलती हैं। द या शर्बत पीने के लिए अमरीका में पेक 'स्ट्रा' (नलकियाँ) जो हमारे देश में भों में भरकर आते हैं, एक अलग कागज थैली में बन्द मिलता है। छुरी व काँटे नेर्ड खौलते पानी में धुलते हैं। चीनी भी र शीशियों में रखी जाती है जिनके न में एक छेद होता है; उसे उलटकर ले में जितनी चीनी चाहें, डाल लें।

कॉफी शॉप व कॉफे के अलावा पहली जल पर कमरे का किराया वसूल करने वाले र आपके माल-मता की रक्षा करने वाले फ्तरों के कार्यालय हैं; डाक बाँटने का रा है, जहाँ आप अपनी चिट्ठीके विषय में ाछ कर सकते हैं। चिट्ठियाँ लिखने के कमरे में कुर्सियाँ व मेजें हैं जहाँ कागज व लिफाफे पत्र लिखने के लिए रखे रहते हैं; इस कमरे में ऐसी टाइपराइटर मशीनें भी हैं जिनमें २५ सेंट डालकर आप एक घंटे तक टाइप कर सकते हैं—समय समाप्त होने पर मशीन स्वतः बन्द हो जाएगी। ड्रामा और सिनेमा के टिकट भी आप यहाँ खरीद सकते हैं। बाहर फोन करने के लिए एक दर्जन कटघरों में पैसे डालकर चलानेवाले टेलीफोन हैं, जिनका दरवाजा बन्द करते ही बत्ती जल उठती है; इनके अलावा तीन फोन ऐसे भी हैं जहाँ से आप स्लोन हाउस के किसी भी कमरे में ठहरे व्यक्ति से बिना पैसे दिए बात-चीत कर सकते हैं। और इन सब सुविधाओं के अलावा एक पत्रों-पत्रिकाओं का स्टॉल है जहाँ चॉक्लेट मनोहर चित्रों के कार्ड और सब तरह के सिगरेट भी मिलते हैं।

शीत के दिनों में सारा का सारा भवन केंद्रीय-विधि से गर्म रखा जाता है, भवन के बाहर कितनी ही भयकर सर्दी हो, अन्दर आपको बिलकुल सर्दी नहीं लग सकती। प्रत्येक कमरे में एक ओर लोहे का एक चौकोर फ्रेम लगा है जिसमें गर्म पानी दौड़ता रहता है—यही केंद्रीय-विधि का एक अंग है। और शायद इसी केंद्रीय विधि के कारण सभी दरवाजे अपने आप बन्द होनेवाले हैं। जोर लगाकर उन्हें खोलिए और बाहर या अन्दर चले जाइए—आपके पीछे दरवाजा आप ही आप बन्द हो जायगा।

स्लोन-हाउस के जीवन से अभ्यस्त होने में मुझे अधिक देर नहीं लगी। बाहर से

घूमकर आने पर किराए की रसीद कार्यालय में दिखाकर अपने कमरे की चाबी लेना, चाबी दिखाकर लिफ्ट में खड़े होना, सातवीं मंजिल पर बाहर निकल कर अपने कमरे का दरवाजा खोलना, कमरे में जाकर चाबी ऐसे स्थान पर रखना कि उसे अन्दर न भूल जाऊँ—और बाहर जाते समय लिफ्ट में खड़े होने से पहले चाबी लिफ्ट में लगे बक्स में डाल देना—यह सभी कुछ मैं सुचालित मशीन की भाँति करने लगा। केवल दो बार कमरे के बाहर सामूहिक शौचालय में जाते समय मैं चाबी कमरे के अंदर ही भूल गया था। उसके लिए मुझे नीचे कार्यालय में फोन करना पड़ा, देर तक शर्मिंदगी में सुरक्षा के अफ़सर के प्रतिनिधि की प्रतीक्षा करनी पड़ी, अंत में वह आया, तो मुझे अपने कमरे का दरवाजा खुलवाकर अपनी चाबी का नम्बर दिखाना पड़ा, अपनी रसीद दिखानी पड़ी।

मगर एक बात में अभ्यस्त होना मेरे लिए दुष्कर हो गया—और वह था सामूहिक स्नानागार में स्नान करना। एक स्नानागार में तीन फव्वारे थे, न्यूयार्क पहुँचने के दूसरे दिन सुबह मैं नहाने गया, तो यह प्रबंध देखकर अचकचा गया। मगर भाग्यवश उस समय स्नानागार में कोई नहीं था, सो जल्दी जल्दी कपड़े उतार कर नहाया और फिर कपड़े पहन लिए। मगर इसके बाद प्रतिदिन इतनी सुबह उठना कठिन हो गया। नहाना जरूरी था, नंगे नहाते हुए लोगों के बीच अपनी शर्म भी छोड़नी पड़ी। क्रमशः मैं सामूहिक स्नान प्रतिदिन में

निःसंकोच शामिल होने लगा।

स्लोन-हाउस के विपरीत ... जीवन से अभ्यस्त होने में मुझे ... मास लग गया। चौंतीसवीं सड़क ... से भरी दूकानें, शीशे की खिड़कि... जिन्दा युवतियों से कहीं ... देनेवाले मॉडलों पर नये-नये ... पोशाकें, कदम-कदम पर ... बिजली के विज्ञापन 'बार', ... 'लंचियनेट', और मोटरें खड़ी क... 'पार्किंग' के स्थान, जहाँ एक ... एक डॉलर लेते हैं। और इन ... असंख्य स्त्री और पुरुष, यु... युवतियाँ, बालक और बालिकाएं ... पर ऐसी भीड़ कि कंधे से कंधा ... ऐसा सुव्यवस्थित व्यवहार कि ... से तकरार नहीं, कहीं किसी से ... मानवता का समुद्र एकाएक ... और रुक जाता है क्योंकि सामने ... लाल अक्षरों में चेतावनी प्रकट हु... चलिए।' मोटरें और बड़े बड़े ... की लारियाँ और पीले रंग की ... सामने से आती हैं। एकाएक ... बुझ जाते हैं, और उनके स्थान पर ... उभर आते हैं, 'चलिए'। लारि... व मोटरों का बहाव रुक जाता है ... पाथ से रुकी हुई मानवता का ... ऐसा लगा कि, 'चलिए' और ... के बीच ही सारे दिन का ... सीमित और न्यूयार्क का जीवन ...

न्यूयार्क के मुख्य ... को ... नाम से पुकारते हैं। ...

लम्बाई में ऊपर से नीचे तक
म की लगभग बारह चौड़ी सड़कें
। इनके बीचोंबीच सबसे मुख्य
'फिफ्थ एविन्यू', जो व्यापारिक
र्क की जीवन-रेखा है। यहीं से
के भवनों के नम्बर शुरू होते हैं।
यू नामक सड़कों को समकोणों पर
र २४२ सड़कें हैं जो अपने नम्बरों
गरी जाती हैं।

हरणार्थ, मान लें, कि मुझे स्लोन
, जो कि चौंतीसवीं सड़क के नवें
ं पास है, १ ईस्ट ६७ सड़क पर
य शिक्षा संस्था में जाना है तो
ों से फिफ्थ एविन्यू जाना होगा
र फिफ्थ एविन्यू पर ३४ वीं सड़क
ों सड़क पर, दाईं ओर का पहला
रा गन्तव्य स्थान होगा। न्यूयार्क
इन ही वैज्ञानिक ढंग से बसा है
सी भी नए आदमी को भी यहाँ का
मिझने अधिक देर नहीं लगती।

ले दिन बस पर चढ़ा, तो एक
बात हुई। हरे व पीले रंग की बस
रुकी हुई और उसका दरवाज़ा खुला,
ऊपर चढ़ा, सीधा जाकर एक खाली
र बैठ गया। तभी मुझे अनुभव हुआ
कुछ उचित काम नहीं किया। बस
र आने वाले अन्य यात्रियों को
ो वे ड्राइवर के पास एक मशीन के
ं पैसे डालकर बैठ रहे थे; ड्राइवर
र दृष्टि गई तो वह मेरी ओर एकटक
हा था। मैं उठा और मैंने जाकर
ड्राइवर से किराया पूछा, १५ सेंट निकाल-
कर आले में डाले और सीट पर वापस आ
बैठा।

रास्ते भर मैं हैरानी से देखता रहा।
न्यूयार्क की बसें—सब की सब—एकमंज़िली
हैं। एक बस में अकेला एक ड्राइवर होता
है जो बस चलाने के अलावा यात्रियों को
उनके पैसों की रेजगारी देता है, घंटी बजने
पर गाड़ी स्टॉप पर रोकता है, बटन दबाकर
दरवाज़ा खोलता है, यात्री बाहर निकल
और चढ़ लेते हैं, तो दरवाज़ा बन्द करके
फिर आगे बढ़ता है। इन सब कार्यों के
अलावा, वह ट्रांसफर-टिकट भी देता है।
केवल एक यात्रा के लिए कोई टिकट नहीं
है, मगर यदि आप एक बस से उतर कर
दूसरी बस से यात्रा करना चाहते हैं, तो
आपको 'ट्रांसफर' लेना पड़ता है। आले में
पैसे डालकर ड्राइवर के आगे हाथ बढ़ा
दीजिए, वह स्वतः टिकट आपके हाथ में दे
देगा। मानव-शक्ति का कितना भरपूर और
सार्थक उपयोग है यह!

मशीन में पैसे पड़ते जाते हैं, ड्राइवर
सिक्के निकालकर एक स्थान पर रखता
जाता है, और मशीन बताती रहती है कि
कुल कितने पैसे डाले गए हैं। जितना पैसा
मशीन बताएगी, उतना ड्राइवर से कार्यालय
में वसूल कर लिया जाएगा। और बस,
सभी के लिए सारा काम आसान।

बसें दिन भर चलती हैं और रात के
बारह बजे बन्द हो जाती हैं, मगर न्यूयार्क
की 'सब-वे'—यानी पाताली रेलगाड़ियाँ—

	हाँ	ना	अंक
क्तिगत रूप से आप जो भी करते हों, परन्तु क्या ा व्यापक रूप से अन्याय, बेईमानी और व्यभिचार ख़िलाफ आवाज उठायेंगे ?			
ा आपको अपनी अप्रसिद्धि का काफी डर है ?			
ई लोग आपको अपने उपहास का पात्र बनाएँ या इससे आप गुस्सा हो जाएँगे ?			
ा प्रायः ही आप ऐसा काम करते हैं जिसे आप ने लायक न समझते हो, या जिसे नीच—ख़राब र भद्दा काम समझते हों—या जो आपकी नजर में इयों को मजबूत बनाता हो ?			
ति में बाधा या असफलता होने पर क्या आप व ही हतोत्साह हो जाते हैं ?			
सी निर्णय पर पहुँचकर प्रसन्न होने के पहले ही ा उसके सम्बन्ध में दूसरों का अनुकूल मत जानने जरूरत आपको अक्सर महसूस होती है ?			
दि आपको पता हो कि आपको निर्णय न्यायपूर्ण र उचित है, किन्तु लोक-मत उसके विपरीत है, तो ा आप उससे विचलित हो जायेंगे ?			
ा आपने कभी ऐसा अनुभव किया है, कि आपके ाथ बुरा व्यवहार किया गया है, या इस पर कभी ापने अफसोस किया है ?			
ब तक मित्रों या पड़ोसियों के प्रति मैत्रीपूर्ण व्यव-ार प्रदर्शित न कर ले क्या तब तक आपको कुछ बेचैनी-सी रहती है ?			
या आप न्यूनतम परिश्रम के फलस्वरूप अधिकतम ारिश्रमिक लेना चाहेंगे ?			

आपके जितने "नहीं" उत्तर हों, उनकी कुल संख्या को ५ से गुणा करें। अगर ल ६१ और ७० के बीच में है तो आपकी वर्तमान स्थिति ठीक है। अगर ७१ से है तो बहुत अच्छी है और ५० और ६० के बीच में है तो हालत खतरनाक है। कमहोने पर तो आपको काफी उदार बन जाना चाहिए। अन्यथा आपका व्यक्तित्व शोचनीय रहेगा और जिन्दगी में तकलीफें बढ़ती जायेंगी। —मोहनजीत सिंह

नूतन साहित्य

अनुराग प्रकाशन, गोरखपुर

स्वयंवर (कहानी-संग्रह) में श्री० विनोदचन्द्र पाण्डेय ने मध्यवर्ग के जिन चरित्रोंको उभाड़ा है वे सचमुच उनकी प्रतिभा के प्रतीक हैं। इन ग्यारह कहानियों की सबसे अच्छी कहानियाँ हैं, ऐतवार, मीना, सीता और मुर्दाबाद। पाण्डेय जी भविष्य में भी जीवन की विविधता का ऐसा ही अनुभूतिपूर्ण चित्रण करेंगे, यह आशा है।

वसन्त और पतझर (कविता-संग्रह) में श्री० विनोदचन्द्र पाण्डेय की साठ कविताएँ संग्रहीत हैं। युगप्रभात में भाग इनकी आठ कविताएँ जून (१९५८) के अंक में पढ़ चुके हैं। इनकी कविताओं में भावपन अनुभूति के क्षणों को बाँध सकने की सामर्थ्य है, इसमें सन्देह नहीं। जीवन-पथ में पाण्डेय जी ज्यों ज्यों आगे बढ़ेंगे, हमें विश्वास है, त्यों त्यों इनकी कविताओं में मर्मस्पर्शी कवित्व की उपलब्धि पाठकों को अवश्य होगी। —मोहन मिश्र

ऊँची नीची लहरें : [illegible]
शाह नसीर फरीदी ; [illegible]
रामप्रसाद ऐण्ड सन्स ; [illegible]

'ऊँची नीची लहरें' के [illegible] केवल 'नीची लहरें' ही रखा जाता [illegible] पुस्तक का अधिक ईमानदार और नामकरण होगा। लगभग सभी [illegible] ही हैं। खींच तान कर एक दो [illegible] लहरों की संज्ञा दी भी जाय तो [illegible] वे क्षीण और शून ही कही [illegible]। उत्सर्ग' 'मधुर मिलन' 'कल्पना [illegible]' जैसी रचनाओं को कहानी कहने में भी संकोच होता है। ये रचनाएँ कुछ वर्णनात्मक शैली में [illegible] की सीमा पर टिकती हैं।

'खुल जा सिम सिम' या '[illegible]' पैटर्न पर आज भी स्वस्थ और [illegible] सुनी जा सकती हैं किन्तु '[illegible] उड़ान' का वैज्ञानिक [illegible] भाषा-दारिद्र्य एवं अनुभूति [illegible] है

ग्रद बन कर रह गया है। "तेरा नाम
देगा' आपबीती और "मा, मेरी
इर गई" में अन्तिम कहानी अपने
ानवीय-संवेदन के कारण हृदय को
ीमा तक छूती हैं। नहीं तो, और
हानियों की पतंग तो कटी ही
। ।

चो नीची लहरें' में 'विविधिता है'
रसों में सफलता' के लिए लेखक का
ा शिल्प ही अधिक मान्य होगा।
शर्मा के आशीर्वाद मात्र से काम
। वास्तविकता यह है कि और
ो ऊँची नीची लहरें और उसके
प्रति मोह दिखाये, अभी ऐसी कोई
लहरों में नहीं आ सकी है।
और 'करके' के अनावश्यक
लम्बे-हाँफते वाक्य तथा यत्र-यत्र
ौर लिंग सम्बन्धी-दोषों भाषा के
का और शैथिल्य को बढ़ाया है।

: ले० राजकुमार,
न्दी प्रचारक पुस्तकालय,
ो, वाराणसी-१ मूल्य ४)

त उपन्यास में एक नवयुवक
मचारी उपेन्द्र की संघर्ष-कथा है,
नी, घूसखोरी, अन्याय तथा भ्रष्ट-
में डूबे हुए अपने विभागीय कर्म-
के कुचक्रों और घात-प्रतिघातों से
आ जनता की सेवा करता है।
ऊपर का अफसर विकारदास
ता-प्रेमी, धूर्त अफसर है। वह
हत अधिकारियों से सदा अपनी
प्रशंसा और सेवा की अपेक्षा रखता है।
उपेन्द्र का गरम और ईमानदार खून इस
परम्परा का विरोध करता है इसलिए
विकारदास सदा उसे नीचा दिखाने और
पदच्युत करने का जाल बिछाता रहता है।
वास्तव में विकारदास एक अनुभव प्राप्त, घुटी
खोपड़ी है। वह उपन्यास के मुख्य
नायक उपेन्द्र के चारों ओर प्रतिकूल परि-
स्थितियाँ उत्पन्न कर, उसे अन्दर ही
अन्दर घुटनेके लिये विवश करता है। किन्तु
मजे की बात है कि लेखक यही दिखा
सकने में समर्थ हो सका है कि अन्त में
विजय एक कर्तव्य-परायण, ईमानदार नव-
युवक अफसर उपेन्द्र की ही होती है।
रास्ते के सारे अवरोधों को तोड़कर वह
आगे बढ़ता है। 'सत्यमेव जयते नानृतम्!'

यह तो हुई कथा-तत्त्व की बात—
असल शिकायत तो इस उपन्यास के संकीर्ण
परिवेश से है। उपेन्द्र, विकारदास या
अमिताभ के सारे अन्तर्द्वन्द, उनकी सारी
कसमसाहट केवल थाने की चहारदीवारी
में ही टकराकर रह जाती है। अगर यह
टकराहट उन दीवालों को लाँघकर बाहर,
सड़कों, गलियों और मैदानों तक आ
सकी होती तो सामाज-विरोधी तत्त्वों का
और खुले रूप में पर्दाफाश हो सकता था।

पुलिस-विभाग में व्याप्त जिन चारित्रिक
दुर्गुणों का उभार इस उपन्यास में किया
गया है उनकी झलक तो कम या अधिक
रूप में लगभग सभी विभागों में मिल जाती
है; बड़ा छोटे को दबाता है, वह छोटा
अपने से छोटे को और यह छोटा किसी

अन्य छोटे को। यह उपन्यास तो तब सफल कहा जाता जब इसमें यह भी दिखाया जाता कि पुलिस विभाग नवभारत के नव-समाज निर्माण में कितना महत्वपूर्ण योग दे सकता है।

दूसरी शिकायत इसकी शैली से है। अनावश्यक विस्तार कहीं-कहीं पाठक को उबा देता है। हार की घटना इतनी अति-रञ्जना के साथ पेश की गई है कि समस्त उपन्यास की अपेक्षित चुस्ती और तराश की हत्या हो गई है। सच पूछिए तो प्रकाशक और लेखक दोनों की सम्मिलित घोषणा के बावजूद यह कृति 'साहित्यिक-कृति' नहीं बन सकी है और हल्के तथा सस्ते किस्म के उपन्यासों की ही एक कड़ी बन कर रह गयी है। —उदयभान मिश्र

बहूकी विदा : ले० विनोद रस्तोगी प्र० अंजलि प्रकाशन, नयी दिल्ली—५ मूल्य २॥)।

प्रस्तुत संग्रह में दस एकांकी नाटक संगृहीत हैं। प्रायः सभी एकांकी अभिनेय हैं। विनोद रस्तोगी की रचनाओं में समस्यायें ज्वलन्त और व्यंग के पुट सदा ही मार्मिक होते हैं। इस संग्रह के कुछ एकांकी तो बहुत ही अच्छे बन पड़े हैं। 'रोशनी की राह', और 'मुन्ना मर गया'; 'धुएँ की परछाइयाँ', 'खोपड़ी का बम'; 'शैतान का दिल' और 'बंजर और बीज' एकांकियों की कथा-वस्तु नई होने के साथ ही साथ चुटीली और मार्मिक भी हैं। संतान के लिये इच्छुक सास की नीचता और घर-घर में पुत्र देने वाले ढोंगी... के एक विशेष वर्ग की कुत्सित... का यथोचित भंडाफोड़ 'बंजर और...' बड़े सशक्त रूप में हुआ है।

युग-युग से प्रताड़ित नारी का स्वर शक्ति का पुंज भी बन सकता है, समर्थ और शक्ति-सम्पन्न भी है, सर्वांगीण रूप आपको 'रोशनी...' देगा। 'और मुन्ना मर गया' ... बहुत ही सुलझा और टेकनीक ... सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। ... की नीचता के क्या कहने!

हाँ, 'बहू की विदा' जिस ... नाम पर संग्रह का नामकरण हुआ ... समस्या बड़ी घिसी-पिटी और ... दुहराई गई है। संग्रह के अनेक ... विशिष्टताओं से मंडित एकांकि... हुए भी प्रथम रचना को ... समस्या को सुलझा सकने में ... यह गलत-फहमी-सी होती है।

'दूध की नदियाँ' के पात्र ... और नवसिखिये नेता हैं जो ... पर अपना-अपना धर्म (आदर्श) ... भाग खड़े होते हैं।

आशा है, रस्तोगी जी ... रचनायें अब तक की रचनाओं ... और भी अधिक सशक्त ...

धरती के बोल : कवितायें ... जयनाथ 'नलिन' : प्र० ... एण्ड संस, दिल्ली—६ मू० ३॥)

'धरती के बोल' ...

ारों का सरस संकलन है। ये
जहाँ अपने शीर्षकों में पुरानी हैं,
क्ति-शैलियों में नूतन और भाषा में
ादक हैं।

 और जहाँ आज का गीतकार
एक दर्जन उपमायें और मुट्ठीभर
के आधार पर कविता के व्यवसाय में
अनुभव कर रहा है, दूसरी ओर
विताकार कुछ विदेशी माल के साथ
च्ची वस्तुयें मिलाकर अस्पष्टता और
निकता की संज्ञा पा रहा है—
के बोल' का कवि निश्चित रूप से
है। उसकी रचनाओं में देश की
ी की गंध है, अपना ही आत्मीय-
क स्वर है।

तो इस संग्रह में प्रणय, विरह,
हास, व्यंग्य, करुणा, दया, रोष और
मिश्रित अनेक भावों और विचारों
चनाएँ हैं। कवि अनेक स्थलों पर
मनो-भावनाओं और घिसे-पिसाए
तत्वों को ही दुहराने की स्थिति में
फिर भी उसकी विशेषता यहाँ है जहाँ
क्ति की सीमा से हटकर समाज के
घेरे में सोचता है—वैसे उसकी
क वेदना भी सम्वेदनात्मक ही है—
ी 'धरती के बोल' में मानव-मन के
सार के साथ ही हमें प्रकृति के
रूपों के भी दर्शन होते हैं। 'नलिन'
स्वस्थ और प्रेरणात्मक है। अच्छा
कवि कुछ परम्परा से बचकर नया
ा नया जो विदेशी या 'पहेली' मात्र
न रह जाय—देने का प्रयत्न करता,
क्योंकि उसमें शक्ति भी है भाषा भी है।

मन्थन : (कविताएँ) ले०—मुनि बुद्धमल्ल : प्र० आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६ मू०—२)

'मन्थन' की रचनायें इस बात की साक्षी हैं कि आज का बुद्धिवादी वर्ग जहाँ भावुकता के नाम पर बिदकता है—कविता के लिये यह एक आवश्यक तत्त्व है। यह मात्र आवश्यक है, ऐसा तो नहीं हो कहा जा सकता, किन्तु यह भी··।

'मन्थन' की रचनायें एक आदर्श और नीति के दरवाजे से बाहर की गई ऐसी भावना-कुमारियाँ हैं, जिनका सौन्दर्य उनके पास शेष ही नहीं जो मात्र संदेश-वाहिका हैं और जिनके हाथों में कुछ नीति और नियमों के संदेश हैं—जो पाठक की आँखों में शक्ति-परीक्षा के हेतु हैं।

कविता भारतीय जीवन में सभी शास्त्रों के प्रचार-प्रसार का माध्यम अवश्य रही है किन्तु उसमें थोड़ी कविता भी होनी चाहिये।

मुनि बुद्धिमल्ल जी में भावनायें हैं, भाषा भी है किन्तु 'मन्थन' में उनका स्वतंत्र उपयोग नहीं हो पाया है। अच्छा होता वे उपयोगी तत्व गद्य के माध्यम से व्यक्त किये गये होते।

आशा है कवि बुद्धिमल्ल जी भविष्य में विचारों और नियमों के साथ कविता के रूप पर भी थोड़ी कृपा करेंगे।

—चन्द्रदेव सिंह

वैयक्तिक : ले० राजेन्द्र किशोर
प्र० ज्ञानपीठ प्राइ० लि० पटना—४

कुछ दिनों पहले 'वैयक्तिक' के लेखक ने 'पाँच चुम्बन' जैसी उत्कृष्ट कविता लिखी थी। 'स्थितियाँ और अनुभव' तक आते-आते उसके ऊपर दार्शनिकता ने अपना साया डाल दिया, किन्तु उस समय भी वह अपने आरम्भ की स्पष्ट स्वस्थ मान्यता से नाता तोड़ने में हिचकता था। लेकिन 'वैयक्तिक' में उसने 'नई कविता' के अनेक गुण अपना लिए हैं जिससे वह गहराई के नाम पर दुर्बोधता और दार्शनिकता के नाम पर नैराश्य का गुण-गान करने लगा। थी० राजेन्द्रकिशोर के अनुभव से यह सत्य है कि आधुनिक युग का महत्वाकांक्षी संवेदनशील प्राणी विक्रान्ति की उस सीमा तक पहुँच चुका है, जिसके बाद उसका व्यक्तित्व क्रमश: पतित हो जाता है।" (वैयक्तिक और मैं)। व्यक्ति ने यदि कोई आकांक्षा और भी की तो उसका पतन ही होना है इसलिए अपने 'अधिकांशतः 'वैयक्तिक' अनुभवों के आधार पर अपने परिवेश के 'फ्रस्ट्रेशन को वाणी' देना ही शेष रह जाता है। कविने ग्रंथ में यही किया भी है।

हिन्दी की 'नई कविता' की अग्रज विभूतियाँ यह कार्य पहले ही आरंभ कर चुकी थीं और उससे भी पहले यूरोप-अमरीका के कुछ 'व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए दुबले होते' कवि इस 'फ्रस्ट्रेशन' का संदेश दे चुके थे। यह निराशा यहाँ इस हद तक पहुँचती है कि 'वैयक्तिक' के लगता है, 'मैं अपने आत्मीय[illegible] से घृणा करने लगा हूँ।' (पृष्ठ ३१)

आगे कवि यह भी कहता है

...ये ग्राम
ये नगर
ये देश
ये पुरजन
ये परिजन
मुझे स्वीकार नहीं है
...मैं प्रत्येक अस्तित्व के प्रति [illegible]

और अन्त में मंजूर करता है कि
'मेरा कोई घर नहीं' (पृ० ३३)
ऐसी दयनीय दशा में जब [illegible] आता है तब वह लिखने [illegible] शब्दों को निम्नलिखित ढंग से देता है :

मैंने
न
हीं
चा
हा।
हुआ (पृ०३३)

बेशक, 'नहीं चाहने' की तीव्र [illegible] इससे ज्यादा नहीं हो सकती!

हम चाहते हैं कि राजेन्द्र [illegible] 'फ्रस्ट्रेशन' वाली स्थिति से [illegible] धरातल पर आयें जहाँ से उनका शुरू हुआ था, और यदि इसे [illegible] लौटना माना जाय तो भी [illegible]

ग तो कमी नहीं माना जायेगा।
सिर्फ १६ पृष्ठों की इस किताबका मूल्य
रुपये क्या कम नहीं है ! —अनन्त

मूर्ति : मू० अनिल (मराठी
) : अनु: डा० प्रभाकर माचवे
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

ग्गमन की एक मग्नमूर्ति को देखकर
हृदय को ठेस लगी और उसी को
म बनाकर वह अपनी संस्कृति पर
व्यंग से, कहीं क्षोम से, कहीं दुःख से
भावनाएँ अभिव्यक्त करता गया है।
ोवियों को मूर्ति के मग्न रूप से उत्पन्न
गावोद्रेक 'अत्यधिक भावुक' लगेगा
ा!) किन्तु अनेक स्थलों पर वे कवि
'काव्य-मीमांसा' को अवश्य सराहेंगे।
केन्तु 'भग्नमूर्ति' की, कालिदास के
ा' से तुलना नहीं जँची। कालिदास
अद्‌भुत कल्पना, सौन्दर्य-बोध, शब्द-
और नित नई भावुकता की समता
किसी भी भारतीय कवि के काव्य-
य से नहीं हो सकती। माचवे जी
नुवाद भी अच्छा है।

णी अवगाहन : ले० भुव-
री चरण सक्सेना : प्र०
प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा :
–३)।

चित्त रामचन्द्र शुक्ल के 'त्रिवेणी'
पुस्तक पर विद्यार्थियों के लिए यह
बड़ी लाभकारी विवेचना प्रस्तुत
है। जगह जगह पर शुक्ल जी की
यों के प्रति भी उचित संकेत है।

विधाता के निर्माता (उपन्यास) :
ले० पुष्पा भारती : प्र० इण्डिया
पब्लिशर्स एण्ड एडवर्टाइजर्स,
कलकत्ता-१२ मू०—४)।

किनारों के बीच (उपन्यास) :
ले० और प्र० वही : मू०—३।।)

मरियम : (कहानी-संग्रह) :
ले० पुष्पाभारती : प्र० भारती कुटीर
कलकत्ता-६ मू०—२।।)।

'विधाता के निर्माता' उपन्यास में एक
लड़की एक लड़के से सड़क पर साइकिल से
टकरा जाती है। लड़का मुहब्बत उससे नहीं
करता बल्कि उसकी सहेली से करता है।
वह, मजदूरों की सभा में भी शौकिया
पार्ट लेता है जहाँ, "मोटा-मोटी तौर पर
दिनानुदिन बढ़ती हुई गरीबी, बीमारियों
और अभाव आदि के प्रति" क्षोभ प्रकट
किया जाता है।

लेखिका के अनुसार 'किनारों के बीच'
कुछ सच्ची घटनाओं का औपन्यासिक रूप है।
सभी कुछ होने पर भी वर्णन शक्ति और
औपन्यासिक कला से अनभिज्ञता के कारण
घटनाएँ बिल्कुल बेदम मालूम पड़ती हैं।
पिस्तौल, पठान, बैंक और डाके से किताब
भरी हुई हैं।

'मरियम' की कहानियों के बारे में
यही कहा जा सकता है कि पुष्पाजी अभी
नयी लेखिका हैं। शायद आगे चलकर,
इनके शिल्प भाषा तथा भाव और भी अधिक
सबल हो सकेंगे। प्रथम प्रयास ठीक ही

—जी॰

शीघ्र ही प्रकाश में आ रहा है

'अनागता की आँखें'

वीरेन्द्रकुमार जैन की नवीनतम कविताओं का संग्रह

कविताएँ, जो अनागत के क्षितिज पर खुल रहे मानवीय प्रगति के अपूर्व नवीन प्रकाश पथों का संदेश वहन करती-सी लगती हैं :

'देख लेना, कल आदमी बदल देगा
भौतिक को आत्मिक में, अचेतन को चेतन में,
क्योंकि कल मनुज को सत्ता का भेद मिल जायगा।'

संग्रह गुजता है, **'कवि-यात्रिक : अमर जीवन की खोज में'** शीर्षक ५० पृष्ठों की एक विस्तृत भूमिका के साथ, जिसमें अपने आत्म-विकास की यात्रा को केन्द्र में रख कर कवि ने पिछले ५० वर्षों की विश्व-काव्य की प्रगति पर सर्वथा मौलिक और नवीन प्रकाश डाला है। मानव के लिए इसमें अनुपम आशा का अमृत संदेश है। सत्ता के स्वरूप और जीवन-मूल्यों पर यह नितान्त स्वानुभूत चिन्तन, हिन्दी में अपने ढंग की अपूर्व चीज होगी।

पृथ्वीनाथ शास्त्री द्वारा सुप्रभात कार्यालय एवं मुद्रक मण्डल लि०, १७६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
कलकत्ता-७ से प्रकाशित तथा मुद्रित

सुप्रभात

चतुर्थ वर्ष, दशम अंक, छियालीसवीं किरण, मई, १६५६

संचालक
ीलरतन खेतान
न्द्रकुमार अग्रवाल

सम्पादक व्यवस्थापक
पृथ्वीनाथ शास्त्री,
एम० ए०

इस अंक में समर्पित

कहानी-कुसुम

आवरण-चित्र : लोमड़ी और बतलें (एक खेल) शिल्पी : चियांग येन

प्रधान कार्यालय
१७६, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट,
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता ७
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय
१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई दि
फोन : ४४-२४८

वार्षिक मूल्य ८) द्विवार्षिक १५)
एक प्रति ७५ नये पैसे

आपकी
खाँसी जल्द
ही मिटा
जायगी
गले और सीने
का कष्ट मिटानेवाली

सेवा कर रहे हैं...
गृह एवं उद्योग
के लिये
प्रभात
उत्पादन
प्रभात प्रेसर कूकिंग स्टोवों से गृहिणी
का काम हल्का हो जाता है और
प्रभात गैस लैंटर्नस उन घरों को जगमगा
देते हैं जहां बिजली सुलभ नहीं होती।
प्रभात ब्लो लैम्प्स समान रूप से छोटे या बड़े
वर्कशॉप के लिये अति आवश्यक है, वास्तव
में ये शब्द "प्रभात उत्पादन" समानतः
घर एवं उद्योग में विशेषता-सूचक
शब्द बन चुके हैं।
"भारत का सर्वप्रथम...
तौभी सर्वोत्तम!"
Prabhat
KSK

बोर्ड
क्षेत्र
भारत में
स्वस्तिक बोर्ड
एण्ड पेपर
मिल्स लिमिटेड

प्रेमकुटीर

सलाखें : : डा० जगदीश गुप्त

दो सफेद फूले गुलाबों को
स्वप्नोत्थित आँखों पर टालकर।
मैंने उनके मृदु अन्तस्तल में मुँद,
पलकें खोल दीं।
मीलों तक विस्तृत किंजल्क कर्णिकाओं के
गहन कान्तारों में—
गन्ध-अन्ध पागल पुतलियाँ भटकीं-भूलीं।
वरुनी के नीचे वे पाटल-दल
चौड़ी उत्तुंग हिम-शिलाओं के सिलसिले
रेखा के मर्मर घाटी-पथ में
राका का रथ किसने रोक लिया।

सहसा पखुरियाँ सब टूटकर बिखर गयीं
धरती पर फैल गया सपना सौ टूक हो।
विस्तृत वन, घाटी-पथ।
शुभ्र हिमशिलाएँ, रथ ;—
सब के सब छोड़ गये
डंठल दो बेंधते पुतलियों को।
दर्द और व्यंग्य की तीखी सलाखों से।
आँखों से—
हटा लिये जाने के बाद भी
चुभते जो रहे बड़ी देर तक।

पेकिङ् के पहले नौ दिन — राहुल सांकृत्यायन

महापंडित राहुलजी द्वारा हाल ही में समापित चीन यात्रा के कुछ संस्मरण

२३ जून से १ जुलाई तक मुझे पेकिङ् ' रहकर उसे देखना था। इसमें श्री मेर दुभाषिया और मित्र थे। वह मध्य के रहने वाले थे, जहाँ का उच्चारण ङ् से भिन्न है। मैं पहले पेकिङ् कहा ' था, उनके उच्चारण से मालूम हुआ, वह पेचिङ् है। मैंने इस उच्चारण को ना भी शुरू किया। पीछे मालूम हुआ स महानगरी और उसके प्रदेश के सी बेइजिङ् कहते हैं। सितम्बर से ' में रोमन अक्षर में चीनी प्राइमर ' लगे हैं और इसे माने बिना अब काम चल सकता था कि राजधानी के नाम उच्चारण बेइजिङ् है। वस्तुतः ऐसे णों का कारण यह था, कि अंग्रेजों ने ० में हांगकाङ् को लेकर वहाँ अपना ामा लिया। वहाँ कानोन का उच्चारण ' था, जो पेकिङ् की बोली से इतना ' रखता है, कि दोनों नगरों के सी एक दूसरे की भाषा नहीं सीख ' यह दूसरी बात है, कि बेइजिङ् की सारे चीन की सामान्य भाषा है, इसलिए उससे काम चल जाता है। रोमन लिपि में अब बेइजिङ् के उच्चारण को ही लिया जाता है। दस बरस बाद सारे चीनी बेइजिङ् भाषा-भाषी हो जायेंगे। लेकिन, इसका यह अर्थ नहीं, कि स्थानीय बोलियाँ मरने के लिए छोड़ दी जायेंगी।

२३ जून को चीन बौद्ध संघ कार्यालय को देखना और वहाँ के मित्रों के स्वागत को स्वीकार करना हमारा पहला काम था। पूर्वाह्न में चेङ् महाशय के साथ संघ के कार्यालय में गये। संघ ने ही मुझे निमंत्रित किया था। कार्यालय एक पुराना बिहार है, जो मिङ् वंश (१३६८-१६४४ ई०) में स्थापित हुआ। आज से दस बरस पहले आकर यदि इस बिहार को कोई देखता, तो उसकी धूमिल बदरंगी कला-कृतियाँ अपनी ओर आकृष्ट जरूर करतीं, पर गन्दगी को देखकर परिताप भी होता। आज तो सारा बिहार, उसके कई खण्ड बीसियों कमरे मरम्मत करके नये-से दिये गये हैं। सफाई के बारे में तो कहने की आवश्यकता ही नहीं,

सारा चीन उसका मती है। कार्यालय में अच्छा पुस्तकालय है। कुछ पुरानी वस्तुओं का संग्रह भी है। संघ की तरफ से आज भोज दिया गया था। संघ के अध्यक्ष तथा मेरे पुराने मित्र गेशे-शे-रब-गयंछो इस समय अपनी जन्मभूमि अम्-दो गये हुए थे। दो गृहस्थ और तीसरे भिक्षु, तीनों उपाध्यक्ष पाँच छः अन्य सदस्यों के साथ वहाँ मौजूद थे।

भोजन चीनी ढंग का, बल्कि कहना चाहिए भिक्षुओं का था। भारत में अक्सर बौद्धोंपर यह आक्षेप किया जाता है, कि वह अहिंसा को मानते हुए मांस-मछली खाते हैं। बौद्ध खाने और मारने को अलग कहकर व्याख्या करना चाहते हैं। चीन में भिक्षु वस्तुतः इस आक्षेप का ठीक-ठीक उत्तर अपने आचरण से देते हैं। चीन में भिक्षु का मतलब है कट्टर निरामिषाहारी। चर्बी या मांस का उनके भोजन में कोई सम्पर्क नहीं। इसका एक सुफल यह हुआ है कि भिक्षुओं ने सैकड़ों भोजन-प्रकारों का आविष्कार किया। सोयाबीन के ही पचासों व्यंजन बनते हैं। सारा भोजन मिरच-मसाला न रहने पर भी बहुत स्वादिष्ट होता है। भिक्षुओं ने रंधन को कला का रूप दे दिया है।

भोजन के बाद हम लोग अपने होटल में लौट आये। चेड् महाशय दूसरे कमरे में इसी होटल में रहते थे। मैं अपने कमरे के टेलीफोन से जब चाहूँ तभी उन्हें बुला सकता था। होटल कर्मचारियों में टूटी-फूटी अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या भी बहुत कम थी। अंग्रेजी से अधिक जानने वाले उनमें थे। मेरा काम कभी रूसी से भी चल जाता था।

दोपहर के थोड़े विश्राम के बाद [illegible] मिङ्-प्रासाद गये। पहले उसके [illegible] विशाल प्रांगण के एक छोर पर [illegible] 'जन-वीर स्मारक स्तम्भ' देखा। [illegible] विशाल स्तम्भ में नये चीन के निर्माण में जिन वीरों ने सर्वस्व का दान किया, उनसे सम्बन्धित घटनायें पत्थर पर उत्कीर्ण [illegible] प्रधान द्वार के नाम थ्येन-आन्-मेन् का [illegible] है स्वर्ग का शांति द्वार। आज के [illegible] रूस में शांति का जबरदस्त आन्दोलन [illegible] रहा है। हर जगह शांति का नाम सुनाई देता था। यह कैसा संयोग है कि [illegible] प्रासाद के प्रधान द्वार का नाम भी [illegible] शांति-द्वार है।

यह प्रासाद नहीं, एक दोग-[illegible] है, जिसका निर्माण १४१७ ईसवी में [illegible] था। द्वार के भीतर घुसने ही [illegible] सफेद पत्थर के कलापूर्ण पाँच पुल [illegible] पत्थरों पर नाग की सुन्दर प्रतिमायें [illegible] हुई हैं। उनको पार करने पर [illegible] महाशाला आती है, जो [illegible] ऊपर खड़ी है। सभी कामों के लिए [illegible] का प्रयोग किया गया है। [illegible] पर शायद यह शाला उतनी सुन्दर [illegible] होती। चीन के सम्राटों का [illegible] होता था। नववर्ष को यहाँ दरबार [illegible] था। महत्वपूर्ण राजादेश और [illegible] यहीं से सिंहासन पर बैठे [illegible] करते थे। उच्च कर्मचारियों के [illegible]

मी यहाँ होती थी। शाला में घुसते
ी पर ये सब बातें लिखी मिलती
गे तो प्रासाद के बाद प्रासाद चले
जिनके चारों तरफ खुली जगह थी
नो छोरों पर एकमंजिला बहुत से
हे थे। महलों में सुन्दर चित्र बने
महल की छतें चमकते सोने-जैसी
पहेलों की थीं।

वूनिस्टों के शासन संभालने से
महल बड़ी उपेक्षित अवस्था में थे।
इनकी परवाह नहीं थी। वह तो
। को यहाँ से उठाकर नान्किङ्
था। कम्यूनिस्टों ने शासन की
सँभालते ही इस प्रासाद की ओर
या और आज वे नयनाभिराम रूप
ई पड़ते हैं। अन्तिम छोर पर एक
था। उद्यान नहीं, उपवन कहना
क्योंकि यह वस्तुतः वन-जैसा था।
इ के देवदारु और दूसरी तरह के
तीं पेड़-पौधे लगे थे।

छः शताब्दियों के बूढ़े पेड़ दूसरे
होते हैं। उनमें कोटर पड़ जाते
। पानी जमा होता है और फिर
ना काम शुरू कर देते हैं। यहाँ
ो सीमेन्ट से बन्द कर दिया गया
से कीड़े नुकसान नहीं पहुँचा
ौर वृक्षों को हजार वर्ष तक ले
सकता है। अकृत्रिम सौन्दर्य कैसा
यह जंगल में ही देखा जाता है।
हाँ शहर और प्रासाद के भीतर
तकते थे। उपवन के अंत में कृत्रिम
-शिलायें स्वाभाविक रूप में रखी
हुईं बहुत अच्छी लग रही थीं।

क्रीड़ापर्वत से हम दाहिनी ओर को
मुड़े और रानियों और दूसरी महिलाओं
शायद सम्राट् के निवास महलों में घुसे। अब
यह म्यूजियम का काम दे रहे हैं। संग्रहालय
के बहुत से कमरे हैं, जिनमें ४००० ईसा
पूर्व से १९११ ई० तक का इतिहास क्रमशः
प्रदर्शित किया गया है। इतिहास नव-
पाषाणयुग से शुरू होता है। इतिहास के
पोथों के पढ़ने से शायद इतना ज्ञान न
होगा, जितना कि इन संग्रहालयों को
देखने से। हर जगह पथप्रदर्शक भाषण देकर
हरेक चीज के महत्त्व को बतला रहे थे।

एक जगह मैंने एक घोड़े के साथ सवार
की लकड़ी या मिट्टी की मूर्ति देखी। यह
कूचा (सिंकियाङ्) घुड़सवारों की पोशाक
जैसी थी। उसकी ऊँचाई छः-आठ इंच से
अधिक नहीं थी, इसलिए मूर्ति में सारा
विवरण नहीं हो सकता था। कूची लोग
पीले केशों, नीली आँखों और अत्यन्त गोरे
रंग के होते थे। नृत्य, संगीत और कला से
उनको बहुत प्यार था। इसके लिए वह
चीन दरबार में अक्सर बुलाये जाते थे।

कलकत्ता से ही पता लगा था कि बाईं
कांख में फोड़ा-सा निकल रहा है। अतः
दो तीन दिन तक उसके उपचार के लिए
अस्पताल जाना पड़ा। अस्पताल होटल से
बहुत दूर नहीं था। कार उसके संकरे
दरवाजे से होकर भीतर चली जाती थी।
जिस समय यह मकान बनाया गया था,
उस समय यह खयाल भी न होगा कि
मोटरें आया करेंगी। अस्पताल

और ऐसे कई अस्पताल इस नगरी में हैं, पर पेकिङ् की आबादी ६२ लाख है, इसलिये बीमारों को प्रतीक्षा करनी पड़ती है। प्रतीक्षा करने का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। कम ऊँचा ... बैठने के लिए थीं, और ढेर की ... चित्रमय कहानियों की पुस्तिकायें पड़ी थीं। ... और उनके संगी प्रतीक्षक उन्हें लेकर ... पढ़ा करते थे।

२४ जून को हम बौद्ध संस्थान देखने गये। यह बौद्ध उच्च शिक्षण महाविद्यालय है। नगर से बाहर फा-युवान्-स्स (धर्म-मूलविहार) नामक धातुकालिज में स्थापित हुआ। ग्यारह अध्यापक और एक सौ छात्र यहां रहते और पढ़ते हैं। छात्र सारे चीन से आये हैं। अध्यापकों में दो ऐसे भी अध्यापक थे, जो दस वर्ष से अधिक तिब्बत में रह चुके थे। उनमें मुझे तिब्बती में बोलने का ... हो गई थी। यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, कि भारत के सर्वश्रेष्ठ नैयायिक धर्मकीर्ति के "प्रमाण वार्तिक" का तिब्बती से चीनी में आधा अनुवाद हो गया है। बीस से चालीस उम्र तक के तरुण भिक्षु इस संस्थान में प्रविष्ट होते हैं। उनका सारा खर्च संस्थान उठाता है। संस्थान में बौद्ध प्राचीन कलाकृतियों का एक अच्छा संग्रह है। स्वेन्-चाङ् के कमरे में उनकी कुछ हड्डी और सारी अनुवाद की हुई पुस्तकें रखी हैं। चारों ओर जीवन का चिह्न मालूम होता था। कम्युनिस्ट शासन की स्थापना होने से पहले ये पुरानी इमारतें ढह-ढिमला रही थीं। किन्तु अब गुलजार है।

पेकिङ् की इमारतें दो तरह की हैं। एक सनातन और दूसरी अत्यन्त अभिनव। अभिनव इमारतें—पचमंजिला सतमंजिला—अत्यन्त विशाल हैं। उनमें से अधिकांश पुराने नगर से बाहर बनी हैं। सनातन इमारतें एकमंजिला हैं और चीनी ढंग के आकार के अनुरूप ... होती हैं। ... से देखने में तो वह और भी विशेषता-पूर्ण देख पड़ती हैं। सम्राटों के वक्त में दुमंजिला मकान बनाना निषिद्ध था। सम्राट बाहर पर अपनी सवारी पर निकलें और किसी का पैर उनके सिर की ऊँचाई से ऊपर रहे, यह भारी अपमान था। इसलिए मकानें एकमंजिला बनाई जाती थीं। लाल-सी की ईंटें इमारतों के बनाने में इस्तेमाल थीं। मालूम हुआ, कि पकने पर ईंटें भी लाल ही रंग की होती हैं। पर गरम गरम ईंट को यदि पानी में डाल दिया तो इनका रंग राख जैसा हो जाता है। चीन में ऐसी ही ईंटों का रिवाज है। ऐसी इमारतों को बहुत दिन तक ... नहीं किया जा सकता क्योंकि ... आसमान की ओर बढ़ाने पर यातायात लम्बाई कम हो जाती है, और इसलिए रखने पर वह कईगुना बढ़ जाती है। ... के भीतर भी बहुत सी नई इमारतें बन ... हैं। सभी बड़े होटल भी शहर के भीतर हैं।

पेकिङ् शहर एक विशाल चहारदीवारी से घिरा हुआ है। इसकी दीवारें इतनी मोटी हैं, कि जिन पर तोप के गोलों का बहुत कम असर होता था। दीवार प्रायः बीस हाथ चौड़ी और करीब ... ऊँची है। बीच में मिट्टी भरकर ...

फ़ सकी खाई ईंटों का कंचुक है। अब त जगह दीवारें गिरा दी गयी हैं। बाकी हैं, वह भी चन्द दिनों की मान हैं। हाँ, भव्य दरवाजे यादगार के र पर सुरक्षित रखे गये हैं। शहर अब र प्राकार से बाहर बहुत दूर तक बढ़ गा है। किसी दिशा में कल-कारखाने ते गये हैं और कहीं शिक्षणालय।

साईकिल-रिक्शा अभी भी पेकिङ् में खने में आता है पर उनकी संख्या कुछ सौ अधिक नहीं है। जल्दी ही वे भी नाम प रह जायेंगे।

यह गर्मी का दिन था, लेकिन नौबत भी नहीं थी, कि बाहर जाने में कोई खन होती। सड़क पर साईकिल-रिक्शा तरह के दिखाई पड़ने थे। सवारी के क्शों में या तो एक आदमी के बैठने की गह थी या उसको पालकी की तरह ऐसा नाया गया था कि उसके भीतर की दो चों में आठ शिशुशाला जाने वाले बच्चे राम से बैठ सकते थे। इनसे अधिक न ढोनेवाले रिक्शे थे। शहर का एक कटुकड़ा रद्दी कागज या मशीनों से काटकर के कागज के टुकड़ों को लादकर ये रिक्शे क्टरियों में पहुचाते हैं। दूसरी तरह न भी माल ढोते हैं। ट्राम रास्ता रुकने जब कभी खड़ी होती है तो ड्राइवर कपड़ा कर अपनी गाड़ी झाड़ने लगता है।

बैलगाड़ियाँ यहाँ नहीं थीं, न भैंसा-ाड़ियाँ ही। गाड़ियों में अधिकतर खचर, ोड़े, गदहे जुते रहते हैं। गदहे अगली पाँती में जुते होते हैं। गदहों को यहाँ गाली नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह चलने में बहुत तेज होते हैं। जहाँ मेहनत ज्यादा पड़ती है वहाँ वे अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं। उन्हे मारने की कौन सोच सकता है। हाँ, यहाँ के गदहे हमारे यहाँ के गदहों से ज्यादा बड़े होते हैं। हलों में भी यहाँ एक गदहा या खच्चर या घोड़ा जुतता है। दक्षिणी और मध्य चीन में भैंस-भैंसे और गाय-बैल भी जोते जाते हैं। गाय भैंस के दूध से चीनियों को कभी कोई वास्ता नहीं रहा है, इसलिए उनको गाड़ी या हल में जोतने से वह कैसे बाज आते।

२५ को हम लामा बिहार देखने गये। बिहार की स्थापना थाइ्काल (६१८-६०५ ई०) में हुई थी। अनेक हाथों में जाते जाते, यह प्रासाद युवराज युङ्-धन् का महाप्रासाद बना। राजा होने के बाद युवराज ने इसे बौद्ध बिहार में परिणत करवा दिया। तिब्बत, मंगोलिया के भिक्षु यहाँ रहते है, इसीलिए ये लामा बिहार से प्रसिद्ध हैं। आजकल साठ मगोल भिक्षु रहते हैं। इसके प्रधान (नायक) भिक्षु नैपाल में मुझे मिल चुके थे। उन्होंने बिहार दिखलाया। इतनी बड़ी इमारत के लिए साठ भिक्षु बिल्कुल कम थे, इसलिए अधिकतर मकान खाली पड़े थे। सफाई में कोई कसर नहीं थी। अतिविशाल मुख्यमूर्ति भावी बुद्ध मैत्रेय की थी, जिनके सामने रात दिन दीपक जल रहा था। छोटे मन्दिरों में से एक में तान्त्रिक युग-नद्ध मूर्तियाँ भी थीं। कुल मिलाकर छः प्रतिमागृह थे। * * *

(आगामी अंक में समाप्य

राहुल सांकृत्यायन :

तीक्षा ही करता रहूँ क्या
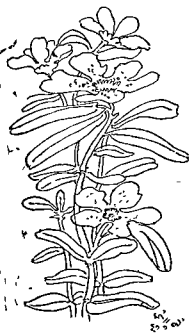
'स्नेह' ने 'प्रिय' से किया यह प्रश्न, जैसे
सिंधु से बोला हिमालय :
"मैं तुम्हारे धवल हिम-से प्यार को ही
शीश पर अपने उठाये यत्न-डूबा
दूर अपनी जननि-धरती से अलग-सा हो गया हूँ,
नील नभ के वृन्त से जो ज्योति का वह हेम-खग है
उतर आता और फिर है लौट जाता,
वही मेरा है अकेला एक साथी !
काल-दिनकर तप रहा है,
और मेरा कोष पिघला जा रहा है।
क्या उसे भी निगल जाओगे पुनः तुम,
दान अपना स्वयं लौटाकर रहोगे ?
स्वार्थ के ही शंख में छिपकर रहोगे
कीट बनकर, भय तुम्हें ऐसा लगा है !
आयु-सागर से डरे हो ? भूलते क्यों !
तुम स्वयं हो एक सागर ?
मुझे तुम दोगे नहीं क्या मोल मेरी साधना
तृषित है प्रत्येक मेरा कण इसे सिंचन तुर
मैं अमर हूँ प्रश्न, आदिम याचना हूँ—
करो तुम अभिव्यक्ति मेरे माध्यम से—
क्या न दोगे तुम मुझे जो प्राप्य मेरा ?
गर्व क्या तुमको बहुत गहराइयों का !"
प्रतिध्वनि से बीच का अवकाश मिलकर
हो गया वह एक, बनकर शब्द-गरिमा,
कहा सागर ने घुमड़ कर :

तुम्हारी तपन मेरा दिव्य जीवन !

• डॉ॰ रांगेय राघव •

: से उद्भ्रांत मैं तो सोचता हूँ—
तुम्हारे शिखर,
हैं धन्य निर्मल ;
तुम्हारे चरणतल पर सर्प-सा हूँ छटपटाता,
कर उन्नत तुम्हारा शीश पाता सांत्वना हैं,
ते हो क्यों विलम्ब हुआ घनेरा ?
।-दिनकर ही तपाता है मुझे भी,
तुम्हारा दिव्य-गौरव देख, डरकर,
र मैं देता न तुमको,
बूँदों सा विमल हूँ, मेघ देता,
कि यह मैं जानता हूँ—
श पर जो धारता है 'यश' मेरा
शाएं उस शीश की
र बोलतीं फेरी लगातीं,
तः भूलो मत
जीवन क्रम निरन्तर कह रहा है
र्गता है नहीं अपने आप में ही
कगति में है परस्पर आश्रयों में—
ार है उस दाह और अभाव का शुभ नाम,
सलिये यों मत कहो, यह याद रखो,
रन मेरा ही उठा गहराइयों से
ो कि जाकर और गूँजा,
तुम्हारी उन स्वयं धन्या शोभिनी ऊँचाइयों में—
तीक्षा ही करता रहूँ क्या ?"

मध्य अफ्रीका में ब्रिटिश षड्यन्त्र

अफ्रीका की जनता का अधिकांश आज भी उत्पीड़ित है। गतांक में हम दक्षिण अफ्रीका पर एक लेख प्रकाशित कर चुके हैं। अब मध्य अफ्रीका के बारे में पढ़िए।

दूसरे महायुद्ध के बाद भारत और दूसरे एशियाई देशों की स्वतंत्रता और चीनी क्रांति ने न केवल एशिया से ही यूरोपीय साम्राज्यवादियों को उखाड़; बल्कि उनके सबसे बड़े औपनिवेशिक गढ़ अफ्रीका में भी स्वाधीनता की अग्नि को धधका दिया है। मध्य पूर्व से उखड़े इन साम्राज्यवादियों के पाँवों ने जैसे अफ्रीका की इस अग्नि को और भी प्रज्वलित कर दिया है। इससे अफ्रीका का सबसे बड़ा उपनिवेशवादी ब्रिटेन—जिसने भारत, सीलोन, मलय, सिंगापुर, चीन के तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों, मिस्र आदि के अपने अनुभव से कोई सबक नहीं सीखा जान पड़ता है—बुरी तरह बौखला गया है और पागलों की तरह मार-मूठ, बेईमानी, षड्यंत्र, पुलिस और फौजी बल से काम लेने पर उतारू हो गया है। दूसरी ओर घाना की स्वतंत्रता ने अफ्रीकनों को आशा, विश्वास और न्याय की विजय का मानो एक नया संदेश दिया है।

न्यासालैंड-विरोधी षड्यंत्र

कोई ३० वर्ष पहले ब्रिटिश कूट-नीतिज्ञों ने दक्षिण-अफ्रीका को गोरों के लिये सौ प्रतिशत सुरक्षित करने [illegible] पूर्वी अफ्रीका की ओर ध्यान दि[illegible] के सर्वाधिक समृद्ध [illegible] गोरों का कब्जा स्थायी बनाने [illegible] उन्होंने एक चाल सोची कि [illegible] युगांडा और टैंगानिका से मिलाकर [illegible] बना दिया जाय। अन्त में इसके [illegible] प्रकट हो गई और यह चाल [illegible] हुई। पर हाल ही में [illegible] न्यासालैंड को राजनैतिक [illegible] जाग्रत देखकर गोरों के कान [illegible] और उन्होंने तय किया कि [illegible] उत्तरी और दक्षिणी रोडेशि[illegible] मिलाकर एक मध्य-अफ्रीकी [illegible] जाय। पर गत वर्ष दिसम्बर में [illegible] राजधानी अकारा में हुई अ[illegible] कांफ्रेंस ने इसका बड़ा विरोध [illegible] गोरों की कालों को दबाने, [illegible] बनाए रखने तथा देश की समृद्धि [illegible] दार न बनाकर सस्ते मजदूरों के [illegible] का सक्रिय विरोध करना [illegible] इसमें न्यासालैंड कांग्रेस के [illegible] डा० हेस्टिंग्ज बांडा ने [illegible] उनका और उनकी कांग्रेस [illegible] न्यासालैंड ही नहीं, उत्तरी [illegible]

ो काफी है। लौटकर उन्होंने न्यासालैंड इस आन्दोलन को और भी उग्र रूप दिया। जगह-जगह प्रदर्शन होने लगे और अफ्रीकन संघबद्ध होकर अपने न्याय्य अधिकारोंकी माँग करने लगे।

इस स्थिति से घबराकर दक्षिणी और उत्तरी रोडेशिया तथा न्यासालैंड के गवर्नरों और ...न मंत्रियोंने मिलकर तय किया ... वैध समझौता ...की बातचीत ... इस स्थिति ... सामना ... नहीं ...जा सकता, ... इसे दबाने ... लिए पुराने साम्राज्यवादी क्रूर ...—षड्यन्त्र बल-प्रयोग ... काम लेना ... रहेगा। ... चुपचाप ... और दक्षिणी रोडेशिया से गोरी ... और सेनाएँ न्यासालैंड भेज दी गईं वहाँ के गवर्नर ने, इस बहाने की ओट ... अफ्रीकन शीघ्र ही गोरों, एशियाइयों और उदारदली अफ्रीकनों की सामूहिक हत्याएँ करने वाले हैं, ३ मार्च को वहाँ असाधारण स्थिति की घोषणा कर दी। इसके बाद पुलिस और सेना की गोलियों से पहले दिन कोई ४४ अफ्रीकन मारे गए, कई घायल हुए और डा० बांडा, उनके सहयोगी तथा एक-दो गोरे समर्थक भी पकड़ लिए गए हैं तथा कुछ स्वेच्छा से ही बाहर भाग गए हैं। ब्रिटिश उपनिवेश-मंत्रालय से इस बारे में जो सरकारी श्वेत-पत्र निकला, उसमें बताया गया कि २६ जनवरी को अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था, जिसमें सबने शपथ लेकर प्रतिज्ञा की थी कि टेलीफोन, तार, रेल, सड़कें पुल, ... पेट्रोल की टंकियाँ आदि नष्ट ... देंगे, ब्रिटिश गवर्नर, बड़े केन्द्रीय जिला अधिकारियों और प्रमुख ...

बेलजियन कांगो में उपद्रव क्यों ?

पिछले दिनों लियोपोल्डविले (बेलजियन कांगो) में हुए उपद्रवों की जाँच करने को बैठाई गई कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि औसत गोरे का अफ्रीकनों के प्रति जो दुर्भाव है, वही इनका मूल कारण था। जब कि उपद्रवी असंगठित थे और लाठियों, लोहे की छड़ों तथा पत्थरों से लैस थे, तीन दिन तक बन्दूक-संगीन और मशीनगनधारी गोरी फौज से उनका दमन करवाना जरूरत से ज्यादा कड़ा क़दम था। जिन दंगों को गोरा-विरोधी बताया गया, उनमें केवल काले ही ४६ मरे और २०० घायल हुए। जहाँ अफ्रीकनों की आबादी बढ़ रही है, उनके रहने के मकानों और नौकरियों में कोई वृद्धि नहीं हुई। फिर गोरे जिस ऐश-आराम से रहते हैं, वह उनके लिए डाह का एक उचित कारण है। उनकी राजनीतिक आकांक्षाओं का उत्तर सरकार पुलिस और फौज के दमन से देती है।

...नीति का एक ...

हत्याएँ करेंगे, और अगर अध्यक्ष डा० बाँडा पकड़ लिए जायँ, तो इसकी शुरूआत का दिन दूसरे नेता निश्चित करेंगे। यह काम १० से २१ दिनों के बीच में किया जायगा।

षड्यंत्र का भंडाफोड़

ब्रिटेन के कट्टरपंथी साम्राज्यवादियों ने जहाँ इस चरम कदम का स्वागत और समर्थन किया वहाँ कुछ स्वतंत्र पत्रों और पार्लमेण्ट के मजदूर-दल के सदस्यों ने इसके औचित्य और आधार में शंका भी प्रकट की और कट्टरपंथी साम्राज्यवादी-पत्र बीवरब्रुक के 'डेली एक्सप्रेस' ने अपने विशेष संवाददाता द्वारा प्रेषित संवाद, जिसमें अफ्रीकनों के सामूहिक हत्याओं के षड्यंत्र के उद्घाटन, गुप्त मंत्रणाओं और एक प्रकार का जहर पिलाकर लोगों से ली जानेवाली शपथों का भी विवरण था, मोटे-मोटे शीर्षक देकर छापा—'सामूहिक हत्याकांड योजना! माऊ-माऊ को न भूलिये!' और अपने अग्रलेख में सरकार द्वारा उठाए गए चरम क़दम के औचित्य का पूर्ण समर्थन भी किए। अन्यान्य पत्रों ने भी ऐसे ही सनसनीखेज विवरण छापे, जिनसे पाठकों को सामूहिक हत्याओं की योजना और उसके समय से पहले ही दबा दिए जाने की प्रस्तावनानुसार विश्वास हो जाय, किन्तु मजदूर दल के मुख्यपत्र 'डेली हेराल्ड' ने न्यासालैण्डवासी संवाददाता का जो विशेष संवाद छापा, वह सर्वथा भिन्न था। उसमें कहा था—"मैं एक बड़ा भयानक संवाद भेज रहा हूँ। यह संवाद है—गोरों की नग्न बर्बरता, पुलिस द्वारा अफ्रीकनों की निर्मम पिटाई, मंत्रियों को कड़ी चेतावनियाँ देने और गोरों

साम्राज्यवादी दुर्नीति

पिछले कुछ दिनों से न्यासालैण्ड में गोरों द्वारा कालों का जो दमन चल रहा है, उसके सिवा अब अधिकारियों ने अफ्रीकन राजा-जमीन्दारों को अफ्रीकन कांग्रेस से फोड़ने का षड्यन्त्र आरम्भ किया है। १६५१ से ये बराबर कांग्रेस का साथ देते आ रहे हैं। उत्तरी रोडेशिया में इसी फूट डालने की साम्राज्यवादी दुर्नीति के खिलाफ जंबिया कांग्रेस ने चुनावों का बहिष्कार कर दिया है और अधिकारियों ने केवल राजा-रईसों को जनता के प्रतिनिधि के रूप में चुन कर विधान-सभा में भेजने की योजना बनाई है। दक्षिणी रोडेशिया ने तो बिल पास करके कई जन-प्रतिनिधि दलों को गैरकानूनी घोषित कर उन्हें चुनाव में भाग लेने से रोक ही दिया है।

ने वाली उद्धत धमकियों का।" इस
मणी करते हुए अग्रलेख में लिखा
ा—"उपनिवेश-मंत्री ने न्यासालैंड
। अफ्रीकनों की सामूहिक हत्याओं
जना का पता चलने की बात पार्ल-
कही, उसका उन्होंने कोई आधार
नहीं, बताया। पर बिना माकूल
और सबूत के जनता संतुष्ट नहीं
' 'न्यूज क्रॉनिकल' ने लिखा कि
ान का सबूत जरूर मिला है कि
अफ्रीकनों के प्रति की गई पुलिस
दतियों ने अवश्य उन्हें हिंसात्मक
और उपद्रवों के लिए उकसाया।'
'गार्जियन' का कहना है कि
नंर को इस गुप्त योजना का पता
हले लग गया था, तो उन्होंने तभी
ा स्थिति की घोषणा क्यों नहीं
र अगर इस बात में कुछ भी
तो क्या कारण है कि अभी तक
ड या उत्तरी रोडेशिया में एक भी
ा या लूटा नहीं गया, जब कि
लेस की गोलियों और डडों से कई
मरे और घायल हुए?' 'आबजर्वर'
में तो 'न्यासालैंड वालों ने पहले-
ाटिश पार्लमेंट में उपनिवेश मंत्री
ए गए वक्तव्य से ही जाना कि
ई योजना है।'
झूठ का खंडन ब्रिटिश उपनिवेश-
ासालैंड के गवर्नर और उत्तरी तथा
रोडेशिया के प्रधान मंत्रियों एवं
पूर्व कथनों से ही हो जाता है।
्-कांग्रेस ने जब न्यासालैंड के
ेक दर्जे से निकलकर किसी संघ

डा० बाँडा : हत्यारे या उद्धारक ?

डा० हेस्टिंग्ज कामुजू बाँडा (५४) ब्रिटेन के बहुत बड़े प्रशंसक, समर्थक और मित्र हैं। एडिनबरो से डाक्टरी पास कर वे लन्दन में प्रैक्टिस करने लगे थे। उनके अधिकाश मरीज, मित्र और परिचित व्यक्ति गोरे ही हैं। लन्दन में उनका निवास-स्थान केनिया केन्यो मो केनियाता, घाना के डा० एनक्रूमा और कालों की स्वतन्त्रता के समर्थकों का अड्डा रहा है। पिछले वर्ष जुलाई में लन्दन में ४० वर्ष बिताकर वे न्यासालैंड लौटे तो ३० लाख अफ्रीकनों ने उनका अपूर्व स्वागत किया। उन्होंने आते ही 'ट्रस्टी' ब्रिटेन द्वारा पिछले ६० वर्षों से किए गए शोषण-दमन का विरोध किया और संघ से निकल कर न्यासालैंड को स्वशासित करने की माँग की। ब्रिटिश अधिकारियों के गुर्गे अफ्रीकनों को आपने गद्दार बतलाते हुए कहा—"न्यासालैंड के बहुसंख्यक अफ्रीकन अब जाग गए हैं। उन्हे कोई ठग नहीं सकता। जो गोरे अफ्रीकनों को इन्सान समझते हैं, उनसे हमारी कोई शिकायत नहीं। पर जो गोरे अपने आपको ईश्वर का अवतार और अफ्रीकनों को अपना क्रीत-दास समझते हैं, हम उनके खिलाफ हैं। जब हम स्वतन्त्र होंगे तब मन्त्रिमंडल में अपने साथ उन गोरों को भी रखेंगे, जो हमारे शुभैषी हैं और जिनकी हमारे साथ सहानुभूति है। न्यासालैंड अब जाग चुका है, अतः मुझे पकड़ कर गोरे उनकी अग्रगति को रोक नहीं सकते।"

नज़रबन्दों की निर्मम हत्याएँ

आज न्यासालैंड में जो कुछ हो रहा है, वह बेईमान गोरों ने अफ्रीकनों को दबाने के लिए केनिया में माऊ-माऊ आतंक के नाम से जो षड्यंत्र रचा था, उसकी पुनरावृत्ति ही है। वहाँ न सिर्फ हजारों अफ्रीकनों को बिना किसी आधार के पकड़ कर नजरबन्द ही कर लिया गया है, बल्कि नजरबन्दों के साथ बड़ा अमानुषिक दुर्व्यवहार किया जा रहा है। इसके खिलाफ जब ब्रिटिश मजदूर-दल की अध्यक्षा श्रीमती बारबरा केसल के पास अगणित पत्र पहुँचे और उन्होंने पार्लमेंट में पूछा कि क्या यह सच है कि नजरबंदों को बुरी तरह मारा-पीटा जा रहा है, तब उपनिवेश-मंत्री ने कहा कि यह सब केनिया के गोरे शासन और वहाँ की सुरक्षा-पुलिस को बदनाम करने की चालें हैं! पर कई नजरबंदों की मृत्यु हो जाने से जब हो-हल्ला मचा, तब सरकार ने एक मजिस्ट्रेट का फतवा प्रकाशित किया कि ये मौतें प्रकृत कारणों से हुई हैं जिनमें से एक कारण पानी में जहर मिलना भी था। जाँच कराने पर यह बात गलत साबित हुई। डा० डब्लू० एच० गूडी को ठीक-ठीक कारण जानने के लिए पार्लियामेन्ट ने नियुक्त किया था। उन्होंने भी मोंबासा से २०० मील की दूरी पर स्थित होला नजरबन्द कैंप में हुईं मौतों का कारण बड़ी लाठियों से नजरबन्दों को पीटा जाना और उनकी हड्डियों का टूटना ही बताया है!

में शामिल न किए जाकर स्वतन्त्र ... किए जाने की माँग की, तो गवर्नर ... उपनिवेश-मंत्री ने कहा कि न्यासालैंड ... लिए एक नया संविधान बनाया जा ... है, जिसकी घोषणा शीघ्र ही होगी। ... न्यासालैंड के कांग्रेसी हल्कों में बड़ा ... और असंतोष फैला और जगह-जगह ... प्रदर्शन होने लगे। पर न्यासालैंड ... के अध्यक्ष डा० बांडा ने इस स्थिति ... जनता से धैर्य और संयम रखने की ... की। २४ जनवरी को निर्सा ... सार्वजनिक सभा में बोलते हुए उन्होंने ... था—'यदि ब्रिटिश उपनिवेश-मंत्री ... में न्यासालैंड के लिए किसी नए ... की घोषणा कर भी दें, तो उससे ... या उत्तेजित नहीं होना चाहिए। ... विचार-विनिमय होगा। समझौते ... होंगी। कुछ बातें वे वापस लेंगे, कुछ ... और कुछ रियायतें भी मिलेंगी।' ... अधिकारियों ने ऐसी शांति-पूर्ण सभा ... भी गैर-कानूनी घोषित कर पुलिस ... से उन्हें भंग करवाया, लोगों को ... और पकड़-धकड़ की। गोरों के ... पन के खिलाफ जोम्बा और ... अफ्रीकनों ने उपद्रव किए।

एक को छुपाने को हजार ...

ब्रिटिश पत्रों ने उपनि... न्यासालैंड, उत्तरी तथा दक्षिणी रो... के गवर्नरों और प्रधान मंत्रियों ... अपवित्र षड्यंत्र का भंडाफोड़ करते हुए ... विवरण प्रकाशित किए हैं, वे ... वाले हैं। 'न्यू स्टेट्समैन' ने ...

मूहिक हत्याओं की योजना' के
। की तुलना जिनोविएफ के फर्जी
त की झूठी अफवाहों और १९४५
ो-कांडों से की है, जो सब ब्रिटिश
रियों के दिमाग की उपज थीं!
हा है कि न्यासालैंड सम्बन्धी
आविष्कार वहाँ बढ़ रही राष्ट्रीय
ता और अफ्रीकन कांग्रेस के बढ़
और प्रभाव को कुचलने के लिए
गया। कॉमन्स में मजदूर सदस्यों
र-बार चुनौती दिये जाने पर भी
-मंत्री कोई सबूत नहीं पेश कर
छ आलोचकों का कहना है कि
राह कर झूठ बुनवाने में न्यासालैंड,
या दक्षिणी रोडेशिया के गवर्नरों
ानमंत्रियों का बड़ा हाथ रहा है।
जे दार बात यह है कि २ मार्च को
ड के गवर्नर ने कहा कि न्यासालैंड,
ारण स्थिति की घोषणा करने का
ई कारण या आधार नहीं है और
दमी ने ३ मार्च को सुबह-सवेरे
ोषणा कर दी और रातों-रात इसे
ों की सामूहिक हत्याओं की गुप्त
का पता भी लग गया!

। जरा इस झूठ को छिपाने को
किए गए गए झूठों—जैसे गोरों
, गोरी स्त्रियों के साथ बलात्कार,
ाग्निकांड आदि—की कहानी भी

ब्लायटायर (न्यासालैंड) के
। चर्च के प्रधान पादरी एण्डर्ट मैक्-
एक वक्तव्य में कहा है—' ब्रिटिश
स्टिंग कार्पोरेशन और दक्षिण
अफ्रीकी रेडियो ने गत २१ फरवरी को ये
संवाद प्रसारित किए कि ब्लायटायर और
लिविंगस्टोनिया के पादरियों और इबादत
करनेवालों पर उत्तेजित अफ्रीकनों ने ईंट-
पत्थर बरसाए और गिरजे को जला दिया।
इस गिरजे के अध्यक्ष फरग्यूस मैकफरसन
का कहना है कि "यह सरासर झूठ है और
ऐसी कोई घटना ही नहीं हुई!" किन्तु
लिविंगस्टोनिया में दर-असल क्या हुआ,
इसका हाल बताते हुए आपने उसी वक्तव्य
में कहा है—"पर २३ फरवरी को जब मिशन
स्कूल के कुछ लड़के अपनी क्लासों से बोर्डिंग
की ओर लौट रहे थे, तो गोरी पुलिस के
एक गश्ती दस्ते ने उन्हें डंडों से बुरी तरह
पीटना शुरू किया। कई लड़के घायल हुए।
...पुलिस और सेना की ऐसी ही ज्यादतियों
के परिणाम-स्वरूप अब जगह-जगह हिंसा-
त्मक उपद्रव होने लगे हैं।"

ब्रिटिश अधिकारियों और उनके गोरे
साम्राज्यवाद के आततायी हिमायतियों की
इन काली करतूतों पर प्रकाश डालने के लिए
६ मार्च को लन्दन के कैक्सटन हॉल में एक
सार्वजनिक सभा आयोजित की गई। गोरे
साम्राज्यवाद के समर्थकों ने इसमें उपद्रव ही
नहीं किया, इसे भंग भी कर दिया।
उन्होंने यही नारा दिया कि 'ब्रिटेन को
गोरा बने रहने दो!' और जो इसके विरुद्ध
कालों की स्वतन्त्रता और समानता की बात
कहते हैं, उन्हें बुरा-भला कहना शुरू किया।
जब घबराकर एक बुढ़िया नीचे उतर रही
थी, तो उन्होंने चिल्ला-चिल्ला कर कहना
किया कि 'देखिए, कालों के इन समर्थकों'

इस बेचारी गोरी बुढ़िया तक को धक्के मार कर बाहर कर दिया है!' इस पर बुढ़िया चिल्लाई—'नहीं, नहीं, मैं तो अपनी इच्छा से आ रही हूँ। इतना बड़ा भूठ मैंने अपने जीवन में आज तक कभी नहीं सुना।' इस सभा के प्रधान वक्ता थे जो ग्रिमौंड, जिन्होंने कहा—"क्लटन ब्रोक-जैसे प्रभावशाली और ईमानदार मिशनरी को उनके लगभग ५०० सहयोगियों सहित गिरफ्तारी ब्रिटिश अधिकारियों की अफ्रीकनों को साझीदार बनाने की मिथ्या और कपटपूर्ण उक्ति की पोल खोल देती है। पादरी ब्रोक को किसी राजनीतिक कारण से नहीं, बल्कि इसलिए पकड़ा गया है कि वे कार्य-रूप में गोरे-काले का भेद भूल कर दोनों को समान साझीदार बनाने का एक सफल प्रयोग कर रहे हैं। . .इसलिए अफ्रीकनों के खिलाफ हो रही गोरों की इस ज्यादती के खिलाफ हमें नैतिक और मानवीय दृष्टि से सिर्फ आवाज ही नहीं उठानी है, बल्कि एक तगड़ी राजनैतिक लड़ाई लड़नी है।" (गाई क्लटन ब्रोक दक्षिणी रोडेशिया के १२ हजार एकड़ के मिशनरी फार्म के अध्यक्ष हैं। सहयोगी आधार पर चलनेवाले इस फार्म में काले और गोरे मिलकर सामान स्तर पर खेती और उद्योग-धंधे चलाते हैं। इसके मैनेजर जॉन मुनासी नामक एक अफ्रीकन ईसाई ही हैं। केन्द्रीय अफ्रीका में कालों और गोरों की समस्या का यह फार्म एक आदर्श व्यावहारिक हल उपस्थित करता है। पादरी ब्रोक का एक मात्र अपराध यही है कि वे अफ्रीकनों के प्रति होनेवाली ज्यादती के विरोधी हैं।)

'डेलीमेल' में पीटर नोबल नाम के एक पाठक का एक पत्र प्रकाशित हुआ है, जिसमें उसने पूछा है—'न्यासालैण्ड में केवल ९ हजार गोरे हैं, जब कि काले ३० लाख हैं। अगर उन्होंने गोरों की सामूहिक हत्या की कोई गुप्त योजना बनाई और उसके अनुसार अब गोरों, उनके घरों, दुकानों, दफ्तरों आदि पर हमले कर रहे हैं, तो क्या कारण है कि अभी तक एक भी गोरा मरा या घायल नहीं हुआ या एक भी गोरे का घर या दुकान लूटी या जलाई नहीं गई। इसके विपरीत रोज बीसियों अफ्रीकनों के मारे जाने और घायल होने के संवाद आ रहे हैं!'

किन्तु सबसे खतरनाक पोल खोली ब्रिटिश पार्लमेंट के मजदूर-सदस्य स्टोनहाउस ने। फरवरी में आप न्यासालैंड और रोडेशियन सरकारों की अनुमति प्राप्त करने के बाद केन्द्रीय अफ्रीका की स्थिति का अध्ययन करने गए थे। आप अनेक अफ्रीकन नेताओं, कार्यकर्ताओं, अधिकारियों साधारण लोगों आदि से मिले। आपने गोरों के अफ्रीकन-विरोधी षड्यन्त्र की असत्यता के काफी प्रमाण इकट्ठे किए और वहाँ के कुछ गोरे अधिकारियों से इसकी चर्चा भी की। बस, क्या था? उनके कान खड़े हुए और आपको निकाल दिया गया। लन्दन लौटकर आपने इस षड्यन्त्र को सरासर भूठा बताते हुए उपनिवेश-मंत्री से कहा कि . . .

के प्रमाण पेश करें और अगर उनके
स बात के प्रमाण हैं कि अफ्रीकन
रशियाइयों और उदारदली अफ्रीकनों
मूहिक हत्याएँ करना चाहते थे, तो
स सन्देह में गिरफ्तार किया गया
पर बाक़ायदा मुकदमे चलाकर उन्हें
क्यों नहीं किया जाता? फिर क्या
है कि अफ्रीकी कांग्रेस के माननीय
डा० बांडा और उनके सभी प्रमुख
ों के पकड़ लिए जाने पर भी वहाँ
एक भी गोरे की जान नहीं गई?

रकार को झुकना पड़ा!

कसी ने सच कहा है कि झूठ के पाँव
ते। वह बहुत देर और बहुत दूर
नहीं सकता। इसलिए गत २४ मार्च
टिश पार्लमेंट में उपनिवेश-मंत्री को
पणा करनी पड़ी कि न्यासालैण्ड की
ी घटनाओं की जाँच करने के लिए
न नियुक्त करने का निश्चय किया गया
है। जिन्हें ब्रिटिश कमीशनों की असलियत
और उनके द्वारा होनेवाली लीपा-पोती का
अनुभव है, वे सहज ही इसके कामों और
निर्णयों की कल्पना कर सकते हैं। इसीलिए
मजदूर-सदस्य जॉन स्टोनहाउस ने कमीशन
को विश्वसनीय नहीं बतलाया है। वैसे
दक्षिण अफ्रीका में कुछ समय पहले नियुक्त
हुए एक कमीशन ने गोरों के प्रति कालों
के कर्त्तव्य और धर्म का बखान करने के बाद
कहा है—"गोरे अपनी संस्कृति, धर्म और
नैतिकता के उच्च स्तर से ही अफ्रीकी कालों
का नेतृत्व कर सकते हैं। पर इधर उनमें
पतन, भ्रष्टता और आततायीपन के लक्षण
नजर आने लगे हैं। इससे काले न सिर्फ
उनसे डरने ही लगे हैं, बल्कि घृणा भी करने
लगे हैं। ...गोरे नवयुवक मार-पीट और
लूट-पाट के साथ चोरियाँ भी करने लगे
हैं।" अब पाठक स्वयं सोचें कि इस सबका
प्रभाव और परिणाम क्या हो सकता है? *

—राजनीति का एक विद्यार्थी

कालों के गोरे हिमायती

दक्षिणी रोडेशिया में हो रहे व्यापक गोरा-विरोधी उपद्रवों की जाँच करने
श पार्लमेंट के मज़दूर सदस्य जॉन टॉमसन स्टोन हाउस अभी सेलिसबरी
थे। वहाँ उन्होंने कई कालों से बातें की और एक काले के घर खाना भी
ा। इस पर उन्हें निषिद्ध प्रवासी घोषित कर निर्वासित कर दिया गया।
। लौटकर उन्होंने बताया कि दक्षिण रोडेशिया के कालों पर जो यह
ोप लगाया गया है कि वे गोरों की सामूहिक हत्याएँ करने की तैयारी कर
थे, यह सरासर झूठ है। गोरों के प्रति कालों का क्षोभ केवल उनके
र दमन के खिलाफ़ ही है।

जनीति का एक विद्यार्थी

चावल और एशिया की आर्थिक व्यवस्था

— अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

एशिया के जीवन-मान पर चावल से अधिक प्रभावोत्पादक दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यदि यह कहें कि चावल पर ही एशिया का जीवन निर्भर है, तो शायद अत्युक्ति न होगी। विश्व-भर में उत्पादित चावल का ९३ प्रतिशत एशिया में पैदा होता है और दुनिया में चावल की खपत (९० प्रतिशत भाग) एशिया में ही होती है। एशिया के कुछ देश तो बड़े परिमाण में चावल के उत्पादक हैं, किन्तु कुछ देश बड़ी मात्रा में आयात ही करते हैं। भारत जैसे ऐसे भी कुछ देश हैं, जो काफी बड़ी मात्रा में चावल पैदा करने के बावजूद चावल के आयातक हैं।

जन-जीवन पर प्रभाव

स्पष्ट है कि एशियाइयों का मुख्य भोजन चावल है, चावल की प्रचुरता, एक औसत एशियाई के लिए समृद्ध जीवन का लक्षण है। चावल की कमी माने एशिया की भुखमरी। एशियाई देहातों के जीवन की धुरी ही चावल है। धान के हरे-भरे खेत और उनकी सुनहरी बालियाँ गाँवों में सन्तोष की लहरें पैदा करती हैं। इनके सूखने या इनके मुर्झाने या नष्ट होने पर गाँवो का जीवन भी निर्जीव-सा हो जाता है। कदाचित् शायद इसीलिए धान को 'सोना' मानते हैं।

चावल खाने की आदत

चावल नित्य और दोनों समय खानेवालों के बारे में कहा जाता है कि हर आदमी और कोई भी आदत बदल सकता है, किन्तु चावल खानेवाला चावल खाना नहीं छोड़ सकता। युद्धकाल और युद्धोत्तर काल के प्रारम्भिक

में एशियाई जनता ने चावल की दुर्लभता की भीषणता का सामना किया था।
न खानेवालों में सन्तति अधिक होती है, ऐसा कहा जाता है किन्तु ओदन-
न और प्रजनन शक्ति के मध्य क्या निश्चित सम्बन्ध है, यह विशेषज्ञ भी
बता पाते। चावल-भोजी देशों को जन-संख्या बढ़ने के कारण प्रतिव्यक्ति
ल की खपत इन देशोंमें युद्धोत्तर काल में नहीं बढ़ी। युद्ध-पूर्व एशिया में प्रति
के चावल की खपत ८८ किलोग्राम थी और इस समय ८६ किलोग्राम है।
ा मतलब है कि युद्ध-पूर्व की सतह तक पहुँचने में भी अभी और कुछ समय
गा। यदि चावल का भोजन जीवन-मान का मापक माना जाय तो एशियाइयों
जीवन-प्रतिमान युद्ध-पूर्व की अपेक्षा कुछ घटा ही है। वैसे द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति
र्षों में प्रति व्यक्ति खपत ७६ किलोग्राम ही थी। १९४८ से १९५२ तक की प्रति व्यक्ति
यही औसत खपत 'संयुक्त राष्ट्र खाद्य व कृषि संस्था ने कूती है जिसके अनुसार आज की
ति दस साल पहले से अच्छी ही है। चावल की खेती का विस्तार और धान बोने के
कों में सुधार करने तथा अन्य उपायों से चावल का उत्पादन बढ़ा है। किन्तु जन-
ंख्या की वृद्धि जिस परिमाण में होगी उसी पर यह भी निर्भर करेगा है कि प्रति व्यक्ति
वल की खपत बढ़ेगी या नहीं।

१९५७–५८ में विश्व भर के धान का कुल उत्पादन २,०९८ लाख टन हुआ, जबकि
५६-५७ में २,१५५ लाख टन। धान से चावल सब देशों में एक समान नहीं निकलता।
धारणतः इसका अनुमान ६०-से ७४ प्रतिशत रहता है जैसे बिहार में २० मन धान में
१२ मन चावल निकलता है। विश्व के विभिन्न भागों में संयुक्त राष्ट्र खाद्य व कृषि
था की रिपोर्ट के अनुसार धान की पैदावार के कुछ आँकड़े आगे के पृष्ठ पर देखिए।

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

विश्व में धान का उत्पादन

(लाख टनों में)

क्षेत्र	१९४८-५२	१९५६-५७	१९५
समस्त विश्व	१,६४४.३	२,२५५.४	२,०९९.
(रूस के बिना)			
एशिया	९४६.४	२,१३२.०	१,०४१.३
(चीन, उत्तरी कोरिया व उत्तरी वियतनाम को छोड़कर)			
बर्मा	५३.१	६५.६	५३.
भारत	३३३.८	४३१.०	३००
हिन्देशिया	९४.४	११३.८	११८.
जापान	११९.४	१३६.२	१४३.
पाकिस्तान	१२४.०	१३७.२	१११.
थाईलैण्ड	६८.४	८८.२	६७.
चीन, उत्तरी कोरिया व			
वियतनाम	५८३.०	८७०.३	८८०.
दक्षिण अमेरिका	४१.३	५३.४	५६.
ब्राजील	३०.२	४०.७	३९.
उत्तरी अमेरिका	२५.१	३१.४	२८.
संयुक्त राज्य अमेरिका	१९.२	२२.४	१९.
अफ्रीका	३४.४	४३.२	४३.
मिस्र	९.७	१५.७	१९.
यूरोप	१२.६	११.४	११.
इटली	७.२	६.४	६.
पुर्तगाल	१.१	१.६	१.
स्पेन	२.७	३.८	३.
ओसेनिया	९.२	१०.२	१२.

आयातक-निर्यातक

दुनिया में सिर्फ दस देश ही चावल के निर्यातक हैं ; बर्मा, कम्बोडिया, ताईवान, थैलैंड, वियतनाम, ब्रिटिश गायना, संयुक्तराज्य अमेरिका, संयुक्त अरब राज्य, इटाली स्पेन। चावल के सब से बड़े निर्यातक देश हैं, बर्मा और थाईलैंड।

किन्तु निर्यातक देशों में ही धान की पैदावार कम नहीं हुई है, धान व चावल के आयातक देशों में भी चावल की पैदावार बहुत कम हुई। आयातक देश हैं : भारत, लंका, जापान, मलाया, पाकिस्तान, फिलीपीन, दक्षिण कोरिया, क्यूबा और पश्चिमी अफ्रीका। तुलनात्मक दृष्टि से और पूर्ण दृष्टि से देखा जाय, तो भारत में यह कमी सबसे अधिक हुई है और हमारे नियोजन की कठिनाइयों और विदेशी मुद्रा के संकट के साथ इसका गहरा सम्बन्ध है।

१९५८ में चावल का कुल निर्यात कितना हुआ यह हिसाब लगाना कठिन है। सन १९५८ के पहले ६ मासों में—जनवरी से जून तक—बर्मा, थाईलैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका से चावल के निर्यात में इस तरह कमी हुई है।

(लाख टनों में)

	१९५७	१९५८
बर्मा	१०.०० लाख	८०.००
थाईलैंड	८.६६	७.०४
मिस्र	१.८०	३.०४
संयुक्त राज्य अमेरिका	४.७५	२.५८

इसीसे स्पष्ट है कि इन देशों में से अकेला मिस्र ही साल की पहली छमाही में चावल का अपना निर्यात बढ़ाने में समर्थ हुआ है। १९५७ में चावल का निर्यात विश्व भर में ५५ लाख टन ही रहा था। चावल के निर्यात की गतिविधि पर प्रकाश डालनेवाली यह तालिका देखें।

चावल का आयात व निर्यात

(लाख टनों में)

निर्यात	१९४८-५२ (औसत)	१९५६	१९५७
विश्व	४३.०	५५.४	५५.४
एशिया	३०.५	३६.४	४५.२
बर्मा	१२.३	१८.६	१७.६
थाईलैंड	१२.९	१२.६	११.७
कम्बोडिया व वियतनाम	३.८	०.३	१.९
चीन	...	३.४	२.७
पश्चिमी गोलार्द्ध	७.७	११.६	८.६
संयुक्त राज्य अमेरिका	५.३	९.२	७.४
यूरोप	२.०	४.५	२.३
इटली	१.८	३.५	१.४
अफ्रीका	२.५	२.६	३.८
मिस्र	२.४	२.२	३.०
आयात			
विश्व	३८.५	४६.३	५०.०
एशिया	२९.६	३७.८	३७.२
भारत	७.६	२.८	७.१
जापान	५.२	७.६	३.१
हिन्देशिया	३.८	७.६	१.३
मलाया	४.७	५.२	४.१
पाकिस्तान	...	६.८	४.१
सीलोन	४.२	४.९	१.२
यूरोप	३.५	५.८	१.४
अफ्रीका	१.७	३.२	४.३

इन आँकड़ों से जाहिर है कि चावल का निर्यात युद्धोत्तर काल में पहले [illegible] में बढ़ गया है। १९४८-५२ के सालों में औसत निर्यात केवल ४३ लाख टन था। [illegible] १९५५ में ४६ लाख टन १९५६ में ५५ लाख टन हो गया। १९५७ में, भारत ही दुनिया में चावल का सबसे बड़ा आयातक था। भारत ने इस साल ७५८,०० टन [illegible]

ार यह १६५६ की अपेक्षा दुगुने से भी ज्यादा था। विदेशी मुद्रा के खर्चे की कल्पना करें

प्रति व्यक्ति खपत

मिल-चावल की खपत दुनियाँ भर में १६५६-५७ में १,४०० लाख टन रही। युद्ध-ं में चावल की कुल खपत १,०७० लाख टन थी, अर्थात चावल की खपत में युद्धोत्तर काल ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है। विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति चावल की खपत का ा निम्न तालिका से लग सकता है।

चावल की प्रति व्यक्ति खपत

(किलोग्राम में)

	१६३४-३८	१६४८-५२	१६५६-५७
विश्व (औसत)	५५	४७	५५
एशिया (औसत)	८८	७३	८६
बर्मा	६६	१२०	१४०
थाईलैंड	१०२	१३४	१७६
भारत	७८	६४	७४
जापान	१४६	११३	११०
फिलीपीन	११७	१००	१०२
मलाया	१६७	१४२	१२६
सीलोन	१३६	१०८	१०२
चीन	८७	७०	८७
लेटिन अमेरिका	१६	२०	२१
अफ्रीका	१०	१०	१२
उत्तरी अमरीका	४.३	४.६	४.६
यूरोप	४.६	२.८	३.०
ओसेनिया	५.५	३.०	४.५

साधारणतः कहा जा सकता है कि जन संख्या की वृद्धि और विश्व में चावल की ा के मध्य अभी तक प्रायः समानता रही है। इसका अर्थ यह है कि युद्ध-पूर्व प्रति-व्यक्ति ल की जितनी खपत होती थी, आज भी उतनी ही है। उपर्युक्त तालिका को देखने से होगा कि १६५६-५७ में प्रति व्यक्ति चावल की खपत ५५ किलोग्राम थी और ३४-३८ में भी यही थी। लेकिन १६४८-५२ में प्रति-व्यक्ति चावल की औसत खपत ो कम ४७ किलोग्राम थी। अब चावल की खपत युद्ध-पूर्व के स्तर पर आ गयी है। ान चावल की खपत विभिन्न देशों में अलग-अलग है। सम्पूर्ण एशिया के लिए यह ८६

चावल का आयात व निर्यात

(लाख टनों में)

निर्यात	१९४८-५२ (औसत)	१९५६	१९५७
विश्व	४३.०	५५.४	५५.४
एशिया	३०.५	३६.४	४१.३
बर्मा	१२.३	१८.६	१७.६
थाईलैण्ड	१२.९	१२.६	११.७
कम्बोडिया व वियतनाम	३.८	०.३	१.९
चीन	...	३.४	२.७
पश्चिमी गोलार्द्ध	७.७	११.६	८.६
संयुक्त राज्य अमेरिका	५.३	६.२	७.४
यूरोप	२.०	४.५	३.२
इटली	१.८	३.५	१.४
अफ्रीका	२.५	२.६	३.८
मिस्र	२.४	२.२	३.०
आयात			
विश्व	३८.५	४६.३	५०.०
एशिया	२९.६	३७.८	३७.२
भारत	७.६	२.८	७.५
जापान	५.२	७.६	३.५
हिन्देशिया	३.८	७.६	५.३
मलाया	४.७	५.२	४.१
पाकिस्तान	...	६.८	४.१
सीलोन	४.२	४.६	५.२
यूरोप	३.५	५.८	१.४
अफ्रीका	१.७	३.२	४.३

इन आँकड़ों से जाहिर है कि चावल का निर्यात युद्धोत्तर काल में पर्याप्त मा
में बढ़ गया है। १९४८-५२ के सालों में औसत निर्यात केवल ४३ लाख टन था
१९५५ में ४६ लाख टन १९५६ में ५५ लाख टन हो गया। १९५७ में, भारत
में चावल का सबसे बड़ा आयातक था। भारत ने इस साल ७८,०० टन आया

र यह १६५६ की अपेक्षा दुगुने से भी ज्यादा था। विदेशी मुद्रा के खर्चे की कल्पना करें

प्रति व्यक्ति खपत

मिल-चावल की खपत दुनियाँ भर में १६५६-५७ में १,४०० लाख टन रही। युद्ध-में चावल की कुल खपत १,०७० लाख टन थी, अर्थात चावल की खपत में युद्धोत्तर काल ३० प्रतिशत वृद्धि हुई है। विश्व के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति चावल की खपत का निम्न तालिका से लग सकता है।

चावल की प्रति व्यक्ति खपत

(किलोग्राम में)

	१६३४-३८	१६४८-५२	१६५६-५७
विश्व (औसत)	५५	४७	५५
एशिया (औसत)	८८	७३	८६
बर्मा	६६	१२०	१४०
थाई लैण्ड	१०२	१३४	१७६
भारत	७८	६४	७४
जापान	१४६	११३	११०
फिलीपीन	११७	१००	१०२
मलाया	१६७	१४२	१२६
सीलोन	१३६	१०८	१०२
चीन	८७	७०	८७
लेटिन अमेरिका	१६	२०	२१
अफ्रीका	१०	१०	१२
उत्तरी अमरीका	४.३	४.६	४.६
यूरोप	४.६	२.८	३.०
ओसेनिया	५.५	३.०	४५

साधारणतः कहा जा सकता है कि जन संख्या की वृद्धि और विश्व में चावल के मध्य अभी तक प्रायः समानता रही है। इसका अर्थ यह है कि युद्ध-पूर्व प्रति-व्यक्ति त की जितनी खपत होती थी, आज भी उतनी ही है। उपर्युक्त तालिका को देखने से होगा कि १६५६-५७ में प्रति व्यक्ति चावल की खपत ५५ किलोग्राम थी और ४-३८ में भी यही थी। लेकिन १६४८-५२ में प्रति-व्यक्ति चावल की औसत खपत कम ४७ किलोग्राम थी। अब चावल की खपत युद्ध-पूर्व के स्तर पर आ गयी है। न चावल की खपत विभिन्न देशों में अलग-अलग है। सम्पूर्ण एशिया के लिए यह ८६

किलोग्राम है, लेकिन एशिया के ही विभिन्न देशों में इसकी खपत एक समान नहीं
थाईलैंड में १७६ किलोग्राम, कम्बोडिया में १६८ किलोग्राम है। लेकिन भारत में
मुकाबले केवल ७४ किलोग्राम है और यह परिमाण १६३४-३८ की औसत खपत से है
है। भारत से तो जापान में ही अधिक है—११० किलोग्राम। लेकिन युद्ध-पूर्व की
यह भी कम है, क्योंकि १६३४-३८ की औसत खपत जापान में १४६ किलोग्राम थी।

जनसंख्या की वृद्धि तथा अन्य कारण

चावल की खपत को प्रभावित करने वाले अनेक तथ्य हैं। संयुक्त राष्ट्र खाद्य
संस्था के विशेषज्ञों का मत है कि चावल की खपत को प्रभावित करने वाला पहला
जनसंख्या की वृद्धि है। चावल-भोजी देशों की जनसंख्या चावल उत्पादक देशों के
उत्पादन की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रही है। पिछले बीस वर्षों में चावल की
बढ़ने का ६० प्रतिशत कारण भी जनसंख्या की वृद्धि ही है।

जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ जीवन निर्वाह का प्रतिमान ऊँचा होने
भोजी प्रदेशों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि आय की वृद्धि के साथ चावल पर
खर्च किया जाय। भारत और सीलोन में परिवारों के सर्वेक्षण से पता चला
वास्तविक आय में वृद्धि होने के फलस्वरूप भी चावल की खपत में ५ से १० प्रतिशत
होती है। लेकिन जापान जैसे देश में जहाँ आय अधिक है, चावल की
१ से २ प्रतिशत वृद्धि ही पाई गई है। निम्न आय के प्रदेशों व क्षेत्रों में चावल के
घटी-बढ़ी होने का प्रभाव खपत पर पड़ता है। दाम बढ़ने की अपेक्षा दाम घटने का
प्रभाव पड़ता है और उसकी खपत बढ़ जाती है। बहुत से देशों में लोग
क़ीमत बढ़ने पर निम्नतर श्रेणी का चावल खरीदने लगते हैं, या ऊँची श्रेणी के
में घटिया चावल, या 'कनकी' मिलाकर खाते हैं। भारत में 'कनकी' चावल का
धोबी लोग साधारणतः कपड़ों पर कलफ लगाने में करते हैं। लेकिन चावल
वे इसको खाते भी हैं। अच्छे चावल में 'कनकी' कितनी मिलाई जाय, यह
पर निर्भर करता है।

अन्य खाद्य पदार्थों के दामों के घटने-बढ़ने का प्रभाव बहुत चावल की खपत
पड़ता है। कारण, चावल-भोजी चावल को छोड़कर अन्य अन्न-धान्य खाना
करते। लेकिन आज कल सरकारें दूसरे देशों से चावल खरीदने का काम
सरकारी चावल खरीदने की नीति का इसकी खपत पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है।

वितरण पर नियंत्रण

चावल की खपत को प्रभावित करनेवाली सरकारों की वितरण नीति
एशिया के प्रायः प्रत्येक देश में चावल के वितरण पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

नियंत्रण है। भारत और पाकिस्तान में तो इस नीति का प्रभाव सीमित ही पड़ा
न जापान में इसका प्रभाव काफी पड़ा है। आज भी वहाँ चावल का कठोर राशन है,
में बच्चों को मध्याह्न भोजन दिया जाता है, और यह अन्य ओदन धान्यों का या
 खाद्य पदार्थों का ही होता है। इस कारण चावल की माँग पर प्रभाव पड़ा है।
रण युद्ध-पूर्व की अपेक्षा जनसंख्या में २८ प्रतिशत वृद्धि होने और आमदनी अधिक
र भी चावल की खपत का स्तर १९३४-३८ से अधिक नहीं है। एशिया से बाहर
 लोगों के स्वभाव पर युद्ध का प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी यूरोप के लोग
सालों तक चावल की जगह अन्य अन्न खाते रहे। इससे चावल की माँग वहाँ
कम हो गयी थी।

१९५८-५९ के विषय में संयुक्त राष्ट्र खाद्य व कृषि संस्था की रिपोर्ट का मत है कि
इस बारे में कुछ कहना सम्भव नहीं। विश्व के कुल चावल उत्पादन में वृद्धि होगी,
भी, यह बताना अभी सम्भव नहीं। इस समय तक की सूचनाओं के अनुसार
ई देशों में चावल की फसल अच्छी हुई है। भारत में चावल १९५८ में अधिक
है, यह विभिन्न प्रान्तों से आई रिपोर्ट से पता चलता है। विभिन्न प्रान्तों में चावल
भिन्न श्रेणियों का दाम स्थिर करना भी यही सूचित करता है। लेकिन फिर भी
त रूप से कुछ कहना अभी कठिन है। चीन में ४९० लाख टन चावल पैदा होने
नुमान है। चीन इस मौसम में चावल की खेती में और १०० लाख एकड़ बढ़ा रहा
चावल का आयात करनेवाले अधिकांश एशियाई देशों में भी चावल की फसल अच्छी
हुई है। १९५८-५९ में आशा यह है कि चावल के अन्तर-राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि ही होगी, कमी नहीं, क्योंकि चावल की खपत बढ़ने के साथ-साथ इसकी माँग निरन्तर बढ़ रही है। चावल की कीमतें चढ़ी रहेंगी या गिरेंगी, यह कहना भी अभी कठिन है। अभीतक प्राप्त रिपोर्टों के आधार पर सम्भावना यह की जाती है कि कीमतें चावल की माँग को बढ़ाएँगी और इस कारण निर्यात भी बढ़ेगा। किन्तु आयात करनेवाले देशों को इससे हानि ही होगी। • • •
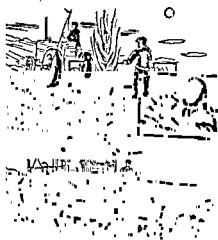
नीन्द्रकुमार विद्यालंकार

रंग-बिरंगे काँच के टुकड़ों से बने चेक

काचः काचो मणि र्मणिः | मोहन मिश्र

उक्त कथन के हिमायती संस्कृत के कवि को शायद ही पता था कि काँच (स्फटिक नहीं) भी एक ऐसी स्थिति तक पहुँच सकता है कि लोग उसका आदर मणियों से कम नहीं करेंगे। आज के सभ्य जीवन में लोहा, काठ, पत्थर या सीमेन्ट, चमड़ा, कपड़ा, और काँच अनिवार्य वस्तुएँ हैं। मणियों का काम तो फिर भी काँच के नकली नगों से चल जाता है।

हमारे देश में काँच उद्योग अभी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था है। भारत में काँच के कारखाने कुल २२५ हैं और ... के कारखाने ६३। ये सभी प्रायः चार राज्यों में ही ... हैं, पश्चिम बंगाल, बम्बई उत्तर प्रदेश और मद्रास इस उद्योग में करीब चार करोड़ की पूँजी लगी है लगभग २०,००० लोगों की रोज़ी इन कारखानों उत्पादन पर ही पूर्णतया निर्भर है। कुल ...

॰ करोड़ रुपये की
इस उद्योग को होती
ादन की चीजों में मेज
ने योग्य बर्तन, बल्ब
सके अंश, शीशी-
काँच की शीटें,
से बना काँच, चूड़ियाँ,
ही मुख्य हैं ।

ाल में अब काँच के
भी बनने लगे हैं, और
में प्रतिष्ठापित काँच
चीनी मिट्टी के केन्द्रीय
ने कुछ क़दम प्रगति
ोर बढ़ाये हैं जिसके
रूप चश्मे के शीशे बनाने
चूड़ियों पर लाल रंग
के काम में भी पर्याप्त

काँच का एक बहुरंगी-कामदार
नायाब फानूस

ति की सम्भावना है । शायद शीघ्र ही चूड़ियों पर लाल रंग चढ़ाने के लिए सेलेनियम का आयात अब बन्द हो जाय और चश्मे के काँच भी बाहर से न मँगाने पड़ें । अन्य देशों की तरह इस संस्थान में काँच से मुलायम, चिकना और चमकदार कपड़ा तैयार करने की विधि को भी पूर्णतर बनाया जा रहा है । इस कपड़े के लैम्प-शेड, टाई, झोले और औरतों के फैन्सी टोप आदि बन सकेंगे और यह दीवार पर मढ़ने के काम भी आ सकेगा ।

:चित्र

अब तक हम लोग सिर्फ बेल्जियम और वेनिस के बर्तन और झाड़-फानूस तथा दर्पणों की विशिष्टता के ही क़ायल थे और १९५६ में जब स्टयूबेन काँच

स्फटिकनुमा काँच का आधार-पात्र जिसमें तीन नारी-मूर्तियाँ सारी पृथ्वी को हाथों पर उठाये हैं, जो कि सभी राष्ट्रों के सहयोग के प्रतीक-रूप में काँच खुदाई का बेजोड़ नमूना है। आजकल यह बेल्जियम के राजा के पास है।

पर खचित फणिभूषण, गोपाल घोष, के० एस कुलकर्णी, राम महाराणा और यामिनी रॉय के चित्र देखे, तो यह सन्तोष हुआ था कि एशियाई देश भी अब शीघ्र आगे आने ही वाले हैं लेकिन स्च्यूबेन काँच जैसी चीज यहाँ बनी ही नहीं। अब १६५८ में प्रदर्शित काँच की चेक कलाकृतियों को देखकर इस बारे में और भी अधिक जिज्ञासा बढ़ी है। अतः कुछ उदाहरण-चित्रों के साथ यह लेख हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

मानव-निर्मित चीजों की रूप-रेखा—आ[illegible] और साज-सज्जा—प्रायः चार बुनियादी परि[illegible] से प्रभावित होती है। (१) औजार और उ[illegible] के तरीके (२) वस्तु या पदार्थ (३) उपयोगि[illegible] (४) सुन्दरता के बारे में किसी भी देश का[illegible] प्रचलित धारणाएँ। एक जमाना था जब [illegible]

विशुद्ध सोडा-पोटाश काँच का बना आधार-पात्र [illegible] चमकीली बैंगनी पृष्ठभूमि पर काले [illegible] में [illegible] है। यह आधुनिक चित्रित ग्लास का एक [illegible] जिसमें आकृति और रूप-सज्जा का पूर्ण सामञ्जस्य है।

को प्रधानता दी जाने लगी। अब वह युग है जब कि काँच को ज्यादा ठंडा किया द्रव पदार्थ ही माना जाता है। नतीजा यह है कि उन्नत देशों में अब काँच के कपड़े भी बनने लगे हैं, जैसे कि अन्य रासायनिक कपड़े नाइलॉन आदि बनते हैं।

काँच की आकृति और सजावट पर उसकी पारदर्शिता, भङ्गुरता और
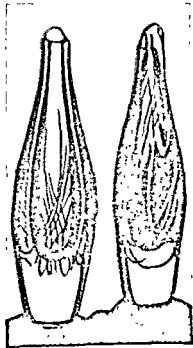
र कटाई के काम की एक उत्तम कलाकृति

त को मसनूई पत्थर मानते थे : काँच फूँकने की नली और त में आकृति गढ़ने के लिए उसे दों में ढालने की विधि से अव-गत थे। तब स्फटिक की दुष्प्राप्यता ारण प्रायः काँच को रंग-बिरंगी यों की जगह काम में लाने का स किया जाता था। फिर एक । युग आया, जब काँच को धातु । लिया गया और उसके बर्तनों

चित्रित आधार-पात्र

काँच पर चेक कारीगरी के कुछ और नमू

शीशा-काँच
जिसमें गहरी
साथ
ब्रोंद काच
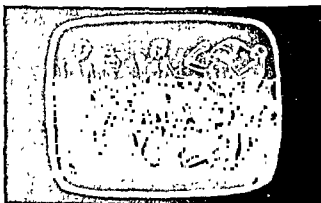
फलों की फसल
शिल्पी : जिन्ड्रिच तॉक स्तीन

चेक कलाकारों
द्वारा काँच पर
कारु-कार्य की
एक अद्भुत
रूप-सृष्टि
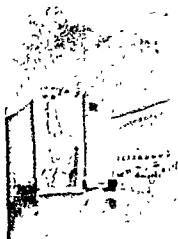
सोडा-पोटाश
पर चमकता
काली रूप-
सज्जा के साथ
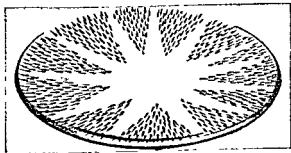
फूँककर बनाये काँच पर एचिंग की रूप-सज्जा—चोर ग्लास पर मार्ता केहर्तोवा द्वारा प्रस्तुत आधार-पात्र ।

शा-ग्लास पर मछली
रूप-सज्जा—स्केलों की
पीसने-वाले पहिए
धार से इसके घेरे
की सतह पर है ।

काँच पर चमत्कारपूर्ण चेक कारीगरी
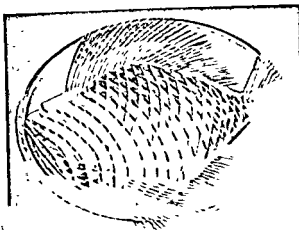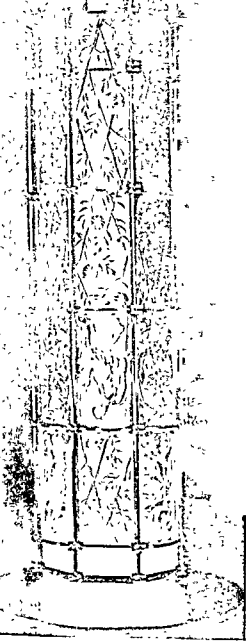
हलकी किरणों को प्रतिच्छुरित . की योग्यता का ही ज्यादा पड़ता है। इनका यथातथ्य इस कलापूर्ण उद्योग का रहस्य। कहना न होगा कि हाथ से बनी चीजें की कमी और मशीनों से बनी चीजें की बहुतायत ने भी हमारे जीवन परिणामतः काँच की कलापूर्ण उपयोगिता पर काफी असर डाला है। फिर भी, जिन देशों में काँच कलात्मक उद्योग की २५० वर्ष से ज्यादा की परम्परा मौजूद है, दिन प्रतिदिन इधर—देश-काल परिस्थितियों के अनुसार उन्नति की गई है। चेकोस्लोवाकिया और उसकी संक्षेप में निम्नलिखित कहानी है।

चेक भूमि का प्राचीन बोहामिया है और बोहामियन विश्व-प्रसिद्ध है। आठवीं-नवीं से ही यहाँ के काँच के सामान ने सिक्का जमाना शुरू कर दिया था, उस वक्त सिर्फ नकली जवाहिरात और रंग-बिरंगे दाने-मनके तथा मोती और बटनों का उत्पादन ही होता था। मध्य युग में काँच नलियों और रंग-बिरंगे टुकड़ों से बने धार्मिक कथाओं के चित्र बोहेमिया की अपनी विशेषता थी।

काचः काचो मणि मणिः

यूरोप के गिरजाघरों की खिडकियों पर काँच के चित्र बनाने के
चेक कलाकारों की माँग सर्वत्र बढ़ गयी और जब सत्रहवीं शताब्दी
दाई के उपयुक्त काँच का निर्माण हुआ तब तो बोहामियन काँच और
कलाकारों की धाक सदा के लिए बँध गयी। उसके बाद स्फटिक-
चेक कटा काँच, चेक शीशा-काँच, विशुद्ध सोडा-पोटाश काँच और
के काम का काँच बनना शुरू हो गया और अब पिछले २० साल
चि के बर्तनों और कलात्मक सजावट की चीजों पर आकृति-निर्माण
कमाल ही कर दिखाया है।

सिद्धान्त और प्रयोग का इतना सुन्दर सामजस्य शायद ही कहीं हुआ
जितना कि चेक काँच के कला-उद्योग में। आजकल जेलत्नी ब्रोद के
में काँच-शिल्प के कई प्रकार सिखाये जाते हैं, जैसे, बहुरंगी काँच
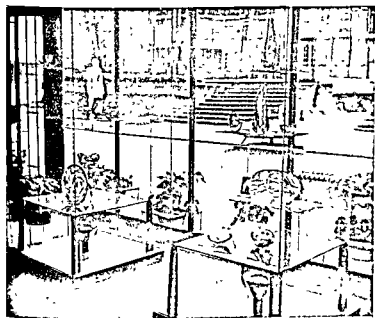
ब्रुशेल्स में चेक प्रदर्शिनी के एक भाग का दृश्य

रन-मिश्र

हमारे वर्तमान
सामाजिक जीवन के
कुछ पहलुओं का
लेखा जोखा

(उस दिन प्रताप टाकीज में "श्री ४२०" देखने गया। खेल खत्म हुआ तो बगल की किसी सज्जन द्वारा भूला हुआ एक थैला मिला जिसमें बहुत से कागज़-पत्रों का एक था। थैले के मालिक की कोई खोज नहीं लग सकी। इनमें से कुछ कागज पत्र, ज्यों के छपे हैं। पत्र भेजने पानेवालों के नाम नहीं दिये हैं क्योंकि उनमें से बहुतेरे शायद रिचित भी हो सकते हैं।)

(१)

(अंग्रेजी से अनूदित)

श्री..................
.......मन्त्री,
...........सरकार

स्वायत्त शासन विभाग,
दिनांक १३-२-१६५

प्रिय श्री.........

आपको पत्र लिखते हुए मुझे अपार हर्ष है कि आपने मेरा पहला अनुरोध स्वीकृत कर मुझे कृतार्थ किया।

आपकी आयुष्मती पुत्री कंचनलता का परिचय पाकर हम लोग बहुत खुश हुए हैं। बात यों है कि मेरे एक मात्र पुत्र चिरंजीव देवेन्द्र ने अपनी मा से आ० कंचन

के साथ पाणिग्रहण की इच्छा व्यक्त की थी। संयोग
ही है कि मेरा पुत्र और आपकी पुत्री एक ही कॉलि
छात्र-छात्रा हैं। पत्नी द्वारा बात मुझ तक आई और
इस विषय में अनुरोध करूँ, इससे पूर्व यह उचित
मेरी पत्नी होस्टेल में जाकर सौ० कंचनलता से परिच
करें। हमें यह लिखते हुए गर्व है कि आपने पुत्री रू
अनमोल रत्न पाया है, जिसे हम अपने परिवार का
बनाना चाहते हैं। चि० देवेन्द्र इसी मार्च की सत्रह
से......विभाग में सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हो रहे हैं।
कृपया मुझे अपनी सम्मति देकर सम्मानित एवं कृतज्ञ

हाँ, मैंने सुना है, आप आगामी चुनाव में
क्षेत्र से संसद के लिये खड़े हो रहे हैं। इसी क्षेत्र से
होने की मुझे भी आज्ञा मिली है और मैं बड़े पसोपेश में
कि क्या करूँ! आपके साथ जिस मधुर सम्बन्ध की
कल्पना कर रहा हूँ (आशा है, आप उसे यथार्थ करेंगे!)
उसके आगे मैं चुनाव में बैठ जाना ही उचित समझता
परन्तु एक तो हाई कमान्ड की आज्ञा और दूसरे कुछ
दबाव हैं कि, मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूँ! क्या
सम्भव नहीं है कि आप इस बार चुनाव में बैठ जायें
क्षेत्र से बाहर किसी क्षेत्र से खड़े हों!

शादी के बारे में आपकी अनुमति लेने और
आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से मेरा निजी
२१ फरवरी को आपकी सेवा में पहुँचेगा। कृपया उन्हें
मेरी उक्त प्रार्थना का भी उत्तर दे दें।

मुझे आपके अनुग्रह की पूर्ण आशा है।

सादर, आपका अभिन्न—

....

(२)

(अत्यन्त गोपनीय)

..............भवन,

२७ दिसम्बर १९५...

प्रिय......

२० तारीख के अखिल भारतवर्षीय विरोध-प्रदर्शन के फलस्वरूप उत्तेजनात्मक एवं हिंसात्मक वातावरण और जगह-जगह गोलीकांडों से उत्पन्न दुष्परिणामों पर विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि प्रशासन ने तात्कालिक बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत-से निरपराध व्यक्ति मारे गये। दूसरी ओर, मुझे जो खबरें मिली हैं—और खेद है कि वे सही हैं—पुलिस ने काफी बर्बरता से काम लिया। मैंने ऐसी एक औरत को खुद देखा है जो हामला थी और पुलिस ने जिसके पेट पर घूँसे और बूटों की ठोकरें दीं। हालाँकि सदन में मुझे प्रशासन के इस कदम का समर्थन करना पड़ा है और भावी चुनावों को मद्देनज़र रखते हुए मैं पुलिस के खिलाफ भी अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, परन्तु आप को यह सलाह देता हूँ कि आप एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर पुलिस के गोलीचार्ज की जाँच के लिये एक कमीशन बिठाने की घोषणा करें और जिन लोगों की मौतें हुई हैं, उनके घर सहानुभूति का एक-एक सन्देश भेजें तथा मुआवज़े में उनके उत्तराधिकारियों को कुछ रकमें देना भी निश्चित करें।

क्योंकि चुनाव के सिर्फ दो माह रह गये हैं, इसलिये आपको कुछ अहम ऐलान करने चाहिये—मसलन व्यापारी तबके के लिये कुछ रियायतें, सरकारी अमले को कुछ

के साथ पाणिग्रहण की इच्छा व्यक्त की थी। आपको
ही है कि मेरा पुत्र और आपकी पुत्री एक ही कॉलेज
छात्र-छात्रा हैं। पत्नी द्वारा बात मुझ तक आई और
इस विषय में अनुरोध करूँ, इससे पूर्व यह उचित
मेरी पत्नी होस्टेल में जाकर सौ० कंचनलता से परिचय
करें। हमें यह लिखते हुए गर्व है कि आपने पुत्री
अनमोल रत्न पाया है, जिसे हम अपने परिवार का
बनाना चाहते हैं। चि० देवेन्द्र इसी मार्च की
से......विभाग में सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हो
कृपया मुझे अपनी सम्मति देकर सम्मानित एवं

हाँ, मैंने सुना है, आप आगामी चुनाव में
क्षेत्र से संसद के लिये खड़े हो रहे हैं। इसी क्षेत्र में
होने की मुझे भी आज्ञा मिली है और मैं बड़े
कि क्या करूँ! आपके साथ जिस मधुर सम्बन्ध की
कल्पना कर रहा हूँ (आशा है, आप उसे यथार्थ करेंगे!
उसके आगे मैं चुनाव में बैठ जाना ही उचित समझता
परन्तु एक तो हाई कमान्ड की आज्ञा और दूसरे कुछ
दबाव हैं कि, मैं किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहा हूँ! क्या
सम्भव नहीं है कि आप इस बार चुनाव में बैठ
क्षेत्र से बाहर किसी क्षेत्र से खड़े हों?

शादी के बारे में आपकी अनुमति
आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से मेरा
२१ फरवरी को आपकी सेवा में पहुँचेगा। कृपया
मेरी उक्त प्रार्थना का भी उत्तर दे दें।

मुझे आपके अनुग्रह की पूर्ण आशा है।

सादर, आपका अभिन्न—

....

(अत्यन्त गोपनीय)

..............भवन,

२७ दिसम्बर १९५...

प्रिय......

२० तारीख के अखिल भारतवर्षीय विरोध-प्रदर्शन के फलस्वरूप उत्तेजनात्मक एवं हिंसात्मक वातावरण और जगह-जगह गोलीकांडों से उत्पन्न दुष्परिणामों पर विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि प्रशासन ने तात्कालिक बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत-से निरपराध व्यक्ति मारे गये। दूसरी ओर, मुझे जो खबरें मिली हैं—और खेद है कि वे सही हैं—पुलिस ने काफी बर्बरता से काम लिया। मैंने ऐसी एक औरत को खुद देखा है जो हामला थी और पुलिस ने जिसके पेट पर घूँसे और बूटों की ठोकरें दीं। हालाँकि सदन में मुझे प्रशासन के इस कदम का समर्थन करना पड़ा है और भावी चुनावों को मद्देनज़र रखते हुए मैं पुलिस के खिलाफ भी अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, परन्तु आप को यह सलाह देता हूँ कि आप एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर पुलिस के गोलीचार्ज की जाँच के लिये एक कमीशन बिठाने की घोषणा करें और जिन लोगों की मौतें हुई हैं, उनके घर सहानुभूति का एक-एक सन्देश भेजें तथा मुआवजे में उनके उत्तराधिकारियों को कुछ रकमें देना भी निश्चित करें।

क्योंकि चुनाव के सिर्फ दो महीने रह गये हैं, इसलिये आपको कुछ अहम ऐलान करने चाहिये—सामान्य तबके के लिये कुछ रियायतें, जरूरी अमले

जरूरी सहूलियतें और किसान-मजदूरों को भी कुछ सहूलियतें।

मैं चाहूँगा कि आप अपने कार्य की प्रगति की

साप्ताहिक रिपोर्टें मुझे भेजना न भूलें।

आपका—

....

श्री..........

मुख्य.........

.........राज्य सरकार

(३)

(यह किसी "भविष्य बताने के सरल गुर" नामक पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ का निचला अंश है।)

का ध्यान रहे कि भविष्यवक्ता कभी कोई बात स्पष्ट रूप में नहीं कहे। उसका ऐसा हो कि उसके सदैव दो अर्थ निकलें। गुम हुई वस्तु के बारे में बताते समय चोरी सम्बन्ध खोनेवाले व्यक्ति के किसी आत्मीय, मित्र अथवा नौकर चाकर का जोड़ देना चाहिये, इनमें से किसी पर उस व्यक्ति का सन्देह पक्का हो जायेगा। नाम नहीं बतायें, यही कह दें कि आपकी वस्तु पश्चिम दिशा से चोरी हुई और ... दिशा में पहुंच चुकी है लेकिन चोर अब शीघ्र ही उत्तर दिशा की ओर ... यदि आप प्रयत्न करें तो उसे दक्षिण की ओर मय चोरी गई वस्तु के सोमवार तक पकड़ लेंगे। मंगल-बुध तक वह वस्तु ऐसी जगह पहुँच जायेगी जहाँ से उसका ... नितान्त असम्भव है। समय की अवधि, स्थान, दिशा ऐसी रखे कि खोनेवाला ... वस्तु के न मिलने का दोष समय की कमी पर डाल सके। शुद्ध गोचर के साथ-साथ ... गोचर और शुभ ग्रहों के साथ-साथ अशुभ ग्रहों का योग अवश्य दिखायें, जिससे उसका कथन दोनों ओर सध सके।

इत्यलम्

(४)

(अंग्रेजी से अनूदित)

प्रिय.........

बहुत दिनों से आपका कोई पत्र नहीं मिला। क्या कारण है। आप के छोटे साहब के ... भग्गानी से मालूम हुआ कि वह यूनिवर्सिटी में ...

मेरा खयाल है, अभी तो आप उन्हें पी० एच० डी० करायेंगे ? डॉक्टरेट मिलने के बाद सभी जगह उनके चान्सेज बहुत ज़ोरदार हो जायेंगे।

...यूनिवर्सिटी के एम० ए० फाइनल (पॉलिटिक्स) का पेपर आप के पास है...कालेज के प्रिन्सिपल की लड़की मिस... का रौल नं०...आपके पास पहुँचा है। यों तो लड़की स्मार्ट है—थ्रू जाएगी, लेकिन उसने टॉप नहीं किया तो प्रिन्सिपल साहब की प्रेस्टीज गिर जायगी। दूसरे, उसको डिपार्टमेंट मे लिये जाने का भी इन्तजाम कर लिया गया है। मेरा अनुरोध है कि आप इसका ध्यान रखें और उसके मार्क्स मुझे तुरन्त भेज दें।

अगर आप चाहें तो अपनी यूनिवर्सिटी में मि०... आपको रीडर की पोस्ट पर अपॉइन्ट करने के लिये तैयार हैं।

कृपया तुरन्त जवाब दें और ऊपर की [illegible] ख्याल रखें। पत्र को गुप्त रखे।

आपका ही—

रायण मित्तल

(५)

(अंग्रेजी से अनूदित)

प्रिय डा०......

अभी अभी डाक्टर मिस वाजपेयी अपनी एक फ्रेण्ड के साथ मेरे पास आई हैं (यार दाना बड़ा ग्रेसफुल है। आँखें तो, बस, मैं क्या कहूँ—कलेजे के पार हो गई! खैर! तो उसे कुछ बीमारी है और मिस वाजपेयी उसका 'एक्सरे' प्रिण्ट लेना चाहती हैं। अपने डिपार्टमेण्ट में 'एक्स रे' फिल्म्स तो सब खत्म हैं। डियर, तुम्हारे यहाँ ३४ नं० टी० बी० पेशेन्ट का एक 'एक्सरे' रिजर्व है। बात तो यह है कि वह साला बचनेवाला तो है नहीं आखिर मर ही जायेगा। उसके ऊपर प्रिण्ट खराब करना। मिस वाजपेयी को मैं 'ओब्लाइज' करना चाहता हूँ। यों तो उसकी फ्रेण्ड अकेली आती तो फिर और भी अच्छा था। लेकिन खैर! इस मौके को जाने नहीं देना है। तुम्हें मुझे 'ओब्लाइज' करना ही पड़ेगा। तुम ऐसा करना साले ३४ नं० को बुलाकर उसका 'हवाई' एक्सरे ले और रिपोर्ट दे देना कि 'एक्सरे' साफ नहीं आया। मिस वाजपेयी और उसकी फ्रेण्ड का काम बन जायेगा।

हाँ! ....इन्जेक्शनों की भी जरूरत पड़ेगी।

हफ्ते तुम २० नम्बर को उसकी जगह "डी० डब्ल्यू०" (डिस्टिल्ड वाटर) के इंजेक्शन लगा देना। सब साले अस्पताल में ही आकर मरते हैं।

तो डियर! मैं पियून को इस खत के साथ तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। मुझे लिखो तो मैं मिस वाजपेयी से वायदा कर दूँ! चीज देखोगे तो उछल पड़ोगे!

फॉर गॉड्स सेक प्लीज़!

तुम्हारा ही—

....

यह शब्द अनुवादक की ओर से आपकी जानकारी के लिये दिया गया है। मूल ी० डब्ल्यू ही" था।

(६)

न ददाजी को रामचरन का डसपर्स पहुँचे। भगवान की किरपा और तुम्हारे से पिछले महीने से मेरी आठ आने माहवार की तरक्की हो गई है और नौकरी हो गई है। अब इस महीने से तरक्की का इलाउन्स भी मिला करेगा। वरदी भी ई है। अब गुजरे हफ्ते से सुबह-साम दो घंटे डूटी मुपरनडोनैन्ट साहब ने अपनी लगा दी है। सुभागो की लगुन के लिये दो सौ रुपिये भेज रहा हूँ। बियाह पिया और इकट्ठा हो जायेगा क्योंकि अस्पताल में खाने-पीने को बहुत-सा सामान ाता है। दूध, मौसमी, सेब, मक्खन, डबलरोटी खूब खाने को मिलती है। सभी और डाक्टर खाते हैं, कोई रोक-टोक नहीं है। मरीजों से भी कुछ पैसे और मिल जाती है। तुम दो दिन को यहाँ आजाओ तो अस्पताल में तुम्हें दिखा जल्दी आराम हो जायेगा। अम्मा को पाँलागी। आग्याकारी, रामचरन केवट।

(७)

अंग्रेज़ी से अनूदित

(यह किसी सरकारी दफ्तर की ऑडिट रिपोर्ट का एक पृष्ठ है)

न् १९६ ..—१९६ . की दो तिमाही के आडिट के दौरान में पता चला कि में टाइपिस्ट की वर्तमान पोस्ट के अलावा एक स्टेनो टाईपिस्ट की पोस्ट को वाते हुये इस जगह मिस डोनाल्ड की १५०-५-१८०-ई० बी०—१०-३० के वेतन-ृत महँगाई भत्ता सहित नियुक्ति की गई है। इस विषय में यह उल्लेखनीय है ा टाईपिस्ट ने, जिसकी शॉर्टहैन्ड की स्पीड मिस डोनाल्ड से कहीं अधिक है, कम ार करते हुए इस पद पर अपनी नियुक्ति की प्रार्थना की थी जो एक्जीक्यूटिव द्वारा ठुकरा दी गई। इस नियुक्ति की प्रशासन से कोई पूर्व-स्वीकृति नहीं ली

गई है, अतः मिस डोनाल्ड की यह नियुक्ति नियमों के विरुद्ध है।

इस दौरान में यह भी विदित हुआ कि मिस डोनाल्ड की नियुक्ति ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर उसे अपने साथ सरकारी दौरों पर बाहर ले जाते हैं। डोनाल्ड को यात्रा का भत्ता दिया जाता है। कार्यालय में कार्य की अनिश्चित और न ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर इससे पूर्व अपने किसी क्लर्क या टाईपिस्ट को किसी सरकारी दौरे पर कभी ले गये हैं। ऑडिट को ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर के औचित्य में सन्देह है और वह इसे सरकारी धन का अनावश्यक अपव्यय समझता

ऑडिट को पहली तिमाही के दौरान में पता चला है कि ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर ने कार्यालय में एक बगीचा बनाया है और इसके लिये नर्गिस के बीज खरीदे गये थे लेकिन बगीचे में आलू, बैंगन, और टमाटर उग रहे थे। यह ध्यान में रखने की बात है कि ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर का निवास कार्यालय भवन के ही एक भाग में है। यह बात बिल्कुल समझ में नहीं आती कि नर्गिस के बीज से फूलों की जगह आलू बैंगन और टमाटर कैसे पैदा होने लगे? इस बारे में ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर का उत्तर सर्वथा असंतोषजनक है।

कार्यालय की पिकअप—जैसा कि ऑफिस रेकर्ड से पता चलता है—२४ से २८ जनवरी तक कार्य के अयोग्य थी। लेकिन पैट्रोल के बिलों से विदित है यह पिकअप इन दिनों भी सरकारी प्रयोग में रही और ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर ही सरकारी काम में व्यस्त रहे। तथ्य यह है कि ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर २४ तक मिस डोनाल्ड के साथ दिल्ली रहे, जहाँ उनकी निजी कार २१ जनवरी को ऐ देसीडेण्ट में टूट गई। वास्तव में सरकारी पिकअप कभी खराब नहीं हुई मरम्मत ऐक्जीक्यूटिव ऑफिसर की निजी कार की मरम्मत के लिये दिखाई गई है

ऑडिट विभाग सिफारिश करता है कि कार्यालय का सारा हिसाब जाँचने की आज्ञा दी जाय।

हस्ताक्षर

....

सीनियर ऑडीटर

प्रिय सुषमा जी,

अभी-अभी श्री चंचल जी से ज्ञात हुआ कि आप ही 'वन-पुष्प' के नाम से पत्रोंमें लिखा करती हैं, मैं समझता था कि कोई नौसिखिया लेखक होगा। इस कारण इस ओर कुछ अधिक ध्यान नहीं दिया। सम्पादक के नाते मेरे कुछ कर्त्तव्य भी हैं इसलिये रिजर्व भी रहना पड़ता है। दूसरे आपके उपनाम से यह तो क़तई पता नहीं चलता कि 'वन-पुष्प' के रूप-रंग और सुगंध में किसी प्राकृतिक सुषमा का वास है। चंचल जी ने शिकायत की थी कि आपकी रचनायें मेरे कार्यालय से न तो वापस लौटती हैं और न पत्र में प्रकाशित ही होती हैं, मुझे इसके लिये खेद है। कृपया आगे अपनी रचनायें मुझे "व्यक्तिगत" लिखकर भेजा करें, ताकि इस भूल की पुनरावृत्ति न हो सके। ज्यादा अच्छा हो, साथ में दो शब्द भी लिख भेजा करें, ताकि मैं उसका विशेष ध्यान रख सकूँ।

चचल जी ने यह भी बताया कि आपकी एक रचना कार्यालय में कई महीनों से पड़ी हुई है। उसे मैं पढ़ गया हूँ। रचना अगले मास पत्र में आ रही है। प्रकाशित होने पर आपके पास पारिश्रमिक भी पहुँचेगा

कृपया अपना सहयोग देती रहें।

भवदीय—

.. ..

सम्पादक

(६)

प्रिय...

तुम्हारा खत तो कई दिन पहले मिल चुका था, लेकिन कुछ ऐसे झमेले आ गये कि जवाब देने की फुरसत ही नहीं मिली। सच पूछो दोस्त, तो झमेला जानबूझकर खड़ा करना पड़ा, नहीं तो यारों की सारी खान्दानी इज़्ज़त पर झाड़ू फिर जाती। लाली की शादी के सिर्फ दो महीने रह गये हैं और पिताजी ने लिखा था कि रुपये नहीं भेजे तो शादी का कोई प्रबन्ध नहीं हो सकेगा। कपड़ा-गहना तो दूर; घर में डालडा का दस पौंड वाला एक डिब्बा भी नहीं है। वह साला सब-इन्सपेक्टर भी क्या कहता कि उल्लू का पट्ठा ख्वामखाह का दरोगा बना फिरता है। साली एक ही तो बहन और शादी ऐसी हो, जैसे किसी चमार की लौंडिया ब्याह रही हो। पर दोस्त, हम तो बुलन्द तकदीर लेकर आये हैं—साला भगवान बिना माँगे मदद भेज देता है!

बड़ा मज़ेदार किस्सा है। यहाँ साला एक मोटा, सूदखोर लाला है। उसकी हरामज़ादी लौंडिया कहीं जल जला कर मर गई। अपने ही हल्के का मामला था। दीवान ने आकर खुशखबरी सुनाई, तो बस उछल पड़ा मैं। हो गया लाली की शादी का इन्तज़ाम। लाला से कहा—बेटा, दस हज़ार दिलवाओ नहीं, तो तोंद का गोबर निकाल कर रख दूँगा। पर साला लाला क्यों सीधे-सीधे मानने लगा। ताव आगया यार मुझे। दीवान को बुलाकर कहा मैंने—दीवान जी, बनाना तो एक गवाही! साला अपनी लड़की को किसी बुड्ढे खूसट को बेचता था। लौंडिया आग लगाकर मर गई। साले को कड़ी सज़ा दिलाऊँगा। बस तो साला! एक झापड़ में पोला हो गया। मैंने भी

दिया लाला को कि मैं भी एक ही हरामजादा हूँ! सीधे से गिनकर रख दो लाला-नहीं तो......

लटके हैं बेटा यह! कुछ सीख लो तो जिन्दगी भर ऐश करते होगे। खत को फाड़ देना बेटा, नहीं तो साली अपनी ऐसी की तैसी हो जायगी!

तुम्हारे जाने जिगर,........

(१०)

(अंग्रेजी से अनूदित)

वियेना, ३-२-५६

प्रिय विवेक,

इधर समाचार पत्रों में तुम्हारे विचार पढ़कर मुझे बड़ी निराशा हुई है। हिन्दुस्तान से मुझे कई मित्रों के पत्र मिले हैं; उन्होंने भी तुम्हारे बारे में जो लिखा है, उसे जानकर कोई भी पिता गर्व नहीं कर सकता।

मेरे बेटे, मैं तो कहूँगा, तुम किसी भी राजनैतिक विचार-धारा का विरोध न करो। हमारे युग की परम्परा ही यही है कि हम अपने कट्टर शत्रु की भी प्रशंसा करते हैं। तुम अपने व्यक्तित्व का प्रसार हरेक दिशा में दृढ़ता से करो, मगर पाँव केवल उस रकाब में डालो, जिसमें फँसकर तुम्हारे गिर जाने का भय नहीं हो। तुम अगर मेरी तरह सफल और सुखी जीवन बनाना चाहते हो तो याद रखो कि जिस सुबह तुमने किसी भूखे की करुणा दशा पर आँसू बहाये हों, उसी शाम को जश्न मनाना न भूलना! लेकिन अपने हिन्दुस्तान के तीस साल के राजनैतिक जीवन और यूरोप के इस दौरे से मैं एक बात दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि जो कुछ तुम विचारते हो उसे कभी व्यक्त मत करो; जो व्यक्त करते हो उसे कभी कार्यान्वित मत करो; और जो काम तुम सचमुच करना चाहते हो, उससे सदा

करते रहो !

अपने मिल-मजदूरों के झगड़ों में तुम मत पड़ो; सक्सेना निबट लेगा। हाँ, उनके डेपूटेशन तुम मिला करो, सहानुभूतिपूर्वक उनकी बातों को सुनो और [illegible] प्रकट करके उनका विश्वास भी प्राप्त करो।

तुम्हारा हितैषी—

....

(११)

(मूल पत्र अंग्रेजी में)

गोपनीय : केवल पार्टी कार्यालयों के लिये

तारीख २-३-१९५...

प्रिय साथी,

केन्द्रीय समिति को हाल ही में बाहर के [illegible] मित्रों के कुछ विचार और अपनी भावी गति[illegible] संचालन-सम्बन्धी कुछ आदेश प्राप्त हुए हैं, जो [illegible] गोपनीय होने के कारण इस सर्क्युलर में नहीं दि[illegible] सकते। समिति ने इन विचारों और आदेशों पर [illegible] विशेष मीटिंग में इनका समर्थन करने का निश्चय कि[illegible] अतः समस्त पार्टी कार्यालयों को इस सर्क्युलर द्वारा निर्देशन सम्बन्धी निम्न आदेश दिये जाते हैं :—

(१) भविष्य में देश के राजनैतिक नेता[illegible] परराष्ट्र नीति का पूरा समर्थन किया जाय।

(२) राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में तटस्थ नी[illegible] पालन किया जाय।

(३) ...सरकार के प्रत्येक कार्य का [illegible] समर्थन किया जाय और संसद एवं विधान स[illegible] सरकार के विरुद्ध विहित आलोचनाओं का विरोध [illegible]

की जाय ; स्थगन-प्रस्ताव रखे जायँ और यदि ये स्थगन-प्रस्ताव अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत न किये जायें, तो पार्टी सदस्यों को वाक्-आउट कर देना चाहिये।

......पर हुए हाल के हमले के बारे में पार्टी-सदस्यों को अभी अपनी कोई राय नहीं जाहिर करना चाहिये। इसके सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश प्राप्त होने पर पार्टी अपनी नीति का स्पष्टीकरण करेगी !

आपका साथी—

....

पुनश्च .—

पैरा ४ सम्बन्धी आदेश केन्द्रीय पार्टी-कार्यालय में अब प्राप्त हो गये हैं। इस सम्बन्ध में पार्टी की नीति इस हमले के औचित्य का समर्थन करना तथा राजनैतिक नेताओं के वक्तव्यों का खंडन करना है।

२८-२-१६५...   आपका साथी—

....

(१२)

(अंग्रेजी से अनूदित)

सर्क्युलर संख्या......   दिनांक......

श्रीमान् जी,

मुझे आशा हुई है कि मैं आपका ध्यान प्रशासकीय गश्ती परिपत्र संख्या...दिनांक...की ओर आकर्षित करूँ, जिसमें प्रशासन के समस्त अंगों से यह निवेदन किया गया था कि वे कार्यालय का अधिकाश कार्य यथा-सम्भव हिन्दी में ही प्रारम्भ करने का प्रयत्न करें।

इस सम्बन्ध में मुझे आपसे निम्न निवेदन करने का आदेश प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार कार्य करने से हिंदी की प्रगति में सहायता मिलेगी :—

(अ) अंग्रेजी में लिखे जानेवाले पत्रों में 'चीफ मिनिस्टर ...गवर्नमेन्ट, लोकल सैल्फ डिपार्ट०' के स्थान पर अब रोमन लिपि में निम्नलिखित लिखा जायगा—

'मुख्य सचिव	(Mukhya Sachiv,
......प्रशासन	.......Prashasan,
स्वायत्त शासन विभाग	Swayatt Shasan Vibhag
......राज्य	......State

(ब) प्रशासन को भेजे जानेवाले हिन्दी पत्रों के साथ ही कृपया उसके अंग्रेजी अनुवाद भी अवश्य भेजा करें।

आपसे प्रार्थना है कि आप इस सर्क्युलर की सूचना अपने आधीन समस्त कर्मचारियों को दें।

आपका, शुभेच्छु—

....

अन्तिम
(व्यक्तिगत)

....पुर

एम० पी०   दिनांक.......३-३-१९५...

प्रिय श्री...

बहुत ज़ोर-दबाव डालने के बाद यहाँ के कांग्रेस-मैनों ने कल एक मीटिंग कर मेरी बात मानकर कड़े शब्दों में अस्थाना के खिलाफ रिश्वत लेने, दुर्व्यवहार करने, प्रशासन में भ्रष्टाचार करने और अपने पद का दुरुपयोग करने का प्रस्ताव पास कर दिया है। इस प्रस्ताव की प्रतियाँ मैंने,

कमिश्नर, मुख्य सचिव, कांग्रेस-अध्यक्ष और सम्बन्धित अधिकारियों के पास भेज दी हैं। प्रस्ताव की एक प्रति आपको भी मिल गई होगी।

जैसा कि आपने सुझाव दिया था, लोकल पेपर्स में अस्थाना के खिलाफ मैं बराबर लेख निकलवा रहा हूँ। आपकी सलाह के अनुसार इस सारी कार्यवाही में प्रगट रूप से मैं अलग रह रहा हूँ।

भण्डारी साहब ने मुझे आश्वासन दे दिया है कि वे अस्थाना के खिलाफ हर सम्भव कड़ा कदम उठायेंगे। मल्होत्रा साहब भी अस्थाना के खिलाफ चार्जशीट तैयार करने में जुटे हुए हैं, मैं उन्हें बराबर सूचनायें दे रहा हूँ। अस्थाना के अन्य साथी अफसर इस मामले में मेरी पूरी मदद कर रहे हैं।

मुझे आशा है, आप शीघ्र ही अस्थाना के खिलाफ मुअत्तली के आदेश देंगे। आपकी कार का इन्तजाम मैंने कर दिया है। परसों सुबह वह आपकी कोठी पर पहुँच जायेगी।

आपका प्रिय—

.. ..

(ये सभी कागज-पत्र, जैसा कि पहले ही कह चुका हूँ मुझे सिनेमा हाउस में मिले थे। अगर किसी की असली जिन्दगी से—यानी असली आवाज और असली चेहरों से—ये मेल खाते हों तो वे करें। मेरा उद्देश्य किसी के व्यक्तिगत जीवन का कच्चा चिट्ठा खोलना नहीं है।)

लादनारायण मित्तल

गम्भीर सुख

सुख :
कितने आए
चले गए।
सूनी आँखों ने उन्हें देखा भर
ग्रहण नहीं कर पाया, मन वह सब।
किन्तु ; आज
दर्द भरी शाखों को
स्नेह कली छू गई,
रग-रग में तैर गई स्पर्श लहर ...
घुटन, धुएँ, कटुता में
नई महक बेला की
अनिर्वचनीय सुख
छलक रहा है मन के पात्र से..
यह केवल
सुख तुम्हारे आने का
गहरे तक उतर गया।

-अपर्णा-

दूर से फुनगी में लगा
सिर्फ़ गुलाब ही नज़र आया
और मैंने हाथ बढ़ाया कि उसे छू लूँ।

पर नन्हे और बेडौल काँटे जब चुभे
तो याद आया—

अरे! गुलाब के सुर्ख रंग ने
मुझे यों भरमाया!

कि हिरने-सा कुलाँचे भरता मन
नाद के पीछे बँधने आया!
काँटों का ध्यान भी न लाया!

अमृतल

हिन्दी

पुष्करनाथ बी०ए०

गा-श्री के समस्त जीवन की धुरी दो पगडंडियाँ थीं। एक पगडंडी
बल खानी करवा के ऊपर ही ऊपर चली जाती थी और अखरोट के

पुलिया को पार करती, मक्की के खेतों में
कर खेतों के बीच में बने हुए मचान
और देखकर सुस्ताने लगती थी। दूसरी
ही ट्राउट मछली की भाँति दुम हिलाती,
कपकाती, कान फड़फड़ाती करेवा से
उतर कर ट्राउट नदी के किनारे-किनारे
में घास पर चलती हुई, चिनार की
से उलझती, धान के खेतों से बड़े झरने
मीप पहुँच कर रुक जाती और धर्राट
गेर देख देखकर आँखें बन्द किए सो
थी। तीसरा कोई मार्ग नहीं था।

गा-श्री जब
पर उपलों
भरा हुआ
ा लिये उस
पहुँची
यह दो
डियाँ दो
दिशाओं
लने लगती
व सूर्य डूब
था। उस

> तुम्हारी हँसी,
> तुम्हारे अपने खेतों के फूल थे।
> तुम्हारी बातें,
> तुम्हारी अपनी पहाड़ियों की, सरोवरों
> की सरसराहट थी।
> मगर तुम्हारा दिल,
> औरत था, जिसे हम सब जानते हैं।
>
> —टैगोर

पर पहुँच वह रुक गई और डूबते हुए
की ओर देखने लगी जो थका-थका-सा
रहा था। वह स्वयं भी थकन से चूर
उसने टोकरा सिर से उतार कर जमीन
ख दिया और स्वयं एक खेत की मेंढ़
ठ कर आराम करने लगी। आस-पास
ा दूर-दूर तक कोई नहीं था। दृष्टि की
न सीमा तक खेत मात्र फैले बेजबान
झलबेले पौदों से भरपूर। दूर खेतों के
बीच एक रुण्ड-मुण्ड वृक्ष था—मिन-

मिना सा तथा नग्न।

बैठे-बैठे उसने हाथ बढ़ाकर धान के एक सिट्टे को तोड़ लिया और फिर एक दाने को दो उँगलियों से मसल दिया। धान के इस कच्चे दाने से सफेद दूध का कोई बिन्दु न गिरा। गा-श्री ने उसे पुनः मसल कर देखा और साथ ही उसकी आँखों से आँसुओं की दो लड़ियाँ फूट पड़ीं, जैसे बकरी के थन से दूध की धाराएँ फूट पड़ती हैं।

चावल के इस दाने के समान उसका अपना जीवन भी खाली खाली था—दूध की कोई बूँद इसमें न थी, शबनम (ओस) का कोई मोती न था, हँसी की कोई गर्मी नहीं थी। आँखों के इस प्रकार बरसने से कोई आश्चर्य नहीं हुआ। गन्दे पानी के इन बिन्दुओं को पोंछने का उसने कोई प्रयत्न न किया। केवल धुँधली आँखों से उन पगडंडियों की ओर देखा। परन्तु उसकी आँखों में जो कुहरा छाया था उससे प्रत्येक वस्तु धुँधला गई थी। अनायास ही उसने अपने दोनों हाथ जोड़कर देख लिये परन्तु इनमें कुछ न था। उसने अपने मैले और तार-तार कुर्ते की जेब में हाथ डाला—उसका हाथ जेब

के सुराख से बाहर निकल गया और बस।

उसने कानों की लवों को छूकर देखा—ये भी खाली थीं। कोई बुन्दा नहीं था, न कोई और ज़ेवर ही। उसने बाजुओं की गोलाई पर दृष्टि जमा दी किन्तु इनमें भी कोई कड़ा न था। गले में कोई हँसुली न थी। थे केवल उसकी आँखों में अश्रु मोती, जो छूते ही टूट जाते हैं। उसने अपने हृदय को टटोल कर देखा परन्तु यह भी खाली था—कोई याद न थी, कोई अरमान नहीं था, कोई इच्छा नहीं थी, कोई भाव नहीं था।

परोक्ष में उसके मस्तिष्क में कहीं से यह बात आकर धड़क गई कि अब उसके पास कुछ भी नहीं बचा है, कुछ भी नहीं। परन्तु ? जब्बार खुरो ? जब्बार खुरो का विचार आते ही उसके नेत्रों में एक किरण तड़पी और उसके होठों पर एक मुस्कराहट अपना जादू दिखा गई। उसके चेहरे का कठोर तनाव मधुर अनुभवों में परिवर्तित हो गया। फिर यह मधुर अनुभव फैलते-फैलते उसके समस्त अस्तित्व पर छा गए, जिस प्रकार दूर एक सुरमई धुएँ की चादर मिट्टी से लिपे मकानों पर फैलने लगी थी। वह जानती थी कि यह चादर फैलते फैलते बहुत फैल जाएगी और फिर अन्धकार होगा। दिये जल उठेंगे। दिये ! परन्तु जब्बार खुरो और उसके पास कोई घर नहीं था जिसमें दीपक जल उठता।

जब्बार खुरो ने मचान पर बैठे-बैठे बेचैनी से करवट बदली। उसने दूर डूबते हुए सूर्य की ओर देखा। उनके [illegible] एक कटु तथा व्यंगात्मक [illegible] गई। यही मुस्कराहट प्रातः भी [illegible] उसके होठों पर खेली थी जब उसने [illegible] को रुपया लाने भेज दिया था। वह [illegible] था, गा-थो रुपया लेकर ही आएगी। [illegible] इतनी देर हो गई थी अब तो! [illegible] उसने हवा में एक गाली दी, जिस [illegible] कबूतर को हवा में उछाला जाता है। [illegible] फिर हुक्का खींचकर चिलम में [illegible] भरने लगा।

जब्बार खुरो को अपने निर्द्वंद्व [illegible] पर अभिमान था। उसे इस बात का [illegible] अभिमान था कि गाँव भर में वह अकेला ऐसा गबरू है जो इस मचान पर बैठकर [illegible] गुज़ार सकता है। दूसरे युवक और [illegible] कथित तगड़े जवान तो केवल रीछ का [illegible] सुनकर काँप-काँप जाते थे। परन्तु [illegible] खुरो प्रत्येक रात रीछ देखता था [illegible] अत्यंत निर्भयता से ढोल बजा-बजाकर [illegible] भगा देता था, बस यही उसका कमाऊ [illegible] इस काम के अतिरिक्त वह और कोई [illegible] न कर सकता था, न करना चाहता ही [illegible]

हुक्के की नली से धुएँ के लम्बे [illegible] हुए वह सोचने लगा—'न जाने गा-थो [illegible] अभी तक नहीं आई ? गई होगी [illegible] बुड्ढे के पास, और वह कहाँ जा सकती है [illegible] कहीं भी जाए मेरी बला से।' सोचते [illegible] उसने आकाश की ओर देखा। [illegible] आकाश ही तो था एक सिरे से दूसरे [illegible] तक। और इस आकाश के नीचे जहाँ [illegible] दृष्टि जाती थी, मुनकी के पौदे थे और [illegible]

। थी जिस पर वह स्वयं बैठा था। को काली ओढ़नी अपनी तहें धीरे-खोल रही थी। उस अँधेरे में उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था यहाँ तक कि गा-श्री को भी नहीं देखा जो उपलों टोकरा रख कर अब उसके सामने ी थी।

व वह बिलकुल ही समीप आ खड़ी वह चौंक पड़ा। उसने उसकी ओर ना ही हाथ फैलाया।

गाओ...?"

-श्री मौन साधे रही। हाँ। उसके नुभव, जो कुछ समय पहले उसके छिटक आए थे, वे सिमट गए और -सिमटते पूर्णतया विलीन हो गए।

ाती क्यों नहीं? खड़ी-खड़ी मेरा ा देखती है?' उसने चिल्ला ।

कुछ भी न ला सकी।" गा-श्री का र धीमा था।

िर यहाँ क्यों आ गई?" जब्बार उठा।

हाँ न आती तो कहाँ जाती? दिन ों का टोकरा उठाए-उठाए बदन टूट अब यहाँ न आती तो..."

श्री ने अत्यधिक संयम से काम जैसा कि उसका स्वभाव था। उसका स्वर भर्रा गया था।

र अब यहाँ खड़े-खड़े टिसवे बहाने ोगी।"

ार खुरो के स्वर में तेजाब की वह गई जो सदा से वहाँ विद्यमान थी और साथ ही उसने ऐसा उल्टा हाथ लगाया कि गा-श्री के गाल पर रेखाएँ उभर उठीं।

फिर दूसरा!

फिर तीसरा!!

गा-श्री लड़खड़ा कर नीचे बैठ गई। उसने बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह चीख जो उसके भीतर न जाने किस भाग से उभर आई थी बाहर फूट ही पड़ी। चीख! लेकिन इस वीराने में कौन सुनता?

'तू समझती है कि तेरे आँसुओं से मेरा दिल पसीज उठेगा?' जब्बार खुरो की लात बहुत सख्त और भारी थी और साथ ही उसकी आँखें भी जलते अंगारे बरसाने लगीं।

गाँव की मस्जिद पर जब टेसू के फूल खिल उठते हैं तो वह भी ऐसी ही अंगारे बरसानेवाली बन जाती है। उसने पुनः लात उठाई लेकिन गा-श्री ने उसका पांव पकड़ लिया और फिर उसके पाँव को सीने से चिमटाये हुए सिसकने लगी। उसने स्वयं रोने का प्रयत्न नहीं किया था। उसके वश की बात होती तो वह कभी आँसू न बहाती, चाहे जब्बार उसकी आँखें ही क्यों न बाहर निकाल देता। परन्तु यह आँसू कम्बख्त स्वयं ही बाहर निकल आते हैं और आँखों पर धुंध के पर्दे गिरा देते हैं। रोते-रोते वह कहने लगी, 'जब्बार! तुम जानते हो कि मैंने तुम्हें सब कुछ दिया है। अब मेरे पास क्या है जो तुम्हें दूँ?'

'...मैं कुछ नहीं जानता। मुझे रुपए चाहिए और वह भी इसी . तो मैं तुम्हारी एक-एक हड्डी ,

दूँगा। तुमने आखिर समझा क्या है मुझे ?' उसके कानों की लवें सुर्ख अंगारा बन गई थीं।

'जब्बारा मैं कहाँ से लाऊँ? क्या...?'

गा-श्री के गले में आवाज फँस गई जैसे रेशम के कोए में कीड़ा फँस जाता है।

'कहीं से भी लाओ—मगर जल्दी लाओ।'

'खुदा के लिए ऐसा न कहो। तुम जानते हो कि मैं रुपए नहीं ला सकती। आखिर मैं किस से मांगू ?'

गा-श्री के सिर की ओढ़नी खुलकर नीचे गिर गई थी और उसके बालों की लटें उसकी आँखों में घुस रही थीं।

ब्बारा का हाथ फिर ऊँचा उठा। के गाल पर फिर रेखायें उमरीं लेकिन न निकली, कोई सिसकी बाहर सकी—कोई आँसू न ढुलक सका।

! असीम संयम !!

तुम्हारे लिए मैं अपनी .. दे सकती हूँ। आखिर तुम समझने शिश क्यों नहीं करते ?'

कि तुम्हारे जिन्दगी की नहीं, पैसों रूरत है। समझीं ? भंगी की :।'

-श्री खड़ी हो गई। उसने ओढ़नी सिर पर बाँध ली और जब्बारा की धलाई नजरों से ताकने लगी। परन्तु आँखों में लहू खौल रहा था। जाने खोज रही थी उन आँखों में ? जाने स चीज की तलाश थी।

जन पगडंडी पर सावधानी से पग ई गा-श्री की आँखों के आंसू स्वयं गए। उसके दोनों गाल फूल गए थे र उनमें मीठा दर्द होने लगा था। ने जबड़ों को एक दूसरे से नहीं कती थी क्योंकि इस प्रकार दर्द बढ़ ।।

-श्री एक ऐसी नारी थी जिस की चील के वृक्ष की भाँति सदा हरी हती है, जो उछलती, कूदती, मरती जिन्दगी की पगडंडी पर फिरती है, जो जिन्दगी की टी और बड़ी-बड़ी बातों में इस गो जाती है—कि उसे थकान का अनुभव ही नहीं होता परन्तु यही नारी जब थक जाती है—जिन्दगी से हार मान कर—तो वह एक दिन, बल्कि एक क्षण में, जिन्दगी की कई मंजिलें पार कर लेती है। बल खो बैठती है, कुलांचें भरना भूल जाती है और फिर बूढ़ी हो जाती है। उसकी सारी नवीनता विनष्ट हो जाती है और यही उसकी जिन्दगी की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। गा-श्री अभी जवान थी क्योंकि वह अभी थकान से अपरिचित थी—थकान के अनुभव से अभिन्न थी। अन्धेरा गहरा होने लगा था और पगडंडी के दोनों ओर खेतों में मेंढक शोर मचाने लगे थे। किन्तु उसके कानों में केवल एक कड़क गूंज रही थी, 'मुझे रुपए चाहिए। वह भी इसी समय।'

न जाने जब्बार खुरो को ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी थी इस समय। उसने जब्बार को धीरे-धीरे सारी चीजें दी थीं। कानों की बालियाँ और बाजुओं के कड़े, ब्याह का वह जोड़ा जो उसके बाप ने अति स्नेह से बनवाया था; चाँदी की वह हँसुली भी जो जब्बारा ने ब्याह से पहले उनके यहाँ भिजवा दी थी। अब उसके पास कुछ भी नहीं था, कुछ भी नहीं। परन्तु फिर भी उसके हृदय में तथा होठों पर कोई शिकायत नहीं थी। कैसे होती ? जब्बार खुरो कोई बेगाना नहीं, उसका पति था। हाय ! कितना प्रेम था जब्बारा के प्रति उसका। यह सत्य है कि ब्याह के पूर्व उसने अपने पति के साथ आँख मिचौली का कोई खेल न खेला था, फुसियाँ न की थीं, वचनों का

ी' : पुष्करनाथ बी० ए०

प्रदान न किया था। परन्तु वह रात! वह कैसे भूल सकती थी, जब पहली बार हाथों में मेंहदी रचा कर और आँखों में काजल की हल्की लकीर खेचकर उसके सम्मुख आई थी—लजाती सी और कसमसाती सी। वह उन हाथों की कसमसाहट कैसे भूल सकती थी जिन हाथों ने बड़े चाव से उसके घूँघट को खोल दिया था। उसके हृदय पर उन आँखों की मस्ती कैसे चित्रित न होती, जिन आँखों ने पहली बार मादक ढंग से उसका स्वागत किया था।

यह सारी स्मृतियाँ जब्बारा से ही तो जुड़ी हुई थीं।

लेकिन·····।

यह गालों का मीठा मीठा दर्द?

यह पलकों की सूजन?

यह कलाई का मरोड़?

उसने एक हाथ से अपने गाल को छूकर देखा और तिलमिला उठी—यह सब बातें भी 'जब्बारा' से ही सम्बन्धित थीं।

...क्या...?

गा-श्री ने और कुछ सोचने की कोशिश नहीं की। कैसे करती?

हृदय में, आँखों में, प्रणय का नशा हो; सिर में स्मृतियों का सौदा हो तथा गालों पर प्रिय की कठोर उंगलियों के निशान हों तो कोई ऐसी बात सोच कैसे सकता है? उसके पग ट्राउट वाली नदी की पगडंडी पर द्रुत गति से उठने लगे। चारों ओर नदी का धीमा-धीमा शोर बिखर रहा था। परन्तु इस शोर में कोई संगीत न था। उसे इस निर्जनता में कोई भय नहीं लग रहा था।

जाने क्यों? चलते चलते वह रुक गई? वह कहाँ जा रही है? यह रसिल चाचा के घराट तक जाकर है। वह रसिल चाचा से पैसे सकती है? क्या वह और जब्बार ही रसिल चाचा के बूढ़े सवार नहीं थे? माना कि रसिल उसका बाप है और जब्बार रसिल चाचा का जामाता है। परन्तु यह भाव है जो एक ब्याहता बेटी को के सामने फैलाने का सख्त विरोध है? यह कैसा संघर्ष था जो उसके में हलचल मचा रहा था! आत्म

लेकिन आत्म सम्मान और गांव की भोली लड़की—अनपढ़, इन चार वर्षों में उसने कई बार का अनुभव किया था। परन्तु प्रत्येक स्त्री के हृदय में ऐसा ही सं होगा। इन चार वर्षों में उसने तीव्रता से चाहा था कि उनका अलग घर बन जाए और कुछ खेत खेतों में पौदों की अनबेनी और! मगर पाँच रुपए!

इस संघर्ष की चिन्ता किया वह द्रुत गति से चलने लगी। गहन था। पगडंडी ऊबड़खाबड़ थी। पर जानती थी कि इस पगडंडी पर है, कहाँ खड्ड है, कहाँ उतार है, कहाँ

इस पगडंडी पर तो वह खेलती आई थी।

घराट की झोंपड़ी में रसिल अपनी गुदड़ी में घुस गया था।

हुआ मिट्टी का दीया भी फूंक मार
। दिया था। उसे नींद नही आ
। जाने इसका कारण उसका बुढ़ापा
ा कुछ और। वह अँधेरे में लेटे-लेटे
ा शोर सुन रहा था और बस।
किसी ने घरौंदे का द्वार खटखटाया।
ानता था, गा-श्री होगी। उसने
उठकर आले में रखा दीया जलाया
र द्वार खोल दिया।
र दहलीज पर गा-श्री खड़ी थी।
। ? गा-श्री ? मैं समझता था तुम
र ही रहोगी ?'
ैं बाबा।' गा-श्री ने हाफते हुए
र साथ ही आ गई। गा-श्री पैदा
समय से लेकर आज तक इस
से परिचित थी। कितनी लड़कियाँ
बाद एक दूसरी दहलीज को
ाती हैं। और कुछ लड़कियाँ गा-
ाँति बस एक ही दहलीज से बँधी
। और यह बड़ी विचित्र बात है—
आदमी स्वप्न ही क्यों देखता है।
। भी स्वप्न में एक नई दहलीज को
लेकिन तब तो वह इतनी बड़ी नहीं
इस स्वप्न को याद करके कई
थी उन दिनों और अब उसे
ीज पराई दिखाई दे रही थी।
कार खेत का टुकड़ा बनिए
धेकार में जाने से पराया हो
है। या जिस प्रकार मुर्गी
ार के खेत में पहुँचने के पश्चात्
ी जाती है। परन्तु…बंधन…
पुरानी मिट्टी और नई चिन्ताओं

का भी तो कोई अस्तित्व है। अन्दर आकर गा-श्री धड़ाम से फर्श पर बैठ गई। उसके गालों की पीड़ा, जिसे वह कुछ समय पहले भूल गई थी पुनः उभर आई।

'…खैर तो है बच्ची ?' बूढ़े ने चिन्ता-ग्रस्त स्वर में पूछा। गा-श्री ने सहानुभूति के इन शब्दों को सुन अपनी आँखों में एक उबाल का अनुभव किया। परन्तु उसने उबाल को बाहर न आने दिया। अपना दुख दर्द किसी पर प्रकट करने से क्या लाभ ? और फिर प्रश्न जब्बारा के अभिमान से सबंधित है।

'बाबा ! मुझे पाँच रुपए की सख्त जरूरत है।'

उसने सीधे ढंग से कहा। रसिल चाचा के चेहरे का तनाव कुछ ढीला पड़ गया कदाचित् उसे किसी भयानक बात की आशा थी। परन्तु पाँच रुपए ?

'मै समझ गया था गा-श्री कि तुम्हें उस खबीस के बच्चे ने भेज दिया होगा। वह कमीना अब तुम्हें इतना सताने लगा है। काश ! यह बात मुझे पहले से मालूम होती।'

'अब्बा तुम किस की बात कर रहे हो ? जब्बारा तुम्हारा दामाद है अब्बा।'

यह कैसा भाव है कि अपने प्रिय के सम्बन्ध में बुराई का कोई शब्द भी मनुष्य की सहनशक्ति की सीमाएं तोड़ डालता है। जाने यह गहराइयाँ दिल में कितनी गहरी उतर चुकी हैं।'

'रोना तो इसी बात का है बच्ची। वह कोई और होता तो खुदा की कसम…।'

'सुन रहा हूँ।' जब्बार खुरो नूर वट के तन्दूर से बोल उठा।

'अँगनाई में हमारे बच्चे खेलेंगे। द्वार पर बैलों की जोड़ी बँधी होगी। वैसी, जैसी रमजान नाथर के पास है। उफ! जब्बारा मैं आगे नहीं बोल सकती। हाय!! मगर हमें कल प्रातः पचायत घर पहुँचना होगा।'

गा-श्री का प्रस्तुत स्वप्न कोई नया नहीं था। इस स्वप्न ही को तो उसने अपने दिल की नर्म गर्म तहों में नीचे न जाने कब से सँभाल रखा था।

'चलोगे न पंचायत घर?'

'नहीं।' जब्बारा ने सिर झटक कर कहा।

'वहाँ जमीन बँटेगी जब्बारा, हमें वहीं तो भूमि मिलेगी। चलोगे न? तुम्हें मेरे सिर की कसम।'

गा-श्री ने इस एक वाक्य में अपने नेत्रों का समस्त जादू डाल दिया। अपने लम्बे बालों की समस्त महक भर दी अपनी मुहब्बत की सारी चाशनी भर दी। अपने स्वप्नों की समस्त रंगीनियाँ घोल दीं।

'मुझे नहीं चाहिए जमीन। नहीं... नहीं नहीं चाहिए।'

बहुत से क्षणों तक कुछ नहीं हुआ। फिर इन क्षणों के बीतने के पश्चात् गा-श्री को अनुभव हुआ जैसे किसी ने उसके हृदय की निचली तहों से उस स्वप्न को नोचकर बाहर निकाल दिया हो। परन्तु स्वप्न को कौन नोच सकता है, यह हँसी है—मात्र हँसी।

'तुम हँसी करते हो जब्बारा। ऐसी हँसी अच्छी नहीं लगती। ... हो, जमीन की हमें कितनी [illegible] है।' गा-श्री ने रुकते रुकते कहा।

'जमीन की आवश्यकता तुम्हें [illegible] मुझे नहीं है। तुम चाहती हो [illegible] चलाऊँ? टखनों तक कीचड़ [illegible] घुस कर नलाई करूँ। तपती धूप में [illegible] पौदे उगाऊँ! मुझे नहीं चाहिए [illegible] बस!' जब्बार खुरो गर्ज-गर्जकर [illegible] था। परन्तु गा-श्री का विश्वास [illegible] अडिग था। उसकी टाँगों में [illegible] छिड़ा था।

'तो फिर तुम्हें, क्या चाहिए!' [illegible] डरते-डरते पूछा।

'कुछ नहीं। मैं गन्दा किसान बनूँगा, बस! मैं मुर्दा तो हूँ [illegible] मजदूरी करने पंजाब भी न जा [illegible]।' स्वर में वही मेघ-गर्जना थी जो [illegible] बादलों में होती है।

'...और मैं कहाँ जाऊँगी!'

'बुड्ढे के पास चली जाना। [illegible] ठेका तो नहीं ले रखा है।'

'जब्बारा,' गा-श्री ने [illegible]

'मेरा पति बुड्ढा नहीं, तुम हो।'

'तब कोई और पति ढूँढ़ ले[illegible] लिये।'

एकाएक गा-श्री को अनुभव [illegible] किसी ने उसकी आँखों के [illegible] चादर तान दी हो। उसे ऐसा [illegible] जैसे उसके हृदय में जब्बार खुरो [illegible] हुए सारे घाव एक ही [illegible]

उके गालों पर जब्बार खुरो की कठोर
ों के निशान उभर आए। उसने
ग्न करके उस काली चादर को
आँखों के आगे से हटा दिया। उसने
आँखों से जब्बार खुरो की ओर
परन्तु वह हुक्के की नली मुँह में
र दूर अँधेरे की गहनता में झाँक
।

"जब्बारा !! तुम कब समझ पाओगे
तुम से कितनी मुहब्बत है। मुझे
कत पर कितना फ़ख्र है। मुझे
तों और घूँसों की मार से भी कमी
त नहीं रही। तुम समझते क्यों
जब्बारा ने एक क्षण के लिए गा-श्री
वों में देखा। और साथ ही उसकी
र्ग लहू उतर आया। घृणा की तेज
पड़ी। गा-श्री के गालों पर पुनः
भर उठीं।

मुझे किसान बनाना चाहती है?
बनूँगा वह। तू धरती के स्वप्न
मैं इस पर लानत भेजता हूँ। तू
की बात करती है, मैं खुली हवा में
पसन्द करता हूँ। तुझे मुझसे प्रेम
तुझसे घृणा करता हूँ। समझी?
हरामजादी।'

ने दूसरा थप्पड़ मार दिया।

र जब उसने तीसरा थप्पड़ मारने के
थ उठाया तो गा-श्री ने उसका हाथ
या।

मुझे यूँ नहीं मार सकता, जब्बारा।
श्री मर गई जो तेरी मार बर्दाश्त

किया करती थी। मुझे तेरी बातों से और
तेरे इन ख्यालात से नफ़रत है। मुझे
तुझसे . . हाँ तुझसे भी नफ़रत है।'

यह बाँध, यह चिर समय से रुका हुआ
विद्रोह का पानी यह शताब्दियों का दबा
हुआ लावा, यह वर्षों की दबी हुई आग एक
ही क्षण में भड़क उठी।

'मैंने तेरी विषैली बातों को सहन
किया। मैंने तेरे लिये अपने सारे आभूषण
और कपड़े त्याग दिए। मैंने तेरे साथ
रहकर भूखे पेट लम्बी रातें बिताईं····'

उसका गला रुँध गया।

यह तुम क्या कर रही हो गा-श्री!
यह तुम्हारी आँखों में ज्वाला की लपटें
क्यों? यह तुम्हारे दिल में भूचाल कैसे
हैं? यह तुम्हारे यौवन का ताण्डव
नृत्य कैसा है? क्यों न हो? मैंने जिसके
लिए दुनियाँ भर के अपमान सहे उसने
एक ही लमहे में मेरी झोंपड़ी में
आग लगा दी जो हम दोनों की थी। उसने
एक ही झटके में मेरे धान के पौदों को
उखाड़ फेंका, जो हम दोनों के थे। उसने
एक ही प्रहार से मेरे बच्चों के गले काट
दिये, जो हम दोनों के थे... ।

यह तुम्हारा आखिरी आश्रय था
गा-श्री! यह तुम्हारी अन्तिम बाज़ी (चाल)
थी और तुम यह बाज़ी हार गईं, गा-श्री तुम
यह बाज़ी हार गईं। अब तुम्हारे पास आशा
भी नहीं, आश्रय भी नहीं, कुछ भी नहीं।
उसने जब्बार खुरो का हाथ झटके से छोड़
दिया।

वह तेज़ी से मचान से उतर गई।

'अब तू मुझे नहीं मार सकता। क्योंकि अब तेरा-मेरा कोई रिश्ता नहीं है।

स्वर तलवार की धार जैसा पैना था। यह जन्म-जन्म के बंधन ठुकरा कर कहाँ चली तू गा-श्री? कहाँ चली?! लेकिन वह तेज़ी से पगडंडी पर दौड़ गई।

थोड़ी ही देर के पश्चात् जब गा-श्री ट्राउट वाली नदी की पगडंडी की ओर तो...तो उसके हरे-भरे बसन्त का गया था। उसके यौवन का अतरेक मुर्झा गया था। उसके गालों के कुम्हला गए थे...वह...वह इन्हीं कुछ दायों के अन्तर में, मन के बीचोबीच उगे हुए उस ठूँठ की तरह, जो भिनभिना सा, नग्न आकाश के नीचे खड़ा था। * *

घाट पर मन्त्रणा

शिल्पी : इन्द्र...

'गा-श्री' : पुष्करनाथ बी...

ओ जानेवाले | अमृता प्रीतम

मुहब्बत कोई आदत तो नहीं
जो फिर नई पड़ सकती है
क्या कह सकूँगी इसके सिवा कि
ओ जानेवाले! यूँ न जा!
[illegible] मेरे जीवन की चाह है
[illegible] खाने-सा सत्य है,
[illegible] बात मैं कहूँ—तो फिर मानेगा तू इसे?
[illegible]तने बड़े सत्य को? चार शब्दों का बन्दी न बना
ओ जाने वाले! यूँ न जा!
[illegible] तुझे प्यार करती हूँ
[illegible]यों तेरा विश्वास माँगते
[illegible]रे इन शब्दों का सहारा?
विश्वास की हथेली पर जीवन की लकीर
क्यों जगह-जगह से यूँ टूट रहे किनारे!
[illegible]ार इक मौसम तो नहीं जो आके गुजर जायेगा
ओ जानेवाले! यूँ न जा!
मेरी टूटती हुई यह आवाज़
क्यों है तेरी दया मेरी मिन्नत की मुहताज
वफ़ा को क्या आज वास्ता देना पड़ेगा
शायद मुश्किल से ही मिलेगा वफा का सिला
[illegible]तने आनेवाले साल
[illegible]ने अनजाने ही धो डाले
[illegible]र दिए हैं स्याह अरमान, उसका
[illegible]झसे कोई गिला नहीं मेरी खता
पर अब तेरी पनाह
मेरे आनेवाले! यूँ न जा!

अनु[illegible]का : वरुशी

हमारी प्रार्थना | निमिष पाणिनी

ओ नदी !
अपना जल-रथ रोको ।
हमारा स्फटिक-सी आँखें-देखने के लिये रुक
हम फल नहीं देंगे, गंध नहीं, देंगे केवल हँसेंगे
भूरी और पारदर्शी हँसी !
हमारे चंदन-लिलार-चूमने के लिये रुको !

ओ नदी
अपना जल-रथ रोको !
हम अपनी नसें, पाँव और अनुभूति,-सच
सब कुछ यहीं छोड़ जायेंगे !
हम अपने आचमन भरे फेनिल मुखों से
तुम्हें चूमने को लालायित

ओ नदी !
हमारे पिघले हाथों की शैय्या पर रुको !
अब इस पूरे दिन में
पहाड़ियों की घरेलू आवाज में घुले
कुछ फूल ही लेलो
इन्हें समुद्र ठोस जल तक ले जाकर
हमें यात्रा-दीक्षा दो ।
ओ नदी रुको ।
अपना जल-रथ रोको ।

वैज्ञानिक मानवतावाद का यथार्थ

* इन्दुकान्त शुक्ल *

हिन्दी में वैज्ञानिक मानवतावाद (Scientific Socialism अर्थात्
समाजवाद से इसका कोई सम्बन्ध नहीं ।) का अवतरण भले ही नया
ता हो किन्तु इसकी ऐतिहासिक पीठिका एवं परम्परा अंग्रेजी तथा
रोपीय साहित्यों में सुरक्षित है । राजनीति, धर्म, साहित्य और जन-
यह परंपरा विविध नामों से, विभिन्न युगों में, प्रचलित रही है,
परवर्ती रोमैंटिक एवं डिकेडेंट साहित्यकारों की विरासत स्वरूप ।
हिन्दी में कभी कोई ऑस्कर वाइल्ड अपनी 'दे प्रोफंडिस' लिखेगा ही
ाज हम उस कृति और उसके कर्त्ता की कुछ ज्ञातव्य बातें उद्धृत कर
भ लें कि बुद्धि-विपर्यय से क्या-क्या रंगीन और परस्पर-विरोधी बातें
होती हैं । वाइल्ड उन्हीं दिग्भ्रात साहित्यकारों में से था जो संसार को
यक्ति में सीमित मानते हैं और इसलिए सासारिक विधि-निषेध को
ते में हेय समझते हैं । भले ही इसका परिणाम उनके अथवा देश-काल
अवांछनीय एवं अप्रिय हो ।
वाइल्ड का कथन है : "मैंने कला को दर्शन, और दर्शन को
ना दिया ।" वास्तव में उसने कलाबाज़ी को दर्शन और दर्शन को
ी का रूप देना चाहा था । और यह प्रयास एक जबर्दस्त प्रयोग
। "कला को मैंने सर्वोच्च वास्तविकता समझा और
को कल्पना का ही एक रूप । और इसीलिए "मैंने
व्यवस्थाओं का आकलन एक वाक्यखंड में और समस्त
का संक्षेप एक सूक्ति में कर दिया !" वाइल्ड का यह कथन
ौर असत्य का प्रवंचक सम्मिश्रण है । इसमें सत्य इतना ही है कि

उसने सूक्ति को साहित्य मान लिया और व्यक्ति को संसार। और यहीं असत्य भी उद्घाटित होता है। अपनी उक्ति और अपने जीवन से वह अभिभूत था कि उन्हीं को परम सत्य, परम साहित्य, परम वास्तविकता बैठा। क्या प्रयोगवाद के व्याख्याता इसी प्रवंचना के शिकार नहीं हैं!

"निरन्तर मूर्धन्य रहने से ऊबकर मैं जान बूझकर गिरा—नए प्रकार की संवेदना की खोज में। विचार-क्षेत्र में जैसे ... 'विरोधाभास' प्रिय था उसी प्रकार वासना-क्षेत्र में कदाचार। वाइल्ड का भ्रम बड़ा गहरा था। वह निरन्तर शीर्षस्थ रह ही नहीं सकता ... इसके लिए उसमें पात्रता न थी, गाम्भीर्य न था। चूंकि विचारों के क्षेत्र ... वह पैराडॉक्स (विरोधाभास) के चक्कर में रहता था अतः गंभीर चिन्तन ...

> **एक उपलब्धि**
>
> मानव-प्रकृति का जितना अधिक विश्ले... करते जाइयेगा, विश्लेपण के सारे तर्क और युक्तियाँ मिटते जायेंगे, आगे या पीछे ... को उस खतरनाक वस्तु का तो सामना ... ही पड़ता है जिसे कि 'मानव प्रकृति' कहते!
>
> ऑस्कर वाइल्ड

असमर्थ था। कुछ ही आगे उसने स्वीकार किया है: "मुझे जहाँ भी सुख मिला, मैंने लिया, और चल दिया।" 'जहाँ भी!' वह 'जहाँ भी' आगे एक वाक्य से वाइल्ड ही स्पष्ट करता है: "मैं संसार के उपवन के सभी वृक्षों के फल खाना चाहता था।" और ऐसों को कोई विधि-निषेध मान्य नहीं होता क्योंकि वाइल्ड कहता है: "मैं उन लोगों में हूँ जिनके लिए नियम ... अपवाद बने हैं।"

"जो अनुभूत है वही ठीक है।" वाइल्ड का यह आग्रह ... के मुख से ही शोभा देगा। जो अनुभूत है वह भोंडा भी हो सकता है, ... ही वह तथ्यपरक हो। अनुभूति का हर विषय श्रद्धेय नहीं हो सकता।

और इसी विचार-शृंखला में आगे वाइल्ड कहता है: "दु... सदृश अन्य कोई सत्य नहीं।" जहाँ साहित्य में सत्य को शिव और ... के समकक्ष रखा गया है, ब्रह्मानंद-सहोदर कहा गया है, वहाँ ... और सत्य को ही क्यों एक साथ लपेट रहा है? केवल उसी उल्टी ...

स्वरूप जिसमें उस हर काम को जायज समझा जाता है जो लोक-विरुद्ध, नीति-विरुद्ध, जनहित-विरुद्ध हो। और क्योंकि ऐसे निषिद्ध कृत्यों का दण्ड और दुःख में होता है अतः यही कृत्य सत्य हैं। अर्थात् जन की चेतना एवं भावनाकक्ष के विपरीत जो भी किया—सोचा जाय वही ! वाइल्ड और उनके चेलों को समाज से कोई मतलब नहीं। वे के लिए न थे अतः उन्हें अपने ही व्यक्ति में मानवता संचित दिखी इन पागल बातों के उत्तर में उन्होंने अपने को वैज्ञानिक मानवता का धि मानकर आत्मतोष कर लिया।

और इसी बुद्धि-क्षय का फल था कि वाइल्ड ने ईसा मसीह को भी च्च व्यक्तिवादी" कहा! ऐसा व्यक्तिवादी जिसने "तात्कालिक जीवन, वर्तमान क्षण की विशद महत्ता" का ही उपदेश किया! ईसा जीवन के शाश्वत मूल्यों के उपदेष्टा नहीं, क्षणार्ध के जीवन की परिपूर्णता के वकील थे! बस हमें इतना ही याद रखना आवश्यक है कि यह उस वाइल्ड की राय है जिसका मत था कि "सामान्य का बौद्धिक और भावनात्मक जीवन घृणास्पद होता है।"

> **एक अनुभूति**
>
> ो की असलियत का पता तो तभी ा है जब कि वह खानगी तौर से काम ा है, चूँकि उस वक्त दिखावट नहीं ; जब कि वह गुस्से में हो चूँकि तब ा कोरी सिद्धान्त-वादिता छूट जाती है, वह किसी नये मामले में या प्रयोग में हो चूँकि तब प्रथा उसका पिंड नहीं तो।
>
> —बेकन

जिसका भाव-जगत् इतना शून्य हो, या इतना सकुचित कि उसमें निजी त्व के सिवा और किसी व्यक्ति या वस्तु को स्थान ही न मिल सके, उसे इसे सुनकर अचरज में पड़ने की बात नहीं, "मैं तो कला, जीवन और ा में रहस्यमय की खोज में हूं।" अपने पास पड़ोस के, देश के जन- और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को त्यागकर अहंता की मरीचिका के पीछे वाले वाइल्ड को 'रहस्यमय' की खोज क्यों थी? कला के इस पुजारी ागू होनेवाली, प्लेखानोव की एक उक्ति उद्धृत कर देना पर्याप्त है: ा के लिए कला के सिद्धान्त को मानने की प्रवृत्ति कलाकार में उत्पन्न होती है जब उसका अपने समाज से असामंजस्य

रहता है।" और रहस्य की खोज वाइल्ड ही को नहीं, प्रत्येक [illegible] व्यक्ति को होती है। प्लैखानोव के अनुसार: "रहस्यवाद विवेक का कट्टर शत्रु है।" और विवेक से वाइल्ड को क्या मतलब!

वाइल्ड को थोड़ी देर छोड़कर उसी विचार और युग की एक कवियत्री ज़िनादा हिप्पियस के कृतित्व पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता उस समय रुग्ण-मानस जीवों और खंडित व्यक्तित्वों की जैसे बाढ़ आ गई। हिप्पियस कहती है: "क्या इस तथ्य के लिए हम दोषी हैं कि [illegible] 'अहं' आज एक व्यक्ति बन गया है, ऐसा अकेला अहं जो अन्य 'अहं-समुच्चयों' से विमुक्त है और इसलिए वे अहं-समुच्चय न उसे स[illegible] पाते हैं, न चाहते हैं?...हमें अपनी कविता चाहिए—यह ह[illegible] हृदय की क्षणिक पूर्णता का प्रतिविम्ब है।"

हिप्पियस की एक कविता की पंक्तियाँ हैं:

> मेरा पथ निर्दय है
> मुझे मृत्यु की ओर लिए जा रहा है
> परन्तु मैं अपने को उतना ही प्यार करती हूँ जितना ईश्वर को
> और प्रेम मेरी आत्मा को बचा लेगा।

प्लैखानोव कहता है: "इसमें संदेह है। कौन अपने को ईश्वर सा चाहता है? केवल एक असीम अहंवादी। और यह असंभव कि ऐसा अहंवादी किसी की आत्मा की रक्षा में समर्थ होगा।"

हिप्पियस की एक कविता है 'गीत':

> हाय, मैं ज्ञानशून्य उदासी में मर रही हूँ,
> मैं मर रही हूँ
> पता नहीं किस चीज की कोशिश में हूँ
> पता नहीं किस चीज की......
> और कहाँ से यह कोशिश उत्पन्न हुई मुझे पता नहीं
> कहाँ से यह उत्पन्न हुई
> परन्तु हृदय चाहता है कि कोई चमत्कार हो जाय,
> कोई चमत्कार हो जाय,
> अरे, ऐसा कुछ हो जाय जो कभी नहीं होता।

यह क्षीण आकाश मुझे कुछ देगा,
ऐसा लगता है कुछ देगा......
तथापि मैं आस्थाहीन संकल्प के आँसुओं बिना रोती हूँ
आँसुओं बिना रोती हूँ।
मुझे वह चाहिए जो इस संसार में नहीं है,
जो इस संसार में नहीं है।

अज्ञात दुःख, अज्ञात सुख, अज्ञात चमत्कार की खोज-रहस्यों की में ही उस समय बहुतों को भटकाए थी। जो समाज को कुछ नहीं उससे क्या पायेंगे ? वह तो आकाश से ही कुछ पा सकेंगे क्योंकि देने की उन्हें बाध्यता नहीं है। जब उन्हें उसकी खोज है जो इस नहीं है तब उन्हें इस दुनियाँ से क्या काम और आगे तो रहस्य-लोक केवाड़ें खुलती हैं। और आश्चर्य है कि इस रहस्य-लोक में ऍलिस-सी वी नहीं बल्कि प्रौढ़-वय साहित्यकार भटक रहे हैं। इस हिसाब से कला पर फ्लाबेयर का यह कथन, यद्यपि उनका मंतव्य तो कुछ और अक्षरशः सत्य है : "व्यर्थ की खोज ही कला है।"

ाइल्ड के मतानुसार, "वास्तविक कलाकार वह है जो किसी को रूप देने की चेष्टा न करके एक रूप में कोई विचार या व्यक्त करे।" और फिर : "जब हम असंगत बातें कहते हैं तभी ते हैं।"... "जो स्पष्ट है वह देखने योग्य नहीं है।" और न्त में : "हमें अपनी अनुभूति या पूर्णता के लिए जीवन से लेना चाहिए।"

जैसे मानवता के विद्रोही 'वैज्ञानिक' मानवता की परिकल्पना में व्यस्त से ही जगदतीत कला के स्रष्टा केवल अपनी वाणी पर ही मुग्ध होकर देना चाहते हैं। किन्तु उनका यह आग्रह पूर्णतया आपत्तिजनक है ह कहेंगे वही साहित्य होगा। क्योंकि वे सत्य बोलने के लिए 'असगत गे। सुन्दर बनाने के लिए वे स्पष्टता को तिलांजलि देकर रहस्य का वर्ण्य विषय पर चढ़ायेंगे। केवल किसी फॉर्म (रूप) या विधा पर कर ऐसे साहित्यकार जो वर्ण्य प्रस्तुत करते हैं वह शुद्ध वैयक्तिक होता

है, समाज से असंपृक्त, जन-जीवन से वियुक्त, कभी-कभी उसके विपरीत भी।

अपने व्यक्तित्व में संसार देखनेवाले और तदनुसार आचरण ... या तो जेल ही जाते हैं या फिर जड़ता और जटिलता के अवतार हो जाते ... वैचित्र्य एवं विशेषता की खोज में इन साहित्यकारों के हाथ केवल वैयक्तिक विशृंखलता तथा विघटन ही लग पाते हैं। बुद्धि-वैकल्य के कारण वे ... बातें कहते हैं। और इस सब का कारण है उनका अपने समाज, अपने ... के वातावरण तथा जीवन से वियुक्त रहने का दंभपूर्ण अभ्यास और ... और जब उन पर ये आरोप लगते हैं तब उत्तर के रूप में वे कहते हैं ... समकालीन मानवता भाड़ में जाय, हमें तो 'वैज्ञानिक' मानवता में आस्था ... क्योंकि इस नाम की कोई मानवता कहीं है ही नहीं। इस प्रकार ... कर्तव्य तथा दायित्व से जान बचाकर वैयक्तिक कुण्ठा और वर्जना में ... इन अहंवादी साहित्यकारों को परम्परा और परिप्रेक्ष्य से तो कुछ मिलता ... अतः ये 'प्रयोग' ही करने लगते हैं। प्रयोग तो वे हारकर शुरू करते ... क्योंकि परम्परा से भिन्न रहने के कारण वे उसके प्रसाद-स्वरूप ... संस्कृत-परिमार्जित नहीं हो पाते। और जब कोई सहारा उन्हें नहीं ... देता तो व्यक्ति-परक प्रयास के सिवा वे और कर भी क्या सकते हैं! ... प्रयास को पहले तो ससंकोच 'प्रयोग' के नाम से अभिहित किया जाता है ... बाद में ठीक, उससे उबर न पाने के कारण प्रयोग को एक वाद के रूप ... परिनिष्ठित किया जाता है। योरोप के प्रतीकवादी, प्रकृतवादी, ह्रासवादी ... इन्हीं अवांछनीय सीमाओं तक गए थे। इनके पितामहों में से ही ... जिन्होंने कहा था कि "दैत्यों की सृष्टि करके हम अनन्त को सन्तुष्ट ... करते हैं।"

भ्रम न रहे, एतदर्थ एक निवेदन और है। यह बहुत सही नहीं है और ... बारंबार यह पुनरुक्ति ज़िम्मेदार आलोचना में सह्य होनी चाहिये कि अब ... प्रयोगवादी और वैज्ञानिक मानवतावादी रोमैंटिसिज़्म से प्रभावित हैं। वे ... रोमैंटिसिज़्म से तो जरूर प्रभावित हैं, बल्कि उसी परम्परा में हैं, ... वर्णन और विश्लेषण इर्विङ्ग बैबिट ने अपनी प्रसिद्ध कृति "रूसो ... रोमैंटिसिज़्म" में किया है। परन्तु इनका मूल या प्रथम रोमैंटिसिज़्म ...

थ नहीं। यथार्थ से भी ये उतनी ही दूर हैं—यद्यपि स्वयं इनकी दृष्टि
से बड़े यथार्थवादियों का जन्म होना अभी बाकी है। तो, रोमैंटिसिज्म
ंध आलोचकों का उक्त भ्रम, तथा प्रयोगशील (नौसिखुओं?) लेखकों
यार्थपरक होने का भ्रम दोनों ही निराधार हैं। फ़ोक्स अपनी नवीन
"दि रोमैंटिक ॲसर्शन" मे लिखते हैं कि आधुनिक काव्य रोमैंटिसिज्म
र्थ ही छीछालेदार करता है, जितने उलझे हुए रूपक आज के काव्य में
ने रोमैंटिक काव्य में खोजने से भी न मिलेंगे। अर्थात् रोमैंटिक काव्य
आस्था, प्रीति का काव्य है और इसके कवि अरूप को रूपायित करने-
कलाकार हैं जिन्होंने मानव अनुभूति के विरोधी तत्त्वों से एक सुन्दर कृति
की—ऐसे पारंपरिक रूपकों से जो सर्वमान्य हैं, सुगम हैं, जैसे जीवन-
ात्रा अथवा प्रेम-रूपा झाँकी अथवा जगत्-रूपी सराय। मैथ्यू आर्नल्ड
टॉम्सन जैसे रोमैंटिक कवियों की असफलता का कारण यह है कि वे
रूपकों तथा तत्सम्बन्धी शब्दावली में सामंजस्य नहीं स्थापित कर सके।
हले कीट्स ने "ईव ऑफ़ सेंट ऍग्निस" में मृत्यु में भी प्रेम को
दिखलाया था, टॉम्सन ने "दि सिटी ऑफ़ ड्रेडफ़ुल नाइट" मे
ी व्यर्थता दिखाई। 'नयी कविता' तो कविता के सम्बन्ध में कविता
में अभिव्यक्ति के रूप (टेकनीक) अधिक मूल्यवान् हैं, महत्त्व के हैं,
पीछे कैसी अनुभूति है यह नहीं।

अतः वैज्ञानिक मानवतावाद के यथार्थ उपकरणों को समझने में हमें
सी प्रकार का भ्रम या संदेह न रहना चाहिए। विश्वामित्र ने भी प्रयोग
सृष्टि खड़ी कर दी थी लेकिन यह तो उन्हीं से पूछना चाहिये कि वह
कितनी पूर्ण थी या परितोष-प्रद।

यह विषय अभी काफ़ी विवाद-पूर्ण है। नयी कविता और प्रयोगवाद के बारे में अनेक
ायाँ है, अनेक अध पके मन मस्तिकों के उद्गार दुरूहता का जामा पहन कर सामने भी
है।

'नयी कविता' और 'प्रयोगवाद' के समर्थकों के विचार प्रकाशित करने में भी प्रसन्नता
अतः हम ऐसे लेख सहर्ष आमन्त्रित करते हैं। —सम्पादक)

न्त शुक्र

धारा के साथ

एक धारा बह चली है
और उसके साथ हम भी बह चले हैं।

बह चले हैं
क्योंकि पल भर भी रुके रहना नहीं स्वीकार है हमको
गलत हैं
हमको अकेले बिन्दु भर बस मानते हैं जो।

बिन्दु हम हैं
पर सजल भी हैं
सरल हैं
साथ हैं
प्रतिपल परस्पर हैं
नहीं है अन्य हमको यह प्रबल धारा
अरे यह तो हमारे ही किए है
—अब हमारे ही लिए है
हम इसे गतिमय बनाते हैं
इसी की प्रगति में अनवरत बहते चले जाते हैं।

हमें जो रोकते हैं वे हमें नूतन दिशाएँ ही दिखाते हैं
अधिक गतिवान् ही हमको बनाते हैं
हमारी प्रबलता को और भी उद्विग्न करते हैं, जगाते हैं;
सदा हो हम यथासंभव नया पथ खोज लेते हैं
मगर अवरोध जब हमको विवश करते
नहीं तब हम हिचकते
लांघ जाते, काट देते
पूर्ण कर देते
लिए बहते, बहाते

बढ़े चलते
चले जाते हैं
नहीं अवरोध हम को रोक पाते हैं।

कठिन चट्टान को हम यह सिखाते हैं
कि तुम पत्थर नहीं, तुम सिर्फ बालू हो
कि हम पानी नहीं, मजबूत लोहा हैं
तपस्या ने हमें सामर्थ्य दे दी है।

हरे मानस सदृश गंभीरताओं से
विचरते हुए नभ की ओर नदी-सी
छल-रहित मानव चरित्र-विकास के उपमान-सी पावन
अगम ऊँचाइयों पर हम
धरा के स्थूल साधारण जगत का पाठ पढ़ते हैं
तभी ऊँचाइयों को सफल करने के लिए इस ओर बढ़ते हैं
प्रगति का रूप गढ़ते हैं।
हमारा साथ जो देते
न वे नीचे लुढ़कते
बल्कि ऊँचे और चढ़ते हैं
क्योंकि गति संसर्ग में आकर
सभी अपवित्र पवित्र बनते हैं।

किन्तु फिर भी हम यही कहते—
हमारा क्या
ऐसी तो सिर्फ धारा है
रहे बहते हमारी कामना है
हम परस्पर हैं
हमारा सतत आत्मनिषेध है
गति में विसर्जन है
हमारा यही नारा है—
एक धारा बह चली है
और उसके साथ हम भी बह चले हैं।

ओंकारनाथ श्रीवास्तव

कलकत्ता और कॉफी हाउस

पवित्र कुमार घोष

इस युग में अगर कॉफी हाउस का प्रसंग हो तो आधुनिक समाज का समाज-तात्त्विक विश्लेषण अधूरा ही ... हम यहाँ नमूने के तौर पर कलकत्ता और कलकत्ते के ... हाउस की ही चर्चा करते हैं।

नागरिक मनुष्य का मन अपने एक-रस कर्म-व्यस्त ... प्रायः इतना थक जाता और ऊब उठता है कि उसे ... खोज करनी ही पड़ती है। चिड़ियाखाना, जादू-घर, ... मेमोरियल तो पुराने पड़ गये। थियटर, सिनेमा और ... उत्सव-अनुष्ठान भी जब कोई नया मनोरंजन नहीं ... मध्य-वित्त लोग शहर से बाहर चले जाना चाहते हैं। ... निर्वासन उनके मन-प्राण में एक नयी ताजगी, एक ... शक्ति भर देती है।

किन्तु इस तरह ... यात्रा तो रोज नहीं ... सकती। छुट्टी के दिन ... कुछ ऐसी पारिवारिक ... विवशताएँ होती हैं कि ... छुट्टियाँ हमेशा बाहर ... नहीं बिताई जा सकतीं ... फिर भी आनन्द तो ... को चाहिए ही।

इस आनन्द के भी कुछ रूप-भेद हैं। वन-उपवनों में ... घूमकर प्राकृतिक दृश्य देखने अथवा शिकार करने में एक ... की आनन्द-प्राप्ति होती है, और किसी अनात्मीय ... दायित्व-हीन जीवन-यापन करने में दूसरी तरह की। ... नागरिक व्यक्ति का मन इतने से नहीं भरता। वह संघर्ष ... पसन्द करता है, किन्तु संघर्ष सिर्फ जान्तव न हो, ... हो, आत्मा का हो। वह खो जाना चाहता है, किन्तु ... गहन वन में नहीं, मतवाद और भावादर्शों को ... उसे आनन्द आता है पराजित करने में, किन्तु ... को नहीं, अपने विरोधी बंधुओं को जीत सकने में। ... वह रोज जहाँ जाना चाहता है, वह कोई ...

ल ग्राम नहीं है, वह है एक अत्यन्त निरीह स्थान,
स।

ी हाउस में व्यवसाय-वाणिज्य अथवा पारिवारिक
ों पर चर्चा नहीं होती हो, सो बात नहीं; किन्तु
ाउस के वैशिष्ट्य और सामाजिक गुरुत्व के कारण
लग हैं।

ी हाउस का सबसे बड़ा आकर्षण कॉफी नहीं है। यहाँ
तः खाने-पीने नहीं आते। खाने-पीने की चीजें तो
वरूप खरीदनी पड़ती हैं। आखिर घण्टों एक टेबल पर
ा दाम तो चुकाना ही पड़ेगा! कॉफी हाउस की प्रमुख
तो यह है कि यहाँ किसी भी विषय पर लोगों को
र बातें करने
मिलता है।

नेक समाज में
की निःसंगता
वली जाती है।
में व्यक्ति को
नियम-कानूनों
कसकर जकड़
ा था कि उसके

प्रारम्भ मे सिर्फ प्रचार के उद्घाटित कॉफी हाउस बड़े शहरों सामाजिक जीवन मे अब अनिवार्य बन गये हैं। किन्तु......

"आज का कॉफी हाउस जन-सभा का ही एक छोटा संस्करण है; राजनैतिक दल का मन्त्रणा-क्षेत्र और जैसे किसी अमुद्रित-अलिखित समाचार-पत्र का प्रथम पृष्ठ!"

व्यवहार और नीतियों में कोई स्वकीयता नहीं थी।
को देखने की उसकी अपनी कोई दृष्टि नहीं थी, और
जब मनुष्य को ग्लानिकर लगी तब उसने समाज से
दिया, और स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में आत्म-प्रतिष्ठित
। इसीलिए व्यक्ति ने अपने विकास के लिए, अपनी
लिए, ग्राम को नहीं, नगर को केन्द्र बनाया।
न्देह नहीं कि नगर की सृष्टि बुर्जुआ वर्ग ने की
समाजशास्त्री सोरोकिन ने नवोदित वस्तुवाद की
ल भी इसे ही बताया है। इस वस्तुवाद की अनेक
में एक प्रमुख विशेषता यह है कि वस्तुगत अथवा
भ-नुकसान का विचार ही इस युग की धर्म-मर्यादा
युग की संतान मार्क्स और फ्रेडरिक एंगिल्स ने

अपने Manifesto oft he Communist Party में इस वर्ग की शक्ति के बारे में मत प्रकट करते हुए कहा है —

"It has accomplished wonders for surpassing Egyptian pyramids, Roman aqueducts, and Gothic cathedrals it has conducted expeditions that put in the shade all former Exoduses of nations and Crusades."

किन्तु इससे यह समझना भूल होगी कि इसका शक्ति सभ्यता का जय-यात्रा को आगे बढ़ाने में लगी है। इसकी शक्ति और चेतना तो सर्वदा इसके लाभ और मुनाफे में ही लगी है।

ऊपर लिखी गयी बातों का आशय यह है कि कलकत्ते की संस्कृति के इतिहास से उनका ही सीधा सम्बन्ध है। सामन्त प्रभुओं और बूर्जुआ वर्ग के संघर्ष के फलस्वरूप ही कलकत्ते की संस्कृति पूरी तरह बूर्जुआ-संस्कृति नहीं हो सकी। उस समय के परिचय-स्वरूप कई नाम मिलते हैं— 'तालुकदारी कल्चर', 'बाबू कल्चर' और 'दस्तूरकल्चर'। और सचमुच, लगता है कि 'कलकत्ता-कल्चर' जैसे आधा मर्केण्टाइल, आधा कैपिटलिस्ट, और आधा फ्यूडल उपा-

---

काफी क्या काफी नहीं!

शैतान की तरह काली, नरक की तरह गर्म, देवता की तरह पाक और मुहब्बत की तरह मीठी काफी बनाइये! —तैलैराँ

दानों से बिना है।

हमारे देश में जिन धनी व...
मानव-विरोधी यान्त्रिकता का...
इन लोगों की दृष्टि सूक्ष्म नहीं थी,
का मन संवेदनशील नहीं था...
देश के गरीब निम्नवर्ग से ...
वर्ष का सोना लूटने, धनी ...
बनने की अपनी वासना ...
और इस यान्त्रिकता का ...
कलकत्ता। अगर इस शहर को H...
tally देखा जाय तो ...
दक्षिण और पूरब-पश्चिम ...
तो मिलेंगी किन्तु Vertica...
पर इसकी कहीं भी कोई ...
नहीं मिलेगी। इस तरह देखने ...
जैसे इस कलकत्ता शहर में ...
छिपे हैं। साहब पाड़ा, ...
मुसलमान पाड़ा, ताँती पाड़ा, ...
बनिया पाड़ा आदि देखे ...
अलग-अलग एक स्वतंत्र शहर हों। ...
शहर के जीवन-समुद्र में अगर ...
डुबकी लगाने की चेष्टा करें ...
नीचे ही डूबता चला जाता। ...
के नीचे जमीन नहीं मिलेगी। ...
का स्तर ही ऐसा है कि ...
रोड के किसी सामने मकान ...
खड़े होकर अगर कोई ...
शिराओं में उस ...
बजने वाले सुर की प्रतिध्वनि ...
है, तो इसके बिलकुल ठीक ...
पास बराबर बादशाह ...
हैं। एक तरफ तो ...

ी तरफ गहन अंधकार का
' आदमी 'कॉड-कुँई, कॉड-
;आ किसी तरह जी रहा है;
र मरने में अभेद प्रकृति का
पी का है; और ऐसे ही स्तर
षेक हैं।

है कि कलकत्ते का जीवन
ाथों से भरा है किन्तु इसका
श्य है—इसकी ३० स्क्वायर
रक आदमी को साधारणतया
ने के लिए ३० स्क्वायर फूट
ाह मिलती है जबकि प्रत्येक
क क्षेत्रफल २० स्क्वायर फूट
। और इसीलिए कलकत्ते
के माथे पर कुछ कमल के
मी समाज के सम्पूर्ण जीवन
कर्दम-मयता अस्वीकृत नहीं
। यहाँ स्थापत्य शिल्प का
ानव-जीवन के ध्वंस पर होना
ी अगर किसी के मुख से
ा-गान उच्चारित होता है तो
ै के शब्दों में स्वीकार करना

ult of death It subor-
to organised distruction,
ıst, therefore, regiment,
onstrict every exhibition
: and Culture Result:
'sis of all the higher
f Society: Truth shorn
d to fit the needs of
ı: the organs of
on stiffened into a reflex
system of obedience: the order of the drill sergeant and the bureaucrat. *Such a regime may reach* unheard of heights in external Co-ordination and Discipline, and those who endure it may make superb Soldiers and juicy Cannon-*fodder, but it is for the same reason* deeply antagonistic to every valuable manifestation of life."

और इसी विचित्र शहर, कलकत्ते में प्रतिकूल अवस्थाओं की छाती फाड़कर जीवन बीच-बीच में आत्म-प्रकाश करना चाहता है। रोज-रोज की एक-रसता, अब सहन नहीं होती, बँधे हुए रास्तों से अब कलकत्ते के आदमी को संतोष नहीं होता तो वह पागल होकर उल्लास-आनन्द का एकाध-क्षण खोजने निकलता है। यह आनन्द भी उसे विभिन्न और विचित्र उपादानों से मिलता है। कभी वह किसी अद्भुत घटना की खबर सुनने में पागल है, कभी किसी नये फैशन की लहर में बह रहा है, कभी बुलगानिन-क्रुश्चेव की अभ्यर्थना के पीछे पागल है, कभी अभिनेता-अभिनेत्रियों के पीछे चलनेवाली भीड़ में शामिल

मानवीय कर-स्पर्श

हमें एक ऐसे सहृदय की सदा जरूरत रहती है जो हमें समझता है, और उस हार्दिकता की, उस जीवन्त हार्दिकता को भी जो आदमी के हाथों में होती है।

—टामस कर्टिस हार्क

है; जैसे यह पागल होना और निर्द्वंद बह जाना ही सब कुछ है, उपादान और कारण गौण। आत्म प्रकाश की यह स्थिति उज्ज्वल नहीं, म्लान है, विवर्ण है।

आधुनिक मनुष्य के आत्म-प्रकाशन का एक दूसरा पहलू भी है। वह जानना चाहता है, समझना चाहता है। दैनन्दिन जीवन की पीड़ा से थोड़ा ऊपर उठकर इसी जीवन धारा की ओर दृष्टिपात करना चाहता है। समाचारपत्र का नशा, मासिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का नशा, पृथ्वी तथा मनुष्य का अतीत और आज की अवस्था जानने की इच्छा आधुनिक मनुष्य की विशेषता है। इसीलिए चिड़ियाखाना में जीव-जन्तुओं के दर्शन के बाद वह ज्ञान-विज्ञान की सूचना लेने जाता है नेशनल लाइब्रेरी; इसीलिए आधुनिक चित्रकला-निकेतन के पास आजकल स्थापित होता है जादूघर, जहाँ प्राचीन वस्तुओं का संचय है, जहाँ मनुष्य का अपना अतीत है।

आधुनिक मनुष्य की ये दो भूखें, एक उसके प्राण की भूख, दूसरी उसके मन की भूख, दो अलग प्रकृति के संगठनों द्वारा तृप्त की जाती हैं। राजपथ जुलूस, जनसभा और राजनैतिक पार्टियों द्वारा उसके प्राण की भूख मिटती है, और उसके मन की भूख उसकी संस्कार-सृष्टिकी वासना मिटाने का दावा लेकर आया है यह 'कॉफी हाउस'। इसीलिए कॉफी हाउस में जो लोग आते हैं

कॉफी राजनीतिज्ञों को भी बुद्धिमान बना देती है। —कविवर पोप

यदि आप अपनी समझदारी बढ़ाने ... हैं तो कॉफी पियें। —सिडनी ...

वे कॉफी पीने नहीं आते और न ... परामर्श करने ही आते हैं; वे यहाँ ... चिन्तन करने, वह भी मुखर चिन्तन ... एक-एक टेबल पर एक-एक, अलग ... गोष्ठी जमती है। वे लोग बात करते ... सोचने लग जाते हैं और सोचने-सोचते ... बातचीत का सूत्र पकड़ लेते हैं। ... पर हाथ पटककर बातचीत बहुत ... है; यह विशेषता तो चाय की दु... है। कॉफी हाउस में सस्ती रा... चर्चाओं के लिए स्थान नहीं है, यहाँ ... साहित्य और विश्व-दर्शन ही मुख्य ... हैं। यहाँ की बातचीत में उत्ताप है, ... नहीं; एक वस्तु को समझने-समझाने ... चेष्टा है, किसी पर लादने का प्रयत्न ... इसका कारण यह है कि यहाँ जिस ... का जिस किसी से परिचय नहीं ... जाने-पहचाने कुछ समानधर्मा लोगों ... गोष्ठी यहाँ जमती है और फलस्वरूप ... की गुञ्जाइश बहुत कम होती है। ... परस्पर का एक दूसरे के विचारों में ... होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त ... जो लोग आते हैं, वे समझते हैं कि ... कल्चर्ड वातावरण में आए हैं, ... बोध उनके उनके अहम् को ... और इसीलिए कॉफी हाउस की ... भीड़ में कोई उत्तेजित कोलाहल ... पड़ता। कॉफी हाउस जनसभाओं ... किसी नारे को प्रश्रय नहीं देता, ...

के नारों का विश्लेषण अवश्य

ॉफी हाउस, कलकत्ता जैसे महा-
' आदमी हर क्षण नाम-हीन,
और नीरस जीवन जी रहा है,
का आश्वासन देता है। 'जन-
शब्द के नीचे व्यक्ति का जो
रिचय खो गया है, उसके पुनरुद्धार
जगाता है यह कॉफी हाउस।
कल-कारखानों के काले धुँए
आकाश, पैरों के नीचे विपाक्त
नालियाँ और बीच में पिसता
का मनुष्य! इस स्थिति को
करने का साहस पैदा करता है
हाउस। और, कौन जानता है
के हाथों पराजित आधुनिक मनुष्य
ज्ञान-अंगूठी कहीं कॉफी हाउस में
नी हो?

लेखक के शब्दों में : कलकत्ते में
ी हाउस का युग है। पोस्ट ग्रैजुएट
छात्र-छात्राओं को Vanity को
गता है, अगर उन्हें किसी पुराने
बैठने के लिए कहें। बुद्धिवादियों
तो बिना कॉफी की गन्ध के
ही नहीं है, और पॉलिटिकल
मी बिना इसके सीरियस नहीं
। गोया कलकत्ते का कल्चर अभी
उस को केन्द्र बना कर 'ग्रो' कर

गत और अच्छी बातचीत सद्गुण
ाने हैं। —इज़ाक वाल्टन

रहा है। यह कॉफी हाउस कलकत्ते के अवरुद्ध जीवन को गति देने का प्रयत्न करता है, इसी में उसका समाजतात्विक महत्व है।

'कॉफी हाउस' का एक और विशेष पहलू है, इसके अभाव में 'कॉफी हाउस' की चर्चा अधूरी रह जायगी। 'कॉफी हाउस' के चारो ओर कलकत्ता शहर ने एक सर्व-ग्रासी जाल फैला रखा है, और यह सहज ही कॉफी हाउस के अभियान को सार्थक नहीं होने देगा। यह जाल है, लोगों का यान्त्रिक रूप से सम्पूर्णतः जनता-धर्मी होना।

There is never a bond, old friend, like this,—
We have drunk from the same Canteen.
—Chales Graham Halpine

कलकत्ते का औसत आदमी जुलूस में रहकर भी यह अनुभव करता है कि वह बाहर खड़ा एक दर्शक है, और वह इस निःसंगता-बोध से परित्राण पाना चाहता है वह व्यक्ति के रूप में आत्म-प्रतिष्ठित होना चाहता है और साथ ही समाज के सृजनशील बंधन में भी बँधा रहना चाहता है। एक ऐसा समाज हो जहाँ मैं सब को पहचानूँ और सब मुझे; जहाँ जनता की भीड़ में परिचय-हीन रह कर खो न जाऊँ। इसीलिए 'कॉफी हाउस' में अलग-अलग गोष्ठियाँ हैं, जहाँ निस्सन्देह उन्हें नये जीवन का आभास और मुक्ति का स्वाद मिला है। 'कॉफी

है; जैसे यह पागल होना और निर्द्वंद्व बह जाना ही सब कुछ है, उपादान और कारण गौण। आत्म प्रकाश की यह स्थिति उज्ज्वल नहीं; म्लान है, विवर्ण है।

आधुनिक मनुष्य के आत्म-प्रकाशन का एक दूसरा पहलू भी है। वह जानना चाहता है, समझना चाहता है। दैनन्दिन जीवन की पीडा से थोड़ा ऊपर उठकर इसी जीवन धारा की ओर दृष्टिपात करना चाहता है। समाचारपत्र का नशा, मासिक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों का नशा, पृथ्वी तथा मनुष्य का अतीत और आज की अवस्था जानने की इच्छा आधुनिक मनुष्य की विशेषता है। इसीलिए चिड़ियाखाना में जीव-जन्तुओं के दर्शन के बाद वह ज्ञान-विज्ञान की सूचना लेने जाता है नेशनल लाइब्रेरी; इसीलिए आधुनिक चित्रकला-निकेतन के पास आजकल स्थापित होता है जादूघर, जहाँ प्राचीन वस्तुओं का संचय है, जहाँ मनुष्य का अपना अतीत है।

आधुनिक मनुष्य की ये दो भूखें, एक उसके प्राण की भूख, दूसरी उसके मन की भूख, दो अलग प्रकृति के संगठनों द्वारा तृप्त की जाती हैं। राजपथ जुलूस, जनसमा और राजनैतिक पार्टियों द्वारा उसके प्राण की भूख मिटती है, और उसके मन की भूख उसकी संस्कार-सृष्टिकी वासना मिटाने का दावा लेकर आया है यह 'कॉफी हाउस'। इसीलिए कॉफी हाउस में जो लोग आते हैं

कॉफी राजनीतिज्ञों को भी बुद्धिमान बना देती है। —कविवर पोप

यदि आप [illegible] हैं तो कॉफी पियें। —सिडनी

वे कॉफी पीने नहीं आते और न [illegible] परामर्श करने ही आते हैं; [illegible] चिन्तन करने, वह भी सुन्दर [illegible] एक-एक टेबुल पर एक-एक, [illegible] गोष्ठी जमती है। वे लोग बात [illegible] सोचने लग जाते हैं और सोचने-सोचते बातचीत का सूत्र पकड़ लेते हैं। [illegible] पर हाथ पटककर बातचीत बहुत [illegible] है; यह विशेषता तो चाय की [illegible] है। कॉफी हाउस में सस्ती [illegible] चर्चाओं के लिए स्थान नहीं है, [illegible] साहित्य और विश्व-दर्शन ही [illegible] हैं। यहाँ की बातचीत में उत्ताप है, [illegible] नहीं; एक वस्तु को समझने-समझाने [illegible] चेष्टा है, किसी पर लादने का प्रयत्न [illegible] इसका कारण यह है कि यहाँ [illegible] का जिस किसी से परिचय नहीं [illegible] जाने-पहचाने कुछ समानधर्मा होने [illegible] गोष्ठी यहाँ जमती है और फलस्वरूप [illegible] की गुञ्जाइश बहुत कम होती है। [illegible] परस्पर का एक दूसरे के विचारों में [illegible] होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त [illegible] जो लोग आते हैं, वे समझते हैं कि [illegible] कल्चर्ड वातावरण में आए हैं, [illegible] बोध उनके उनके महत् को [illegible] और इसीलिए कॉफी हाउस की [illegible] भीड़ में कोई उत्तेजित कोलाहल सुनाई [illegible] पड़ता। कॉफी हाउस जनसभाओं [illegible] किसी नारे को प्रश्रय नहीं देता, [illegible]

ह के नारों का विश्लेषण अवश्य
।

कॉफी हाउस, कलकत्ता जैसे महा-
जहाँ आदमी हर क्षण नाम-हीन,
न और नीरस जीवन जी रहा है,
क का आश्वासन देता है। 'जन-
।' शब्द के नीचे व्यक्ति का जो
परिचय खो गया है, उसके पुनरुद्धार
गा जगाता है यह कॉफी हाउस।
ऊपर कल-कारखानों के काले धुँए
छन्न आकाश, पैरों के नीचे विषाक्त
री नालियाँ और बीच में पिसता
लकत्ते का मनुष्य! इस स्थिति को
न करने का साहस पैदा करता है
फी हाउस। और, कौन जानता है
य के हाथों पराजित आधुनिक मनुष्य
मेशान-अंगूठी कहीं कॉफी हाउस में
खेगी हो?

क लेखक के शब्दों में : कलकत्ते में
कॉफी हाउस का युग है। पोस्ट ग्रैजुएट
के छात्र-छात्राओं को Vanity को
लगता है, अगर उन्हें किसी पुराने
में बैठने के लिए कहें। बुद्धिवादियों
ाम तो बिना कॉफी की गन्ध के
ही नहीं है, और पॉलिटिकल
ुस भी बिना इसके सीरियस नहीं
ं। गोया कलकत्ते का कल्चर अभी
हाउस को केन्द्र बना कर 'ग्रो' कर

संगत और अच्छी बातचीत सद्गुण
ने-वाले हैं। —इजाक वाल्टन

रहा है। यह कॉफी हाउस कलकत्ते के अवरुद्ध जीवन को गति देने का प्रयत्न करता है, इसी में उसका समाजतात्विक महत्व है।

'कॉफी हाउस' का एक और विशेष पहलू है; इसके अभाव में 'कॉफी हाउस' की चर्चा अधूरी रह जायगी। 'कॉफी हाउस' के चारों ओर कलकत्ता शहर ने एक सर्व-ग्रासी जाल फैला रखा है, और यह सहज ही कॉफी हाउस के अभियान को सार्थक नहीं होने देगा। यह जाल है, लोगों का यान्त्रिक रूप से सम्पूर्णतः जनता-धर्मी होना।

There is never a bond, old friend,
like this,—
We have drunk from the same
Canteen.

—Chales Graham Halpine

कलकत्ते का औसत आदमी जुलूस में रहकर भी यह अनुभव करता है कि वह बाहर खड़ा एक दर्शक है, और वह इस निःसंगता-बोध से परित्राण पाना चाहता है वह व्यक्ति के रूप में आत्म-प्रतिष्ठित होना चाहता है और साथ ही समाज के सृजनशील बंधन में भी बँधा रहना चाहता है। एक ऐसा समाज हो जहाँ मैं सब को पहचानूं और सब मुझे; जहाँ जनता की भीड़ में परिचय-हीन रह कर खो न जाऊँ। इसीलिए 'कॉफी हाउस' में अलग-अलग गोष्ठियाँ जहाँ निस्सन्देह उन्हें नये जीवन ... और मुक्ति का स्वाद

रकुमार घोष

हाउस' के ऊपर चेम्बर अथवा "हाउस ऑफ लॉर्ड्स' में तो गोष्ठियों के स्थान तक नियत हैं ; उन पूर्व-निर्दिष्ट स्थानों पर ही लोग बैठेंगे। कोई कोई तो यहाँ ऐसे मिलेंगे जो घण्टों अपने निर्दिष्ट स्थान पर बैठे मिलेंगे। ऐसे भी लोग मिलेंगे जो कॉफी हाउस के सुबह खुलते ही प्रवेश करते हैं और शाम के बन्द होने तक वहाँ पड़े रहते हैं। ऐसे लोगों की घर से अधिक कॉफी हाउस से आत्मीयता होने का कारण, कॉफी हाउस नहीं है, बल्कि वह एक विशिष्ट समाज, है जिसका वह एक Caslett के शब्दों में—Face to face Soceity का आकर्षण।

किन्तु मुश्किल वहाँ होती है, जहाँ ये लोग जनता-जीवन को अस्वीकृत करते हुए भी, उसी जीवन-धारा में आपाद-मस्तक डूबे दिखाई देते हैं। ये लोग जनता का स्वभाव और जनता का धर्म छोड़ नहीं पाते। यही विवशता यहाँ की गोष्ठियों के नायकों और सदस्यों की शान, स्वाधीनता और सृष्टि की पिपासा तृप्त नहीं होने देती। ये सिर्फ अपने आपको प्रशंसित [illegible] पिपासा का अनुभव करते हैं। [illegible] आपस में एक दूसरे की तारीफ में [illegible] लेते हैं। चूँकि इस कीमत की [illegible] रोज बढ़ती ही जाती है इसलिए [illegible] पर पहुँचकर लोगों का व्यव[illegible] नाटकीय ही जाता है। [illegible] निन्दा तो जैसे समूचे व्यवहार [illegible] भूमिका हैं, इसीलिए कॉफी हा[illegible] गोष्ठियों के सदस्य अपने आपको [illegible] मानते हैं और उनकी निगाह में [illegible] बाहर की दुनियाँ काली है, कुत्सित [illegible]

मेरे विचार से कलकत्ता [illegible] कॉफी हाउस नयी चिन्ता, नयी कल्पना, नये भावादर्श और स्वाधीन [illegible] का विकास-क्षेत्र हो सकता था, किन्तु कुछ नहीं हुआ। आज का कॉफी [illegible] जनसभा का ही एक छोटा राजनैतिक दल [illegible] मंत्रणा-क्षेत्र और किसी अनुग्रि[illegible] स्थित समाचार-पत्र [illegible] प्रथम पृष्ठ! *

एक पोलिश व्यंग-चित्र

वि ता एँ

े हैं

म दोनों ने
की आँखें दूर-दूर से देखीं-
ब नाते से जुड़े-बँधे
तियों को
समझा—
सोचा—
केवल सोचा—
हम चुप थे :
हम बड़े रहे
ी एक दूसरे के लिए।
पर ; जिस क्षण

ां-प्रतीतियों को
केतों को
माध्यम से कह डाला ;
हो गए :
अपने-प्रतीतियाँ

रामसेवक श्रीवास्तव

बातें ; संकेत आदि सब के सब
बड़े हो गए हम से।
... . ।
अब तो हम छोटे हैं।

•

याद तुम्हारी

याद तुम्हारी :
जैसे , मैं कचनार के तले बैठा हूँ ;
चाँदनी पी रहा अँजुली भर-भर,
दौड़ रहा हूँ फूली केसर की गलियों मे
लेट गया हूँ नई कोपलों के बिस्तर पर
तैर रहा हूँ सुख की शीतल पुष्करिणीमें
याद तुम्हारी—
शिरा-शिरा मे मद्धिम-मद्धिम नशे सरीखी
जैसे :मेरे इर्द-गिर्द उल्लास खिला है।
जैसे... .... !

अनेक देश एक इन्सान

—कुलभूषण—

न्यू यॉर्क

(गतांक से आगे)

न्यूयार्क में मेरा प्रथम सप्ताह पलक झपकते बीत गया। इतनी अधिक नई चीजें, इतने अधिक अनुभव, इतने अधिक मन-बहलाव के साधन।

३८ वीं सड़क पर 'क्लार्क्स-फ्लॉयस' नामक दूकान, जहाँ ५० डालर देकर मैंने एक ऊनी सूट लिया, ताकि मई की सख्त सर्दी से मेरा बचाव हो सके। ७९ डालर और ७५ सेंट का सूट केवल ५० डालर में। सभी दूकानों में दामों में भारी कमी—भारी रिआयत। मगर चीज लेकर घर आओ तो पछताओ कि इतने दाम दे आए।

जूते का तला लगवाने के लिए मोची की दूकान में बैठकर इधर 'लाइफ' और 'टाइम' और 'पोस्ट' के पन्ने पलटे, उधर मशीनें खड़खड़ाईं, चक्के घूमे, हथियाँ चलीं और पन्द्रह मिनट में बना-बनाया जूता मेरे सामने आ गया।

३४ वीं सड़क के पास जनरल पोस्ट आफिस का ऊँचा भवन देखा, जि[illegible] पत्थरों में खुदे हुए ये शब्द दे—'प्रा[illegible] चक्कर को पूर्ण करने से इन [illegible] जानेवाले दूतों को न बर्फ रोक सक[illegible] वर्षा, न गर्मी, न रात का अंधेरा।' [illegible] अन्दर टिकट खरीदने के लिए म[illegible] पैसे डालकर मैंने चक्कर घुमा [illegible] टिकटें आप ही आप बाहर निकल [illegible]

'हार्न एण्ड हार्डार्ट' के 'आटोमै[illegible] टेरिया' में खाना खाने गया, जिन्हें [illegible] नीचे गिलास रखकर छेद में सिक्का [illegible] तो दूध आप ही आप बह निकले[illegible] गिलास को भर कर आप ही बन्द हो [illegible] जाएगा।

स्लोन हाउस के बाहर एक [illegible] रिकन नीग्रो से, जो रोज द्वार [illegible] कुर्सी और बूट-पॉलिश का [illegible] आता है और सारा दिन बूट [illegible] करता रहता है—मैंने कहा [illegible]

। एक स्मरणीय अनुभव था यह भी—

० अप्रैल को मैंने अपना काम आरम्भ या। रॉकफेलर-सेन्टर की इंटर- बिल्डिंग के अन्दर जाने से पहले श्चर्य-चकित आँखों से एटलास की तिं को देखा, जिसने पृथ्वी को उठा । भूमंडल के खोखले और गोल पीछे इण्टरनेशनल बिल्डिंग का स्काई (गगन-चुम्बी भवन) धूप में चमक । अन्दर जाकर देखा, बिजली की पर स्त्री-पुरुष चढ़-उतर रहे थे के पीछे एक साथ कई लिफ्टें थीं— मिन्न मंजिलों पर जाने के लिए भिन्न- लफ्टें। दीवार पर लगी शीशे में मढ़ी लेका को देखकर पता लगाया, पॉकेट कार्यालय सत्ताईसवीं मंजिल पर २७ वीं से ४० वीं मंजिल पर जाने- लफ्ट पर खड़ा हो गया। लिफ्ट की कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न लिफ्ट बन्द हुई, बटन दबा और कंड अर्थात् आधे मिनट के बाद जब खुला तो मैं २७ वीं मंजिल पर का था।

तों के दरवाजों के पीछे काले वस्त्र क अमेरिकन सुन्दरी रिसेप्शन-डेस्क थी। उसने मुस्कान के साथ मेरे न का उत्तर दिया, और जब मैंने श्री अल्फ्रेड अरौस से मिलना हैं, तो बोली, 'कृपया बैठिए। मैं ।'

वार के साथ सटा हुआ एक लम्बा गद्देदार सोफा लगा था और एक मेज पर 'लाइफ', 'टाइम' और 'न्यूज-वीक' की बहुत सी नई-पुरानी प्रतियाँ पड़ी थीं। इनके पृष्ठ उलट ही रहा था, कि अमरीकन युवती ने मुड़कर मेरी ओर देखा और बोली, "श्री अरौस आपसे मिलेंगे। कमरा नम्बर २७१२ में चले जाइए।" और इस प्रकार पॉकेट बुक्स में मेरे पाँच सप्ताहों के अध्ययन का श्रीगणेश हुआ।

पॉकेट बुक्स इंकारपोरेटेड संस्था प्रति मास १५ पुस्तकें प्रकाशित करती है, और प्रत्येक पुस्तक का संस्करण कम-से-कम अढ़ाई अथवा साढ़े तीन लाख प्रतियों का होता है। सब से अच्छी बिकनेवाली एक पुस्तक की पाँच करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं। ऐसी संस्था को काफ़ी बड़ा होना चाहिए, मगर उनका सारा कार्यालय इंटरनेशनल बिल्डिंग की एक ही मंजिल पर स्थित है।

एक दिन अपने कमरे में बैठा था, कि फोन की सूचना में एक भिनभिनाहट की सी आवाज मेरे कमरे में फैल गई। चाबी लेकर, दरवाजा खोलकर मैं फोन के दूसरी तरफ भागा। फोन के दूसरी ओर रंगनाथन नाम का एक व्यक्ति था। बोला, "आपको मैं एक-दो बार कफेटेरिया में मिल चुका हूँ।...बात यह है कि मेरे एक मित्र श्री सान्तेसन चाहते हैं कि आप उनसे मिलें। शायद आपके काम में वह आपकी सहायता कर सकें! आप उन्हें इस नम्बर पर फोन अवश्य कर लें।"

मैंने फोन पर श्री सान्तेसन से

लिया और उनसे मिलने गया। ३२० फिफ्थ एविन्यू, ३२ वीं सड़क के कोने पर किंगसाइज पब्लिकेशंस का कार्यालय है; उसके आखिरी कमरे में पुस्तकों, पत्रिकाओं और पांडुलिपियों से घिरे एक अधेड़ उम्र मुइत्ज़रलैंड के निवासी मगर अब अमेरिकन नागरिक श्री हान्स स्टीफान सान्टेसन बैठे थे। परिचय हुआ, कुछ देर बातचीत हुई, और इसी भेंट में मुझ पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि मैं उनसे बार बार मिलने को बाध्य हो गया।

सान्टेसन भारी भरकम और ऊँचे कद के व्यक्ति हैं; पेट कुछ बढ़ा हुआ, सिर के बाल उड़ते हुए, और ऐनक के शीशों के पीछे गम्भीर मगर संवेदनाशील दो आँखें, जिनमें मोद की रेखा यदा-कदा चमक उठती है। मुझे चमड़े की आरामकुर्सी पर बैठाकर उन्होंने कहा, 'भारत से आनेवाले मित्रों से मैं हमेशा मिलने का प्रयत्न करता हूँ। रंगी (रंगनाथन) ने आपके विषय में बताया, तो मैंने उसे आपको सूचित करने को कहा। आपने आने का कष्ट किया, धन्यवाद।'

अपनी यात्रा का उद्देश्य जब मैंने बताया तो बोले, 'पद्मा पब्लिकेशंस के श्री यूसुफ, मेहर अली मेरे मित्रों में से एक थे। उनसे मेरी भेंट भी हुई थी और पत्र-व्यवहार भी बहुत दिनों तक चलता रहा।'

इसके बाद बहुत से लोगों के नाम व पते उन्होंने दिए, जिन्हें मिलकर मैं अपना काम अधिक सुचारु रूप से कर सकता था। मैं अधिकतर लोगों से मिला और उनसे मिलकर मुझे लाभ भी हुआ।

र से बाहर निकले और पैदल ही कदमी करते हुए पोस्ट ऑफिस की चल दिए। हार्न एण्ड हार्डर्ट के टेरिया में बैठकर हमने चाय पी, और तें। पेरसाड बोले, 'आपका यहाँ के न के प्रति क्या विचार है ?' मैं उनका श नहीं समझा, तो बोले, 'मेरा तात्पर्य हाँ की स्त्रियों की स्वतंत्रता। मुझे तो ी स्वतंत्रता से ऐसा लगता है कि वह र की हैं, न घाट की।' अमेरिका के नैतिक स्तर के विषय में श्री पेरसाड तक बोलते रहे। उनके कथन में मुझे ा के परम्परागत रूढ़िवाद की झलक ई दी—और मुझे हैरानी हुई कि दो यों तक भारत के बाहर रहकर भी ीयता उनमें से नहीं जा सकी।

श्री सान्टेसन मुस्कराकर बोले, 'मेरा रसाड से मतभेद नहीं है, मगर दशा नहीं जैसी यह बता रहे हैं। यहाँ की स्वतंत्र है; यहाँ का पुरुष भी स्वतंत्र है। स्वतंत्र होते हुए किस प्रकार वैवाहिक न में परतंत्र रहें, इसी का हल ढूँढना र समरा है। भारत के सामाजिक न से हमारा अमरीका का जीवन भिन्न भारत की कई लड़कियों को मैं जानता ो यहाँ आकर भारत की नैतिकता को ाथ नहीं निभा पाईं। श्री गैरी भी ाथ सहमत होंगे कि पुरुषों को यदि बता से गिरने की स्वतंत्रता है, तो यों को भी होनी चाहिये।'

'मगर स्त्री पर बच्चों का उत्तरदायित्व ' श्री पेरसाड बोले, 'और इसलिए स्त्री को संयम से चलना चाहिये।'

श्री सान्टेसन बोले, 'अमरीका का जीवन वैयक्तिक स्वतंत्रता का जीवन है। अच्छाइयों के साथ साथ इसमें बुराइयाँ भी आ गई हैं, जो स्वाभाविक ।'

हमारी बातचीत में ऐसी स्निग्धता थी जैसे हम तीन भिन्न स्थानों के व्यक्ति नहीं, एक ही परिवार के सदस्य हों। श्री सान्टेसन अमेरिकन जीवन के पक्ष में नहीं थे, मगर भारतीयों से परिचित होने के कारण, वह भारतीय नैतिकता की गिरावट को भी भली-भाँति जानते थे। श्री गैरी पेरसाड का विवाह न्यूयार्क निवासी एक हिन्दू युवती से हुआ था और उनके तीन बच्चे भी हुए। मगर गैरी अपनी पत्नी को हिन्दू परम्परागत पत्नी नहीं बना पाए, सो उन्होंने हारकर तलाक़ ले लिया; शायद इसी तलाक़ की कटुता उनमें अमरीकन नैतिकता की आलोचना के रूप में प्रकट हो रही थी।

रात को आठ बजे हम तीनों ने विदा ली और चलते समय श्री गणेशप्रसाद ने वादा किया कि वह मुझे अवश्य मिलेंगे। मगर इसके बाद मैं पौने दो महीने न्यूयार्क में रहा, वह नहीं मिले।

एक दिन स्लोन-हाउस में पहुँचा तो मेरे नाम एक पत्र प्रतीक्षा कर रहा था। श्रीमती जार्ज युड्स ने, जो संभवतः अंतर्राष्ट्रिय शिक्षा संस्था से सम्बन्धित थीं, मुझे सर्कस के लिए दो टिकटें भेजी थीं—और टिकटों के साथ एक चिट पर पेंसिल से

लिखा था—'जरा पहले आइएगा—शो के अलावा अन्य बहुत-सी दिलचस्प चीजें मिलेंगी।'

न्ययार्क के मेडिसन स्क्वायर गार्डन में 'बार्नुम एन्ड बेली' का सर्कस हो रहा था—और उसकी पाँच पाँच डालर की दो टिकटें 'एंड प्रोमेनेड' क्लास की मेरे पास थीं। मेरा कोई ऐसा परिचित न था जिसे मैं अपने साथ सर्कस देखने के लिए निमंत्रित करता—सो पॉकेट बुक्स के एक क्लर्क को मैंने अपनी फालतू टिकट भेंट कर दी।

समय से आधा घंटा पहले मैं मेडीसन स्क्वेयर गार्डन पहुँच गया। मगर वहाँ कोई बाग नहीं था; एक बहुत बड़ा भवन था जिसमें १८,५०० व्यक्तियों के बैठने का प्रबन्ध है और बीचोंबीच खाली स्थान है। छत इतनी ऊँची है कि बड़े से बड़े सर्कस का तम्बू इतना ऊँचा नहीं हो सकता। पूछताछ करके मैं पहले सर्कस का 'साइड-शो' देखने गया। भवन के तहखाने में घोड़े और हाथी थे। सफेद व काले भालू थे और एक जिराफ-परिवार था। पिंजरों में शेर व्याकुलता से घूम रहे थे। माता-पिता के हाथ पकड़े बच्चे यहाँ-वहाँ खड़े जानवरों को देख-देखकर हैरान हो रहे थे। शक्कर के बने बुढ़िया के बाल, भुनी हुई मक्का और मूंगफली के पैकट बिक रहे थे—और उन्हें बेचते मोकर लोग उतना ही शोर कर रहे थे जितना कि भारत में छाबड़ीवाले करते हैं। अन्तर केवल उनके कपड़ों व स्थान की सफाई में था। कुछ लोग प्रोग्राम की प्रतियाँ और भंडे बेच रहे थे। बच्चों के भोले मुस्कराते चेहरों की मी[illegible] सभी को मुस्कराहट बाँट दी[illegible] का, हँसी का, उत्सुक उत्कंठा का[illegible] चारों ओर था। बालक-बालिका[illegible] चमकती आँखों का प्रकाश उनके[illegible] का विज्ञापक था।

इन सब के अलावा दाएँ[illegible] असाधारण व्यक्तियों का समू[illegible] कुछेक ऊँचे प्लेटफार्म एक पंक्ति में[illegible] और उनमें से प्रत्येक पर एक[illegible] विराजमान था। एक अंग्रेज का[illegible] बहुत ऊँचा और बहुत बलिष्ठ, लं[illegible] वह अपने शरीर व शक्ति का[illegible] रहा था। एक बौनों का परिवा[illegible] माता, पिता, पुत्र पुत्री चारों[illegible] छोटे क़द के थे—लगभग अढ़ाई[illegible] ऊँचे। बूढ़े पिता के माथे[illegible] चिह्न दिखाई दे रहे थे। अपने ढं[illegible] में सुसज्जित वह चुपचाप उस में[illegible] अपनी पत्नी व बच्चों के साथ[illegible] उसकी आँखों में व्यथा की एक[illegible] थी; शायद उम्र भर सर्कस में[illegible] लिए तमाशा बनकर भी आज तक[illegible] स्थिति से समझौता नहीं कर[illegible] सोचा, क्या सचमुच यह परिवार[illegible] प्रतिदिन कुछ घंटों के लिए दु[illegible] कौतुकमयी दृष्टि का सामना[illegible] अपना निर्वाह करना क्या दुष्कर[illegible] अपने शरीर की जन्मजात बनावट[illegible] अपने हाथ की बात नहीं है,[illegible] लेकर अपने समस्त जीवन को[illegible] वस्तु बना देना कहाँ की बुद्धिम[illegible]

ी दिलचस्पी से इन बौनों को
एक जगह एक बहुत मोटी महिला
तनी मोटी कि साधारण दरवाजे
सके। उसके साथ एक आदमी
मोटाई पर तरह-तरह के छींटे
। एक सुन्दर पतली महिला
रों की तलवारों से भरी मेज
थी। मेरे देखते-देखते उसने
तलवार उठाकर मुँह में डाली,
उसे गले के अन्दर तक डाल
कों में तालियों की गड़गड़ाहट

ठीक समय पर सर्कस आरम्भ
मैं अपनी सीट पर जा बैठा।
का मेरा साथी पहले ही से
ान था। दौड़ते घोड़ों की पीठ
ों की कला-बाजियाँ, संगीत
घोड़ों का सामूहिक नाच,
कती रस्सी पर जमीन से बहुत
त्री व एक पुरुष के शारीरिक
का खेल, मसखरों का वजन
ाबाजियाँ मारने का प्रयत्न—
ीक वैसा ही था जैसा संसार
सों में होता है। केवल एक
ो कम से कम मुझे नया लगा–
गाने की चढ़ती-उतरती आवाज।
। अपार समूह, अपनी समस्त
ाथ, घोड़ागाड़ियों और घोड़ों
गबिरंगे कपड़े पहने, जब-तब
जाता था। स्त्री के शरीर के
प्रदर्शन से भला अमरीका की
या कैसे चूक सकती है!

बैठे-बैठे मध्यान्तर के समय मैंने अपने साथी से बातचीत की। मैंने उसके परिवार के विषय में पूछा, तो बोला, 'मैं इताली के एक छोटे से नगर का निवासी हूँ और पिछले पन्द्रह वर्ष से न्यूयार्क में रहता हूँ। हमारे देश में जिस प्रकार की लड़कियाँ शादी के लायक समझी जाती हैं, वैसी लड़की मुझे यहाँ नहीं मिली—सो मैं अभी तक कुँवारा हूँ, और शायद सदा कुँवारा ही रहूँगा।

'मगर ऐसा क्यों?' मैंने पूछा। 'यहाँ की लड़कियाँ सुन्दर हैं, पढ़ी-लिखी हैं।'

'इनका कोई भरोसा नहीं। मेरी मा का कहना है कि यहाँ की लड़कियाँ बेशर्म हैं—और गृहस्थी बेशर्म लड़कियों से नहीं चलती है।

वह लगभग पैंतालीस वर्ष का अधेड़-उम्र व्यक्ति था, मगर मा की बात करते समय उसकी आवाज में एक अबोध बालक की-सी कोमलता आ गई थी। मैं समझ गया, वह मा का बेटा है—मा के अलावा किसी अन्य स्त्री से सम्पर्क रखने की स्वतन्त्रता उसे कभी नहीं मिली। इसीलिए इताली की लड़कियों के प्रति मा की आस्था में यद्यपि कुछ सच्चाई अवश्य होगी, फिर भी पूरे सत्य के लिए मा व बेटे दोनों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत आवश्यक होगा।

उसके हाथ में एक कैमरा था। मैंने पूछा, 'आपको फोटोग्राफी का शौक है?'

'जी हाँ, मैं यह कैमरा सदा साथ रखता हूँ।' कैमरा खोलकर मुझे दिखाते

हुए वह बोला, 'अमरीका में जापानी कैमरों का बहुत यश है। अमरीका के कैमरे महँगे होते हैं और कुछ काम के नहीं होते। जापानी कैमरे एक तो बहुत सस्ते होते हैं और दूसरे वे बहुत अच्छा काम देते हैं। मेरा यह कैमरा भी जापानी है।'

'आपको सर्कस कैसा लग रहा है?' मैंने कुछ देर बाद पूछा।

'बहुत अच्छा। आज पाँच वर्ष बाद मैं सर्कस देख रहा हूँ—आपकी मेहरबानी से। न्यूयार्क के खर्च इतने अधिक हैं कि मैं खुद सर्कस देखने की बात सोच ही नहीं सकता।'

न्यूयार्क के जीवन से अभ्यस्त होने में मुझे देर नहीं लगी, मगर जब जब मैं किसी आकार में बड़ी वस्तु के सामने आया, तभी मुझे आश्चर्य हुआ।

३४ वीं सड़क पर, स्लोन हाउस के सामने, सड़क की दूसरी ओर खड़ा होकर मैं कभी पूर्व की तरफ देखता तो १०२ मंजिल ऊँची एम्पायर स्टेट बिल्डिंग का ऊँचा टेलिविज़न टॉवर धूप में चमकता दिखाई देता। १,४७२ फुट ऊँचा यह भवन संसार में सबसे ऊँचा है। इस में २५,००० किरायेदार रहते हैं और उनके प्रयोग के लिए ७३ लिफ्टें हैं। सन् १९३१ में बने इस भवन को आज तक कोई मात नहीं दे सका है।

एक डालर बीस सेंट देकर एक दिन मैं इस भवन के ऊपर चढ़ा। दो बार लिफ्ट बदलनी पड़ी। छत पर पहुँचकर देखा, चारों ओर लोहे का ऊँचा ज॰ और जाली दी। जाली के पार॰ थी और धूप में न्यूयार्क का ग॰ था—या यों कहिए कि ॰॰ का अगम जंगल मेरे नीचे ॰ दिखाई दे रहा था। ऊँचे भवनों ॰ सिलसिला जिनके बीच की दरारें ॰ हैं। मनुष्य के निर्माण-कौशल ॰ तले उंगली दबानी पड़ती है। ॰ में भवनों के बीच सेन्ट्रल पार्क ॰ वाली टुकड़ी, पूर्व की ओर ॰ पश्चिम की ओर हडसन नदी ॰ नत बंदरगाह, और दक्षिण बैटरी पार्क के परे स्वातंत्र्य ॰ ऊँचा बुत। दर्शन के लालच ॰ इस छत पर चारों ओर लगी हैं ॰ एक में १० सेंट डालकर मैंने ॰ लिबर्टी' देखने का प्रयत्न किया। सलेटी-नीली दीवार को ॰ समुद्र देखा, समुद्र के ॰ एक बहुत ही मद्धिम आ॰ दिया—और अनायास मेरे ॰ गया—'वाह!' ॰ मगर मुझे आज भी संदेह ॰ सचमुच उस दिन एम्पायर ॰ की छत से स्वातंत्र्य को ॰ था, या वह छाया मेरे मस्तिष्क के शीशों में उतर आई थी।

मैं अखबार के दफ्तर ॰ वीं सड़क पर घूमने ॰ अमरीका में बड़े स्टोर ॰ सारे अमरीकी शहरों ॰

पर पाए जाते हैं। इन्हें 'चेन-स्टोर्स'
: 'दूकानों की शृंखला' के नाम से
ते हैं। ऐसा ही एक साधारण स्टोर
ा ड्रग-स्टोर' है जहाँ टुथपेस्ट से चाक-
तक, और सूटकेस और नमक की
ा से लेकर किताबें तक खरीदी जा
हैं। ३४ वीं सड़क के आसपास इस
की तीन-चार दूकानों पर मैंने तेल भी
। और फिल्में भी धुलाईं। और
कभी मुझे दवा की आवश्यकता होती
भगवान की दया से नहीं हुई!) तो
। वहाँ से मिल सकती थी।

्लवर्थ नाम की दूकानें तो विश्व-
ात है। लाल पृष्ठभूमि पर सुनहरी
। में लिखा यह नाम मैंने पहले पहल
ो में देखा, और बाद में तो वाशिंगटन
, पेरिस, फ्रैंकफर्ट और बर्लिन में भी
कपड़ों से लेकर केक, और चाकू
और दरवाजों के कुंडों से लेकर रिबन,
्येक वस्तु इन दूकानों में खरीदी जा
है। चारों तरफ चीजें सजी हुई हैं,
दाम लिखे हुए हैं, आप इन चीजों
व चहलकदमी कीजिए, आराम से
आवश्यकता की चीजें चुनिये।
त स्थानों पर दूकान की कर्मचारी
ाएँ खड़ी हैं—उनमें से एक को ये चीजें
जेए, वह आपसे पैसे लेगी, आपकी
को बिल-सहित कागज की थैली में
ेगी। आप चीजें लिए बाहर चले
, कहीं कोई बाधा नहीं होगी, कहीं
देखाने की माँग नहीं होगी।

ि० अल्टमैन, गिम्बल्स, मैक्स—बड़ी
बड़ी शानदार दूकानों के बाहर चमकती हुई
शीशे की खिड़कियों में लुभावनी आकृतियाँ
खड़ी हैं, बेचने का सामान सजा है, और
इनके प्रवेश द्वारों से प्रति क्षण सजी स्त्रियों व
पुरुषों की भीड़ अन्दर जा रही है, सामान
उठाये बाहर आ रही है। मगर इन सब में
सबसे बड़ी दूकान का नाम है—मेसी।
ब्राडवे और ३४ वीं सड़क के मुहाने पर कई
मंजिलोंवाली यह दूकान संसार की सबसे
बड़ी दूकान है जिसमें १६८ विभाग हैं।
अलग-अलग किस्म की ४ लाख चीजें यहाँ
बिकाऊ रहती हैं और प्रतिदिन १ लाख ३७
हजार ग्राहक इस दूकान में आते हैं। अन्दर
दर्जनों लिफ्टें हैं, चढ़ने उतरनेवाली बिजली
की सीढ़ियाँ हैं, स्थान-स्थान पर तालिकाएँ
हैं जिनमें देखकर आप पता लगा सकते हैं कि
छाते कहाँ बिकते हैं, या बच्चों के फ्राक
कहाँ हैं, या खिलौनों के लिए किधर जाना
चाहिए। अगर खरीदारी करते करते आप
थक गए हैं, तो आइस्क्रीम खाइए या कोका-
कोला पीजिए या 'हॉट-डॉग' खाकर अपने
पेट की क्षुधा शांत कीजिए। अगर आपने
सामान अधिक खरीद लिया है, तो जगह
जगह रैक में कागज के मजबूत थैले पड़े हैं,
उनमें से एक ले लीजिए और अगर चाहें तो
पाँच सेंट डिबिया में डाल दीजिए। मगर
किसी भी दशा में खरीदारी से गुरेज न
कीजिए, क्योंकि सामान चारों ओर बिखरा
पड़ा है और उसे खरीदना सभी का
कर्तव्य है।

खरीदारी करनेवालों को जैसी
मैंने न्यूयार्क में देखी, वैसी कहीं नहीं देखी

स्त्रियों-पुरुष खरीदारी में भी मुझे वैसे ही चुस्त व तेज नजर आए जैसे अपने कामों में। शायद अमरीकी व्यवसाय का सिद्धांत प्रत्येक अमेरिकन जानता है—आय है तो व्यवसाय है, व्यवसाय है तो आय है।

दूकानों की तरह खाने के स्थानों की भी शृंखलाएँ न्यूयार्क में बहुत हैं। 'हार्न एंड हार्डर्ट' की शृंखला में से किसी एक में आप सब्जी, माँस, चाय-कॉफी, रोटी-चावल, मक्खन, मीठी प्लेट—मतलब कि पूरा खाना खा सकते हैं। और जब कि अन्य होटलों में ऐसे खाने के दाम तीन से चार डॉलर के लगभग पड़ेंगे, 'हार्न एंड हार्डर्ट' में एक-डेढ़ डालर से काम चल जाएगा—बस, आपको अपना खाना आप जाकर लाना पड़ेगा। खाने के स्थानों की दूसरी शृंखला 'चाक फुल ऑ' नट्स' की है। काले-सफेद चौकोरों की पृष्ठभूमि पर उभरे हुए अक्षरों के बोर्ड आप कहीं भी आसानी से पहचान सकते हैं। इन स्थानों पर कॉफी, दूध व लैमन के अलावा 'हाट डाग', पनीर के सैंडविच और डोनट मिल जाएँगे। ५०-६० सेंट में आपके दोपहर के नाश्ते का प्रश्न सुलझ जाएगा। इनमें केवल हब्शी कार्यकर्ता हैं, और इस कम्पनी के एक अधिकारी एक प्रसिद्ध हब्शी हैं—जिनकी देखरेख में सारा प्रबन्ध होता है।

पहले दिन जब मैं 'चाक फुल ऑ' नट्स' में खाने गया, तो मैंने खाना देने-वाली नीग्रो युवती के लिए दस सेंट काउंटर पर छोड़ दिए। मगर युवती ने मुस्कराकर पैसे लौटा दिए और बिजली के अक्षरों की ओर संकेत किया। मैंने देखा, ग[illegible] महीन अक्षरों में लिखा था, 'यहाँ [illegible] देना मना है।' बाद में पता चला कि [illegible] लोगों के आत्म-सम्मान को बढ़ाने के [illegible] इस शृंखला के अधिकारी अपने कर्म[illegible] चारियों को पर्याप्त वेतन देते हैं—और [illegible] कड़ी हिदायत है कि वे 'टिप' न लें।

न्यूयार्क में मैं दो महीने तक रह[illegible] जब भी 'हार्न एंड हार्डर्ट' अथवा 'चा[illegible] ऑ' नट्स' के किसी स्थान पर गया [illegible] उसे भरा पाया। सुबह से लेकर [illegible] तक—बल्कि कई स्थानों पर तो [illegible] घंटे इन स्थानों पर भीड़ लगी रह[illegible] दोपहर के समय विशेषकर इत[illegible] अधिक लोग होते हैं कि खाने के लि[illegible] में खड़े होकर प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

गगनचुम्बी भवनों, बड़ी दूकानों [illegible] खाने के सस्ते स्थानों की शृंख[illegible] अलावा एक और वस्तु के आकार [illegible] प्रभावित हुआ। कई बार मैं [illegible] के अपने कमरे की खिड़की में बैठ[illegible] सड़क की ओर देखता रहता। [illegible] मोटरों की कभी न टूटने वाली [illegible] बीच कभी-कभी एक बड़ी-सी [illegible] दर्शन हो जाते जिस पर चार बड़ी-[illegible] (दो नीचे और दो ऊपर) भरी [illegible] इतनी बड़ी लारी का अनुमान [illegible] आसान नहीं, मगर ये लारियाँ [illegible] हडसन नदी की ओर बने बन्दरगा[illegible] मोटरें लेकर निकलती हैं और इन्हें [illegible] के भिन्न शो-रूमों में ले जाती हैं [illegible] अलावा दूध से भरी लारियाँ भी [illegible]

देश में पेट्रोल की लारियाँ होती हैं) में मैंने कई बार देखीं। न्यूयार्क की होने वाली लारियों के आकार से -कभी डर लगता था—क्योंकि इनके दुर्घटना में आदमी तो क्या, बड़ी-बड़ी तक का पता न चले।

गर किसी देश की आत्मा उसकी अट्टालिकाओं में नहीं बसती, होटलों में विचरती, लारियों में नहीं चलती। बसती है इन्सानों में—क्लर्कों और में, लेखकों और पत्रकारों में, अभाव-क्तों व युवतियों में, जो जन-जीवन त हैं, वैभव के उत्पादक हैं, विविध क विकृतियों के शिकार हैं।

र इस विचार के साथ मेरे मस्तिष्क व्यक्तियों के चित्र उभरते हैं, उनमें है जार्ज एनेल का।

ल का मेरे साथ परिचय नहीं हुआ; द ही मेरे साथ परिचय किया। की शाम को न्यूयार्क की प्रेस-क्लब ज में खड़ा अपने मित्र श्री सान्टेसन । जिंजर-ऐल का एक गिलास पी । और अमरीका के रहस्य-कथा-के मोज के आरम्भ की प्रतीक्षा कर , कि एक ऊँचे, लम्बे, मार्ग चेहरे क ने मेरे पास आकर कहा, 'आप ो आप हैं—आपसे मिलकर बहुत ई। मेरा नाम एनेल है—मैं हवाई र-फोटोग्राफर हूँ।' और मेरे हाथ में लास को देखकर वह मुड़कर चला कुछ देर बाद लौटा, तो उसके हाथ में दो गिलास थे। एक गिलास मेरे हाथ में थमाते हुए बोला, 'आइए, अपनी मित्रता पर जाम पिएँ।' मगर जब मैंने कहा कि मैं अभी पहला गिलास भी समाप्त नहीं कर पाया हूँ, तब वह बिगड़ उठा। एकाएक मुझे मालूम हुआ कि वह बहुत पिए हुए है और उसे होश नहीं है कि वह क्या कर रहा है। श्री सान्टेसन ने मुझे एनेल से बचाने की कई बार चेष्टा की, मगर एनेल न टला, न टला। बीच-बीच में वह लौटता रहा आसपास खड़े लोगों पर दृष्टि कसता रहा, मुझे पकड़कर, अलग ले जाकर मेरे कान में न जाने क्या क्या कहता रहा—'लोग मूर्ख होते हैं, अपने आपको बहुत समझते हैं। मगर मैं भी कम नहीं हूँ। मैं सब सालों को जानता हूँ...सब जानता हूँ...

भोज के समय भगवान की दया से एनेल नहीं था। श्री सान्टेसन के एक मित्र ने, जो हमारे साथ बैठा था, एनेल के व्यवहार के लिए क्षमा चाही—'आप इस शराबी के व्यवहार पर ध्यान न दें। अमरीका के साधारण नागरिक का प्रतिनिधित्व वह नहीं करता।'

'आप विश्वास रखें', मैंने मुस्कराकर कहा। 'एनेल को अमरीका का प्रतिनिधि समझने की भूल मैं नहीं करूँगा।'

मुझे याद आता है, श्री डेविड गिमर्ड का मुस्कराता हुआ चेहरा। न्यूयार्क के अज्ञात नगर में केवल एक शान्त ध्वनि, जिनके पास जाकर मैं जब-जब अपनी कठिनाइयाँ कह आता, अपनी माँग पेश

के समय पर सभा आरम्भ हुई। देखते सभा के सारे लोगों में प्रार्थना स्तकें बंट गईं। न जाने कहाँ से ता प्रकट हुए और अपना कार्य करके न्तर्ध्य हो गए। और प्रार्थना के बाद क उसी तरह प्रार्थना की पुस्तकें ले ली गईं। तीन-चार मिनट में श्रोताओं के बीच पुस्तकें बांटना और मस लेना—सचमुच इसे व्यवस्था का र ही कहा जा सकता है।

ली ग्रेहम का भाषण आज के भोग-के जीवन के विरुद्ध एक धर्म-की भावनामय अपील थी जिसमें थान पर बाइबल के उद्धरण थे, जीवन की आलोचना थी, शैतान में खेलने के नतीजों पर चेतावनी र अंत में ईसा-मसीह के पास लौट लिए प्रार्थना थी।

ली ग्रेहम ने हाथ उठाकर, आवाज करके, नाटकीय अन्दाज में कहा—कसी धर्म में आपकी आस्था हो—प प्रोटेस्टेंट हों या केथलिक, ज्यू हों ; मुस्लिम हों या नास्तिक—मैं बको पुकार रहा हूँ। ईसा-मसीह पुकार रहा है। आप ईसा के पास आइए—भगवान् के बेटे के पास ए।'

तीस मिनट तक बिली ग्रेहम का था, और लगभग पन्द्रह मिनट तक पास लौट आने की अपील हुई। ल के उत्तर में कई सौ नर-नारी हम के चारों ओर जमा हो गए—सभा के बाद उन्हें गिरजे में ले जाया जायगा और वे फिर से ईसा के सच्चे बेटे-बेटियाँ होने का वायदा करेंगे।

मगर बिली ग्रेहम के इस धार्मिक आन्दोलन के लिए भी धन की आवश्यकता है; सो सभा समाप्त होने से पहले डिब्बे चारों ओर घुमाए गए। मुझे भी आधा डालर इसमें डालना पड़ा। प्रार्थना-पुस्तकों की भाँति पैसों से भरे ये डिब्बे भी बहुत जल्दी आए और चले गए। कई लोगों ने इनमें पैसों के स्थान पर चेक डाले, मगर अमरीका में यह एक मामूली बात है—चेक भुनाने में कुछ विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं होती।

श्री गिलर्ड के साथ सीढ़ियाँ उतर कर मैं सड़क पर आया। बिली ग्रेहम का यह धर्म-आन्दोलन कई वर्षों से चल रहा है और वे भारत का दौरा भी कर चुके हैं, मगर मैंने उन्हें जीवन में प्रथम बार सुना था। उनके उपदेशों का श्री गिलर्ड पर काफी गहरा प्रभाव था, और मुझ पर भी कुछ प्रभाव अवश्य हुआ था। मगर धार्मिक आस्था के विषय में सोचने के स्थान पर मैं बिली ग्रेहम के विषय में सोच रहा था। मुझे इस व्यक्ति में बहुत अहंकार दिखाई दिया था—अपने आपको ईसा-मसीह का पैगम्बर समझना और कहना अहंकार की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है? मगर अमरीका में शायद पराकाष्ठा ही आसानी से समझी जाती हो। मैं इस विषय में अधिक नहीं जानता।

मुझे याद आते हैं एड्रियन अमाया

इसके साथी के सादगी-भरे चेहरे। वे दोनों मुझे यू० एन० ओ० (संयुक्त राष्ट्र संघ) की जनरल असेम्बली बिल्डिंग की शानदार लॉबी में मिले थे, जहाँ मैं एक दिन अकेला घूम रहा था।

लगभग चार घंटे से मैं संसार के इस अद्वितीय भवन समूह को देख रहा था। सड़क के साथ जाती हुई पत्थर की चौड़ी अर्धचन्द्राकार दीवार पर संसार के सभी देशों के झंडे हवा में लहरा रहे थे। इनके एक ओर चौड़े आँगन के परे शीशे के अनगिनत दरवाजों में से एक से मैं अन्दर गया, तो भवन की निर्माण-कला को देखकर मेरी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। दायीं ओर चौड़ी सुन्दर सीढ़ियों के ऊपर तीन मंजिलों के तीन बारजे दिखाई दे रहे थे। सामने नीची छत की लाबी के सफेद व काले पत्थरों के फर्श पर प्रकाश चमक रहा था और इस प्रकाश में स्त्री-पुरुषों और बच्चों की भीड़ आ जा रही थी। बैंचों पर लोग बैठे सुस्ता रहे थे। बच्चों का एक समूह उत्सुकता से मगर सुव्यवस्थित दशा में भवन के अन्दर जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। लॉबी के अन्तिम छोर पर मैंने पूछताछ करके एक टिकट खरीदा—पता चला, इस समय आठवीं 'मार्गदर्शित सैर' का आरम्भ हुआ है और मेरा टिकट बारहवीं सैर के लिए है।

सो डेढ़-दो घंटे तक मैं अकेला इस लॉबी में घूमता रहा। चौड़े शीशों के परे ईस्ट रिवर के पानी की छटा देखता रहा। सीढ़ियों के पास पतले तार द्वारा लटके हुए पेंडुलम को देखता रहा—जो पृ
सत्य को दर्शाता है। और जब मे
हुई तो भीड़ के साथ मैंने भी
संघ के भवनों का एक चक्कर ल
जनरल एसेम्बली हॉल देखा, म
पर बने लेगर के एक बड़े चित्र
मेरी समझ में बिल्कुल न आया।
की लकीरें थीं जो गोल और या
खिंची थीं। सुरक्षा परिषद का
जहाँ कुर्सियों की गोल कतार के
के कलाकार 'पेर क्राइग' का चि
मनुष्य की आशाओं को प्रतिबिंबि
है। आर्थिक व सामाजिक परि
जिसे स्वीडन ने अपने खर्च से स
संघ के लिए बनवाया है। मंच
चबूतरे पर छोटे से चौकोर ढांचे
जापानी घंटा देखा। मगर सबसे
चीज जो मैंने यहाँ देखी, वह दी
विख्यात चित्रकार भोजे आनेरी द
पेंटिंग, जो लगभग साठ फुट लम्बी
दस फुट चौड़ी है। इस चित्र का
वर्तमान मनुष्य की शान्ति के लि
श्यकता। युद्ध के फलस्वरूप दुः
परिवार, शान्ति के लिए व्याकुल मनु
के ध्वंस से बचे नर-कंकालों का
संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत मनुष्य
का पुनर्निर्माण, और मनुष्य के
भविष्य की कल्पना। चित्र है
व्यथा, ऐसी शक्ति और ऐसा मर्म
देखकर मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

सैर के अन्त में हमारे मार्गदर्शि
हमें यू० एन० ओ० के

द ...। इस स्थान का मुझे आप कभी पता न चलता। यह में एक बहुत बड़े हाल में स्थित है। . यू० एन० ओ० के प्रकाशनों व चित्रों की दूकान है; यहाँ से चित्र-कार्ड खरीदे। पोस्ट-आफिस एन० ओ० की विशेष डाक-टिकटें जो केवल इसी भवन में चिट्ठियाँ ने के लिए प्रयोग की जा सकती ने मित्रों व सम्बन्धियों को यहाँ से के लगभग कार्ड भेजे। तीसरी ई दूकानें हैं जिनमें अलग-अलग गुड़ियाँ और अन्य छोटी-मोटी की वस्तुएँ मिलती हैं। भारत की जें भी मैंने यहाँ बिकती देखीं— पेत-ट्रे, चाँदी के गहने, रेशम के खरोट की लकड़ी के छोटे बक्स, इन सब के अलावा यहाँ एक जहाँ कोका-कोला, कॉफी, केक मिलते हैं।

अन्तिम स्थान पर अनन्नास के एक बोतल पीते हुए मेरी भेंट श्री माया व उनके साथी से हो गई। मेरे पास आकर बैठने लगे तो उन्होंने मेरा अभिवादन किया। गेन हाउस में एक-दो बार देख इसलिए शिष्टतावश मैंने भी उनके अभिवादन का उत्तर दिया। बोले, 'आप कुछ लीजिए।' मैंने भी अभी शर्बत पी चुका हूँ।' रा व उनके मित्र नहीं माने। उन्होंने मेरे लिए एक शर्बत की बोतल और मँगाई। बोले, 'आपने यहाँ की कोई बैठक देखी है?' मैंने कहा, 'नहीं, आज मैं पहली बार ही इस भवन में आया हूँ। और पिछले चार घंटे से यहाँ हूँ।'

श्री अमाया के साथी, जिनका नाम मैं भूल रहा हूँ, बोले, 'न्यूयार्क में आकर यहाँ न आना हमारे लिए तो असंभव हो गया। हम तो प्रायः रोज यहाँ आते हैं और एक न एक सभा में दर्शक-श्रोता बनकर बैठते हैं।'

मैंने श्रद्धा दर्शाते हुए कहा, 'मुझे तो यह विचार ही नहीं आया कि संयुक्त राष्ट्र संघ की कमेटियों की बैठकें इतनी महत्वपूर्ण होंगी।'

'संसार के भविष्य की शान्ति यहीं पर बनती-बिगड़ती है', श्री अमाया बोले, 'हमें यहाँ की सभाओं में आकर बहुत कुछ ऐसा मालूम हुआ है, जो अन्यथा मालूम नहीं हो सकता था।'

ऊपर लॉबी में आकर मेरे नए मित्रों ने सुझाव दिया कि मैं उनके साथ एक बैठक में चलूँ। सो एक काउन्टर पर जाकर श्री अमाया ने पूछताछ की और मेरे लिए 'पास' लेकर लौट आए। लॉबी के अन्तिम छोर पर सीढ़ियाँ चढ़कर हम ट्रस्टीशिप काउंसिल के हाल में गए जहाँ उपनिवेशों में शिक्षा, प्रगति और स्वतन्त्रता पर बहस हो रही थी।

पिछली बैठक की रिपोर्ट पर बहस में भारत के प्रतिनिधि श्री आर्थर लाल बोल रहे थे। वह कह रहे थे कि पिछली बैठक में यह कहा गया था कि बड़ी शक्तियों के आधीन

ट्रस्टी-उपनिवेशों में होनेवाली राजनैतिक प्रगति पर वे बड़ी शक्तियाँ इस काउंसिल में प्रकाश डालेंगी। मगर इस बात का रिपोर्ट में कोई उल्लेख नहीं है। इस पर केन्द्रीय मेज पर बैठे सभापति व एक-दो अन्य व्यक्तियों में फुसफुसाहट हुई, परामर्श हुआ, और फिर एक व्यक्ति ने उठकर (जो संभवतः सभा का सचिव था) कहा, कि राजनैतिक प्रगति का प्रश्न एक अन्य कमेटी जाँच रही है, इसलिए उसका इस रिपोर्ट में उल्लेख नहीं किया गया।

उत्तर में श्री आर्थर लाल ने कहा कि वह मानते हैं कि एक अन्य कमेटी इस प्रश्न की जाँच कर रही है। मगर जो बात वर्तमान कमेटी में उठाई गई है, उसका रिपोर्ट में उल्लेख न हो, यह बात उनकी समझ में नहीं आई।

लगभग बीस मिनट तक यह बहस चली, और अन्त में भारत का सुझाव मान लिया गया।

हम तीनों बाहर आए—और जनरल एसेम्बली बिल्डिंग की लॉबी के बाहर आँगन के परे एक बेंच पर बैठ गए। दिन का प्रकाश धीमा पड़ रहा था और बिजली का प्रकाश न्यूयार्क की सड़कों व भवनों को चमका रहा था। हमारे सामने पानी का गोल फव्वारा था, जिसे अमरीका के विद्यार्थियों ने चन्दा इकट्ठा करके बनाया था। दिन की गर्मी शाम की ठंड में घुलती जा रही थी।

श्री अमाया बोले, 'जो कुछ … हमारे साथ बैठकर देखा है, वही … दिन देखते हैं, आप भारतीय हैं, … आपके मुँह पर ऐसी बात कर रहे हैं … आप अन्यथा न लें। केवल भारत … देश है जो गरीब परतंत्र देशों के … के लिए अपनी आवाज उठाता है, … लिए लड़ता है। बाकी देशों के … बैठे रहते हैं, चुपचाप सुनते रहते हैं।'

मैंने उनकी सद्भावनाओं के लिए … धन्यवाद दिया। इस पर उनके साथी … 'हम कैलीफोर्निया में रहते हैं, और … पहले भ्रमण के लिए निकले हैं। … हम पानी के जहाज से स्पेन जाएँगे, … जाएँगे, यूरोप के अन्य देशों की सैर … अमरीका के समाचार पत्रों द्वारा … राष्ट्र संघ की जो कार्यवाही हमें … मिलती है, वह सच्ची व पूरी नहीं … यह तो हमें यहाँ आकर पता चला। … हमें पता तक न चलता कि … देशों के लिए भारत कैसा मोर्चा …

बातचीत के दौरान में … श्री अमाया व उनके साथी … रिकन हैं। उनसे मिलकर … एक ऐसे पक्ष का पता चला … और … है, और … राजनीति के प्रचार-विभाग का … नहीं पड़ता।

क
हा
नी

*

स र का री

*

रमेश बक्षी

*

जेकेट की पाँच, कोट की छः, पैंट की दो, शर्ट की एक और रेशमी शेरवानी की सात जेबें टटोलने तक तो मोहनबाबू ने धीरज रखा। सोचा कि भई अगर इसमें वह कागज न मिला तो उसमें होगा और उसमें भी न मिला तो उसमें तो होगा ही। पर जब उन्होंने टेबिल के दोनों दराजों की सारी धूल झटक दी फिर भी उस कागज का पता न लगा, तो वह परेशान हो गये। उन्होंने सिर पर हाथ रख सोचा कि 'चार दिन पहले तो वह कागज मेरे शर्ट की जेब में था, फिर मैंने·· जब छींक आई थी तो रुमाल निकालते समय वह कागज भी बाहर निकाल लिया था और उसे कोट की जेब में रख लिया था, फिर आफिस से लौटते समय आलू खरीदे थे और दोनों जेबों में आलू भरने से पहले वह कागज निकालकर पैंट की जेब में रख लिया था। फिर मैंने लौटती बार चार अंडे खरीदे थे क्योंकि डाक्टर ने दूध अंडे पीने की सलाह दी है। हाँ, ठीक याद आया। मैं हाथ में अंडे लिये आ रहा था कि तभी मुझे बीबीजी के भाई साहब सामने से आते दिखाई दिये थे और उनसे छिपाने के लिए मैंने अंडे पैंट की

नबाबू मुस्कराकर बोले—'कुछ सरकारी मुस्कराहट के लिये कह ।' बात सुन लीला हँस दी तो वे अब एक सरकारी गुड-बाइ...।' ा ने ऊंह कर दरवाजा बन्द करते —'वह कुछ नहीं, यह लो सरकारी ,'

नबाबू ने आफिस का रास्ता ला की मुस्कराहट में वह ऐसे खो ; सरकारी कागज का गुमना ही इसी गुनतारे में जरा देर हो गई त के रास्ते से न जाकर सरकारी चले।

स पहुँच, रजिस्टर खोल, सही ही रहे थे कि ग्यारह पैंतालीस के ी खाली ग्यारह ही लिख दूँ तो इतने में हेडक्लर्क ने उन्हें देख, पाषा में ताना मार ही दिया— है मोहनबाबू, आज तो सरकारी आये।'

ा दिये। कुर्सी पर जा बैठे, तभी ागज की याद आ गई। उन्होंने ा और कुर्सी को पहना दिया, निकालकर रद्दी की टोकरी में उनके देखते रद्दी की टोकरी एक ारी जगह है जहाँ हर चीज स्टैंड पर रखी सायकल जैसी ३ सकती है। वे रेकर्ड-क्लर्क हैं, मर की फाइलें उनके कब्जे में त छः दिन से वे सब की सफाई और तब ही वह सरकारी कागज पास आया था, सो उन अल-मारियों में रखी फाइलों को देखकर यह ही लगता था कि ये बन्द मुट्ठियाँ हैं, जिनमें धूल है या फूल है या किसी में सात और किसी में तीन कौड़ियाँ है, यह बतलाना बारीक सुई में सुतली पिरोने की तरह कठिन काम था। सोच विचार के बाद उन्होंने यह तय किया कि वे 'ए-छः हजार चार सौ पचास बटे इक्कीस-तीन-उन्नीस सौ आठ' की फाइल से उस कागज की खोज शुरू करेंगे। तभी पास की कुर्सी पर बैठे मिस्टर तिवारी ने पूछा—'क्या खोज हो रही है, मोहनबाबू ?'

मोहनबाबू ने अलमारी से फाइल निकालकर नीचे गिराते हुए कहा—'एक सरकारी कागज गुम हो गया है उसकी खोज करना है। न मिला तो मुश्किल सिर पर आ जायगी।'

टाइपिस्ट मिस देशपांडे ने यह सुना और फाइल से उड़ी धूल उसकी नाक में घुसी तो वह मुड़ कर बोली—'जरा धीरे मोहनबाबू। सारे कमरे में धूल ही धूल हो जाएगी।'

जवाब देने से पहले मोहनबाबू ने और भी दो चार फाइलें नीचे धूल उड़ने को गिरा दीं, फिर बोले—'व्हेरी सॉरी, मिस देश-पांडे! मुझे एक सरकारी कागज ढूँढना है।'

वह कुछ न बोली, क्योंकि मोहनबाबू दुपहर में कैंटीन में इकट्ठे हुए क्लर्क-दोस्तों के सामने मिस देशपांडे को सरकारी लड़की कहा करते थे!

फाइलों की धूल और गरमी और परे-शानी से मोहनबाबू का पारा धीरे-धीरे
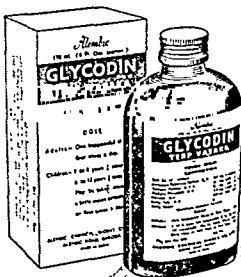
आ रहा था। मिस्टर तिवारी ने
ी से कहा कि 'मोहनबाबू कोई
ो कागज ढूँढ रहे हैं।' वर्माजी ने
ो को बतलाया कि—'कोई सरकारी
इधर उधर रख दिया गया है, आज
पड़ी तो आफिस की सारी फाइलें
पड़ रही हैं।' शर्माजी ने यही बात
साहब को सिगरेट पीते हुए इस
तलाई कि—'मोहनबाबू जवाबदेह
नहीं है। काम क्या करते हैं बेगार
, कोई सरकारी कागज था, इधर का
र दिया। आज हुई मांग उसकी,
याद आ रहे हैं।'

सेना साहब बड़े रसिक क्लर्क हैं।
कर जा पहुँचे मोहनबाबू के पास।
म क्यों धूल फाँक रहे हो मोहनबाबू,
ीं प्यून है तो सही।' इतना कह
टेबिल पर रखी घंटी बजा दी।
चिढ़ गये। बोले-'मुझे काम
सक्सेना साहब। तुम्हे कोई काम
अगर, तो कैंटीन में जाकर चाय
ुझे परेशान मत करो।'

ना साहब घाघ आदमी हैं। व्यंग
े-'अपने हेड क्लर्क साहब को
देशपांडे को तुम्हारी इस भूल से
होती है।'

मोहनबाबू के हाथ में अलमारी की
ने से खून निकल आया, वे
बोले—'अगर इन दोनों को इस
तकलीफ होती है तो वे चूल्हे में
जाएँ, मैं रेवड़ियाँ बँटवा दूँगा।'
देशपांडे बैठी-बैठी अपना नाम ही
टाइप कर रही थी। मोहनबाबू की बात
सुन उसने ओंठ काट लिये और अपना
गुस्सा न रोक पाई तो अपने नाम के आगे
सितारे-सितारे टाईप करती चिल्लाई—'अपनी
जबान सम्हालकर बोलिये, मोहनबाबू! कई
दिनों से आपकी हरकतें देख रही हूँ। मैं
आज ही हेड क्लर्क से शिकायत करती हूँ।'
कहते हैं न कि, गुस्से की हरकत से लड़कियों
की जबान कैंची हो जाती है और यदि
कैंची न चली तो वे या तो तोड़फोड़ करने
लगती हैं या फिर तेजी से चलने लगती हैं।
सो मिस देशपांडे तेजी से उठी और बाहर
चली गई।

मोहनबाबू को ऐसी आशा नहीं थी और
इस बात से जब सक्सेना साहब की रसिकता
बढ़ी और उन्होंने कहा—'तुम आज्ञा दो
मोहनबाबू तो मैं जाकर उस सरकारी लड़की
को मना लाऊँ।' तो जवाब में मोहनबाबू ने
चार गट्ठर नीचे गिराये और बोले—'तुम
भी मरो।'

सक्सेना साहब अभी तक समझे थे कि
मोहनबाबू मजाक कर रहे हैं पर जब उनके
रुख उलटे ही दिखे तो वे बोले—'यह ठसक
किस बात की है?'

'कैसी ठसक?' मोहनबाबू आग हो
रहे थे।

'तुम मुझे जानते नहीं हो मोहनबाबू।'
सक्सेना साहब जोर से बोले—'मैं अगर
जिद पकड़ लूँ तो तुम्हें कल ही [illegible]
गेट आउट करवा सकता हूँ।'

'दिमाग खराब हो गया हो [illegible]
करवाओ, सक्सेना साहब।' [illegible]

ी : रमेश बक्षी

दनी आवाज से बोले—'तुम जैसे कितने ही नत्थू-खैरे देखे हैं मैंने। हिम्मत हो और अपनी जबान से बोले हो, तो मुझे निकलवाकर देख लो।'

'ठीक है। अब देखो'—इतना कह सक्सेना साहब उधर ही चले गये जिधर मिस देशपांडे गुस्से में गई थीं।

आफिस के कमरे, बरामदे, कैंटीन, मैदान, सब जगह मोहनबाबू के गुस्से और सरकारी कागज के खो जाने की चर्चा होने लगी। लगातार तीन दिन तक वे फाइलें टटोलते रहे पर वह कागज कहीं न मिल पा रहा था।

सक्सेना साहब ने दुपहर की छुट्टी में हेड क्लर्क को कॉफी पिलाई और धीरे से कहा—'कान्फिडेन्शल बात है कि मोहनबाबू ने एक बहुत जरूरी सरकारी कागज खो दिया है।'

'सच कह रहे हो?'—हेड क्लर्क ने उत्सुकता से पूछा—'वह सीधे मुँह तो बात ही नहीं करता।'

'इतना ही नहीं'—सक्सेना साहब ने हेड क्लर्क का हाथ दबाकर कहा—'सारे आफिस में उसका व्यवहार अच्छा नहीं है और हाँ, कल कह रहा था कि हेड क्लर्क मर जाए तो मैं रेवड़ियाँ बँटवा दूँगा।'

यह बात पास से गुजरती मिस देशपांडे ने सुनी तो वह रुक गई और बोलीं—'मैंने भी यह बात सुनी है और मैं कहती हूँ वह नीच आदमी है। आप समझा देना उसे, बाबूजी।'

'देखा हुआ' के बाद दूसरों की 'हाँ' टेबिल पर पुती पीली मिट्टी प[illegible] फिरा देने की तरह होती है।

हेड क्लर्क ने सारी बातें ध्यान [illegible] क्योंकि मिस देशपांडे कभी झूठ न[illegible] सकतीं। एक आदमी दूसरे [illegible] नीच कहता है तो उसका अर्थ [illegible] है पर एक लड़की जब किसी [illegible] नीच कहती है तो उसका अर्थ [illegible] ही होता है और इस गूढ़ अर्थ [illegible] पर हेड क्लर्क ने उठते हुए कहा—'[illegible] अगर ऐसी बात है तो उसका [illegible] करवाना ही पड़ेगा।'

दूसरे दिन जब चपरासी ने [illegible] से कहा कि 'साहब' बारी-बारी [illegible] मंगवा रहे हैं तो उस समय भी मोहन[illegible] दिमाग ठिकाने पर नहीं था [illegible] क्लर्क, सक्सेना साहब और मिस [illegible] तीनों ही बड़े साहब के कमरे में गये।

मोहनबाबू ने कुछ सोच [illegible] कह दिया—'मैं थोड़ी देर बाद [illegible] यही बात चपरासी ने बड़े साह[illegible] सुनाई। पास में बैठे हेड क्लर्क ने 'सुन लिया जनाब! मैं तो [illegible] कि वह बड़ा नीच आदमी है। [illegible] देशपांडे के साथ उसने ऐसी [illegible] है कि हम यह बात करेंगे तो [illegible] न करेंगे।'

'नहीं नहीं।' बड़े साहब [illegible] सबकी बातों से यही लगता है [illegible] है।' साहब ने अपनी कलम [illegible] बोले 'मोहनबाबू को बुलाओ।'

इसी बीच सक्सेना साहब [illegible]

सार

री कागज उन्होंने गुमा दिया है।
इस का बड़ा नुकसान हुआ है इससे।'
तो मैं उसे डिग्रेड कर दूँगा और फिर
की हरकतें ऐसी ही रहीं तो उसे
दी जाएगी।" बड़े साहब ने बात
की तभी मोहनबाबू आ गये।
आपसे बारनिसी की फाइल मंगवाई
बड़े साहब ने कहा।
ी हाँ, पता लगा। कुछ कमी थी
पूरी करके ला रहा था।' वे इतना
चुप हो गये।
क है' बड़े साहब ने कहा, 'आप
, आपकी कुछ गलतियाँ मैं बतलाना
था।'
हनबाबू ने कुर्सी खींचते हुए उन
ी तरफ देखकर कहा—'आप लोग
मरे में जाइएगा।'
के जवाब में इन तीनों ने बड़े साहब
शिकायत भरी नजर से देखा।
हब बोले—'क्यूं? इन्हें मैंने बुलाया
प इन्हें जाने को क्यूं कह रहे हैं?'
इनके सामने आपके मुँह से अपने
कुछ नहीं सुनना चाहता।' मोहन
से बोले। उनकी आँखें चढ़ी थीं।
लक रहा था।
इनके सामने ही कुछ कहना चाहता
हब बोल ही रहे थे कि मोहनबाबू
और इतना कहते हुए सट से बाहर
कि—'मैं इनके सामने कुछ नहीं
ाहता।'
में सक्सेना साहब ने अगर एक
तो मिस देशपांडे ने एक की दो

लगाई और हेड क्लर्क हर बात के बाद 'हाँ' 'हाँ' की सील ठोंकते गये।

मोहनबाबू के मन में परेशानी थी, बाहर गुस्सा तमतमा रहा था। उन्होंने एक दिन की कैजुअल छुट्टी की दरख्वास्त चपरासी के हाथ बड़े साहब के कमरे में भिजवा दी और घर चले आये।

बन्दूक में कारतूस भरा हो और घोड़ा दबा हो, तो वह छूटता ही है, इसी तरह सक्सेना साहब और मिस देशपांडे और हेड क्लर्क के कारतूस कारगर हुए। दूसरे दिन आफिस पहुँचते ही अपने टेबिल पर मोहन बाबू ने साहब का पत्र देखा। लिखा था—'पहले मुझ से मिलो, फिर काम शुरू करो।'

मोहनबाबू साहब के कमरे में गये। पूछा—'आपने याद किया, मालिक।'

'हाँ'—साहब बोले—'मैं आपको डिग्रेड कर रहा हूँ। अब आपको आवक-जावक क्लर्क का काम करना पड़ेगा।'

मोहनबाबू हिल गये। यह सरासर अपमान था। पूछा—'कसूर जान सकता हूँ?'

'आपका व्यवहार लोगों के साथ ठीक नहीं है।' साहब ने पिनकुशन से एक पिन निकाल कर नाखून खुरचते हुए कहा।

'लेकिन मेरे व्यवहार का आफिस से तो कोई सम्बन्ध नहीं। मेरे व्यवहार में हँसी हो, खुशी हो, उदासी हो, पर इस बात का रंग रेकर्ड पर थोड़े ही चढ़ता है', मोहनबाबू ने अपने दोनों हाथ साहब की टेबिल रखकर कहा।

'लोग शिकायत करते है।' साहब का संक्षिप्त जवाब।

'यह तो कोई प्रूफ नहीं है, मालिक। मिस पांडे और सक्सेना साहब के पहले अगर मैं यहाँ आ पहुँचता और कहता कि वे बुरे हैं तो आप मेरी बात मान जाते। शिकायत राई की तरह होती है पर पहल उसे पर्वत बना देती है। जो पहल करता है...।'

साहब बीच में ही बोल पड़े—'मैं कहता हूँ...' मोहनबाबू ने उनकी बात काट कर कहा—'मै उन शिकायत करनेवालों के खिलाफ एक हजार एक उदाहरण दे सकता हूँ पर यह मेरा सरकारी नेचर है जो मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ।'

'यह सरकारी क्या है?' साहब ने पूछा।

'सरकारी का मतलब है खास, निश्चित विशेष, पर्टीक्यूलर, असाधारण, निर्दिष्ट।'

साहब ने पूछा—'किस डिक्शनरी में है यह?'

'अभी तक किसी डिक्शनरी नहीं आया और..'

साहब बीच ही में बोल दिये—'खैर छोड़ो इस बात को। अगर व्यवहार की बात छोड़ भी देते हैं तो आपने वह कागज गुमा दिया है।'

'कौन-सा कागज?' मोहन बाबू ने पूछा।

'सरकारी कागज—मिस देशपांडे और सक्सेना साहब और हेडक्लर्क थे—यह कितनी बड़ी गलती है कि सरकारी कागजों को...' साहब ... बोले।

'सुन लिया, साहब। आप चेक सकते हैं, मैंने कोई सरकारी कागज गुमाया है।' मोहनबाबू तिलमिला गये।

'तो यह बताइये कि आप तीन दिन कौन-सा सरकारी कागज ढूँढ रहे थे।'

'मेरी बहन की जन्म-पत्रिका थी मुझे उसकी सगाई के सिलसिले में बाहर भेजनी थी, जिसे आफिस में कहीं दिया। मैं तो उसे ही ढूँढ ...' मोहनबाबू एक सांस में बोले।

'पर आप ही तो कह रहे थे कि सर कागज गुमा है?' साहब ने फिर पूछा

'मैंने अभी आपको बतलाया है सरकारी का मतलब मेरे लिये ... निश्चित, विशेष, पर्टीक्यूलर, असा... छँटवा', मोहन बाबू अपने लहजे में ...

बात सुन बड़े साहब ने कहा— जा सकते हैं।' मोहनबाबू अपनी पर आकर बैठे तो उनका सरकारी ... उतर गया था पर मिस देशपांडे सक्सेना साहब की तरफ देखकर ... सोचते हुए कि 'लोग कितने बुरे होते उनके चेहरे पर उदासी छा गई, और क्यों उनकी आँखों में कुछ सरकारी छलक आये।

* * *

मुन्नी रोई तो भला क्यों ?

मुन्नी ने जब रोना शुरू किया तो पहिले फुस फुस करने लगी। फिर मुब्कियाँ भरीं औ
देखते आसमान सर पर उठा लिया। मुन्नी की सहेली नीनू चुपके चुपके मुन्नी को मन
अपनी तोतली भाषा मे कह रही थी, "ना रो मुन्नी, जब मेरे पिता जी ओफिश से आयेंगे
मै बौलूंगी ..." लेकिन नीनू की सुनता कौन है। मुन्नी की नई गोल मटोल गुड़िया
गुलाबी गालों पर मैल का बडा सा तिल लगा था, गुड़िया की नई फ्राक पर मैली उंगलियों
पडे थे ... और मै खिड़की की ओट में खडी यह तमाशा देख रही थी। जब मुन्नी नहीं
अंदर आई। मुझे देख कर तो जैसे गवैया वाह वा पाने पर ऊंची ऊंची तानों में गाने लग
उसी तरह से रोने लगी। बेचारी नीनू, हमारे पड़ोसियों की लड़की, दुबक कर सहमी सी
कोने में खड़ी हो गई। अभी मैं सोच ही रही थी कि मुन्नी को मनाऊं तो नीनू और घब
जो नीनू को दिलासा दूँ तो मुन्नी अपनी चीख़ों से
फाड़ देगी, तभी नीनू की माँ, सुशीला दौडी आई
लपक कर गोदी में उठाया और लाड से कहने लं
बिटिआ को कौन मारता है।"
और बिटिआ रानी सिसकियाँ ले ले कर बोली, "च
नीनू—नीनू ने गुड़िया की फ्राक मैली कर दी!"
"ओ, हो, हो! हम नीनू को मारेंगे। अपनी
नई फ्राक लाके देंगे।"
"चाची, चाची, मेरे लिये नहीं, गुड़िया के लिये।"
मुन्नी, नीनू और गुड़िया को सुशीला अपने साथ ले गई
के काम काज में लग गई। शाम के चार बजे होंगे जब

र नाचती हुई घर आई। नई फ़्राक देख कर मैं ने सुशीला
न से आवाज़ दी और चाय मेरे घर पीने को कहा।
आई तो मैं ने शिकायत की: "भला नई फ़्राक लाने
ज़रूरत थी?"
ई नहीं बहिन! वही तो है। ज़रा धो डाली और
दी, बस!"
धो डाली! ना बहिन, यह तो बहुत ही साफ़
ली धुली है! क्या चमक रही है!"
का एक घूंट पी कर बोली: "यह तो
कि इसे सनलाइट से धोया है। घर के कुछ कपड़े
था चलो मुन्नी की गुड़िया की फ़्राक भी धो डालूँ।"
में कहा अब बात की जड़ तक उतर के रहूँगी: "तो
पड़े धो डाले तुम ने? अब हमें बनाओ मत! कपड़े पीटने
पटखने की आवाज़ तक तो आई नहीं!"

सुशीला बोली: "अब चाय पी लें तो घर चल कर तुम्हें एक चीज़ दिखाउंगी।"
सुशीला मज़े से चाय पीती रही, मुसकराती रही, मुझे देखती रही।
मैंने तो ऐसे तैसे कर के चाय पी डाली।
उस के घर जा कर देखा तो इकट्ठे किये हुए कपड़ों का ढेर पड़ा था।
उन्हें गिनने के लिए मैं हाथ लगाते डरती थी कि कहीं मैले न हो
जाएं। सुशीला से बातों बातों में मालूम हुआ कि ये सभी कपड़े
उस ने सनलाइट से धोए हैं। इन में चादरें, तौलिए, पर्दे, पाजामे,
कमीजें, धोतियाँ, फ़्राकें, वग़ैरह वग़ैरह, कोई एक चीज़ तो नहीं
थी। मैं हैरान हो गई कि इतने सारे कपड़े धोए हैं तो समय भी
कितना लगा होगा और साबुन भी कितना ख़र्च हुआ होगा। उस ने मुझे
कि, "यह सभी कपड़े आसानी से, आराम से, कम ख़र्चे में साफ़ और उजले धुले हैं।
किया से ४०/५० छोटे बड़े कपड़े धोना कोई बड़ी बात नहीं।"

देख मैं ने फ़ैसला किया कि मैं भी अपने कपड़े सनलाइट
धोऊँगी। और सचमुच सुशीला की एक एक बात
थी। सनलाइट साबुन थोड़ा सा मलने पर भरपूर झाग
र वह भी ऐसा कि जो कपड़े के ताने बाने में जा कर
बाहर खींच लाए—न पीटने की ज़रूरत, न पटखने
र कपड़े साफ़ और उजले धुल जाएं।
त और! सनलाइट की सुगंध भी ऐसी है कि कपड़ों
छता की महक आती है और इस का झाग हाथों को
मुलायम रखता है। अब जिसे इतना कुछ मिले उसे
चाहिए!

आप में कितना आत्मविश्वास है ?

प्रत्येक क्षेत्र में सफलता और हर समय की प्रसन्नता के लिए आत्म-वि[illegible] महत्व रखता है। आत्मविश्वास का अर्थ यही नहीं कि हमें अपनी सामर्थ्य पर [illegible] हो, अपितु इसका तात्पर्य तो यह भी है कि हम अपने को अन्य लोगों के [illegible] बराबर समझें।

यदि हम में आत्म विश्वास की कमी है तो छोटा-सा काम भी हमें [illegible] कठिनतम होगा और हम किसी भी काम को करने के लिए पहले तो तैयार ही नहीं [illegible] और यदि ऐसा करना भी पड़ा तो बीच में ही दम तोड़ बैठेंगे। हमें दोनों में [illegible] और हृदय में सदा यही हीन-भावना बनी रहेगी कि मैं तो कुछ भी नहीं हूँ।

नीचे दिये प्रश्नों को ईमानदारी से अपने ऊपर आजमाएं। अंत में दी[illegible] से पहले इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' या 'न' में दें :—

हाँ

(१) क्या आप किसी से बातें करते वक्त बहुत कम झिझकते हैं?

(२) क्या आप निःसंकोच और बगैर किसी रुकावट, झिझक, घबराहट या हकलाहट के अपने भावों को भलीभाँति व्यक्त कर देते हैं?

(३) सार्वजनिक जन-सभा में मंच पर खड़े होकर बोलने के लिये क्या आप सदा तत्पर रहते हैं?

(४) क्या आपको [illegible] कर कर्तव्य से विचलित करना, औरों के लिये बहुत कठिन है?

(५) क्या आप विपरीत लिंगवालों (opposite sex) के साथ आसानी से रह सकते हैं?

(६) क्या आप सांस्कृतिक सम्मेलनों में क्रियात्मक भाग लेने के लिये सदा उत्सुक रहते हैं?

(७) क्या बहुत से लोगों के सामने भी आप अपनी टेक पर अड़े रह सकते हैं?

(८) "आप से मिलकर लोगों को काफी प्रसन्नता होती है या

वे सदा आप से मेल-जोल रखने को लालायित रहते हैं" अपने बारे में क्या आप इस तथ्य की पुष्टि कर सकते हैं ?

	हाँ	ना
(६) क्या औरों के लिये, आपसे मिलना और आपके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना, आसान काम है ?		
(१०) क्या आप अधिकृत रूप से कह सकते हैं कि आपके जान पहचान के लोग आपको बहुत चाहते हैं ?		
(१) क्या आपका यह विचार है कि आप अपनी जाति में विशिष्ट स्थान रखते हैं, और आप जो काम कर रहे हैं वह असाधारण महत्त्व का है ?		
(२) प्रायः लोगों से बातें करते समय, क्या आप उनमें इतनी अधिक रुचि लेते हैं कि आपको अपना अस्तित्व ही भूल जाता है या उन पर पड़ रहे प्रभाव का भी आपको ख्याल नहीं रहता ?		
(३) क्या आप निश्चित रूप से कह सकते हैं कि लोग आपको चाहते हैं और हर जगह आपकी माँग है ?		
(४) जहाँ तक आपकी वेश-भूषा का सम्बन्ध है, क्या आप स्वयं को काफी हद तक आकर्षक, प्रभावोत्पादक और खुशगवार अनुभव करते हैं ?		
(५) आप ही पर कसे गये व्यंगों का क्या आप पूरी तरह मजा ले सकेंगे ?		
(६) क्या आलोचना आपको प्रोत्साहित करती है ?		
(७) क्या आप असफलता को और अधिक परिश्रम करने के लिये चुनौती समझते हैं ?		
(८) क्या निर्णय करना आपके लिए सहज है ?		
(६) अपने अफसर के साथ खाना खाने में या काम करते समय उसकी निकट उपस्थिति में, क्या आप प्रसन्न रहते हैं ?		

कसौटी :—प्रत्येक 'हाँ' के लिये पाँच अङ्क लीजिए। ७० अङ्क पानेवाला [illegible]ा है ; ५०-६० वाला भी सन्तोषजनक है और ४०-५० वाला भी ठीक ही है। लेकिन [illegible]दि ४० से कम अङ्क आए तो आप में आत्मविश्वास की कमी है।

आप अपने जीवन में नवीनता लाएं। दूसरे लोगों में दिलचस्पी लें और [illegible]म में मन लगाएं। अपने को महत्त्वपूर्ण समझें और अवकाश के समय के [illegible] [illegible]ी' अख्तियार करें। इसी प्रकार आत्मविश्वास की भावना को प्रोत्साहन

[illegible]हनजीत सिंह

बातों का जा

हमारे मुहल्ले की रौनक रमेश के दम से है। बातों के उलझाव में डा
वह इस भोलेपन से अलग खड़ा हो जाता है कि आप उसे कोसते रह ज

एक दिन शाम के समय भाई साहिब और माता जी के साथ
मैं चाय पी रही थी कि रमेश आ गया। मैं ने चाय बना कर दी तो नर
बोला, "यह क्या! बस रूखी सूखी चाय! कुछ खाने को भी तो लाओ!"

"खाने को जो था, मैं खा गई!" मैं ने जवाब में कहा, "मुझे क्या प
रमेश भय्या पधार रहे हैं!"

"कुछ खास बनाया था खाने को तो तुम्हें चाहिये था कि हमें बुला भेजतीं! ले
तुम तो हमारे साथ वही बरताव करती हो जो वनस्पति के साथ होता है!"

रमेश की इस बेतुकी बात पर हम सब को हंसी आ गई! और माता जी
"वनस्पति के साथ कैसा बरताव होता है, रमेश बेटा?"

"यही चाची कि अब जैसे भाई साहिब को जूता खरीदना हो तो ब
मुझे जाना पड़ता है। किताबें तुम्हारी लाडली शीला को चाहियें और दुकान
में माथा फोड़ता हूँ! खाना पीना भाई साहिब और शीला के पेट में और बर
मेरे माथे! बिल्कुल बेचारे वनस्पति वाली बात हुई ना कि लाखों घरों में
आता है, मगर घटिया गिना जाता है, क्यों?"

"यह आज वनस्पति की रट क्या लगा रहे हो?" भाई साहिब बोले।

"ज़रा आप के जेंनरल नॉलेज की परीक्षा ले रहा हूँ" रमेश ने कहा।

"मगर बाद में यह सलाह दे देना कि भाई साहिब वनस्पति की दुकान
लीजिये!" भाई साहिब हंसते हुये बोले!

"नहीं, बिल्कुल नहीं! अगर आप इस का ठीक जवाब दें कि लाखों घ
काम आने पर भी वनस्पति घटिया क्यों माना जाता है?"

इस लिए," भाई साहिब ने कहा, "कि मनुष्य लकीर का फ़कीर है। और में हमें वनस्पति इस्तेमाल करते अभी देर ही कितनी हुई है! 'डालडा' ही को यही केवल ३२ वर्ष हुये हैं इसे बाज़ार मे आये। और इस के अलावा इस ध्द हमारी शंकाओ का एक कारण हमारा यह ख़्याल भी तो हो सकता है कि हुआ आहार "कुदर्ती" खाद्य पदार्थों के मुकाबिले मे कम पौष्टिक होता है!" लेकिन यह बात तो लगभग ठीक है कि नही?"

यह बिल्कुल गलत है! वनस्पति के सब से लोकप्रिय छाप 'डालडा' ही तो। यह सच बात है कि 'डालडा' शुध्द वनस्पति तेलों से बनाया जाता जो चाहे जा के कारखाने मे देख ले। यह भी सच बात है कि इस मे न 'ए' और 'डी' उसी मात्रा मे मिलाये जाते हैं जितने वे आम तौर पर ' पदार्थों में होते हैं। यह भी सच —"

ज़रा रुकिये! ऐसा भी तो हो सकता है कि इन के बनाये जाने की विधि इन की ता के लिय हानिकारक हो!"

बिल्कुल नहीं। खाद्य वैज्ञान के जानकारों ने यह साबित कर दिया है कि क्ति वैसी की वैसी रहती है। यह याद रखो कि 'डालडा' का निर्माण कड़े री आदेशों के अनुसार होता है। और भारतीय सरकार की नियुक्त की हुई ीन की कमेटियाँ वनस्पति की अच्छी प्रकार जाँच पडताल कर चुकी हैं। उन हना है कि यह बिल्कुल कोई नुकसान नही पहुँचाता बल्कि स्वास्थ्य के लिए गी है।"

'धन्यवाद भाई साहिब! इस से कुछ तसल्ली तो हुई, लेकिन अब इस का क्या ा कि जो 'डालडा' हमारे घर मे आता है वह भी शुध्द और पौष्टिक है?"

'जो 'डालडा' तुम खरीदते हो — चाहे कहीं भी खरीदो — वह मेल मिलावट छूआ छात से सुरक्षित मुहर बंद डिब्बों में मिलता है। बनाते समय इसे हाथों बिल्कुल छुआ नहीं जाता। इसे बनाने वाली एक प्रसिध्द पब्लिक कम्पनी है का दावा है कि इस के संबंध मे जो कहा जाता है वह बिल्कुल सच है — यह खाना पकाने की एक सर्वोत्तम चिकनाई है जिस मे स्वास्थ्यकारी विटामिन ये जाते हैं। अब तो तुम्हारी शंकायें दूर हुईं कि नहीं?"

"मैं ने कब कहा कि मुझे इस के विरुध्द शंकायें हैं। हमारे घर मे तो 'डालडा' ही माल होता है!"

तने वादविवाद के बाद रमेश के इस जवाब पर मेरी हंसी छूट गई और माता जी लोट पोट हो गईं। मगर भाई साहिब भिन्ना गये," तो पाजी, तू मुझे बना रहा!" और उसे पकड़ने को लपके। मगर रमेश यह जा वह जा — गायब! मैं ने ने कहा था ना, कि बातों के ठलभाव में डाल कर वह इस भोलेपन से अलग ता है कि आप उसे कोसते रह जायें!

बंगला साहित्य के प्रसिद्ध हास्य-रस मर्मज्ञ श्री० पर[शुराम]
की एक व्यंग-कथा का हिन्दी-रूपान्तर

जिला जज लोकनाथ पाल अत्यन्त धर्म-भीरु और भले आदमी थे।
यही भय लगा रहता था, कि कहीं कोई धूर्त उनसे अन्याय न करा
महीने बाद ही तो वे रिटायर्ड होने वाले थे अतः जज्जियत के अन्तिम दि[न]
तरह के अन्याय का कलंक न लग जाय, इस पर वे बहुत ही सतर्क रहते
दिनों से रिश्वत-तत्त्व पर एक पुस्तक लिखना चाहते थे वे। अतएव
अपनी नोट बुक में आवश्यक बातें लिखा करते थे। आज रविवार को
नीचे की मंजिल के अपने ऑफिस रूम में बैठे लोकनाथ बाबू आवश्यक बा[तें]
में दर्ज कर रहे थे—

कौटिल्य ने लिखा है मछली कब पानी पीती है, और अफसर लोग कब
हैं, कोई जान नहीं सकता। परन्तु एक बात कौटिल्य ने भी नहीं कही कि
स्वयं रिश्वत लेनेवाला ही नहीं जान पाता कि वह रिश्वत ले रहा है या
स्थूल रूप में हमेशा नजर नहीं पड़ता। कभी-कभी तो वह सूक्ष्म ही नहीं
रूप में ही मौजूद रहता है। तब उसका स्वरूप पहचानना बहुत कठिन है
स्पष्ट रिश्वत, प्रच्छन्न रिश्वत तथा निष्काम उपहार, इनका सब जगह पार्थक्य
जा सकता। मान लीजिये, रामबाबू एक उच्चपदस्थ व्यक्ति हैं, उनके दफ्तर
अच्छी जगह खाली पड़ी है। योग्यतम व्यक्ति का निर्वाचन ही रामबाबू
हैं। उधर श्यामबाबू का जमाई भी इसी पद का प्रार्थी है, तथा उसने दरख्वास्त
दी है। श्यामबाबू ने रामबाबू से कहा, आपके हाथों में है सब कुछ।

ो ही लीजिएगा, हजार रुपये अभी
[illegible], बहाल हो जाने पर हजार और
यह हुआ रिश्वत का स्थूल रूप।
पक्का रिश्वतखोर, अथवा दुर्बल-
मी के सिवाय इसे और कोई
ीं करेगा। या फिर मान लीजिये
बाबू के साथ श्यामबाबू की भी
मित्रता है। एक हँडिया सन्देश
रामबाबू ने कहा, काशी से मेरी
हैं, प्रसाद भेजा है। मेरे जमाई
न जानते ही हो, बहुत ही अच्छा
। उसकी दरखास्त की ओर जरा
ला भैय्या। तुमसे और ज्यादा
! यह हुआ रिश्वत का स्थूल रूप,
ए में कुछ कम। परन्तु मान
के कैसा भी अनुरोध न कर श्याम-
लाब का एक गुच्छा देते हुए कहा,
र वाले बगान के हैं। यह हुआ
ा सूक्ष्म रूप। इसका फल है
निश्चित, पर निरापद जानकर ही
देने का साहस कर सकें। आशा
सते हो रामबाबू खुश हो जायेंगे।
मान लीजिये कि रामबाबू की
मार पड़ गयी। श्यामबाबू की
कर दिन-रात अथक सेवा-सुश्रूषा
री अच्छी भी हो गयी। अब
ो की यह अथक सेवा, अनकही
रिश्वत का सूक्ष्म रूप है या
सेवा, यह निश्चित करना
हीं। अगर रामबाबू पूर्णतया-
र साधुपुरुष हों तो वे श्यामबाबू
के बारे में जरा भी पक्षपात नहीं
करेंगे। हाँ, दूसरे तरीके से कृतज्ञता भले
ही प्रकट करें। परन्तु रामबाबू यदि बन्धु-
वत्सल तथा कोमल प्रकृति के व्यक्ति हैं तो
श्यामबाबू-गृहणी द्वारा अपनी बीमार लड़की
की सेवा से जाने-अनजाने प्रभावित होंगे
ही। इसके अलावा और भी एक तरह की
रिश्वत है, वाङ्मय रिश्वत, जिसका आर्थिक
मूल्य कुछ भी नहीं है अर्थात खुशामद और
तारीफ। अगर इसका प्रयोग निपुणता से
किया जाय तो कोई बुद्धिमान सज्जन भी
प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते।

लोकनाथ बाबू के लिखने में बाधा पड़ी।
दरवाजा खोल एक वृद्ध ने प्रवेश करते हुए
कहा, कैसे हो लोकनाथ बेटा? बहुत दिनों
से तुम लोगों को नहीं देखा था। अरे! यह
क्या पहचान नहीं पा रहे हो? अरे मैं हूँ
तुम लोगों का मोहित फूफा, बेहला का
मोहित समजदार। कहाँ है री पान्ना—
जरा इधर तो आना बेटी।

चीखपुकार सुन लोकनाथ-गृहणी पान्न
बाला बाहर आई। आगन्तुक को पहचानने
में उसे भी कुछ देर लगी। परन्तु फिर याद
आने पर प्रणाम कर बोली, मोहित फूफाजी
आये हैं? अहो भाग्य!

अगत्या लोकनाथ को भी प्रणाम करना
पड़ा।

मोहित समजदार ने पुकारा, रामबचन!
सामान सब यहीं ले आ भैय्या। मोहित
बाबू का अनुचर बाहर प्रतीक्षा कर रहा था,
अब अन्दर प्रवेश कर उसने अपने मालि
के सामने चार बण्डल रख दिये।

एक कार्ड बोर्ड का बॉक्स पारुल के हाथों में देते हुए मोहितबाबू ने कहा— पश्मल काश्मीरी शाल है। खास तौर से तुम्हारे लिये ही लाया हूँ, देखो पसन्द है या नहीं। शाल देख पारुल आनन्द से गद्गद् हो बोली, बहुत अच्छा है।

मोहितबाबू ने कहा, लोकनाथ बेटा, तुम्हें तो किसी बात का शौक है नहीं, केवल किताब और किताब। अतः तुम्हारे लिए वॉलनट का एक बुक रैक लाया हूँ और इस बक्स में काश्मीरी ताफ्ता है। एक साड़ी और दो एक ब्लाउज बन सकते हैं। और इस टोकरी में कुछ मेवा है, बदाम, अखरोट, किशमिश, ... यही सब।

कुण्ठित होते हुए लोकनाथ ने च्-च्-च्। ओह, हो! ये सब क्यों आप? ये तो बहुत कीमती चीं... नहीं-नहीं, ये सारी चीजें न दें।

मोहितबाबू ने कहा, अरे बेटा ... सार्थकता तो खर्च करने में ही है। फिर तुम लोग ही तो अपने हो। तुम्हें देकर मुझे कुछ तृप्ति मिले तो ... न दूँ, और तुम लोग भी क्यों नहीं...

ने कहा, लेंगे क्यों नहीं फूफा-
का स्नेहदान तो माथे से लगा
अभी कहाँ से आ रहे हैं, आप?
फूफी को क्यों नहीं साथ ले
ी और बाल-बच्चे सब अच्छे तो

मजे में हैं। एक दिन अवश्य
हैं भी। बहुत दिनों बाद कल-
ाहूँ। उधर बेहला का मकान
से चाहा वैसे ही गन्दा कर
हले जरा उसे ठीक कर लूँ
ी को लेकर आऊँगा। नहीं..
..चाय वगैरह कुछ नहीं, अभी
की फुर्सत नहीं है, बहुत जगह
ाज जा रहा हूँ। तूफान-सा
गया। ठीक है न? बुरा न
। एक दिन फिर आऊंगा।

ाला से प्रश्न करने पर लोक
कि मोहितबाबू उसके अपने
ो फूफा के भाई हैं। बचपन में
फूफा के साथ ये रिश्तेदार
ा करते थे।
र कभी कमार वे दीख पड़ते
बू ने तरह तरह के कारोबार
मगर अब कुछ नहीं रहा।
उन्हें कोई खास नुकसान
तो नहीं लगता। उनके घर
ी ही है। बहुत से अमीरों
भी हैं। आजकल ये क्या
नहीं। लोकनाथ अपने कमरे
लगे—मामा के साले, फूफा
के भाई—इनके साथ भला क्या रिश्ता!
फिर मोहितबाबू का स्नेह आज अचानक
इतना कैसे उमड़ पड़ा? बहुत पहले लोकनाथ
ने अपनी ससुराल में इस कृत्रिम फूफा को
शायद देखा हो, मगर अब तो जरा भी याद
नहीं। फिलहाल मोहितबाबू का कोई
मतलब नहीं दीख पड़ता। बहुमूल्य उपहार
भी दे गये हैं, प्रतिदान में कुछ चाहा भी
नहीं है। हो सकता है, दो एक दिन बाद
ही कोई नाजायज फर्माइश कर बैठें।

लोकनाथ ने अपनी पत्नी से कहा,
देखो इन फूफा जी की दी हुई चीजें अभी
सँभालकर रखो, हो सकता है लौटाना पड़े।
इन सब बहुमूल्य चीजों की वजह से मैं
काफी दुविधा में पड़ गया हूँ। कुछ समझ
में नहीं आता।

पारुल बाला ने कहा, इसमें दुविधा
की क्या बात है। वे हमें स्नेह करते हैं,
इसलिए दे गये हैं।

—कोई अपने खास रिश्तेदार तो हैं
नहीं ये! उनके अपने बाल-बच्चे भी तो
हैं। फिर हम लोगों पर आज अचानक
इतने स्नेहविह्वल कैसे हो उठे?

—दोष खोज लेना तो तुम्हारी आदत
ही है। क्या हुआ जो उनके बाल-बच्चे
भी हैं? दूसरों के प्रति क्या कोई आकर्षण
नहीं हो सकता? फूफा जी बड़े आदमी हैं,
उदारमना हैं। अगर कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ
उपहार में दे डालीं तो सोचने-समझने की
क्या बात है? कोई रिश्वत तो है नहीं!

—खैर जो हो, तुम अभी इनको इस्ते-
माल में न लाना।

पारुल बाला ने कटु स्वर में कहा: क्यों न करूँ? ऐसी चीजें न तो तुम ने मुझे कभी आज तक लाकर दी हैं, और न तुम उनकी कद्र ही जानते हो। फूफाजी ने प्यार से ये चीजें दी हैं तो तुम क्यों बाधा देते हो। और बहुमूल्य चीजें तो तुम्हें नहीं, मुझे दी हैं। तुम्हें जो लकड़ी का रैक दिया है, उसे चाहो तो लौटा देना।

लोकनाथ चुप हो गये।

दो दिन बाद मोहितबाबू फिर आये। साथ में फूफी नहीं, एक अपरिचित महाशय आये थे।

मोहितबाबू ने कहा, घर में सब अच्छे तो हैं लोकनाथ? ये हैं श्री गिरधारीलाल पाचाडी, बहुत बड़े व्यापारी हैं। मेरे खास दोस्त हैं। ये एक प्रस्ताव लेकर आये हैं।

लोकनाथ ने सोचा, अब शायद फूफा जी का स्नेह-रहस्य जाहिर हो जायगा। पूछा, कैसा प्रस्ताव?

—अच्छा बेटा, पहले यह बताओ कि तुम्हारे रिटायर्ड होने में कितने दिन हैं अभी?

—फिलहाल तो एँक्सटेन्शन में हूँ—यही कोई ६ महीने बाद।

—इसके बाद क्या करने का विचार है?

—कुछ नहीं, लिखता-पढ़ता रहूँगा।

हाथ हिला मोहितबाबू ने कहा—ना ना ना ना ना, खाली हाथ बैठ रहना ठीक नहीं। तुम्हारी सेहत भी तो ठीक है। आयु होने पर भी बुड्ढे से तो नहीं लगते। फिर रोजगार क्यों नहीं करोगे! लिखा है, "अजरामरवत् प्राज्ञो [illegible] चिन्तयेत्।" तुम ठहरे प्राज्ञ! [illegible] के साथ हो लिखने-पढ़ने भी [illegible] कहता हूँ, उस पर विचार करो।

मोहितबाबू ने जरा आगे [illegible] धीरे कहा, ये गिरधारी लाल [illegible] सिक्किम स्टेट के बहुत बड़े ठेकेदार [illegible] कम्बल, लकड़ी, कस्तूरी, बड़ी [illegible] चिरायता, मक्खन, घी इत्यादि वहाँ से यहाँ भेजते हैं और यहाँ [illegible] चावल, गेहूँ, तेल, चीनी, नमक, [illegible] तेल वगैरह यहाँ से वहाँ। [illegible] सारा आयात-निर्यात इन्हीं के [illegible] सिक्किम के महाराज भी इनकी बड़ी [illegible] करते हैं और बहुत से कार्यों में इन्हीं [illegible] लेते हैं। महाराज ने इस बार इन्हें [illegible] है—आप ही स्वयम् कहिये न गिरधारी [illegible]

गिरधारी लाल ने कहा, सुनिये, [illegible] महाराज अपनी बड़ी अदालत के लिये [illegible] चीफ़ जज चाहते हैं। वहाँ के व्यक्ति [illegible] उन्हें विश्वास नहीं होता। उनको [illegible] सारे के सारे रिश्वतखोर हैं। और [illegible] व्यक्ति की खोज करने का भार इन्हें [illegible] दिया है। मैंने मोहितबाबू से चर्चा [illegible] उनसे सुना कि आप ही इसके लिये [illegible] धिक योग्य व्यक्ति हैं। जैसे विद्वान [illegible] ईमानदार और साधु-पुरुष।

लोकनाथ ने कहा, सिक्किम [illegible] अगर चीफ जज की जरूरत है तो [illegible] सरकार को क्यों नहीं लिखते! [illegible] ने कहा, लिखेंगी, अवश्य [illegible]

रिश्वत [illegible]

ी स्वयं ही निर्वाचित करेंगे,
त सरकार को लिखेंगे कि
ाक्ति अच्छा जँचता है अतः
ाय। दिल्ली से कोई ऐसा-
आये, यह वे नहीं चाहते।
ाह है। और फिर दस वर्ष
ाल सुरक्षित। यहाँ के हाई-
से कहीं अधिक तन्खा है,
मोटर आदि अनेक सुविधायें
ार आपत्ति न हो, तो गिर-
(जाकर महाराज से तुम्हारा

ने कहा—बिना विचार मैं
सकता।

ा ठीक। विचार तो करना
अच्छी तरह सोच-विचार
ा से भी सलाह कर लो—
ही है। पर देखो, अधिक
ा। कारण उधर महाराज
इस विषय को तय कर डालना
र फिर ये महाशय भी जापान
की यात्रा करना चाहते हैं।
च्छा दो चार दिन बाद फिर

ाबू के विचार और भी
गये। वे फिर सोचने लगे।
अजीब आदमी हैं। केवल
करते हैं, प्रतिदान कुछ नहीं
जाय, फिर जब वे आवें उनके
कोई आश्चर्य निकलता है

दो सप्ताह बाद मोहितबाबू अकेले ही आये। बैठते हुए आहत स्वर में बोले, गिरधारी लाल नहीं आ सके, वे अत्यन्त दुःखी हैं।

—क्यों क्या हुआ है ?

—अरे क्या कहूँ बेचारा बड़ी आफत में पड़ गया है। लड़की की शादी का सब कुछ तय हो गया—रामशरण पोद्दार के लड़के शिवशरण के साथ। पर उधर बेचारे शिवशरण की गर्दन पर कटार लटक रही है, अभी अवश्य जमानत पर छोड़ दिया गया है। लड़का ऐसे बहुत अच्छा है। पर बड़े घर का लड़का, कुसंग में पड़ चरित्र-भ्रष्ट हो गया है। समाचार पत्र में तो शायद तुमने पढ़ा ही होगा—यही कोई आठ महीने पहले की घटना है। तबलावाली लेन में तितली बाई नाम की एक नाचनेवाली रहती थी।

शिवशरण वहाँ नाच-गान के शौक़ से जाया करता था अपने दो चार मित्रों के साथ। एक दिन क्या हुआ कि आधी रात बीते जब तितली बाई गहरी नींद सो रही थी तभी कोई उसकी पीठ में खंजर भोंककर भाग गया। तितली बाई यद्यपि जीवित है फिर भी ज़ख्म गहरा है। पुलिस ने शिव-शरण पर ही सन्देह किया है और उसका चालान कर दिया। हम सब को आशा थी शिवशरण छूट जायगा, पर अब सुनते हैं मैजिस्ट्रेट ने उसे सैशन्स के सुपुर्द कर दिया है। भावी जमाई की यह दुर्दशा देख गिरधारीलाल बड़े सोच में पड़ गये हैं। उनकी लड़की का भी बुरा हाल है। दर है

जानता हूँ छोकरा बेचारा बिल्कुल निर्दोष है। उसके किसी दोस्त का काम है यह।

लोकनाथ का चेहरा लाल हो उठा। उन्होंने कहा, देखिये, इस बारे में मुझ से अब और कोई बात कभी न करें। सेशन्स में, मेरे कोर्ट में ही यह केस आयेगा।

लम्बी जीभ निकालकर मोहितबाबू ने कहा, आँ,—ऐसी बात है? नहीं...नहीं...नहीं फिर तो तुम से कुछ भी कहना उचित न होगा। पर गिरधारी के लिये भी मैं बहुत दु:खी हूँ। खैर, जब यह मुकदमा सिल्ट जायगा तब शिवशरण के छूटते ही गिरधारीलाल सिक्किम की ओर रवाना होंगे। बैठो बेटा, मैं चलता हूँ।

पाँच दिन बाद लोकनाथ अपने कमरे में बैठे समाचार-पत्र पढ़ रहे थे कि एकाएक गिरधारीलाल पाचाडी ने मुस्कराते हुए आकर कहा, नमस्कार, हजूर।

लोकनाथ ने विरक्त हो कहा, देखिये पाचाड़ी जी। उस दिन मोहितबाबू से मैंने जो कुछ सुना—उसके बाद अब मैं आप से कोई बात करना नहीं चाहता। आप तुरन्त चले जाइये।

गिरधारीलाल ने हाथ हिलाकर कहा—अरे-राम-राम वे सब बातें भूल जाइये। रामशरण से मेरा कोई रिश्ता नहीं और शिवशरण भी मेरा जमाई तो बना नहीं। वह छूटे या न छूटे इसमें मेरा क्या?

—क्यों? वह तो आपका भावी जमाई है न?

—थू: मेरी बेटी कहती है—उस लुच्चे खूनी से मैं कभी शादी नहीं करूँगी। अब यदि हजूर उसे फांसी पर ... मुझे कोई आपत्ति नहीं।

लोकनाथ ने कहा, अब वह कोर्ट में नहीं आयेगा। अन्य जज में जायेगा। आप लोगों के प्रस्ता मैं अब उस केस को ले ही नहीं

—बड़ा अफसोस है, उस बदमाश को अगर देते तो अच्छा होता। सब मंगल के लिये ही करत मेरा बहुत नुकसान हो गया। को एक सोने की घड़ी, हीरक-ज कोट के बटन और अंगूठी दी थ वह लौटायेगा नहीं। हजूर, यदि १० वर्ष की सजा देते तो होती। और मेरा तो मोहितबाबू भी कुछ खर्चा हो गया।

—मुझे जो उपहार दिये थे न?

—हें...हें...हें जाने दीजि भी ये बातें।

—कहिये न—आपका कि हुआ था?

गिरधारीबाबू ने अपनी नोट हुए कहा, दो शाल ग्यारह सौ ड़ेढ सौ रुपये, बुक-रैक पैंता मेवा छत्तीस रुपये, टैक्सी बर्च रुपये; कुल तेरह सौ सैंतालिस

विस्मित हो लोकनाथ ने शाल तो एक ही था।

—आँ,—क्या कहते हैं आप के लिये और एक श्रीमती

बात थी। अच्छा, तो मोहित-
ाल की कीमत खुद मार दी
, मैं उनकी गर्दन पकड़कर साढ़े
ल करके छोड़ूँगा। मेरे साथ
सच कहता हूँ, मैं वसूल किए
हूँगा।

आपकी इच्छा। बाकी के सात
(७८७) रुपये का चेक मैं
देता हूँ। मेरे लिये आपका
होगा। बस, एक रसीद लिख

ाथ ऊपर उठा गिरधारीलाल

ने कहा, ओ-हो-ओ-हो! हुजूर एक दम साधु महात्मा हैं! साक्षात् सत्यनारायण हैं। आपकी यह मेहरबानी मैं कभी न भूलूँगा।

—और हाँ, सिद्धिम की नौकरी भी नहीं चाहिए मुझे।

गिरधारीलाल पाचाड़ी सलज्ज, प्रसन्न-वदन दाँत निपोरते हुए हँसे, हे...हे... हे. !

नेक ले पाचाड़ी जी चले गये। लोकनाथबाबू की ग्लानि दूर हुई और सोत्साह फिर "रिश्वत तत्व" की रचना करने लगे।

विनम्र निवेदन

ाहयोगी लेखकों और कलाकारों से प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएँ,
ृतियाँ यदि प्रकाशनार्थ भेजना चाहें तो महीने की १५ तारीख तक भेजें।
चना या कृति के साथ डाक टिकट न भेजें, क्योंकि अब हम अस्वीकृत
चनाएँ वापस नहीं कर पाते और रचनाओं की स्वीकृति रचना मिलने
े बाद पन्द्रह दिन के भीतर ही भेज देते हैं।
प्रभात में सभी नवीन विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, अतः केवल
ाहित्यिक विषयों पर ही रचनाएँ न भेजें।
चनाएँ साफ-साफ, प्राय: टाईप की हुई और कागज के एक ही तरफ स्याही
े लिखी या छपी होनी चाहिए और दोनों ओर हाशिए छूटे रहने चाहिए।
१५ दिन तक कोई भी सूचना न मिलने पर रचना अस्वीकृत समझें या
जवाबी पत्र लिखकर पूछ लें।

—सम्पादक

नूतन साहित्य

आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली :

दो गीत (मृत्यु-गीत, जीवन-गीत) : ले० नीरज

नीरज के इन गीतों को पढ़कर मुझे ऐसा लगा है कि नीरज का गीतकार आस्थावान् है। वह संतुलन, श्रम और आकर्षण में सौन्दर्य का अन्वेषी है। नीरज गीतकार है जिन्दगी के क़फ़स का, कशिश का, कफ़न का, कसमसाती जवानी का। नीरज गीतकार है भूमा की हिरण्यमयी गाथा का, वीरभोग्या वसुन्धरा का। कुछ गीतों को पढ़कर ऐसा लगा कि समाज-चेतना की बूढ़ी नसें नये जोश में फूल उठी हैं, उनमें एक तूफ़ान लरज आया है, हड्डियाँ फौलाद बन गयी हैं : और जिजीविषा के दुर्दान्त हथौड़े, जिगमिषा के वज्र दण्ड और विजिगीषा के नये मशाल जल उठे हैं।

सागर के सीप : ले० भारत भूषण

इस कविता-संग्रह में कविताओं और गीतों की सहज स्वाभाविकता, (जैसे नन्हें मुन्ने का सहज सनौनापन, रू वाणी की अपेक्षा) मोहक ... वर्ष का युवा मन है की ... घुटा उसका और कोई नि ... राका टूट द्यावन से श्रीवक ... उसकी छाती भिगो गयी ! वे ... जो शुक्तियाँ कवि के मानस ... उनमें उजले मोती भी हैं : दा ... पर मोती पानीदार-शब्द— ... शब्दावली घिसी-पिटी और च ... की है। ..'चुम्बन की स्वप्न ... 'पलकों में पूनम बन्द हुई', जै ... प्रयोग वैरस्य कभी नहीं कह ... प्रारम्भ के सात गीतों में ... भाव-घनता नहीं है. भा ... गुरुदेव की यह पंक्तियाँ याद आ ...

जेन्नि आछो तेन्नि ... न साज। पत्रलेखाय नाइक ... कारुकाज ! कौतुनि आर ... नाइक तारोरुवार !

गीतों में, सुमनाञ्जलि ... तुलसीदास, शेक्सपियर, ... कृष्ण तक अपने तहने में ...

प्रयोग भी एकाध विचित्र हैं :
। (पृष्ठ २८) नाव के अर्थ में
(पृष्ठ ६२) कौन कह सकता है
। और तरणि हैं अथवा जानबूझ-
पर ही द्रविड प्राणायाम भी साधा
छंद-पतन कई जगह पर हैं पृष्ठ
रे पद की दूसरी पाँत (के ?)
(बारहवीं पाँत (लो ?) और
लिङ्ग-व्याकरण ही खटाई में है।
का प्रभाव कुछ गीतों पर स्पष्ट
रङ्गालीसवा गीत। हाँ, छंद
वन-फूल' शीर्षक गीत की अंतिम
पर माखनलाल चतुर्वेदी की
तेना बनमाली' कविता का प्रभाव

तयों की काव्यमयी अभिव्यक्ति में
भी तो अपेक्षित है। सबसे बड़ी
पंक्तों में करकती है : वह यह है
व्य-संकलन के रेखाचित्र बहुत
तुर्थ श्रेणी के और छिछले हैं!
गैरत की बाँह, मर्द, प्याला :
त्रित हो सके हैं। इनके न होने
न अच्छा ही था।

ऍण्ड सन्स, दिल्ली

: प्रतिध्वनिकार : बच्चन
ता' के मङ्गलाचरण में बच्चन जी
ने—'प्रभु की प्रेरणा, बुद्धि की
हृदय की सद्‌भावना से जो
की ओर संकेत करेंगे, उन पर
एवं विनम्रतापूर्वक विचार

करूँगा।'—अप्पय दीक्षित का यह श्लोक
याद दिला दिया :

'गुण दोषो बुधो गृह्णन् इन्दु-क्ष्वेडो विवेश्वर.।
शिरसा
श्लाघ्यते पूर्वम् परम कण्ठे नियच्छति।

सचमुच 'मधुशाला' के सशक्त गीतकार ने
इसमें जो अमृत दिया है वह साधारण
भूमि-पुत्रों के हेतु है, सम्राट-पुत्रों के हेतु
नहीं।

अब प्रश्न है अवधी भाषा की जो वेश-
भूषा 'जन गीता' को पहनायी गयी है,
उसके इतिहास-परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन का।
यहाँ मुझे पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्री हर्बर्ट
रीड की यह बात उद्धृत करनी ही पड़ेगी :
The permanent leement in mankind which corresponds to the element of form in art is man's *aesthetic sensibility*; It is the sensibilty that is static. What is variable is the understanding which man builds up from the abstraction of his sensible impressions, his intellectual life, and to this we owe the variable element in art, that is to say *expression*. I am not sure that expression is a good word to use in contrast to form. Expression is used to denote direct emotio *reactions but the very test by which the artist*

from is itself a mode of expression. वस्तुतः सौन्दर्य-बोध की संवेदनशीलता व्यञ्जना के वाह्य रूप पर निर्भर है। यह रूपगत वैशिष्ट्य होकर भी अपने में एक व्यञ्जना है जो हृदयगत प्रतिक्रियाओं का प्रकाशक होकर एक ही सयम-सूत्र में संग्रथित होता है। 'जनगीता' के रूप से यही सिद्धान्त प्रतिपादित होता है।

संस्कृत की गीता में अनुष्टुप छन्द अधिक है और बच्चन की गीता में चौपाई और दोहे। संस्कृत में गीता गुरु गंभीरा सरित जमी है जो पहाड़ी नदी सी हहारती हुई, जन-मन-मानस कगारों को परसती नहीं। पर बच्चनजी ने हिन्दी में यही कर दिखाया है। यह प्रतिध्वनि इतनी सुन्दर बन पड़ी सुहै कि कहीं-कहीं मूल से भी बाजी लगाती है। जैसे, शोकाकुल मानव-हृदय के अन्तर्द्वन्द्वों का प्रतीक अर्जुन जब यह कहता है :—

> अंग-अंग टूटइ मम ताता;
> सूखइ मुँह, कहि जाइ न बाता।
> कंप-पुलकमय होय सरीरा,
> लोचन पुनि-पुनि मोचहिं नीरा।
> जाइ न मोसन चाप उठावा,...

तब ऐसा लगता है कि—'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।' इस पंक्ति से भी सशक्ततर व्यञ्जना है इन पंक्तियों में।

इस का दाम यदि कम होता तो सार्थकता और भी बढ़ती चूँकि यह शेल्फ में सजाकर रखने की पुस्तक नहीं, गण के हाथों के लिये है।

—रंगनाथ

आज के उर्दू शायर : प्रकाश पण्डित

प्रकाश पण्डित का यह सम्पादन दिशा में विकास की एक कड़ी है। में उर्दू शायरों और उनके कलामों के में इधर एक बाढ़-सी आ गई है। पण्डित, जो सब कुछ जानते हैं, शायद नहीं महसूस नहीं कर पाये कि विशुद्ध पढ़नेवाले पाठकों में भी सबसे बड़ उन रसिकों का है जो परवाने को और शमा को मोमबत्ती से आगे और कुछ नहीं समझ पायेंगे। पढ़नेवाले को ठीक से समझ सकें, इसका दायित्व सम्पादक का है जो शायद तरह नहीं निबाहा गया।

आज़ादी के बाद और विशेषकर स्तान की राष्ट्र-भाषा उर्दू बन जाने के उर्दू की नई नज़्म, पुरानी गज़लें कहानियों में हिन्दी-पाठक की रु अधिक हो बढ़ी है। उर्दू के लेखकों की को छू लेनेवाली अद्भुत शक्ति इसका कारण है।

उर्दू की नई शायरी में रोज़मर्रा की बातें, दबा हुआ दर्द और ज़िन्दगी जरामकश सब कुछ कहा जाता है। प्रतीकों को नया रंग-रूप देकर पुरानी शराब को नई बोतलों में रख

र्दू शायरी में 'जोश' मलिहाबादी ने
न्क़लाब का नारा लगाया, उसे कम से
एक दर्जन शायरों ने और भी आगे
। और यद्यपि लोगों को उकसाया-
गा नहीं, फिर भी ज़माने की रफ़्तार
दलने की ताक़त, खयालात और
। के रुख को मोड़ देने की शक्ति
यरों के लफ़्ज़ों में थी। इनके दिलों
आग जल रही थी, उसकी तपन
नज़्मों में थी, उसकी जगमगाती
चमकती ज़रूर रही। ऐसी लौ,
। तपन और ख़ूबसूरती तो पाठकों के
थों पर उसकी जलन सिर्फ़ शायरों
। ही थी, उनके लिये ही जिन्होंने
ा।

काश पण्डित ने इस संकलन में जिन
ायरों को स्थान दिया है, उनमें
ार ऐसे हैं, जो वक्त और ज़माने
पने कदमों के नीचे दबा चुके हैं।
ो वे हैं जो अपनी शायरी को सरे-
ाज़ार में अच्छे भाव बेच कर फ़िल्मों
ये अवाम तक पहुँचा रहे हैं—जनाब
लुधियानवी की तरह। कुछ ऐसे
ो सुलग सुलग कर जान दे गये और
नहीं की—मजाज़ की तरह। कमी
यरों की भी नहीं, जो आज भी
। और नई रोशनी में सौन्दर्य की
से जीते हुए और ज़िन्दगी के ज़हर
। हुए निराशाओं के भयानक तूफ़ान
नव जागरण…नई आशा की एक
ती लेकिन तेज़ लौ को अपने दामन
ाये हुए हैं, जैसे, फ़ैज़ और सरदार

अली जाफ़री। फ़ैज़ की चन्द सतरें हैं:—

"जिस्म पर कैद है जज़्बात पै ज़ंजीरें हैं
फ़िक्र महबूस है गुफ़्तार पै ताज़ीरें हैं
अपनी हिम्मत है कि हम फिर भी जिये जाते हैं
ज़िन्दगी क्या किसी मुफ़लिस की कबा है जिसमें
हर घड़ी दर्द के पैबन्द लगे जाते हैं।
लेकिन इस जुल्म की मीयाद के दिन थोड़े हैं
इक ज़रा सब्र कि फ़रियाद के दिन थोड़े हैं।"

साधारण पाठक के सामने आज की शायरी के विविध रूप-रंगों को रखने में यह पुस्तक अपना जवाब नहीं रखती। सभी 'पोपुलर' ग़ज़ल, शेर और नज़्म, जो शायरों का प्रतिनिधित्व करती हैं, इस ३७६ पृष्ठ की पुस्तक में दर्ज हैं, उनके संक्षिप्त परिचयों के साथ। उर्दू के कठिन शब्दों के मतलब भी नीचे दिये हैं। कीमत ज़रूर 'आज के उर्दू शायर सीरीज़' की किताबों के मुकाबिले में कुछ अधिक है।

—सुरेन्द्र चतुर्वेदी

देखा-परखा : इलाचन्द्र जोशी

मूल्य ३॥)

ग्यारह आलोचनात्मक साहित्यिक प्रबन्धों का संकलन। प्रबन्धों के रचना काल जानने का कोई उपाय नहीं है। पर विषयों की विभिन्नता तथा शैलीगत काल-मान की पीठिका पर आधारित करें तो शायद ये प्रबन्ध गत दो दशाब्दि के काल-मान में लिखे गए हों।

'आज का साहित्य' शीर्षक प्रबन्ध जोशी जी ने आलोचना साहित्य के जो लिखा है वह उन पर भी लागू

किसी सुसम्बद्ध ग्रन्थ के प्रणयन में हाथ न लगाकर विभिन्न कालों में लिखे गए तथा अन्यत्र प्रकाशित एक ही विषय के कुछ प्रबन्धों को एकत्र करना तथा अर्थ-लाभ की दृष्टि से पुस्तकाकार प्रकाशित करके पाठकों पर थोप देना शायद एक गलनशील (Decaying) साहित्य ही का नहीं, साहित्यकारों का भी परिचय देता है।

'छायावादी छाया तथा प्रकाश' तत्कालीन छायावाद के बारे में घुणाक्षर न्याय से कुछ बताने के लिए अपनी ही छायावादी कविता, विशेषकर 'राज कुमार' के बारे में लिखी हुई एक भूमिका-सी है। अन्तिम तीन प्रबन्ध पंत, रहीम तथा बाण के ऊपर लिखे उनके कमोबेश रूप में परिचयात्मक प्रबन्ध मात्र हैं! 'साहित्यिक ख्याति और उसका मूल्य' जो संग्रह का सर्वोत्तम प्रबन्ध है, शॉपिनहॉर के एक लेख के आधार पर लिखा है, अतः विचारणीय प्रबन्ध रह जाते हैं केवल पाँच। श्री० जोशी जी की हिन्दी साहित्य में एक मनोविज्ञानवेत्ता, विचारक तथा मनीषी साहित्यकार की ख्याति है। वे भारतीय साहित्य के जैसे मर्मज्ञ समझे जाते हैं, वैसे ही पाश्चात्य-साहित्य के भी; अतः उनकी रचनाओं से एक बड़ी आशा करना स्वाभाविक ही है। खेद है कि प्रस्तुत संग्रह किसी विचारवान पाठक के लिए निराशा ही का कारण होगा।

'मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' नामक प्रबन्ध में—जोशी जी ने फ्रायड, ऍडलर तथा जुंग का मोटी कलम से परिचय मात्र दिया है, जिससे भारतीय या हिन्दी स
दरकिनार रहा, जीवन में भी इ
उपयोगिता या महत्व है, इस पर
प्रकाश नहीं पड़ता। आशा तो य
उसके साहित्यिक महत्व पर तथा
साहित्य में उसके प्रयोग पर जोशी
स्पष्ट कहते।

'भिन्न रुचिर्हि लोकः' एक स
के लिए लिखा गया: सामान्य
व्यक्तिगत रुचि के बारे में उ
१४ पृष्ठ व्यय किये हैं, वहाँ युग-
में उन्होंने निर्देश-मात्र कर देना।
समझा है। भिन्न रुचि होनी तो
वह युग रुचि के बाद हो! ह
भी मूल में प्रश्न उठता है 'आवश्य
भोजन की आवश्यकता सब की
है, इसके जुट जाने के बाद
जामुन, या रसगुल्ले में रुचि
कर सकता है। किन्तु तब भी
की रुचि किसी 'सामान्य'
शायद कभी न होगी!

'साहित्य में वैयक्तिक कुं
विरोधों से भरा पड़ा है। पहले
में विरोध है। व्यक्तिगत कुण्ठा
निक सभ्यता ही की देन होनी
के साहित्यकार भी इस कुण्ठा के
होते। शकुन्तला और दुष्यन्त
विवाह के लिए कहा गया है
वैयक्तिक तथा सामाजिक दो
कल्याणकारी था, तब सामाजिक
के भय से उस विवाह को
का प्रश्न कैसे पैदा हो गया

ाश ने इस विस्मरण को एक शाप के
ोप कर व्यक्तिगत कुण्ठा से दुष्यन्त
क बचाया है। अतः इस कुण्ठा को
रह सामाजिक स्तर पर माना जाना
, यह लेखक ने नहीं दिखाया।
में शेक्सपीयर ने जिस व्यक्तिगत
का चित्रण किया है, सामाजिक
के साथ उसका किसी तरह
य स्थापित नहीं होता। कालिदास
की मूलभूत व्यवस्था में अन्तर का
ल्य है, आदि तथ्यों का विवेचन
ना ही एक को दूसरे से श्रेष्ठ कह
मूल्य भी क्या है!
लेट और फाउस्ट की तुलना के
में लेखक ने इस चरित्रगत विशिष्टता
नजर नहीं रखा कि गेटे का फाउस्ट
क दार्शनिक है, अतः वह अपनी
त कंठा को समझता है। कुण्ठा के
यक्तिक विजय का एक उपाय है
ण्ठा के मूल रूप और कारण को
सकना। अतः तीव्र अनुभूति के
ी फाउस्ट अपनी कुंठा में गर्क नहीं
हैमलेट तो दार्शनिक नहीं है; वह
ो अनुभव ही कहाँ करता है, वह तो
शिकारमात्र है।
ासीसी राज्यक्रांति की मूल उद्देश्यगत
ताओं' से जोशी जी का क्या तात्पर्य
ो जानें। भ्रष्टाचार तो क्रांति के बाद
ान्ति काल में थोड़ा बहुत फैल ही
ा। और जिस 'व्यक्तिगत कुंठा का
ा और विश्लेषण' वे उस युग का
मझते हैं, वह तो वास्तव में व्यक्ति

के मानस की स्वतन्त्रता का एक प्रमाण है, जो उस क्रांति के फलस्वरूप पुनर्जागरण (Rennaissance) से प्रस्थापित हुई थी।

'फ्रायड ने साहित्य-कलाकारों को विश्लेषण के लिए एक अस्त्र दे दिया,' किन्तु इससे क्या हुआ, उसने समाज को कोई कुण्ठा तो नहीं दी। फिर विश्लेषण क्यों नहीं जीवन गुत्थियों को सुलझा सकने में समर्थ होगा? एक सामान्य-सा मनोविद समझता है कि विश्लेषण ही कुण्ठाओं का एक मनोवैज्ञानिक उपचार है।

'साहित्य में वैयक्तिक स्वतन्त्रता बनाम सामाजिक चेतना' तथा 'भावी साहित्य और संस्कृति' दोनों लेखों को एक साथ पढ़ने ही दोनों के अर्थगत विरोध को स्पष्ट किया जा सकता है। वैयक्तिक चेतना पर समाज के नियंत्रण के विकास की भी कोई वैज्ञानिक व्याख्या जोशी जी ने नहीं दी। महाभारत कालीन कौरव-पाण्डवों की मनोवृत्ति का अर्थ भी उन्होंने अपनी विचित्र रुचि के अनुकूल ही किया है। पाण्डव किसी भी क्षण कौरवों का विध्वंस नहीं कर सकते थे, यह स्वयम् युद्ध ने प्रमाणित कर दिया था, और लोक-रुचि ही का प्रश्न हो तो कौरव-पक्ष के ग्यारह अक्षौहिणी सैनिक पाण्डवों के पक्ष के सात अक्षौहिणी सैनिकों के अल्पमत में क्या प्रमाणित करते हैं? इसी महाभारत-कालीन सभ्यता की जैसी मीमांसा लेखक ने स्वयम् 'भावी साहित्य और संस्कृति' वाले परिच्छेद में की है, व . समस्त धारणा पर हरताल पोत देती बात दूसरी है कि लेखक इस

सब के लिए न मानकर केवल लब्ध प्रतिष्ठित उन्हीं इने गिने मनीषियों के लिए मानता है, जिनके द्वारा राष्ट्र की वास्तविक संस्कृति प्रतिष्ठित होती है।

मैं समझता हूँ ये विरोध इसीलिये पैदा हो गए हैं कि ये लेख भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की पृष्ठ भूमि में भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखे गए हैं, फलतः इनकी रीढ़ एक सुस्पष्ट विचारधारा नहीं बन सकी। डॉ० जोशी जैसे विद्वान् समीक्षक के लिए आवश्यक है कि वे निश्चित योजना द्वारा भारत के साहित्य की गतिविधियों का सम्यक् विचार करके ही कोई अन्वितिपूर्ण प्रबन्ध लिखें। समग्र पाश्चात्य साहित्य को गलनशील साहित्य की संज्ञा वे दे सकते हैं, किन्तु परिस्थिति से इसमें अन्तर नहीं आता! आज समय और स्थान ही की नहीं, भाषा और विचार की सीमाएँ भी सिकुड़ गई हैं। तुलसीदास या किसी भी लेखक या कवि को केवल हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि में देखकर हम गर्व कर सकते हैं, पर आज का साहित्य इस संकीर्ण घटिया किस्म के बैटखरों से नहीं देखा-परखा जा सकता है। आज के जीवन पर यदि पाश्चात्य प्रभाव पड़ा है तो कोई कारण नहीं कि साहित्य पर भी वह क्यों न पड़े! आवश्यकता है, तो उन्हीं के शब्दों में सहानुभूतिपूर्ण रुख से उसको तौलने की।

—कन्हैयालाल ओझा

आषाढ़ के बादल : सं०
चतुर्वेदी 'प्रेमी' प्र० नवीन
संघ चौबेजी का कटरा,

प्रस्तुत पुस्तक में नवीन
आगरा द्वारा अड़तालीस नए
कविताओं का संग्रह किया गया
में बच्चन और डॉ० रामविलास
वक्तव्य मुद्रित हैं। संग्रहीत
अधिकांश उपनामधारी हैं।
कवियों की कविताएँ जैसी होती
वैसी ही कविताएँ इस संग्रह
कविताओं से उद्धरण न देकर
उपनाम दे रहा हूँ—मधुकर, मंजु
परेश, प्रेमी, मिलन, अकिंचन, नि
बावरा, कांत, सुधांशु, प्रवासी, प्र
राज, वत्स, सरस, विमल, मान
नीरद, ओम्, उन्मन, निर्विरो
कमल, मृदु, और तमन्ना। कु
लोकप्रिय लगे, एक से अधिक
नाम के आगे जुड़े दीख पड़े—
प्रवासी और राज। अन्त
उद्धरण भी :

राही, तुम सीखो मुस्कान
कंटकमय इस कठिन राह
मत सीखो तुम मुस्कान

—राजेन्द्र

समीक्षार्थ प्राप्त साहित्य

उपन्यास

पार उतरि कहँ जइहो : ले० प्रभाकर द्विवेदी · प्र० भारतीय ज्ञानपीठ, (२) पिंजर : ले० अमृता प्रीतम · प्र० न्यू एज पब्लिशर्स, कलकत्ता-१२, पुतली के धागे : ले० आनन्द प्रकाश जैन : प्र० न्यू एज० : (४) तंतुजाल : ... : प्र० किताब महल, इलाहाबाद : (५) भूख · ले० न्यूट हैमसन : प्र० ... (६) महासमर : अनु० श्रीकान्त व्यास : प्र० किताब० (७) खाली कुर्सी : ले० लक्ष्मीकान्त वर्मा · प्र० किताब महल : (८) संकल्प : ले० हंसराज प्र० हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, शाहदरा दिल्ली : (९) छोटी सी बात : राघव : प्र० हिन्द० । (१०) इन्सान या शैतान : ले० स्टीवेन्सन : प्र० हिन्द (११) आभा : ले० आचार्य चतुरसेन : प्र० हिन्द पाकेट० (१२) एक स्वप्न : ले० यशदत्त : प्र० हिन्द पाकेट० (१३) संघर्ष : ले० चेखव : प्र० हिन्द (१४) जब रोम जल रहा था : ले० हेनरिक सीन्की विवज अनु: श्रीकान्त व्यास : ... महल

कथा-कहानी·

प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ : ले० डा० रांगेय राघव : प्र० किताब० : निगाहों की एक तस्वीर : ले० मन्नू भण्डारी : प्र० श्रमजीवी प्रकाशन : (३) धरती रो पड़ी : ले० केवल धीर : प्र० प्रभाती प्रकाशन पटना-४ : ... मिट्टी : ले० अमृत राय : प्र० हंस प्रकाशन इलाहाबाद : (५) नागिनें ... बुने : ले० किशोर साहू प्र० किताब महल । (६) प्राचीन प्रेम और कहानियाँ : ले० रांगेय राघव : प्र० किताब महल (७) मैं और मेरी मोटर : ले० ... ल हाँडा : प्र० किताब महल (८) पंजाब की लोक कथाएं (९) ... की ... एँ (१०) राजस्थान की लोक कथाएँ—तीनों के ले० श्रीकान्त व्यास : ... महल ।

...हित्य

कविताएँ

(१) कविताएं : ले० कीर्ति चौधरी : प्र० राजकमल० : (२) क
पुकार : ले० अजित कुमार : प्र० राजकमल० : (३) नंगी तस्वीर ले० प्रिय
(४) नये हस्ताक्षर : सं० जगदीश तोमर राजेन्द्र कुमार : प्र० नूतन समाज प्रक
(५) पीड़ा : ले० चक्रवर्ती : प्र० नूतन साहित्य निकेतन, बोलारम (आन्ध्र)
ले० वा० को० नारायण : प्र० चम्पानारायण : कलकत्ता-७।

नाट्य-साहित्य

(१) डाक्टर : ले० विष्णु प्रभाकर : प्र० राजपाल० : (२) ममता : ले
प्रेमी : प्र० राजपाल० : (३) आषाढ़ का एक दिन : ले० मोहन राकेश : प्र०
(४) मन के बन्धन : ले० डा० रांगेय राघव : प्र० शिक्षा भारती दिल्ली-६ : (५
रात ' ले० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार २ प्र० प्रकाश एन्ड क० नई दिल्ली : (
ले० गोविन्दवल्लभ पन्त ' प्र० आत्माराम० : (७) शादी या ढकोसला : ले० वि
प्र० किताब महल।

बाल-साहित्य

(१) राधारानी इन्दिरा : ले० गोविन्द सिंह : प्र० हिन्दी प्रचारक
वाराणसी १ (२) सीताराम : ले० गोविन्द सिंह : प्र० हिन्दी० : (३) रसायन क
प्र० राजपाल० : (४) मन मन मन : लेखक शिक्षार्थी : प्र० किताब०।

विविध

(१) बौद्ध भारत : अनु० भुवनाथ चतुर्वेदी : प्र० किताब० : (२
फलोत्पादन : लेखक जयराम सिंह : प्र० किताब० : (३) मैं नेहरू से मिल
मनीश सक्सेना : प्र० राजकमल० : (४) भारतीय ज्योतिष : ले० शंकर
दीक्षित : अनु० शिवनाथ झारखण्डी : प्र० प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग उ
(५) अमर वाणी ' ले० मानसहंस : प्र० हिन्द पाकेट० : (६) गीताञ्जलि (मेरा
लेखक श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर : प्र० हिन्द पाकेट० (७) सफलता के आठ साधन :
पेनन : प्र० हिन्द पाकेट। (८) मानसमणि : ले० प्रा० स्वामी नाथ शर्मा : प्र
बुक डिपो गिरगाँव, बम्बई-४।

पृथ्वीनाथ शास्त्री द्वारा सुप्रभात कार्यालय एवं मुद्रण भवन लि०, १७१ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट

कलकत्ता-७ से प्रकाशित तथा मुद्रित

"SUPRABHAT" May '59 Regd. No. C-3796. Per Copy 75

HINDUK
HUNGARIAN
WELDING SETS
GAS
ELECTRIC
HKGY
GAS WELDING—
Cutting Set with Regulators.
Offered ex-stock
"DSG 92/12"
ARC WELDING
Current Rating 280 amps
at 55% Duty Factor.
Sole Representatives :
HINDUK TRADING CO.
(INDIA) PRIVATE LTD.
3, Stephen House, 4, Dalhousie Square East, Calcutta-1
Tel 23-3972. Gram : Hinduk
A/HT/4
HINDUK
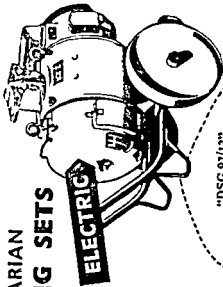
सैतालीसवीं किरण
जून, १९५९

संचालक
नीलरतन खेतान : चन्द्रकुमार अग्रवाल

इस अंक में समर्पित

विचार-पुष्प

सम्पादक व्यवस्थापक

पृथ्वीनाथ शास्त्री,
एम० ए०

प्रधान कार्यालय
१७६, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट
पो० बॉ० ६७०८, कलकत्ता
फोन : ३४-३८२६

प्रादेशिक कार्यालय
१ क्वीन विक्टोरिया रोड, नई
फोन : ४४-२४८

वार्षिक मूल्य ८) द्विवार्षिक
एक प्रति ७५ नये पैसे

सदा आप की
सेवा में...
उत्पादन
"भारत के प्रथम...अब तक सर्वोत्तम!"

ब्रिटानिया
आयरन
स्थापत्य कलाविद्, निर्माता,
कण्ट्रेक्टर, सब प्रकार के इस्पात
सैनिटरी और क्रेन निर्माण व
आदि सम्बन्धी कार्यों के
४, डलहौजी स्क्वायर,
तार INVENTOR
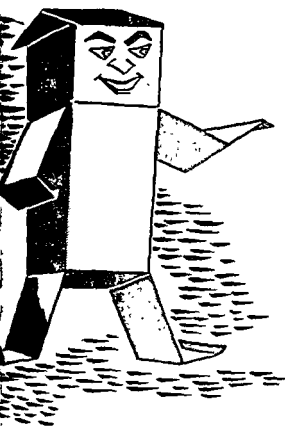
खाँसी
ही !
गले और सीने
का कष्ट मिटानेवाली
पेप्स
टिकियाँ लीजिए

PEPS

जिन्हें तंदुरुस्ती
प्यारी हैं वे सदा
लाइफ़बॉय
से नहाते हैं।

मनुष्य का अर्थ | प्रेमेन्द्र मित्र

अर्थ चाहिये हमें मनुष्य का—
समूचे मनुष्य का अर्थ।
रक्त, मांस, हाड़ चाम,
क्षुधा, तृष्णा, लोभ, काम, हिंसा-सहित—
पूरे मनुष्य का अर्थ।
सब कुछ का अर्थ ढूँढ़कर हैरान हुआ मनुष्य,
मनुष्य का अर्थ चाहिये अब,
सृष्टि की व्याख्या नहीं तो कैसे होगी?
इस सम्पूर्ण रचना का अर्थ
मनुष्य के अर्थ पर ही तो आश्रित है।
तुम्हारे अर्थ की तभी तो जरूरत है,
नये नक्षत्रों का जन्म दूर नीहारिका में
इसी अर्थ के भरोसे पर ही तो हो रहा है।
क्या मिट्टी में मिला रहता है, वह अर्थ?
मनुष्य का अर्थ क्या अफ्रीकी गुलाम है?
या हरम का खोजा?
श्रमहीन गति से चल रही है पृथिवी मनुष्य पर आशा लगाये,
हिंसा से, रक्त-लोलुपता से एक दूसरे को
चीर-फाड़ डालना ही क्या उसका अर्थ है?
क्या मनुष्य का अर्थ तैमूरलंग है? या हूण अट्टिला?
या केवल बुद्ध?—या ईसा?
अफ्रीकी गुलाम भी तो मनुष्य है—
मानवी के गर्भ से ही जन्मा था—तैमूर
बुद्ध और ईसा भी देवता नहीं थे।
विधाता की इस सृष्टि में मनुष्य क्या है?—
उनकी यह अपनी भी जिज्ञासा है।
क्या तभी महाकाल की पुस्तक पृष्ठ पर
बार बार यह अर्थ लिखकर मिटाया जा रहा है?

अनु० गोपालचन्द्र दास

इनकी इस हालत का कौन दायी है ?

सत्यदेव विद्यालंकार

सभ्यता की प्रगति में वेश्याओं का स्थान [illegible] नहीं है। सभ्य संसार में उनके वैधानिक अस्तित्व और भारत में लाखों वेश्याओं को देखकर भ्रान्त होना आवश्यक नहीं। 'अति पुरानी परम्परा चली आती है' कहकर इस सामाजिक कोढ़ को थोड़ा भी [illegible] महज बेवकूफ़ी है। हमें अतीत की सर्वश्रेष्ठ विरासत ही लेना है; उसकी भूलें दुहराना तो अज्ञान और [illegible] का ही परिचायक है।

महात्मा गांधी ने १९२० में बरीसाल (बंगाल) [illegible] वेश्या कही जानेवाली बहनों के प्रतिनिधियों से [illegible] करने के बाद लिखा था—'इन बहनों के साथ [illegible] मैंने दो घण्टे बिताए, वह मैं कभी नहीं भूल [illegible] बरीसाल की बीस हजार जनता में स्त्री-पुरुष [illegible] सभी हैं और उन्हीं में ये साढ़े तीन सौ से भी [illegible] दलित बहनें भी हैं। ये बरीसाल की [illegible] की प्रतिनिधि हैं।...पुरुष होने के नाते [illegible] के सामने मेरा सिर लज्जा से गड़ गया। इनमें [illegible] थीं, तो अधिकांश २० और ३० साल के बीच [illegible] कुछ १२ से भी कम उम्र की बालिकाएं। इनके [illegible] इस पक्की भावना को देखकर कि, इस नारकीय [illegible] से इनका उद्धार कभी नहीं होगा, मुझे [illegible] मानों किसी ने मेरी छाती में छुरा भोंक दिया है। [illegible] बहनें मुझे विनम्र और बुद्धिमती लगीं, इनकी [illegible] शील और मर्यादा थे—और उनके ऊपर [illegible] स्पष्ट।...इस युग में भी नारी, कष्ट-सहन, [illegible]

और सहज सरल, विश्वास की प्रतिमा है। पुरुष की अहम्मन्यता न-गरिमा की अपेक्षा नारी की द्धि बहुधा सच्ची साबित होती है। म्मान-पूर्ण भारत के प्रत्येक पुरुष की प्रत्येक स्थिति में नारी की इज्जत मूल्य होना चाहिये जो कि स्वयं मा, बहन और स्त्री तथा पुत्री तत का है।'

ादी का प्रायः एक युग और ज्ञा, लेकिन युग-युग के इस कलंक वे को हम अभी तक नहीं । १९५६ में संसद में स्वीकार ाद १९५८ में वेश्यावृत्ति को गैर-करार देनेवाला कानून लागू किया ासने वेश्यावृत्ति को बन्द करने के उसे एक नया जामा पहना कर म्या अपनाने को ही प्रोत्साहन 'सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य समिति' की रिपोर्ट इस सम्बन्ध में य है। किसी भी पेशे को बन्द ालिक अधिकार को छीनना है; यह वेश्यावृत्ति को बन्द करने के माय' उठाई जाती है। नगर-पालिकाओं रों के कानून ने भी वेश्यावृत्ति को मानकर केवल निर्बाध नियन्त्रण (!) । है। स्पष्ट है कि नियम, अधि-ति-रोगों के निवारक चिकित्सागृह, यागामिता के भयंकर परिणामों का गी होता है) वेश्याओं का एक स्थान र पृथकरण और सिर्फ वहीं रहने । चलाने को सुविधा देना, उन्हें रजिस्ट्रेशन कराने और लाइसेंस लेने के लिए बाध्य करना तथा गिरफ्तार कर महिला

"दक्षिण भारत में मुझे जितने अभिनन्दन पत्र मिले, उनमें सबसे अधिक करुण और हृदयस्पर्शी देव-दासियों का था। चाहे उन्हें वेश्या कहा जाय या देवदासी, शब्द-परिवर्तन मात्र से मूल समस्या का समाधान नहीं होता। तथाकथित अन्त्य जाति को पतन के गर्त में गिरानेवाली व्यवस्था का विधान करने वाले कुछ स्मृतिकारों को परलोक में भयंकर सजा भुगतनी पड़ेगी। जिस दिन नारी छलिया पुराणों के जाल से मुक्त होकर अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगी, उस दिन पुरुषों के बनाए हुए नियम विधानों और संस्थाओं के विरुद्ध वह एक सफल अहिंसात्मक विद्रोह करेगी। भारतीय पुरुष अपना दिल थामकर जरा सोचें कि उसकी अनियमित और अनैतिक वासनाओं की पूर्ति के लिये लगभग साढ़े दस लाख बहनों को शर्मनाक जीवन बिताना पड़ता है। यदि भारत के पुरुष अपनी मर्यादा को समझ लें, तो भारत में यह पाप एक दिन भी नहीं टिक सकता।"

—मोहनदास करमचन्द गान्धी

युगे युगे पराधीना तथा प्रपीडिता

सदन या मातृ-भवनों में भेज देना आदि उपाय पूरी तरह कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं और न सारे देश में आज भी वेश्यावृत्ति के खिलाफ एक व्यापक भावना या तीव्र चेतना ही उमड़ी है। जो कुछ भी छुट-पुट काम हुए, वे स्थानीय, प्रादेशिक या राज्यों के स्तरों पर ही हुए हैं। कोई भी अखिल भारतीय प्रयत्न अभी तक सुव्यवस्थित रूप में किया गया है, यह पता नहीं चलता। अभी तक जो कानून बने हैं; उनसे भी यही स्पष्ट होता है; जैसे : (१) बम्बई वेश्यावृत्ति निरोधक कानून, १९२३ (२) मद्रास अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३० (३) बंगाल अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३३ (४) उत्तर प्रदेश अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३३ (५) पंजाब अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३५ (६) मैसूर अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३६ (७) जम्मू-काश्मीर अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९३४ (८) बिहार अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९४८ (९) त्रावणकोर-कोचीन अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९५२ (१०) हैदराबाद अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९५२ (११) मध्यप्रदेश अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९५३ (१२) अजमेर अनैतिक व्यापार निरोधक कानून, १९५३।

मद्रास का कानून आन्ध्र में लागू है और बंगाल का दिल्ली में; बम्बई और मद्रास में क्रमशः १९३४ और १९४७ में कानून बनाकर देवदासी प्रथा पर रोक लगाई गई है। १९२९ में, उत्तर प्रदेश में नायक जाति की बालिकाओं के सम्बन्ध में एक कानून बनाया गया था। उसके अनुसार जिला मजिस्ट्रेट १८ वर्ष से कम आयु की नायक बालिका को वेश्या बनने से रोक सकता है।

निम्न-लिखित भारतीय दंड-विधान की कुछ धाराओं पर भी विचार करें।

(१) १६ वर्ष से छोटी आयु की बालिका के साथ उसकी स्वीकृति पर भी यौन

कल्याणीया महीयसी

इनकी इस हालत का कौन द

। किन्तु उम्र साबित करना टेढ़ी
गावः ऐसे केसों में १५-१६ की उम्र
वर्षीया ही बताया जाता है।

। सब प्रकार का बलात्कार वर्जित है,
ति की सहमति अथवा उपेक्षा की
i विवाहिता स्त्री के साथ उसकी
से यौन सम्बन्ध निषिद्ध नहीं है,
; पेशेवर औरतों के फर्जी पति भी
। (अजीब नैतिकता है इस कानून
।

' अपहरण अपराध है, किन्तु
लड़कियों द्वारा 'स्वेच्छा से भागी
ी गयी थी' कहकर इसको भी
वेकार कर दिया जाता है।

सौन्दर्यानन्ददायिनी

"कलुष और पतन की प्रतीक उस एक नारी पर वासनाओं का एक ऐसा केन्द्रीय बोझ लदा हुआ है कि जो यदि बिखर जाय, तो सारा संसार लज्जा से भर जायगा। धर्म आते हैं और जाते हैं; सभ्यताएँ फलती-फूलती हैं और समाप्त हो जाती हैं। किन्तु करुणा की यह साकार मूर्ति वेश्या, मानवता की अमर पुजारिणी, पुरुषों की काम-लिप्सा की लपटों में युग-युग से ईंधन की तरह जीवित धाँय धाँय जल रही है।"

—विलियम लैकी

(४) नाबालिग लड़कियों का वेश्यावृत्ति के लिए क्रय-विक्रय निषिद्ध है। किन्तु १४-१५ वर्ष की लड़कियों को फर्जी पतियों के हाथों रुपये लेकर सौंपना जायज है।

इन सीमित कानूनों से किसी भी व्यापक परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। मद्य-निषेध के सम्बन्ध में की गई कानूनी व्यवस्था के उदाहरण यहाँ बिल्कुल ठीक बैठते हैं। जैसे कि विभिन्न राज्यों में मद्य-निषेध के सम्बन्ध में किये गये एकदेशीय व सीमित प्रयोग सफल नहीं हो सके और उनसे मद्य के अनैतिक व्यापार को प्रोत्साहन मिला है, ठीक वैसे ही उन कानूनों द्वारा की गई व्यवस्था का परिणाम वेश्यावृत्ति के बढ़ाने में ही सफल हुआ है। १ मई १९५८ से लागू किया गया कानून

व विद्यालंकार

भी इसी परम्परा के अनुकूल है। वह भी इस व्यापक समस्या के सीमित क्षेत्र से संबंध रखने के कारण अपूर्ण, असमाधान-कारक, असन्तोष-जनक और निराशा-पूर्ण है। उससे भी यह विषम समस्या हल नहीं हुई। सं विधान के अनुसार दास-दासी प्रथा, बेगार आदि सभी निषिद्ध हैं। किन्तु वर्तमान कानून द्वारा वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में इतनी ही व्यवस्था है कि कोई व्यक्ति अड्डे कायम

विभ्रान्ता या परित्यक्ता

कर यह अनैतिक व्यापार नहीं कर सकता।

प्र० मन्त्री नेहरू जी का यह कथन कि, 'वेश्यावृत्ति की प्रथा सामाजिक जीवन के लिये नासूर की बीमारी होते हुए भी इतिहास के आदि काल से चली आ रही है और उसको सर्वथा समाप्त करने की बात करना अहम्मन्यता है,'—यह आशय नहीं व्यक्त करता कि नैतिकता के मोर्चे पर हम निराश होकर हार मान लें और बुराइयों

को यथा-संभव कम करने का भी करें। विश्व के इतिहास में ज अनैतिकता विद्यमान है, वहाँ उसके किये गये संघर्ष की सुनहरी रेखा भी कहीं अधिक चमकती दीख पड़ प्राचीन ग्रन्थों में देवासुर-संग्राम का इसी का प्रतीक है—उस संघर्ष का, कि प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत रूप में समाज समष्टि रूप में अपनी कमियों, और कमजोरियों विजय पाने के अनन्त काल से हुआ है।

वेश्यावृत्ति के कुछ और बुराइयां समाज में पाई हैं। हिंसा, चोरी और वस्तु आदि वे बुराइयां जिनके विरुद्ध निरंतर संघर्ष कर है। आधुनिक पुलिस, जेल अदालत आदि की सारी व्यवस्था बुराइयों के दमन करने के लिए ही कायम है। पहले भी धर्म-शास्त्रों आदेश, उपदेश व संदेश, स्मृतियों विधान, महापुरुषों के आदर्श और कठोर दण्ड-विधान आदि उद्देश्य इन मानवीय कमजोरियों पर नि रखना ही था। मानव-स्वभाव के साथ बुराइयाँ छाया की तरह जुड़ी हुई

निद्रा, भय और मैथुन आदि की मनुष्य और पशु के धरातल में कोई ‍ अन्तर नहीं है। अन्तर केवल इतना के मनुष्य उन पर नियमण व संयम सकता है, किन्तु पशु नहीं रख सकता। भी यदि मनुष्य अनैतिकता के विरुद्ध मान लेता है, तो वह अपनी मनुष्यता ही खो बैठता है।

ये वेश्यावृत्ति और बुराइयों के विरुद्ध भी प्रयत्न और सवर्ष र जारी रहने चाहिये। दुख तो यही है कि ाज भी अपनी पराधीन त्ति और सड़े-गले रिवाजों से ऊपर उठने हस नहीं कर पाते। वृत्ति के सम्बन्ध में किया गया वर्तमान हमारी इसी दयनीय का द्योतक है।

ई एक अहम् सवाल है आखिर इस मर्ज की क्या है?' हमारे प्रायः इस समस्या का पहलू होता है, उसके पर हमारी दृष्टि नहीं जाती। पुरुष उके लिए अपराधी न मानकर केवल को ही अपराधी मान लिया जाता है, म केवल स्त्रियों के सुधार के उपायों चने में अपना सारा पुरुषार्थ लगा। एक बड़ी भूल यह भी की जाती है कि इसको हम ने वेश्यावृत्ति करनेवाली महिलाओं के लिए केवल आर्थिक प्रश्न मान लिया है और उसके वैसे ही उपाय ढूँढे जाते हैं। यह समझा जाता है कि स्त्रियों की आर्थिक स्वाधीनता इस समस्या का एक मात्र हल है। हमारी विनम्र सम्मति में न तो इस समस्या का यह विश्लेषणात्मक

संतोषामृतलिप्सा
रूमानियन शिल्प की एक रेखानुकृति

अध्ययन है, और न पूर्ण हल।

दो उदाहरण हमारे सामने हैं। एक चीन के शंघाई नगर का और दूसरा दिल्ली का। दिल्ली में १९५४ के लगभग वेश्याओं के अड्डों पर छापा मार कर करीबन डेढ़ सौ लड़कियों को नारी-निकेतन में इस

देव विद्यालंकार

ः किया गया कि दो-तिहाई विवाह-
वस्थ लड़कियों के तो विवाह कर
। दूर-दूर गाँवों में जाकर वे सुखी
गृहस्थ-जीवन बिताने लगीं ।
ड़कियों को अध्यापन, शिशु-पालन,
र्सें आदि का प्रशिक्षण दिया
नको दस्त-
अनेक धन्धे
ए। उनको
दफ्तरों में
ने की शिक्षा
गई। सैकड़ों
कार विविध
लगा दिया
। अनैतिक
से मुँह
अपने राष्ट्र
उत्थान व
हाथ बँटाने
। उनमें से
मी थीं, जो
का बुरी
र होने के
त के मुँह
कितनों ही
र जबरन
रना पड़ा
उनकी
ल बिगड़
। उन
ी लगन
पथोपचार

किया गया और उन्हें बचाया गया। परिणाम हुआ—शंघाई से इस अनैतिकता का आमूल-चूल उत्पाटन। चीन के अन्य स्थानों पर भी इसी प्रकार किये गये प्रयोगों के फलस्वरूप सारे देश से वेश्यावृत्ति का अभिशाप ही मिट गया। निस्संदेह चीन में यह

नृत्य संगीत ललिता — हानी की एक नर्तकी

प्रयोग एक ही दिन में सफल नहीं हुआ। उसके लिये पृष्ठ-भूमि उस महान् सांस्कृतिक युवक आन्दोलन द्वारा तैयार की गई थी, जिसका श्रेयस्कर श्रीगणेश मई आन्दोलन द्वारा १६१८ में हुआ था। आज भी प्रति वर्ष चार मई को यह सांस्कृतिक पर्व बड़े उत्साह से मनाया जाता है। जीवन के नये आदर्शों से अनुप्राणित होने की प्रेरणा इस पर्व पर युवा स्त्री-पुरुषों को दी जाती है और उनके सामने मानव जीवन की नई मान्यताएँ तथा नये मूल्यांकन उपस्थित किए जाते हैं।

इन दोनों उदाहरणों के प्रकाश में हम को अपनी असफलता व चीन की सफलता का कुछ थोड़ा सा विवेचन करना चाहिये। उससे जो निष्कर्ष निकलता है, वह यही कि वेश्याओं के प्रति समूचे राष्ट्र की मनोवृत्ति में आमूल-चूल क्रान्तिकारी परिवर्तन शीघ्र ही करना चाहिये। विवाह-प्रथा व संस्था में भी अथ से इति तक व्यावहारिक—सिर्फ कानूनी नहीं—सुधार होना चाहिये, ताकि वह एक भार या बन्धन और मुसीबत न बना रहे। पारिवारिक जीवन में सुख, शांति, संतोष और सौन्दर्य का समावेश हो तो इन भूली-भटकी बहनों को उस जीवन की ओर आकृष्ट करेगा। अनमेल विवाह द्वारा दम्पति के नर और ... का व्यक्तित्व सर्वथा विनष्ट नहीं ... चाहिये। गांधीजी ने बहुत ही ... और व्यथा के साथ यह लिख... कि, 'वेश्यावृत्ति करनेवाले पु... अधिकांश संख्या विवाहितों की हो... और यह विवाहित अपनी पत्नियों... विश्वासघात तथा वेश्याओं के प्रति ... के दोहरे पाप के भागी होते हैं। ... उनका नारीत्व भी उनके लिये अपने ... के नारीत्व के समान ही पवित्र ... चाहिये।' यह दुष्परिणाम हमारे ... पारिवारिक जीवन में सुख, ... संतोष और आकर्षण के अभाव ... विवाह एक कर्तव्य नहीं, बन्धन ... लिये वेश्यावृत्ति के उन्मूलन के लि... को चहुँ-मुखी व्यापक प्रयत्न करना ... उसको अकेली समस्या न मानकर ... समस्याओं के साथ जुड़ा हुआ मानन... जिन का सम्बन्ध घर, गृहस्थी तथा ... रिक जीवन के साथ है। महिला... आत्म-निर्भर बनाने का यह अर्थ न... चाहिये कि वे पश्चिम की 'सोसाय... और 'कॉल गर्ल' बन जायें। ऐसा ... उन्हें एक खड्ड में से निकाल कर दू... कुँए में गिराने के समान होगा।

एक आदमी के खेल का तरीका और उसकी बुराइयों की साधारण-श्रेणी को ... काम के चौगाने से भाग कर दें तथा उसकी राष्ट्रीयता के गुणक से गुणा करें तो ... उसकी विध्वंसक स्थितियों की सामना करनेवाली शक्ति का अन्दाज हो नहीं ... अनुमान भी कि, वह हारते हुए खेल को कहाँ तक खींच ले जा सकता है, ... और वह भी काफ़ी सही रूपमें।

—रडयार्ड कि...

इताली में भारतीय विद्या का अध्ययन

डा० रामसिंह तोमर

ाचीन समयमें भारत और रोम के ानिष्ठ संपर्क था, उसके प्रमाणस्वरूप सामने एक ओर भारत में नागार्जुन-, अरिकमेडु, तक्षशिला में प्राप्त वस्तुएं तथा गंधार कला के नमूने सरी ओर इताली में नेपल्स के समीप नगरों-एकेलिनो, पोम्पेयी–में प्राप्त भारतीयता से सम्बन्धित वस्तुएं हैं। सम्राट आउगुस्तो के समय में रोमन के साथ लातीनी शब्द डेनारिउस र) भी भारत में आया, इसी प्रकार सारे (सीजर) से कैसरस उपाधि त पहुँची, जिसे कुषाण राजाओं ने किया। भारत से अनेक विलास की ोम के रईसों के लिये जाती थी, र इतनी अधिक मात्रा में जाती थीं वर्ष रोम भारत को १० करोड़ स्वर्ण चुकाता था। इस प्रकार के व्यापार न की आर्थिक क्षति को देखकर ही नी ने रोमन रईसों की विलासिता प्रकट किया था। रेशम, बहुमूल्य , जंगली जन्तु तथा अनेक प्रकार की शौकानी वस्तुएं भारत से रोम खरीदता था, और इस व्यापार के प्रमाणस्वरूप ही लातीनी भाषा में साकारुम (शर्करा से), जिंजीस्बेर (संस्कृत शृङ्गवेर से), पीपेर (तामिल पिप्पली से), सान्दालो (चंदन से) कारपसिम (सं०कर्पास से) बेरील्लुम (सं०वैदूर्य से), आदि भारतीय शब्द पहुँच गए। और यह तो भारत में प्रसिद्ध ही है कि सूर्य भगवान ने सूर्य सिद्धान्त रोमक पत्तन में मय को प्रदान किया था। मय के विषय में मतभेद हो सकता है कि वह तौलोमैयो (Tolmy) ही था या कोई और, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि रोमक ही रोम है। इसी प्रकार रोमक सिद्धान्त और पउलिस सिद्धान्तों का भी रोमन जगत से अभिन्न सम्बन्ध स्पष्ट है, पौलिस तो पाओलो का संस्कृत रूपान्तर है। किन्तु प्राचीन सम्बन्ध आगे चलकर टूट गए, और रोमन जगत् को भारत की जानकारी प्रायः नहीं के बराबर रह गई।

योरोपीय पुनर्जागरण काल के प्रारम्भ

से व्यापारियों, यात्रियों के द्वारा भारतीय धर्म और दर्शन के विषय में फिर कुछ सूचनाएँ योरोपवासियों को प्राप्त होने लगीं। फीलियो साम्सेत्ती नामक एक इतालवी यात्री सोलहवीं सदी-ई० में भारत आया और इतालवी और संस्कृत में साम्य पाकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ था। साम्सेत्ती का ४८ वर्ष की अवस्था में गोआ में सन १५८८ में स्वर्गवास हुआ। अपने पत्रों में उसने भारत के सम्बन्ध में काफी जानकारी दी है। उसके पश्चात् दे नोबिली, बेस्की, देनोच्यो, मार्को देला, तोम्बा आदि इतालवी यात्रियों ने भारत के प्रसिद्ध ग्रंथों का परिचय दिया; वेद, महाभारत, रामायण, पुराणों का परिचय दिया और भारतीय विद्या के अध्ययन के लिए इतालिया में नींव रखी। प्राचीन समय में योरोप के अन्य राष्ट्रों की तुलना में भारत के साथ इतालियाका सबसे अधिक संपर्क था, किन्तु आधुनिक काल में इतालिया अपनी राष्ट्रीय एकता के संघर्ष में लगा रहा, फलस्वरूप भारतीय विद्या का आधुनिक अर्थों में अध्ययन कुछ अन्य यूरोपीय राष्ट्रों की तुलना में देर से शुरू हुआ। किन्तु प्रारम्भ भले ही देर से हुआ हो, इतालिया ने भारतीय विद्याओं के अध्ययन में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। और सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण घटना है—बाल्मीकि रामायण का गास्पारे गोरेसियो का संस्करण। गोरेसियो को इतालिया का पहला भारतीय विद्याविद् कहा जा सकता है।

गास्पारे गोरेसियो का जन्म सन् १८०८ में उत्तर इतालिया के [illegible] में हुआ था। वियना और पेरिस में संस्कृत का अध्ययन किया, पेरिस [में] बूर्नूफ के शिष्य थे। सन् १८५२ में [पहली] बार संस्कृत भाषा और साहित्य के [अध्ययन] का स्थान तूरिन विश्वविद्यालय में [इस] में प्रारंभ किया गया और गास्पारे गोरे[सियो] की उस पर नियुक्ति हुई। गोरे[सियो] अनेक वर्षों तक रामायण का [संपादित] संस्करण तैयार करने में लगे रहे। [दस] विशाल जिल्दों में यह संस्करण [पेरिस के] शासकीय मुद्रणालय से छपकर सन् [१८४३] और १८६७ के बीच निकला [पहले पाँच] भागों में मूल संस्कृत पाठ और [बाद के] भागों में इतालवी अनुवाद था, [अंतिम] भाग सन् १८७१ में तूरिन से [निकला]। बाल्मीकि रामायण का यह पहि[ला] संस्करण था, जो यूरोप में निक[ला]। इसके पूर्व कैरे, मार्शमैन और [श]लेगेल ने केवल कुछ अंश ही प्रकाशि[त किये] थे और केवल उत्तरी भारत के पाठ [का] उपयोग किया था। गोरेसियो ने [बं]गौड़ीयपाठ का भी उपयोग किय[ा]। पेरिस के राजकीय संग्रहालय की दो [हस्त]लिखित प्रतियों तथा लन्दन के [इं]... की चार हस्तलिखित प्रतियों का [उपयोग] करके एक प्रकार से उस समय [का] अत्यन्त विश्वसनीय संस्करण प्रस्तु[त किया]। प्रत्येक भाग के प्रारम्भ में दी हुई [विस्तृत] पूर्ण भूमिकाओं में गोरेसियो ने [रामायण की] भाषा, इतिहास और काव्य शैली [से] सम्बन्धित खोजें प्रस्तुत की और...

ल जैसे विद्वानों के तर्कों के भी
तर दिए हैं; होमर और वाल्मीकि
ों के काव्य-सौन्दर्य की तुलना
गोरोसियो का इतालवी अनुवाद
रसहुआ है। मूल कृति के सौन्दर्य
ता की पूरी रक्षा की है। उसके
गोरोसियो ने भारत के विषय में
त लिखे, वेदों से सम्बन्धित खोजें
] रामायण का उनका संस्करण
क सदी के पश्चात आज भी
संस्करण बना हुआ है। उनकी
र में हुई।

, जो कभी इताली नहीं
ाशा ऐसा महसूस करता है
एक यह कमी रह गयी है
हर आदमी को देखना
ाह उसने नहीं देखा।

—सैमुअल जोन्सन

प्रकार वाल्मीकि रामायण का
ाषाओं में पहला अनुवाद और
ालिया में हुआ उसी प्रकार
का भी पहिला पूर्ण संस्करण
ों निकला। महाभारत के पूरे
लकत्ता और बम्बई से १९ वीं
ले, अभी गीता प्रेस से हिन्दी
त एक नया संस्करण निकला
ा संस्करण पूरा हो रहा है।
ंग्रेजी अनुवाद प्रतापचन्द्र राय

और मनमथ दत्त के हैं। योरोपीय भाषाओं में केवल कुछ अंशों के अनुवाद हुए हैं। इतालवी विद्वान् मीकेल कैरवाकेर ने पहली बार संपूर्ण महाभारत का इतालवी में अनुवाद किया। कैरवाकेर का जन्म तूरिन में १८३५ में हुआ था, उन्होंने हिब्रू, पुरानी फारसी, ग्रीक, लातीनी और संस्कृत का अध्ययन किया। सन् १८७२ में उनको नेपल्स विश्वविद्यालय में संस्कृत का अध्यापक नियुक्त किया गया, जहाँ उन्होंने भारतीय विद्या के अध्ययन की महत्वपूर्ण नींव डाली। महाभारत के अनेक अंशों के सुन्दर पद्यबद्ध अनुवाद कैरवाकेर ने अनेक इतालवी पत्रों में प्रकाशित किए। वे संपूर्ण कृति का इतालवी पाठकों को परिचय देना चाहते थे और इसके लिए सारा जीवन कार्य करते रहे, और जब १९१४ में उनकी मृत्यु हुई, तो कुछ अंश बाकी रह गया था। उनके शिष्य कार्लो फोरमीकी और वीत्तोर पीसानी ने इस कार्य को पूरा किया और महाभारत का यह इतालवी अनुवाद इतालवी अकादेमिया से पांच वृहद् जिल्दों में सन् १९३३-१९३९ के बीच प्रकाशित हुआ। कैरवाकेर ने वेदों के कुछ सूक्तों का तथा शूद्रक के मृच्छकटिक का भी बहुत सुन्दर इतालवी अनुवाद प्रकाशित किया। वैदिक देवताओं के सम्बन्ध में उन्होंने महत्वपूर्ण लेख लिखे।

इस परम्परा को आगे बढ़ाने में अत्यन्त उल्लेखनीय योग दिया कैरवाकेर के शिष्य कार्लो फोर्मीकी ने। फोर्मीकी का जन्म १८७१ में नेपल्स में हुआ। इतालिया, साहित्य

और जर्मनी में विख्यात भारत-तत्ववेत्ताओं निर्देशन में अध्ययन करके वे बोलेन, पीसा और रोम के विश्व विद्यालयों में संस्कृत के प्रोफेसर रहे। वे भारत के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे। फोर्मीकी भारत में दो बार पधारे थे और गुरुदेव रवीन्द्र ठाकुर से उनकी अच्छी मित्रता थी और शांतिनिकेतन में उन्होंने १९२५ में संस्कृत का अध्ययन किया था। अश्वघोष के बुद्धचरित, कालिदास के रघुवंश के इतालवी में अनुवाद फोर्मीकी ने किए। इतालवी में "बुद्ध के पूर्व भारतीय धार्मिक और दार्शनिक परंपरा" उनकी महत्त्वपूर्ण कृति है। फोर्मीकी की मृत्यु १९४३ में हुई।

इतालिया के अनेक विश्वविद्यालयों में इस समय संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन होता है। रोम, नेपल्स, मिलान, बोलोन और फ्लोरेंस विश्वविद्यालयों के नाम उल्लेखनीय है। रोम की प्रसिद्ध सुदूर तथा मध्यपूर्व के लिए इतालवी संस्था प्रो० जूसेप्पे तूची की अध्यक्षता में म[ह] कार्य कर रही है। प्रो० तूची विद्वान हैं जो भारतीय दर्शन, तिब्बती तथा अनेक आधुनिक भाषाएँ अच्छी तरह जानते हैं। उनके योग्य शिष्य भारतीय विद्या चर्चा और गवेषणा पर महत्वपूर्ण क[ार्य कर] रहेहैं। यह संस्था भारत की भाषाएँ, इतिहास और संस्कृति के का बहुत ही उल्लेखनीय कार्य कर[...] प्रो० तूची की देख-रेख में इस म[ें] रोम ओरियण्टल ग्रंथ माला निकल[...] जिसमें अनेक बहुत ही विद्वत्तापूर्ण प्रकाशित हुए हैं, जो भारतीय इतिहा[स] और संस्कृति पर नया प्रकाश डा[लते हैं।] भारतीय कला तथा संस्कृति से स[म्बन्धित] अनेक प्रदर्शनियाँ तथा भाषणों क[ा आयो]जन संस्था करती है और भारत त[था ...] के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान [...] सराहनीय कार्य प्रो० तूची औ[र उनके] योग्य शिष्य कर रहेहैं।

फ्रांसीसी आदमी को यह श्लाघा रहती है कि वह मन और शरीर दोन[ों से] आदमी-औरत सभी के लिये बहुत ज्यादा आकर्षक है; अंग्रेज को यह कि, वह [...] सबसे ज्यादा सुसंगठित राज्य का नागरिक है और अंग्रेज होने के नाते वही ज[ानता] है सबसे अच्छा करणीय काम क्या है और यह भी कि, जो कुछ वह करता है, व[ह निर्वि]वाद रूप से सबसे बढ़िया चीज है; इतालियन को यह कि, वह बहुत जल्दी उ[त्तेजित] हो सकता है और अपने को और दूसरों को बड़ी जल्दी भूल सक[ता है;] रूसी को यह कि, वह कुछ नहीं जानता और पर्वाह भी नहीं करता कुछ जानने [की,] चूँकि उसका यह विश्वास होता है कि किसी भी वस्तु को पूर्णतया जानना [सम्भव] नहीं हो सकता। किन्तु जर्मनों की श्लाघा सबसे बुरी और कड़ी एवं घृणित [है।] कारण, वह यही कल्पना करता है कि अपने द्वारा आविष्कृत विज्ञान का सत्य [उसके] अधिकार में है और यही सत्य पूर्ण सत्य है!" —काउन्ट लियो तॉ[ल्स्टॉय]

पानी : एक रहस्यमय पदार्थ

'साइन्स डाइजेस्ट' और 'सोवियत भूमि' में छपे लेखों पर आधारित।

ास हवा में साँस लेते हैं और से प्यास बुझाते हैं, उसके महत्त्व हसूस नहीं करते। प्रकृति और हज-सुलभ वरदान मानकर हम त्व को स्वाभाविक मान लेते हैं। ा-बन्द जगह में या चारों ओर गेस्तान में फँस जाने पर हम इन में वैसे ही बेचैन हो उठते हैं, ल से अलग होते ही मछली ती है। तब पानी की एक-एक हवा में एक बार ही खुली साँस लिए हम अपनी सारी दौलत को ने हैं। वह जल, जो हम और आप रह-तरह के कामों में इस्तेमाल उतना साधारण और सामान्य , जितना कि हम इसे मान बैठे के वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में ुसन्धान कर रहे हैं कि जल का कैसे होता है, उसमें कैसी रासा-ाएँ और प्रतिक्रियायें होती हैं तथा ालिक रूप क्या है? परन्तु जल निक प्रक्रियाएँ इतनी असामान्य न तक कोई भी वैज्ञानिक इन प्रश्नों का सही उत्तर नहीं दे पाया है। कुछ वैज्ञानिकों के मत से पानी में उठनेवाले छोटे से बुलबुले का जीवन अधिक से अधिक २३ मिनट होता है। कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी की प्रयोग-शाला में आविष्कृत एक तरीके से एक सेकेण्ड में पानी के बुलबुलों के कम से कम २० हजार चित्र उतार लिए जाते हैं! इस प्रकार बुलबुलों के जीवन-काल का—उसके उद्भव से लेकर अन्त होने तक—सारा इतिहास इन चित्रों के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

यदि जल पर अत्यधिक तीव्र गति से आघात किया जाय तो उससे एक प्रकार की नीली-सफ़ेद आभा निकलती है। विद्युद्-नेत्र की सहायता से वह नीली-सफ़ेद आभा विद्युत-तरंगों के रूप में आ जाती है। ये विद्युत्-तरंगें गामा-विकिरण से युक्त होती हैं। इस प्रकार के विकिरण का उपयोग खाद्य-पदार्थों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने के लिए भी होता है।

पानी में बुलबुले उठने की जो क्रिया होती है, वह बड़ी हानिकारक भी होती है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप पानी के नलकों में

एक रहस्यमय पदार्थ : डा० हैरी एम० रिवॉल्व

छेद हो जाते हैं, जहाज के पंखे बेकार हो जाते हैं तथा बड़े बड़े बाँधों में लगे लोहे के विशाल फाटक तक गल जाते हैं।

यदि पानी में किसी भी पदार्थ का सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण मौजूद रहता है तो वह जल-कणों के सम्मिलन में बाधक होता है। लेकिन यदि कोई पदार्थ पानी में पूर्ण रूप से घुल जाए, अथवा जल को सभी बाहरी तत्त्वों से मुक्त कर दिया जाए, तो उसकी मजबूती बढ़ जाती है। वस्तुतः इस प्रकार के कई परीक्षणों में वैज्ञानिकों ने पानी की धार के सहारे भारी-भारी बाट टिका दिए, परन्तु पानी का तार नहीं टूटा।

पानी के बुलबुलों के अध्ययन से पता चलता है कि जल के सम्बन्ध में पूर्ण अनुसन्धान करने के लिये कितना समय चाहिए। उदाहरणार्थ, तेज गति से उड़ने वाले जेट यानों के उपयोगार्थ ऐसा रासायनिक पदार्थ तैयार करने के लिए, जिस पर वर्षा के जल का असर न पड़े, डा० पास्टर डि० स्वेल को चार वर्ष लग गए।

आज भी, हिम-कणों, जल के स्वरूप, औद्योगिक क्षेत्रों के जल में प्राप्त विचित्र स्वाद और गंध आदि के सम्बन्ध में वैज्ञानिक लोगों को बहुत कम जानकारी है। कई दशाब्दों से निरन्तर प्रयत्न जारी रहने के बाद भी जल के वास्तविक स्वरूप की जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो पाई है। कोई इसे हाइड्रोजन-२ और ऑक्सीजन-२ का मिश्रित रूप ही मानते हैं, परन्तु अधिकांश वैज्ञानिकों में आज इस प्रश्न पर मतभेद है कि हाइड्रोजन के साथ ऑक्सीजन का कितना संयोग जल का निर्मा[illegible] है। वह यह नहीं तय कर पाये हैं [illegible] कणों का अलग-अलग अस्तित्व है [illegible] वह किसी बड़ी इकाई के पूरक अंश [illegible]

वैज्ञानिक इस समस्या पर भी [illegible] रहे हैं कि क्या समुद्र में फँसा [illegible] जल में जीवित रह सकता है। [illegible] की मनुष्य के शरीर और इसी [illegible] प्रतिक्रिया होती है, फ्रांस की [illegible] उस पर एक परीक्षण किया था।

इस से सम्बन्धित एक दूसरी [illegible] खारे जल को शुद्ध कर पीने योग्[illegible] की, क्योंकि बहुत से स्थानों में [illegible] का पूर्ण अभाव है। अतएव मीठे [illegible] बढ़ती हुई आवश्यकताओं को दृष्टि[illegible] हुए यह आवश्यक है कि समुद्र के [illegible] को मीठे जल में परिवर्तित करने [illegible] सरल और सस्ता साधन ढूंढ [illegible] जाए।

अमेरिका में १ हजार गैलन [illegible] करने पर लगभग २० सेण्ट (करीब [illegible] लागत बैठती है और, खारे जल [illegible] कर मीठा जल तैयार करनेवाले [illegible] प्रति हजार गैलन के लिये १.६० [illegible] लेकर ३ डालर तक वसूल करते हैं [illegible] वैज्ञानिकों के समक्ष सब से बड़ी [illegible] यह है कि खारे जल को शुद्ध करने वाली लागत को किस प्रकार [illegible] जाय।

लगभग ६ साल के अन्दर ही [illegible] में खारे जल को मीठे जल में परि[illegible] के लिए एक नया यन्त्र तैयार हो [illegible]

भरे ट्रे-नुमा बर्तनों में खारा जल
। इन बर्तनों के नीचे से भाप
और इस भाप के जोर से खारे जल
पात्र चक्कर काटने लगेंगे। इसी प्रक्रिया
में बर्तनों में भरा जल वाष्प के रूप
होने लगेगा। खारे जल से भरे
बर्तनों के ठीक ऊपर दूसरे ट्रे-नुमा
रेट होंगे। नीचे से उठनेवाली भाप
र्तनों में जाकर जल के रूप में परि-
जाएगी और इस प्रकार ऊपर के
र्तनों में एकत्र होनेवाली भाप पानी
में परिणत होकर एक नल की राह
र में चला जाएगा। यह सम्पूर्ण
त्र १० फुट ऊँचा होगा और इस
स भी १० फुट से अधिक नहीं
यन्त्र में २० से लेकर २५ तक
रेट रहेंगे। एक दिन में यह यन्त्र
। से लेकर २ लाख गैलन तक खारा
फ कर सकेगा। इस नये यन्त्र का
कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय के
निक डा० लुइस ए० ब्रामले द्वारा
किया जा रहा है। इसके द्वारा
गैलन खारा पानी साफ़ करने पर
ट से अधिक खर्च नहीं आएगा।
ई अन्य वैज्ञानिक खारे जल को
रने के लिए ऐसी छन्नियाँ तैयार
संलग्न हैं, जिनमें सूर्य ताप का
किया जायगा। इस प्रकार की
मी काफ़ी परिमाण में खारे जल
ह कर सकेंगी।

द दूसरी विधि है खारे पानी को
साफ़ करने की। वैज्ञानिकों का
कथन है कि पानी को उबालने के बजाय
उसे जमाने पर कम शक्ति खर्च होगी और
इस प्रकार की विधि द्वारा जो पानी प्राप्त
होगा, वह ९९ प्रतिशत शुद्ध होगा। बैटले
मैमोरियल रिसर्च इंस्टिट्यूट, कोलम्बस
(ओहायो राज्य) के अनुसन्धानकर्ताओं ने
बर्फ़ जमाने की नियन्त्रित विधि का प्रयोग
कर समुद्र जल को पेय जल के रूप में
बदलने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। इस
विधि द्वारा जो जल शुद्ध किया गया, उस
में लवण की मात्रा बहुत ही न्यून रही।

समुद्रों में तथा पृथ्वी पर जल सम्बन्धी
अनुसन्धान-कार्य बड़ी तेजी से हो रहा है।
काहिरा विश्वविद्यालय के एक वैज्ञानिक
मिस्र की मरुभूमि में काफ़ी नीचे मौजूद
जल का पता लगाने के लिए एक नई विधि
का उपयोग कर रहे हैं। विशेष यन्त्र की
सहायता से वह रेडियो की ध्वनितरंगें
पृथ्वी के गर्भ में भेजते हैं। कुछ रेडियो-
तरंगें सतह के साथ-साथ जाती हैं और कुछ
भूमि-गर्भ में प्रविष्ट हो कर जल की सतह
से टकराती हैं और उनकी प्रतिध्वनि पुनः
ऊपर की ओर वापस लौटती है। रेडियो
ट्रांसमिटर से कुछ सौ फुट की दूरी पर रखे
रेडियो संकेतग्राहक यन्त्र द्वारा इन तरंगों
की प्रतिध्वनि ग्रहण करली जाती है और
इसके आधार पर डा० सैयद यह पता लगा
लेते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में किस गहराई
पर पानी मौजूद है।

खारे पानी को मीठे पानी में बदलने
के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के साथ
वैज्ञानिक इस बात के लिए भी प्रयत्नशील

हैरी एम० रिववॉल्व

हैं कि जल के सुलभ भण्डार को कम न होने दिया जाए। वैज्ञानिकों ने यह खोज निकाला है कि यदि झीलों और जलागारों पर हेक्साडिकैनॉल नामक रासायनिक पदार्थ की परत पड़ जाए, तो भाप बन कर उड़ने वाला ७५ प्रतिशत जल बचाया जा सकता है। अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका में इस सम्बन्ध में अनेकों बार सफल परीक्षण भी किए जा चुके हैं। यह रसायन पानी के ऊपर तेल की तरह छाया रहता है और जल-कणों को भाप बन कर नहीं उड़ने देता।

यही नहीं, वैज्ञानिक आणविक विस्फोटों या आणविक पदार्थों के संपर्क में आने के कारण दूषित होगए जल को शुद्ध करने के तरीकों की खोज में भी संलग्न हैं।

समुद्र के पानी से तेल (!) निकालने का कार्य रूस और अमेरिका में हो रहा है। आर्तेम में कितने ही डेरिक सागर के बीच खड़े किए गये हैं और लाखों टन तेल, जो सागर जल के नीचे सदियों से दफनाया हुआ था, दिन प्रति दिन निकाला जा रहा है। मैक्सिको की खाड़ी में स्किन डाइविंग करने वाले दो वैज्ञानिक, जिनको दूर की चीजें कम दीखतीं थीं, सागर जल के प्रभाव से रोगमुक्त हो गये। उत्तरी अमेरिका के पेम्बिना क्षेत्र में भी ३५०० फुट नीचे तेल मिला है। यह आशा की जाती है कि एक ओकलाहोमा में भी इसी तरह जल गर्भ से तेल निकाला जा सकेगा।

पानी को संस्कृत में 'जीवन' भी कहते हैं। इस जीवन के संसर्ग में रहने से विद्यमान मिट्टी भी कितनी [illegible] दायिनी हो जाती है, इसका पता [illegible] गर्भ में प्राप्त पौधों और जीवों से [illegible] जिनकी सूरत-सीरत प्रायः [illegible] होती हैं।

अनन्त आकाश और पाताल [illegible] सम्भव है कि हवा और पानी [illegible] कितने रहस्य छिपे हैं, यह कोई [illegible] सकता। किन्तु अपनी पृथ्वी की [illegible] बारे में तो यह कह ही सकते हैं कि [illegible] प्रधान आधार पानी है। पानी ही [illegible] और जीवन पानी है। शायद [illegible] मनीषी कवि रहीम ने कहा था:

रहिमन पानी राखिए बिन पानी [illegible]
पानी गये न ऊबरे मोती-मानु[illegible]

हवा-पानी की महत्ता और [illegible] भला कौन अस्वीकृत कर सकता है [illegible] तो कवि मेरिल मूर कहते हैं:—

"Water has sunk more genera[illegible]
than wine
And will continue to
Turn the water on:
Stick your hand in the stream
Water will run:
And kiss it like a dog!
Or it will shake.
It like a friend,
Or it will tramble there
Like a woman sobbing with he[illegible]
Falling in her face."

मित्रता का मापदण्ड

मोहनजीत सिंह

हाँ मित्रता के लिये दो व्यक्तियों की आवश्यकता है, वहाँ झगड़े के लिये भी
काम चल सकता है ! अतएव केवल मित्रता का इच्छुक होना ही काफ़ी नहीं,
बात पर भी विशेष ध्यान देना होगा कि दिन-प्रति-दिन घर और बाहर,
प्रति हमारा व्यवहार कैसा रहता है।

ही मित्र के चुनाव के लिये पारखी आँख चाहिये। मित्रता की कुंजी है
। सहानुभूति पाने के इच्छुक तो सभी होते हैं, लेकिन सहानुभूति दे सकने की
म लोगों में ही होती है।

चे दिये हुए प्रश्नों को ईमानदारी से अपने ऊपर आजमाएँ। अन्त में दी
ो पढ़ने से पहले इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' या 'ना' में दें :—

	हाँ	ना
आप औरों के संबंध में सोचने को प्राथमिकता देते हैं सदैव इस बात का खयाल रखते हैं कि उन्हें किसी (की ठेस न पहुँचे ?		
लोग आपको नुकसान पहुँचायें, तब क्या आप उन्हे शीघ्र क्षमा कर सकेंगे ?		
आप लोगों को प्रसन्न देख कर सन्तुष्ट होते हैं और ी प्रसन्नता के लिये छोटे-मोटे काम कर सकते हैं ?		
तिन में कुछ पाने की इच्छा के बिना भी, क्या आप ' को कुछ देने के लिये राजी होंगे ?		
आप लोगों के साथ रह कर छोटे-मोटे काम करने में न्द ले सकते हैं ?		
' की पसन्द, या वे क्या करना चाहते हैं, उनके विचार नुभव जानने में क्या आप दिलचस्पी लेते हैं ?		
आपके लिए यदि कुछ करें तो क्या आप उनकी प्रशंसा या उनसे कहेंगे कि आप उन्हें कितना अधिक ' हैं ?		
आप इस बात को जानने में देर नहीं लगाते कि आपके किस समय व्यस्त हैं या शान्ति चाहते हैं अथवा एकान्त ना चाहते हैं ?		

(९) क्या आप अपने सम्बन्ध में या अपने परिवार के सम्बन्ध में बातें करने या इसी को लेकर घमण्ड की भावना को पनपने से रोक सकते हैं ?

(१०) क्या आप अपनी पसन्द के काम को विकसित करने और इसी राह पर चलने के लिये अपने को प्रेरित करने में सुगमता अनुभव करते हैं ?

(११) क्या आप यह सह सकेंगे कि आपके मित्र के साथ अन्य किसीका भी मित्रतापूर्ण व्यवहार हो ?

(१२) क्या आप अपनी 'मूड' को इस प्रकार वश में कर सकते हैं कि आज जिसके मित्र हैं, कल उसके कुछ और न हो जाएँ ?

(१३) जब परिस्थितियाँ आपके प्रतिकूल जा रही हों, तो अपनी प्रतिक्रिया को अपने आस-पास के लोगों से बचा सकेंगे ?

(१४) क्या आपमें पारस्परिक समस्याओं और गलत-फहमियों के सम्बन्ध में चातुर्य और औचित्य-पूर्ण ढंग से बहस कर सकने की सामर्थ्य है ?

(१५) तर्क-पूर्ण बहस के समय क्या आप विरोध को सह सकेंगे ?

(१६) क्या आप विश्वासपात्र बनने योग्य हैं ?

(१७) क्या आप अपने वायदे को निभाते हैं ?

(१८) क्या आप इतने वफादार हैं कि पीठ-पीछे चुगली अथवा आलोचना करने और लम्बी बातें बनाने वाली जैसी आदतों से दूर रहते हों ?

(१९) किसी के कष्ट के समय में क्या आप झट सहायता करने को तैयार हो जाते हैं ?

(२०) अपने मित्रों की खातिर क्या आप कैसी भी कठिनाइयों को प्रसन्नता से झेल सकते हैं ?

हाँ	

कसौटी :—प्रत्येक 'हाँ' के लिये पाँच अंक लें । ७० अंक पाने वाला अनु... ६१-७१ वाला सन्तोषजनक है; ५०-६० ठीक है, लेकिन इससे अधिक अंक पाने की ... करें । ५० से कम पाने वाला चिन्ताजनक है । ऐसे व्यक्ति के लिए हमारी यही राय ...

आप अपनी अपेक्षा औरों में अधिक दिलचस्पी लें । एक बार इस ... प्रधान बना लें; आप मित्र बनाने और मित्रता निभाने में शायद फिर कभी न चूकें ।

रोगी बाप

कृष्णचन्द्र

[के प्रसिद्ध कहानीकार श्री० किशन चन्दर' की एक मनोवैज्ञानिक कहानी

ात मित्रों पर खुल चुकी थी;
हता है कि उसका बीमार
ल्द मर जाये।

मेहता हमारा दोस्त था,
ी। वह दुबला-पतला, ऊँचे,
ा का, अधेड़ आयु का दलाल
के मकानों या ओनरशिप
ी करता और पाली पार्क
पाली पार्क के नये बंगलों में
रायेदार आते थे, उसी के
ौर जो नये बंगले बन रहे
ेदार भी उसी के मारफत
भी हमें पता है कि चन्द्र-
सूरचन्द को खूब अच्छी
था और सेठ सूरचन्द इन
ों का मालिक था, इसीलिये
ने दिन-रात मस्का लगा-
रचन्द को अपनी मुट्ठी में
यपि सेठ सूरचन्द बहुत
र तेज मिजाज सेठ था।
ते हैं कि सुरदरी तबियत
ी से चिकनी हो जाती है

और अगर नहीं जानते हैं तो एक दिन
जान जायेंगे।

बहरहाल चन्द्रकान्त मेहता को समय
ने यह गुर अच्छी तरह से सिखा दिया था,
मगर इस दुनिया में अकेली खुशामद पूरी
नहीं होती। नये मकानों का निर्माण भी
तो आवश्यक है; अगर नये मकान नहीं
बनेंगे; तो नये किरायेदार कहाँ और कैसे
आकर बसेंगे। और चन्द्रकान्त मेहता की
दलाली कौन देगा, क्योंकि इन दिनों तो
मकानों की कमी का यह हाल है, कि
एक बार जो किरायेदार एक मकान में
आकर बस गया, बस वहाँ से जाने का
नाम ही नहीं लेता। पिछले ज़माने में सुना
है, किरायेदार अत्यन्त सभ्य, सुशील हुआ
करते थे। मालिक मकान के एक ही
नोटिस पर घर खाली कर चले जाते थे।
आजकल के किरायेदार दस बार मुकदमा
करने पर भी नहीं निकलते।

भला यह भी कोई इन्सानियत है,
आखिर चन्द्रकान्त मेहता कहाँ जाये। उसे
हर माह अपने घर के खर्च के लिये एक

। जाती दिखाई देती है। बुड्ढा
भी जिन्दा (जी रहा) है,
है और बीमारी का मुक़ाबला
है, उसके दो बेटे और भी हैं,
वह अपने बूढ़े बाप की सेवा
क्योंकि बूढ़ा तो दस साल से
र वह दोनों बेटे पहले चार
उसकी सेवा करते-करते थक
मात्र की भी एक सीमा होती
होती है, जहाँ पर पहुँचकर
ता है। उन दो बेटों के साथ
रिणामस्वरूप बुड्ढे ने चन्द्र-
ो सेवा से प्रसन्न होकर अपने
को सम्पत्ति से अलग कर
यह सम्पत्ति बाप-दादा की
अपनी खुद की कमाई थी।
ों बेटों को इसका बहुत दुःख
दोनों दुःख और क्रोध में
ई चन्द्रकान्त को दोष देते
गोगों से कहते फिरते थे, कि
म्पत्ति के लालच में आकर
ता है।

अत्यन्त खामोशी से उनकी
सुनता और फिर अपने
ा में लग जाता। आज छै
पने बूढ़े बाप की सेवा में
आज्ञाकारी से आज्ञाकारी
ो बाप को ऐसी सेवा
जिस तरह कि चन्द्रकान्त
वह बड़े अभिमान से अपने
दोस्तों में बयान किया

चन्द्रकान्त पूरा धार्मिक आदमी भी था और उसे लेक्चर सुनने और सुनाने का भी शौक़ था। बहुधा धार्मिक समाओं में वह रामायण से उदाहरण देते हुये अपने भाषण में मा-बाप की सेवा के महत्व पर ज़ोर देते हुए अपने बूढ़े बाप की बीमारी का ज़रूर हाल कहता। लोग उसकी इस हानि न पहुँचाने वाली कमज़ोरी को क्षमा कर देते थे, आख़िर जो बेटा इतने साल अपने बाप की सेवा करेगा, क्या उसे अपनी सेवा के पुरस्कार में प्रशंसा के दो शब्द कहने का भी अधिकार नहीं है। चन्द्रकान्त और मिसेज़ मेहता बूढ़े बाप के ख़रीदे हुए बँगले में रहते थे, किसी ज़माने में बूढ़े बाप को पुराने टाइप के फर्नीचर जमा करने का बहुत शौक़ था, इसीलिये उसका बँगला इस तरह के फर्नीचर से पटा पड़ा था। मिसेज़ मेहता और अपने बेटे को बूढ़े ने दो कमरे दे रखे थे; बाक़ी सब कमरों में उसका सामान पड़ा था, और कोई चीज़ उसकी आज्ञा से इधर-उधर न हो सकती थी। मिसेज़ मेहता इस बात से बहुत कुढ़ती थीं और कभी-कभी अपनी सहेलियों से बात-चीत करते समय उनकी ज़बान से ऐसे वाक्य निकल जाते—'देखना, एक दिन मैं इस बँगले को कैसा सजाऊँगी।' इस सजाने के अन्तर्गत जो प्रच्छन्न भाव था, वह ऐसे मौक़ों पर खुलासा हो जाता था। मगर यूँ कभी-कभार ऐसा होता था; वर्ना मिसेज़ मेहता ऐसे मामलों में बहुत ही सावधान रहती थीं और बूढ़े को भी इस बात का पूरा यक़ीन था कि उसकी बहू और उसका

का साहस उन्हें कभी न होता
न्द्रकान्त मेहता तो बूढ़े के कमरे
करते ही अपनी आँखें नीची कर
ौर बूढ़े के पैताने बैठकर उसके
ने लगता, और बूढ़ा हौले-हौले
लगता, मगर बूढ़ा कुछ भी
बहुधा उसकी असमर्थ और
निगाहें तिजोरी ही की तरफ
ीं और फिर वहीं जम जातीं।
क्योंकि अपनी तिजोरी को देखा
नमें उसकी जिन्दगी का भाग्य
यद्यपि अब वह उसे हाथ तो न
ा था और न खोल के देख सकता
उसे इस बात का भरोसा था;
वह जीवित है, न यह तिजोरी
ोई उसकी जिन्दगी में उसकी
ाथ साफ़ कर सकेगा!

ौर बूढ़ा कमज़ोर होता गया,
तिजोरी पर धूल-मिट्टी की तहें
और वह मनहूस, कुरूप रंग से
एक संगीन क़ब्र की तरह काली
गी। मकड़ी ने उस पर एक
ना लिया था; और ख़ुद वह
े मैले बिस्तर पर पड़ा हुआ
और भूखी मकड़ी की तरह
लोभी दिखाई देता था।

द्रकान्त मेहता अपने बुड्ढे बाप
परिचित था। उसने कभी
क बार भी अपने बूढ़े बाप से
माँगे, स्वयं दिन-रात मेहनत
िया, इधर-उधर से माँग-माँग
ाकाटे, मगर तिजोरी को खोलने
की विनय कभी न की, उसे मालूम था कि
इस विनय से उसका शील उसके बाप की
दृष्टि में हमेशा के लिये समाप्त हो जायगा।
उसके दोनों भाई सम्पत्ति से अधिकार-च्युत
हो चुके थे, अब तो यह सारी दौलत सिर्फ़
उसके भाग में आने वाली थी, सिर्फ़ बुड्ढे
के मरने का इन्तज़ार था।

लेकिन चन्द्रकान्त ने कभी बूढ़े पर
प्रकट नहीं होने दिया कि किस उग्रता से,
किस सच्चाई से, किस लगन से वह बूढ़े की
मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। ऊपर से वह
हर घड़ी बूढ़े के सामने और अपने मित्रों के
सामने बूढ़े की आरोग्यता की प्रार्थनाएँ
माँगा करता। जिस लगन से वह बूढ़े की
सेवा करता था, उसी तेज़ी से उसके दिल
में बूढ़े की मौत की अभिलाषा अपने पाँव
फैलाती जाती। कभी-कभी तो प्रतीक्षा की
उग्रता से उसके दिल की धड़कन तेज़ हो
जाती और उसके हाथ-पाँव काँपने लगते,
और वह निगाहें झुका लेता कि कहीं दिल
के अन्दर छिपा हुआ भाव आँखों के चोर-
दर्वाज़े से छलक कर बाहर न आ जाये।
कभी-कभी तो भावावेश से उसका दिल
घबराने लगता। एक मकड़ी बिस्तर पर है,
एक मकड़ी तिजोरी पर है। क्यों नहीं वह
हाथ के एक ही झटके से इन जालों को तोड़
कर उस धन पर अधिकार कर लेता, जो
प्रत्येक सभ्यता से अब उसकी हो चुकी थी।

मगर नहीं—ठहर। ऐ दिले बेताब
ठहर! अगर फल पककर
झोली में गिरने वाला है ... चढ़
कर ... ने ...

कना है ?

क्या-क्या उसके दिल में अरमान थे ! वह उन नये-पुराने मकानों की दलाली से तंग आ चुका था, वह एक बड़ा धन्धा करना चाहता था : वह सट्टे के दाँव पर एक ही बार बीस हजार लगा कर लाखों कमाना चाहता था, लेकिन उसका यह बुढ्ढा बाप अभी जीवित था और जीवित ही चला आ रहा था। एक ही साँस थी जो गले में अटकी हुई थी ; मगर किसी तरह वह साँस बाहर न निकलती थी। कभी-कभी यह साँस खुद उसे अपने गले में फाँसी की रस्सी की तरह फँसी हुई मालूम होती थी। चन्द्रकान्त की सेवा में एक इस तरह का भाव बल्कि मक्का मिला हुआ था। जैसे उसकी आत्मा का कण-कण पचास वर्षीय पिता के हठ का विरोध कर रहा हो। क्यों नहीं मर जाते तुम, मेरे बाप ! क्यों नहीं इस शरीर का मकान खाली कर देते। किरायेदार आते हैं, किरायेदार जाते हैं, मगर तुम अपना टनेंट क्यों खाली नहीं करते ; पचासी साल हो गये, तुम्हें इसी शरीर में रहते हुए, अब जाओ ताकि मैं दलाली कर सकूँ, और नया बिजनेस खोल सकूँ।

मगर बूढ़े को मालूम था कि शरीर एक ऐसा फ्लैट है, जो एक बार खाली कर देने पर कभी बसाया नहीं जा सकता, इसलिये वह मृत्यु की ओर रेंगते हुए भी एक-एक पल से लड़ाई कर रहा था और अपने जीवन पर झपट रहा था ; उसकी लालची दृष्टि में जीवित रहने की ऐसी भूख थी, कि मौत भी उसका सामना करते हुए घबराती थी।

फिर वह दिन आ गया, [illegible] ही दुर्बल हो गया, उसके हाथ [illegible] उसकी बोली बन्द हो गई ; [illegible] पाँव ठण्डे हो गये, नाड़ी [illegible] डाक्टरों ने कहा, बूढ़ा अब [illegible] ही मेहमान है।

आज्ञाकारी बेटे ने रूमाल [illegible] आँसू पोंछे और पहली बार [illegible] बन्द तिजोरी की ओर [illegible] से देखा।

और जिस समय बेटे ने [illegible] तरफ देखा, उसी समय बाप ने [illegible] तरफ देखा और बेटे की [illegible] तीर की तरह बाप की छाती [illegible] गई। और सहसा उसे ऐसा [illegible] जैसे किसी ने बेटे के प्रेम [illegible] नोच लिया और उसके बेटे [illegible] को उसके सामने खड़ा कर [illegible] शरीर में एक हल्की-सी [illegible] और उसकी विवश, लाचा[illegible] लोभी चमक हुआ और [illegible] तड़पने लगी। अब बूढ़े के [illegible] कोने में शायद कहीं जान [illegible] सिर्फ माथा गर्म था और [illegible] थी ; और वह भी हट-हट [illegible] थी ; केवल आँखें रोशन [illegible] असाधारण चमक थी, जो [illegible] जाती थी—जैसे लौ बुझने से [illegible] ऊँची हो जाय।

बेटे ने बाप की यह [illegible] वर्ना वह उसकी घृणा से [illegible] समय वह अपने [illegible]

तेह में पड़ा उसी कमरे में
किसी को चन्दन लाने के
ह रहा था, किसी से पण्डित
लिये पूछ रहा था, और किसी
। आर्डर दे रहा था, किसी को
। का, किसी को चिता की लक-
:—धीरे-धीरे, बहुत ही मिनवन
तर में वह अपने दोस्तों से अपने
आँसुओं के बीच इस तरह बात
ा, जैसे उसका बाप मुर्दा हो और
वह इस घर का मालिक हो।
ने के ढंग में और उसके चलने के
अपने आप एक अकड़ पैदा हो

मेलने-जुलनेवाले आ-जा रहे थे,
ने की तैयारियाँ कर रही थीं और
ी हुई बहू को दिलासा दे रहीं
भिन्न-भिन्न गिरोहों में बँगले के
र बाहर खड़े तरह-तरह की बातें
और बुड्ढे के मरने की प्रतीक्षा
। जिसमें अब डाक्टर के कहने के
वल कुछ पलों की देर थी।
कुछ पल, कुछ मिनट बन गये;
घंटों में बदलते गये, बूढ़ा उसी
ा था, उसी तरह उसकी साँस
ी; नाड़ी वापस न आई थी,
खों की चमक बढ़ गई थी, एक
ड्ढे ने तिजोरी से नजर हटाकर
अग्निवर्षक निगाहों से बेटे की तरफ देखा,
तो बेटा सहसा घबरा गया, एकाएक उसे
मालूम हुआ कि जिस भेद को उसने इतने
साल से अपने बाप की निगाहों से छिपा कर
रखा था, वह आज एक ही निगाह में खुल
गया। अब दोनों की निगाहें एक दूसरे पर
थीं; बाप की बेटे पर, बेटे की बाप पर!
दोनों दुश्मन आमने-सामने खड़े थे, और
बीच में मौत थी।

जब सवेरे के पाँच बज गये, तो डाक्टर
को बूढ़े की नाड़ी वापस आती मालूम हुई,
सब लोगों ने बेटे को और बहू को बधाई दी,
पड़ोसी रात-भर के जगे हुये थे; सब लोग
अपने-अपने घरों में जाकर सो गये।

सुबह नौ बजे के लगभग बुड्ढे के बँगले
से रोने-चिल्लाने की आवाजें ऊँची हुईं
और लोग घबरा कर नहीं, बल्कि बड़े संतोष
से अपने घरों से निकले, सब के चेहरों पर
एक अजीब सी मुस्कराहट थी। अन्त में वह
घड़ी आन पहुँची, जिसका सब को इन्तजार
था, हम सब लोग भागे-भागे बँगले के दर्वाजे
तक पहुँचे और हमारे मुँह से सहसा
निकला—

"क्या बुड्ढा मर गया?"

बँगले के पठान दर्वान ने सर हिलाकर
कहा—"नहीं जनाब, बुड्ढा तो जिन्दा है;
उसका बेटा मर गया, अभी-अभी उसका
हार्ट फेल हो गया! *

विचार अक्सर खोटी चवन्नी जैसे होते हैं और हम उन्हें एक दूसरे
के मढ़ने की कोशिश में ही अपनी जिन्दगी बिता देते हैं!

सैमुएल बटलर

पहाड़ियों पर
वशता में पड़े
शहरों की कहानी

आलोक जब इस खूबसूरत हिल-स्टेशन के लिये रवाना
तब बहुत बीमार था—तन से नहीं, मन से।

जब सुनन्दा परायी हो गई तब वह भीतर ही भीतर
गया, बुझ गया। सुनन्दा ने कहीं और अपना नीड़
उसका नया साथी बहुत धनी है, और सुनन्दा ने उसने
आलोक से दो-चार दिन के परिचय
नहीं, पूरे छै साल के निकटतम
को तोड़कर जोड़ा था।

छै साल में आलोक और सुन्
एक प्राण-दो शरीर रहने, साथ साथ
मरने की क़समें न जाने कितनी बार
थीं। आलोक चाहता है कि इन
बातों को दिमाग से नोचकर फेंक दे,
स्मृतियों के आगे उसकी एक न
बार-बार वेदना होती कि जिस सुन
पैसे के लिए उसे यों भाग्य के
दिया है, उसी सुनन्दा के पीछे तो
पिताजी से झगड़ा कर उन्होंने
किया था। सुनन्दा से विवाह
हठ पर ही वह अपने धनी पिता से
हुआ था, छोटी-सी नौकरी करने
लेकिन सुनन्दा के पिता को
दामाद पसन्द नहीं था; उन्होंने लड़की के
दूसरा, योग्य वर तलाश कर दिया।

रा ! वह इतनी मजबूर बन गई कि
ोक को दी गई वफा की सैकड़ों कसमें
कसमें ही रह गईं !
और भाग्य की यह विडम्बना—सुनन्दा
तब तक दौलत आलोक से रूठी रही;
सुनन्दा ने धन के लिए उसका प्यार
दिया, तब लक्ष्मी को आलोक की याद
। उसके पिता परलोक सिधारे और
लिये बे-शुमार पैसा छोड़ गये।
नागपुर में जहाँ भी वह जाता, सुनन्दा
ख़याल आये बिना न रहता। शहर
एक-एक जगह, एक-एक चीज से
ा के साथ बीते हुए वर्षों की यादें जो
कर सिसक रही थीं।
हारकर वह चैन की तलाश में यहाँ
पर चला आया।
अब तक आलोक व्यथा की गहराइयों
ता चला जा रहा था, लेकिन हर बात
ैसा होती है, जिसके बाद प्रतिक्रिया।
भी मुर्दे को ऊपर फेंकता है। पहाड़
ाई के साथ ही आलोक का मन भी
ा। उदासी को चीर कर एक नई
उभरी। वह पछताया कि क्यों
दिनों उसने अपने आप को यों घोटकर
बेवफ़ा औरत की याद को गले लगा-
वन में ज़हर क्यों घोला जाय?
है भी क्या, एक हसरत ही न? पुरुष
ने हसरत, ख़ुद अपने लिये भी हसरत
की, अभाव की। एक ऐसा ख़ूबसूरत
जिसके पीछे भागकर पुरुष कहीं न
रूर मुँह के बल गिरता है!
हिल-स्टेशन पहुंचकर आलोक ने अनुभव
किया कि वह मोम का भावुक आलोक, जो
सुनन्दा की याद में सूखे दीपक की बाती की
तरह जला, तिल-तिल कर घुला, कहीं पीछे
बहुत दूर मैदानों में ही छूट गया है; पहाड़
पर पहुँचा हुआ आलोक मजबूत है, पत्थर
है। वह जिन्दगी के सुखों का मोहताज
नहीं, दुनियाँ की सारी खुशियाँ उसकी
चेरी हैं। न वह अब रोयेगा, न किसी की
याद करेगा। न जाने कितनी सुनन्दाएँ और
मिल जायेंगी। आकाश का एक तारा टूटने
से नक्षत्र-लोक सूना हो जाता है? जितने
भी सितारे टूटें, आकाश उसी तरह झिल-
मिलाता रहता है। ऐसे ही दुनियाँ भी है।

पहाड़ की हल्की सी नमी लिये, फूलों
की ख़ुशबू से लदी ठण्डी हवा से फेफड़े भर
कर महीनों बाद उसने महसूस किया कि
वह अभी जिन्दा है, और जिन्दगी भी ऐसी
जो खोखली नहीं, कुछ मतलब रखती है।
आज वह जान सका है कि जिन्दगी रबड़
की गेंद की तरह है—ग़मों से पिचक ज़रूर
जाती है, लेकिन समय के साथ फिर उभर
कर अपनी असली शक्ल ले लेती है। और
उसकी जिन्दगी पिचके भी क्यों? उसके
पास ढेरों रुपया है—रुपया, जो दुनियाँ में
वैसी ही ताक़त है, जैसे मोटर में पेट्रोल।

नागपुर में आलोक रातों से कितना
डरता था, बचता फिरता था, क्योंकि साँझ
घिरते ही सुनन्दा की याद और भी दर्दीली
हो जाती और उसका दम घुटने लगता था।
लेकिन आज जब उसने भावुकता का
उतार फेंका है, तब वह एकदम
गया। इस नये उत्साह ने उसे

सिंह एस० राठौर

होती है तो लगता है रो ही पड़ेगी; हँसती है तो हँस-हँसकर दोहरी हो जाती है। खूबसूरत, खुशमिजाज ।

अभी कल ही घूमने जाते वक्त रास्ते में एक पहाड़ी जोड़ा मिला, झरने के पास। एक पहाड़ी युवक और उसकी गोद में सिर रखे उसकी युवती प्रेमिका। आलोक और पहाड़िन को देखकर युवती ने लजाकर मुँह छिपा लिया, युवक गर्व से हँस दिया।

पहाड़िन ने आलोक से पूछा, 'इन मुहब्बत करनेवालों का गीत सुनोगे ?'

पगडण्डी के अगले मोड़ की आड़ लेकर आलोक रुक गया; पहाड़िन भी। दोनों एक चट्टान पर बैठे। पहाड़िन ने प्रेमी-प्रेमिका का गीत सुनाया :

> ओ परदेसी प्रीतम।
> तू आज और रुक जा,
> मेरे गाँव में
> सीढ़ी-उतार खेत हैं
> जिसमें धान का
> सोना बिखरा पड़ा है,
> इन्हीं में कहीं,
> सब की आँखों से छिप कर
> हम, एक बार और
> प्यार की बातें करेंगे।

लेकिन परदेसी विवश है, रुक नहीं सकता :

> मेरी अपनी,
> मुझे तो जाना ही है,
> पर अपना दिल
> यहीं छोड़े जा रहा हूँ,
> इससे बातें किया करना,
> तब तक तेरा प्यार
> मुझे फिर खींच लायेगा,

> लेकिन देख।
> कभी आँखें न छलकाना—
> मेरी क़सम है तुझे।

लौटते वक्त आलोक ने पूछा, 'तेरा नाम क्या है, गाइड ?'

'नताशा।'

'नताशा ? यह तो अपने मुल्क का नाम नहीं।'

'दूसरे मुल्क का है। मेरा दादा एक बार तिजारत के लिए मुल्क से बाहर गया था। वहाँ उसका एक औरत से प्यार हो गया। औरत का नाम नताशा था। दादा ने बाद में, उसकी याद में मेरा नाम नताशा रखा।'

''मैं तो तुझे 'बताशा' कहूँगा।''

'क्यों ?'

'यों ही।'

'बताशा का मतलब ?'

'शक्कर का नन्हा-नाजुक बुलबुला, तेरी ही तरह मीठा, सोंधी खुशबूवाला और नखरे में फूला हुआ !'

पहाड़िन को यह सब बहुत रुचा। उसने आलोक को एक निराले अन्दाज से देखा, फिर हँस दी।

'तू ज्यादा हँसा न कर !'

'तो क्या रोऊँ ?'

'नहीं, मुस्कराया कर। मुस्कराना अच्छा लगता है।'

'हँसी आती है, तो हँसती हूँ।'

'हँसी पर रोक लगा।'

'ऊँ हूँ। जो जी में आये, सो करना चाहिए; रोकथाम बुरी होती है।'

ारतों का ज्यादा हँसना भला नहीं
।

औरत नहीं, लड़की हूँ !'
र वह फिर ठठाकर हँस पड़ी।
ट दिन बताशा के साथ घूमने जाने
जब वह होटल की सीढ़ियाँ उतर
तब होटल के एक अधेड़ बेअरा ने,
उसे पहाड़िन के साथ देखता था,
नज़र से उसे घूरकर मुस्कराते हुए
आज तो औरत की पहाड़ी पर
ाबू।'
ा है, उस तरफ बस घना जंगल ही
?'
ाई और जंगल के बाद एक छोटी-
है, जिसके पास ही बैठने को
बिछी हुई है; और बातें करने को
मुनसान !'
रा की बात मन की अँधेरी भूल-
ें चक्कर काट-काटकर, न जाने
ाशा की कल की बात से मिल
ालोक चौंक पड़ा; बताशा ने किस
े कहा था कि, 'जो दिल में आये
ाहिए; रोकथाम बुरी होती है ?'
ोक ने जिद पकड़ी तो बताशा उसे
गह नहीं ले जा सकी—वे दोनों
ो पहाड़ी देखने चल दिए।
ी पहाड़ी चढ़कर दोनों को घोड़े
ड़े; आगे की करीब-करीब सीधी
पैदल ही जाया जा सकता था।
ुत कठिन; दोनों एक दूसरे को
े, सहारा देते चल रहे थे। इन
ा अभ्यस्त न होने से आलोक बार-

बार ठोकर खाता और कभी कभी फिसल पड़ता। बताशा उसे प्यार से झिड़कती जाती, "तुम तो एकदम नाजुक हो, बाबूजी, चला नहीं जाता जरा सी चढ़ाई पर। तुम से तो हमारा मेमना ही अच्छा, जो ऐसी एक नहीं, सात चढ़ाई चढ़ जाय।" आलोक अनुभव कर रहा था कि जब दोनों के शरीर छू जाते, तो उसे न जाने क्यों अच्छा लगता है, बताशा भी मुस्करा देती है।

उखड़ी साँसे, पसीने में भींगे शरीर, चढ़ाई खत्म हुई। आखिरी क़दम के साथ सामने आये समतल दृश्य ने जादू की तरह आलोक को बाँध लिया। वह वहीं थम गया, उसे लगा जैसे सामने कोई अनुपम सपना, कल्पना में कहीं बन-बन कर भी न बन पानेवाला चित्र, बिछा हो। चारों ओर चार पहाड़, जिनकी गोद में चमकदार नगीने की तरह आबदार छोटी-सी झील। झील क्या है; एक ओर से छोटी सी नदी आती है, दूसरी ओर निकल जाती है—बीच में पहाड़ों ने स्नेह से अपने हृदय की गहराई को बढ़ाकर ऐसा मिला दिया है कि नदियाँ फैलकर थोड़ी देर विश्राम करलें, पहाड़ों से सुख-दुख की दो बातें कर जायँ।

पहाड़ोंकी पहरेदार चोटियाँ जब अकेलेपन से ऊब जाती हैं तो झील की गहराई में झाँककर आसमान चूमने की कोशिश करती हैं, लेकिन आसमान मजबूर है; न तो नीचे झुक सकता है, न चोटियों को ही पास बुला सकता है। हाँ, वह सान्त्वना के लिये दो-चार मेघ-दूतों को भेजता है। बादल धीरे से तैरकर चार पहाड़ों के इस

तो झील की बात दोनों के लिए मजाक हो गई। शायद इसीलिये आलोक को उस दिन अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, जब हमेशा की तरह बिना मतलब पूछे गये सवाल का उत्तर मिला, 'चलो !'

'मैं झील पर चलने को कह रहा हूँ !' आलोक ने सवाल दुहरा कर बताशा को इन्कार करने का मौक़ा दिया।

'चलो न !' फिर वही उत्तर। आँखें इस तरह तो आज पहली बार ही झुकी हैं; चेहरा जैसे ललाई से जल रहा है।

प्रस्ताव उसका अपना था, इसलिए आलोक पीछे हटे भी तो कैसे ?

दोनों उसी दिन की तरह जंगलों और पहाड़ की ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई को लाँघ कर झील के किनारे पहुँचे। वहाँ की हर चीज वैसी ही है, मानो उनकी प्रतीक्षा में परिवर्तन का चक्र ठहरा खड़ा हो।

बताशा ने ठीक उसी दिन की जगह बैठकर अपना मुँह दोनों हाथों में छुपा लिया।

खामोशी की बेचैनी बोझिल होने लगी तो आलोक ने मुँह खोला, 'आज यहाँ कैसे चली आई ?'

'अपनी मर्जी से !'

'मुझ से डर नहीं लगता ?'

'नहीं। भले आदमियों से डर कैसा ?'

'लेकिन रोजाना तो तू यहाँ आना कल पर टाला करती थी !'

'अब कल नहीं आयेगा।'

'क्यों ?'

'कल मैं नहीं रहूँगी।

'क्यों ?'

'चली जाऊँगी।...कल मे[illegible] है !'

आलोक इसे मजाक कैसे [illegible] मजाक करने वाला रोना नहीं, [illegible] हाथों में मुँह दिये सिसक रही [illegible]

पिछली बार की एक बात [illegible] आलोक को मानो किसी ने [illegible] हो। उसने काँपते हाथों बताशा [illegible] वर्षा में धुला चाँद—ऊपर किया।

'मेरी तरफ देख, बताशा।'

पलकें क्षण भर को उठीं, लेकि[न] हुए मोतियों की लड़ियाँ टूटी नहीं।

'तू यही साबित करने यहाँ [illegible] कि पहाड़ी धोखेबाज नहीं होते !'

'नहीं !'

'तो फिर ?'

'इसलिये कि तुम...बहुत भले।'

'कल तेरी शादी है !'

'आज तो हमारा है न !'

'जिससे तेरी शादी हो र[ही है वह] कैसा है ?'

'अच्छा है।'

'फिर तू मेरे रास्ते में क्यों [illegible]

'पहले पैसे के लिये, लेकिन [illegible]

पैसा, पैसा, पैसा ! इस पैसे [illegible] बचने के लिये तो वह भाग कर यहाँ [आया] था। लेकिन बेकार : भागो [illegible] जाय, पैसा सर्वव्यापी है—उसका [illegible] नहीं छोड़ेगा, कदम-कदम पर [illegible] सी धारें लेकर उसे घेरता [illegible] रहेगा !

!'

नहीं बोलूँगी। पहले पैसे के ही
ई थी, लेकिन...'

कैन?'

दिन यहाँ मोल पर झगड़े के बाद
ते आती रही।'

'

मिलता भी नहीं, पास का सब
पड़ता, तो भी आने से बाज नहीं

भी से अच्छा लगता हूँ?'
से, यह नहीं पता।'

ा ने आगे खिसक कर उसके पैरों
र दिया। आँसू फिर उमड़े; बरस

तो यह बताशा का, प्यार और पैसे की खींचतान में पड़ी औरत का, आत्म-समर्पण है! आलोक सिहर उठा। एक दिन सुनन्दा की धोखेबाजी पर उसने औरतों की जात को कोसा था; आज भावावेश में बताशा जो कुछ करने जा रही है, उस पर क्या कल में उसका पहाड़ी पति नहीं कहेगा कि औरत धोखा है, फरेब है?

उसके मन में जो शैतान बताशा को पहले दिन देखकर जन्मा था, आज मर चुका था। उसने बताशा के रूखे, अस्त-व्यस्त बालों में निर्विकार मन से अपनी अँगुलियाँ गूँथते हुए कहा, 'एक बात मानेगी, बताशा?'

"चाहो तो, जान हाजिर है।"

रूमानिया में समाप्त भारतीय नारी का एक f

एस० राठौर

एक असामाजिक के उद्गार

मोहन मिश्र

समाज के बारे में ...
पर एक ...

अन्य व्यक्तियों के बारे में

लोगोंकी बात दूसरी है, मै तो यह नहीं मानता कि आदमी सामाजिक जीव है। मेरी राय में उसे स्वेच्छाचारी, जिन्दगी का बेहतरीन खिलाड़ी या अलमस्त जीव कहना ठीक होगा। सच तो यह है कि मै किसी भी परिभाषा में विश्वास नहीं करता। परिभाषाएँ गढ़ना और अपनी समझ से बाहर की बातों पर बहस करना कुछ शास्त्री लोगों को ही सुहाता है। ये लोग हर बात में बाल की खाल निकालते हैं। कहते हैं; 'जो कुछ सामने है, वह उसका असली रूप नहीं, सचाई कुछ और है; यथार्थ या वास्तविकता (दोनों शब्द मुझे बोलने में भी तो अच्छे नहीं लगते !)जानने के लिए हर वस्तु के 'आवरण' को उतार कर देखना होगा, उसकी खोल ('गुलोफ' या 'मास्क') को भेदकर झांकना होगा। तब शायद हमें प्रकृत वस्तु के मौलिक दर्शन हो सकें, उसको कुछ अंशों तक समझ सकें।'

मेरा खयाल है कि ये ... हमारा एक अंश है। हमें जानने ... इसे भी जानना होगा। हमारे ... भी बर्ताव करेंगे तो इन्हें हमसे ... करनी पड़ेगी और लेन-देन करने ... इसके बिना ये लोग और मैं दोनों ... "नंगे" बन जायेंगे। ... लगाये बिना किसी का भी ... चलेगा।

ये लोग पीठ-पीछे चाहे जो ... और करें, सामने तो 'जो हुजूर' ... दुम हिलाने के सिवाय कुछ ... पैसों के लिए ये सब कुछ कर ... भी पैसे बनाने (-मतलब, ... बुरा-भला क्यों कहते है ! ... मुंह बन्द रहता है, ये बड़ी ... रहते हैं लेकिन ज्यों ही ... सरसराते नोट बाहर निकले ... चिपचिपे हाथों या ... बड़ी-बड़ी मनहूस जेबों ...

ी रंगत ही बदल जाती है!
अगर आज किसी अपने कारखानों
ग मालगुदामों में जमा की हुई चीजों
चाही कीमत वसूल करता हूँ तो
न, कि जो लोग यह कीमत अदा
उनको इनकी सख्त जरूरत है,
देश में इस चीजों की पैदावार बहुत
बाहर से इसकी आमद भी आज-
कम हो गई है या करदी गई है
ोग कहते हैं कि यह भी मेरी
ालों की ही करतूत है—मानो
से ऐसे माल की आमदरफ्त का
ने हूँ या मेरा वित्त मन्त्री कोई
दार है!)। सीधी बात तो यह
स पचड़े में ही कमी नहीं पड़ता।
ार माव' के मुताबिक माल की
ख्त करता हूँ। मुझसे भी बड़े-बड़े
ार में मौजूद हैं। माव घटाना-
उनकी मर्जी पर है। फिर सारा
मैं अकेला खा जाता हूँ, कितनों
रीकों से हिस्से देने पड़ते हैं।

ीवन-संगिनी के बारे में

अच्छी बात है कि मेरे श्वसुर
ो (लड़की की मा को) ज्यादा
लिखाया। उसके शौक़ भी अच्छे
गाड़ी, और साड़ी, हीरे-मोती
ा कहानी-उपन्यास तथा हिन्दी
। ब्याह-शादी, अपने और दूसरों
के आने या बड़े-बूढ़ों के संसार
ने मौक़ों पर, आमोद-प्रमोद,
' में कथा-कीर्तन, दर्शन-झांकी
ारा में इसकी रोज-मर्रा की
जिन्दगी मजे में बीत रही है। बीच-बीच में 'हिल-स्टेशन्स' और देश-विदेश की यात्रा का भी अवसर जब-तब आता ही है। नौकर-चाकरों की कमी नहीं, काम-धाम की परेशानी नहीं। और भला उसको चाहिए भी क्या?

कभी-कभी झगड़ती है कि मैं छुट्टी के दिन देर तक कहाँ ग़ायब रहता हूँ या रात को इतनी देर से घर वापस और अक्सर ग़ैरहाज़िर क्यों हो जाता हूँ। अब इसको कौन समझावे कि मर्द तो भौरा है, आजाद पञ्छी है! उसे क्या कोई कभी बाँधकर रखता है! फिर शादी के चार-पाँच साल बाद से ही इसने अपना शरीर भी तो चौपट कर लिया है। आवाज तो पहले से ही तीखी थी, अब उसमें कर्कशाहट भी आ गई है। यह नित-नये फैशनों की नक़ल करती है लेकिन उनको पूरी तरह निभा कहाँ पाती है। ऐसा कर भी नहीं सकती; हमारा 'समाज' भी तो है (मेरा मतलब उन लोगों से है जिनकी निन्दा-स्तुति का मेरी व्यापारिक कार्यवाहियों पर सीधा असर पड़ेगा!) और हमारे अपने जुग-जुग से चले आए रीति-रिवाज भी क्या बुरे हैं—ख़ास तौर से इसके लिए! गृह-स्वामिनी के लिए!

अपने बच्चों के बारे में

मेरी सन्तान को 'कॉन्वेण्ट' में जगह मिल गई, यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। चन्दा तो बहुत देना पड़ा था, ऐडमिशन कराने में, लेकिन यह सब तो ब्याज-सहित वसूल हो जायगा। आजकल अफ़सरों साथ बोलचाल, खान-पान और

इतिहासकार से : जगदीश चन्द्र

जो हमारे कृत्य हैं
संघर्ष के अध्याय
जो हमारे स्वप्न हैं,
अंकुर अभी निकले नहीं
जो हमारे मूल्य हैं
आस्थायें
मन्जिलें
बहुत नीचे
इन्हें दब जाने दो
समय की रेत के स्तूप से
और ढक जाने दो
तब हमें खोदना, मिट्टी में
काल की पैनी निष्कलंक
धार के नीचे रखना, और
आँकना सफलताएँ
—असफलतायें
क्षमा करना नहीं!
अभी तो हम,
ओस से भीगी,
सुबह की नई किरणें हैं,
दिवस भी कितना पड़ा है
ढलने को ठहर जाओ,
धरती की परिक्रमा

पूरी हो जाने दो
अस्त हो जाएं हम
जब यह संक्रांति, संघर्ष,
हो जाएँ समाप्त
तब हमारे विषय में
कुछ भी कहना
लिपिबद्ध करना,
हमको, हमारी पीढ़ी को।
आज हम जीवित हैं, अधूरे
मन्जिल के
पहले ही चरण में—
बहुत कुछ देखना,
सोचना, समझना है
तुम्हें भी संकोच होगा,
मित्रों के बारे में,
अपने समकालीन युग के
कोई भी, कैसी भी टिप्पणी
निष्कपट आलोचना—
इसलिये अच्छा तो
यही है वांछनीय,
तुम हमें
आज की दृष्टि से मत देखो,
इतिहासकार!

ल्यांकन

क्षणों का
दिवसों का
ों की लम्बी कड़ियों का नहीं,
ा का होता है ।

के पीछे की व्यापकता
न
भूति से
में जो सवेदन

ई होती है
ही तो होता है, साकार
ीन क्षण।

व्यक्ति का
मष्टि का
कृतित्व का नहीं
पीछे मौन समर्पण, सहज आस्था
का होता है
के कम्पन का
हम आगत, अदृष्ट को,
को भर पाते हैं।

ोश चन्द्र

दर्द बरस जाता है

आँखों के काजल को
यादों के तिनके जब
बहुत तंग करते हैं
मेरा मन उस समय
उमग-उमग आता है।

अधरो के संयम को
वंशी के मादक स्वर
बहुत तंग करते जब
मेरा मन उस समय
बिह्वल-बिह्वल जाता है।

हाथों की मेंहदी को
छुपी हुई आसें जब
बहुत तंग करती हैं
मेरा मन उस समय
लजल-लजल जाता है।

अनब्याही साँसों को
पूनम की बातें जब
बहुत तंग करती हैं
मेरा मन उस समय
कसक-कसक जाता है।

राह बिछी घास जब
मन्दिर की पगवट से
चुहल खेल करती है
मेरा मन उस समय
तरस-तरस जाता है

यादों की किरकिरी
सोई हुई प्यास से
जब मिलने मचलती है
काजल की कोरों से
छुपा हुआ दर्द कोई
बरस-बरस जाता है।

ममता अग्रवाल

बन जाते हैं।

वनस्पति-जगत् में जीवाणुओं के विभक्त होने के अतिरिक्त उत्पत्ति एवं विकास की परंपरा का दूसरा क्रम भी सार्वभौम रूप से बीज द्वारा ही सम्पन्न होता है और स्तनधारी जीवों के नीचे के प्राणियों की उत्पत्ति का क्रम 'डिम्ब' द्वारा। उच्चतम धरातल के जीवों के अध्ययन से पूर्व उनके क्रमिक विकास की परंपरा के अध्ययन में, इन निम्न-वर्ग के प्राणियों का अध्ययन पूर्णतया रोचक है, तथा अपना एक विशेष महत्व रखता है। अतः हम देखते हैं कि यौन-संबंध में प्रकृति का एक विशेष प्रयास रहता है—जो जीव-जगत् की परंपरा को स्थायी रखने में अपना सर्वस्व लगा देती है। उच्चतम वर्ग के जीवों में यौन संबंध की भावना चेतन एवं स्पष्ट होती है और एक असीम उल्लास और आनन्द का साधन बन जाती है।

जीव-जगत की उच्चतम परंपरा में भी यौन-भावना का प्रदर्शन एक विशेष कार्य रहता है एवं यह विलक्षण यौन सहकारी गुणों तथा संकेतों द्वारा स्पष्ट होता है। ये सहकारी यौन-भाव शारीरिक एवं मानसिक हाव-भाव द्वारा व्यक्त होते हैं। निम्न-वर्ग को भी विचित्र रंग, सौन्दर्य एवं कल कूँजन देते हैं तथा मानवजीवन में कविता प्रेम एवं आदर्शवाद में अवतरित होते हैं। मयूर के सुन्दर पंख, सिंह के अयाल, बुलबुल की मीठी तान, पपीहे की उन्मत्त कर देनेवाली पीहू की पुकार आदि सहकारी यौन-भावों के विलक्षणप्रमाण हैं जिनके द्वारा विरोधी लिङ्ग

के व्यक्ति आपस में आकृष्ट होते हैं।

यौन-संबंध के अतिरिक्त भूख [illegible] और महत्वपूर्ण वृत्ति है, जो सब [illegible] हुकूमत करती है। शक्ति का [illegible] भोजन के अबरुद्ध एवं निरन्तर [illegible] वाले स्रोत की खोज करता है। [illegible] जगत् के सामने प्रधान समस्या है [illegible] के स्रोतों की रक्षा करना। [illegible] कबीलों का निर्माण एवं संगठन [illegible] वृत्तियों के आधार पर हुआ था। [illegible] रहने पर मनुष्य को अनेक प्रकार के [illegible] जीवों तथा अन्य घटनाओं का [illegible] की आशंका सर्वदा बनी ही रहती थी। [illegible] अतिरिक्त यौन-आवश्यकताएँ भी [illegible] जीवन में पूरी नहीं हो सकती थीं, [illegible] भावना और भूख की तृप्ति ही [illegible] के दो मूलभूत साधन हैं जिनके [illegible] मनुष्य को संगठित रूप से [illegible] के लिये बाध्य होना पड़ता है।

निम्न-वर्ग के प्राणियों की अपेक्षा [illegible] मानव मानसिक शक्तियों से अधिक [illegible] था, अतः उन पर शासन कर [illegible] वह अपने दोनों पैरों पर खड़ा होता और [illegible] शरीर को संतुलित कर सका था [illegible] दोनों हाथ स्वतंत्र रहे और [illegible] शत्रु पर अस्त्र-शस्त्र चलाने तथा [illegible] की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं [illegible] नियोजन में उपयोग कर सका। [illegible] भावों की अभिव्यक्ति में [illegible] हाव-भावों तथा संकेतों की [illegible] जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की [illegible] मानसिक स्थिति से अवगत [illegible]

प्रारंभिक अवस्था में विशेष प्रकार
केत तथा हाव-भाव ही मानसिक स्थिति
विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम
नुष्यों के स्वर-यंत्र चूँकि अन्यन्त परि-
पेचीदे और सूक्ष्म थे अतः वे आपत्ति के
अपने साथियों को तीव्र ध्वनि से बुला
थे। इस प्रकार के चिल्लाने, तीव्र ध्वनि
न्य प्रकार के संकेतों के माध्यम द्वारा वे
स्थिति की सूचना तथा विचारों को
य के सदस्यों तक पहुँचा सकते थे।
ही यही शुरूआत थी। इस प्रकार
समुदाय के परिणाम-स्वरूप ही बनी,
कालक्रम से कबीलों तथा जातियों
ार बनाने में सहायता की होगी।

अपने सुख-दुख
दूसरे के सन्मुख
कर सके होंगे।
ादिम अवस्था में
को अपने भोजन
ो वन्य-फलों तथा
पर निर्भर करना
था। कुछ अंशों
नर मांसाहारी
। जैसा कि आज
जंगली कबीलों
मांसाहार की
ने अग्नि के
के लिये ज्यादा
किया। फलमूल
कार आदि एक
न पर वर्ष के
महीने प्राप्य न

थे, अतः कबीलों को भोजन की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थानों में भ्रमण करना पड़ता था। धीरे-धीरे मनुष्य ने कृषि, पशु-पालन, गृहनिर्माण आदि विद्यायें स्वानुभव से सीखीं। तभी मनुष्य सतत भ्रमण का परित्याग कर एक स्थान पर बस गया और मानव सभ्यता ने प्रस्तर-युग से लौह युग में प्रवेश किया।

वैवाहिक संस्था की उत्पत्ति

मानव समाज के विकास को तीन भागों में विभाजित किया जाता है—(१) जांगल (२) बर्बर, तथा (३) सभ्य—जिनके विवाह के रूप भी कालक्रम से परिवर्तित होते रहे हैं। आर्थिक तथा धार्मिक तत्वों ने समय-समय पर विवाह-संस्था को भी विभिन्न रूप दिये हैं।

जांगल मानव के पास जीवन के बहुत कम साधन थे। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपने उद्यम तथा अध्यवसाय के स्थान पर इसे समुदाय पर निर्भर करना पड़ता था। जो कुछ भी संपत्ति थी, वह समुदाय की ही होती थी, वह भी अस्थायी थी और उत्तराधिकार में किसी को नहीं दी जा सकती थी। यह बहुत

'केश-पाश-प्रसाधनम्'
एक प्राचीन चित्र की रेखानुकृति

ास पाठक

ही सीमित भी होती थी और यह सामूहिक उद्योग तथा श्रम से प्राप्त की जाती थी, अतः यह समुदाय की होती थी। समाज की इस अवस्था को 'आदिम साम्यवाद' कहा गया है।

इस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण बात है स्त्री का समाज में मुख्य स्थान। बन्दर, बैबून तथा वनमानुष में समुदाय का स्वामी नर होता है किन्तु आदिम मानव समाज की मुखिया स्त्री ही थी, पुरुषों पर और सन्तान पर उसके अधिकारों के कारण स्पष्ट हो हैं। इस समय विवाह होना प्रारंभ नहीं हुआ था तथा पति-पत्नी का स्थूल सम्बन्ध भी स्थिर नहीं हो सका था। कुटुम्ब के किसी भी पुरुष की ओर अपनी काम-लिप्सा शान्त कर नारी मां बन सकती थी, यदि मुखिया नारी के स्वार्थ पर कोई आघात करता तो वह भी उसके क्रोध का शिकार होता था। इस समय परिवार भी अधिक बड़ा नहीं हो सकता था, क्योंकि प्रायः यह एक माता की जीवित संतान से ही बनता था। एंगिल्स ने स्त्री-पुरुष के इस संबंध को सामूहिक विवाह का नाम दिया है। तात्पर्य यह है कि इस यौन-सम्बन्ध में भी किसी एक व्यक्ति का समुदाय के सामने कोई महत्व नहीं था। यदि हम इस आदिम परिवार को स्त्री एवं पुरुषों में विभक्त करें तो कोई भी स्त्री परिवार के किसी भी पुरुष की पत्नी थी तथा कोई भी पुरुष परिवार की किसी भी स्त्री का पति था।

जीवन-यापन की सुविधाओं का अर्जन

अब केवल मनुष्य ने ही कुछ दिन, ग
के अधिकार धीरे-धीरे कम होने लगे। पु
स्त्री से बहुत आगे निकल गया। पहले
संग्रह और मृगया आदि में भी पु
पीछे नहीं रहती थी, उसका कार्य कम
विभक्त नहीं था। यातायात का क
उसके हिस्से में नहीं आता था। इ
के लोग जानते थे कि बच्चे का
माता है। किसी एक पुरुष के संबं
बात नहीं कही जा सकती थी कि अमु
विशेष बालक का पिता है, क्योंकि
के सम्बन्ध में यह अनिश्चित
हो सकता था कि अमुक या दूसरा
है। स्त्री एवं पुरुष का सम्बन्ध स
आदिम परिवार तक ही सीमित
बाहर इसको कोई स्थान है न
अपनी जीविका अर्जन करते हुए
साथ ही अपने रक्षा का भी ध्
पड़ता था।

कभी कभी एक स्थान से द
तक जाना भी अत्यन्त कठिन हो
क्योंकि दो समुदायों में भोजन
स्थानों को लेकर भयंकर युद्ध हो
स्थिति में स्त्री तथा पुरुष
एक परिवार के बाहर कम हो
था। आधुनिक सभ्य समाज
को इस स्थिति से तुलना कर
नाड़ में कुछ लोगों में आज
भाई तथा बहिन की संतान
विवाह करती है, परन्तु भाई
बहिन की संतान से विवाह

शेष पृष्ठ १३२

पोकिङ् के पहले नौ दिन

राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी, कुछ मास हुए चीन से लौटे हैं। अब उनके मई के अंक में प्रकाशित निबन्ध का शेषांश पढ़िए

ते समय हम पे-हाई (उत्तर सागर) कृत्रिम सरोवर के पास नवनागों ा देखने गये। नाना रंगोंकि मिट्टी के खंडों से यह नवनाग इवी में बनाये गये। इनकी चमक मालूम होता है कि आज ही उनको बैठाया गया है। दीवार २७ लम्बी, पाँच मील चौड़ी, १.२० ती है। पे-हाई सरोवर का निर्माण शताब्दी में हुआ था। सरोवर को ा गोल बनाना उसे कृत्रिम बत- इसलिए इसको टेढ़ा-मेढ़ा खोदा इस अति विशाल सरोवर से जो ाली गई, उसको जमाकर पहाड़ गया, बहुत ऊँचा पहाड़। माविकता दिखलाने के लिए बिखेर दी गई हैं। आदमी के करामात को छिपाने की पूरी गई है। देवदारु और दूसरी द से पहाड़ ढँका हुआ है। ९५४ में बनवाया पेन्-ह्वेन बुद्ध । १९ वीं ईसवी में जापान और

यूरोपीय सात राज्यों ने पेकिङ् पर जब आक्रमण किया, उस समय उन्होंने कई बुद्ध की मूर्तियों को भी खंडित कर दिया। कम्युनिस्ट शासन के स्थापित होने के बाद सरोवर के मुँह पर समतल भूमि में बने बिहार की मरम्मत करके नया करने की कोशिश की गई। मरम्मत का काम १९५३ में पूरा हुआ मन्दिर के साथ छोटा सा संग्रहालय भी है।

अपराह्न में पंचस्तूप-बिहार देखने गये। जिसका दूसरा नाम वज्रासन (बोध गया) बिहार भी है। चौदहवीं सदी में किसी भारतीय भिक्षु ने आकर बोध गया के मंदिर की नकल पर इस मन्दिर को बनवाया। कला दर्शनीय नहीं है, पर यह ऐतिहासिक चीज है। वृद्ध मंगोल पुजारी ने जब सुना कि मैं भारत का हूँ, तो वह गद्गद हो उठे।

रात को 'रुधिर तूफान' नाटक देखने गये। यह १९२३ की घटना पर आधारित था। नाटक घर में पंखे का इन्तजाम था। लोग अपने पाकेट से नि जरूरत पड़ने पर पंखा झलते थे

स्वाभाविक नहीं थी, पर वह उतने नहीं थे। लकड़ी के वृत्ताकार मन्दिर में चीन सम्राट् प्रार्थना करने के लिए आया करते थे। एक काठ का लघु मन्दिर भी है, जिसके आगे चारदीवारी के घिराव की एक तरफ की भीत से सटकर अगर आप धीमे से भी बोलें, तो आवाज उससे पचास हाथ दूर की दीवार के पास प्रतिध्वनित हो साफ सुनाई देती है। बाहर एक गोल चबूतरा संगमरमर का बना हुआ है। यहाँ भी प्रतिध्वनि बीच में खड़े होने पर सुनने में आती है। बड़ा मन्दिर १४२० ईसवी में बना था। १८८८ में बिजली गिरने से बिल्कुल जल गया। लकड़ी का होने से ऐसा होना स्वाभाविक था। अब जो मन्दिर का ढाँचा है, वह पुरानी बुनियाद पर फिर से बनाया हुआ है।

इसी दिन रेलवे मन्त्रालय की प्रदर्शनी देखी। दुर्गम पहाड़ों में रेल-पथ का निर्माण कैसे हो रहा है, इसे इस प्रदर्शनी द्वारा ठीक अच्छी तरह समझ सकता है। इसी तरह पहाड़ के ऊपर पड़ी हिलने डुलनेवाली चट्टानों से रेल को सदा खतरा रहने के कारण कई सुरंगें बना, बारूद भर के, पहाड़ के ऊपरी भाग को ही बिल्कुल उड़ा दिया गया। कितनी ही जगहों पर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से रेल पथ को ऊँचाई पर ले जाने की जगह सुरंगें बना दी गईं। प्रदर्शनी का दर्शक और विद्यार्थी पूरी तौर से लाभ उठा सकें, इसके लिए हर कमरे में व्याख्यान का प्रबन्ध था।

राहुल सांकृत्यायन

२८ जून को पेकिंग के एक नये कपड़े के कारखाने को देखने गये। पहले एक, दो, तीन संख्या के कारखाने अलग-अलग थे। दूसरे नम्बर का कारखाना १९५५ में काम करने लगा। इसमें सबेरे साढ़े छः बजे कार्य आरंभ होता है। तीन पालियों में कमकर काम करते हैं। बारह हजार कमकरों में ७० प्रतिशत स्त्रियाँ हैं। ६ हजार कमकरों के लिए यहीं घरों के एक सौ ब्लाक बने हैं। सबसे कम वेतन ६० युवान (१२० रुपया) मासिक है और सबसे अधिक पाने वाले इंजीनियरका २०० युवान। कितने ही चतुर कमकर भी उनके बराबर तनख्वाह ले रहे हैं। कारखाने के सभी यंत्र स्वदेश में बने हुए हैं। कुल २ लाख ६० हजार तकुए और ७ हजार कर्घे हैं। सारा काम ऑटोमेटिक है। रुई डालने से लेकर कपड़ों के थानों की गाँठ बाँधने तक मैशीनें ही सामान को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाती हैं। कारखाने के शिशुशाला, बालोद्यान आदि में दस हजार बालक हैं और छैः साल की पढ़ाईवाले स्कूलों में दो हजार। अस्पताल में एक हजार चारपाइयों का इन्तजाम है। प्रसूति-गृह इनसे अलग है। २२ भोजनालय हैं, जिनमें से तीन में सिनेमा, नाटक आदि के लिए बड़े-बड़े हाल हैं। एक स्त्री २४० तकुओं पर निमन्त्रण रखती है। ७१ काउण्ट के सूत काते जाते हैं। ३२ करघों पर एक स्त्री का नियन्त्रण भी कौतूहलजनक था। हाल, कमरे वायु-नियंत्रित हैं। प्रतिदिन साढ़े पाँच लाख मीटर कपड़ा यहाँ ...
पिलानेवाली माताओं के ...

हैं। आठ मास के बाद दूध छुड़ा दिया जाता है। चीन में बच्चे या जवान किसी का भी दूध पीना सनातनधर्म के विरुद्ध माना जाता था, पर अब यह प्रथा धीरे-धीरे टूट रही है। भोजनशाला में एक बार के लिए भोजन के अनुसार १०-२५ शतांक (सेयट) लिया जाता है। साधारण चावल, भाजी और सूप १० सेयट में मिलती है। मांस मछली लेने पर दाम अधिक होता है।

कारखाने को देखने के बाद हम कमकरों के निवासगृहों में गये। प्रायः एक परिवार के लिए दो कमरे थे। रसोई, स्नानगृह और पाखाने का भी अलग प्रबन्ध था। रसोई भी लोग अक्सर अपने घरों में बनाते। अविवाहित तरुणों और तरुणियों के लिए अलग-अलग हैं।

ग्रीष्म प्रासाद चीन का अत्यन्त दर्शनीय स्थान है। चीन ने जो भी बनाया, अति विशाल और सुन्दर बनाया। पेकिङ् नगर से बीस मील से कम दूर नहीं होगा। पर दर्शनार्थियों के लिए यह पेकिङ् का ही अंग मालूम होता है, क्योंकि हर समय सैकड़ों मोटर बसें उन्हें ले जाने के लिए तैयार रहती हैं। यहाँ एक सागर जैसा महासरोवर है, जिसकी मिट्टी निकालकर चारों तरफ बिखेरने की जगह एक ओर पहाड़ की तरह जमाकर दी गई है। दर्शक को सचमुच की पहाड़ी मालूम होती है। वह देवदार वृक्षों से ढँकी है। भ्रम को पक्का करने के लिए जगह-जगह शिलायें सावधानता-पूर्वक असावधानी से रखी गई हैं। इसका निर्माण बारहवीं शताब्दी में—आज से आठ सौ वर्ष

पहले—किन वंश के समय हुआ। और विस्तार पीछे तक होता। सरोवर के किनारे पर्वत-पार्श्व में के विशाल प्रासाद और विहार हैं की कालरूपिणी वृद्धा साम्राज्ञी बहुत भूखी थी। नौसेना को म के लिए करोड़ों युवान् जमा कि उसे जहाजों पर खर्च करने की ने महलों और मन्दिरों पर खर्च उन्नीसवीं सदी के अन्त की प्रधान द्वार से ही दर्शकों का ध्या प्रदर्शित चीजों तथा इमारतों की पिंत हो जाता है। दूसरी बार इस पहाड़ पर चढ़ने के योग्य नहीं था, लेकिन इस बार ऊपर त बिल्कुल पहाड़ी यात्रा-सी म रही थी।

ऊपर पहुँचने पर परले पार क नगर दिखाई पड़े, जिनमें कुछ अभी बन रहे थे। रीढ़ पर से हो ऊपरी बुद्ध मन्दिर पर पहुँचे। आ ने १९ वीं सदी में चीन पर जो किया था, भीषण अत्याचारों के स उन्होंने मन्दिरों, प्रासादों और मू दिल खोलकर लूटा। पेकिङ् के मि की लूट की तरह ग्रीष्म प्रासाद बहुमूल्य चीजें लुट गईं। मन्दिर से द्वारा हम नीचे उतरने लगे। सभी मन्दिर की अनेक मंजिलें मालूम होतीं

आज इतवार था, इसलिए दर्श बड़ी भीड़ थी। नीचे उतरकर हम पहुँचे, जहाँ छत के नीचे बना बाग

त विशाल पथ था। पथ के दोनों ओर
और नीचे की ओर थोड़ा ही हटकर
ोवर था। साम्राज्ञी के महल में उसके
सम्बन्धी बहुत-सी वस्तुएँ प्रदर्शित
थीं। उसके शयन-कक्ष को पूर्ववत
ने की कोशिश की गई थी। उसके
ग में लिङ्-ली-क्वाङ् भोजनालय था।
प ने मध्याह्न में भोजन किया। बाहर
कुछ देर तक सरोवर की बहार तट
ा रहे। एक पत्थर की विशाल नौका
ा, देखने में वह असली बजड़े-सी
होती थी। छोटी-छोटी नावें तो
में हजारों थीं। तरुण-तरुणियाँ
की संख्या में तैराकी का आनन्द ले
सैलानियों में कितने ही रूसी भी
ों का दृश्य देखने से छुट्टी के दिनों
ी भी पाश्चात्य नगर का स्मरण
ा। छोटी नाव को ले आते मल्लाह
कर आदमी को खयाल होता, यह
ी नाव होगी, पर यहाँ कोई भी
चीज नहीं थी, सभी किसी संस्था
सम्बद्ध थीं। दोपहर का वक्त उतना
लूम नहीं होता, पेकिङ् भी गरमी में
जाती है। नाव में हम सरोवर के
अवस्थित द्वीप में गये। च्याङ्-काई-
शासन के अन्तिम दिनों में यदि
ो, तो न तो सरोवर को ऐसा स्वच्छ
र न महल और कृत्रिम पहाड़ी को
रिष्कृत और सुन्दर। राष्ट्र के नव-
के साथ साथ कम्यूनिस्टों ने इन
तियों, ऐतिहासिक स्मारकों की ओर
न दिया। लाखों करोड़ों हाथ जब
काम करने के लिए तैयार हों, तो वे जादू-
मन्तर का प्रभाव रखते हैं, ही यहाँ देखने
से यह मालूम होता है।

पश्चिमी राष्ट्रों की बर्बरता

इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, रूस आदि सात योरोपीय और जापान इन आठों राष्ट्रों ने मिलकर १९०० में चीन पर आक्रमण किया था। उन्होंने कितनी क्रूरता और नृशंसता का परिचय दिया, इसे चीनी अब भी नहीं भूले हैं। अंग्रेजों ने इस लड़ाई के लिए हिन्दुस्तानी सेना को भेजा था। सातवीं राजपूत सेना, जिसमें ठाकुर गदाधर सिंह भी थे, २९ जून को कलकत्ता से रवाना हुई और ११ जुलाई को हागकाग पहुँची। ठाकुरसाहबने "चीन में तेरह मास' पुस्तक १९०२ मे छपायी। आज उसका नाम कुछ बूढ़े लोग ही जानते हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने २२ फरवरी १९५९ के "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में इस पुस्तक से कई उद्धरण देते हुए एक लेख लिखा और कहा है—"जिस चीन की दुर्दशा पर ठाकुर साहब ने अपनी पुस्तक में जगह-जगह आँसू बहाये हैं, वह अब दिन-दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। और कितने ही अंशों में भारत से कहीं अधिक आगे बढ़ गया है।"

ठाकुर साहब विदेशी सेना के अत्याचार के बारे में लिखते हैं—

"सवेरा हुआ—जाग पड़े। फिर
दृश्य, वही भस्म होते हुए गाँव,
कुकुर, पड़े हुए मुर्दे। शायद ...

भी आगे न बढ़ते होंगे, कि दो एक लाशें किनारे पर पड़ी दीख जाती थीं।

"अनुमानतः सैकड़ों लाशें तटाकू से टीनसीन (ट्येन-चिन्) के मार्ग भर में मिलीं। किन्हीं को कूकुर चवाते-नोचते हुए और कोई जल में बहती हुई और बहुतेरी किनारों पर विश्राम लेती हुई।

"गांव तो प्रायः सभी फुंके हुए थे, ग्रामीण कोई भी नहीं था, परन्तु प्रत्येक मन्मटेरी पर एकाध भंडी फांसीसी, रूस या जापानियों की डोलायमान हो रही थी। कहीं-कहीं किसी-किसी गांव में कोई-कोई जीवित वृद्ध कंकालमूर्ति लाठी के सहारे खड़े देखे गये। पत्थर हृदय भी उनकी अवस्था को देख पसीज जाता।"

फिर वे लिखते हैं—

"हमारा हृदय द्रवित होने की कोई आवश्यकता तो नहीं थी, क्योंकि चीनी लोगों से युद्ध ही करने तो हम आये थे, परन्तु अपने से मिलते रंग को देखकर कर्तव्य में नहीं, तो मन में अवश्य ही एक "भाव" उत्पन्न हुआ था। चीनी लोग बौद्ध धर्मावलम्बी हैं, हिन्दुस्तान के सहधर्मी हैं। एशिया खंड के निवासी होने से निकट स्वदेशी भी हैं। रंग-ढाह रस्म-रिवाज में भी बहुत भेद नहीं है। फिर क्यों परमेश्वर ने इन पर विपद्‌काल डाला? क्या इनका सहाय होना परमेश्वर को न चाहिए था?"

हम ग्रीष्म-प्रासाद से हो आज के प्रोग्राम की इतिश्री नहीं समझते थे। वहां से कार द्वारा थाङ्-काल (सातवीं-नवीं सदी) के बिहार में गये, जिसमें निर्वाण शय्या में पड़े बुद्ध की मूर्ति थी। इस बिहार का तुषित बिहार है। यहां से और किन्‍ दूर आने पर एक पुराना बिहार ि जिसका जेड़ (अक़ीक़) चश्मा अन्‍ और शीतल जल के लिए बहुत प्रसि मैं मुश्किल से जलपान के लोभ को सका। चीनी लोग उबले गरम पानी पीना पसन्द करते हैं और मेहमानों उसी के पीने की सलाह देते हैं। इस को यह भी सौभाग्य प्राप्त है, कि १ १९२९ तक डाक्टर सुन-यात-सेन क यहीं रखा रहा। उनका देहान्त पे हुआ था। चांग काई शेक ने नानकि अपनी राजधानी बनाया। वहां उनके लिए समाधि बन गई, तो शव से चला गया। डाक्टर सुन के लि शवाधानी रूस ने भेजी थी, वह यहीं हुई है। डाक्टर सुन से सम्बन्धित चीजें भी रखी हैं। बिहार बहुत स्वच्छ विशाल है। इतने बड़े बिहार में भि भिक्षु हैं। वहां से फिर हम कार में दो रस गये, जो भी एक पर्वत के सा बसा है। यहां एक के पीछे एक कां हैं, जिनमें सबसे पीछेवाला भावी बुद्ध का है। इनकी मूर्ति पीतल की है। पांच सौ अर्हतों की मूर्तियोंवाली शा समन्तभद्र, अवलोकितेश्वर, मंजुश्री, गर्भ आदि की मूर्तियां बड़ी सुन्दर हैं सन्देह किया जाता है कि कुबले समय नेपाल से आये महान् क अरनिको ने इन्हें बनाया था।

वहां से फिर हम यङ्मान बिहार

पेकिङ् के पहले नौ

जिसका निर्माण १७४८ ईसवी में हुआ
। यहाँ बहुत से प्राचीन वृक्ष हैं।
... रक्षा के लिए उनके कोटरों को
... बन्द कर दिया गया है।

३० जून, महीने का अन्त था। वृष्टि
... नहीं था। गरमी के लिए सिर्फ
के पंखे का सहारा था।

अनाथ-गृह

उस दिन सवेरे नगर के भीतर क-एई-
...बाल संस्था देखने गये। यूरोप ने
...ा के किसी देश में प्रवेश पाकर जहाँ
...र और राज्य विस्तार करने का प्रयत्न
..., वहाँ साथ ही अपने धर्म को फैलाकर
...य एकता को नष्ट करने की कोशिश
... इस भवन का निर्माण फ्रेंच ईसाई
...नियों ने १८६२ में किया था। अकाल
...र या ग़रीबी के कारण जिनके माता-
... अपने बच्चों की परवरिश नहीं कर
...थे, उनको यहाँ लाकर रखा जाता
...कभी-कभी ऐसे बच्चों की संख्या हजार
...हुँच जाती थी। १९४८-४९ में पेकिङ्
...निस्टों की राजधानी बन गया, तब भी
... इस संस्था को फ्रेंच साधुनियों के
... ही रहने दिया। लेकिन साधुनियाँ
...रे पश्चिमी ईसाई प्रचारक कम्यूनिस्टों
...ी आँखों भी देखने के लिए तैयार
...। वह अपने स्थानों को कम्यूनिस्ट
...ी प्रचार का अड्डा बनाना चाहते थे।
...गान इस संस्था के लिए भी थी।
...निस्ट शासन में ऐसी निजी संस्था की
...किता नहीं थी, पर सरकार को इस
...ो अपने हाथ में लेने के लिए दूसरे
ही कारणों से बाध्य होना पड़ा। अब चीन
का कोई बालक इसे सहने के लिए तैयार
नहीं था। १९५१ में उन्होंने सरकार से
अपने कष्ट को निवेदन किया और यह
संस्था नये प्रबन्ध में आ गई। मकान वही
पुराने हे। उनको साफ रखने की कोशिश की
गई है, पर पुनर्निमाण की कोशिश नहीं हुई
है। शायद शहर के गर्भ में अवस्थित इस
भूमि का कोई और ही उपयोग हो।

२१० बालकों में आधी लड़कियाँ हैं,
जिनकी आयु ७ से १६ वर्ष की है। यहाँ
से गये ८८० तरुण-तरुणियाँ नवनिर्माण के
काम में लगे हुए हैं। संचालिका श्रीमती लू
आरम्भ से ही इस संस्था का संचालन कर
रही हैं। फ्रेंच भिक्षुणियाँ अपने देश को
लौट गईं। लेकिन उनकी २१ चीनी
शिष्यायें अब भी दूसरी जगह रहती हैं,
कितनों को सरकार से सहायता मिलती है।
बच्चों के पढ़ने के लिए यहाँ भी स्कूल है, कुछ
बाहर के स्कूलों में जाते हैं। बालक स्वयं
वहाँ अपना संगठन करते हैं, अपने नेता
चुनते हैं। एक कमरे में बहुत सी सिलाई
की मशीनें रखी हुई थीं। दूसरे में कसीदे
का काम सिखाया जाता था जिनमें लड़कियाँ
ही थीं, लड़के मिस्त्रीखाने में काम करना
अधिक पसन्द करते हैं। सोने के लिए पहले
जमीन पर इन्तजाम था, पर अब साफ
सुथरी चारपाइयाँ हैं।

चिन्-शाङ् उद्यान

उसी दिन अपराह्न में हम इस बगीचे
को देखने गये। यह पे-हाई (उत्तर स...
से बहुत दूर नहीं है। ग्यारहवीं

इसका निर्माण हुआ था। चीन में शताब्दियाँ बिल्कुल आज-सी मालूम होती हैं। इतनी अधिक संख्या में प्राचीन स्मारकों की रक्षा हमारे यहाँ नहीं हो सकी। राजवंशों और राजधानियों के परिवर्तन के साथ उस समय की कीर्तियाँ भी विस्मृत और लुप्त होती गईं। मौर्यों ने पाटलिपुत्र को बहुत सजाया था, यह मेगस्थनीज के उल्लेखों से मालूम होता है। ईस्वी सन् के आरम्भ में पाटलिपुत्र (पटना) का स्थान मथुरा ने लिया। कुषाणों ने इस नगरी को भी बहुत सँवारा, लेकिन उनके बाद वह भी विस्मृत हो गई। चौथी-पाँचवीं सदी में पाटलिपुत्र को फिर भारत की राजधानी बनने का अवसर मिला। लेकिन छठी सदी में राजलक्ष्मी उससे रुष्ट होकर कन्नौज चली गई। कन्नौज छः शताब्दियों तक भारत की सबसे विशाल राजधानी रही। वहाँ न जाने कितनी रमणीय पुष्करिणियाँ, क्रीड़ापर्वत, महान् उद्यान और देवालय बने होंगे। पर, उनकी जगह अब कुछ उजड़े हुए टीलों ने ले रखी है। फिर दिल्ली का भाग्य जगा। एक के बाद एक सात दिल्लियाँ बसीं। फिर कलकत्ता ने उसका स्थान ले लिया। आठवीं दिल्ली अभी बन ही रही है। सात सौ वर्षों के अवशेषों में अब भी वहाँ कुछ मौजूद हैं पर पेकिङ् प्रायः हजार वर्षों से प्रमुख नगर रहता आया है। वहाँ यद्यपि स्मारक अधिकतर मिङ्-वंश (१३६८-१६४४ ई०) से ही आरंभ होते हैं। कुबलेखान की राजधानी पेकिङ् के किस भाग में थी, उसका अब पता लगाना भी मुश्किल है। पर कितने ही स्थान हमारे सामने बहुत ताज़े-से मालूम ... उद्यान की पृष्ठभूमि के ... कोइला पहाड़ी भी कहते हैं। ... किसी भस्म या कोइले पर मिट्टी ... जमा की गई, इसीलिए इसका ... पड़ा। उद्यान अधिकतर देवदार ... से ढँका है। कोइलागिरि के पास ... पतला-दुबला देवदार अब भी ... जिसकी शाखा से लटककर अन्तिम ... राजा ने १८ मार्च १६४४ ई० ... आत्महत्या की थी। उसके सेना... बिना लड़े ही राजधानी का दरवाज़ा ... के लिए खोल दिया। इससे सम्राट ... कदम उठाना पड़ा। इस कृत्रिम ... की रीढ़ पर पाँच बौद्ध देवालय हैं। ... ऊँचे भाग वाले देवालय में बुद्ध मूर्ति ... मौजूद है। दूसरों की प्रतिमाएँ ... राजाओं के आक्रमण के समय ... गईं।

यहाँ सफ़ेद छाल वाले त्रिकोण... देवदारु-जातीय वृक्ष बहुत हैं। पर ... किसी-किसी थांग में वृक्ष नहीं रह ... स्कूलों के छात्र उसमें नये वृक्ष लगा ... यह वनमहोत्सव का मज़ाक नहीं ... रहा था। दो-तीन बरस के पेड़ ... कर उसमें लगाये जा रहे थे और ... पानी भरकर लम्बा-लम्बी ... रहे थे।

मिङ्-वंश का शासन (१३६८-१६... चीन के लिए इसलिए भी महत्त्व ... क्योंकि इसी वंश ने मंगोलों के ...

। स्र चीन को स्वतन्त्र किया था। मिङ्-
तों की समाधियाँ पेकिङ् से कुछ दूर पर
ो हुई हैं (वर्तमान पेकिङ् का निर्माण भी
हीं के हाथों हुआ था)। जिन पहाड़ों
गोद में समाधियाँ हैं, उनमें से होकर
छोटी-सी नदी दूसरी ओर जाती है।
ीं हाल ही में एक विशाल बाँध बनाकर
ई और बिजली के लिए एक जलनिधि
र की गई है। शाम को "मिङ्-समाधि'
क एक खुली रंगशाला में किया जा रहा
। रंगक्षेत्र में पाँच हजार दर्शकों के बैठने
स्थान था। नाटक में यही दिखलाया
ा था, कि जिस नदी को बाँधकर एक
ान जलाशय के रूप में परिणत
ा कुबलैखान और मिङ् सम्राटों ने
मब समझा था, उसे मई-जून
एक-डेढ़ महीने में बाँध कर तैयार
दिया गया। पृष्ठभूमि में कुबलैखान
उसके मन्त्री को इस सागर के निर्माण
रे में सलाह करते-निराश होते दिखाया
'था। फिर मिङ्-सम्राट आते हैं। अपने
वैभव में रहते वह भी मन्त्रणा करते हैं,
न हताश होकर उसे छोड़ देते हैं।
ो ने इस जलाशय के निर्माण को इतना
त्त्वपूर्ण समझा, कि निर्माण के समय वह
वहाँ जाकर बैठ गये। इतना ही नहीं,
उन्होंने और चाउ-एन-लाई ने मिट्टी
टोकरियाँ उठाई। इस उत्साह में लोग
ने बह गये, यह इसी से मालूम होगा,
मिस्र, भारत और दूसरे राष्ट्रोंके दूतावास
ोग भी इसमें श्रमदान करने गये थे।
ा बहुत थोड़ा था। वर्षा आ जाने पर
काम नहीं किया जा सकता था, इसलिए
इसमें बहुत जल्दी की गई। अभी अभी
मिङ्-समाधि-सागर के काम की समाप्ति हुई
थी। इसीको लेकर यह नाटक लिखा गया
था। अभिनय में जनता के उत्साह को
दिखलाया गया था। लोक गायकों ने मिङ्-
समाधि-सरका पँवाडा बनाकर मंच पर
गाया। चेङ्-महाशय हमको बतलाने के लिए
तैयार थे, पर नाटकों को तो बिना भाषा
के भी आदमी समझ सकता है, यदि
अभिनय उच्चकोटि का हो।

पहली जुलाई हमारे प्रथम पेकिङ् निवास
का अन्तिम दिन था। उस दिन सवेरे हम
यहाँ के बच्चों के अस्पताल में गये। बालक
रोगियों की चिकित्सा के लिए तीन डाक्टरों
ने एक चिकित्सालय कायम किया था,
जिसमें बीस चारपाइयाँ थीं और प्रतिदिन
तीन सौ बालकों को देखने का प्रबन्ध था।
यह १९४९ की बात है। डाक्टर त्यागपूर्ण
काम कर रहे थे। १९५० में सरकार ने इसे
अपने संरक्षण में लिया। नये मकान का
निर्माण आरम्भ हुआ। १९५५ में अस्पताल
नये घरों में आ गया। अब वहाँ छः सौ
चारपाइयाँ हैं। रोज बारह सौ बच्चों को
देखा जाता है। इसी शहर में, इसकी दो
और शाखायें हैं, जिनमें आठ सौ बच्चों को
देखने का प्रबन्ध है। अस्पताल में एक सौ
डाक्टर और चार सौ नर्सें है। बच्चों की
बीमारी पोलिओ की चिकित्सा का विशेष
प्रबन्ध है। मेरा बच्चा (जेता) जन्मने के
पहले ही वर्ष में पोलिओ से आक्रान्त हो
गया था। आक्रमण हल्का था, पर उसके

कारण उसका दाहिना हाथ कमजोर पड़ गया। इसलिए मैं यहाँ विशेष तौर से दिखाना चाहता था। चीन में ऐलोपैथी और आयुर्वेदिक (देशी) चिकित्साओं का सुन्दर मेल कर दिया गया है। योग्य अनुभवी वैद्य, डाक्टरों से किसी तरह भी कम नहीं समझे जाते। बड़े डाक्टर भी स्वीकार करते हैं, कि कितनी ही बीमारियों में देशी चिकित्सा ही अधिक लाभदायक साबित होती है। मुझे एक बालक को दिखाया गया, जो पोलियो के कारण हाथ-पैर से लुंज हो गया था। चीन की एक चिकित्सा सूची-स्पर्श है। सुइयों की नोकों को चमड़े से स्पर्श कराया जाता है, स्पर्श नहीं बल्कि इसे हल्का चुभाना कहना चाहिए। यह चुभाना इतना अच्छी तरह से हो रहा था कि बच्चे को मैं हँसता देखता था। इसी के बल पर अब वह ६५ प्रतिशत स्वस्थ हो गया था, चल फिर सकता था, अपने प्रत्येक अंग से काम करता था। आधुनिक डाक्टर इसकी यह व्याख्या करते हैं कि सूची-स्पर्श से चमड़े के ज्ञानतंतुओं को उत्तेजित किया जाता है, जिसके कारण यह सफलता मिलती है।

यहाँ की महिला डाक्टर सेन ने हमें अस्पताल दिखलाया। उन्होंने बतलाया कि मेडिकल कालेज में डाक्टरी शिक्षा छः बरस लेनी पड़ती है। नर्स की शिक्षा तीन वर्ष की है। नर्सों का वेतन चालीस से दो सौ युवान् तक है और डाक्टरों का साठ से तीन सौ युवान् तक। सफाई और व्यवस्था का सर्वत्र राज्य था। प्रायः नर्स और [illegible] परस्पर विवाह-सम्बन्ध कर लेते हैं, [illegible] उनके गृहस्थ जीवन में कोई बाधा [illegible] नहीं होती। डाक्टर सेन ने बतलाया [illegible] उन्निद्रता आदि कुछ रोगों में देशी चिकित्सा बहुत सफल देखी जाती है। कुछ चारपाइयों को खाली देखकर [illegible] हो रहा था, कि पेकिङ् में बच्चे चिकित्सा के लिए पर्याप्त प्रबन्ध है। विस्तृत देश में जितने डाक्टरों की [illegible] उसे पूरा करने में कुछ समय लगे दवाइयाँ सभी देश में बनती हैं। [illegible] सी विशेष दवाइयाँ बाहर से आती हैं।

चीन की राजधानी में पहले [illegible] पर मेरे सारे दिन कितने [illegible] इसका कुछ दिग्दर्शन इस लेख में [illegible] वहाँ देखने की बहुत-सी चीजें [illegible] उन्हें मैंने पीछे देखने की कोशिश [illegible] ६२ लाख की आबादी की इस नगरी [illegible] दर्शनीय स्थान या संस्था को [illegible] कहाँ देखा जा सकता है। चीन [illegible] और नगरों से इतनी समानता [illegible] सभ्यता रखता है, कि यहाँ [illegible] कुछ सीख सकते हैं। लेखक को [illegible] ही तुष्टि नहीं होती, बल्कि [illegible] कि हमारे नगर भी इसी तरह [illegible] के लोग भारतीयों के साथ [illegible] सौहार्द रखते हैं। उनका [illegible] भाई भाई" कहना बिल्कुल कृत्रिम [illegible] अपना पृथक् व्यक्तित्व रखते हुए और भारत की संस्कृतियाँ [illegible]

ि प्राचीन साहित्य की एक रम्य कहानी का श्रीमती श्यामा जैन द्वारा हिन्दी रूपान्तर

ों का गवर्नर पेन्शन पाने के बाद चेंगटू के पास के एक छोटे से कस्बे में रहता प्राचीन कला-कृतियों का प्रेमी था और उसका उत्कृष्ट कला-संग्रह दूर-दूर तक ा। कहते हैं कि जिस तस्वीर या मूर्ति पर उसकी आँख टिक जाती, उसे वह किसी तरीके से लेकर ही मानता। इस मामले में वह अपने पद का लाभ उठाने नहीं चूकता। पता नहीं, झूठ है कि सच, पर सुनने में आया था कि उसने एक ावार को तहस-नहस कर डाला—सिर्फ इसलिये कि उन्होंने उसको एक शांग काँसे की मूर्ति बेचने से इन्कार कर दिया था—उसका यह 'प्राचीन शिल्प-प्रेम' की हद तक पहुँचा हुआ था। पर उसके पास कई कला-कृतियाँ तो अमूल्य न्हें देखने लोग दूर-दूर से आते थे।

ा बैठक में गवर्नर से मेरी मुलाकात हुई, वह ऐसी कला-कृतियों से प्रायः खाली बैठने की चौकियाँ भी साधारण थीं, जिन पर लाल गद्दियाँ और चीते की ढ़ी हुई थी। फिर भी वहाँ की सजावट उस व्यक्ति की सुरुचि और का परिचय देती थी। देखने में गवर्नर बहुत सौम्य व्यक्ति प्रतीत हुआ और ानने के बाद, उसके बारे में जो भी जुल्म की कहानियाँ मशहूर थीं उन पर वेश्वास न हुआ।

साथ उसने चिर-परिचित मित्र जैसा बर्ताव किया। मुझे शक होने लगा ो इसे मेरे यहाँ आने का मतलब मा

मिलने भेजा था, इसे सब कुछ बताना भूल गया है। साथ ही साथ मुझे इस बूढ़े से ईर्ष्या भी हुई क्योंकि वह अपने इस शान्त और सुखद वातावरण में बहुत ही खुश नजर आ रहा था।

मन्यतानुसार मैंने उसके कला-संग्रह की चर्चा छेड़ी। थोड़ा हँसकर उसने कहा, "उनका भी अपना भाग्य है। आज मेरे पास हैं, तो कल किसी दूसरे के पास। ऐसे संग्रह किसी के पास भी सौ बरस से ज्यादा नहीं टिकते। ये सब कुछ देखते हैं और हमारा उपहास करते हैं।"

"आपको इस पर विश्वास है?"

"अवश्य!"

"मैंने आपका आशय समझा नहीं।"

"यही कि जो वास्तव में प्राचीन है, उसका अपना एक जीवन और व्यक्तित्व बन जाता है।"

"यानी वह एक आत्मा बन जाती है?

"आत्मा क्या है? वही तो जिन्दगी देती है। आप एक कलाकृति को लीजिये। कलाकार उसमें अपना सब कुछ उँड़ेल देता है—ठीक ऐसे ही जैसे मां अपने बच्चे में, जब कि वह पेट में रहता है। कलाकार भी कला-सृजन में अपने सब शारीरिक और मानसिक तत्वों को निचोड़ देता है। फिर इसमें क्या आश्चर्य कि उस कलाकृति का अपना एक व्यक्तिगत जीवन हो, जब कि कलाकार की आत्मा ही उसमें समाई हो। कभी-कभी तो जन्म देते समय कलाकार की जिन्दगी ही खत्म हो जाती है। इसका नमूना है मेरे पास 'करुणा-प्रतिमा' स्फटिक की एक मूर्ति—कलाकार के व्यक्तित्व, शरीर और आत्मा का [illegible]

उस समय बात वहीं तक [illegible] गई। मैं जिन प्राचीन पाण्डुलिपि[illegible] देखने आया था, उसमें व्यस्त हो [illegible] रह-रह कर मेरा मन बूढ़े सज्जन की [illegible] की मूर्ति के चारों ओर घूमने लगा। [illegible] अनूठी कहानी सुनने के लिये [illegible] हो उठा और पूरी कोशिश से [illegible] प्रसंग उसी ओर लाना चाहता था [illegible] पाण्डुलिपि दिखाते हुए मैंने कहा, "[illegible] यह सच है कि, कलाकार के व्यक्ति[illegible] बहुत सा अंश उसकी कृतियों में [illegible] के बाद भी जीवित रहता है, [illegible] इन्सान उसकी अपनी सन्तान में। [illegible] और अच्छी वस्तु सदा जीवित र[illegible] विशेषकर जब कि कलाकार का [illegible] उस कलाकृति को पूरा करने में [illegible] जाय, जैसा कि आपकी 'करुणा की [illegible] के कलाकार के साथ हुआ।"

"वह तो एक विशेष घटना है। [illegible] मृत्यु का कारण उसकी कलाकृति [illegible] रन्तु···हाँ···वह जीवित था मरा [illegible] नहीं था। उसके जीवन की सब परिस्थि[illegible] ही कुछ इस प्रकार रहीं, मानों उसका [illegible] उस एक मूर्ति विशेष को जन्म देकर [illegible] स्वरूप अपना सर्वस्व खोने के लिए ही [illegible] था—अन्यथा उसका उस [illegible] पहुँचना असम्भव-सा ही मालूम [illegible]।"

"तब तो वह बहुत ही दिलचस्प [illegible] होगी। क्या मैं देख सकता हूँ?" [illegible]

कहने-सुनने से गवर्नर वह मूर्ति दिखाने को तैयार हो गया। उसका संग्रह घर के एक
था। अधिक भाग तो बुर्ज की पहली मंजिल में ही था। 'करुणा की प्रतिमा' सबसे
की मंजिल में थी।

कलाकार कौन है ?'

वांग्यो, जिसे बहुत ही कम लोग जानते है। उसके विषय में मुझे यहाँ के बौद्धमठ
ही अधिष्ठात्री से पता लगा। इस मूर्ति के लिए मुझे उस खूसट बुढ़िया के मठ
ए एक बहुत बड़ी जमीन देनी पड़ी। वहाँ तो पता नहीं, इसकी क्या गति होती।
ह मूर्ति वहाँ की एक भिक्षुणी की मृत्यु के बाद मिली थी।"

र्ति एक असाधारण चमक वाले, हरी चित्तिरोंदार पत्थर की बनी हुई थी। कमरे के बीचोंबीच एक मजबूत और सुन्दर जंगले से घिरी हुई, काँच के घर में बन्द वह खड़ी थी।

'आप इसके चारों ओर चक्कर लगाइए, जिधर भी जायेंगे, इसकी नजर आप ही की ओर रहेगी।'
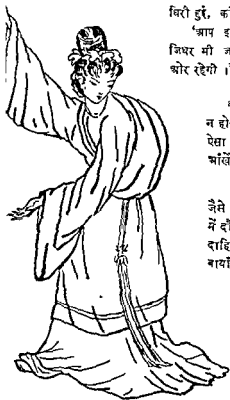
बूढ़ा गवर्नर ऐसे बोला, जैसे वह जड़ न होकर चेतन हो और मुझे सचमुच ही ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे मूर्ति की आँखें मुझे ही देख रही हों।

मूर्ति की भंगिमा से लगता था कि जैसे वह किसी भावपूर्ण नाटकीय क्षण में दौड़ते हुए जड़ हो गई है। उसका दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ था और बायाँ हाथ थोड़ा सामने की ओर फैला हुआ था, केवल मुँह पीछे मुड़ कर देख रहा था। उसका सम्पूर्ण भाव एक नारी के प्रियतम से दूर, जबरदस्ती खींच लिए जाने का था। यं तो उसका भाव, 'दया की देवी द्वारा स्वर्गारोहण की

में प्राणिमात्र पर आशीर्वाद-वर्षण' भी हो सकता था, परन्तु उसके मुख का भाव देखकर कोई भी यह बात मानने को तैयार न होता। उसे देखकर यही जिज्ञासा होती थी कि वह कौन था जिसके कारण कलाकार उस अठारह इंच की आकृति में जीवन और प्रेम के अविस्मरणीय क्षण मूर्त कर पाया। उसके वस्त्रों का एक-एक बल समकालीन मूर्तिकला पद्धति के प्रतिकूल था। वह मूर्ति न थी, बल्कि एक वैयक्तिक अनुभूति की सशक्त अभिव्यक्ति थी।

"उस भिक्षुणी के पास यह कैसे आई?"

मेरी बात का उत्तर न देकर वह कहता गया—"इसकी भंगिमा, शरीर का लोच, आँखों में प्रेम और भय का सम्मिश्रण, ध्यान से देखिए!" फिर रुक कर बोला, "नीचे चलिए मैं आपको इसकी सारी कहानी सुनाता हूँ।"

"भिक्षुणी का नाम मेहलान था। मरते समय उसने अपना रहस्य मठ की अधिष्ठात्री को बताया था। हो सकता है, उसने कहानी को रंगीन बनाने के लिए बढ़ा-चढ़ाकर कुछ बातें कही, हाँ परन्तु उसकी अधिक बातें सत्य हैं।

मेहलान बहुत शालीन और सुसंस्कृत थी। अपने अन्तिम समय तक उसने अपने विषय में अधिक बातें कभी नहीं कहीं।

बात बहुत बरस पहले की है। मेहलान एक तरुणी थी। संसार की चिन्ताओं से मुक्त उसका पिता चांग बहुत बड़ा अफ़सर था। काइफेंग नगर में एक सुन्दर बगीचे से उसका घर घिरा हुआ था। अकेली सन्तान होने के कारण वह अपने पिता की लाड़ली बेटी थी।

उस बड़े से घर में चांग के व
रिश्तेदार रहते थे, जो किसी न कि
उस पर निर्भर थे। जो शिक्षित थे
सरकारी नौकरियाँ दिलाई गई थीं, शे
योग्यतानुसार घर के काम धन्धों मे
दिया गया। मेहलान के घर में दूर के
का एक भतीजा आकर रहने लगा।
नाम चांग्पो था। वह सोलह वर्ष का
स्फूर्ति और उन्मुक्त स्वभाव का युव
अपनी उम्र से अधिक लम्बा—उसकी
पतली उँगलियाँ उसकी कुशलता की
थीं। उसके सद्व्यवहार से प्रभा
की मालकिन ने उसे मेहमानों की दे
का काम सौंप दिया।

मेहलान और चांग्पो में खूब
वह चांग्पो से साल भर छोटी थी।
उसे गाँव की बातें सुनाता और
दोनों का समय हँसते-खिलते
जाता। दोनों को एक दूसरे के सा
बहुत पसन्द था। परन्तु यह बहुत
न चल सका। कुछ ही दिनों में
पर लड़के के अच्छे स्वभाव का
रहा, जिसका सबसे बड़ा कारण
अच्छा नौकर नहीं था, अपना
दारी से नहीं निभाता था।
लिए उसे कुछ कहा जाता तो
न करता। तंग आकर
उसको बाग का काम करने को
इससे चांग को खुशी ही हुई।

वह अपने फूल, पेड़, पौधे

ों में सीटी बजाता घूमा करता, मानो वहाँ का राजा हो। अपने खाली समय ह चित्र बनाया करता, मिट्टी के भी ही सजीव पशु-पक्षी बना लेता था, नहीं, कागज की सुन्दर लालटेनें भी र करता। वह उन बहुत थोड़े से यों में था जो संसार से कुछ सीखने , वरन् सिखाने के लिए आते हैं। संसार दृष्टि में अठारह वर्ष का चांग्पो बिल्कुल म्मा था और मेइलान की दृष्टि में वह े अधिक सुन्दर और मनमोहक। वह जानती थी कि उसकी कौन-सी बात अधिक आकृष्ट करती है। मेइलान के ा को छोड़कर सब उस युवक से स्नेह ा थे। यह जानते हुए भी कि एक ही के होने के कारण उनकी शादी नहीं हो ती, उन दोनों में दिन प्रति दिन ष्ठता बढ़ती ही गई।

एक दिन चांग ने घरवालों को बताया वह एक स्फटिक के कारीगर की दूकान जाकर काम सीखना शुरू करेगा। ान की मा ने चैन की साँस ली। , अच्छा हुआ, किसी बहाने से दोनों ों रहेंगे। इधर दोनों में घनिष्ठता बहुत गई है। चांग काम सीखने जाता जरूर, रहता अधिकतर घर ही में। अन्त में आकर मेइलान की मा ने कह दिया वे एक दूसरे से इतना हँसा-बोला न । मा के शब्दों ने मेइलान को झकझोर ा। अभी तक उसने बैठकर सोचा नहीं कि चांग के प्रति उसका आकर्षण किस ा तक पहुँच गया है। उसी रात, चाँदनी में दोनों बाग में बैठे थे, मेइलान ने कहा: 'चाँग, मा कहती है मुझे तुमसे हँसना-बोलना नहीं चाहिए।'

'ठीक ही तो कहती हैं, हम दोनों अब बड़े हो गए हैं न।'

'क्या मतलब ?'

'यही कि तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता, तुम पास नहीं होतीं तो मन उदास हो जाता है।'

'इससे तुम खुश हो ?'

'हाँ, हम एक दूसरे के लिए बने हैं।'

'परन्तु हमारी शादी तो नहीं हो सकती।'

'नहीं, नहीं। ऐसा मत कहो !'

'परन्तु···' और मेइलान घर में भाग गई।

प्रयत्न करने पर भी दोनों से मिले बिना न रहा जाता। अपने मन पर उनका वश न था। प्रेम और गहरा होता गया। एक के बाद एक वर मेइलान के लिए खोजा जाता और वह नापसन्द कर देती। उसने यहाँ तक कह दिया कि वह शादी ही नहीं करेगी। आयु कम और अकेली सन्तान होने के कारण माता-पिता ने अधिक दबाव भी न डाला।

इधर चांग्पो अपने काम में उन्नति कर रहा था। उसकी प्रतिमा जन्म-जात थी, जिसे देखकर उसका गुरु भी हैरान था। जब से वह काम सीखने लगा था, उस दूकान की बिक्री बढ़ गई थी। इन्हीं मेइलान के पिता ने महारानी को

ामा जैन

के लिए एक स्फटिक-प्रतिमा बनवाने की सोची। स्फटिक का एक बहुत सुन्दर टुकड़ा लेकर वह उसी दूकान पर गया, जहाँ चांग काम करता था। चांग का काम देखकर वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्फटिक का टुकड़ा चांग को दे दिया और यह कह कर—'पुत्र चांग, तुम्हारे लिए विशेष काम लाया हूँ, यदि इस में सफल हुए तो सदा के लिए प्रसिद्ध हो जाओगे, क्योंकि, यह महारानी के लिए है, उस पत्थर में प्राण डालने का भार उसे सौंप दिया।

चांग ने बड़े प्रेम से पत्थर पर हाथ फेरा। इतना सुन्दर पत्थर उसने अभी तक नहीं काटा था। वह झूम उठा और मन ही मन प्रतिमा बना डाली। उसे विश्वास था कि उसकी बनाई प्रतिमा बेजोड़ होगी। यह तय हुआ कि प्रतिमा 'कुआयान—'दया की देवी' की होगी। जब तक प्रतिमा पूरी न हुई, उसने किसी को नहीं दिखाई। प्रतिमा की भाव-भंगिमा तो प्रचलित शैलीनुसार ही थी फिर भी वह उस समय की अन्य प्रतिमाओं से बिल्कुल अलग थी। उसके कान इतने पतले और सुन्दर थे कि मुँह से अनायास ही प्रशंसा के शब्द निकल आते थे और उन कानों के छेदों में निराधार झूलते हुए बाले ऐसे लगते थे जैसे सजीव कानों में पड़े हों। अभी तक कोई कानों के छेदों में झूलते हुए बाले नहीं बना पाया था। मूर्ति का मुख मेइलान का था। उसका पिता कला का यह चमत्कार देखकर फूला न समाया। ऐसी प्रतिमा तो राजमहल में भी बेजोड़ रहेगी!

'शक्ल सूरत तो बहुत कुछ मेइलान से मिलती है' मेइलान के पिता ने कहा।

'वही तो प्रेरणा है'—स्वयं ने बताया।

'अब तुम्हारी प्रसिद्धि निश्चित तुम्हें मेरा कृतज्ञ होना चाहिए।'

और निश्चय ही चांग की प्रसिद्धि प्रति-दिन बढ़ने लगी। परन्तु मेइला बिना उसे अपना जीवन फीका लगता वह प्रसिद्धि नहीं, मेइलान को पाना था। ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा, चां मन अपने काम में कम लगने लगा। मे अब इक्कीस वर्ष की हो गई थी और उ माता-पिता अब देर करना नहीं चाहते उन्होंने उसकी सगाई कर दी। लड़के खानदान बहुत प्रसिद्ध और प्रभावशाली।

सब ओर से रास्ता बन्द पाकर दो भाग निकलने की सोची। एक अंधेरी को दोनों बाग के पीछे से भाग नि परन्तु दुर्भाग्यवश एक बूढ़े नौकर ने उन्हें लिया और वह शंकित हो उठा। उन दो के प्रेम की कथाएँ सभी को मालूम थीं, उसने मेइलान को पकड़ लिया। कोशिश की, पर जब वह छूट न पाई तो ने बूढ़े को धक्का देकर गिरा दिया। समय उसका सिर एक पत्थर से टक और वह बेहोश हो गया। उसे बेहोश हालत में ही छोड़ मेइलान और चांग से निकल भागे। सुबह जब तलाश ढूँढ़ते हुए बाग में आये तो नौकर को पड़ा हुआ देखा। बेचारा बूढ़ा चोट सह नहीं सका था।

खोज में कोई कसर न रखी गई और मी पूरी कोशिश की गई कि उनके ने की खबर फैले नहीं, परन्तु खबर मी । और दोनों मिले मी नहीं।

चांग और मेइलान बड़े-बड़े नगरों से ते हुए यान्सी नदी पार कर दक्षिण में र गये। क्यांग्सी में स्फटिक बहुत दा मिलता था। चांग ने वहाँ अपना । शुरू करने की सोची परन्तु मेइलान चाहती थी कि चांग स्फटिक का काम । करे। उसने यदि स्फटिक का एक टुकड़ा तराशा, तो वह झट पहचान लिया गा और उसके पिता को उनका पता जायेगा।

'परन्तु मेरा तो शुरू से वही लक्ष्य था।'

'यह सब बूढ़े 'ताई' के मरने से पहले बात है। अगर पकड़े गये तो तुम्हें उसके ने की सजा मिलेगी। क्या तुम पहले तरह मिट्टी के खिलौने और कागज की दर-सुन्दर लालटेनें अब नहीं बना ते?'

'पर इतना नाम तो मैंने स्फटिक के म में ही कमाया है।'

'हाँ.... वही तो मुसीबत है।'

'नहीं, फिक्र मत करो, क्यांग्सी यहाँ एक हजार मील दूर है, हमें यहाँ कोई हीं जानेगा।'

'तब तुम अपनी पुरानी कला को भूल ओ और साधारण कला को ही उठाओ, ससे पेट भरता रहे।

चाँग होंठ काट कर चुप रहा। क्या करे?—सैकड़ों साधारण कारीगरों की तरह जिन्हें अपने ही छोटे से शहर के बाहर भी कोई नहीं जानता, वह कैसे रहे! दुनिया से डरकर अपनी कला का गला घोंट दे या फिर कला को अपना गला घोंटने दे! भगवान्! वह क्या करे? कहाँ जाय?

मेइलान ठीक ही कहती थी, चाँग़ का मन बरबस क्यांग्सी नदी की ओर खिंचा चला जाता था। साधारण प्रतिमाएँ बनाना उसके बस के बाहर की बात थी। मेइलान चाहती थी कि वह चीनी मिट्टी की प्रतिमाएँ बनाये परन्तु चांग नहीं माना। उसका कहना था कि वह अगर चीनी की प्रतिमाएँ बनायेगा तो भी लोग उसे पहचान जायेंगे। उसने स्फटिक की ही मूर्तियाँ बनाने का निश्चय किया। चांग के स्फटिक-मूर्ति-कला से प्रेम और उसकी कला के सामने मेइलान को चुप रहने के सिवाय और कोई रास्ता न दीखा। फिर भी उसने सतर्क रहने की प्रार्थना की। पर वह जानती थी कि चाँग के हाथ से केवल उत्कृष्ट कला-कृतियाँ ही निकलेंगी और वह पहचान लिया जायगा।

जब भी चांग कोई प्रतिमा बनाता, मेइलान उसे सतर्क करती रहती और उसकी कला को पूर्ण विकसित रूप देने से रोकती रहती। कितनी मजबूरी थी! चाँग अब छोटे-मोटे और साधारण आभूषण, मालाएँ आदि बनाने लगा, पर कब तक? धीरे-धीरे उसके काम में वही पुरानी विलक्षणता आने लगी और अनजाने में

उसने कुछ छोटी, परन्तु अतीव सुन्दर
र असाधारण चीजें बना डालीं। मेइलान
। मा होने वाली थी। वह चाँग से
ती 'चाँग्पो, मेरे लिए नहीं, तो आने-
ले बच्चे के लिए ही मान जाओ। अपनी
। उत्कृष्ट कृतियों में तुम जरूर पकड़
ाओगे।

परन्तु चाँग पर तो सफलता का नशा
दा हुआ था। वह इन सब बातों पर ध्यान

ही न देता। उसके अकेले की दूकान के
कारण किआन शहर का नाम स्फटिक
कारीगरी के लिए प्रसिद्ध हो गया।

एक दिन दूकान में एक आदमी आ
और इधर-उधर कुछ चीजें देखने के ब
बोला—'तुम्हीं चाँग्पो हो न? कांफ
के कमिश्नर चाँग के रिश्तेदार?' चाँ
ने झट अस्वीकार कर दिया। वह कभी
फांग गया ही नहीं। परन्तु वह आ
नहीं माना, कहा: 'तुम्हारी बोली में
की ओर की भाषा का पुट है। तु
शादी हुई है?'

'तुम्हें इससे मतलब?'—चाँग ने

बदलनी चाही
तक वह आदमी
कुछ कहे बिन
चला गया।
चिक में से
रही थी।
आदमी के
जाने के बाद
बताया कि
उसके पिता
सेक्रेटरी था
उसे वे लो
पहचान गये
अगले
आदमी फिर
उसने फिर
प्रश्न किय
चाँग ने बा

करुणा की प्रा

ा। तब उस आदमी ने कहा—
: आप चाँगपो नहीं हैं तो अपनी पत्नी
हें कि वह मुझे आकर एक प्याला
दे जायें। जब मैं देख लूँगा कि वे काई
के कमिश्नर की पुत्री नहीं हे तो
ने कुछ नहीं कहूँगा। चांगपो पर
, कमिश्नर की लड़की को भगा ले जाने
उसके जेवर चुराने का अभियोग है।'
चाँगपो ने केवल इतना कहा—'कृपया
मेरी दूकान छोड़कर चले जाइये।'
उसी रात जल्दी-जल्दी अपने क़ीमती
न और तीन मास के नन्हे पुत्र को
वे दोनों एक नाव में बैठ नदी के
की ओर चल पड़े। भाग्य का फेर कि
कानशीन शहर में रुकना पड़ा। बच्चा
र हो गया था और एक मास की
ार यात्रा के कारण उनकी पूँजी भी
चुक गई। विवश चाँग ने अपने गुप्त संग्रह
की एक अमूल्य कृति बेच दी। वह एक
आँख बन्द किये हुए पंजों के बल झुका
हुआ एक कुत्ता था, जिसे देखते ही व्यापारी,
जिसका नाम वांग था, पहचान गया। 'यह
तो पाओ हो की दूकान का काम है।
और कोई भी यह चीज नहीं बना सकता।
बेजोड़ !!'

चाँग का कलाकार हृदय फूला न
समाया। अपनी ख़ुशी को दबाकर उसने
जल्दी से कह दिया, 'हाँ, हाँ, आप ठीक
कहते हैं। मैंने इसे वहीं से खरीदा है।'

कानशीन नगर बहुत ऊँचे पर्वतों की
तलहटी में बसा हुआ था। सर्दी का मौसम
था और वहाँ की पहाड़ी हवा और स्वच्छ
नीले आकाश ने चाग का मन मोह लिया।
दोनों ने वहीं रहने का इरादा कर लिया।

मा जैन
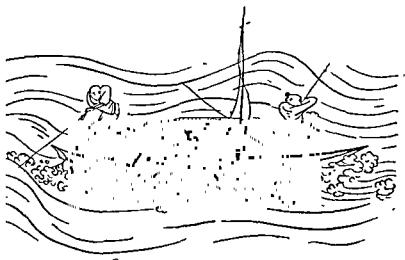
बच्चे की तबियत अच्छी हो गई थी। चांग ने एक दूकान खोलने की सोची, परन्तु कानशीन बड़ा नगर था इसलिए अपने को छिपाने के लिये उन्होंने वहाँ से बीस मील दूर एक छोटे नगर में रहना ठीक समझा। दूकान के लिये रुपया जुटाने के लिये उसने अपनी एक और बेजोड़ कृति बेच डाली। मेइलान ने बहुत अनुनय-विनय की, 'पिछली बार तुम बच ही गए, नहीं तो पकड़े जाते। अब फिर वही जिद! क्या स्फटिक तुम्हें अपने बीवी बच्चों से भी अधिक प्यारा है? कुछ समय बाद जब अच्छे दिन आयेंगे तो तुम फिर यही काम शुरू कर देना—अभी तो हमें एक मिट्टी की प्रतिमाओं की दूकान ही खोल लेनी चाहिए।'

चांग काली मिट्टी की मूर्तियाँ बनाता और अन्दर ही अन्दर अपनी विवशता की आग में सुलगता। कैंगटन के स्फटिक व्यापारियों को उधर से आते-जाते देखता और फिर से स्फटिक प्रतिमाएँ बनाने को उसकी आत्मा तड़प उठती। वह नगर के अन्य स्फटिक व्यापारियों और कारीगरों की दूकानों पर जाकर शान्त रहने की कोशिश करता परन्तु उसकी अशान्ति और बढ़ बढ़ जाती। घर आकर अपनी बनाई हुई मिट्टी की गीली मूर्तियाँ नष्ट कर देता। मेइलान उसकी व्यथा समझती। उसकी आँखों की आग देखकर डर जाती, परन्तु चुप रहती। कभी-कभी केवल इतना कहती—'यह स्फटिक ही हमारा सर्वनाश करेगा...।'

एक दिन व्यापारी वांग, जिसे एक स्फटिक का कुत्ता बेचा था, स मिल गया। उसने चांग को अपने में इस आशा से बुलाया कि शायद से 'पाओ हो की दूकान' की शा और मूर्ति मिल जाये। उसने चांग मूर्ति दिखाई, जो 'पाओ हो की दू बनाई हुई थी। चांग चुप रहा। एक और मूर्ति वहीं की बनी हुई तो चांग से चुप न रहा गया और व पड़ा, 'नक़ली।' वांग झट भाँप गय तुम ठीक कहते हो। मालूम होता इस विषय में विशेष जानकारी है।

'हाँ।'

'तुम्हीं ने तो मुझे वह कुत्ते की मूर्ति बेची थी! उसका मैंने पूरा-पू उठाया है। तुम्हारे पास उस तरह मी चीजें हैं क्या?'

'चलिये, मैं आपको असली ' की बन्दर की मूर्ति ही दिखाता और वह वांग को अपनी दूका आया। उसने वांग को एक बन्दर जो उसने काइमान में बनाया था कोशिश के बाद वांग ने वह बन्दर खरीद लिया। अगली बार जब वां चांग नगर गया तो उसने अ व्यापारी मित्रों को बताया कि किस एक साधारण मिट्टी के खिलौनों की वाले के पास उसने ये अमूल्य प्रतिमाएँ प्राप्त कीं, साथ ही यह 'बड़ी अजीब बात है कि एक स आदमी के पास इतनी अमूल्य प्र

ीं !' छै महीने बाद मेइलान के पिता
मैक्रेटरी तीन सिपाही साथ ले, चाम्पो
बन्दी करने और कमिश्नर की पुत्री को
ा घर ले जाने की आशा लेकर आया।

चांग ने कुछ सामान बाँधने की आज्ञा
।। कमिश्नर की पुत्री ने अपने बच्चे
लये सब सामान ठीक करने का समय
।। कमिश्नर की आज्ञानुसार उन्हे सब
ा की सुविधाएँ देकर वापस लाना था।
ही बाहर दूकान में ठहर गये। मेइलान
चांग्पो दूकान के पीछे घर में चले
। चांग अपनी पत्नी और बच्चे को एक
प्यार कर पीछे की खिड़की से कूद
। चाग ने आखिरी बार मुड़कर मेइलान
खा, जो खिड़की पर खड़ी अभी तक एक
ऊपर की ओर उठाये उसे सदा के
विदा कर रही थी। वह अच्छी तरह
ता था कि अब वह मेइलान से इस
ा में तो नहीं मिल पायेगा। जाते-
मेइलान ने उसे सावधान करते हुए
क को फिर कभी हाथ न लगाने को
या। चांग के चले जाने के बाद मेइ-
ने बहुत देर तक इधर-उधर की, जिससे
अधिक से अधिक दूर पहुँच जाए।
सिपाहियों को पता चला, तब तक वह
दूर जा चुका था।

मेइलान घर पहुँची तो उसकी मा मर
थी और पिता बूढ़ा हो गया था। पिता
उस पर पुत्री को देखकर भी क्षमा की
न नहीं आई। हाँ, नन्हे बालक को
देख कर वह अवश्य नरम पड़ा। एक प्रकार
से तो चांग के भाग जाने में उसे खुशी हुई।
वह उसे लेकर करता भी क्या। वह उसे
कभी क्षमा करने को तैयार न था, क्योंकि
उसने उसकी पुत्री का जीवन बर्बाद कर घर
भर को इतना दुःख दिया था।

बहुत वर्ष बीत गये पर चाग का कही
पता नहीं लगा। एक दिन कैंटन के
गवर्नर याग के लिए कमिश्नर ने भोज
दिया। बातो ही बातों में गवर्नर ने बताया
कि उसने हाल ही में एक विलक्षण मूर्ति
प्राप्त की है, जो कि महारानी को भेंट की
गई 'दया की देवी' से भी अधिक सुन्दर है
और अद्भुत है। हालाँकि कारीगरी और
शैली में वह उससे बहुत कुछ मिलती है फिर
भी वह उसे महारानी को भेंट करने के लिए
लाया है जिससे उनके पास जोड़ा हो जाये।

लोगों को गवर्नर की इस बात का एक
दम विश्वास नहीं आया क्योंकि महारानी
की 'दया की देवी' के समान मूर्ति अभी तक
किसी ने न देखी-सुनी थी। अपनी बात को
प्रमाणित करने के लिए गवर्नर ने अपने तम्बू
में से वह मूर्ति मँगवाई। भोजन समाप्त होने
पर एक ऊँची मेज पर जब वह धवल प्रतिमा
एक लकड़ी के सुन्दर डिब्बे में से निकाल
कर रखी गई तो सब पर एक अजीब सन्नाटा
सा छा गया।

इधर एक बाँदी मूर्ति देखते ही
को खबर देने चली गई थी।
जब जालीदार पर्दे के पीछे से

मा जैन

जब मैं शिल्पी सुधीर खास्तगीर से मिला....

—प्रभाकर द्विवेदी

●

प्रो० सुधीर खास्तगीर फोटो : लिटिल

गोमती तट पर जो
चली गई है, वह
चलकर ग्राम्या हो रेती
है नहीं, बनाई गई
चिकनी, टेढ़ी-मेढ़ी
और किनारे की हरि
लियाँ। दाहिने हाथ
बना है, राजकीय कला
शिल्प विद्यालय।

'सुधीर दा' हैं क्या

'सा'ब !...अभी
स्कूल की ओर गए
बुला दूँ ?',

'यहीं कहीं हैं,
बुलवा दो।'

कला विद्यालय
एकांत स्थान में है
उसके भी निगूढ़ कैनार
बँगला है—विद्यालय
प्रिंसिपल पद्मश्री सुधीर
खास्तगीर का।

चौकीदार बुलाने
के लिए आगे बढ़ा और
वहीं खड़े होकर

ने लगा। दूर पर एक ट्रक से ईंटें उतारी जा रही थीं। उसी के पास कुछ औरतें ड़ तोड रही थीं। इधर पिछले दो वर्षों से इस विद्यालय में बराबर यही व्यापार याई पडता है—ईंट, पत्थर, गारा। पहले विद्यालय जैसा था, था। जो जिस रूप में ता था, चलता था।

पर इधर जब से खास्तगीर बाबू इसके प्रिंसिपल पद के लिए बुलाए गए हैं, तब से की कायापलट हो रही है। सुधीर बाबू इसके नवनिर्माण (Reorganization) के ए बुलाए गए थे दून स्कूल । और इसमें संदेह नहीं उनके आने के बाद बडा वर्तन हो गया है। कार ने बुलाया ही उनको लिए था कि इस कला गलय की गिरी दशा र जाय, क्योंकि सुधीर [व्यवस्था और अनुशा- के लिए प्रसिद्ध हैं। समय वे इसी के बन्ध में गए भी थे— गलय के भवन का जो बन रहा है, उसी को ने।

कलाकार श्री क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की मूर्ति का
शिल्पी : सुधीर खास्तगीर

दूर पर सुधीर बाबू आ थे। लम्बे से, स्वस्थ । छड़ी लेकर चलते –उम्र पचास के उस पार। और बुशर्ट पहने। माने यह हुए कि रखा, कमीज और मा की मिली-जुली नों का कोई कपड़ा! विद्यालय से घर को निवाली सड़क घरेलू

भाकर द्विवेदी

किस्म की है और कुछ घूम-घाम कर आती है तथा एक
के सूखे पत्तों से पटी पड़ी है, जिससे इसकी नागरिकता
कुछ कम हो गई है।

सुधीरबाबू की चाल से उनकी लम्बी निगुरायता का
एकान्त साफ झलकता है। शायद ही वे कभी यहां से
बाहर निकलते हों। यह विद्यालय है, और यह
बँगला। बस इन्हीं दो तक सीमित हैं वे।

शि० सु० खास्तगीर

देह-तरी

सुधीर दा' दूसरे को बोलने का मौका
लेकिन उनके सम्मुख बोलना मुझे वाचालता
अधिकांशतः मैं सुनता हूँ। बड़ी आँखें, पतले
सुडौल नाक। उच्चारण में बँगला प्रभाव।
के बोलने में, चालढाल में एक खास किस्म
और आभिजात्य है। अपने को ठीक से प्रकट
लिए उनकी चेष्टाओं में एक प्रकार की

जब मैं शिल्पी सुधीर खास्तगीर से

ट होता है, किन्तु वह पाश्चात्य शैली के अनुरूप तचीत में भी प्रयुक्त नाटकीयता जैसी नहीं है। वह अपने को पूर्ण रूप से सामनेवाले तक पहुँचा देने । विनीत भावमात्र।

बातचीत के दौरान में पहुँच गया उनके स्टूडियो । बीच में पड़नेवाले अन्य कमरों में रखी हुई तसवीरों । भी देखता गया। चित्र देखते समय न मेरी ही आदत स करने की है, सुधीर दा' ही र विषय में, बिना द सचेष्ट होते हैं। ाभी भी कला । में शुद्ध रूप से, द्धि से समझ कर नहीं ग्रहण रता हूँ। मेरे मने साधारण नवाली एक ही सौटी होती है मेरे मन पर इस ला के सम्पर्क में ने के बाद कैसा ाव पड़ रहा है।
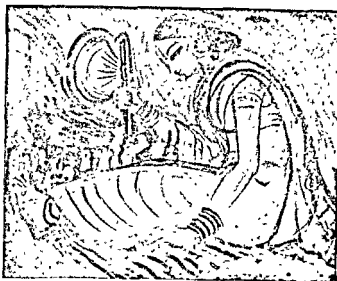
मा और शिशु — सुधीर खास्तगीर

यहाँ आने के पूर्व मन जो उचाट हो रहा था, वह एक शेष प्रकार की शान्ति महसूस करने लगा, इन चित्रों । देखने के बाद। उनके चित्र स्थूल रूप-चित्रण को कर काम चलते हैं। उनमें भाव की अभिव्यक्ति होती है। थार्थ के चित्रण के नाम पर किसी विषय या दृश्य को त्र-रूप में प्रस्तुत कर देना कि जिसे देखकर जनरुचि ह कि हाँ, सही सही मालम पड़ता है—उन्हें मान्य

भाकर द्विवेदी

नहीं। वे भावनाओं के चित्रकार हैं। मन की सूक्ष्म संवेदनाएँ तैलरंगों अथवा अन्य माध्यमों द्वारा किस प्रकार व्यक्त की जा सकती हैं, यही उनकी चेष्टा रही है।

उनके द्वारा अभिव्यक्त भावनाओं में प्रमुख स्थान भक्ति का है। उनके अधिकांश चित्रों में भक्ति की ही अभिव्यक्ति है। उनके चित्रों को मन किसी अतीन्द्रिय प्रमोद से भर जाता है। अपना दम्भ, मान, अभिमान से लगते हैं। जैसे शाम के वक्त किसी चर्च में बजते हुए घंटों को सुनकर बड़े पर्वत के नीचे छाँह में बैठने पर मन में धुलाधुलापन-सा लगता है।

उड़ती अप्सराएँ शि० १

नर्तकियाँ : शि० सु० खा०

बहुत से चित्र ऐसे हैं, जिनको कहीं प्रदर्शिनी में आज तक रखा ही नहीं।

ड्राइंग रूम में फिर आ बैठने पर मैंने उनसे पूछा कि, आप अपनी व्यस्तता में से भी इतना सब बनाने भर को समय कैसे निकाल लेते हैं?

उत्तर था, 'व्यस्तता क्या है? मैं समझता हूँ कि प्रत्येक कलाकार को प्रतिदिन अपनी साधना

वे आजकल राग नियों पर चित्र बना । प्रत्येक राग पर ने अपनी शैली में, ो अभिव्यक्ति में, । बना लिए हैं, अब । करने पर लगे आज-कल उनके ो में इसी के चित्र डे हैं। इस उम्र में उनकी इस प्रकार कार्यशीलता और देखकर मुझे आश्चर्य । अभी उनके पास

यंवक्षण : तैल तथा ल : शि० सु० खा०

के लिए नौ-दस घण्टोंका समय अवश्य
देना चाहिए।'

'नौ दस घण्टे !' मुझे आश्चर्य हुआ
'हाँ। मेरा मतलब केवल तूलिका पक
से नहीं है। इसमें वह सब भी शामिल
है जो हम चित्र बनाने के पूर्व उस
विषयवस्तु पर चिंतना करते हैं।'

'आपका तात्पर्य शायद मूड बनाने
प्रेरणा प्राप्त करने से है?'

'नहीं नहीं, मूड और प्रेरणा
मैं नहीं मानता। मैं समझता
कला की साधना में केवल
मुख्य आधार है। मैं इस
प्रतिमा को भी नहीं मानता।
जीनियस है। किसी भी
करने के लिए केवल मात्र
जरूरत होती है। यह नहीं

कांटा लागो रे' — शि० मु० खा०

बड़े बाल रखलिए और बैठकर कल्पना कर रहे हैं, सिगरेट
है। कला की साधना में दृष्टि की आवश्यकता होती है। दृ
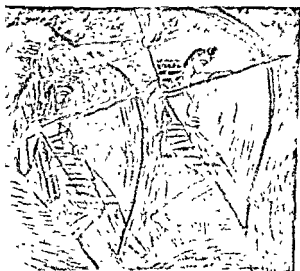
सुर निकालते थे। आजकल के गायक तो शास्त्रीय संगीत गाते हैं। मेरी तो इच्छा नहीं होती, इनको सुनने की। क्योंकि ये लोग क्लासिकल के नाम पर केवल विधि में पारंगत हो जाते हैं। यह कला तो नहीं है। ये जरा भी सोचते नहीं हैं। किन्तु कलाकार को विचारक होना चाहिए। जब किसी भाव को मन में हम ग्रहण करेंगे, उसे महसूस करेंगे और पीछे बैठकर उस पर विचार करेंगे, तभी हम अपनी कला में मौलिक योगदान कर सकेंगे। पुरानी कलाओं की नक़ल कर लेने से ही तो कोई कलाकार नहीं हो सकता।'

'जी, हाँ। जैसे अधिक पढ़ने से ही कोई ज्ञाता या विद्वान् भले हो जाय, पर मौलिक लेखक नहीं हो सकता।'

'हाँ। एक बात और। मानिए कि हमने एक पेड़ देखा और उसे वैसे ही बनाने बैठ गये, तो, शायद यह कला नहीं होगी। यह तो अनुकरण है, आत्माभिव्यक्ति नहीं। अनुकरण मात्र तो कला नहीं है। किसी दृश्य को देखने के पश्चात मन में जो भाव उठे, उसे व्यक्त कर पाना—उस सूक्ष्म को स्पष्ट कर पाना और वैसी ही भावना दर्शक के मन में भी उठा पाना कला है। उदाहरणार्थ नन्दबाबू को लें। उनका एक ख्यात चित्र है—'खोई हुई गाय।' उसका आइडिया उन्हें कैसे मिला था! एक बार वे साँझ की बेला कहीं पहाड़ी की को भूमि में टहलने चले गए। घूमने-घू देखा कि अँधेरा घिर आया है औ चरवाहा बड़ी जोर-जोर से आवा रहा है अपनी गाय के लिए। नंद बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह गाय क बुला रहा है! उन्होंने लड़के से पू तुम्हारे चिल्लाने से क्या होगा! बोला कि मेरी गाय भटक गई है आवाज दे रहा हूँ। वह था आत्मी कर नंदबाबू तो चकित हो गए। उसीसे अनुप्रेरित वे घर आए। वही वही आवाज उनके मन में घुमती अंततः वे चित्र बनाने बैठे। जानते हैं, क्या बनाया! उन्होंने न लड़का बना वनखण्ड। बनाया चित्र एक गाय गाय की आँखें खुली हुई हैं, आकुल- वह खड़ी है कान पारे। यह है कार्य। देखा उन्होंने दृश्य में दुख उससे अनुप्राणित हुए किसी अन्य निमित्त। और इस प्रकार सम्भव वह प्रसिद्ध चित्र।'

सुधीर बाबू की बातें सुनते हुए उसी में इतना तल्लीन हो गया था कि वही दिखते थे। जब हम सजग होते प्रायः सब चीजें दिखती हैं। किन्तु समय ऐसा लगा कि सामने बैठे हुए जी बहुत दूर जा बैठे हों। उनके और कुछ भी नहीं दिखता है। स्वयं इतने छोटे दिखते हैं, उनका इतना लघु हो जाता है कि कितनी दूरी पर वे बैठा दिए गए!

कैमरे के व्यू फाइंडर में से उन्हें देख
ं।

ज़रा देर को वे चुप हुए तो मैंने फिर
दिला दी कि आपके विद्यालय की
प्रगति है ?"

'चार अध्यापकों के रहने की व्यवस्था
ई है। और लोगों के लिए भी शीघ्र ही
ायगी। मैं तो इस प्रबन्ध में लगा हूँ
हाँ पढ़ने वाले प्रत्येक छात्र के लिए भी
रहने-खाने का इंतजाम हो सके। बात
 कि विद्यार्थी तो कक्षा के बाहर ही
कुछ सीखता है। यहाँ लोगों की ऐसी
ा है कि कक्षा में जो कुछ पढ़ाओगे
 विद्यार्थी पढ़ेगा, जानेगा। जब कि
है नहीं। कक्षा के बाहर जो अतिरिक्त
pare) समय होता है, उसी में कुछ
 किया जाता है। वही कला के परि-
 का समय होता है। इसी से मैं व्यवस्था
कर रहा हूँ कि विद्यार्थी रात-दिन
साथ रह सकें। मैं हर समय उनकी
विधि को सुचारु रूप से सुनियोजित
सकूँ। विद्यार्थियों में निरीक्षण करने की
ष्टि नहीं है। कक्षा में तो केवल तूलिका
ना सिखाया जाता है। चित्र का भाव
करना, उसकी योजना को मूर्त करना,
ा बिम्ब ग्रहण करना तो व्यक्ति बाहर
े जगत में—अपने चौबीस घंटे के ढाले
व्यवहार के हिसाब से ही कर पाता है।'

'—ज़रा रुकिए कथा-शिल्पी का निरी-
करना तो समझ में आता है कि उसे
न से, इधर-उधर से कथानक एकत्र
ा होता है। किन्तु चित्रकारों को क्या
देखना होता है जिसके लिए आप इतना
जोर डालते हैं ?'

इस प्रसंग में एक संस्मरण सुनिए। मेरे
आचार्य नन्दबाबू अपने छात्रों को चित्र
बनाते हुए देख रहे थे। रुक गए एक विद्यार्थी
के पास। पूछा, 'क्या बना रहे हो ?'
विद्यार्थी ने कहा—'लैंडस्केप।' वह एक पेड़
बना रहा था, दृश्य में। आचार्य ने पूछा,
'कौन-सा पेड़ बना रहे हो ?' उत्तर था, 'कोई
भी समझ लीजिए। बस पेड़ है।' आचार्य
पीछे पड़ गए कि 'नहीं, बताओ कि किस
चीज़ का पेड़ है।' हार कर विद्यार्थी बोला,
'नीम का।' पूछा आचार्य ने, 'कैसा होता
है ?' अब इसका क्या उत्तर दे विद्यार्थी।
चुप रहा। आचार्य ने कहा कि यहाँ विद्या-
लय में अमुक कोने में नीम का पेड़ है।
जाकर देखकर आओ कि कैसा होता है
नीम का पेड़। चला गया विद्यार्थी और
लौट भी आया देखकर। तब आचार्य उसे
स्वयं ले गए। उसे बताया कि निरीक्षण
कैसे किया जाता है। 'पहले तो पेड़ के हर
अंग को एक वनस्पति-शास्त्री की तरह खोल
खोलकर देख डालो ताकि रूप-चित्रण में इस
पेड़ के व्यक्तित्व को सही तरह से उभार
सको। फिर निरीक्षण में वस्तु से तादात्म्य
स्थापित करना होता है—ऐसा कि वह
वस्तु, जिसे देख रहे हो, बात करने लग
जाय। देखते-देखते लगे कि नीम का पेड़
आमंत्रित कर रहा है। तभी उससे हमारी
मित्रता होगी। तभी हम उसके व्यक्तित्व
को समझ पायेंगे।'

'आपका तात्पर्य यह है कि हम रह

ाकर द्विवेदी

चीज के भावनात्मक पहलू को पकड़ सकें ?'

'यह भी है। किन्तु यहाँ तो मैं यह बता रहा था कि चित्रकार की दृष्टि स्थूल परिचय को पाने के लिए भी कितनी सजग होनी चाहिए। अब जैसे हम किसी व्यक्ति को अच्छी तरह से पहचानते हैं। यदि हम उससे रास्ते में मिलें, तो यह नहीं ध्यान देते हैं कि यह वही व्यक्ति है जिसकी आँख इस प्रकार है और नाक इस प्रकार। हम तो उसकी आवाज से ही क्या, परछाईं तक से भी, उसे पहचान जाते हैं। वह क्या विशेषता होती है जिससे वह अन्य व्यक्तियों से अलग किया जा सकता है, हम को निरीक्षण में यही बात देखनी होती है।

'तो, आप यहाँ के विद्यार्थियों की निरीक्षण दृष्टि का परिष्कार करेंगे ?'

'वास्तव में, मैं यहाँ का वातावरण ही बदल देना चाहता हूँ। सब छात्रों में संस्कृति और सुरुचि उत्पन्न करना चाहता हूँ। क्योंकि कलात्मक भावभूमि के लिए यह आवश्यक है। टैगोर में यह संस्कृति (Culture) बड़ी ऊँचाई की है। इससे जीवन को देखने की दृष्टि शिव हो जाती है जो टैगोर की है, शरत् की नहीं। शरत् के उपन्यास इतने रोमैंटिक हैं कि सब पर उनका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है जो रवीन्द्र से नहीं पड़ सकता। सच बात यह है कि शरत् ने तो लोगों को प्रसन्न करने के लिए लिखा। जिस चीज से जनता बहुत अनुप्रेरित हो जाती है, वैसी ही रचनाएँ उन्होंने प्रस्तुत कीं। जनता इमोशनल कहानियाँ पसन्द करती है। पर सच तो यह है कि वह उच्च साहित्य की [illegible] है। शरत् को मैं रवीन्द्र के समक[illegible] मान सकता। हाल ही की एक घ[illegible] आगयी। हमारे होस्टल का एक छ[illegible] खाकर बेहोश हो गया। उसे [illegible] भेजने के बाद जब मैंने उसके [illegible] तलाशी ली तो देखा ढेर के ढेर [illegible] और एक प्रति 'देवदास' की आत्मा[illegible] अहतियात से रखी हैं।

खास्तगीर जी का बंगला सा[illegible] अध्ययन तो है ही, हिन्दी के [illegible] भी वे कम नहीं जानते। कितने ही [illegible] साहित्यिकों के तो वे बहुत-से [illegible] सुनाते रहे।

सुधीरबाबू बड़ी जल्दी चित्र [illegible] शायद इसका कारण यह है कि [illegible] रखनेवाले लोग उलझाव में नहीं। शीघ्र ही जो कुछ करना होता है, [illegible] हैं; मामला फँसा नहीं रखते। उनकी तेजी उनकी शैली में भी झलकती है। [illegible] में एक खास फोर्स होता है, गति [illegible] पात्र शिथिल नहीं जान पड़ते। कुछ [illegible] नहीं प्रतीत होता है। तैल रंगों के [illegible] बनाने के अतिरिक्त वे रेखांकन भी करते [illegible] मूर्तिकार भी वे प्रथम श्रेणी के हैं। [illegible] कालेज में सब तरफ उन्होंने [illegible] मूर्तियाँ बनाकर रख दी हैं। [illegible] को प्रतिस्थापित करने की शैली [illegible] रोचक एवं आकर्षक है। जैसे, [illegible] छोटे से टैंक के किनारे उन्होंने [illegible] शैली में स्नान करती स्त्री की [illegible] है। उसी के दूसरे किनारे [illegible]

है। बाग में दो तीन मजदूरों की
याँ—बैठकर काम करते समय की है।
देखकर हर समय यह धोखा होता है
सचमुच यहाँ कोई सुरपी लिए बैठा है।
गाँधी, नेहरू, पटेल, विजयलक्ष्मी,
संपूर्णानन्द आदि नेताओं की मूर्तियाँ
बनाई है।

टैगोर के बहुत प्रेमी हैं और उनके गीतों
खूब अच्छी तरह गाते हैं। बचपन में
मुरी बजाया करते थे, नदी किनारे बैठ
जब कि और लड़के पढ़ते थे। लेकिन
से यह अरुचि अब नहीं है। इधर तो
नि काफी पढ़ा है। पढ़ना रुचि-संस्कार
लए आवश्यक समझते हैं। अब उनका
विश्वास है कि चाहे कोई कलाकार
धा संगीतज्ञ, अपनी साधना के
उसे हर कला में प्रवेश और उसके
यमों से अपनी ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए।
मौलिक चिंतन के कोई अच्छा कला-
नहीं हो सकता है और परिश्रम से
कलाओं को समझे बिना कोई चिंतक
बन सकता है। लेकिन वे उस मॉडर्न
के पक्ष में नहीं हैं जिसे कोई समझ
पाता है। इस विषय में उनका मत है—
आधुनिक कला से अभिप्राय
हैं परम्परा में सुधार। पश्चिमी
कला द्वारा प्रभावित कला से
अभिप्राय उस कला से है जो
पश्चिम से गई है, जिसमें बेचैनी
भरी है। अपनी कला में उससे कोई
भी समता नहीं है। आधुनिक कला-
कार कहलाने में मुझे कोई भी आपत्ति
नहीं है, लेकिन मैं पाश्चात्य प्रभावित
कलाकार कहलाना नहीं चाहता।'

हम लोगों ने कुछ और बातें कीं।
कुछ कला-सम्बन्धी, कुछ साहित्य-सम्बन्धी,
कुछ व्यक्तिगत-व्यावहारिक। फिर मैं
चला आया।

उठकर चला तो लगा कि जैसे तीन
चार घंटों के लिए किसी कला भवन में आ
गया था और अब निकलना पड़ रहा है।
कितना शांतिपूर्ण और रम्य सम्पर्क रहा!
जैसे किसी बौद्ध मन्दिर में अंतरकक्ष में
बैठे रहे हों और अब निकल कर जा
रहे हों।

आर्ट्स कालेज चाँदनी में सोया पड़ा
था—निस्तब्ध। पेड़ों के नीचे कहीं अँधेरा,
कहीं चाँदनी थी। मैं गोमती-तट के रास्ते
से ठण्डी सड़क पर चला आया। *

कर द्विवेदी

संस्कृति का स्वरूप और प्रक्रिया

डॉ॰ गोविन्द चन्द्र पाण्डेय

'भारतीय संस्कृति' पुस्तक में प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण भूमिका

कुछ विदेशी इतिहासकारों की धारणा है कि भारत का
ह्रास ह्रास की ही कथा है; भारतीय संस्कृति मूलतः इतनी ही
राजाओं के अलंकृत समारोह, हाथियों और नर्तकियों
सज्जाएँ, कपोल-कल्पित पौराणिक कथाएँ, अंध विश्वास,
और जंगल, काले नाग और मच्छर, अस्पृश्यता, रूढ़ियाँ,
और आडम्बर। यद्यपि देशभक्त इतिहासकारों ने इस धारणा
अनेक दृष्टियों से तिरस्कार और विरोध किया है और
सांस्कृतिक तथ्यों का न्यूनाधिक संग्रह भी यत्र-तत्र किया
तथापि संस्कृति के स्वरूप और प्रक्रिया पर सैद्धांतिक विवेचन
अवकाश भारतीय इतिहासकारों को प्रायः प्राप्त नहीं हुआ
हम लोग पश्चिमी इतिहास, राजनीति, समाज शास्त्र और
विद्या में प्रचलित और आलोचित धारणाओं को यथाशक्ति
और व्यवहार में लाते रहे हैं। हम में से अधिकतर
शताब्दी के 'लिबरल नेशनल' दृष्टिकोण को अपनाये रहे हैं,
कुछ ने हाल ही में भौतिकवादी दृष्टिकोण का स्वीकार
किया है और कुछ उग्र राष्ट्रीयता अथवा साम्प्रदायिक
समर्थक हैं।

इनमें प्रथम दृष्टि का सर्वाधिक प्रचार रहा है और इसे
'अधिकृत' (ऑफिशल) दृष्टि कहा जा सकता है। यह दृष्टि
को ही वास्तविक राष्ट्र मानती है और उसको

ःमती है तथा व्यक्ति के अधिकारों को परम धर्म। इस दृष्टि से यह समझना कठिन ा कि कैसे भारत की सीमाएँ १५ अगस्त १९४७ की अर्धरात्रि को अकस्मात् ःचित हो गईं। यह दिखाने के लिए अधिक युक्ति नहीं चाहिए कि राष्ट्र एक ऐसा समाज जिसकी चेतना अपनी सत्ता के प्रति न्यूनाधिक रूप से जागरूक है; इस राष्ट्रीय समाज का किसी वास्तविक राज्य से तादात्म्य नहीं स्थापित किया जा सकता जो उसका शासन ता हो। यह आवश्यक नहीं है कि राष्ट्रीय चेतना हमेशा ही अनुरूप राजनैतिक चेतना रिणत हो पाये, और न ही भारत की परम्परागत धार्मिक क्षेत्र में उदारता का आधुनिक युलर' राज्य से कोई सम्बन्ध है क्योंकि इस धर्मनिरपेक्षता का मूल धर्म की उपेक्षा है; और प्राचीन 'पुरुष' की तुलना में आधुनिक 'व्यक्ति' बड़ा भी है और छोटा भी।

साम्प्रदायिक दृष्टियाँ राष्ट्रियता और धर्म का विवेक भूल जाती हैं और इस व्यामूढ़ ता पर राज्य-प्रासाद का निर्माण करना चाहती हैं। यह सही है कि प्राचीनकाल में सांस्कृतिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू रहा है तथापि इस्लाम, बौद्धधर्म अथवा त जैसे 'समुन्नत धर्मों' (हायर रिलिजन्स) को राष्ट्रिय मानना भारी भ्रान्ति होगी। ये पतः विश्वजनीन हैं। यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक राष्ट्रियता उस धर्म का ही स्वभाव नहीं समझती जिसका पक्ष-पोषण करना चाहती है। वस्तुतः इस दृष्टि को एक घोर ंकाजनक राजनैतिक तनाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना जा सकता।

भौतिकवादी दृष्टिकोण से भारत को नाना राष्ट्रों का जमघट माना गया है, एक हाद्वीप न कि राष्ट्र। भारत के विभिन्न प्रदेशों में शरीर का गठन, पहनावा, खान-पान, ा, सामाजिक रहन-सहन और रीति-रिवाज स्पष्ट रूप से प्रविभक्त हैं। यदि संस्कृति तेक और बाह्य चर्या का संस्थान-विशेष है तो भारतीय संस्कृति की ख्याति तथा तिगत एकता भ्रान्ति-मात्र है। किन्तु उस युक्ति से व्यक्तिगत जीवन को अनुभवसिद्ध ता भी बाह्य प्रतीतिमात्र, संयोगजन्य तथा निष्प्राण हो जायगी। भारतीय संस्कृति की का ही अपलाप करने वालों की गज-निमीलिका से इतना ही निवेदन अभीष्ट है कि इतिहासकार राजनीति से प्रेरणा न लेकर उसे प्रेरणा दे सकते तो संभवतः अधिक ा होता। इसके लिए यह आवश्यक है कि भारतीय इतिहास के सांस्कृतिक पक्ष का उसके अंतर्निहित दार्शनिक-सैद्धांतिक प्रश्नों का वैसा ही गंभीर मंथन हो, जैसा कि राजनैतिक प्रश्नों का पिछले अनेक वर्षों में हुआ है। राजनीति में भी नई दिशा पाने लए यही हितकर सिद्ध होगा।

संस्कृति शब्द का इतने अर्थों में प्रयोग किया गया है कि उसका स्वरूप अस्पष्ट हो है। पुरातत्ववेत्ता संस्कृति को विशिष्ट उद्योगों का समूह मानते हैं। वे निर्दिष्ट स्थान वा स्थानों से प्राप्य भौतिक अवशेषों के व्यावर्तक लक्षणों को संस्कृति की आख्या

करते हैं। नृतत्त्ववेत्ता संस्कृति को एक विशिष्ट समाज अथवा विकास की अवस्था के सामूहिक शील तथा उसके साथ अनुपक्त मौतिक उपादान और विज्ञान समझते हैं। इतिहासकार संस्कृति शब्द से प्रायः किसी समाज के जीवन और कृतियों की समष्टि की ही विवक्षा रखते हैं। वॉल्तेयर के समय से कुल्तूरगेशिस्ते (kulturgeschichte) का क्रमिक विकास हुआ है तथापि विभिन्न इतिहासकार संस्कृति की विभिन्न व्याख्याओं का अनुसरण करते हैं। प्रायः वे लोग अपने इतिहासों को पूर्णतया विषयनिष्ठ मानते हैं और किसी भी प्रकार के दार्शनिक पूर्वाग्रह से असम्बन्ध प्रकट करते हैं। किन्तु यह स्पष्ट है कि संस्कृति के प्रत्येक इतिहास में किसी न किसी प्रकार का संस्कृति-दर्शन अंतर्निहित होगा। और, दर्शन की उपेक्षा का अर्थ अनालोचितपूर्व दर्शनों का अंशतः स्वीकार अथवा सामाजिक प्रचलन, धार्मिक परम्परा अथवा वैज्ञानिक या राजनैतिक आग्रहों का अंगीकार पूर्वक अनुसरण होगा। मनुष्य के विकास का ... और उसकी ... तब तक कैसे ... है जब तक कि ... स्वभाव और ... जिक प्रक्रिया के ... में मौलिक ... स्पष्ट न की जाएँ। संस्कृति ... तात्पर्य है ... मानस अथवा चेतना से, जिसका इस प्रसंग में स्वप्रकाश विषयी के अर्थ में नहीं किन्तु विचारों, प्रयोजनों और भावनाओं की संगठित समष्टि के अर्थ में ग्रहण किया जाना चाहिए। पुरुष के लिए जो व्यक्तित्व है वही ... के लिये संस्कृति; दोनों का सार है आदर्शों और मूल्यों की भावना। संस्कृति ... ऐसा सामाजिक-ऐतिहासिक संसार प्रदान करती है जो अपने प्रभावों की ... व्यक्तित्व को अभिसंस्कृत और विनीत करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृति मूलभूत निष्ठाओं से प्रादुर्भूत होती है और उसमें चरित्र अथवा व्यक्तित्व का वह ... आदर्श लक्षित होता है। वह समूचे जीवन का एक प्रयोजक निर्देश प्रस्तुत करती है जिसके प्रकाश में समस्त संस्थाएँ व्यापारित होती हैं और जो अंततोगत्वा सामाजिक जीवन को एकता और आकार प्रदान करता है।
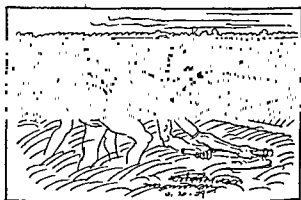
आचार्य नन्दलाल वसु कृत एक स्केच

इस प्रकार मूलतः संस्कृति जीवन की ओर एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, अनुभव के यांकन और व्याख्या का एक विशिष्ट और मूलभूत प्रकार है। विचार, भावना और चरण के विभिन्न प्रस्तारों में संस्कृति की सिद्धि होती है। इस दृष्टि-स्वरूपा संस्कृति की द्धि के बाह्य विस्तर निरन्तर बदलते रहते हैं किन्तु प्रभावात्मक दृष्टि और प्रेरणा एक स्थूल, बृहत्तर और गम्भीरतर सत्ता के रूप में बनी रहती है। और, किसी भी समाज के मन में चेतना का यह गहरा और अदृष्ट अनुप्रबन्ध ही संस्कृति का सार है।

आध्यात्मिक परम्परा के रूप में संस्कृति को उसके कार्यों और निष्पत्तियों से वेक्त रखना चाहिए जिसमें कि उसकी अभिव्यक्ति होती है और जो उसको मूर्ति प्रदान ते हैं किन्तु जो आवश्यक रूप से अधिक संकुचित सार्थकता रखते हैं। जब तक हम रो निष्पन्न रूप और आन्तरिक चेतना के रूप में विवेक न करेंगे तब तक हमारे लिए सी भी विशाल संस्कृति की एकता और नैरंतर्य को समझना सम्भव न होगा।

संस्कृति के कार्य हैं—कला, साहित्य अथवा संस्था-सरीखे पदार्थ। ये सांस्कृतिक शा के साधन और *अभिव्यक्ति बन जाते हैं और साथ ही साथ उसे परिच्छिन्न और* रूप देते हैं। कारणात्मक संस्कृति सूक्ष्म चेतना-रूप और न्यूनाधिक समय तक अन्तः शा के समान सामाजिक जीवन में कार्यशील, नियामक और निर्देशक रहती है। र्यात्मक संस्कृति सामाजिक जीवन के बहिर्दृश्य-रूपों, क्रिया-कलापों और निष्पन्न तियों का दूसरा नाम है। इन दोनों पक्षों में कुछ वैसा ही सम्बन्ध है, जैसे व्यक्तिगत नुभव की परम्परा में अनेक संस्कारों की समूहभूत वासना की आतंरिक प्रेरणा का अनुभव अनेक वास्तविक उपलब्धियों से, या कि जैसे आत्मा का शरीर से। आत्मा शरीर को के और अन्विति प्रदान करती है। किन्तु शरीर आत्मिक व्यापार का साधन है और त्मा को एक दृश्य और *स्पृश्य रूप* में *प्रतिष्ठित करता है* और उसके लिए *आत्मबोध* को ी तरह संभव बनाता है जैसे मुख के लिए दर्पण। परन्तु शरीर सब समय बदलता ता है और भगुर है। व्यक्ति की स्थिरता केवल आत्मा के द्वारा ही संभव है और आत्मा ही व्यक्ति के जीवन का मूल और मूल्य खोजे जा सकते हैं। यदि संस्कृति का अध्ययन रे लिये आत्मज्ञान का प्रयास है तो अतीत में हमारी सफलताएँ और वैफल्य एक अदृष्ट तरिक जीवन के लक्षण और प्रतीक के रूप मे सार्थकता प्राप्त करते हैं, एक ऐसे अदृष्ट तरिक जीवन के जिसका स्वरूप एक आध्यात्मिक निष्ठा है और जो परम्परा द्वारा मान रहता है।

सामाजिक अनुप्रदाय के रूप में संस्कृति का निस्संदेह एक भौतिक पक्ष भी है। ाज की परम्परा में कृत्रिम पदार्थों का एक संसार विद्यमान रहता है जैसे कि र हथियार, कलाकृतियाँ इत्यादि। किन्तु संस्कृति के यंग रूप से ले भौतिक

ॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

संगठित संसार के अंग और मानव-प्रयोजनों के मूर्त रूप बन जाते हैं। संस्कृति के उनका प्रवेश स्वरूपतः नहीं किन्तु व्यंजकतया होता है। उनकी भौतिकता उनकी ... कता की ओर एक पारदर्शक आवरण बन जाती है। इमारतों या हथियारों को हम ... या लोहे के होने के कारण ही संस्कृति का अंग नहीं मानते हैं। किसी चेतन ... साधन अथवा कृति होने के कारण ही उसकी संस्कृति में गणना करते हैं। ... भौतिक पक्ष की सार्थकता इसी में है कि वह मानव-चेतना से अभिसंस्कृत है। ... सार्थकता एक विशिष्ट तथा सुसंगठित सामाजिक अनुभव के अन्दर ही होती है। ग्रीक वास्तुकला की उसी शिखरीभूत कृति को कुछ तुर्क बारूदखाने के रूप में ... कर सकते थे। किसी इमारत का सांस्कृतिक मूल्य सदैव देखनेवालों के मन ... रखता रहा है।

यह कहा गया है कि भौतिक परिस्थिति ही किसी सामाजिक परम्परा की उत्पत्ति और वृद्धि का सबसे मौलिक कारण है और प्राकृतिक वातावरण के प्रभावों पर जोर डालकर यह समझाने का प्रयत्न

'मास्टर मोशाय' का एक और स्केच

किया गया है कि किसी भी समाज का मुख्य इतिहास उसके भूगोल से ... होता है। इस मत के प्रतिपादक भूल जाते हैं कि उसी समान भौतिक ... की ओर मनुष्य की प्रतिक्रिया एक से अधिक रूप में हो सकती है और भौतिक प्रकृति अनेक अंशों में एक सम्भावना का क्षेत्र अधिक है, परिनिष्ठित और ... प्रभावों का क्षेत्र कम। इन संभावनाओं का वास्तविक व्यापार मानव-सम्पन्न ... और दिशा पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए उत्तरी योरोप में ठंडी ... मनुष्यों की कार्यशीलता पर रेनडियर काल में कुछ और प्रभाव था और ... ... के युग में कुछ और। बाह्य प्रकृति की चुनौती का मानव-स्तर ... वशीकार का प्रयास। यह सच है कि मनुष्य का प्रकृति पर वशीकार निरन्तर ... करता गया है और अभी भी पूर्णता से बहुत दूर है किन्तु यह नहीं कहा ... सभ्य समाज में बाह्य प्रकृति की विशुद्ध प्रेरणा ने मनुष्य की चेतना का रूप निर्धारित ...

है या कि आध्यात्मिक क्षेत्र में उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों का ही स्वरूप-निर्णय किया है। यहाँ पर यह प्रतीत हो सकता है कि संस्कृति की भौगोलिक व्याख्या के विरोध में जो युक्तियाँ दी गई हैं वे उत्पादन-पद्धति-परक मार्क्सवादी दृष्टि का समर्थन करती हैं क्योंकि मनुष्य को प्रकृति के ऊपर जिस वस्तु से प्रभुत्व मिलता है वह है भौतिक साधनों की उन्नति। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य की स्वाधीनता और संस्कृति की सिद्धि मूलतः विज्ञान-कौशल (technology) पर निर्भर है। अपने "अर्थनीति का आलोचन" की भूमिका में मार्क्स ने मन्तव्य प्रकट किया है कि सामाजिक सत्ता सामाजिक चेतना को निर्धारित करती है। विज्ञान-कौशल की अवस्था उत्पादन के साधनों का निर्णय करती है और तदनुसार वे सामाजिक सम्बन्ध निर्णीत होते हैं जिसमें मनुष्य अपनी अर्थपरक चेष्टाओं के कारण प्रविष्ट होता है। उत्पादन के साधनों को ही सामाजिक सत्ता का सार कहा जा सकता है। इसी के अनुरूप व्यावहारिक और राजकीय संस्थाओं का आविर्भाव होता है। धर्म और दर्शन, साहित्य और कला ऊपर की मंजिल की तरह से उत्पत्तिशः गौण हैं। इन्हीं से निर्मित द्वितीयभूमिक सत्ता सामाजिक चेतना कहलाती है। उसमें वही सब मौलिक स्वार्थ-भेद और संघर्ष प्रतिबिम्बित होते हैं, जो तलगत सामाजिक सत्ता में अन्तर्निहित हैं। संघर्षयुक्त सामाजिक सम्बन्धों का यथार्थ ही वह बुनियाद है, जिस पर सामाजिक आदर्शों की चेतना एक महल की तरह से खड़ी है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य के दैनिक जीवन के रूप-निर्धारण में विज्ञान-कौशल और आर्थिक सम्बन्ध बहुत बड़ा भाग ग्रहण करते हैं क्योंकि दैनिक जीवन प्रायः जीविकार्जन में ही बीतता रहा है। प्रस्तर-युग के शिकारी, ताम्रयुग के किसान और यंत्रयुग के मजदूर अपना समय अत्यन्त विभिन्न वातावरण में यापित करते रहे हैं। और, अधिकांश राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं के विषय में उनके धार्मिक परिवेश को छोड़कर आलोचना नहीं की जा सकती जिनमें वे जन्म लेती हैं और कार्य करती हैं। समाज और संस्था के निर्माण में उत्पादन-कौशल और आर्थिक कारकों का महत्व अब सामान्यतया स्वीकार किया जाता है किन्तु साथ-ही-साथ हमें उन सीमाओं का निर्धारण करना है जिनके अन्दर टेकनॉलोजी और आर्थिक कारण संस्कृति के अन्य पहलुओं निर्धारित करते हैं और इस प्रसंग में निर्धारण का अर्थ भी पर्यालोचनीय है। यद्यपि, विभिन्न पहलुओं में एक प्रकार की समन्विति विद्यमान रहती है तथापि इसे हीं किया जा सकता कि सामाजिक व्यापार के विविध क्षेत्रों में अपनी-अपनी ति होती है। संस्कृति की ऊँची शाखाओं के विषय में यह विशेष रूप से सच और दर्शन, कला और संस्कृति एक अपनी अंतर्निहित गति-शक्ति और गति सेत होना चाहते हैं। उनकी सामाजिक अभिव्यक्ति में साधक अथवा

डॉ० गोविन्दचन्द्र

मौतिक परिस्थितियाँ विचारों तथा आदर्शों के स्वामाविक और द्वन्द्वात्मक (dialec
विकास में प्रभाव डालती हैं।

किसी संस्कृति की भौतिक परिस्थितियाँ उसकी संघटना अथवा संस्थान का
पक्ष चित्रित करती हैं। मनुष्य अपने दैनिक जीवन के उपादान को अपने उच्च
की अपेक्षाओं से गढ़ते हैं। हमें उन पर निर्णय उनकी अमीप्सा और प्रेरणा के
अधिक देना चाहिए, उनके यथार्थ में कार्यान्वित होने से कम, क्योंकि हमारे लिए मनु
हृदय और आत्मा का अधिक महत्व है और उनके बाहरी जीवन की मंगुर अभिव्यं
कम। नश्वर और मौतिक जगत् में अवस्थिति की आकस्मिक घटनाओं से आध्या
भाग्य अधिक महत्वपूर्ण है। अपने गम्भीरतम रूप में संस्कृति का अध्ययन मनु
आध्यात्मिक भाग्य का प्रकाशन होना चाहिए।

आचरण की सार्थकता जीवन का तत्त्व है और जीवन का परमार्थ सुख

है। युग-युग से मनुष्यों ने सुख के स्वरूप को परिभाषित करने का यत्न किया है और उसकी प्राप्ति के उपायों को खोजने का। मनुष्य की कहानी सुख की खोज में इस यात्रा का ही विवरण है जिसमें कि साध्य और साधन अनुभव के बढ़ने के साथ विकसित हुए हैं। किन्तु इतिहास तर्कशास्त्र नहीं है और उसकी स्वच्छन्द गति को पूरी तौर

आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का एक स्केच

से नि
गतिरा
अन्दर
बाँधा
सकता
यह है
हो बा
सिसप
मनुष्
तथा
प्राप्ती
और म
के
कार
मार्ग
कार
और
इन
शि
विश्व

ोगा। ज्ञान का सर्वांगीण अथवा संतत विकास नहीं है, और न ही उपलब्ध
ान ने हमेशा पूरी तौर से भावनाओं और आचरण के व्यवहारिक रूप को
नुप्राणित किया है और, फिर आकस्मिक घटनाएँ अनेक बार सभ्यता की
ावुक कहानी पर दुर्भाग्य-सी टूट पड़ी हैं। कोई भी ईमानदार इतिहासकार
ह नहीं सोच सकता कि उसके निरूपण में तर्क-पद्धति की अनिवार्यता है
ा कि कला-सुगम एक निराली और सूक्ष्मतर अनर्क्य प्रणाली है। मानव
तीत के उलझे और खंडित ब्यौरे में बुद्धि को पराजित करनेवाली अहैतुकता की एक
ीति दुर्निवार है। सच तो यह है कि मानव-जीवन और इतिहास में सार्थकता और
रर्थकता; बुद्धिग्राह्य सहेतुकता और बुद्धिविमोहक आकस्मिकता की मिली-जुली प्रतीति
ोती है और इसका कारण यह है कि मानव-जीवन एक साथ ही भौतिक भी है, आध्या-
मक भी; कार्य-कारण,-नियत प्राकृतिक जगत में होते हुए भी एक अप्राकृत अथवा लोको-
र लक्ष्य की ओर उद्दिष्ट है। यदि हम मनुष्य को एक देही मात्र मानें तो उसकी सत्ता
क यंत्रवत और जड़-जगत के एक विशाल निर्जीव विस्तार में सर्वथा महत्वहीन हो जायगी,
दि मनुष्य एक विशुद्ध
कृत प्राणी है और
ा सब प्रकृतिवादी
तो इतिहास कार्य-
ारण की एक नियत
ंखला है, उतनी ही
र्थ जितनी कि चन्द्र
ार तुच्छ। वस्तुतः
ी स्थितिमें इति-
ास अब भौतिक
थवा प्राणि-विज्ञान
ा अंग बन जायगा
ोंकि मनुष्य और
माजसिर्फ प्राकृतिक
थान रह जायँगे।
प्राकृतिक इतिहास"
न क्रियाओं को
हते हैं उन्हें क्रम और
सार्थकता विकास
के सिद्धांत से प्राप्त
होती है किन्तु
ठीक-ठीक कहने
पर विकास के
अन्दर लक्ष्य,
प्रेरणा और चेतना
निहित हैं। ले-
किन, हमें पहले
साङ्ख्य से एकमत
होकर कहना
होगा कि प्रकृति
का विकास पुरुष
के लिए होता है
और फिर अंततो-
गत्वा यह
होगा कि
सार्थक

पर्वतीय युगल
डा० जगदीश गुप्त कृत एक स्केच

ॉ० गोविन्दचन्द्र

व्यंजनापूर्ण सार्थक वर्णन। दोनों ही दशाओं में यदि पाठक स्वयं संस्कृति के
से अथवा जीवन्त यथार्थ से अपरिचित हो तो उसका बोध निरे ऐतिहासि
अपूर्ण रहेगा। सांस्कृतिक तथ्यों का वर्णन अथवा आलोचना तभी पाठक के
लिए सार्थक हो पाती है जब इन तथ्यों से पाठक का कम से कम अंशतः साक्ष
हो। उदाहरण के लिए बिना काव्य अथवा दर्शन पढ़े उनका इतिहास-
विवरण पढ़ना बहुत लाभकर नहीं है।

अनेक प्राचीन ग्रंथों के रचना-काल के अनिश्चित होने के कारण तथा मन्तु
के अन्तर्गत देश और समय के विपुल विस्तार की तुलना में उपलब्ध तथ्यों की
कारण प्राचीन भारतीय संस्कृति का सघन अथवा असंदिग्ध युग-विभाजन कर
है। वंशावलियों का तिथि-क्रम सांस्कृतिक इतिहास के लिए पूर्णसार्थक तिथि-
बन सकता। मौलिक सांस्कृतिक परिवर्तन मंद गति से सम्पन्न हुए, व्याख्या
पुनर्व्याख्यान के द्वारा हुआ है, क्रान्तिकारी अन्यथाकरण के द्वारा नहीं। स
आर्थिक तथा निर्माण-पद्धति-जन्य परिस्थितियाँ अल्प परिवर्तन के साथ दीर्घ
संरक्षित रही हैं। दूसरी ओर व्यक्तियों और घटनाओं तथा वास्तविक नियमों
विषय में हमारी सूचना अत्यन्त दरिद्र है। हमारे मुख्य साहित्यिक आकर, अन
आदर्शिक हैं। उनमें विचारों और आदर्शों की अभिव्यक्ति है, न कि सामाजिक
कानूनी यथार्थ की। ऐसी परिस्थितियों में भारत की प्राचीन संस्कृति का दी
विवरण युग-क्रम के अनुसार कठिन है। अतः भारतीय इतिहास के सन्निवेश
बुद्धिस्थ कर उसके अन्तर्गत भेदों का यथा संभव ऐतिहासिक विकास दिख
सम्भव है।

'भारतीय संस्कृति' पुस्तक में इसी का सफल प्रयत्न किया गया है।

दो कविताएँ

परिणति

सतह यह पानी की,
लहरों के बनने-बिगड़ने का
क्रम एक चलता है ;
पानी के शीशे में
उतरे ये सभी दृश्य
ऊषा जो उगती—
या सूरज जो ढलता है ;
किन्तु कहीं एक भी
निशान नहीं बनता है—
पानी तो बहता है।

पानी सन्यासी है,
लहरों के अनहद को—
सुनता है ;
किरणों की धूनी में—
तपता है,
दर-दर भटकता है

क्या ऐसे ही भटकेगा ?
नहीं ; नहीं ;
जहाँ सिद्धि पायेगा—
व्यापक अखण्ड एक सिन्धु
बन जायेगा।

दुहरी परिधियाँ

केन्द्र केवल एक
ठहरीं दो परिधियाँ—
एक भीतर, एक बाहर ;
और ये इतनी समानान्तर
मिलाये ही नहीं मिलतीं ;
किसी लय-बिन्दु पर
ये लय नहीं होतीं ;

परिधि भीतर की
न खींचे से बड़ी होती,
परिधि बाहर की
सिकोड़े कब सिकुड़ती है ?

केन्द्र स्थिर है
किन्तु रेखाएँ अनस्थिर,
बंधे से आकार में ही
घूमतीं ये वृत्त की दुहरी परिधियाँ।

रमा सिंह

दो कविताएँ

जुगमन्दिर तायल

•

रक्तबीज की प्रतिज्ञा

जब तक धरती पर
कहीं भी कुरूपता बाकी है
चमकीले सुबह को
घोंटता अन्धकार बाकी है
जब तक अन्धेरा
मानवीय आँखों की चमक लीलता है
मैं लड़ता रहूँगा
कालिमा की काली से
हारूँगा नहीं
मेरे खून का हर कतरा
नया रक्तबीज बनाएगा।

•

वामन के वंशज

हम भी हैं
अन्याय-बलि के विरुद्ध
हमारे अधिकारों की धरती
जिसने हम से छीनी है
शक्ति हमारी भी सीमित है
रूप हमारा भी वामन है
पर छल नहीं करेंगे हम
रहेंगे सन्मुख ही, प्रत्यक्ष ही
वामन था एक
पर हम अनेक हैं।

•

आयुर्वेदिक प्यार का नुस्खा

• रामआचार्य

पाँच तोला दर्द
आँख की बाँये खरल में
पाँच तोला दर्द
आँख के दायें खरल में
है घुट चुका अच्छी तरह से
साथ अभ्रक की भस्म के...

अब मिला दो प्रिय, अगर
मनुहार का तुम एक माशा
छानकर आँचल से महीन
—तो बनालूँ मैं
'आयुर्वेदिक प्यार का नुस्खा'

शहद की पहचान से
पेटेन्ट का लेबल लगा दूँ
सिसकियों की शीशियों पर
बन्द कर दूँ
(अधखुले ये) द्वार
प्रीत की मनमानियों के
क्योंकि बोतल कांच की है
साथ में ढक्कन नहीं है।

अनेक देश एक इन्सान

—— कुलभूषण ——

न्यूयार्क : गतांक से आगे

मुझे याद आते हैं श्री पीटर जेनीसन, की पत्नी और पुत्र एण्डी, जिनके घर मैने तेथि बनकर एक दिन बिताया। ग्रैण्ड ट्रल स्टेशन से रेलगाड़ी पकड़ कर दो घंटे यात्रा के बाद मै पोकीप्सी नामक स्टेशन उतरा। लिफ्ट से ऊपर आकर पुल के र बने टिकट घर के सामने एक बेंच पर कर मैं श्री जेनीसन की प्रतीक्षा करता । और किसी यात्री द्वारा छोड़े हुए ाचार-पत्र के पृष्ठ उलटता रहा। पन्द्रह नट की प्रतीक्षा के बाद श्री जेनीसन नी मोटर में आ पहुँचे।

पहले पहल हम वेस्टर्न प्रिंटिंग म्पनी के प्रेस मे गए, जो प्रति वर्ष ई करोड़ प्रतियाँ केवल सस्ती स्तकों की छापते हैं। बड़ी-बड़ी पने की मशीनें देखीं, जो एक घंटे १२८ पृष्ठ की कई हजार प्रतियाँ ापती हैं; एक ओर से कागज न्दर जाता है और दूसरी ओर से १२८ पृष्ठ के फॉर्म आप से आप तह ाकर बाहर आते हैं। शेरीडन मशीन देखी, जो एक घंटे में १५,००० पुस्तकों की जिल्दें बाँधती है। फॉर्म एकत्रित करना, उन्हें काटना, गोंद लगाना, कवर चिपकाना—सभी कुछ आप ही आप मशीन द्वारा होता है। कारीगर केवल निगरानी रखते हैं कि कहीं कोई बाधा न हो।

छापने व जिल्द बाँधने के काम की तेजी का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ३८४ पृष्ठ की एक पुस्तक की अढ़ाई लाख प्रतियाँ २८ घंटे में न केवल छप जाती हैं, बल्कि बँधकर गत्तों के बक्सों में बन्द भी हो जाती हैं।

वेस्टर्न प्रिंटिंग के एक अधिकारी के साथ मैं और श्री जेनीसन खाना खाने एक होटल में गए, जिसका नाम था 'दि किचन' (रसोई)। काली पृष्ठभूमि पर अक्षरों में होटल का नाम लिखा था। सफेद पोशाक पहने एक युवती ने खाना मेज पर लगाया—और हम

पार्क रोड पर आती-जाती मोटरों को देखते हुए खाना खाते रहे। खाने के बाद सिगरेट सुलगाई, तो हमें माचिस के बक्से दिए गए, जिन पर काली जमीन पर सफेद अक्षरों में होटल का नाम छपा था।

अब हमने प्रेस के अधिकारी से विदा ली और हाईड-पार्क में बने प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट के घर को देखने गए। फूलों से घिरे छोटे से बाग़ के बीच संगमरमर की क़ब्र देखी, जिसके पास एक छोटा सा अमरीकन झंडा लगा था। संगमरमर का बुत देखा, जो घटा के बावजूद मुस्करा रहा था। घर देखा, जिसके एक कमरे में रूज़वेल्ट का तहाया हुआ ओवरकोट ऐसे रखा था, जैसे किसी भी क्षण इसे पहनने वाला अन्दर से निकल आएगा। और रूज़वेल्ट के जीवन से संबंधित छोटी-बड़ी चीज़ों की प्रदर्शनी देखी, जिसमें चित्रों व पुस्तकों के अलावा एक मोटरकार भी थी, जिसे फोर्ड कम्पनी ने विशेषकर प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट के लिए बनाया था। श्री जेनीसन बोले, 'कहते हैं, एक बार ब्रिटेन के मुख्य मंत्री श्री चर्चिल को रूज़वेल्ट ने आमंत्रित किया कि वे उनकी कार में उनके साथ बैठें। क्योंकि उनके पैर निकम्मे हो चुके थे, इस कार में सभी कल-पुर्जे हाथ से चलाने वाले बनाए गए थे, श्री रूज़वेल्ट इसे आसानी से चला लेते थे। श्री चर्चिल रूज़वेल्ट के साथ बैठ गए, मोटर चली और बग़ैर दुर्घटना के वापस लौट आई···मगर यात्रा के अन्त में श्री चर्चिल का चेहरा पसीने से तर नज़र आ रहा था। और रूज़वेल्ट हँस रहे थे···"

हाईड पार्क से निकलकर हम [illegible] नामक शहर की ओर चले, जो [illegible] में है और जहाँ श्री जेनीसन सपरिवार [illegible] हैं। चौड़ी सड़क, चारों ओर [illegible], और ठंडी हवा—लगभग तीन घंटे की [illegible] में मैं और श्री जेनीसन बातें करते रहे। लेखकों के विषय में, उपन्यास-कला के विषय में, लेखक और नैतिकता के [illegible]स्परिक सम्बन्ध के विषय में, कला के [illegible] के विषय में। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री जेनीसन लेखक हैं—एक [illegible] लिख चुके हैं, जो अभी तक प्रकाशित न हुआ—मगर बिना हतोत्साह हुए [illegible] उपन्यास पर काम कर रहे हैं।

अढ़ाई घण्टे की यात्रा के बाद [illegible] वेस्टन में प्रवेश किया और एक मोटर [illegible] में रुके। यहाँ से श्री जेनीसन ने [illegible] कार ली और गैरेजवालों से किराए [illegible] ली हुई नई कार को वापस किया, [illegible] हमने आज सारे दिन यात्रा की थी। [illegible] हम श्री जेनीसन के घर की ओर चल दिए।

श्री जेनीसन का मकान, [illegible] जैसे सड़क के किनारे अकेला है—[illegible] ऊपर बड़ी सड़क से नीचे उतरते [illegible] कई घर देखे थे, जो यहाँ [illegible] हो गए थे। यह घर लकड़ी और [illegible] था; तीन कमरे नीचे, दो [illegible] मकान के पिछले भाग में रसोई और [illegible] का कमरा था और उनके [illegible] बड़ी दीवार थी, जिसमें [illegible] चादर का ही दरवाज़ा था। [illegible] दीवार के परे पत्थरों का [illegible]

ने पर ढलान थी और घना और दुर्गम
ा था।

रसोई के पास ही खाने की मेज के
ँ और कुर्सियाँ पड़ी थीं, उन्हीं में से
पर मुझे बैठाकर श्री जेनीसन ऊपर
गए। कपड़े बदलकर लौटे, तो एण्डी
साथ था। साढ़े चार वर्ष के एण्डी के
मित्रता करने में मुझे अधिक देर नहीं
। कुछ देर वह अपनी बड़ी-बड़ी
ों से मुझे घूरता रहा। फिर जब मैंने
पुकारा तो वह मेरे पास आकर बैठ
।

नाम, पढ़ाई और मित्रों के विषय में
र मैंने उसकी चुप्पी तोड़ी, तो उसने
, 'नीचे जंगल में मैं कई बार गया हूँ।
बहुत से जानवर हैं।"

'तुम्हें डर नहीं लगता?' मैंने पूछा।

'नहीं, मुझे अच्छा लगता है। मेरे कई
हैं—एमिली सबसे अच्छी है। तुम
ी से मिलोगे?'

'जरूर मिलूँगा, लेकिन कल तो मैं जा
हूँ।'

एण्डी इस बात से जरा सोच में पड़
। श्री जेनीसन बोले, 'मेरी पत्नी से
ए—जेन।' मैंने घूमकर देखा, नाटे कद
हिला. छोटे कटे बाल, साधारण नाक-
, मगर कृत्रिमता-विहीन मुस्कान।
चार की कुछ बातों के बाद बोलीं,
कुछ पियेंगे?' मेज के पीछे कोने में
बिजली का चूल्हा था। बाईं ओर
रेफ्रिजेरेटर में से बोतलें निकालकर
स मेरे गए—और फिर श्रीमती जेनी-
सन कुछ मिनट के लिए अदृश्य हो गईं।
लौटीं तो उनके हाथ में मटरों से भरा थैला
था। मेज पर मटर उलटकर बोलीं, 'ये मटर
मेरे बाग के हैं।'

श्री जेनीसन बोले, 'इन्हें अपने बगीचे
पर गर्व है।'

मैंने कहा, 'होना ही चाहिए।'

मटर छीलने में मैंने श्रीमती जेनीसन
की सहायता की। फिर एण्डी के साथ
बातें करने के बाद मैं और मेरे मेजबान
ऊपर गए जहाँ उनके शयन-कक्ष के अलावा
एक स्टडी भी है—पुस्तकों से भरे आले,
लिखने के लिए मेज और कुर्सी, और परदों
के परे वनस्पति की अनन्त हरियाली।
दोनों ने मिलकर मुझे पुस्तकें दिखाईं, मैंने
अपनी प्रिय पुस्तकों के नाम दुहराए—और
जब जब हमारी रुचियों ने मेल खाया, हम
मुस्करा दिए।

श्रीमती जेनीसन ने कहा—'मेरे एक
चाचा थे, बहुत ही धार्मिक वृत्ति के और
बहुत ही कट्टर। उनके मरने के बाद उनकी
पुस्तकें मेरे हिस्से में आईं—और एक
अलमारी में पुस्तकों की पँक्ति के पीछे छिपी
जो पुस्तक मिली, वह थी यह—' इतना
कहकर उन्होंने हाथ बढ़ाया और एक पुस्तक
निकालकर मेरे हाथों में दे दी। पुस्तक
का शीर्षक था—'लेडी चैटर्लीज लवर',
लारेंस के प्रसिद्ध उपन्यास का पूरा
संस्करण!

वह मुस्कराईं, श्री जेनीसन भी
दिए। मैंने कहा, 'कट्टरता से
रसहीन तो नहीं हो जाता।'

खाने के बाद पप्पी को सुलाकर हम तीनों फिर बातें करने बैठ गए। छूटते ही श्रीमती जेनीसन बोलीं, 'अगर आप बुरा न मानें तो हम आपको कुल कहकर बुलायेंगे; आप मुझे जेन कहकर बुलाएँगे और इन्हें पीटर।'

अमरीका में काले-गोरे लोगों के भेद के विषय में पीटर ने कहा, 'हमारे पड़ोस में एक डाक्टर रहता है जो हब्शी है, मगर उसके सभी रोगी गोरे हैं। ऐसी स्थिति कुछ वर्ष पहले असंभव थी—मगर अब यह संभव है।

जेन ने मुझ से काश्मीर के विषय में पूछा, तो मैंने कहा, 'भारत व पाकिस्तान का बँटवारा हिन्दू-मुसलमान के आधार पर हुआ है, मगर आज भी प्रति ४ करोड़ भारतीयों में १ करोड़ मुसल्मान हैं, इसे लोग भूल जाते हैं। जहाँ भारत का आदर्शवाद धर्म की आड़ नहीं लेता और सभी धर्मों के लोगों को बराबर का अवसर देता है, वहाँ पाकिस्तान की नींव धार्मिकता पर जमी है। आज बीसवीं सदी में यदि कोई धर्मांधता को सराहे और लोकतंत्र की निंदा करे, तो उसे क्या कहा जाए, यह आप ही बताएँ।'

पीटर ने मेरे मत को स्वीकार किया। बोले, 'ये सब बातें हमें मालूम नहीं थीं—इसीलिए हमारी यह धारणा थी कि पाकिस्तान का काश्मीर पर अधिकार भारत से अधिक है।'

मैंने अपनी दलील को एक कदम आगे बढ़ाया। बोला, 'आप किसी देश को दूसरे देश के [illegible] हथियार देते हैं—और आर्थिक [illegible] से वह देश पिछड़ा रहता है—तो [illegible] देश की असंतुष्ट जनता के लिए [illegible] सिवा और क्या चारा होता है [illegible] वह इन हथियारों से अपने देश [illegible] सीमाओं के पार धावा बोल [illegible] पाकिस्तान को हथियार देकर [illegible] ठीक ऐसी ही स्थिति लाने की [illegible] कर रहे हैं, यद्यपि आपकी मंशा [illegible] नहीं है। अभी हाल ही में '[illegible] टाइम्स' में मैंने एक लेख पढ़ा है—उसमें काश्मीर में होने वाले चुनाव [illegible] जी भरकर कोसा गया है; कहा [illegible] कि चुनाव नकली थे, ढकोसला [illegible] थे। मगर पाकिस्तान में और [illegible] स्तानी काश्मीर में तो स्वतन्त्रता [illegible] अभी तक एक ढकोसला-चुनाव [illegible] नहीं हुआ, इस पर लेखक भी [illegible] बिलकुल चुप हैं। यह क्या [illegible] जनता को धोखे में रखने की [illegible] नहीं है?'

इसके बाद मैंने जेन से [illegible] किया, "आपके देश में तलाक [illegible] हो गया है। इसका पारिवारिक [illegible]

ा प्रभाव पड़ा है, आप बता सकती हैं ?"

जेन ने कहा, "हमारे पड़ोस को ही ले लिए। आपको यह जानकर हैरानी होगी इस पड़ोस में पांच पागल बच्चे हैं। रण केवल एक है। माता-पिता के तलाक पुनर्विवाहों से बच्चों का स्वाभाविक-कास नहीं हो पाता, वे अपने आप में एक रोधाभास अनुभव करते हैं और फलस्व- मनोवैज्ञानिक विकारों के शिकार ते हैं।"

बातचीत रात के डेढ़-दो बजे तक तो रही। मेरे सोने के लिए नीचे के कमरे में प्रबन्ध था—एण्डी के कमरे के ल में! देर बहुत हो चुकी थी, मगर मैं र भी नहीं सोया। सुबह के साढ़े पाँच । तक "लेडी चैटर्लीज लवर" का पूरा करण पढ़ता रहा। फिर डेढ़-दो घण्टे की द लेकर सात बजे उठ बैठा।

आठ बजे नाश्ता मेज पर था और पीटर ार होकर नीचे उतर आए थे। मैं भी दी-जल्दी तैयार हुआ। नाश्ता करके, डी, पीटर और जेन के कुछ चित्र र हम न्यूयार्क के लिए चल दिए—पीटर दस बजे दफ्तर पहुँचना था।

वेस्ट पोर्ट के स्टेशन पर पहुँचकर देखा, जगह कारें ही कारें खड़ी थीं। पीटर ने ा, 'रोज मैं यहीं पर अपनी कार छोड़ ता हूँ, और शाम को कार लेकर घर पहुँच ता हूँ। आज जेन और एण्डी साथ हैं, वे कार घर ले जाएँगे और शाम को के स्टेशन से लिवा ले जाएँगे।"

जेन को धन्यवाद देकर, एण्डी को "बाई बाई" कहकर मैं व पीटर स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुँच गए। गाड़ी आई और हम उस में जा बैठे। लगभग सवा घण्टे की यात्रा के बाद गाड़ी ग्रैंड सेण्ट्रल स्टेशन पर पहुँच गई। हम एक बार फिर न्यूयार्क के जीवन के बीच थे।

पीटर ने मेरे धन्यवाद को गर्दन हिला-कर स्वीकार किया, और बोले, "आशा है, हम फिर मिलेंगे—साक्षात् नहीं तो कम से कम पत्रों द्वारा—" और सचमुच जब मैं चार महीने बाद भारत पहुँचा, तो उनकी भेजी एक पुस्तक मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। विषय था—"हंगरी के विद्रोह की सच्ची कहानी।"

* * *

मुझे याद आते हैं जॉन और कैरोल सिंगलटन—न्यू जर्सी में रहनेवाले दम्पति, जो मुझ से मिलने दो बार न्यूयार्क आए और दोनों बार निराश होकर लौट गए। मेरे एक मित्र ने उनके नाम मुझे एक पत्र दिया था, जिसे न्यूयार्क पहुँचते ही मैंने डाक में डाल दिया था। कई दिन बाद, जब मैं उस पत्र का उत्तर पाने की आशा छोड़ चुका था, मुझे एक छोटा-सा पुर्जा मिला। लिखा था—"मैं और कैरोल आपसे मिलने दो बार आ चुके हैं—कृपया इस नम्बर पर फ़ोन अवश्य करें, हम आपके फोन की प्रतीक्षा करेंगे।"

फोन के उत्तर में तीन दिन बाद नौ बजे मैं स्लोन हाउस की लॉबी में प्रतीक्षा करता रहा। पौने दस बजे

दम्पति को देखा जो किसी को ढूँढ रहे थे। मैंने आगे बढ़कर कहा, "श्री सिंगलटन ?"

पुरुष ने कहा, "मिस्टर भूषण ? मैं जॉन सिंगलटन हूँ।"

और हम दोनों ने हाथ मिलाए। जॉन ने घूम कर अपनी पत्नी का परिचय दिया और मैंने कैरोल से हाथ मिलाए। और फिर हम तीनों काफेटेरिया में जाकर एक मेज पर बैठ गए। मैंने नाश्ता नहीं किया था, मगर जॉन और कैरोल दोनों नाश्ता करके आए थे। सो जब मैं उनके लिए कॉफी और अपने लिए नाश्ता लेने चला, तो जॉन मेरे साथ आए और न केवल मेरा ट्रे उन्होंने खुद पकड़ा, बल्कि पैसे भी उन्होंने ही दिए। मैंने बहुत कहा कि वे मेरे पास आए हैं, तो पैसे मुझे देने चाहिए। मगर जॉन ने मुस्कराकर कहा, "आप इस छोटी-सी बात की चिन्ता क्यों करते हैं।"

मेज पर पहुँचकर मैं नाश्ता करने लगा और जॉन और कैरोल कॉफी पीने लगे।

जॉन मध्यम कद के ४० वर्ष के लगभग की आयु के व्यक्ति हैं—भरा शरीर, छोटे-छोटे घुँघराले बाल और खुलता हुआ रंग। उन्होंने गहरे नीले रंग का सूट पहन रखा था। मगर टाई न होने के कारण उनमें एक स्वच्छन्द स्वाभाविकता दिखाई देती थी; अकड़ अथवा औपचारिकता बिलकुल नहीं थी। बाद में पता चला कि ये तत्त्व उनके व्यक्तित्व में कहाँ से आए। चार-पाँच वर्ष तक वे दोनों पैरिस में रह थे, और स्वच्छन्द स्वाभाविकता पैरिस की देन है जिसे एक बार पाकर कोई खो नहीं सकता।

जॉन खूब बातें कर रहे थे, मगर कैरोल चुपचाप बैठी सुनती रही और मन्द-मन्द मुस्कराती रही। तीस-बत्तीस वर्ष की युवती कैरोल यद्यपि अंग्रेजी लिबास में थी, उसकी ... में मुझे वही मर्यादा दिखाई दी, जो भारत ... गृहस्थी में रहनेवाली युवतियों में होती है। उसकी हलकी मुस्कान में कुछ ऐसा ... था, जो उसके सारे व्यक्तित्व को ... कर देता था।

परिचय इत्यादि के बाद जॉन ने ... "अब आप यह बताइए कि आप यहाँ ... देखना चाहेंगे ?"

मैंने कहा, "मैं यहाँ आपका ... जीवन देखना चाहूँगा। अमरीकन ... जब इकट्ठे होते हैं तो कैसे रहते हैं, ... झाँकी मुझे मिल सके तो मैं आपका ... रहूँगा।"

जॉन ने कहा, 'आज तो हमें ... है। कल दोपहर आप हमारे ... बिताइएगा।'

नाश्ता करने के बाद हम तीनों ... निकले। मुझे कोलम्बिया विश्वविद्यालय ... जाना था, जो ११६ वीं स्ट्रीट पर है, ... सिंगलटन दम्पति १२२ वीं स्ट्रीट पर ... रहे थे, अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों के लिए ... स्थान इंटरनेशनल हाउस को। ... दोनों ने सेंट्रल पब्लिक ... रेलगाड़ी पकड़ी।

सुरंगों में दौड़ती रेलगाड़ी के ... शोर के बीच, 'सब वे' की ... सीटों पर बैठकर हम बातें करते रहे। ... चला कि कैरोल मनोविज्ञान ...

: जॉन फिल्म-कथा लिखने के लिए
त के फ़िल्म्स डिवीजन में काम कर चुके
भारत में कुछ वर्ष बिताने के बाद वह
त-भक्त बन गए हैं।

अगले दिन दोपहर को चार बजे जान
न हाउस में मुझे लेने आए, तो बहुत
ी में थे। देर के लिए उन्होंने क्षमा
ो और बोले, 'पिछले ४० मिनट से मैं
चार-पाँच ब्लाक्स का चक्कर लगाता
हूँ कि गाड़ी खड़ी करने का स्थान मिल
। मगर न्यूयार्क के ट्रैफिक का ढंग
ऐसा है कि सफल नहीं हो पाया।
फिफ्थ एविन्यू पर गाड़ी खड़ी करके
के पास पैदल आ रहा हूँ। आशा है,
को वहाँ तक पैदल चलने में आपत्ति न
ो।'

'आप इसकी चिंता न करें', मैंने उत्तर
ा। 'मैं न्यूयार्क में पैदल चलने का
ी हो गया हूँ।'

गाड़ी के पास पहुँचकर पहले तो मैं कुछ
ठका, फिर मैंने एक बार और ध्यान
खा। कैरोल भारतीय साड़ी पहने गाड़ी
पिछली सीट पर बैठीं थीं और उनके
ी एक और वयस्क महिला बैठी थीं।
न ने कहा, 'मा, यह मिस्टर भूषान हैं—
नका ज़िक्र मैंने तुमसे किया था।' फिर
ल की ओर देखकर बोले, 'कैरोल,
ख़िर हमें मिस्टर भूषान मिल ही गए।'

कैरोल ने मुस्कराकर कहा, 'आशा है,
पको इंतजार करने में कष्ट नहीं हुआ
ा।'

'आप साड़ी में बहुत सुन्दर दिखाई दे
रही हैं', मैंने कहा। 'सारे कष्ट का निवारण
एक पल में हो गया।'

कैरोल ने प्रसन्नता से कहा, 'मुझे खुशी
है कि आपको साड़ी पसन्द आई।' आगामी
दिनों में मैंने लक्ष्य किया, जब-जब कैरोल
मुझे मिलने आतीं, अथवा उनका मेरा साथ
होता, वह हमेशा साड़ी पहने रहतीं। मेरे
देश के प्रति श्रद्धा दिखाने का यह ढंग मुझे
बहुत भला लगा।

लगभग एक घण्टे के बाद हम अपने
नियत स्थान पर पहुँच गए। न्यूयार्क के
उपनगर में (जिसका नाम शायद लाँग
आईलैंड था) छोटे लकड़ी के घरों में से
एक घर के बाहर घास के टुकड़े पर पड़ी
कुर्सियों से उठकर, क़द में लम्बे और ऊँचे
मगर रंग में भारतीयों से मिलते-जुलते मोटे
नाक-नक़्श के दो पुरुषों ने जॉन और
कैरोल का अभिवादन किया। कुछ ही देर
में कुछ महिलाएँ और युवतियाँ घर के अंदर
से निकल आईं। मेरा परिचय चारों ओर
खड़े मुस्कराते चेहरों से हुआ। हाथ मिलाने
के बाद मुझे कुर्सी पर बैठाकर बड़ी उम्र के
एक सज्जन ने, जो घर के मालिक थे, मेरे
हाथ में एक गिलास थमा दिया। कुर्सियों
के साथ लोहे की मोटी तार के छड़ लगे थे;
इनमें से एक को घास में से निकालकर मेरी
कुर्सी के पास गाड़ दिया गया। छड़ के
ऊपर लोहे की चक्करदार खाली जगह थी,
जहाँ गिलास आसानी से रखा जा
था। मेज़ की जगह इस छड़ का
अमरीकनों के आविष्कार-कौशल
और प्रमाण था।

मेरे मेज़बान की चार लड़कियाँ थीं और दो लड़के। सबसे छोटी आठ साल की नन्ही-सी शैतानी की पुड़िया थी, बड़ी बहनों की फटकार का उसकी चुलबुलाहट पर कोई प्रभाव न पड़ता था। उससे बड़ी १३ वर्ष की बहुत खुले रंग की लड़की थी; चुस्त लाल ब्लाउज और काली पतलून में उसका लगभग पूर्ण विकसित शरीर एक कली की भाँति दिखाई दे रहा था। वयस्कों के साथ वह बच्चों का-सा हठ करती थी, लड़ती-झगड़ती और हाथापाई तक करती थी; हमारे देश की इस उम्र की लड़कियों में पाई जाने वाली सकुचाहट और कुंठा उसमें लेशमात्र नहीं थी। तीसरी लड़की मेरे शरीर की किशोरी थी और उसके कपड़े उसके चेहरे की भाँति स्पष्ट और लज्जाहीन थे; मगर जब वह नाचती थी, तो एकाएक उसमें ऐसा परिवर्तन आ जाता था कि हैरानी होती थी। उसका किशोर-मित्र शर्मीला था; मगर लड़की को इसकी चिन्ता नहीं थी, शायद इसलिए कि वह अपने घर में थी। केवल एक बात में वह अपने किशोर-मित्र से अप्रसन्न थी—कि वह नाच में निपुण नहीं था। बार-बार उसे टोककर वह सही मुद्रा व अंग-संचालन दर्शाती और फिर सिर हिलाती। जब वे दोनों नाच में भाग न लेते होते, तो एक ओर कुर्सियों पर एक दूसरे के हाथ पकड़े वे बैठे रहते—और बार-बार एक दूसरे की ओर नजर भरकर देख लेते।

चौथी सबसे बड़ी लड़की इकहरे बदन की युवती थी—मगर उसके चौड़े, कुछ कुछ बाहर निकले हुए दाँत और आँखों प[र] चश्मा उसकी आयु को कहीं अधिक [...] रहे थे। उसका व्यवहार स्वच्छन्[द] यद्यपि वह बिना भूल किए नाच ले[...] फिर भी उसमें वह स्वाभाविक सुन्[...] आ पाती थी, जो तीसरी लड़की में [...] स्पष्ट थी।

मेज़बान के दोनों लड़के बड़े [...] नौकरी करते थे। भारत के मध्यम[...] वार के लड़कों की तरह सभ्य, उन [...] कुछ देर मेरे साथ शिष्टाचार की [...] और फिर कहीं चले गए।

इनके अलावा एक और बड़ी [...] दम्पति थे—जिनके गर्व का केंद्र उन[...] और पुत्रवधू थे। बेटा पुलिस में नौ[...] और पुत्रवधू बड़ी बड़ी आँखोंवाली [...] रंग की गर्भवती युवती। जिसकी [...] रहस्यमयी मुस्कराहट में न जाने कैसे [...] छिपे थे। उसके चेहरे की कोमलता में [...] ठहराव था, जितना शाम को धू[...] शांत गहरे सरोवर में होता है। कभी [...] पति-पत्नी नाचते, कभी एक ओर [...] बहुत कोमलता से एक दूसरे को चूमते [...]

कैरोल को न जाने क्या विचार [...] कि उसने सबसे बड़ी चश्मेवाली ल[ड़की से] कहा, 'तुम इनको नाचना सिखाओ।' [...] लाख इनकार किया, मगर अन्त [...] दो बार नाचना ही पड़ा। यद्यपि मैं [...] था कि मुझे नाचना नहीं आ ता, [...] भी सबने तालियाँ बजाकर मुझे प्रे[...] दिया। मगर पहले नाच के बीच [...] ने मेरे हाथ पकड़े हुए हँसकर पूछा, '[...]

ाथ काँप क्यों रहे हैं ?'

कुछ देर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा। र मुस्कराकर बोला, "इसलिए कि आज पहले मैंने किसी लड़की के साथ नाच हीं किया।" उत्तर सुनकर लड़की के दाँत मक उठे और वह फिर नाच सिखाने में ीन हो गई।

नाच का कार्यक्रम एकाएक समाप्त हो या, क्योंकि खाना मेज पर आ चुका था। ब और कैसे सब सामान मेज पर आ या, कम से कम मुझे इसका पता न चला। ब मेजवान ने ताली बजाकर ऊँची आवाज कहा, 'चलिए, खाना खा लें,' तब एका- क मैंने देखा, बैठक की एक ओर, ऊँची गह पर पड़े बड़े मेज पर पकवान सजे हैं। बने प्लेटें भर-भरकर खाना खाया—और बार मेरे मना करने पर भी मेरी प्लेट र दी गई।

खाने के बाद किसी ने खेल आरंभ या—और बात-बात में मैंने भी इसमें ग दे दिया। जमीन पर बिछे कालीन र बैठकर मैंने कुंडली का आसन लगाया— क पैर उठाकर जाँघ पर रखा, फिर इसी कार दूसरा पैर उठाकर दूसरी जाँघ पर त दिया, और हाथ जमीन पर टेक कर पना सारा शरीर हवा में झुला दिया।

कुंडली लगाते समय मुझे अपने आप र भरोसा नहीं था, कि मैं यह कर पाऊँगा, गर बहुत आसानी से मैं इसे कर पाया। ब क्या था, सब के सब पुरुष व बालक- ालिकाएँ अपना कौशल आजमाने गे। लाल ब्लाउज वाली लड़की ने भी बहुत बार कोशिश की और असफल रही।

बार-बार मुझ से अनुरोध किया गया कि मैं फिर कुंडली बनाऊँ, बार-बार सबने आश्चर्य प्रकट किया, बार-बार बच्चे और जवान अखाड़े में कूदे कि वे इसे आसानी से कर गुजरेंगे—और बार-बार सबको मुँह की खानी पड़ी। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं खुद यह चमत्कार पहली बार कर रहा हूँ, तो मेरी बातपर उन्हें कितना विश्वास हुआ, कह नहीं सकता।

अब हमने अपने मेजबान से विदा ली और गाड़ी में बैठ गए। पुलिस में काम करनेवाला युवक, उसके माता-पिता और उसकी पत्नी, सब दूसरी कार में बैठे—और फिर 'अलविदा' के शोर में दोनों कारें चल दीं। मेरा विचार था, हम सीधे मैनहैटन जा रहे हैं, मगर कुछ ही देर बाद हमारी गाड़ी खड़ी हो गई। अगली कार से उतरकर युवक के पिता ने मुझे संबोधन करते हुए कहा, 'मेरे बेटे का मकान देखिए—हमने अभी-अभी खरीदा है।'

मैं कार से उतर पड़ा। जॉन, कैरोल और जॉन की मा भी उतर पड़ीं। अन्य छोटे घरों की भाँति यह घर भी लकड़ी का था। नीचे रसोई और बैठक, पहली मंजिल पर दो शयनागार, और नीचे तहखाने में एक बड़ा कमरा जिसमें एक ओर घर गर्म करने की कलें लगी थीं, दूसरी ओर खाने का सामान रखने के लिए एक डीपफ्रीज था (जिसमें रखे मटर के डिब्बों और शराब की बोतलों पर बर्फ सफेद पर्ते चढ़ रही थीं), और बाकू

खाली था। पिता ने गर्व से कहा, 'इस कमरे में पार्टी का प्रबन्ध आसानी से हो सकता है। कुछ दिन पहले मेरे बेटे ने यहाँ एक पार्टी दी थी, तभी की झंडियाँ आप देख रहे हैं।' मैंने लक्ष्य किया, तहखाने की दीवारों पर स्थान-स्थान पर निरावरण युवतियों के रंगीन चित्र लगे हैं जो संभवतः पत्रों में से लिए गए हैं।

तहखाने की सीढ़ियों से ऊपर आकर, बैठक में प्रवेश करते हुए मैंने पिता से कहा, 'घर बहुत सुन्दर है। आपका बेटा सचमुच बड़ा भाग्यवान है।' पिता ने मुस्कराकर मेरी ओर देखा और बोला, 'मेरा बेटा बहुत भला लड़का है। उसे इससे कहीं अच्छी नियामतें मिलनी चाहिए।' पिता के प्यार और गर्व की वह नजर, जो इन शब्दों के साथ उसकी आँखों में आई, मुझे सदा याद रहेगी।

बेटे ने तब तक रसोई में शराब के जाम भर दिए थे—और शीघ्र ही मेरे हाथ में भी एक जाम आ गया। हम सबने मिलकर आनेवाले बच्चे के प्रति सदिच्छाएँ प्रकट कीं और जाम पिए। शराब बहुत तेज और कड़वी थी, सो आधे घूँट से अधिक मैं नहीं पी सका—वह भी इसलिए कि शिष्टाचार के अनुसार यह आवश्यक था।

कुछ ही देर बाद हम गाड़ी में थे, गाड़ी सड़क पर थी, और सड़क हमें मैनहैटन की ओर ले जा रही थी। कैरोल ने कहा, 'हमने फैसला किया है कि आज की रात और कल का दिन आप हमारे साथ ईस्ट पेटर्सन में बिताएँ।' जॉन की मा ने कहा,

'आपको टूथ-ब्रश और सोने के लिए क
की आवश्यकता होगी, सो हम पहले अ
घर चलेंगे, फिर वहाँ से ईस्ट पेटर्सन।'
कार का पहिया घुमाते हुए जॉन ने
'हम शनिवार को रात को रविवा
समाचार पत्र लेने मैनहैटन जाते हैं,
सबसे पहले किराए के लिए खाली घरे
दरवाजा खटखटा सकें। पिछले चा
महीनों से हमारा यही कार्यक्रम च
रहा है, मगर अभी तक हमें सफलता
मिली। मैनहैटन में फ्लैट किराए
मिलना आसान नहीं है।

स्लोन-हाउस जाने से पहले
सड़क और मैडीसन एविन्यू पर जॉन
जगह कार खड़ी की और समाच
खरीद लाए। कार की बत्ती जलाकर
मकानों के विज्ञापन पढ़े, और फिर
देखने गए। पता चला, वह मका
गया है।

स्लोन-हाउस से मैंने अपना
लिया और कार बारहवें एविन्यू प
गई। मैनहैटन द्वीप के पश्चिमी किन
यह सीधी और चौड़ी सड़क आगे
हेनरी हडसन पार्क-वे कहलाती है।
कारें एक विशेष गति से कम न
सकतीं—सो हमारी कार भी तेजी से
बढ़ने लगी। और ४५ मिनट की य
बाद १७९ वीं सड़क पर आकर हमारी
बाईं ओर मुड़ी—तो रात के
असंख्य बत्तियों से जगमगाता हडसन
पर बना जार्ज वाशिंगटन पुल हमारे
था—संसार का दूसरा सबसे बड़ा

वाला पुल।

सड़क के दोनों ओर से उठते हुए ऊंचे हे के स्तून और उनसे बना ऊँचा दर-जा जिसमें से लोहे के रस्से लटके पुल के तल को उठाते हैं। चौड़ी सड़क पर अन-नत दौड़ती मोटरें और बसें और चारों र बत्तियों की जगमगाहट। आखिर जब पुल के पार पहुँचे, तो सड़क के आर-र अनगिनत दरवाज़े बने थे जिनमें से येक में से एक मोटर गुजर सकती थी—र प्रत्येक दरवाज़े के पास एक सिपाही ड़ा था। जॉन ने जेब से आधा डालर काला, कार की गति ज़रा धीमी की, धा डालर सिपाही को पकड़ाया, और र गाड़ी आगे बढ़ा दी।

ईस्ट पेटर्सन में पहुँचकर जॉन ने मा को के घर छोड़ा और फिर हम लिंकन वेन्यू पर आए–जहाँ सड़क के दोनों ओर ो घास की जमीन से घिरे लकड़ी के गिनत घर थे। कार खड़ी कर जॉन एक घर के दरवाज़े के बाहर लटकी हुई हे और शीशे की लालटेन-नुमा बत्ती को न दबाकर जलाया, और दरवाज़ा खोल या।

यहां के अधिकतर घरों की भाँति यह मी लकड़ी का था और इसका फ़र्श मोम पालिश से चमक रहा था। मुख्य दर-जे के अन्दर बाईं ओर ऊँची छत वाली क थी, जिसमें एक तरफ मेज़ पर लगभग फुट लम्बा पानी के जहाज़ का एक डल रखा था। बैठक के साथ ही रसोई र खाने का कमरा था। दाहिनी ओर का भाग दो-मंज़िला था, निचली मंज़िल बैठक के भाग से ज़रा नीचे और ऊपर की मंज़िल बैठक की छत से कुछ ऊँची–यानी बैठक इन दो मंज़िलों के बीचोंबीच ऊँचाई पर थी, जबकि निचली मंज़िल सड़क की सतह पर थी। फलस्वरूप गृहिणी को बैठक व रसोई से ऊपर के शयनकक्षों में जाने के लिए आधी सीढ़ियाँ ही चढ़नी पड़ती हैं—और नीचे जाने के लिए भी आधी ही सीढ़ियाँ, और इस प्रकार घरेलू काम में शक्ति-ह्रास कम से कम होता है।

सोने से पहले जान ने रसोई में रखे रेफ्रिजेरेटर में से दूध की बोतल निकाली और दो गिलास भर दिए—जिनमें से एक को मैं गट कर गया। चीनी के बिना दूध की स्वाभाविक मिठास का मजा आ गया। फिर हम सोने के लिए ऊपर के कमरों में चले गए।

जिस कमरे में मेरे सोने का प्रबन्ध किया गया, वह जॉन की बहन के बच्चों कमरा था। दो बड़े-बड़े बिस्तर थे, दीवार के अंदर कपड़े लटकाने वाली एक अलमारी थी, पढ़ाई करने के लिए एक मेज़ और दो कुर्सियाँ थीं–और दाईं ओर ऊँचाई पर पुस्तकों के लिए एक आला था।

लेटते ही मुझे नींद आ गई। आंख खुली, तो घड़ी में छः बज रहे थे और बाहर प्रातः की सुखद समीर के झोंके आ रहे थे।

उठकर मैं नहाने गया। गुसलख़ गुलाबी था—गुलाबी टब, गुलाबी हाथ का बेसिन, गुलाबी कमोड, दीवारों फ़र्श पर गुलाबी टाइलें। और तो

तौलियों का रंग भी गुलाबी ही था। केवल नल और फव्वारा चमकते हुए क्रोमियम के थे। लकड़ी के घर में यही एक स्थान पक्का था।

नहा-धोकर मैं नीचे बैठक में आ बैठा और कुछ देर तक समाचार पत्र पढ़ता रहा। लगभग आठ बजे जॉन और कैरोल भी नीचे उतर आए और दोनों ने मिलकर मुझे सारा घर दिखा डाला।

घर में मुझे जो जगह सबसे दिलचस्प लगी, वह थी रसोई। बिजली की इस रसोई में सभी काम सरल था। बटन दबाकर तीन चूल्हों में से किसी को भी जलाइए और उस पर जो इच्छा हो रख दीजिए। बेसिन में गर्म और ठंडे पानी के नलों को खोलिए और पानी भर लीजिए। नीचे अलमारी का एक पट खोलिए-आप से आप कूड़े का टीन बाहर निकल आएगा और उसका ढक्कन भी खुल जाएगा। पट बन्द कीजिए—कूड़े के टीन का ढक्कन बन्द हो जाएगा और वह अन्दर जाकर अदृश्य हो जाएगा। बेसिन के पास प्लेटें धोने की मशीन का ढक्कन खोलकर प्लेटें तारों के जाल में फंसा दीजिए, गिलास प्यालियाँ यथास्थान लटका दीजिए। ढक्कन बन्द करके बटन दबाइए—और निश्चिन्त होकर ड्राइंग-रूम में सोफे पर जा बैठिए। प्लेटें आप ही धुल जाएँगी, निचुड़ जाएँगी।

कैरोल ने एक लोहे का चौकोर डिब्बा सा दिखाया, जिसके ऊपर एक घड़ी लगी थी और सामने का पट शीशे का था। कैरोल ने कहा, "इसमें सुबह के समय रात को पकाने की चीज रख दो और घ सुइयों को ठीक कर दिया। बस, ठ ठीक समय पर आंच आरम्भ हो जाए और जितना समय आपने चाहा उतने समय रहकर आंच बन्द हो जा आप शाम को दफ्तर से लौटें, तो तैयार है। प्लेटें लगाकर मेज पर लगा दीजिए—और काम खत्म।"

मैंने कहा, "तभी जॉन की बहन बड़े घर का प्रबन्ध भी करती हैं और में भी पढ़ाती हैं।"

कैरोल उत्तर में मुस्करा दी। व "कॉफ़ी पी लीजिए, तो आपको एक चीज दिखाऊँगी।"

रसोई में ही पड़ी मेज पर बैठकर तीनों ने नाश्ता किया। फिर दाईं चार-छै सीढ़ियाँ नीचे उतर कर मैंने के बहनोई, दाँतों के डाक्टर, श्री नॉरिस दवाखाना देखा जिसके तीन चार कमरे इन कमरों के साथ एक और कमरा जिसमें दो मशीनें लगी थीं—एक कपड़े के लिए और एक कपड़े सुखाने के लि मेरी हैरानी का अंदाज आप खुद ल सकते हैं, जब कैरोल ने देखते ही देखते पतला गद्दा धोने वाली मशीन में डाल धोया, और सुखाने वाली मशीन में डाल सुखा दिया।

जॉन और कैरोल ने मिलकर ला बनाया; मटरों के चावल बनाकर मैंने उनके कार्य में योगदान किया।

कुछ दिनों बाद एक दिन फिर मैं इ घर में आया तो डाक्टर नॉरिस व उनक

व बच्चे वाशिंगटन से लौट चुके थे। र नॉरिस ऊँचे कद के, अधेड़ उम्र, कुछ से व्यक्ति हैं। वियेना में पढ़े हैं और परिश्रम के बूते पर ही आज वह एक दाँत-डाक्टर हैं। मुझे यह जानकर र्य हुआ कि डाक्टर नॉरिस व उनकी , दोनों ने मिलकर अपने इस घर का बनाया है और इसे बनाने में भी का बड़ा हाथ है।

परिचय के बाद हम सबने बड़ी मेज पर र नाश्ता किया। फिर जॉन ने कहा, बर्फ लेने जा रहे हैं, आप भी हमारे चलें।"

ो मोटर में बैठकर मैं, जॉन और डा० स बाजार गए। न्यूयार्क शहर की तरह भी एक बहुत बड़ी दूकान है, जहाँ से र नॉरिस ने कुछ चीजें खरीदीं। लौटते समय हम पेट्रोल पम्प के पास क लकड़ी के कमरे के नजदीक आकर ए। कार से निकलकर जॉन ने उस कमरे के बाहर लगी एक कल में कुछ के डाले—एकाएक कमरे के निचले कोने हे का एक किवाड़ खुल गया। जॉन ने र किवाड़ सरकाया और अंदर से मोटे त का एक बड़ा-सा थैला बाहर निकाल । इसी तरह एक और थैला निकाला, दोनों थैलों को खोलकर, उनमें भरे बर्फ टे-छोटे टुकड़ों को मोटर में पड़े आइस- ड में भर दिया। और फिर हम घर आये।

घर आकर मैं डाक्टर नॉरिस के बच्चों के बातचीत करता रहा। बारह वर्ष का लड़का मॉरीस और सात वर्षीया लड़की पामेला—दोनों बड़े सभ्य बच्चे हैं। लड़के ने कुछ देर बातचीत की और फिर वह टेलीवीजन देखने में इतना मस्त हो गया कि उसने केवल खाने के समय ही सुध ली। मगर पामेला देर तक मेरे साथ बातें करती रही।

"तुम कौन से स्कूल में पढ़ती हो ?," मैंने पूछा।

"मेरा स्कूल बहुत अच्छा है", पामेला ने मेरे पास खड़े होकर कहा। "हम वहाँ प्रार्थना करते हैं, खेलते हैं, गाना गाते हैं।"

"अच्छा, तब तो तुम्हें नाच भी आता होगा ?" मैंने अपनी आँखें बड़ी करके कहा।

"तुम नाच देखोगे ?" पामेला ने गर्दन एक ओर झुकाकर भोलेपन से कहा। "मैं बहुत से नाच और गाने जानती हूँ।"

मेरे हामी भरने पर उसने मुझे दर्जन-भर नाच दिखाए। हाथ उठा कर झूमते हुए उसने मनगढ़ंत गाने गाए, "माँ बड़ी खराब है, पापा के साथ बाहर घूमने जाती है, हमें नहीं ले जाती।" और "मेरा भाई और मैं सैर करने गए, दूर बहुत दूर, जहाँ भालू हैं, शेर हैं, हाथी हैं, बन्दर हैं—और मेरे भाई ने और मैंने आइसक्रीम खाई।" और, "मेरी सहेली एलिस बड़ी अच्छी है और रॉबर्ट बड़ा शैतान है—"

फिर जब बहुत से नाच दिखा चुकी, तो बोली, "तुम्हारे घर में कोई लड़की है ?"

मैंने कहा, "मेरी तीन बरस की बिटिया है। तुम मेरे साथ दिल्ली चलो, तो उसके साथ खेल सकती हो।"

"नहीं, मैं तो मामा-पापा के साथ ही रहूँगी। हाँ, मेरे स्कूल की अध्यापिका कहती हैं, दूसरी छोटी लड़कियों को कुछ भेंट देनी चाहिए।" फिर कुछ देर सोचकर बोली, "मैं अभी आती हूँ।"

जब वह लौटी, तो उसके हाथ में बालों में लगानेवाले छोटे-छोटे दो क्लिप थे। इन्हें मेरे हाथ में रखकर बोली, 'घर जाओगे, तो अपनी बच्ची को ये उपहार दे देना। भूलना नहीं—हाँ। कहना, पामेला नॉरिस ने दिए हैं।'

मैंने इन्हें अपने बटुए में रख लिया और बोला, 'देख लो, मैंने ध्यान से रख लिए हैं। धन्यवाद।'

दोपहर के समय हम सब दवाखाने में बैठ गए और टेलीवीजन देखने लगे। अमरीका के राष्ट्रीय खेल 'बेस-बाल' का प्रोग्राम आ रहा था और जॉन और डाक्टर नॉरिस खेल की बारीकियों पर बहस कर रहे थे। मैं जिस तरह भारत में क्रिकेट के खेल से अनभिज्ञ हूँ, उसी भाँति यहाँ भी बहस को समझने का प्रयत्न करते हुए उनका मुँह ताकता रहा।

शाम को गर्मी कुछ कम हुई, तो घर के बाहर घास की टुकड़ी पर चहलकदमी करते हुए जॉन ने कहा, 'आप देख रहे हैं कि घरों के आसपास मेड़ें अथवा दीवारें यहाँ नहीं हैं। अंग्रेजों के विपरीत अमेरिकन दूसरों से बातें करना पसन्द करते हैं और इसलिए आदान-प्रदान के दरवाजे सदा खुले रहते हैं।'

रात को साढ़े नौ बजे डाक्टर नॉरिस को, बच्चों को, और कैरोल को छोटी-छोटी भारतीय चीजें उपहार में देकर मैं वि[illegible] हुआ। जॉन मुझे मोटर में छोड़ने आए। जब जार्ज वाशिंगटन पुल पार करके दूसरी ओर पहुँचे तो मैंने कहा, 'जॉन, मुझे आपसे एक अनुरोध करना है।'

'कहिए।'

'पहले वादा कीजिए कि मानेंगे।'

'जरूर मानूँगा।'

'तो मुझे यहीं, १७९ वीं सड़क के 'सब-वे' स्टेशन पर छोड़ दीजिए। आपको मुफ्त में १४१ सड़कें पार करनी पड़ेंगी और मुझे 'सब-वे' से बिलकुल कष्ट नहीं होगा।'

कुछ देर चुप्पी के बाद जॉन [illegible] बोले, 'जैसी आपकी इच्छा—' और [illegible] घूमकर स्टेशन के अन्दर जानेवाली [illegible] के पास आकर रुक गई।

सड़क पर इस समय काफ़ी मोटरें [illegible] जा रही थीं, मगर चारों ओर के [illegible] सड़क की बत्तियों के प्रकाश में [illegible] खामोश खड़े थे। इक्का-दुक्का [illegible] पटरी पर चलता दिखाई दे रहा था।

जॉन ने कार से निकलकर [illegible] हाथ मिलाया। बोले, 'आशा है, [illegible] पहले हम एक बार फिर मिलेंगे।'

मैंने कहा, 'आपने और कैरोल ने [illegible] लिए काफ़ी कष्ट उठाया। धन्यवाद!'

'धन्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं,' जॉन बोले। 'आपके देश में हमें [illegible] आतिथ्य प्राप्त हुआ है, उसका [illegible] भी हम नहीं दे सके। आशा है, [illegible] मिलेंगे।'

'टच-टे' स्टेशन की सीढ़ियाँ उतर
पंद्रह सेंट का टोकन लेकर दरवाज़े
में डालकर मैं अन्दर चला गया।
ान हब्शी जोड़ा एक बेंच पर बैठा
क गोरी बूढ़ी नारी अँटेचों को सामने
घ रही थी। एक किशोरी गोरी
लि में रूमाल बाँधे, लिपस्टिक लगे
ो सीटी बजा रही थी।

काएक गड़गड़ाहट की आवाज़ के साथ
ी प्लैटफ़ॉर्म पर आ गई। गाड़ी के
ी उसका दरवाज़ा खुल गया। इक्के-
यात्री उतर पड़े। मैं अन्दर जाकर
र बैठ गया। मेरे सामने एक बूढ़ा
फटे कपड़ों में सिमटा ऊँघ रहा था।
ाड़ी के दरवाज़े बन्द हुए और गाड़ी
वीं सड़क के प्रकाशमान स्टेशन से
र अँधेरी सुरंग में दौड़ने लगी।

और इसके बाद, चाहते हुए भी हमारी
' हो सकी—लेकिन जॉन और कैरोल
न्यवाद दिए बिना मुझे न्यूयार्क से
ाना नागवार गुज़रा। मैंने फ़ोन करके
से अलविदा कही। लगभग ५० मील

को दूरी से तार पर जॉन की आवाज़ आई-
'भगवान तुम्हारे साथ रहे।'

मुझे याद आता है, न्यूयार्क के ब्राडवे
("दि ग्रेट व्हाइट वे"—महान उज्वल मार्ग)
का प्रसार जनसमूह—जिसमें दर्शक भी हैं,
अभिनेता भी हैं, नाटककार भी हैं, और
नाटक में काम करने के इच्छुक किशोर,
युवक और अधेड़ स्वप्नद्रष्टा भी। पुरुषों व
स्त्रियों की वह भीड़ मैं आज भी नहीं भूल
सका, जो टाइम्स स्क्वेयर के चारों ओर
शाम से लेकर आधी रात तक जमी रहती
है। सिनेमा-घरों की चकाचौंध पैदा करने-
वाली बत्तियों का प्रकाश, सिगरेट के विज्ञा-
पनों में चित्रित आदमी के गोल मुँह से
निकलनेवाला निरन्तर धुआँ, पेप्सी कोला की
बोतल और उसका पड़ा ढक्कन, एडमिरल
टेलीविज़न पर बिजली का इश्तहार, टाइम्स
भवन के ऊपर बिजली का चलता अख़बार
जिसे आप पटरी पर खड़े होकर घंटों पढ़
सकते हैं। और इन सबके बीच नाटक के
संसार की लौ पर मँडरानेवाले पतंगे—
हज़ारों युवक और युवतियाँ, उनकी इच्छाएँ
और आकांक्षाएँ। (अगले अंक में समाप्त)

अटूट धागा

वठक महिना मे ऐसे भारी हलो का उल्लेख है जिनमे प्रत्येक को खीचने के लिए २४ बैलो की आवश्यकता होती थी । कुतुब मीनार के निकट मेहरौली मे एक ऐसा लौह स्तम्भ है जिसकी रासायनिक शुद्धता के कारण उस पर कभी भी जग नही लगता । अशोक कालीन स्मारक हमे अपनी खुदाई और पालिश करने की विलक्षण कला और विशालकाय एकहरी शिलाओ को दूर दूर तक पहुँचाने की अद्भुत क्षमता की याद दिलाते है । ये और हमारी कई प्राचीन कलाये व शिल्प समय के साथ विलुप्त हो गई, पर हाथ करघा द्वारा वस्त्र बुनने की कला शताब्दियो से चली आ रही है और अपना गौरव अक्षुण्ण बनाये हुए है ।

* टिकाऊ
* सजावटी
* विशिष्ट

हा थ क र घा व स्त्र

भारत के गौरव चिन्ह

निर्यात के लिए हाथकरघा वस्त्रो पर शीघ्र ही क्वालिटी का चिन्ह और मुहर लगा दी जायेगी । अधिक विवर लिए कृपया लिखिये :—

अखिल भारतीय

हमारी रानी माँ

हमारे पड़ोस में एक छोटा सा
इस में रानी माँ रहती है।
अपनी छत पर खड़े होते हैं
आँगन में रानी माँ को चर्
कातते देखते हैं। कभी से

एक दिन मैं ऊपर खड़ी
बाल सुखा रही थी कि
माँ पर पड़ी। चरखा सामने
लेकिन रानी माँ कात नहीं
ने सोचा चलो दोनों मिल
आपबीती और कुछ जगबीती
करेंगे। रानी माँ के पास पहुँची तो उस ने पीढ़ो आगे खिसका
"अब मैं इतनी भोली भी नहीं जो इस बात को सच समझ बैठूँ कि रूस ने
आसमान पर नया सितारा चढ़ाया है जिस में एक कुत्ता भी बंद है"।

मैं ने रानी माँ को स्पूटनिक और लायका के बारे में कुछ बताया तो उस ने दां
उँगली दबा ली। "भगवान तुम्हारा भला करे," उस ने कहा, "अब पूरी तरह स्वच्छ
मोटी बुद्धि की हूँ, जरा देर से समझती हूँ।"

यह बात तो नहीं कि रानी माँ मोटी बुद्धि की है। बच्चे जब अपना पाठ ऊँचे ऊँचे
तो उन से सवाल पूछ पूछ कर आप भी बहुत कुछ सीख गई है। दूसरी औरतों की त
कि लकीर की फ़क़ीर बनी रहे।

अब उस दिन की बात है। मैं बाजार
जा रही थी कि रानी माँ ने कहा,
"बेटी तकलीफ़ न हो तो मेरे लिए
कपड़े धोने का साबुन ले आना।"
मैं अपनी आदत से मजबूर सनलाइट

ले आई। अब रानी माँ ने साबुन देखा तो खिलखिला कर हँस पड़ी। कहने लगी, ,हमारे घर में कौन रेशमी कपड़े पहनता है जो तुम इतना मँहगा साबुन उठा लाई!" लेकिन रानी माँ, हम तो अपने घर के सभी कपडे सनलाइट ही से धोते हैं।" रानी माँ देर चुप रही। फिर बोली, "बेटी तुम तो जानती हो हम लोगों की हालत, अब में इतनी ताक़त कहाँ जो ऐसे ी साबुन से कपड़े धोयें।"

रानी माँ की तसल्ली करती कि ३ बुलावा आ गया। मैं बाद को का कह कर चली आई, मगर काम सी उलझी कि फ़ुरसत न मिली। ापहर ढले दरवाज़े पर खटखट की ज़ सुनी। दरवाज़ा खोला तो े रानी माँ खड़ी थी। मुझे देखते नरी बलायें लेने लगी, "भगवान ारा भला करे, यह साबुन तो न का है। ज़रा आ कर देखो तो !"

े ने देखा तो रानी माँ के आँगन ाफ़ सफ़ेद उजले कपड़ों की क़तारें ी दुलहन की बरात नज़र आती थीं। रानी माँ ने मेरे कान में कहा, "इतने कपड़े धो ा फिर भी साबुन कुछ बाकी पड़ा है ... इस हिसाब से तो मैं कहूँगी कि यह साबुन कोई ा नहीं, बिलकुल मँहगा नहीं, बल्कि सस्ता है।"

ानी माँ ने बैठते हुये पूछा, "एक बात बताओ बेटी, यह तो मैं ने सुन रखा था कि सनलाइट कपड़े धोते वक़्त पीटने पटकने की कोई ज़रूरत नहीं। इस लिए मैं ने सारे कपड़े इस झाग में ही मल मल के धो लिए ... बड़े साफ़ और उजले धुले हैं ... हाँ तो मैं यह ानना चाहती थी कि सनलाइट में ऐसी कौन सी बात है कि जो यह इतने काम का साबुन है?"

मैं ने कहा, " रानी माँ सनलाइट एक बिलकुल शुद्ध साबुन है, जिस के कारण यह बहुत पूर झाग देता है, और वह भी ऐसा जो कपड़े के ताने बाने में छिपा मैल बाहर निकाल लाये।"

"ओह! अब समझी क्यों इस से कपडे इतने साफ़, उजले और जल्दी धुल जाते हैं और इन में से स्वच्छता की भी आती है।"

थोडी देर चुप रह कर बोली, "अच्छा अब क्या बातें करें? अब तो मेरे ... ही फ़ुरसत है।"

विवाह : एक समाजशास्त्रीय पर्यवेक्षण : ६४ वें पृष्ठ का शेषांश

ईरान तथा मिश्र के शाही खानदानों में ऐसी अनेक शादियाँ हुई थीं। अन्यत्र भी कुछ शाही परिवारों में भाई-बहिन का विवाह ही आपस में रक्त की पवित्रता सुरक्षित रखने के लिये सर्वोत्कृष्ट समझा जाता था।

बर्बर समाज की प्रारंभिक स्थिति में नारी और मा का शासन कुछ समय तक था। कुटुम्ब तथा परिमित आदिम संघ से समाज बड़े-बड़े समुदायों की सृष्टि की ओर आगे बढ़ा। मा या नारी के अधिकार का विनाश हुआ और पितृसत्ताक समाज का प्रारम्भ। पुरुष इससे पूर्व भी जीवन-यापन के साधनों में हिस्सा बँटाता था, किन्तु अब वह खेतीबारी में काम आनेवाली चीजों और जमीन का एकमात्र स्वामी बन गया। पालतू पशुओं ने उसकी संपत्ति में चार चाँद लगा दिये। पशुओं और खेती की ब
उपज के बदले में अर्जित दास-द
उसकी संपत्ति के नये अंश बने। द
तथा वित्तअर्जन शक्तिशाली पुरुष के
रहा। स्त्री का अधिकार उनके
तक ही सीमित था, वह उनकी स्व
नहीं हो सकती थी। जांगल युग के
साहसी तथा शिकारी होते हुये भी
आधिपत्य में रहते थे, यद्यपि वे ब
असभ्य तथा निर्दय होते थे। बर्बर
का मनुष्य यद्यपि कुछ भावुक हो च
किन्तु वह अपनी शक्तिपूर्ण स्थि
अवगत था। उसने संपत्ति पर पूर्ण अ
कर स्त्री को अपने अधीन कर ि
श्रम-विभाजन जो स्त्री और पुरुष में
उससे गृह कार्य और शिशु-पालन की

आधुनिक रूमानियन प्रस्तर शिल्प की एक छवि

कम हो गई और कृषि एवं पशु-पालन का महत्त्व बढ़ गया। सभी तरह पुरुषका अधिकार स्त्री से अधिक समझा जाने लगा। स्त्री केवल घर से ही संबद्ध रह गई। क्रमशः उसका स्थान पहले से निम्नतर होता गया, यद्यपि गृह-कार्य के परिश्रम तथा काम के घंटों को देखकर स्त्री का कार्य किसी प्रकार पुरुष से कम न था। मनुष्य ने उत्पादन के साधनों पर अपना अधिकार कर लिया; अतः कुटुम्ब पर अपना अधिकार बनाये रखने में जो बाधायें थीं, वे दूर हो गईं। मातृ-सत्ता तथा नारी का अधिकार क्षीण हो गया और पुरुष बिना किसी अवरोध के सर्वेसर्वा बन गया। वैयक्तिक संपत्ति के निर्माण का क्रम प्रारंभ हो चुका था और आदिम साम्यवादी समाज का अवसान। स्त्री ने पूर्णतया स्वयं को पुरुष की अधीनता में छोड़ दिया तथा युग्म विवाह की परम्परा इसी समय से प्रारम्भ हो गई। किन्तु पति की मृत्यु के बाद पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी। न होने के कारण स्त्री का यौन संबंध केवल एक पुरुष से हो यह पक्ष बहुत ही प्रबल हो गया, पर पुरुष स्वेच्छा से अनेकों स्त्रियों से सम्बन्ध बनाये रहा। पितृसत्ताक समाज में स्त्री एवं पुरुष के यौन सम्बन्ध में ही नहीं, प्रत्युत अन्य सामाजिक बातों में भी परिवर्तन हुए। इसी समाज में हम जाति एवं वर्णभेद का प्रारम्भ मानते हैं और इसी समाज में आधुनिक विवाह संस्था की नींव भी पड़ी थी।

सभ्य समाज का अर्थ यहाँ आदर्शवादी 'सर्वभूतहिते रतः' समाज नहीं ले रहे हैं। पितृसत्ताक समाज की नींव ही स्वार्थ पर रखी गई थी, उसी समय व्यक्तिगत सम्पत्ति को अनेकगुना बढ़ाने का क्रम प्रारम्भ हुआ था। 'सभ्यता समाज के विकास की वह पीढ़ी है जहाँ कार्य का विभाजन परिणामतः वस्तुओं के उपभोग एवं सम्पत्ति के उत्पादन को एक हाथ में सौंप देता है, और जब वे उच्चतम धरातल पर पहुँच जाते हैं तब समाज में हर प्रकार की क्रांति उत्पन्न कर देते हैं।' बड़े तथा छोटे आदिम साम्यवादी समुदायों में संपत्ति का उत्पादन सामूहिक था एवं उसका उपभोग भी वस्तुओं के तदनुकूल समान वितरण से होता था। यह उत्पादन सामान्यतया बहुत परिमित स्तर पर होता था किन्तु श्रमिक उत्पादन के साधन तथा सम्पत्ति दोनों के स्वामी होते थे। वे अपने श्रम का फल-उपभोग करते थे। वह इनके हाथों के बाहर नहीं जाता था। जब तक उत्पादन इस प्रकार होता रहा, वह श्रमिकों के अधिकार से बाहर नहीं गया और उनके विपरीत किसी बाहरी शक्ति को भी उत्पन्न नहीं कर सका।

सभ्य समाज चार भागों में विभक्त किया जा सकता है :—(१) दासता (२) सामन्तवाद (३) पूँजीवाद (४) समाजवाद या साम्यवाद।

दासता के युग में व्यक्तिगत संपत्ति बढ़ जाने पर जहाँ एक ओर उसकी देखरेख तथा सुव्यवस्थित आयोजन के लिये कुछ व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी, वहाँ दूसरी ओर संपत्तिशाली पुरुषों को गरीब नर-नारी दास-दासियों के रूप में उपलब्ध भी थे।

श्रीनिवास पाठक

ये दास-दासियाँ पशुओं की तरह उनकी संपत्ति समझे जाते थे जिनका कि वे क्रय-विक्रय भी कर सकते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि सभ्यता के विकास ने मनुष्य को धनी, बुद्धिमान तथा शक्तिशाली बनाया, किन्तु (वह स्वार्थी वृत्ति जिसके आधार पर मनुष्य ने इसका निर्माण किया) उसने इसे मानवीय गुणों से रहित भी कर दिया। गुप्त विवाह तो पहले ही प्रारंभ हो गया था। यूरोप के तत्कालिक कबीलों में इसका अच्छी प्रचलन था। इस प्रथा ने मनुष्य को बहु-पत्नी-भोग भी से नहीं रोका। दासत्व के युग में स्वामी अपनी दासियों का भी यौनसुख के लिये उपभोग करते थे। एशिया महाद्वीप के कबीलों के संबंध में भी इस प्रकार के कोई प्रमाण नहीं कि विवाह केवल एक ही स्त्री के साथ सम्पन्न होता था। यहाँ भी बहुपत्नी-प्रथा थी। हिन्दुओं, ईरानियों तथा चीनियों के प्राचीन साहित्य तथा कथानकों में हमें बहु-विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस्लाम धर्म ने एक समय में ही चार पत्नी रखने की आज्ञा दी है, किन्तु दासियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अवरोध नहीं है। कृष्ण के रनिवास में भी तो १६१०८ रानियाँ थीं।।

सभ्यता के इस युग में स्त्री की ओर जो प्रेम या आदर-भाव था, वह इसलिये नहीं कि उसे समान स्थान प्राप्त था, प्रत्युत इसलिये कि वह उपभोग्या थी।

कुटुम्ब में भी पुरुष का प्रभुत्व होने के कारण लड़कों को लड़कियों के स्थान पर अधिक महत्व दिया जाने लगा। ऐसा हमें आजकल भी देखने को मिलता है। ल[...] के जन्म पर विशेष उत्सव तथा आ[...] प्रमोद का विधान होता है, किन्तु ल[...] की उत्पत्ति पर एक विशेष प्रकार की उ[...] छाई रहती है। माताओं में भी ([...] ऐसा भेद न करना चाहिये) [...] की भावना रहती है। राजपूतों में कु[...] तथा लड़कियों के जन्म समय में [...] उनके मुख तथा नासिका रंध्रों पर [...] जाता था, जिससे उनकी मृत्यु हो [...] थी। यदि परिवार में अधिक सदस्य [...] तो बड़ा व्यक्ति संयुक्त परिवार का [...] होता था। उससे इस बात की अपेक्षा [...] जाती थी कि वह सबसे समान व्यव[...] करे। इस समय मनुष्य का स्त्री के [...] मैथुन पशुवत् ही था। केलीफोर्निया के [...] निवासी तो गत शताब्दी तक इसी [...] स्थिति में रहे हैं। अमेरिका के [...] जाति के लोग न केवल अपनी बहिनों के [...] साथ, प्रत्युत अपनी माँ तथा सन्तान के [...] भी मैथुन करते थे। कादियक भी [...] बहिन, माँ तथा सन्तान के साथ मैथुन [...] थे। कैरिब अपनी माँ तथा लड़कों से [...] यौन-सम्बन्ध कर लिया करते थे। [...] के प्राचीन निवासी भी माँ-बहिन से [...] बीच विवाह करते थे।

संसार के बहुत से भागों में [...] तथा सम्मानित पुरुष नई बहू को [...] रात अपनी सेवा में बुलाते थे। [...] केवल दासता के युग में ही नहीं, [...] अभी तक चलता था। यूरोप के [...] जमींदार इसके समर्थक थे। भारत में [...]

दासता के युग में कोई भी स्त्री रजोदर्शन के पश्चात् अपनी काम-लिप्सा की तृप्ति के लिये किसी भी पुरुष के पास जा सकती थी। महाभारत की शर्मिष्ठा और ययाति की कहानी प्रसिद्ध ही है।

ऐसा ही नहीं, प्रत्युत ऐसी स्त्री की प्रार्थना ठुकराने पर पुरुष बहुत बड़े पाप का भागी समझा जाता था। शायद जन संख्या की वृद्धि के लिये ही उस समय वह प्रथा प्रचलित थी। उलूपी ने अर्जुन से इसी प्रकार की प्रार्थना करते हुए कहा था कि यदि स्त्री प्रार्थना करे तो उसके साथ एक रात्रि का सहवास पाप नहीं है। गुरुपत्नी के साथ ऐसा आचरण यद्यपि बुरा माना गया था, किन्तु उत्तङ्क से ऐसी ही याचना गई थी।

स्पष्ट है कि वैवाहिक संस्था जैसी आज है, वैसी सर्वदा नहीं चलती रही। भारत में आजकल विवाह पवित्र संस्कार माना जाता है, किन्तु प्राचीन ग्रंथों को देखने से लगता है कि सर्वदा ऐसा नहीं था। दासता-युग में उत्तर कुरु में विवाह की प्रथा न थी। उत्तरकुरु प्रदेश की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ संशय-सा हो जाता है, किन्तु कतिपय प्रमाणों के आधारपर उत्तरकुरु वह प्रदेश है जहाँ भारत में प्रवेश करने से पूर्व आर्य लोग रहते थे। शायद वह पामीर का सप्तसिन्धु ही है। स्त्री यहाँ पूर्णरूपेण स्वच्छन्द तथा स्वतंत्र थी एवं यहाँ विवाह का बन्धन नहीं था।

जब समाज का अनेक स्वार्थी प्रजातियों तथा उपजातियों में विभाजन हुआ तथा धनी वर्ग के हाथ में समाज की सत्ता पहुँची, तब स्त्री को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। ग्रामों तथा नगरों का निर्माण हुआ तथा ग्रामीण एवं नागरिक जीवन में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। पुरुष चूंकि बहुत शक्तिशाली हो गया, अतः उत्तराधिकार उसी को प्राप्त होने लगा। स्त्री केवल आनन्दोपभोग की वस्तु तथा संतान उत्पन्न करने की जीती जागती मशीन-मात्र रह गई। होमर में हमें यही वर्णन प्राप्त होता है कि नववयस्का बालाएं लूट का एक बड़ा खजाना समझी जाती थी, तथा श्रेष्ठ सुन्दरियाँ सेनाध्यक्ष के उपभोग में आती थीं और दूसरी स्त्रियाँ उत्तरोत्तर अपने पद के क्रम से बाँट ली जाती थीं। इलियड का कथानक एचीलस के युद्ध से संबंधित है, जो इसी प्रकार की एक दासी से सम्बन्ध रखता है।

महाभारत में इस प्रकार के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं कि यौन सम्बन्ध की कोई कड़ी व्यवस्था न थी। एक व्यक्ति दूसरे की स्त्री को मैथुन के लिये ले जा सकता था। उद्दालक ऋषि की पत्नी किसी दूसरे ऋषि के द्वारा कामतृप्ति के लिये उनके सामने ही जा रहीं थीं, किन्तु उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने इसका विरोध किया, जिस पर उसके पिता ने उसे अनुशासित किया और कहा कि यह धर्मानुकूल ही है। श्वेतकेतु ने वैवाहिक सम्बन्ध के शैथिल्य को तोड़ने की उसी समय प्रतिज्ञा की। हमें पाण्डु तथा कुन्ती के वार्तालाप के प्रसंग से भी यही प्रमाण प्राप्त होता है। कुन्ती को नियोग करने के लिए उत्साहित करते हुये पाण्डु, उत्तर कुरु देश (जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं) के सम्बन्ध में उदाहरण देकर

श्रीनिवास पाठक

श्वेतकेतु तथा उद्दालक के कथानक को ही प्रस्तुत करते हैं।

महाभारत काल में विवाह का बंधन कितना शिथिल था इसके सम्बन्ध में अनेक उदाहरण हमें कुमारियों की संतान से प्राप्त होते हैं। जैसे कुन्ती से कर्ण का जन्म, उसी प्रकार कुमारी गंगा से भीष्म, और कुमारी सत्यवती से व्यास। कुन्ती की सौत माद्री के जन्म स्थान मद्र देश (आधुनिक स्यालकोट) के स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध की कर्ण ने बहुत निन्दा की थी। इस सम्बन्ध में हम 'ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च......परंगता धृतराष्ट्रो न तत्र' आदि से पुष्टि कर सकते हैं। सारांश यह है कि मद्र देश के पश्चिम में स्थित गन्धार देश के राजा शल्य ने कर्ण का उपहास किया। इस पर कर्ण ने गन्धार देश के स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध की हँसी उड़ाई, जो कि तत्कालीन गंगा के तटवर्ती प्रदेशों में न था। उसके कथन से विदित होता है कि पिता, पुत्र, माता, स्वसा, श्वसुर, मामा, भाई, दास, दासी, इत्यादि का एक दूसरे से मैथुन अत्यन्त स्वच्छन्द होकर चरम सीमा तक पहुँच गया था। अपरिचित व्यक्तियों के साथ भी वे प्रेम के गीत गाती थीं। गन्धार प्रदेश की स्त्रियों की तरह मद्र प्रदेश की स्त्रियाँ भी मदिरा का सेवन करती थीं तथा किसी भी पुरुष के साथ नृत्य करने को उद्यत रहती थीं। इस समय भी वहाँ विवाह की कड़ी प्रथा न थी, स्त्रियाँ अपने चाहे हुए व्यक्ति के साथ प्रेम कर सकती थीं। मद्र देश की कुमारियाँ दुश्चरित्रा तथा लज्जारहिता हैं, इसकी चर्चा महाभार[illegible] प्रायः मिलती है।

बहुपति विवाह का उदाहरण पंचा[illegible] और द्रौपदी हैं। द्रौपदी पंचकन्याओं[illegible] भी गिनी जाती है। बिना विवाह के[illegible] यौन सम्बन्ध के अनेकों उदाहरण हैं—[illegible] भीम और हिडिम्बा, अर्जुन और चित्रा[illegible] गौतम और जानपदी भारद्वाज तथा घृता[illegible] व्यास और घृताची।

नियोग-प्रथा के अनुसार कोई भी [illegible] जिसका पति मर गया हो, या नपुंसक[illegible] गया हो—किसी भी व्यक्ति से संतान[illegible] कर सकती थी। धृतराष्ट्र और पाण्डु[illegible] जन्म इसी तरह हुआ था। बलि की प[illegible] सुदेष्णा का गौतम ऋषि के साथ नि[illegible] हुआ, था जिससे पुत्र अङ्ग, बङ्ग कलिङ्ग [illegible] सुन्ह हुए थे।

शारदंडायन ने एक पथिक [illegible] अपनी पत्नी के नियोग द्वारा इच्छित सन्[illegible] प्राप्त की थी। पाण्डु ने कुन्ती को नियो[illegible] करने के लिये उत्साहित करते हुए शार[illegible] दंडायन की मिसाल दी थी।

देवर बहुत ही प्राचीन शब्द है, जिस[illegible] अर्थ पति का छोटा भाई और 'द्वितीय [illegible] होता है :—देवरः कस्माद्द्वितीयो [illegible] उच्यते—यास्क

वाल्मीकि रामायण में भी, जब रा[illegible] मारीच का वध करने गये, तब [illegible] सुन सीता ने लक्ष्मण से उनके निकट जा[illegible] को कहा। लक्ष्मण ने नहीं जाना चाहा, तब सीता ने लक्ष्मण से कहा, राम के मरने के पश्चात् कदाचित् तुम मुझे[illegible]

परिचय करना चाहते हो।

दासता-युग में भारत और यूनान दोनों ही में लोग अपनी स्त्रियों का दान करते थे। सुकरात ने अपने प्रिय मित्र अल्किबियादिस की प्रसन्नता के लिये उसे अपनी पत्नी जन्तिप भेंट की थी। राजा युवनाश्व ने स्वर्ग-प्राप्ति के लिये अपनी प्रिय स्त्री का दान किया था। मित्रसह ने अपनी प्रिय पत्नी मदयन्ती को स्वर्ग प्राप्ति के लिए वशिष्ठ को दान में दे दिया। राजा सुदर्शन ने अपने अतिथियों की प्रसन्नता के लिए अपनी पत्नी का त्याग किया और अपूर्व कीर्ति प्राप्त की।

इस प्रकार दासता-युग में अनेकों प्रकार के यौन सम्बन्धों की भारत में प्रथा थी, जैसे हम विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में अनेक देशों में पाते हैं। यद्यपि एक पुरुष (पति) तथा एक स्त्री (पत्नी) से विवाह की प्रथा इस युग में प्रारंभ हो गई थी, किन्तु समाज में स्वच्छन्द रीति से यौन सम्बन्ध भी साथ ही साथ प्राचीन परम्परा के रूप में मौजूद था।

संसार के बहुत-से धर्म सामन्तवादी युग की देन हैं। ये सदा ही सामन्तवादी समाज के स्थायित्व के पोषण में प्रचार ही करते रहे हैं। मोक्ष आदि की कल्पना भी इसी समय हुई थी। दर्शनशास्त्र का प्रारंभ भी इसी युग में हुआ। सारे धर्मों के स्वर्ग तत्कालीन सामन्त-समाज के ऐश्वर्य-सम्पन्न, शक्तिशाली तथा सुरुचिपूर्ण परिवेश की साकार कल्पनाएँ हैं। उदाहरण-स्वरूप हिन्दू ग्रन्थों में वर्णित स्वर्ग को ले लीजिये :—

"वहाँ सुन्दरी स्त्रियों की भीड़ लगी रहती है जो कदाचित हो किसी राज-महल में मिल सकें। वे ऐसे वस्त्रों को धारण करती हैं जो कभी भी मलिन नहीं होते। सुन्दर रत्नाभूषणों से सुसज्जित वे सब के मन को मुग्ध कर लेती हैं। उनके शरीर अनेक प्रकार के अंगरागों तथा पुष्पों से सुसज्जित रहते हैं तथा उनके अङ्गों से मनोमोहक गंध आती रहती है। नृत्य-सङ्गीत का क्रम वहाँ सर्वदा चलता रहता है। आसव तथा मदिरा का सतत सेवन होता है। जब पवित्र आत्मा स्वर्ग में प्रवेश करती है, तब स्वर्गवासी उसका बड़े समारोह के साथ स्वागत करते हैं। वहाँ का प्रत्येक महल वन-उपवनों से सुसज्जित रहता है। वसंत के अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई ऋतु ही नहीं होती। पवित्र आत्मा जब स्वर्ग के राजमार्गों से गुजरती है, तब स्वर्ग के निवासी देव लोग उसे अपने-अपने प्रासादों में आमंत्रित करते हैं।

'इतस्तावदागम्यताम्, इतस्तावदागम्यताम्,
इयं सुन्दरी षोडशी बालावर्ततेइदं चषकपात्रम्'

अर्थात्, "इधर आइये, इधर आइये, यह सोलह वर्ष की परम सुन्दरी नायिका आपके उपभोग के लिये है और यह मदिरा से भरा पात्र भी आपके सेवन के लिये है।"

लगता है कि स्वर्ग के ये सारे दृश्य बड़े बड़े धनी परिवारों के गृहों या राज-प्रासादों से लिए गये हैं एवं उन्हें स्वर्ग के वर्णन में मूर्त किया गया है। इन सारे

श्रीनिवास पाठक

श्वेतकेतु तथा उद्दालक के कथानक को ही प्रस्तुत करते हैं।

महाभारत काल में विवाह का बंधन कितना शिथिल था इसके सम्बन्ध में अनेक उदाहरण हमें कुमारियों की संतान से प्राप्त होते हैं। जैसे कुन्ती से कर्ण का जन्म, उसी प्रकार कुमारी गंगा से भीष्म, और कुमारी सत्यवती से व्यास। कुन्ती की सौत माद्री के जन्म स्थान मद्र देश (आधुनिक स्यालकोट) के स्वच्छन्द यौन सम्बन्ध की कर्ण ने बहुत निन्दा की थी। इस सम्बन्ध में हम 'ज्येष्ठा स्वसारं पितरं मातरं च... ..परंगता धृतराष्ट्रो न तत्र' आदि से पुष्टि कर सकते हैं। सारांश यह है कि मद्र देश के पश्चिम में स्थित गन्धार देश के राजा शल्य ने कर्ण का उपहास किया। इस पर कर्ण ने गन्धार देश के स्वच्छन्द स्त्री पुरुषों के सम्बन्ध की हँसी उड़ाई, जो कि तत्कालीन गंगा के तटवर्ती प्रदेशों में न था। उसके कथन से विदित होता है कि पिता, पुत्र, माता, स्वसा, श्वसुर, मामा, भाई, दास, दासी, इत्यादि का एक दूसरे से मैथुन अत्यन्त स्वच्छन्द होकर चरम सीमा तक पहुँच गया था। अपरिचित व्यक्तियों के साथ भी वे प्रेम के गीत गाती थीं। गन्धार प्रदेश की स्त्रियों की तरह मद्र प्रदेश की स्त्रियाँ भी मदिरा का सेवन करती थीं तथा किसी भी पुरुष के साथ नृत्य करने को उद्यत रहती थीं। इस समय भी वहाँ विवाह की कड़ी प्रथा न थी, स्त्रियाँ अपने चाहे हुए व्यक्ति के साथ प्रेम कर सकती थीं। मद्र देश की कुमारियाँ दुश्चरित्रा तथा लज्जारहिता हैं, इसकी चर्चा महाभार[illegible] प्रायः मिलती है।

बहुपति विवाह का उदाहरण पंच[illegible] और द्रौपदी हैं। द्रौपदी पंचकन्या[illegible] भी गिनी जाती है। बिना विवाह [illegible] यौन सम्बन्ध के अनेकों उदाहरण हैं— भीम और हिडिम्बा, अर्जुन और चित्रा[illegible] गौतम और जानपदी भारद्वाज तथा [illegible] व्यास और घृताची।

नियोग-प्रथा के अनुसार कोई भी [illegible] जिसका पति मर गया हो, या नपुंस[illegible] गया हो—किसी भी व्यक्ति से [illegible] कर सकती थी। धृतराष्ट्र और पाण्[illegible] जन्म इसी तरह हुआ था। बलि की [illegible] सुदेष्णा का गौतम ऋषि के साथ [illegible] हुआ, था जिससे पुत्र अङ्ग, वङ्ग कलिङ्[illegible] सुम्ह हुए थे।

शारदंडायन ने एक पथिक [illegible] अपनी पत्नी के नियोग द्वारा इच्छित [illegible] प्राप्त की थी। पाण्डु ने कुन्ती को [illegible] करने के लिये उत्साहित करते हु[illegible] दंडायन की मिसाल दी थी।

देवर बहुत ही प्राचीन शब्द है, [illegible] अर्थ पति का छोटा भाई और 'द्वितीय[illegible] होता है:—देवरः कस्माद्द्वितीयो[illegible] उच्यते—यास्क

वाल्मीकि रामायण में भी, [illegible] मारीच का वध करने गये, तब [illegible] सुन सीता ने लक्ष्मण से उनके [illegible] को कहा। लक्ष्मण ने नहीं [illegible] तब सीता ने लक्ष्मण से कहा, [illegible] मरने के पश्चात् कदाचित् तुम [illegible]

रिचय करना चाहते हो।

दासता-युग में भारत और यूनान दोनों ही में लोग अपनी स्त्रियों का दान करते थे। सुकरात ने अपने प्रिय मित्र अल्किबियादिस की प्रसन्नता के लिये उसे अपनी पत्नी जन्तिप भेंट की थी। राजा युवनाश्व ने स्वर्ग-प्राप्ति के लिये अपनी प्रिय रानी का दान किया था। मित्रसह ने अपनी प्रिय पत्नी मदयन्ती को स्वर्ग प्राप्ति के लिए वशिष्ठ को दान में दे दिया। राजा सुदर्शन ने अपने अतिथियों की प्रसन्नता के लिए अपनी पत्नी का त्याग किया और अपूर्व कीर्ति प्राप्त की।

इस प्रकार दासता-युग में अनेकों प्रकार के यौन सम्बन्धों की भारत में प्रथा थी, जैसे हम विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में अनेक देशों में पाते हैं। यद्यपि एक पुरुष (पति) तथा एक स्त्री (पत्नी) से विवाह की प्रथा इस युग में प्रारंभ हो गई थी, किन्तु समाज में स्वच्छन्द रीति से यौन सम्बन्ध भी साथ ही साथ प्राचीन परम्परा के रूप में मौजूद था।

संसार के बहुत-से धर्म सामन्तवादी युग की देन हैं। ये सदा ही सामन्तवादी समाज के स्थायित्व के पोषण में प्रचार करते रहे हैं। मोक्ष आदि की कल्पना इसी समय हुई थी। दर्शनशास्त्र का जन्म भी इसी युग में हुआ। सारे धर्मों के स्वर्ग तत्कालीन सामन्त-समाज के ऐश्वर्य-सम्पन्न, शक्तिशाली तथा सुरुचिपूर्ण परिवेश के साकार कल्पनाएँ हैं। उदाहरण-स्वरूप हिन्दू ग्रन्थों में वर्णित स्वर्ग को ही लीजिये :—

"वहाँ सुन्दरी स्त्रियों की भीड़ लगी रहती है जो कदाचित ही किसी राज-महल में मिल सके। वे ऐसे वस्त्रों को धारण करती हैं जो कभी भी मलिन नहीं होते। सुन्दर रत्नाभूषणों से सुसज्जित वे सब के मन को मुग्ध कर लेती हैं। उनके शरीर अनेक प्रकार के अंगरागों तथा पुष्पों से सुसज्जित रहते हैं तथा उनके अङ्गों से मनोमोहक गंध आती रहती है। नृत्य-सङ्गीत का क्रम वहाँ सर्वदा चलता रहता है। आसव तथा मदिरा का सतत सेवन होता है। जब पवित्र आत्मा स्वर्ग में प्रवेश करती है, तब स्वर्गवासी उसका बड़े समारोह के साथ स्वागत करते हैं। वहाँ का प्रत्येक महल वन-उपवनों से सुसज्जित रहता है। वसंत के अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई ऋतु ही नहीं होती। पवित्र आत्मा जब स्वर्ग के राजमार्गों से गुजरती है, तब स्वर्ग के निवासी देव लोग उसे अपने-अपने प्रासादों में आमंत्रित करते हैं।

'इतस्तावदागम्यताम्, इतस्तावदागम्यताम्,
इयं सुन्दरी षोडशी बालावर्ततेइदंचषकपात्रम्'

अर्थात्, "इधर आइये, इधर आइये, यह सोलह वर्ष की परम सुन्दरी नायिका आपके उपभोग के लिये है और यह मदिरा से भरा पात्र भी आपके सेवन के लिये है।"

लगता है कि स्वर्ग के ये सारे दृश्य बड़े बड़े धनी परिवारों के गृहों या राज-प्रासादों से लिए गये हैं एवं उन्हें स्वर्ग के वर्णन में मूर्त किया गया है। इन सारे उपक्रमों से संपत्तिहीन तथा दलित वर्ग के

व्यक्तियों के मन में इस प्रकार के भाव भर गये, जिससे उन्होंने तात्कालिक व्यवस्था के विपरीत कोई उपद्रव या विद्रोह नहीं किया। आत्मा की अमरता तथा आवागमन के सिद्धान्त का पूर्णतया उपदेश किया गया; फलस्वरूप दलित समाज को इस प्रकार का विश्वास हो गया कि यदि वे अपने सामन्त की सम्पत्ति को डाह की आँखों से न देखेंगे, तो मृत्यु के पश्चात् उनका स्थान स्वर्ग में होगा। यह भी उपदेश किया गया कि पति-पत्नी इसी जीवन में ही एक दूसरे के नहीं, प्रत्युत मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक जीवन में भी एक दूसरे के रहेंगे तथा उनका कभी सम्बन्ध विच्छेद न होगा। सती-प्रथा का भी शायद इसी लिए प्रचलन हुआ था।

सामन्तवाद के समय में स्त्री का इतना पतन हुआ कि उसे उदरपूर्ति के लिए अपना शरीर बेचना पड़ा। धनिक वर्ग के लिये स्त्रियाँ केवल यौन लिप्सा का ही साधन बनी रहीं। स्त्री का संपत्ति पर तो कोई अधिकार नहीं था, पुरुष स्वेच्छा से उसे स्वस्थ रखता एवं स्वादिष्ट भोजन तथा वस्त्रालंकार आदि देता था किन्तु उसका समाज में कितना मान था, यह इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है :—

'पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने,
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।

अर्थात्, "पिता कौमार्यावस्था में, पति यौवन में तथा पुत्र वृद्धावस्था में स्त्री की रक्षा करता है, अतः स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है।"

एशिया के बहुत से देशों में यदि स्त्री पर्दा नहीं करती, तो बहुत बुरा माना ज[illegible] था। अतः उनकी 'अस्मत' की रक्षा के [illegible] एशिया तथा यूरोप के बहुत से देशों [illegible] सतीत्व की करधनी (chastity gird[illegible] उनकी कटि में बाँधी जाती थी [illegible] उनके गुप्ताङ्ग तो लौह-पट्टिका से ढ्रि[illegible] थे, सिर्फ़ मूत्रोत्सर्ग के लिये मार्ग [illegible] रहता था। वैसे यूरोप में प्रायः स्त्री को इस [illegible] में भी हिन्दू तथा मुसलमान स्त्री से अ[illegible] आजादी थी।

आदिम साम्यवादी समाज में सामूहि[illegible] विवाह, तथा पितृसत्ताकाल की प्रारंभि[illegible] स्थिति से पहले बड़े परिवारों की सत्ता[illegible] समय में—अनिश्चित युग्म विवाह होते थे[illegible] इन दोनों स्थितियों में स्त्री काफी स्व[illegible] थी। चूँकि अभी वह पुरुष की [illegible] या क्रीतदासी नहीं बनी थी। [illegible] राज्य में पुरुष बहुत-सी स्त्रियों से विवा[illegible] करने में स्वतंत्र था। किन्तु स्त्री को [illegible] पति से ही विवाह करने की अनुम[illegible] मिलती थी। मिस्र देश में इस [illegible] बहुपति विवाह की प्रथा थी, पर ऐसा केव[illegible] कुछ धनी और विशिष्ट व्यक्तियों[illegible] स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। प्राचीन मिस्र[illegible] में भी पर्दे की प्रथा नहीं थी। स्त्रियाँ[illegible] पति-परिचितों के साथ स्वच्छन्द रीति से[illegible] समाज में आ-जा सकती थीं। लेकिन इस्लाम[illegible] के प्रभाव के बाद स्त्रियों की परिस्थिति में[illegible] पर्याप्त परिवर्तन हो गया। सामन्तवादी[illegible] युग से पूर्व आदिम समय में स्त्री [illegible] स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी है। [illegible] संपत्ति की स्वामिनी बन सकती थीं तथा[illegible]

सका स्वेच्छानुसार उपभोग भी कर सकती थीं, और अपने पतियों को ऋण तक दिया करती थीं, किन्तु कालक्रम से इनकी स्थिति में ह्रास होने लगा और समाज ने इन्हें निम्नतम कोटि में पहुँचा दिया।

सामन्तवादी युग से ही विवाह एक धार्मिक संस्कार मान लिया गया (जो आज भी उसी प्रकार प्रचलित है) किन्तु यह नियम केवल एक पक्ष पर ही लागू होता था। संयम आदि की कड़ाई स्त्री पर ही थी, पुरुष पर नहीं। सामन्त परिवारों में विवाह करने के समय प्रेम को रंचमात्र भी प्रधानता नहीं मिलती थी। ऐश्वर्य एवं वैभव के पूर्ण विचार के बाद ही विवाह संपन्न होता था। पति को पत्नी के आचरण पर कड़ी नजर रखने का अधिकार था तथा किसी प्रकार के चारित्रिक संशय पर वह उसके दैहिक जीवन का अंत तक कर सकता था। विवाहिता स्त्री पति के प्रत्येक दुर्व्यवहार को सहन करती थी। स्त्री-स्वातंत्र्य समाज में वर्जित माना जाता था, किन्तु पुरुष पूर्णतया स्वच्छन्द रीति से अनेक पत्नियाँ रख सकता था।

पूँजीवादी युग में मशीनों के आविष्कार से उत्पत्ति के साधनों में अत्यन्त वृद्धि हुई। जिस कार्य को मनुष्य सप्ताहों एवं महीनों में पूर्ण करता था मशीन उसे अत्यन्त क्षमता के साथ कतिपय घण्टों में ही पूरा करने लगी। संसार इस युग में बहुत छोटा हो गया। रेल, तार, डाक, वायुयान आदि की सुविधायें प्राप्त हुई। सैकड़ों एवं हजारों मीलों की यात्रा मनुष्य अब एक दिन में ही करने लगा। अब हम बड़े स्तर पर बैङ्क तथा आयात-निर्यात के व्यापार को होते हुए देखते हैं। व्यापार तथा उत्पादन की शक्तियाँ पूर्वापेक्षा सहस्रोंगुनी बढ़ गई। पहले-पहल इस काल में स्त्री की स्थिति और भी गिरी। गर्हित वेश्यावृत्ति बहुत ज्यादा चलने लगी। 'कॉल गर्ल्स' के नाम से पूँजीवादी देशों में वेश्यावृत्ति काफी बड़े पैमाने पर आज भी व्यापार का अंग बनी है। इसके बड़े-बड़े व्यवस्थापक एवं व्यापारी हैं तथा इस व्यापार के शेयर भी बिकते हैं। आज अमेरिका और यूरोप के अधिकांश देशों में यही स्थिति है। बड़े-बड़े पूंजीवादी देशों में ही स्त्री की जब यह स्थिति है, तब अर्द्ध-सामन्तवादी तथा अर्द्ध-पूँजीवादी भारत के सम्बन्ध में हम क्या कह सकते हैं। लोग तुलसीदास के शब्दों का आज भी यहाँ प्रयोग करते हैं:—

> 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
> ये सब ताड़न के अधिकारी।
> नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं,
> औगुन आठ सदा उर बसहीं'।

> 'नारि नरक की खानि।'

यद्यपि आज पूँजीवादी देशों के बड़े-बड़े शहरों में स्त्रियाँ भी अपनी रोजी स्वयं कमाती हैं, तदपि सब ऐसा नहीं कर सकतीं। विवाहिता स्त्रियों को पति की आय पर ही निर्भर करना होता है। अमेरिका में अभी तक ६ स्त्रियों में से केवल एक स्त्री ही अपनी रोजी कमाने में समर्थ

हो पाती है। भारत में भी बड़ी कठिनाई से कुछ ही स्त्रियाँ ऐसी हैं (जो उच्चवर्ग अथवा मध्यमवर्ग के उच्चस्तर की होती हैं) जो अपनी जीविका अर्जन कर सकती हैं। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ पर्याप्त कार्य करती हैं किन्तु उनके श्रम का कोई अधिक मूल्य नहीं।

आर्थिक पराभव ही स्त्री की दासता एवं निम्न स्थिति का कारण पूँजीवादी युग में रहा है, तथा आज भी वही है। आज भी स्त्रियों की स्थिति में सहसा कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। पूँजीवाद ने स्त्री पर जो कुछ कृपा दिखाई, वह यही कि इसने स्त्री को एक आत्मा-रहित जीव नहीं माना, जिसका ईसाई धर्म ने सामन्तवादी युग में प्रचार किया था। प्रजातांत्रिक प्रणाली के देशों में स्त्री को वोट देने तथा राजनीति में भाग लेने का अधिकार प्राप्त है, पर इसके लिये भी उसे काफी संघर्ष करना पड़ा है। अब उसे शिक्षा-दीक्षा तथा जीविकोपार्जन के लिये प्रचुर सुविधायें दी जाने लगी हैं और द्वितीय महायुद्ध के बाद से इसमें दिन-प्रति-दिन थोड़ी-बहुत उन्नति हो रही है।

स्त्री की सारी दासता पुरुष के ही कारण नहीं, प्रत्युत पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के कारण है। बाल्यकाल से ही ऐसे देशों में बच्चों को तरह-तरह की शिक्षा दी जाती थी। लड़के तथा लड़कियों के लिये भारतीय परिवारों में भी भिन्न-भिन्न नियम होते हैं। लड़कियों को बाल्यकाल से ही स्त्री बनने की तथा लड़कों को स्वतन्त्र एवं निर्द्वंद्व रहने की शिक्षा दी जाती है। लड़कियों को किसी न किसी पर निर्भर रहना सिखाया जाता है। लड़कों को ऐसे खिलौने दिये जाते हैं, जो उनके ज्ञान और कार्य-शक्ति को बढ़ाते हैं। वे लकड़ी के घोड़े से खेलते हैं, भवन तथा किलों का निर्माण करते हैं, तीर कमान बनाते हैं, लट्टू नचाते हैं, पतंग उड़ाते हैं, घुड़सवारी सीखते हैं, किन्तु लड़कियाँ गुड़ियों की शादी रचाती हैं, चूल्हा-चक्की और घर गिरस्ती चलाने की अन्य चीजों से ही खेलती हैं। बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से कहें, तो बालिकाओं के व्यक्तित्व पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। आज भी कुछ भारतीय परिवारों में नारी-शिक्षा विशेष अच्छी नहीं समझी जाती। अन्य देशों में जहाँ शिक्षा का पर्याप्त प्रचार है, वहाँ भी साधारण शिक्षा ही लड़कियों के लिये पर्याप्त समझी जाती है। जापान में स्त्री-शिक्षा का अधिक स्तर चाय-वितरण, फूल, कसीदाकारी तथा सजावट आदि सिखाने में ही नष्ट हो जाता था। यदि भारत में अशिक्षित लड़कियों को अच्छा, धनिक तथा सुशिक्षित पति नहीं मिलने का डर न होता, तो स्त्री-शिक्षा का शायद पूर्ण अंत ही हो गया होता।

अभी तक स्त्री की जीविका का एकमात्र साधन पुरुष पर निर्भर करता था। वेश्यावृत्ति इस युग में भी इसीलिये समाप्त नहीं हो सकी। अनेक प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर यह जाना गया है कि भूख, रोग, परित्याग और दारिद्र्य के कारण ही स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति करने के लिये बाध्य

ाती हैं। रॉकफैलर इंस्टीट्यूट की रिपोर्ट इन्हें उन अमरीकी स्थानों का विवरण ालता है, जहाँ वेश्यावृत्ति को व्यापारी ाम की वस्तु बनाया गया है। मेरी नमैन ने भी अपनी पुस्तक 'इन वीमैन्स फ़ेन्स' में लिखा है कि इस व्यापार से निवाला लाभ, इस्पात तेल, कोयला या मोटर-निर्माण करने के व्यापार मी अधिक है। अन्य बड़े बड़े ापारिक केन्द्रों की तरह यह व्यापार भी हुत बड़े स्तर पर होता रहा है। करीब ० वर्ष पूर्व यह व्यापार अत्यन्त स्पष्ट रूप होता था; किन्तु बहुत विरोध होने के ारण अब छद्म रूप में यह होटल, क्लब, ायघर, संगीतालय तथा रैस्तराँ आदि में ाज भी चलता है। पर प्रायः सभी देशों वेश्यावृत्ति कानूनन बहुत बुरी मानी ाती है, तब भी वेश्याओं को "सर्टिफिकेट" देये जाते हैं। शासकीय आधार पर इस त्ति को अब भी इस रूप में मान्यता ाप्त है।

जो वेश्याएँ पूँजीपतियों के हाथों में ड़ गई हैं, वे अत्यन्त ही बुरी दशा में हैं। स व्यापार में जब वे प्रवेश करती हैं तब त्यन्त पराधीन होती हैं तथा जब इसे ोड़ती है, तब न केवल आर्थिक कठिनाई में ो रहती हैं प्रत्युत अनेक यौन-व्याधियों से ीड़ित भी हो जाती हैं एवं अपने स्वास्थ्य था जीवन से हाथ धो बैठती हैं। इस यापार में इन्हें प्रविष्ट कर लेना अत्यन्त ासान है। समाचार पत्रों में विभिन्न ानों के लिये विज्ञापन दिये जाते हैं, अगर प्रार्थिनी सुन्दरी हुई तो उसे लोभ-लालच देकर बेवकूफ बनाया जाता है। कुछ एजेंसियों के द्वारा भी यही होता है। इनमें कोई सन्देह नहीं कि वेश्यावृत्ति का मूल कारण जीवन-यापन की सुविधाओं का अभाव है। इन्हीं सुविधाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्त्री को अपना शरीर बेचना पड़ता है। सामन्तवादी युग से ही यह परम्परा चली और पूँजीवादी युग में इसने बहुत ही विशाल रूप धारण कर लिया। वेश्यावृत्ति संसार से तब तक नहीं जा सकती, जब तक कि पूँजीवाद संसार में मौजूद है। कुछ व्यक्तियों का यह कथन है कि आदिम युग से ही वेश्यावृत्ति की परम्परा चली है, बहुत ही बड़ी भ्रांति है। हमें भली-भाँति विदित है कि आदिम साम्यवादी समय में जब कि वर्णादि की व्यवस्था नहीं हुई थी, वेश्यावृत्ति का कोई स्वरूप ही नहीं था। वेश्यावृत्ति उस समय आरंभ होती है, जब समाज में एक वर्ग के हित के लिये शासन प्रारम्भ हुआ; अतः ऐसा कथन कि यह मानव समाज के प्रारम्भ होने की स्थिति से ही चली आरही है, एक बहुत बड़ी भूल है।

आज कानून ने स्त्रियों को विशेष सुविधायें दी हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाहादि के लिये उन्हें कोई बाध्य नहीं कर सकता। पति में किसी प्रकार का दोष होने पर वह विवाह विच्छेद के लिये उपक्रम कर सकती है तथा पुनर्विवाह भी हो सकता है। इतना सब होते हुए भी पूँजीवादी व्यवस्था के कारण पुराने क्रम अभी समाप्त

श्रीनिवास पाठक

नहीं हुए हैं। विभिन्न धार्मिक परम्पराओं ने नर-नारी के इस सम्बन्धको आज भी अधीन कर रखा है। ईसाइयों में पुनर्विवाह सम्भव नहीं है। इस्लाम अभी तक चार पत्नी रखने की आज्ञा देता है। हिन्दुओं में अभी बहुत-सी प्राचीन निरर्थक परिपाटियाँ एवं रूढ़ियाँ विद्यमान हैं तथा समयानुकूल प्रगतिशीलता का अभाव है।

औद्योगिक क्रान्ति और बड़े बड़े उद्योगों की स्थापना के बाद श्रमिकों में अपने हित-संरक्षण के लिए संघबद्धता आना जिस तरह अनिवार्य था, उसी तरह रूस की क्रान्ति के बाद समाजवादी जनतन्त्रकी अवतारणा के साथ साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का अन्त और स्वराज्य की माँग बढ़ना भी अपरिहार्य था। दोनों का नतीजा यह हुआ कि मानव के अधिकारों में अभिवृद्धि हुई शोषक और शोषितों की स्थिति में परिवर्तन हुए और नर-नारी तथा समाज के बीच जाति, वर्ग, धर्म या मत तथा लिंग-भेद पर आश्रित भेदभाव मिटने लगा।

प्रगतिशील शक्तियों के कारण स्त्री की स्थिति में भी सुधार हुआ। सोवियत रूस में पुरुष की तरह उसे प्रत्येक सुविधा प्राप्त हुई। रूस में स्त्रियों की स्वतंत्रता एवं शिक्षा-दीक्षा तथा समानता देख सारे संसार (तथा भारत की स्त्रियों में भी) में उसी प्रकार के भाव जाग्रत हुए। चीन में भी यही हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा सरकार द्वारा भी अनेक पिछले कानूनों में परिवर्तन और समाज को देने ढाँचे में बाँधने की कोशिश हो रही है कि सच्चे समाजवाद की स्थापना हो सके।

हाल ही में भार[...]
दासता को पूर्णतया [...]
यद्यपि इस कानून ने [...]
माना है तथा उसकी [...]
रखा है, किन्तु 'सि[...]
गत्यवरोध में पूर्णतया [...]
कानून ने एक स्त्री तथा [...]
(Monogamy) का [...]
और यह माना है कि [...]
का सम्बन्ध समानता ए[...]
है। पति के दुराचारी, [...]
एवं नपुंसक आदि होने [...]
विच्छेद की पूर्ण स्वतंत्र[...]
पश्चात् (दाम्पत्य अधि[...]
रखते हुये) स्त्री तथा उ[...]
पोषण के लिये कानून उस[...]
संपत्ति अथवा मासिक [...]
आर्थिक सहायता दिला[...]
संपत्ति पर दोनों का समा[...]
गया है। मिताक्षरा न्या[...]
उत्तराधिकार के लिये द[...]
अवसर दिया गया है। न[...]
भारत में पूर्णतया प्रतिष्ठि[...]
होगा, केवल यौन-भेद [...]
समाज के आधे [...]
एवं गुलाम बनाकर [...]
सकता। स्त्री अब अपनी ए[...]
प्रदर्शन कर सकती है [...]
व्यक्तित्व का (जिसे श[...]
की शृंखला ने दबा रखा[...]
विस्तार कर सकती है।

नूतन साहित्य

भारतीय संस्कृति : ले० डा० लक्ष्मनजी गोपाल तथा डा० व्रजनाथसिंह यादव : प्र० विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, उ० प्रदेश

आधुनिक शैली में प्रणीत संस्कृति और सभ्यता के इतिहास भारतीय वाङ्मय में बहुत कम हैं। यह ऐतिहासिकों की अभी हाल ही की प्रवृत्ति है कि अब वे राजा-महाराजाओं की वंशावली और दिग्विजय, हार-जीत, आक्रमण-प्रत्याक्रमण छोड़कर घटनाओं के अन्तराल में छिपी जन-मानस की इच्छा-अनिच्छा और उसके कार्य-कलाप के समुचित विश्लेषण की चेष्टा ही अधिक करते हैं। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम भी तदनुसार ही परिवर्तित हो रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक विशेषतया विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये ही लिखी जान पड़ती है यद्यपि साधारण पाठक को भी यह रुचिकर और ज्ञानवर्धक ही लगेगी। इस पुस्तक में आधुनिक काल में भारतीय संस्कृति पर जो प्रभाव पड़े हैं, उन पर यदि कुछ विस्तृत विचार होता तो और भी अच्छा होता। शायद अगले संस्करण के परिशिष्ट रूप में इसकी पूर्ति हो जायगी। इस पुस्तक को विशेषरूपेण पठनीय और उल्लेखनीय है भूमिका, जो इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित भी हुई है।

इस प्रकार की पुस्तक में विषय-सूची (index) देना आवश्यक था किन्तु शायद पाठ्य-पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की जल्दी से ऐसा नहीं होसका। **—मोहन मिश्र**

संघर्ष (उपन्यास) : ले० एण्टन चेखव : अनु० शिवदानसिंह चौहान तथा विजय चौहान : प्र० हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लि०, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली।

हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड ने हिन्दी में जेबी किताबों (पॉकेट बुक्स) को छापना शुरू किया है। पुस्तकों के सस्ते संस्करण के लिहाज से यह एक शुभ घटना है, हालांकि हिन्द पाकेट बुक्स के इन प्रकाशनों में कई खामियाँ हैं। पहली बात कि ये किताबें एकदम ड्यूरेबल नहीं हैं, एक बार पढ़ने पर ही जिल्द अस्त-व्यस्त हो जाती है। दूसरी बात, जेबी किताबों में मुख्यतः हिन्दी की उन श्रेष्ठ पुस्तकों का संस्करण होना चाहिये, जो सीमित आय के पाठकों को उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'संघर्ष' महान रूसी लेखक एण्टन चेखव के प्रसिद्ध उपन्यास 'डुएल' का रूपान्तर है। 'डुएल' का अनुवाद 'द्वन्द्व युद्ध' या 'द्वन्द्व' होना चाहिए था, 'संघर्ष' नहीं। ऐसी ही स्वतन्त्रता अनुवाद में और जगह भी बरती गई है। जिस स्थल पर वॉन कोरेन और लायवस्की में द्वन्द्व-युद्ध का फैसला होता है, अनुवाद बहुत घिसे-पिटे ढंग का है जिससे घटना की गम्भीरता स्पष्ट नहीं होती। साधारणतया यह रूपान्तर ठीक है। यों, यह सूचना आवश्यक थी कियह मूल रूसी से अनूदित है, या अंग्रेजी

"-UPRABHAT" June '59 Regd. No C-3796. Per Cc